।। श्री छगन-रत्न-गुलाब-हर्षद गुरुभ्यो नमः ।।

सिंहगर्जना की स्वामिनी बा. ब्र. पू.
श्री शारदाबाई महासतीजी के हृदयस्पर्शी प्रवचनों

जिनशासन के सफल खेवैया आचार्य सम्राट्

बा. ब्र. पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म. सा. की जय हो, विजय हो।

शासन शिरोमणि, प्रवचन की पारसमणि, आशीर्वाददात्री

बा. ब्र. पू. गुरुणीमैया श्री शारदाबाई महासतीजी अमर रहें।

प्रवचनकार

खंभात संप्रदाय के जैनज्योतिर्धर
बा. ब्र. पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म. सा.की

सुशिष्यारत्ना प्रभावक प्रवचनकार
बा. ब्र. विदुषी पू. श्री शारदाबाई महासतीजी

: प्रेरणादायी :
सुशिष्या बा. ब्र. विदुषी पू. श्री वसुबाई महासतीजी की प्रेरणा से

'शारदा ज्योत' - शारदा प्रवचन संग्रह हिन्दी आवृत्ति, प्रत : ३०००
प्रकाशक हवक : © शारदा प्रवचन संग्रह समिति

प्राप्तिस्थान

शा. मांगीलाल उदेराम नंगावत
१२, महावीर सोसायटी, सुमुल-डेरी रोड़, सुरत - ३९५००४
दूरभाष (घर) २४८६११०/२४८६३८९ (ऑ) २५३२६८७/२५३२६८८

शा. रोशनलाल चंपालाल कोठारी
विजय लक्ष्मी फेबरीक्स
३०१६, गोलवाला मार्केट, दूसरा मजला, सुरत - ३९५००१
दूरभाष (घर) २६८४३४७ (ओ) २३२०५७१

शा. धरमचंदजी देरासरीया
ठे. होस्पिटल रोड़, मारु दरवाजा बाहर, देवगढ़, मदारीया, जीला राजसमंद (राज.)
दूरभाष : S.T.D. (०२९०४) २५२०२७ (घर) (०२९०४) २५२०६१

१०, मोगरा वाडी
रोशनलाल पब्लिक स्कूल के पास, उदयपुर, दूरभाष : S.T.D. (०२९४) २४८५९५१

दोनो भागो का मूल्य : रु. ४०/-

संपर्कस्थान

नरेन्द्रभाई साकरलाल साड़ीवाला
डुंमाल ट्रान्सपोर्टनगर गोडाउन नं. ५
पूणाजकातनाका के सामने, सुरत - बारडोली रोड़, सुरत
दूरभाष (घर) २६५४५२७ (ओ) २८५१७८२

शा. नानालाल मांगीलाल कोठारी
३, श्रीनाथ सोसायटी, पोदार एवन्यू के पास,
युनियन की गली, घोड़ दोड़ रोड़, सुरत दूरभाष (घर) २६६९९३९ (ओ) २६५११३९

शा. बाबुलाल रोशनलाल सिंघवी
विमल ज्योति फेबरीक्स
६, दर्शन मार्केट, रींग रोड़, सुरत - ३९५००२
दूरभाष (घर) २६८५५३० (ओ) २३२०७६८

मुद्रक : सस्तुं पुस्तक भंडार नडियाद - पिन : ३८७००१ फोन : (घर) २५५४२४३ (ओ) २५६६२५८
अनुवादक : नीराबहन नाहटा/महेन्द्रभाई रांगीया

मुख्यदाता श्रुत अनुरागी

१. मांगीलालजी उदेराम चेरिटेबल ट्रस्ट - सुरत

२. रोशनलालजी चम्पालालजी कोठारी (कोशीथलवाला) - सुरत

३. नरेन्द्रभाई साकरलाल साड़ीवाला - सुरत

४. बाबुलाल रोशनलाल सिंघवी - गंगापुर

५. नानालालजी मांगीलाल कोठारी - देवरीया

६. धर्मचन्द्रजी चंदनमलजी देरासरीया - देवगढ

७. सुवालाल जीवराज बोल्या - खरनोटा

८. पूज्य वसुबाई महासतीजी के भक्तजनो - मुंबई

९. ऋषभ जेम्स कोर्पोरेशन हस्तक
राजुभाई हरकीशनदास पटेल - अमेरीका - खंभातवाले

१०. श्री बळवंतभाई दोढीवाला - झालावाडनगर अंधेरी, मुंबई

११. निहाल ड्ढा - मुंबई

१२. स्व.अ.सौ. भानुबहन कान्तीलाल शाह (खंभात) - मुंबई

१३. सज्जनकुंवर पन्नालाल चोपडा - सुरत

१४. मधुबहन महेन्द्रभाई गोड़ा - सांताकुझ, मुंबई

१५. पियुपभाई महेन्द्रभाई गोड़ा - सांताकुझ, मुंबई

निवेदन

नम्र निवेदन है कि महान् विद्वान वा. ब्र. गुजरात सिंहनी श्री शारदाबाई महासतीजी के १४ पुस्तक गुजराती में प्रकाशित हुए हैं, उनमें ४ का हिन्दी में अनुवाद हुआ है। उसमें 'शारदा शिरोमणि'.'सफल सुकानी शारदा प्रवचन संग्रह', 'शारदा सिद्धि' 'शारदा रत्न' और 'शारदा ज्योत' यह सब दो भागों में हमने प्रकाशित करवाया हैं। उसमें शारदा शिरोमणी, सफल सुकानी आदि पुस्तक आप तक पहुँचा ही होगा और यही (शारदा ज्योत) भी आप तक पहुँच रही है। अब आपसे निवेदन है की इसकी मूल किमत से २०% में ही हम आप तक यह पुस्तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं, जिससे आप जान सकते हैं कि किसी दानी के सहयोग से ही यह भगीरथ कार्य पूर्ण हो सकता है, तो हमारा आपसे अनुरोध है कि इस पुस्तक के पढ़ने के बाद आपकी श्रद्धा हो तो आप भी इसमें सहयोगी बने और दूसरों को भी एतदर्थ प्रेरणा दें, जिससे हम ज्यादा से ज्यादा पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करवा कर आप तक पहुँचाने की कोशिश कर सके। आपसे इसलिए निवेदन कर रहे हैं कि यह बहुत ही बड़ा अर्थ का मामला है, हम व्यक्तिगत संपर्क कर नहीं सकते, मगर इस पुस्तक द्वारा निवेदन कर रहे हैं। यदि आपकी आत्मा संपूर्ण जगे तो ज़रूर इस महान कार्य में यथा-योग्य सहयोग प्रदान करावे, तो हमारा अगला कार्य सरल बनेगा। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास भी है, आपके आत्मा में छूपी दान-भावना तीव्र बने। इस आशा और विश्वास के साथ।

इस समय पर नीरा बहन नाहटा का आभार मानते है की उत्कृष्ट सेवा भाव से आपने गुजराती का हिन्दी अनुवाद करने का काम किया हमारी समिति आपके बहुत ऋणी है।

आपके

शारदा प्रवचन संग्रह समिति

सुरत

श्री गुजराती वर्धमान स्थानकवासी जैन संघ - बेंगलोर

: प्रमुख :

श्री कनकभाई केशवलाल बीलखिया

खंभात संप्रदाय के साध्वीरत्ना बा. ब्र.
पू. गुरुणीमैया श्री शारदाबाई महासतीजी के सुशिष्या
पू. रंजनबाई महासतीजी आदि ठाणा-५ के श्री
गुजराती वर्धमान स्थानकवासी जैन संघ - बेंगलोर
के चातुर्मास दरमियान

महाग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद
प्रकाशन ज्ञानदाता

सहायक दाता श्रुत अनुमोदक

१. श्रीमान ज्यष्टमलजी चोरडिया - बेंगलोर
२. श्री गुजराती वर्धमान स्था. जैन संघ - बेंगलोर
३. श्रीयुत कुंदनमलजी पारसमलजी शांतिलालजी भंडारी
४. श्रीयुत महावीरचंदजी - सीधनुर
५. श्रीमती भानुबहन सुरेशभाई शाह (सपना)
६. श्रीयुत चंपालालजी मकाणा - दोडबालापुर
७. श्रीमती सुशीलाबहन सज्जनराजजी बहोरा - सीधनुर

मानद सहायक दाता

८. श्रीमान रश्मीकांतभाई के. महेता
९. श्रीमती गेदीदेवीजी लुणकरणजी बाफना
१०. एक सद्‌गृहस्थ (हा. माणेक मेवा)
११. श्रीयुत अमरभाई रजनीभाई पंचमिया
१२. श्रीमान अजीतमल निर्कुंजकुमार कोठारी
१३. श्रीमान गोकलभाई मुकेशभाई मांडोत
१४. श्री भवरलाल इन्दरचंदजी महेन्द्रकुमार सकलेचा
१५. श्री वर्धमान महिला मंडल - बेंगलोर
१६. श्री प्रभुदासभाई - सुरेशभाई - रायचंदभाई हींगोली

सहायक दाता

१७. श्रीमती मधुबहन कनकभाई बीलखिया
१८. श्रीमती पन्नाबहन मनहरलाल पारेख
१९. श्रीमती नीनाबहन रोहितभाई महेता
२०. श्रीमती भानुबहन अनंतराय अजमेरा
२१. श्रीमती रंजनबहन मुकुंदभाई मेघाणी
२२. श्रीमती मंजुलाबहन मधुकरभाई महेता
२३. श्रीमती हीराबहन त्र्यबकभाई तुरखिया
२४. श्रीमती आशाबहन प्रकाशभाई महेता
२५. श्रीमती कल्पनाबहन कपासी
२६. श्रीमती दिव्याबहन रमेशभाई पतीरा
२७. श्रीमती सुशीलाबहन धीरजलाल देसाई
२८. श्रीमती प्रमिलाबहन नरेन्द्रभाई देसाई
२९. मेसर्स मोडर्न नोवेल्टीझ
३०. श्रीमती शोभनाबहन सुरेशभाई वगडिया
३१. श्रीमती रश्मीबहन वसंतभाई देसाई
३२. श्रीमती दिनाबहन जयंतभाई महेता
३३. श्रीमान अमरचंद अशोककुमार चोरडिया
३४. श्रीमती रमणीकलाल नागरदास शाह
३५. श्रीमती सरोजबहन अनोपचंदभाई महेता

३६. श्रीमती सवितावहन मावाणी
३७. मेसर्स राजेश ज्वेलर्स
३८. बा.ब्र. पू. रंजनबाई महासतीजी के संसारी कुटुंबीजनो
३९. श्रीमान दीपचंदजी भणसाली
४०. श्रीमान विमलचंद महेन्द्रकुमार कातेड
४१. श्री हेतलभाई चोरा - महेन्द्रभाई शाह - डो. हिमतभाई
४२. श्रीमती रेखाबहन बदाणी
४३. श्रीमान गौतमचंदजी वाफना
४४. श्रीमान सोहनलालजी मुथा
४५. एक सद्गृहस्थ
४६. बा.ब्र. पूर्णिताबाई महासतीजी के संसारी कुटुंबीजनों ह. भरतभाई - खेडा
४७. श्रीमती इन्दुमती कांतिलाल चापानेरी - अहमदावाद
४८. श्रीमती पुष्पाबहन नटवरलाल शाह - माटुंगा
४९. श्रीमान सोहनलालजी राजमलजी भणसाली
५०. श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन संघ - श्रीरामपुरम्
५१. श्रीयुत महेन्द्रभाई गांधी - मुंबई
५२. श्री मीठालाल कोठारी - यशवंतपुर
५३. श्री बिपीनभाई बदाणी
५४. श्री रमेशभाई वाटविया
५५. श्रीमती चारुबहन दिनेशभाई शाह
५६. श्री किशोरभाई पीपरीआ
५७. श्रीयुत चीमनलाल जादवजी गांधी - इन्दोर
५८. श्रीयुत शांतिलालजी बगाणी
५९. श्रीमती भानुबहेन जयकुमार कोठारी
६०. श्रीमती ज्योत्स्नाबहन किशोरभाई पारेख
६१. श्रीमान जगदीशभाई कामदार
६२. श्रीमान चंपालालजी बाबुलालजी चौक - बालापुर
६३. श्रीमती ताराबहन केशवलाल गाठाणी
६४. श्री प्रवीणभाई प्रेमचंद शाह - हा. अमृतबहन
६५. बा.ब्र.पू. अर्पिताबाई महासतीजी के संसारी भाई-बहनो - खेडा
६६. श्रीमान विनोदभाई कामदार - हर्षदभाई कामदार
६७. श्रीमान भूपतराय संघाणी
६८. श्री शैलेशभाई खेडावाला
६९. श्रीमती चंद्राबहन जंबुलाल शिवलाल कापडिया
७०. श्रीयुत प्रवीणचंद्र भाईलालभाई शाह - मुलुंड
७१. श्री कृष्णकांतभाई पटेल - मुंबई
७२. श्रीमती मीनाक्षीबहन कनैयालाल - खंभात
७३. श्रीमान अश्विनभाई रतिलाल भावसार - खेडा

स्व. श्री मगनलाल केशवजी तुरखिया के वरद हस्त से भवन की भूमिपूजन विधि तथा श्रीमती मधुबहन और श्री कनकभाई बीलखिया के वरद हस्त से १९७७, भवन का शिलारोपण विधि श्रीमती हीराबहन तथा श्री त्रंबकलाल तुरखिया के वरद हस्त से १९७७ ।

उसके बाद उत्तरोत्तर प्रगति हो रही है । १९८०-८१ से चातुर्मास हमारे श्री संघ के पुण्योदय से मिलते रहे हैं । श्री संघ कोई भी जात के संप्रदायवाद में मानते नहीं । विद्वान और क्रियावान संत-सतीवृंद कोई भी स्था. संप्रदाय के हो उनको मानपूर्वक चातुर्मास कराते है और वयावच्च का महामूला लाभ लेते है ।

गत चातुर्मास खंभात संप्रदाय के शासन शिरोमणि बा. ब्र. पू. श्री गुरुणीमैया श्री शारदाबाई महासतीजी की सुशिष्या पू. रंजनबाई महासतीजी आदि थाणा-६ का बहुत धर्मध्यानपूर्वक पूर्ण हुआ । ३१ उपवास की उग्र तपस्या संत-सतीओं के वर्ग में पहलीबार हमारे श्री संघ के आँगन में मनाई और इस ऐतिहासिक चातुर्मास में ही 'शारदा ज्योत' प्रवचन ग्रंथ - गुजराती ग्रंथ का हिन्दी मेंअनुवाद करने प्रकाशक तरीके का लाभ हमारे श्री संघ को प्राप्त हुआ ।

श्री गुजराती वर्धमान स्थानकवासी जैन संघ - बेंगलोर

श्री संघ के भूतपूर्व प्रमुखो

१.	श्री मगनलाल केशवजी तुरखिया	स्थापक प्रमुख
२.	श्री केशवलाल चत्रभूज उदाणी	१९७२ - १९७५
३.	श्री ज्योतीन्द्रभाई वल्लभजी दोशी	१९७६ - १९७७
४.	श्री त्रंबकलाल मगनलाल तुरखिया	१९७८ - १९७९
५.	श्री कनककुमार केशवलाल बीलखिया	१९८० - १९८१
६.	श्री प्राणलाल केशवजी संघराजका	१९८२ - १९८३
७.	श्री वनेचंदभाई अमीचंद बाटविया	१९८४ - १९८८
८.	श्री नरेन्द्रभाई मूलचंद देसाई	१९८९ - १९९०
९.	श्री वनेचंदभाई अमीचंद बाटविया	१९९१ - १९९५
१०.	श्री कनककुमार केशवलाल बीलखिया	१९९५ - २००३

श्री संघ की वर्तमान कार्यवाहक समिति

१.	श्री कनकभाई बीलखिया	प्रमुख
२.	श्री मनहरलाल पारेख	उप प्रमुख
३.	श्री सुरेशभाई शाह	मंत्री
४.	क्षी रोहितभाई महेता	सहमंत्री
५.	श्री कमलभाई शाह	खजानची
६.	श्री किरीटभाई तुरखिया	सभ्य
७.	श्री अनंतराय अजमेरा	सभ्य
८.	श्री मुकुंदभाई मेघाणी	सभ्य
९.	श्री वसंतभाई देसाई	सभ्य
१०.	श्री किशोरभाई पारेख	सभ्य
११.	श्री नरेन्द्रबाई मावाणी	सभ्य
१२.	श्री राजेशभाई महेता	सभ्य
१३.	श्री हेमांशु बाटविया	सभ्य
१४.	श्री मनीषभाई दोशी	सभ्य

ट्रस्ट बोर्ड

१.	श्री त्रंबकभाई एम. तुरखिया	कायमी सभ्य
२.	श्री कनकभाई के. बीलखिया	कायमी सभ्य
३.	श्री मुकुंदभाई एम. मेघाणी	ट्रस्टी
४.	श्री मनहरलाल एस. पारेख	ट्रस्टी
५.	श्री रोहितभाई के. महेता	ट्रस्टी

खंभात संप्रदाय के पू. आचार्य भगवंत श्री कांतिऋषिजी म.सा. के सुशिष्य पू. आचार्य बा. ब्र. श्री अरविंद मुनि म.सा.

श्रुत ज्ञान दीपक के समान है । उसके प्रकाश में हमे जीवन का पथ काटना है । ज्ञान जीवन की मूडी है । जब जीवन में अघटित घटना बनती है तब ये मूडी का उपयोग करना है । ज्ञान सुगंधित पुष्प है, जिसकी खुश्बू सहरा जैसे शुष्क जीवन में नूतन ताजगी बक्षकर जीवन जीने की कला सीखाकर वही जीवन को नीरस में से सुंदर सुगंधित बना देती है ।

ऐसे ज्ञानदाता हम पर उपकारी पू. गुरुणीमैया श्री शारदाबाई म.स. के प्रवचन-श्रवण से बहुतों के जीवन में ताजगी, सुगंधिता प्राप्त हुई है और जिसको प्रत्यक्ष प्रवचन-श्रवण का लाभ न मिला, उन्होंने प्रवचन के पुस्तक से यह लाभ लेकर जीवन को सुगंधित बनाया है ।

पू. महासतीजी की गैरहाजरी में भी उनके प्रवचन पुस्तक की माँग चालु है और गुजराती के बाद अंग्रेजी में और हिन्दी में प्रकाशित करके प्रकाशन समिति ज्ञान प्रभावना कर रहे है, यह जानकर आनन्द सह धन्यवाद ।

इस प्रवचनों के वाचन द्वारा जिज्ञासु का जीवन पावन करे ऐसी शुभभिलाषा ।

A. C.
मणिनगर चातुर्मास
(अहमदाबाद)

ता. १२-९-०३

स्वप्न साकार

'शारदा ज्योत' शारदा प्रवचन हिन्दी आवृत्ति

खंभात संप्रदाय के शासन शिरोमणि व्याख्यान वाचस्पति गुजरात सिंहनी बा. ब्र. पू. श्रीगुरुणी मैया श्री शारदाबाई महासतीजी की सुशिष्यारत्ना प्रखर व्याख्याता बा. ब्र. पू. श्री वसुबाई महासतीजी आदि ठा. २४ का मुंबई आगमन हुआ । उस समय हिन्दीभाषी धर्म-प्रेमीयों से बातचीत होने पर उनकी इच्छा सन्मुख आई कि (पू. शारदाबाई महासतीजी के ग्रन्थो की हिन्दीभाषी क्षेत्रों में बड़ी माँग है, परन्तु अब तक मात्र 'शारदा शिरोमणि' और 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि', 'शारदा रत्न' हिन्दी में प्रकाशित हुई है । अत: यदि उनकी नई पुस्तक **'शारदा ज्योत'** हिन्दी में अनुवादित करवा कर प्रकाशित करने के योजना बनाई जाये तो असंख्य हिन्दीभाषी को उनकी अमूल्य वाणी का लाभ मिल सकता है । ज्ञानप्रचार कि इस योजना को पू. महासतीजी के समक्ष रखते ही यह काम श्री मांगीलालजी नंगावत और नरेन्द्रभाई साड़ीवाला ने यह कार्य करने कि तैयारी बताई क्योंकि इससे पहले मांगीलालभाई और नानाभाई ने 'सफल सुकानी' शारदा प्रवचन संग्रह का प्रकाशक बन कर अनुभव लिया हुआ था । उनके साथ रोशनलालजी कोठारी, नरेन्द्रभाई साड़ीवाला व बाबुलालजी सिंघवी ने भी अपना पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया । इन पाँचो भाईओं ने एक समिति का गठन किया और 'शारदा प्रवचन संग्रह समिति' नाम रखा और काम बराबर तेजी से होने लगा ।

हम आपको यह विदित करना चाहते है कि हमारा 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' का जो अनुभव था उस आधार पर उस वक्त कि जो भूले हुई उसको ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक के प्रकाशन में ऐसी कोई भूल न हो ऐसी कोशिश कि फिर भी मानव मात्र भूल के पात्र है । भूल होना स्वाभाविक है उसके लिए क्षमा चाहते है ।

हमे आनंद तो इस बात का है कि अगला पुस्तक 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' शारदा रत्न जन जन तक पहुँचाया, साधु-साध्वीओं व छोटे गाँवों के उपाश्रय, साधनाभवन, स्वाध्यायी भाईओं को विना शुल्क वितरण किया । आज काश्मीर से कन्याकुमारी तक की माँग है । हररोज़ पत्र आया करते है मगर हम उन सबकी माँग पूरी नहीं कर पा रहे है क्योंकि 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' ६००० (छ हजार) प्रत छपवाई थी, शारदा रत्न ३००० प्रत भी छपवाई जो पूरी हो गई, उसका कारण पुस्तक की कीमत हमने खरीद कीमत से सिर्फ २०

स्वकथ्य

परम श्रद्धेय, ब्रा. ब्र. शासन रत्ना, पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी, जिन शासन का अनमोल, उज्ज्वल रत्न हैं । 'शारदा ज्योत' की जगमगाहट भव्य जीवों के राह को प्रकाशित कर रही है । आज 'शारदा ज्योत' को हिन्दी भाविकों तक पहुँचाने का सुंदर लाभ देकर पूज्यश्री ने मेरे पुरुषार्थ में भी एक किरण की उजास भर दी हैं ।

पूज्यश्री के प्रवचनों में जगत और जीव के अत्यन्त गूढ़ रहस्यों को सरस, सरल शैली में इस प्रकार बोधगम्य बनाया गया है कि जैनदर्शन के सूक्ष्मतम विश्लेषण से सहज परिचय हो जाता है । यह प्रवचन-संग्रह पूज्यश्री के संवत् २०३० के माटुंगा चातुर्मास का दस्तावेज है । आज सन् २००३ में इन व्याख्यानों का में आलोड़न, घुमड़न और मंथन करने के साथ, सांसारिक कसौटियों से सफलतापूर्वक निकलने का विशेष अवसर मुझे प्राप्त हुआ । वर्ष के प्रारम्भ से ही पारिवारिक जीवन में अचानक आये तूफान ने झकझोर दिया था । पति की अस्वस्थता, कार्य-क्षेत्र में बढ़ती समस्या और हरकदम पर अवरोध ने संत्रस्त और कुंठित कर दिया था । इन सब आपत्तियों से उबारने और एक नया आत्म-विश्वास जगाने में 'शारदा ज्योत' ने अद्भुत भूमिका निबाही है ।

अवश्य ही कार्य में विलम्ब हुआ, जिसमें मेरा प्रमाद कारणीभूत रहा । परन्तु इस अनुवाद में लगे रहकर अपने शुभ कर्मो का विश्वास हुआ और अन्तराय तोड़ने का पुरुपार्थ प्रबल हुआ । इन व्याख्यानों की मुझ पर महती कृपा रही कि संकट की घड़ियों में धैर्य रखने और अपने कर्मोदय को स्वीकार करने की भावना बनी रही । जीवन की अस्थिरता में हर क्षण को सार्थक करने की इच्छा बलवती हुई । श्रद्धेया श्री वसुबाई महासतीजी, पूज्यश्री साधनाबाई महासतीजी आदि ठाणाओं की कृपा दृष्टि ने सदैव मुझमें शुभ भावना जगायी है तथा पुरुपार्थ के लिए प्रेरित किया है ।

जैनदर्शन के प्रमुख तत्त्वों और सिद्धान्तों की सही समझ ने सम्यक् दृष्टि, समभाव और कषायों की मंदता की प्राप्ति की ललक में वृद्धि की है। लगातार आठ महीनों से इनका सत्संग तरह-तरह से जीवन में नियंत्रण, विकास और सद्‌गति की चाह जगाता रहा है। आत्म-निरीक्षण करते रहने, सजगता और सावधानी बनाये रखने का अवसर मिला, जिसने अपनी भूलों, गलतियों और अपराधों का नजारा करवाया तथा उनके लिए प्रायश्चित, त्याग-नियम आदि की ओर प्रेरित किया।

सद्‌गुरु की अक्षर-देह ने मेरे जीवन में विशेष परिवर्तन सर्जित कर दिया है तो इन सद्‌गुरुओं का साक्षात् सत्संग हमें क्या नहीं दिलवा सकता? संत-गुरुदेवों के बारे में कितना भी कहें, कम हैं। कोई भला उनके गुण पूर्णतः कह सकता है? बस, संतों की महान और त्यागी आत्मा का वरद हस्त सदैव मुझ पर रहे! जगत के नश्वर बंधन से मुक्त होकर, आत्मा के अनंत सुख की लहरों की साक्षी बनूँ - यही हार्दिक कामना है।

अनुवाद में यदि कोई स्खलन नजर आये तो, मेरी भूल क्षमा करें। 'शारदा ज्योत' का आलोक हर पाठक के हृदय में मानवीय गुणों की स्मृति जगाये, धर्म की सही राह दिखाये तथा कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करे। यही इसकी सफलता और मेरे छोटे से कार्य की सार्थकता है। प्रकाशन से संबंधित सभी महानुभावों का आभार।

- डो. श्रीमती नीरा कांतिलाल नाहटा
९/११, वर्मा नगर,
अंधेरी पूर्व, मुंबई-४०००६९
दूरभाष - २६८३०६४६

॥ श्री रत्न शारदा गुरवे नमः ॥

'शारदा ज्योत'

पुस्तकोंके अग्रीम ग्राहकोंके ना

२५० सेट - शा. मांगीलाल उदेरामजी नंगावत - सु

२०० सेट - शा. धरमचंद चंदनमल देसरीया - दे

१०० सेट - नानालाल मांगीलाल कोठारी

१०० सेट - सुवालाल जीवराज बोल्या

२५ सेट - श्री स्थानकवासी जैन संघ ह. सज्जनलाल

उत्कृष्ट वैरागी बालकुमारी शारदाबेन (उम्र वर्ष : १६)

जिन्होंने मात्र सोलह वर्ष की नाजुक वय में संयम लेकर रत्नयत्र की रोशनी झलका दी, वीरवाणी का शेष देशोदेश में गुँजित कर दी, शासन की शान बढायी हैं । ऐसे पुस्तक प्रवचन कर्ता, प्रवचन प्रभाविका, शासनदीपिका महान विदुषी बा.ब्र. पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी के चरण कमल में हम सबका कोटि-कोटि वंदन

॥ श्री रत्न शारदा गुरवे नमः ॥

'शारदा ज्योत'

पुस्तकोंके अग्रीम ग्राहकोके नाम

२५० सेट - शा. मांगीलाल उदेरामजी नंगावत - सुरत
२०० सेट - शा. धरमचंद चंदनमल देरासरीया - देवगढ मदारीया (राज.)
१०० सेट - नानालाल मांगीलाल कोठारी
१०० सेट - सुवालाल जीवराज वोल्या
२५ सेट - श्री स्थानकवासी जैन संघ ह. सज्जनलाल गोपीलाल - नडीयाद

व्याख्यान वाचस्पति बालब्रह्मचारी विदुषी

'पूज्य शारदाबाई महासतीजी की जीवन रेखा'

'प्रेरणादायी वैराग्यमय जीवन'

सृष्टि की सुन्दर फूलवारी में अनेक पुष्प खिलते हैं और मुर्झा जाते हैं, लेकिन पुष्प की विशेषता और महत्ता इसीमें होती है कि वह अपने सौरभ से दूर-दूर तक सुगन्ध फैलाता है तथा लोगों को ताजगी और प्रफुल्लता से भर देता है। संसार में अनेक जीव जन्म लेते हैं, लेकिन उसीका जीवन सार्थक होता है, जिसका आकर्षक व्यक्तित्व सदैव दूसरों के जीवन को नयी और सही राह दिखाता है । जो सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार जैसे उच्चत्तम संस्कारों का खजाना जगत के समक्षु रखते हुए मुमुक्षु जीवों को यह विरासत सौंपने के लिए प्रचण्ड़ पुरुषार्थ करते हैं, प्रमाद की गाढ़ी निद्रा से जागृत करके कर्तव्य की राह पर आगे बढ़ने का मार्गदर्शन देते हैं और जीवन जीने की कला का अपूर्व बोध प्रदान करते हैं । जो अपने जीवन को उज्ज्वल बनाने के साथ दूसरों का जीवन भी उज्ज्वल करते हैं - ऐसे शासन रत्नों में जैनशासन की साध्वी के रूप में, जिनशासन का डंका देश-विदेश में जिन्होंने गूँजाया, वे गौरववंत गुजरात की भूमि में जन्मी, प्रखर व्याख्याता, अप्रतिम उदारता की मूर्ति, क्षमा, तप, त्याग और संयम मार्ग की दृढ़ उपासिका, आर्जवता तथा मार्दवता से मुमुक्षों का मन मोह लेने वाली बाल ब्रह्मचारी विदुषी पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी हैं ।

"सुमनोहर भूमि साणंद की, गूँजती ध्वनि जहाँ सदा आनन्द की,
मस्ती मनाने निजानंद की, जन्मी विरल विभूति शारदा गुरुणी ।"

पूज्य शारदाबाई महासतीजी का जन्म अहमदाबाद के नजदीक साणंद शहर में संवत १९८१ की मार्गशीर्ष कृष्ण नवमी, तदनुसार मंगलवार दिनांक : १-१-१९२४ की मध्यरात्रि के पश्चात् अढ़ाई बजे हुआ था । धन्य है वह भूमि ! किसे ज्ञात था कि साणंद सहर में खिला यह पुष्प, अपने सद्‌गुणों की सौरभ जगत के कोने-कोने तक बिखरा कर, आत्मा का अपूर्व आनन्द प्राप्त करेगा। शासन प्रेमी, धर्मानुरागी पिता वाडीभाई और सद्‌गुणों से सुशोभित रत्नकुक्षि माता शकरीबहन भी धन्यवाद के पात्र हैं कि जिन्होंने जिनशासन को उज्ज्वल करने वाली, संप्रदाय की शान बढ़ानेवाली शारदाबहन के जीवन में सुंदर संस्कारों के ऐसा बीज बोए कि आज वह बीज विशाल वटवृक्ष के रूप में फल-फूल कर चारों दिशा में अपनी महक फैला रहा है । सचमुच ही, जब शारदाबहन का जन्म हुआ तब किसने सोचा था कि यह नन्हीं बालिका भविष्य में जैनशासन में धर्म की धुरी ग्रहण करके माता-पिता का नाम दुनिया में रोशन करेगी ! गौरववंती माता शकरीबहन ने पाँच पुत्रियों और दो पुत्रों को जन्म दिया । जैनशासन की शान बढ़ाने वाली, प्रव्रज्या का परिमल प्रसारित करने वाली, रत्नत्रयी की रोशनी फैलाने वाली महान विदुषी बा. ब्र. पूज्य शारदाबाई महासतीजी के तेजस्वी जीवन की यहाँ संक्षिप्त झाँकी प्रस्तुत करने की कोशिश है ।

जिनका जीवन शक्कर जैसा मधुर तथा गुणरूपी पुष्पों की सुवास से महकता हुआ था, ऐसे माता-पिता ने अपनी लाड़ली पुत्री शारदाबहन को बाल्यावस्था में पहुँचते ही शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से पाठशाला भेजा । साथ ही धार्मिक ज्ञान अर्जित करने के लिए जैन-शाला में भी भेजते रहे । संस्कारी माता-पिता के सुसंस्कारों के सिंचन तथा पूर्व के संस्कारो की किरणों का प्रकाश पुरुपार्थ द्वारा फैलता गया । यह प्रकाश उनके अंतर में ऐसा आलोक बन कर बिखरा कि बाल्यावस्था में स्कूल में पढ़ते हुए, सखियों के साथ क्रीड़ा करते हुए, गरबा गाते हुए भी उनका चित्त कहीं रमता नहीं था । उस समय भला किसे यह कल्पना तक न थी कि इस संसार से विरक्त बालिका के हृदय - समुद्र में आध्यात्मिक ज्ञान का खजाना भरा है । वे भविष्य में अपने जीवन के हर सुनहरे क्षण को आत्म-साधना की मस्ती में, प्रवचन-प्रभावना में, जैनशासन की बेजोड़ सेवा करने में सदुपयोग करने वाली हैं और अपनी उत्कृष्ट प्रज्ञा की तेजस्विता से जैन तथा जैनेतर समाज को दान, दया, शील, तप, अहिंसा, सत्य, नीति, सदाचार और सद्गुणों का पाठ पढ़ाकर, श्रेष्ठतम जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करने वाली है ।

बाल्यावस्था में ही वैराग्यमूलक विचारधारा : शारदाबहन जैन-पाठशाला में सीखते हुए जब महान वीर पुरुषों की तथा चंदनबाला, राजेमती, मृगावती, दमयंती आदि महान सतियों की कथा सुनती तो उनका मन किसी अगम्य प्रदेश में खो जाता और विचार करने लगती कि 'क्या हम भी इन सतियों जैसा जीवन नहीं जी सकते ?' इसी विचार को अपनी सखियों के सम्मुख रखते हुए वे कहती, "सखियों ! यह संसार दु:ख का दावानल है और संयम सुख का सागर है । चलो, हम दीक्षा ले लें ।" उनकी इस बात से हम कल्पना कर सकते हैं कि जिसके विचार इस नन्हीं उम्र में इतने उत्तम हो उसका भावी जीवन कितना उज्ज्वल बनेगा ? शारदाबहन की विचारधारा वैराग्य से भरपूर तो थी ही, उनकी वैराग्य ज्योति को और अधिक उज्ज्वल बनाने और गहराने वाला एक प्रसंग सामने आया । उनकी बड़ी बहन विमलाबहन का प्रसूति के पश्चात्, अत्यन्त छोटी उम्र में देहान्त हो गया। इस घटना ने बालकुमारी शारदाबहन पर जीवन की क्षणिकता और संसार की असारता की छाप गहरी कर दी । उनके अंतर में हलचल मच गई कि क्या जीवन इतना क्षणिक है ? ऐसे क्षणिक जीवन में नश्वर का मोह छोड़ अविनाशी की आराधना करने के लिए प्रव्रज्या के पंथ पर प्रयाण करना ही श्रेयष्कर है, हितकारी है । इस प्रसंग ने शारदाबहन के हृदय में संयमी जीवन का आनन्द लूटने की मस्ती पैदा की और वैराग्य दृढ़ होता गया।

शारदाबहन के वैराग्यपूर्ण विचार, वाणी और व्यवहार से माता-पिता को आभास होने लगा कि उनकी प्यारी, लाड़ली पुत्री संसार को सुलगता दावानल मान कर, आत्मिक आनन्द की अनुभूति करने महावीर मेडिकल कोलेज में दाखिल होकर पाँच महाव्रत रूपी दिव्य अलंकारों से विभूषित होने के सुनहरे सपनों में खो रही है ।

रत्न समान रत्न गुरुदेव का समागम : जो आत्मा आध्यात्मिक भाव में रमण करती रहती है और उच्च भावनाओं का सेवन करती रहती है, उसकी भावना को साकार करने के लिए कोई न कोई सहायक मिल ही जाता है । इसीके अनुसार शारदाबहन के दृढ़ वैराग्य को चुम्बक से आकर्षित होकर खंभात संप्रदाय के गच्छाधिपति कोहिनूर रत्न के समान तेजस्वी, अध्यात्मयोगी, महायशस्वी बाल ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब का साणंद की पवित्र भूमि में पुनित पदार्पण हुआ । उनका वैराग्य और दृढ़ बना । गुरुदेव ने कुमारी शारदाबहन से कहा, "बहन ! तुम्हारी संयम की भावना अति उत्तम और श्रेष्ठ है; परन्तु क्या तुम्हें पता है कि आत्मकल्याण की राह बड़ी कठिन है । इस किशोर वय में माता-पिता की शीतल छाया और संसार का रंग-राग छोड़ कर कष्टों और कंटकों से भरपूर संयम मार्ग को स्वीकारना कोई सामान्य या आसान काम नहीं है । इस संयम मार्ग के संकटों का तुम सहर्ष सामना कर पाओगी ? क्या तुम्हारे माता-पिता तुम्हें आज्ञा प्रदान करेंगे ?" शारदाबहन ने उत्तर दिया, "गुरुदेव ! मैं पूर्ण रूप से तैयार हूँ । इस विषम संसार में, जहाँ छः काय के जीवों की हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा हो, जहाँ राग-द्वेष की होली सतत जलती हो, जहाँ पुण्य बेच कर पाप की कमायी होती हो, ऐसा संसार रहने योग्य है क्या ? इसलिए ऐसा संसार का त्याग कर आत्म-प्रकाश प्राप्त करने के लिए संयम अंगीकार करने की मेरी उत्कृष्ट भावना है ।" देखिए, उम्र छोटी होने पर भी उनका उत्तर वैराग्य की कैसी अद्भुत छटा फैला रहा है !

गुरुदेव की दृष्टि में शारदाबहन का उज्ज्वल भविष्य : बाल्यकाल के प्रांगण में क्रीड़ा करती बालिका को संयम पंथ पर प्रयाण करने की कितनी तीव्र उत्कंठा है ! उनका अंतर संयमी जीवन का आनन्द पाने के लिए लालायित हो रहा था । इसी कारण अब संसार में व्यतीत होते क्षण उन्हें युगों जैसे महसूस होने लगे । पूज्य गुरुदेव को उनकी दृढ़ भावना से यह निश्चय होने लगा कि 'यह कन्यारत्न दीक्षा लेकर जैनशासन को उज्ज्वल बनायेगी, संप्रदाय की शान बढ़ायेगी और भविष्य में खंभात संप्रदाय में जब कठिन समय आयेगा तब यही संप्रदाय की नैया पार लगायेंगी तथा शासन को रोशन करेगी ।' उस चातुर्मास में वैरागी शारदाबहन ने पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में अल्पकाल में ही 'दशवैकालिक सूत्र', 'उत्तराध्ययन सूत्र' तथा 'थोकड़े' कंठस्थ कर लिए । उन्होंने तभी, मात्र तेरह वर्ष की उम्र में कभी ट्रेन में सफर न करने तथा बस से अहमदाबाद से आगे न जाने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली । ये बातें उनके उच्च कोटि के वैराग्य को सूचित करती हैं ।

वैराग्य की कसौटी में शारदाबहन की दृढ़ता : शारदाबहन के माता-पिता, भाई, मामा आदि सगे-सम्बन्धियों ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की, बहुत डराया-धमकाया, परन्तु शारदाबहन अपने निश्चय से तिल-मात्र भी विचलित न हुई । माता-पिता बहुत दुःखी हुए और उन्होंने कहा कि "हम अन्न-जल का त्याग करेंगे ।" परन्तु जिसके रग-रग में वैराग्य का स्रोत बह रहा हो, जिसके चित्त को

चारित्र की चटक लगी हो और संसार रूपी ज्वालामुखी से सुरक्षित बचने के लिए जिसने मेरुपर्वत जैसी अड़िग और अड़ोल आस्था और श्रद्धा को धारण कर रखा हो, वह क्या वैराग्य भाव से जरा भी चलित होगी भला ? विविध प्रकार की कसौटियों के पश्चात् भी उनकी भावना में अड़िग निष्कंपन देख कर माता-पिता ने कहा कि "अभी इस सोलह वर्ष की अवस्था में तो नहीं पर इक्कीस वर्ष की उम्र में तुम्हें दीक्षा लेने की आज्ञा देंगे ।" परन्तु शारदाबहन तो उसी समय दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय कर चुकी थी । अतः उन्होंने पूछा कि "सत्रह वर्ष की विमलाबहन की मृत्यु को कोई रोक न सका तो मेरी इस जिंदगी का क्या भरोसा ?" अंत में शारदाबहन की विजय हुई और माता-पिता ने राजी-खुशी से दीक्षा के लिए सम्मति प्रदान की ।

भाग्यवान शारदाबहन भागवती दीक्षा के पंथ पर : संवत १९९६ वैशाख शुक्ल षष्ठी, तदनुसार दिनांक १३-५-१९४०, सोमवार को साणंद में अत्यन्त भव्यता से शारदाबहन का दीक्षा महोत्सव सम्पन्न हुआ । खंभात संप्रदाय में, साणंद ग्राम से, मन्दिरमार्गी या स्थानकमार्गी या स्थानकवासी समाज से, बाल कुमारी के रूप में सर्वप्रथम दीक्षा शारदाबहन की हुई । अतएव समस्त ग्राम हर्ष की हिलोर में मग्न हो रहा था । दीक्षाविधि पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब के मुखारविन्द द्वारा सम्पन्न हुई । गुरुणी पूज्य पार्वतीबाई महासतीजी की शिष्या बनीं । इनके साथ ही साणंद की एक अन्य बहन जीवीबहन भी दीक्षित हुई थी । जीवीबहन का नाम पूज्य जसुबाई महासतीजी तथा शारदाबहन का नाम पूज्य शारदाबाई महासतीजी रखा गया । इस प्रकार वैरागी विजेता बनीं ।

उनके पूज्य पिता श्री वाडीलालभाई और मातुश्री शकरीबहन, भाई श्री नटवरभाई तथा प्राणलालभाई, भाभी अ. सौ. नारंगीबहन, अ. सौ. इन्दिराबहन, बहनें अ. सौ. गंगाबहन, अ. सौ. शान्ताबहन, अ. सौ. हसुमतीबहन सभी धर्मप्रेमी तथा सुसंस्कारी हैं । साणंद में उनका कपड़े का व्यापार है । जिस परिवार से ऐसा अनमोल रत्नशासन को प्राप्त हुआ हो उस परिवार के सदस्यों का धर्म, दान, दया, अनुकंपा आदि से ओतप्रोत होना स्वाभाविक है ।

गुरु चरण व शरण में समर्पणता : इस विशाल संसारसागर में जीवननैया के कुशल खेवैया मात्र गुरुदेव ही है । पूज्य शारदाबाई महासतीजी ने इसी तथ्य के अनुरूप अपनी जीवन नैया को पूज्य पार्वतीबाई महासतीजी की शरण में सर्वदा के लिए तैरता रख दिया तथा अपना जीवन उनकी आज्ञा में अर्पित कर दिया । पूज्य गुरुदेव तथा पूज्य गुरुणीदेव से संयमी जीवन की सभी कलाएँ सीखीं । अल्पायु में दीक्षा लेकर भी पूज्य गुरुदेव तथा पूज्य गुरुणीदेव की आज्ञा में ऐसे समर्पित हो गयीं कि अपने जीवन में कभी भी [illegible] का उल्लंघन तो क्या किसी तरह की कोई दलील या अपील तक नहीं [illegible]
छत्रछाया में पूज्य महासतीजी का धार्मिक अभ्यास [illegible]
और सुन्दर आत्मज्ञान प्राप्त किया । शास्त्रों [illegible]
[illegible] । अपने ज्ञान का लाभ दूसरों को

में ही प्रतिभाशाली और प्रखर व्याख्याता तथा विदुषी के रूप में पूज्य महासतीजी की ख्याति चारों ओर फैल गयी ।

सम्मोहनकारी वीरवाणी की वीणा बजाने की अनोखी शक्ति : पूज्य महासतीजी के व्याख्यान में मात्र विद्वत्ता नहीं वरन आत्मा की चैतन्य विशुद्धि का स्वर उनके अंतर की गहराई से उभरता था । धर्म के तत्त्व का शब्दार्थ, भावार्थ तथा गूढ़ार्थ ऐसी गम्भीर और प्रभावक शैली में विविध न्याय, दृष्टांत द्वारा समझाती कि श्रोतावृंद उसमें तन्मय होकर अपूर्व शांति से शारदा सुधा का रसपान करते । उनकी वाणी में आत्मा के स्वर गूँजते थे तथा उस ध्वनि ने अनेक जीवों को प्रतिबोध प्राप्त करवाया है । सुषुप्त आत्माओं को झिंझोड़ कर संयम मार्ग की ओर प्रेरित किया है । पूज्य महासतीजी के प्रवचनों की पुस्तक ने तो लोगों पर ऐसा जादू किया है कि पुस्तक पढ़ कर जैन-जैनेतर अनेक (हजार से अधिक) भाई-बहनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया है । अनेकों ने व्यसनों का त्याग किया । नास्तिक आस्तिक बने, पापी पुनित बने और भोगी योगी बने ऐसे तो अनेक उदाहरण हैं। ज्यादा क्या लिखूँ ? ये पुस्तकें मीसा के तहत, कारावास भोगते जैन भाई तक पहुँची तो इसे पढ़ कर वे आर्तध्यान छोड़, धर्मध्यान में जुड़ने लगे, और कर्म का दर्शन (फिलोसोफी) समजने लगे। पूज्य महासतीजी की अंतर वाणी का नाद उनके दिल तक पहुँचने पर जेल धर्मस्थानक जैसा बन गया और वहाँ रहने वाले कैदी भाईयों ने तप, त्याग तथा धर्माराधना की मंगल शुरूआत की । जेल मे मुक्त होने पर पूज्य महासतीजी के पास आकर रो पड़े और अनेकों व्रत, नियम धारण किये। संक्षेप में इस उदाहरण से पूज्य महासतीजी के प्रवचनों की पुस्तकों का प्रभाव स्पष्ट होता है, जिसने मानवों के जीवन को परिवर्तित कर दिया ।

गुण रूपी गुलाब से महकता जीवन बाग : पूज्य महासतीजी परम विदुषी ही नहीं अन्य अनेक अमूल्य गुणों से सजी हुई थीं । उनके असीम गुणों का वर्णन करना हमारी शक्ति से बाहर की बात है । फिर भी गुरुभक्ति सरलता, निराभिमानता, नम्रता, लघुता, अपूर्व क्षमा, स्नेह गुणानुराग तथा करुणा आदि गुण तो उनके जीवन में रचे-बसे थे । अपने इन गुणों के प्रभाव से उन्होंने अनेक जीवों को धर्म-मार्ग की ओर मोड़ा । उनकी आत्मा में निरन्तर यही भाव रहता कि सर्व जीव शासन के स्नेही कैसे बने, वीर की संतना वीर के मार्ग पर कैसे चलें ? **"दुःख में अजब समाधि साधी, सुख में रहे समभावी, तेजस्वी, यशस्वी गुरुणीदेव भी आत्मभावी ।"** अस्वस्थ होने पर भी प्रवचन की प्रभावना करने में वे कभी न चूकती थी । पूज्य महासतीजी ने सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, गुजरात आदि क्षेत्रों में विहार करके, अमूल्य लाभ प्रदान किया है, परन्तु उनकी पुस्तकें तो देश, विदेश तक पहुँची हैं ।

पूज्य महासतीजी के प्रतिबोध से ३६ (छत्तीस) बहनों ने वैराग्य प्राप्त करके, उनसे दीक्षा अंगीकार की और जैनशासन की शोभा में अभिवृद्धि कर रही है । पूज्य महासतीजी एक जैन साध्वी के रूप में रह कर पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म.सा.

तथा पूज्य गुरुदेव श्री गुलाबचन्दजी महाराज साहब के काल-धर्म प्राप्त करने के पश्चात् खंभात संप्रदाय की नैया कुशल खेवैया बनी, जो जिनशासन में विरल है। इतना ही नहीं वरन खंभात संघ के संघपति श्री कांतिभाई की दीक्षा भी पूज्य महासतीजी के पुनित हस्तों द्वारा हुई तथा दीक्षा मंत्र भी उन्होंने ही दिया। आज जिनकी ख्याति महान वैरागी पूज्य कांति ऋषिजी म.सा. के रूप में है। पूज्य कांति ऋषिजी म.सा. ठाणा-१३ में से प्रथम चार संतों को दीक्षा की प्रेरणा प्रदान करने का श्रेय भी पूज्य महासतीजी की अद्भुत वाणी को है।

पूज्य महासतीजी की वाणी ने बम्बई की जनता को इतना आकर्षित कर लिया था कि जब वे अन्य स्थानों पर होतीं तब भी बम्बई की जनता उनके चातुर्मास के लिए लालायित रहती। कांदावाड़ी आदि अनेक संघ लगातार अपनी विनती लेकर उनकी सेवा में उपस्थित होते रहते थे। अतः कांदावाडी श्रीसंघ की आग्रह भरी विनती को मान देकर पूज्य महासतीजी तीसरी बार बम्बई में चातुर्मास करना स्वीकार किया। इसीसे ज्ञात हो जाता है कि बम्बई की जनता में उन्होंने कैसे स्नेह और आकर्षण की वर्षा की।

केसरवाड़ी में केसर की क्यारी के समान महकता चरम चातुर्मास : सं. २०४१ में कांदावाड़ी श्रीसंघ की अत्यन्त आग्रहभरी विनती का मान रख कर पूज्य महासतीजी कांदावाड़ी पधारें। पूज्य महासतीजी के वैराग्य भरे, आत्मस्पर्शी, ओजस्वी और प्रभावशाली प्रवचनों ने जनता के हृदय में ऐसा अनोखा आकर्षण उत्पन्न किया कि चातुर्मास दरमियान व्याख्यान कक्ष हंमेशा जिज्ञासुओं से भरी रहती और उनकी दिव्य, तेजस्वी वाणी की प्रेरणा से तप, त्याग और व्रत-नियमों का एक धारा - प्रवाह बहता रहा। कांदावाड़ी श्रीसंघ में सोलह मासखमण और दो उपवास के सिद्धितप हुए। छ उपवास से लेकर इकतीस (३१) उपवास तक की तपश्चर्या करने वालों की संख्या २०० को पार कर गई। इसी प्रकार उनके हर चातुर्मास में दान, शील, तप और भावना का ज्वार उठता। इस सब का श्रेय पूज्य महासतीजी को ही है। उनका प्रत्येक चातुर्मास ऐसा रहा है जो श्रीसंघ के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित होने की योग्यता रखता है। परन्तु कांदावाड़ी का चातुर्मास हंमेशा के लिए एक यादगार और चरम चातुर्मास बन गया। इस चातुर्मास को कांदावाड़ी संघ कभी विस्मृत नहीं कर सकता।

विशेष आनन्द का विषय तो यह है कि आज तक पूज्य महासतीजी के व्याख्यानों की पुस्तकें दस-दस हज़ार की संख्या में प्रकाशित हुईं, परन्तु आज एक भी प्रत उपलब्ध नहीं है। मात्र यही बात इस बात को प्रमाणित कर देता है कि पूज्य महासतीजी के व्याख्यानों का आकर्षण कैसा है ? पूज्य महासतीजी के सं. २०४१ के कांदावाड़ी चातुर्मास के व्याख्यान 'शारदा शिरोमणि' नाम से १२००० (बारह हज़ार) प्रतियाँ प्रकाशित हुईं। सौभाग्य हमारा कि बम्बई में 'शारदा शिरोमणि' का भव्य उद्घाटन पूज्य महासतीजी के सान्निध्य में ता. ६-४-८६ रविवार को कांदावाड़ी में हुआ। एक महीने में समस्त प्रतियाँ बिक गई - यह है पूज्य महासतीजी की वाणी का प्रभाव !

मलाड़ की ओर प्रयाण : 'शारदा शिरोमणि' के उद्घाटन के पश्चात् आयंबिल की ओली तथा वर्षीतप के पारणा के प्रसंग पर मलाड़ में पदार्पण किया । तब किसे मालूम था कि पूज्य महासतीजी का यही अंतिम प्रयाण है ! पूज्य महासतीजी की रग-रग में शासन के प्रति खुमारी, शासन के प्रति अड़िग श्रद्धा तथा शासन के लिए कुछ कर गुजरने की अदम्य इच्छा और उत्साह था । **"शासन के लिए मरना मंजूर लेकिन शासन के लिए कुछ करके जाना ।"** यही उनका जीवनमंत्र था, इसीके लिए उनका रोम-रोम उत्साहित हो उठता था । ओली और वर्षीतप के निमित्त से उनकी जोरदार प्रवचन प्रभावना ने अपना विशिष्ट रूप दिखाया । अनेक आयंबिल तथा नये वर्षीतप प्रारम्भ किये गये। वर्षीतप का पारणा भी बड़ी धूमधाम से हुआ । अंत में वैशाख षष्ठी के दिन, उनकी दीक्षा जयंती का दिवस था, जब वे सुवर्ण संयम साधना के ४६ वर्ष पूर्ण कर ४७ वें वर्ष में प्रवेश करेंगी । मलाड़ संघ इस सुनहरे अवसर का लाभ प्राप्त कर बड़ा उत्साह और अनोखे आनन्द में झूम उठा था । ता. १५-५-८६ बुधवार को दीक्षा जयंती के दिन उन्होंने एक घंटा प्रवचन दिया। व्याख्यान के पश्चात् १३५ जीवों को अभयदान, ५१ अखण्ड अट्ठम (तेला) के प्रत्याख्यान आदि विभिन्न व्रत-प्रत्याख्यान करवाये । दोपहर में १०८ लोगस्स का कायोत्सर्ग, नवकार मंत्र का जाप आदि आराधना की तथा करवाई । पूर्ण दिवस आराधना के कार्यक्रम चले । अंत में संध्या समय ५-१० मिनट पर अत्यन्त उत्साह से मांगलिक का पाठ सबको सुनाया । दीक्षा जयंती के उपलक्ष्य में अनेक श्रावक भक्तों का आना-जाना बना हुआ था । लगभग सभी को स्वयंही मांगलिक सुनाते थे । थोड़ी देर बाद ही छाती में दर्द उठा । उस समय सभी शिष्या-वृंद उनके पास थे, कितने ही भाई-बहनों ने पौषध किया था, वे तथा अनेक दर्शनार्थी भी वहाँ उपस्थित थे । सबकी उपस्थिति में उन्होंने स्वयं जावजीव का संथारा ग्रहण किया । प्रसन्न चित्त से आलोचना की, सबसे खमत-खामना किया तथा अरिहंत, सिद्ध, ऋषभदेव, भगवान महावीर का शरण स्वीकार किया । ४६ वर्ष के संयमपर्याय में जाने-अनजाने लगे दोषों की शुद्धि के लिए स्वयं छः महीने दीक्षा छेद का प्रायश्चित्त किया । तीन बार 'वोसरामि...' शब्द का उच्चारण किया । अंत में "जीव जा रहा है, नवकार बोलो" कहा । देखने वाले तो देखते रह गये कि अंतिम समय में भी कितनी चित्त प्रसन्नता, आह्लाद-भाव, सौम्यता और शांत मुख-मुद्रा ! ऐसा देख कर विश्वास न होता था कि ये जो कह रही हैं वह सच है ! परन्तु उन्होंने तो अपना साध्य पा लिया था । आत्मा अन्तरात्मा बन कर नवकार मंत्र का स्मरण करते और कराते अपूर्व समाधिपूर्वक दुनिया को अलविदा कह कर अनन्त की यात्रा पर बढ़ गया । मृत्युंजयी बन गये । **"साणंद शहर में जन्म हुआ, मलाड़ में देह छोड़ा, दीक्षा-निर्वाण एक दिन, वैशाख सुदि छट्ठ बुधवार"** सुबह किसे कल्पना थी कि आज का दीक्षा जयंती का शुभ-दिन, संध्या होने तक पुण्यतिथि बन जायेगा !

"कल्याणकारी है आपका च्यवन, मंगलकारी है आपका जन्म,
पावनकारी है आपकी प्रव्रज्या, प्रेरणादायी है आपका निर्वाण ।"

[illegible]

क्रम	महासतीजी का नाम जन्मस्थल दीक्षास्थल	दीक्षा संवत	मास	तिथि	वार
१.	बा. ब्र. विदुषी पू. शारदाबाई महा. साणंद	१९९६	वैशाख शुक्ल	६	सोमवार
	निर्वाण-मलाड़-मुंबई	२०४२	वैशाख शुक्ल	६	बुधवार
२.	स्व. पू. सुभद्राबाई महासतीजी खंभात	२००८	चैत्र शुक्ल	१०	शुक्रवार
३.	स्व. पू. इन्दुबाई महासतीजी सुरत				
	दीक्षा-नार	२०११	अषाढ़ शुक्ल	५	गुरुवार
४.	बा. ब्र. पू. वसुबाई महासतीजी विरमगाम	२०१३	मार्गशीर्ष शुक्ल	५	शुक्रवार
५.	बा. ब्र. पू. कान्ताबाई महासतीजी	२०१३	मार्गशीर्ष शुक्ल	१०	गुरुवार
६.	स्व. पू. सद्गुणाबाई महासतीजी लखतर	२०१३	माघ शुक्ल	६	बुधवार
७.	बा. ब्र. पू. इन्दिराबाई महासतीजी सुरत	२०१४	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	बुधवार
८.	स्व. पू. शान्ताबाई महासतीजी मोडासर				
	दीक्षा-नार	२०१४	माघ वदि	७	सोमवार
९.	पू. कमलाबाई महासतीजी खंभात	२०१४	वैशाख शुक्ल	६	शुक्रवार
१०.	स्व. पू. ताराबाई महासतीजी साबरमती	२०१४	अषाढ़ शुक्ल	२	गुरुवार
	निर्वाण-माटुंगा-मुंबई	२०२३	माघ वदि	२	शनिवार
११.	बा. ब्र. पू. चंदनबाई महासतीजी लखतर	२०१७	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	गुरुवार
१२.	बा. ब्र. पू. रंजनबाई महासतीजी साबरमती				
	दीक्षा-दादर-मुंबई	२०२१	माघ शुक्ल	१३	रविवार
१३.	बा. ब्र. पू. निर्मलाबाई महासतीजी खंभात				
	दीक्षा-दादर-मुंबई	२०२१	माघ शुक्ल	१३	रविवार
१४.	बा. ब्र. पू. शोभनाबाई महासतीजी लींबड़ी				
	दीक्षा-मलाड़	२०२२	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
१५.	पू. मंदाकिनीबाई महासतीजी माटुंगा-मुंबई	२०२३	माघ शुक्ल	८	रविवार
१६.	बा. ब्र. पू. संगीताबाई महासतीजी खंभात	२०२६	वैशाख वदि	५	रविवार
१७.	बा. ब्र. पू. हर्षिदाबाई महासतीजी घाटकोपर-मुंबई				
	दीक्षा-भावनगर	२०२६	वैशाख वदि	११	रविवार
१८.	बा. ब्र. पू. साधनाबाई महासतीजी खंभात	२०२९	मार्गशीर्ष शुक्ल	२	गुरुवार
१९.	बा. ब्र. पू. भावनाबाई महासतीजी माटुंगा-मुंबई	२०२९	वैशाख शुक्ल	५	सोमवार

क्रम	महासतीजी का नाम जन्मस्थल दीक्षास्थल	दीक्षा संवत	मास	तिथि	वार
२०.	वा. ब्र. पू. प्रफुल्लाबाई महासतीजी विरमगाम दीक्षा-मलाड	२०३३	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	शुक्रवार
२१.	वा. ब्र. पू. सुजाताबाई महासतीजी दादर-मुंबई	२०३३	वैशाख शुक्ल	१३	रविवार
२२.	वा. ब्र. पू. पूर्वीपाबाई महासतीजी माटुंगा-मुंबई दीक्षा-साणंद	२०३७	फाल्गुन वदि	२	रविवार
२३.	वा. ब्र. पू. मनीषाबाई महासतीजी खंभात	२०३७	वैशाख शुक्ल	५	शुक्रवार
२४.	वा. ब्र. पू. उर्वीशाबाई महासतीजी खंभात	२०३७	वैशाख शुक्ल	५	शुक्रवार
२५.	वा. ब्र. पू. सुरेखाबाई महासतीजी मुंबई दीक्षा-अहमदाबाद	२०३८	वैशाख शुक्ल	६	गुरुवार
२६.	वा. ब्र. पू. श्वेताबाई महासतीजी विरमगाम	२०३९	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
२७.	वा. ब्र. पू. नम्रताबाई महासतीजी विरमगाम	२०३९	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
२८.	वा. ब्र. पू. विरतिबाई महासतीजी धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
२९.	वा. ब्र. पू. रक्षिताबाई महासतीजी धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
३०.	वा. ब्र. पू. हेतलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
३१.	वा. ब्र. पू. रोशनीबाई महासतीजी नार	२०४१	माघ शुक्ल	११	शुक्रवार
३२.	वा. ब्र. पू. चाँदनीबाई महासतीजी खंभात	२०४१	माघ वद	३	शुक्रवार
३३.	वा. ब्र. पू. अर्पिताबाई महासतीजी खेड़ा	२०४१	फाल्गुन शुक्ल	२	गुरुवार
३४.	वा. ब्र. पू. पूर्णिताबाई महासतीजी खेड़ा	२०४१	फाल्गुन शुक्ल	२	गुरुवार
३५.	वा. ब्र. पू. सुज्ञाबाई महासतीजी जोरावरनगर	२०४२	फाल्गुन शुक्ल	३	शुक्रवार
३६.	वा. ब्र. पू. प्रेक्षाबाई महासतीजी खंभात दीक्षा-नार	२०४३	वैशाख शुक्ल	११	शनिवार
३७.	वा. ब्र. पू. सेजलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-कांदीवली-मुंबई	२०४५	फाल्गुन शुक्ल	७	सोमवार
३८.	वा. ब्र. पू. वीजलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-कांदीवली-मुंबई	२०४५	फाल्गुन शुक्ल	७	सोमवार
३९.	वा. ब्र. पू. हर्षज्ञाबाई महासतीजी	२०४७	मागसर वदि	५	गुरुवार
४०.	वा. ब्र. पू. श्रेयाबाई महासतीजी	२०४९	महा शुक्ल	७	शनिवार
४१.	वा. ब्र. पू. श्रुतिबाई महासतीजी	२०४९	महा शुक्ल	७	शनिवार
४२.	वा. ब्र. पू. माधुरीबाई महासतीजी	२०४९	वैशाख शुक्ल	१०	शनिवार
४३.	वा. ब्र. पू. चेतनाबाई महासतीजी	२०५२	महा शुक्ल	१३	शुक्रवार
४४.	वा. ब्र. पू. समीक्षाबाई महासतीजी अहमदाबाद	२०५७	महा शुक्ल	११	रविवार
४५.	वा. ब्र. पू. शितलबाई महासतीजी खंभात दिक्षा - विलेपारला	२०५९	महा शुक्ल	५	शुक्रवार

प्रभावक प्रवचनकार महान विदुषी बा. ब्र. पू. श्री शारदाबाई महास[illegible]
का व्याख्यान संग्रह-पुस्तक प्रकाशन (गुजराती)

क्रम	नाम अधिकार	स्थल	संवत	
१.	शारदा सुधा 'भगवती सूत्र' का उदायन राजा-चपकचरित्र	माटुंगा-मुंबई	२०१९	८
२.	शारदा संजीवनी 'भगवती सूत्र' का तामलीतापस-धनचरित्र	दादा-मुंबई	२०२०	६
३.	शारदा माधुरी 'भगवती सूत्र' का गोशालक-गुणश्रीचरित्र	घाटकोपर	२०२२	६
४.	शारदा परिमल 'उत्तराध्ययन सूत्र' का १४वाँ अध्य.-छः जीव.	राजकोट	२०२६	२
५.	शारदा सौरभ 'ज्ञाताजी सूत्र' थावर्चापुत्र, महाबल-मलयाचरित्र	अहमदावाद	२०२७	६
६.	शारदा सरिता 'भगवती सूत्र' जमालिककुमार अग्निशर्मा को गुणसेन (समरादित्य केवली) चरित्र	कांदावाडी-मुं.	२०२९	५
७.	शारदा ज्योत 'ज्ञाताजी सूत्र' द्रौपदी-ऋषिदत्ता चरित्र	माटुंगा	२०३०	३
८.	शारदा सागर 'उत्तराध्ययन सूत्र' २०वाँ अध्ययन अनाथी मुनि अंजना चरित्र	वालकेश्वर	२०३१	७७,
९.	शारदा शिखर 'ज्ञाताजी सूत्र' मल्लिनाथ भगवान-प्रद्युम्नचरित्र	घाटकोपर	२०३२	१०,
१०.	शारदा दर्शन 'अंतगड सूत्र' गजसुकुमाल-पांडव चरित्र	बोरीवली	२०३३	८
११.	शारदा सुवास 'उत्तराध्ययन सूत्र' २२वाँ अध्य. नेम राजेमति, जिनसेन रामसेन चरित्र	मलाड़	२०३४	८
१२.	शारदा सिद्धि 'उत्तराध्ययन सूत्र' १३वाँ अध्य. चित्तसंभूति, भीमसेन हरिसेन चरित्र	सुरत	२०३५	८,
१३.	शारदा रत्न 'उत्तराध्ययन सूत्र' ९वाँ अध्य. नमिप्रव्रज्या, सागरदत्त चरित्र	अहमदावाद	२०३७	६
१४.	शारदा शिरोमणि 'उपासक दशांग सूत्र' आनंदश्रावक, पुण्यसागर चरित्र	कांदावाडी-मुं.	२०४१	१२,

ता. क. आश्चर्य की बात यह है कि बा. ब्र. महाउपकारी पू. गुरुणीमैयाश्री शारदाबाई महास[illegible] के देह की उपस्थिति न होने के बाद भी वह हमारे सामने हाजिर हो इस तरह हर साल पु[illegible] प्रकाशित होते रहे हैं, वह भी हजार पन्ने के ग्रंथ जैसा। यह है ज्ञान का प्रभाव।

शारदा शिरोमणि प्रथम आवृत्ति का उद्घाटन ता. ६-४-८६	कांदावाडी-मुं.	२०४२	१२,०
शारदा शिरोमणि दूसरी आवृत्ति का उद्घाटन ता. २४-५-८७	कांदावाडी-मुं.	२०४३	६०
दीवादांडी-शारदा स्मृति ग्रंथ का उद्घाटन ता. १९-६-८८	मलाड़-मुंबई	२०४५	१०,०
शारदा शिरोमणि हिन्दी अनुवाद का उद्घाटन ता. २२-१-८९	कांदावाडी-मुं.	२०४५	३०
सफल सुकानी-शारदा प्रवचन संग्रह का उद्घाटन ता. २५-३-९०	कांदावाडी-मुं.	२०४६	१०,०
द्वितीय संवत्सर पुण्यतिथि का रत्नझरूखाट तूटया तार	चींचपोकली	२०४४	४०
शारदा सितार का अथवा श्रद्धा सुमन श्रद्धांजलि गीत आदि	मुंबई		
तृतीय वार्षिक पुण्यतिथि पर रत्नप्रकाश अथवा शारदाजीवन पराग	अंधेरी वे.-मुं.	२०४५	४०
चतुर्थ वार्षिक पुण्यतिथि पर शारदाप्रेरक प्रसंगो की गुणों की गीता	कांदावाडी-मुं.	२०४६	४०

हिन्दी संस्करण

शारदा शिरोमणी - भाग-१	कांदावाडी-मुं.	२०४५	३०
सफल सुकानी शारदा प्रवचन संग्रह हिन्दी भाग १-२	सुरत	२०४९	६०
शारदा सिद्धि हिन्दी भाग १-२	सुरत	२०५८	५०
शारदा रत्न हिन्दी भाग-१-२	सुरत	२०५८	३०
शारदा ज्योत हिन्दी भाग १-२	सुरत	२०५९	३०

और अंग्रेजी में सामायिक प्रतिक्रमण पुस्तक सुरत

सफल सुकानी' शारदा प्रवचन संग्रह अंग्रेजी अनुवाद पुस्तक भाग-१,२,३ खंभात में उपलब्ध
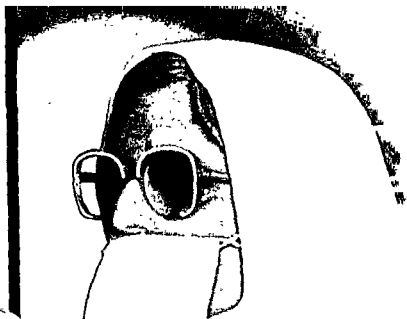
निर्वाण सं. २०४२ वैशाख शुक्ल षष्ठी
ता. १४-५-१९८६ बुधवार, मलाड, बम्बई

शारदागुरुणी सरस्वती, ज्ञान गुणों की ही है खान ।
अनेक जीव प्रबुद्ध हुए उनका अमृत सुन व्याख्यान ॥
रत्न गुरु के शुभाशीष से, जिन शासन विकसाया था ।
गौरव बढाकर नारी जाति का शासन शिरोमणि हरि पदपाया था ॥

धरेगा । राह में चलते हुए पैर में काँटा न चुभे, इस बारे में जीव कितना सावधान रहता है । ज्ञानी कहते हैं कि 'इस काँटे के चुभने से अधिक भय जीवन में कर्म रूपी काँटे के चुभने का रखो ।' द्रव्य काँटा मात्र इस भव में दुःख देगा लेकिन कर्म रूपी काँटा भवोभव में दुःख देता रहेगा । बाँधे हुए कर्म यदि इस भव में भोग कर समाप्त नहीं हो जाते तो वे दूसरे भव में भी जीव के साथ आयेंगे । इसलिए समझकर पाप से दूर रहिए ।

भगवान ने ३२ सिद्धान्त की प्ररूपणा की है । ११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल सूत्र, ४ छेद सूत्र और ३२वां आवश्यक सूत्र । कितनों को तो इन सिद्धान्तों के नाम भी मालूम नहीं होंगे । जीवात्मा को अपने पुत्र, परिवार का नाम पता रहता है । पेढ़ी में खाते के किस पृष्ठ पर किसका नाम लिखा है यह याद रहता है, लेकिन सिद्धान्त के नाम ज्ञात नहीं है । आपका सुपुत्र पेढी में बैठना शुरू कर चुका हो, पर उसे हिसाब-किताब लिखना नहीं आता हो, ग्राहकों को न पहचानता हो, तो आप उसे क्या कहेंगे ? जो दौलत साथ आने वाली नहीं है, उसे प्राप्त करने के लिए इतनी जानकारी चाहिए तो फिर परलोक तक जो जीव के साथ रहने वाली है, उसके बारे में कितनी जानकारी ज़रूरी है ? यदि आगमों से परिचित न हों, व्याख्यान में कौन-सा सिद्धान्त वाँचा जा रहा है, यह भी आप न जानते हों तो आपको क्या कहा जाये ? विचार कीजिए । सब कुछ जाना बस आत्मा को ही नहीं जाना । जीव तत्त्व और अजीव तत्त्व को नहीं जानते हैं तो फिर दया किसकी पालेंगे ?

जो जीवे न याणाइ, अजीवे वि न याणइ ।
जीवाजीवे अयाणन्तो, कहं सो नाहीं उ संजमं ॥

— दश. सू. अ-४, गा-१२

जो जीव को नहीं जानता, अजीव को नहीं जानता, वह दया किसकी पालेगा ? पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय- छः कायों में जीव हैं । पहले अन्यदर्शनी अपकाय, वनस्पतिकाय को जीव नहीं मानते थे, परन्तु अब विज्ञान ने प्रमाणित कर दिया है कि अपकाय और वनस्पतिकाय में भी जीव है । इसलिए सब मानने लगे हैं । विज्ञान ने तो अब सिद्ध किया, परन्तु भगवान तो अनंत काल से फ़रमा गये है, फ़रमाते आ रहे है, "जैसी आपकी आत्मा है वैसी ही सभी की आत्मा है ।" पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति जीव है और बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय भी जीव है । अतः हर जीव की दया पालनी चाहिए । आज मानव अपने सुख के

लिए दूसरे जीवों को हनने में हिचकता नहीं, फिर भी मानता है कि उसने कोई पाप नहीं किया। यह कैसी अज्ञानता है! इस प्रकार अज्ञानी जन ज्ञानी के वचन उलट रहे हैं। प्रभु ने सिद्धान्त में कोई ऐसी खिड़की नहीं रखी है। साधक आत्मा वृद्ध हो, रोगी हो, तपस्वी हो और गोचरी जाते हुए थक जाये तो गृहस्थ की आज्ञा लेकर उसके घर कुछ देर रुककर विश्राम करने की आज्ञा प्रभु ने दी है। परन्तु सुई की नोंक जितनी हल्की बूँद भी बरसती हो तो उस बरसात में गोचरी के लिए बाहर निकलने की छूट प्रभु ने नहीं दी है। क्योंकि बरसात में गोचरी के लिए निकलने से अपकाय के जीवों की हिंसा होती है। उसके साथ ही अन्य त्रस जीवों की भी हिंसा होती है। आप चतुर्मास दरम्यान यदि चप्पल, बूट न पहनें तो कितने ही जीवों की हिंसा से बच जाँय। आपको अपना जीव जितना प्यारा है उतनी ही अन्य जीवों के लिए भी समझिए। भगवान के संत-साधू चाहे जैसी तीव्र गर्मी हो, परन्तु पंखे के पवन की इच्छा नहीं करते और चाहे जितनी कड़कड़ती सर्दी हो पर तापने की इच्छा भी नहीं करते।

ना पंखो वींजे गरमीमां, ना ठंडीमां कदी तापे,
ना काचा जलनो स्पर्श करे, ना लीलोतरीने चांपे,
नानामां नाना जीव तणुं पण संरक्षण करनारा.... आ छे अणगार अमारा।

भगवान फ़रमाते है कि "स्वदया में परदया का भी समावेश है।" जैसे आपको दुःख अच्छा नहीं लगता वैसे ही अन्य जीवों को भी दुःख पसंद नहीं आता। चातुर्मास में बहुत जीवों की उत्पत्ति हो जाती हैं। बरसात के प्रारंभ होते ही रास्ते में केंचुए आदि अनेक जीवों की उत्पत्ति हो जाती हैं। यदि चलने आदि की क्रिया में उपयोग न रखें, ध्यान न रखें तो आप कितने दंडित हो जायेंगे। कर्म बाँधते वक्त जीव को कुछ ख्याल नहीं आता, लेकिन भोगने के समय झर-झर आँसू बहते है। इसलिए अच्छा है कि समझकर कर्म बाँधने के समय ही विचार कीजिए।

भगवान ने ३२ सिद्धान्त की प्ररूपणा की। इसमें से छट्ठा अंग 'ज्ञाताजी सूत्र' है - इसके १६वें अध्ययन में नागश्री का अधिकार वर्णित है। जीव अपना लक्ष्य चूककर, स्वभाव छोड़कर परभाव में रहते हुए मान-कषाय के अधीन बनने पर अपना कितना अहित कर लेता है। कषाय चार हैं - क्रोध, मान, माया, लोभ। 'दशवैकालिक सूत्र' में भगवान की वाणी है कि -

वमे चत्तारि दोसो उ, इच्छन्तो हियमप्पणो।

यदि आत्मा का हित चाहते हो तो चार दोषों का वमन कर दीजिए । अफीम जाहिर रूप में ज़हर है । घी को ५० से १०० बार धो डालिए तो यह खाने में ज़हर जैसा कड़वा नहीं लगता, परन्तु ज़हर बन जाता है । जैसे -

जहा किम्पाग फलाणं परिणामो न सुन्दरो ।।

किंपाक वृक्ष के फल खाने में स्वादिष्ट होते है, दिखने में सुंदर होते हैं, परन्तु उसे खाने से जीव और काया जुदा हो जाते हैं । इसी प्रकार घी भी छिपा हुआ ज़हर है । इसीके जैसे कषाय भी आत्मा का अहित करने वाले हैं, अत: इनका वमन कर देना चाहिए ।

जंबुस्वामी सुधर्मास्वामी को वंदन, नमन कर पूछते है कि "हे प्रभु ! १६वें अध्ययन में जो भाव व्यक्त हुए हैं, वे कृपा करके मुझे कहिए ।" जंबुस्वामी में कितना विनय और कैसी सरलता है ! भगवान ने 'उत्तराध्ययन सूत्र' में प्रथम अध्ययन विनय पर ही बताया है । "जब तक जीवन में नम्रता, सरलता को स्थान नहीं होता तब तक सम्यक्त्व बोधबीज की प्राप्ति का लक्षण भी नहीं होता ।" बहनें कूएँ में पानी भरने जाती हैं तो पानी लेने के लिए उन्हें नमना (झुकना) पड़ता है । यदि व्यावहारिक ज्ञान दूसरों से प्राप्त करना हो तो भी कितनी विनम्रता ज़रूरी है, फिर यह ज्ञान तो वह है जिसे आत्मा में स्थापित करना है तो उसके लिए कितनी विनय और नम्रता आवश्यक होगी ? विनय के बिना ज्ञान टिक नहीं सकता । इस विषय को उठाने का मुख्य कारण यह है कि जीवात्मा की भटकन का एक महत्त्वपूर्ण कारण मान-कषाय है ।

यहाँ ज्ञान प्रदाता और ज्ञान प्राप्त करने वाला दोनों पात्रों की जोड़ी बहुत ही उत्तम है । ज्ञान देने वाला समझपूर्वक देता हो और ग्रहण करने वाला आचरण में उतारता हो तो ज्ञान देने-लेने का आनन्द है । भगवान महावीरस्वामी के मोक्ष जाने के पश्चात् सुधर्मास्वामी ने उनकी विरासत संभाली । भगवान के सामने ही अग्निभूति, वायुभूति और व्यक्तस्वामी मोक्ष-मार्ग की ओर प्रयाण कर चुके थे । इन्द्रभूति को भगवान के मोक्ष जाने के पश्चात् केवल ज्ञान हुआ । अब केवली की श्रेणी में विराजते हुए वे यह नहीं कह सकते कि भगवान ने ऐसा फ़रमाया है क्योंकि तीर्थंकर केवली और सामान्य केवली के ज्ञान में कोई अंतर नहीं होता । तीर्थंकर केवली और सामान्य केवली में फर्क क्या है ? अरिहंत केवली बनने के तीन भव पहले तीर्थंकर नाम कर्म बाँधते हैं । उनके पुण्य में फर्क होता है । उनके ३४ अतिशय होते हैं । तीर्थंकर पद पर पहुँचकर वे जैनशासन के प्रवर्त्तक बनते है और चार तीर्थ

की स्थापना करते है। भगवान की परंपरा में उनके पीछे सुधर्मास्वामी आये। वे कैसे थे ?

चौद पूरवधार कहिए, ज्ञान चार नखाणिए,
जिन नहि पण जिन सरीखा (एवा श्री) सुधर्मास्वामी जाणिए।

जिन नहीं परन्तु जिन के समान, क्योंकि जबतक केवल ज्ञान प्राप्त न हो जाय तबतक जिन नहीं कहला सकते। जिन बनना बाकी है, परन्तु प्रभु की समानता में पहुँच रहे हैं ऐसे सुधर्मास्वामी अपने प्रिय शिष्य जंबुस्वामी से कहते है, "हे आयुष्यमान जंबु !" यह संबोधन कितना सुंदर है ! इसे सुनने मात्र से हृदय प्रसन्न हो जाता है। आयुष्य सभी को प्रिय है। इसलिए 'चिरंजीवी है, दीर्घायुषी हो' आदि आशीर्वाद लोक में प्रचलित है। एक दृष्टि से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी पुरुषार्थ का आधार आयुष्य ही है। दीर्घायुषी ही इसकी आराधना कर सकता है, इसलिए 'आयुष्मन् !' संबोधन अत्यन्त सुंदर और योग्य है। इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि गुरु के हृदय में शिष्य के प्रति कितना वात्सल्य भाव है। सुधर्मा-स्वामी अपने प्रिय शिष्य जंबुस्वामी से कहते हैं कि "प्रिय जंबु ! मैंने भगवान के मुखारविन्द से यह सुना, इसका अभिप्राय यह कि मैं जो कुछ कह रहा है वह मेरा नहीं बल्कि भगवान का कथन है।" सुधर्मास्वामी कितने उत्तम पुरुष थे ! आज तो जरा-सा ज्ञान मिल जाये, तो कहने लगेंगे कि 'मैं जो कह रहा हूँ वही सच है, मेरा मत ही सही है।' पतंग मानता है कि मैं ही ऊँचा चढ़ रहा हूँ, मुझे डोर के आधार की ज़रूरत नहीं है। परन्तु इसे ज्ञात नहीं है कि डोर के टूटते ही वह कहाँ जा गिरेगा ? डोर के आधार से ही वह ऊँचा चढ़ सकता है। सुधर्मास्वामी कहते हैं, "मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह भगवान के द्वारा प्ररूपित सिद्धान्त के आधार पर कह रहा हूँ।" जिसकी जैसी दृष्टि होती है उसे वैसा ही दिखाई देता है। दरिया किनारे खड़ा हुआ मछुआरा मछलियाँ देखता है, खलासी नमक देखता है और जौहरी रत्न देखता है, वैसे ही हलुकर्मी जीव तत्त्व को देखता है। कितनों का क्षयोपशम इतना गहरा होता है कि एक वचन पर मंथन करके, सभी को विशेष विस्तार में समझाने में समर्थ हो जाते है। फिर भी उनमें जरा भी अभिमान नहीं आता। वे तो यही विचार करते है कि मूल सूत्र था तभी इतना जान सके। जिनवाणी रूपी डोर का आधार था तो क्षयोपशम हुआ। आप जैसे-जैसे सिद्धान्त पढ़ते जायेंगे वैसे-वैसे आपका आध्यात्मिक विकास होता जायेगा। फिर हमें आपसे कहना नहीं पड़ेगा कि आप

यदि आत्मा का हित चाहते हो तो चार दोषों का वमन कर दीजिए । अफीम जाहिर रूप में ज़हर है । घी को ५० से १०० बार धो डालिए तो यह खाने में ज़हर जैसा कड़वा नहीं लगता, परन्तु ज़हर बन जाता है । जैसे -

जहा किम्पाग फलाणं परिणामो न सुन्दरो ।।

किंपाक वृक्ष के फल खाने में स्वादिष्ट होते है, दिखने में सुंदर होते हैं, परन्तु उसे खाने से जीव और काया जुदा हो जाते हैं । इसी प्रकार घी भी छिपा हुआ ज़हर है । इसीके जैसे कषाय भी आत्मा का अहित करने वाले हैं, अतः इनका वमन कर देना चाहिए ।

जंबुस्वामी सुधर्मास्वामी को वंदन, नमन कर पूछते है कि "हे प्रभु ! १६वें अध्ययन में जो भाव व्यक्त हुए हैं, वे कृपा करके मुझे कहिए ।" जंबुस्वामी में कितना विनय और कैसी सरलता है ! भगवान ने 'उत्तराध्ययन सूत्र' में प्रथम अध्ययन विनय पर ही बताया है । "जब तक जीवन में नम्रता, सरलता को स्थान नहीं होता तब तक सम्यक्त्व बोधबीज की प्राप्ति का लक्षण भी नहीं होता ।" बहनें कूएँ में पानी भरने जाती हैं तो पानी लेने के लिए उन्हें नमना (झुकना) पड़ता है । यदि व्यावहारिक ज्ञान दूसरों से प्राप्त करना हो तो भी कितनी विनम्रता ज़रूरी है, फिर यह ज्ञान तो वह है जिसे आत्मा में स्थापित करना है तो उसके लिए कितनी विनय और नम्रता आवश्यक होगी ? विनय के बिना ज्ञान टिक नहीं सकता । इस विषय को उठाने का मुख्य कारण यह है कि जीवात्मा की भटकन का एक महत्त्वपूर्ण कारण मान-कषाय है ।

यहाँ ज्ञान प्रदाता और ज्ञान प्राप्त करने वाला दोनों पात्रों की जोड़ी बहुत ही उत्तम है । ज्ञान देने वाला समझपूर्वक देता हो और ग्रहण करने वाला आचरण में उतारता हो तो ज्ञान देने-लेने का आनन्द है । भगवान महावीरस्वामी के मोक्ष जाने के पश्चात् सुधर्मास्वामी ने उनकी विरासत संभाली । भगवान के सामने ही अग्निभूति, वायुभूति और व्यक्तस्वामी मोक्ष-मार्ग की ओर प्रयाण कर चुके थे । इन्द्रभूति को भगवान के मोक्ष जाने के पश्चात् केवल ज्ञान हुआ । अब केवली की श्रेणी में विराजते हुए वे यह नहीं कह सकते कि भगवान ने ऐसा फ़रमाया है क्योंकि तीर्थंकर केवली और सामान्य केवली के ज्ञान में कोई अंतर नहीं होता । तीर्थंकर केवली और सामान्य केवली में फर्क क्या है ? अरिहंत केवली बनने के तीन भव पहले तीर्थंकर नाम कर्म बाँधते हैं । उनके पुण्य में फर्क होता है । उनके ३४ अतिशय होते हैं । तीर्थंकर पद पर पहुँचकर वे जैनशासन के प्रवर्त्तक बनते है और चार तीर्थ

की स्थापना करते है। भगवान की परंपरा में उनके पीछे सुधर्मास्वामी आये। वे कैसे थे ?

चौद पूरवधार कहिए, ज्ञान चार वखाणिए,

जिन नहि पण जिन सरीखा (एवा श्री) सुधर्मास्वामी जाणिए।

जिन नहीं परन्तु जिन के समान, क्योंकि जबतक केवल ज्ञान प्राप्त न हो जाय तबतक जिन नहीं कहला सकते। जिन बनना बाकी है, परन्तु प्रभु की समानता में पहुँच रहे हैं ऐसे सुधर्मास्वामी अपने प्रिय शिष्य जंबुस्वामी से कहते है, "हे आयुष्यमान जंबु !" यह संबोधन कितना सुंदर है ! इसे सुनने मात्र से हृदय प्रसन्न हो जाता है। आयुष्य सभी को प्रिय है। इसलिए 'चिरंजीवी है, दीर्घायुषी हो' आदि आशीर्वाद लोक में प्रचलित है। एक दृष्टि से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी पुरुषार्थ का आधार आयुष्य ही है। दीर्घायुषी ही इसकी आराधना कर सकता है, इसलिए 'आयुष्मन् !' संबोधन अत्यन्त सुंदर और योग्य है। इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि गुरु के हृदय में शिष्य के प्रति कितना वात्सल्य भाव है। सुधर्मा-स्वामी अपने प्रिय शिष्य जंबुस्वामी से कहते हैं कि "प्रिय जंबु ! मैंने भगवान के मुखारविन्द से यह सुना, इसका अभिप्राय यह कि मैं जो कुछ कह रहा है वह मेरा नहीं बल्कि भगवान का कथन है।" सुधर्मास्वामी कितने उत्तम पुरुष थे ! आज तो जरा-सा ज्ञान मिल जाये, तो कहने लगेंगे कि 'मैं जो कह रहा हूँ वही सच है, मेरा मत ही सही है।' पतंग मानता है कि मैं ही ऊँचा चढ़ रहा हूँ, मुझे डोर के आधार की ज़रूरत नहीं है। परन्तु इसे ज्ञात नहीं है कि डोर के टूटते ही वह कहाँ जा गिरेगा ? डोर के आधार से ही वह ऊँचा चढ़ सकता है। सुधर्मास्वामी कहते हैं, "मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह भगवान के द्वारा प्ररूपित सिद्धान्त के आधार पर कह रहा हूँ।" जिसकी जैसी दृष्टि होती है उसे वैसा ही दिखाई देता है। दरिया किनारे खड़ा हुआ मछुआरा मछलियाँ देखता है, खलासी नमक देखता है और जौहरी रत्न देखता है, वैसे ही हलुकर्मी जीव तत्त्व को देखता है। कितनों का क्षयोपशम इतना गहरा होता है कि एक वचन पर मंथन करके, सभी को विशेष विस्तार में समझाने में समर्थ हो जाते है। फिर भी उनमें जरा भी अभिमान नहीं आता। वे तो यही विचार करते है कि मूल सूत्र था तभी इतना जान सके। जिनवाणी रूपी डोर का आधार था तो क्षयोपशम हुआ। आप जैसे-जैसे सिद्धान्त पढ़ते जायेंगे वैसे-वैसे आपका आध्यात्मिक विकास होता जायेगा। फिर हमें आपसे कहना नहीं पड़ेगा कि आप

ऐसा कीजिए । आप जानेंगे, समझेंगे तो आप स्वयं महसूस करेंगे कि संसार का एक भी पदार्थ, एक भी सुख इच्छा करने योग्य नहीं है । आपको अपनी दृष्टि से थोड़ा बहुत सुख दिखाई पड़ता है लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से तो यह सुख है ही नहीं । इस पौद्गलिक सुख की प्राप्ति के लिए कितने काल का दुःख अपने लिए बढ़ाये जा रहे हैं ? जब आत्मा में विवेक जागृत होगा तब उसे संसार का स्वरूप समझ में आयेगा । फिर पाप से मुड़कर आत्मा की ओर ध्यान देकर भगवान की वाणी के प्रति रुचि होगी तथा तदनुरूप क्रिया करेगा । 'उत्तराध्ययन सूत्र' में प्रभुवाणी है -

दंसण नाण चरित्ते, तव विणए सच्च समिइ गुत्तीसु ।
जो किरियाभाव रुई, सो खलु किरियारुई नाम ॥

- उत्त. सू. अ-२८, गा-२५

दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप, विनय, सत्य, समिति और गुप्ति आदि की सहायता से जीवन को स्वच्छ रखते हुए धर्माराधना की भावना रखना क्रियारुचि कहलाती है । इस क्रिया की यदि भावरुचि बने तो संसार के प्रति अरुचि हुए बिना नहीं रहती । यदि उपरोक्त क्रियाओं के प्रति अरुचि हो तो हेय भी आचरण करने योग्य लगता है । पाप, आश्रव और बंध त्यागने योग्य है, यदि जीव को यह यथार्थ श्रद्धा होगी तो वह उनका आचरण करने के लिए तैयार नहीं होगा । पाप और आश्रव के कार्य की ओर एक कदम भी नहीं बढ़ायेगा । तत्त्वों के प्रति श्रद्धा होने पर जीव संसार में रहते हुए भी महसूस करेगा कि संसार रहने योग्य नहीं है । आपसे कोई कहे कि आप शौचालय में घँटा-भर बैठिए तो आपको पाँच हज़ार रुपये मिलेंगे, तो क्या आप बैठेंगे ? नहीं बैठेंगे । संसार की प्रत्येक क्रिया को ज्ञानियों ने *आश्रव की क्रिया कहा है । आश्रव गटर की कोठी के समान है,* जो जीव को दुर्गति में ले जायेगी । जिसने आश्रव को आश्रव रूप में समझा है वह संसार में बैठा नहीं रहता । हाँ, दो कारण है । जिसे संसार की क्रिया आश्रव रूप लगी है, जिसे संसार त्यागकर भागना है, परन्तु जबरदस्त चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से त्याग नहीं सकता, वह संसार में रहता है, पर उसके रहने में फर्क होता है । क्योंकि उसे यह ज्ञान हो चुका है कि आश्रव से संवर में आना आवश्यक है । जिसे सम्यक्ज्ञान है, पाप-पुण्य का भान है वह आत्मा संसार में रहते हुए भी लिप्त नहीं होता । ज्ञान की आराधना करने से आत्मा की अमरता प्राप्त होती है । आज मनुष्य धन प्राप्ति की आशा, स्वास्थ्य और पुत्र-परिवार की आशा का

त्याग कभी नहीं करता, लेकिन ज्ञान प्राप्ति में यदि जरा-सा कारण उपस्थित हो जाय तो झट उसे छोड़ देता है । परन्तु उसकी बड़ी भूल है । श्रीमंत या अमीर बनने के लिए एक-एक पैसे का संग्रह करते हैं । उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक-एक क्षण का सदुपयोग कीजिए । मानव जीवन की अंतिम घड़ी, आखिरी साँस तक यदि ज्ञान पाने का अवसर मिले तो चूकना नहीं चाहिए तथा कभी भी निराशा को अपने पास फटकने नहीं देना चाहिए ।

एक बार जैनदर्शन के महान विद्वान वादीदेवसुरी के पास एक वृद्ध ने दीक्षा ली । दीक्षा देकर गुरुदेव ने उनसे ज्ञान सीखने के लिए कहा । एक जमाना ऐसा भी था जब नवकारमंत्र गिनने वाले भी दीक्षा ले लेते थे । 'दशवैकालिक सूत्र' में भगवान ने फ़रमाया है -

पच्छा वि ते पयाया, खिप्पं गच्छन्ति अमर भवणाइं ।
जेसिं पीओ तवो संजमो य, खंती य बंभचेरं च ।।

- दश. सू. अ-४, गा-२८

जिन्हें तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय है, वे प्रौढ़ावस्था में भी दीक्षित होकर शीघ्र देवलोक में जाते हैं । उनकी उच्चगति होती है । शिष्य ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके ज्ञान लेना प्रारंभ किया । एक जगह, एकांत में एकचित्त से अध्ययन करने लगा । इस वृद्ध शिष्य को प्रतिदिन इतनी एकाग्रता से पढ़ते देखकर एक व्यक्ति के मन में आया कि यह बूढ़ा तोता क्या राम-राम रट सकेगा ? चलें, जरा इससे मजाक किया जाय । यह सोचकर एक दिन उनके समक्ष पहुँचकर कहने लगा : "क्यों बबड़ बबड़ कर रहे हो ?" शिष्य पढ़ने में मस्त था । भले ही *'अहिंसा संयमो तवो'* इतना ही पद हो, परन्तु इनके लिए तो बहुत था । यह व्यक्ति ने शिष्य बने संत के पास एक मूसल लेकर जमीन का हिस्सा खोदा और फिर मूसल को उसीमें रोपकर, रोज़ उसे सींचने लगा ।

उस व्यक्ति का यह कार्य देख संत को बड़ा आश्चर्य हुआ, एक दिन उन्होंने उससे पूछा : "भाई ! मूसल को रोज़ पानी से सींचने से भला क्या लाभ होगा ?" व्यक्ति बोला : "मैं इसलिए इसमें रोज पानी डालता हूँ ताकि यह हरा-भरा हो जाये और इस पर फल-फूल उगे ।" संत बोला : "अरे भाई ! मूसल कभी हरा-भरा होता है, उसमें भला कभी फल-फूल आते हैं ? तुम्हारी यह क्रिया निरर्थक है ।" व्यक्ति ने कहा : "यदि आपके जैसा वृद्ध ज्ञान प्राप्त कर सकता है तो इस मूसल में फल-फूल क्यों नहीं आ सकता ? ज़रूर आ सकता है ।" संत अपनी ज्ञानप्राप्ति के बारे

में शंकाशील बने और गुरुदेव के पास आकर कहने लगे : "गुरुदेव ! अब इस बुढ़ापे में ज्ञान नहीं चढ़ेगा ।" गुरुदेव ने पूछा कि "तुम शंकित क्यों बन गये हो !" शिष्य ने उन्हें बताया कि "जिस प्रकार मूसल रोपने से फल-फूल नहीं आ सकता, उसी प्रकार वृद्धावस्था में मुझे ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ।" गुरुदेव ने उन्हें समझाया कि "मूसल जड़ है और तुम चेतन । तुम्हारी और उसकी तुलना नहीं हो सकती । क्योंकि तुम्हारा शरीर बूढ़ा हो रहा है - आत्मा नहीं । आत्मा यदि पुरुषार्थ करे तो क्या प्राप्त नहीं कर सकता ? द्रव्यानुपेक्षा से आत्मा नित्य है, शाश्वत है । वृद्ध देह के अंदर चैतन्य का उज्ज्वल प्रकाश जगमगा रहा है । बचपन, यौवन और बुढ़ापा सभी शरीर की पर्याय हैं । तुम्हे निराश होने का कोई कारण नहीं है । अभी भी तुम जितना ज्ञान प्राप्त कर लोगे वह तुम्हारी आत्मा का साथी बनकर तुम्हारी अनंतयात्रा का पाथेय बनकर सदैव तुम्हारे साथ रहेगा ।" भगवान फ़रमाते है, *"पढमं नाणं तओ दया !"* एक अंग्रेजी लेखक ने भी कहा है, **'Knowledge is Life.'** - ज्ञान ही जीवन है । बिना ज्ञान के जीवन मृत कलेवर के समान है ।" गुरु की हल्की सी टकोर से शिष्य की आत्मा जागृत हो गयी और निराशा को भूलकर ज्ञान प्राप्ति में वे मस्त हो गये । काफी समय पश्चात् एक महान दार्शनिक बने । अत: ज्ञानी कहते है कि 'आत्मा के क्षेत्र में लगातार प्रगति करने की आवश्यकता है ।'

'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन में कषाय आत्मा के लिए कितना अहितकर है - यह विषय विवेचित होगा । द्रौपदी के जीव को नागेश्री के भव में यह पता न था कि मान-कषाय क्या है । वह जैनकुल में नहीं जन्मी थी कि उसे यह संस्कार मिलते । आप सब तो जैनकुल में जन्मे है, इसलिए विरासत में जैन धर्म प्राप्त हो गया है । फिर भी भाग्यशाली जन इसका लाभ नहीं ले पाते हैं । त्याग-मार्ग में कम रह जाते हैं । त्याग-मार्ग में पीछे और पाप-मार्ग में आगे रहते है । संसार का प्रत्येक कार्य पापमय है, इसका एक भी कार्य प्रशंसनीय नहीं है । परन्तु आत्म लक्ष्य से, शुद्ध भाव से यदि एक कदम भी भरेंगे तो लाभ ही लाभ है, 'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन में चलने वाले भाव अवसर पर कहेंगे । आज हमारी महान वैरागी स्व. पूज्य ताराबाई महासतीजी की पुण्यतिथि है । उनका संयमी जीवन ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी पुष्पों से महमह था । संक्षेप में उनके जीवन की विशेषता कह देती हूँ ।

महान वैरागी पू. ताराबाई महासतीजी का जगमगाता जीवन

आकाश में तारे चमकते हैं। इसी प्रकार ताराबाई महासतीजी मेरे शिष्यमंडल में एक चमकता हुआ तारा थीं। उनका जन्म अहमदाबाद में लुणसावाडा मोटी पोल में हुआ था। पिता का नाम उगरचंदभाई और माता का नाम समरतबहन था। वे विवाहित थीं। संसार तो संयोग और वियोग के दु:ख से भरा हुआ है। तदनुसार २४ वर्ष की छोटी उम्र में पति का वियोग हुआ। विधवा होने के एक वर्ष में मेरे साथ परिचय हुआ और वे धार्मिक प्रवृत्तियों से जुड़ी तथा वैराग्य के रंग में रंग गयीं। मेरी दीक्षा के बाद इन सब शिष्याओं में उन्हें सबसे पहले वैराग्य हुआ था। परन्तु उनके चार बेटे थे, जो छोटे थे, इसलिए न चाहते हुए भी उन्हे संसार में रहना पड़ा। संसार में अनासक्त भाव से रहते हुए, तप-त्याग और ज्ञान-ध्यान में रमी रहती थीं। कुछ वर्षों के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र का विवाह कर, कुछ समय संसार में रहे। फिर पुत्र पर समस्त दायित्व सौंपकर, पुत्र-परिवार और संसार की समृद्धि का मोह छोड़ सं. २०१४ में आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को उन्होंने दीक्षा अंगीकार की। जैसे पुत्र-परिवार का मोह बंधन काटकर, शूरवीर बनकर वे संयम-मार्ग पर चल पड़ीं वैसे ही अंतिम समय तक संयम में तल्लीन बनी रहीं।

शारीरिक अस्वस्थता में समभाव : मुंबई आने के बाद संवत २०१८ का पहला चातुर्मास कांदावाडी में हुआ। तत्पश्चात् चातुर्मास २०१९ का माटुंगा, २०२० का दादर और २०२१ का पार्ला में हुआ। वहीं आश्विन माह में ताराबाई महासतीजी को कैंसर की पीड़ा प्रारंभ हुई। इतनी भयंकर पीड़ा के बावजूद उनकी मुखमुद्रा पहले जैसी प्रसन्नता से ही सजी रहती। संयम की दृढ़ता और उनकी समता तो गजब की थी। इलाज और उपचार से पीड़ा कम हुई, फिर २०२२ का चातुर्मास घाटकोपर में पूर्ण करके मंदाकिनी बाई महासतीजी की दीक्षा के प्रसंग पर हम सब पौष कृष्ण दसमी को माटुंगा आये। वहाँ माघ शुक्ल द्वितीया को ताराबाई महासतीजी के सिर में टीस शुरू हो गई। इस दर्द के निदान के लिए माटुंगा श्रीसंघ ने बड़े-बड़े सर्जनों को बुलवाया और अहर्निश सेवा की परन्तु वेदनीय कर्म के समक्ष किसी की नहीं चली। समता भाव से दर्द सहन करते हुए सदा प्रसन्न मुख-मुद्रा में रहते थे।

अंतिम उद्गार : मृत्यु के तीन दिन पहले ही उन्होंने मुझे हर प्रकार से संकेत दिया था पर मैं उस अर्थ को समझ न सकी। मुझे पास बैठाकर बोले, "महासतीजी ! यह जीवन क्षणभंगुर है, नश्वर देह का मोह रखना उचित नहीं है। मैं अढ़ाई दिवस हूँ, बड़ी दीक्षा देखूँगी।" मैं उनके गूढ़ अर्थ को न समझकर

बोली कि बड़ी दीक्षा तो सायन में होने वाली है - यदि आप चाहें तो माटुंगा में करने की व्यवस्था की जाय ।" तो कहने लगीं : "नहीं, यह बात नहीं है मैं बड़ी दीक्षा देखूँगी, मुझे अंतिम आलोचना करवाइए ।" दिनांक २४-२-८ से उन्होंने **'देह मरे छे, हुं नथी मरती, अजर-अमर पद मारूँ'** की धुन बोलनी शुरू कर दी ।

२५ ता. की सुबह मुझसे कहने लगीं, "महासतीजी ! आज जो गोचरी लाये हैं सब समाप्त कर दीजिएगा, कुछ रखिएगा मत ।" पिछले दिन ही मुझे कह रही थीं कि "मैं कितनी भाग्यशाली हूँ कि अपनी गुरुजी की गोद में सिर रखकर अपने गुरुदेव पूज्य रत्नचंदजी महाराज साहब के पास जाऊँगी ।" बिल्कुल वैसा ही हुआ । व्याख्यान का समय होने पर वसुबाई को व्याख्यान शुरू करने के लिए भेजा, मैं नौ बजे व्याख्यान में जाने के लिए तैयार हुई । सीढियों तक पहुँची, कि लगा मुझे कोई कह रहा है कि 'तुझसे कहा कि मैं अढाई दिवस ही हूँ, फिर तू कहाँ जा रही है ?' दो-तीन बार कानों में यही आवाज़ गूँजी तो व्याख्यान में न जाकर मैं पीछे मुड़ी और उनके सिरहाने आकार बैठी । उन्होंने अपना सिर मेरी गोद में रखा । बोली : "महासतीजी ! मैं नहीं मरती, मेरी देह मर रही है । आपने ऐसा कुछ देखा नहीं है, अतः खूब हिम्मत रखिए ।" इतना कहकर हाथ जोड़ स्वयं बोलीं "हे आदिश्वर दादा ! मुझे आपका शरण हो ।" तभी मुझे लग गया कि अब मेरी ताराबाई चलीं । इसलिए मैंने ९-४५ को उन्हें सागारी संथारा करवाया । प्रत्याख्यान लेते हुए उनके मुखड़े पर ऐसा हर्ष था कि अब मेरी भावना पूर्ण हुई । व्याख्यान पूर्ण होने पर सकल संघ वहाँ हाजिर था और हम सब उन्हें नवकार मंत्र की शरण दे रहे थे, परन्तु अंतिम साँस तक अपने मुख से **'हूं नथी मरती, देह मरे छे, अजर-अमर पद मारूँ'** की धून बोलती रहीं । २५ ता. की सुबह १०-१० मिनट में धून बोलते हुए ४८ वर्ष की उम्र में साढ़े आठ वर्ष की दीक्षा पर्याय पालकर उन्होंने नश्वर देह का त्याग किया । दीक्षा लेने के बाद से उनकी यही भावना थी कि 'भले ही कम जीऊँ पर पंडितमरण मरूं ।' अनकी भावना पूर्ण हुई । छोटा-सा जीवन जीकर भी आत्मसाधना सिद्ध कर गयीं ।

पूज्य ताराबाई महासतीजी अत्यन्त सरल, भद्रिक, विनयी और गुणवान थीं वे सातवीं शिष्या थीं पर सभी दायित्व संभालती थीं । ऐसी पवित्र आत्माओं को याद कर उनके गुणों को जीवन में उतारने का उद्यम करें - यही भावना है । व्रत-प्रत्याख्यान, तप-त्याग लेकर ही उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि दी जा सकती है ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक २

आषाढ़ कृष्ण ३, शनिवार | दिनांक : ६-७-७४

तिन्नाणं तारयाणं

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं एवं बहनों !

शासनपति भगवान, करुणा के सागर भगवान ने जगत के जीवों के कल्याण के लिए सिद्धान्तमय वाणी की प्ररूपणा की । वे भगवान कैसे हैं ? *'तिन्नाणं तारयाणं ।'* नमोत्थुणं में यह शब्द बोलते हुए आत्मा में झंकृति होनी चाहिए । कभी बिजली का करंट लगे तो आप तुरंत वहाँ से हाथ खींच लेते हैं, वहीं नहीं रहने देते । इस इलेक्ट्रिक करंट के समान ही संसार का करंट भी है । बिजली के करंट के प्रभाव से बचने के लिए आप लकड़ी का आधार ले लेते हैं । ज्ञानी के वचनामृत लकड़ी के समान हैं और यह संसार इलेक्ट्रिक का करंट है । संसार आश्रव का घर है, इसमें यदि वीतराग वाणी रूपी लकड़ी साथ होगी तो आपकी रक्षा होगी । दसों श्रावक संसार में रहते थे पर एकावतारी में उन्हें स्थान मिल गया । मोक्ष जाने की मोहर लग गई, अब वह मोहर बदलेगी नहीं । इस पाँचवें आरे में मोक्ष नहीं है, परन्तु पुरुषार्थ करें तो एकावतारी में नंबर लग सकता है । लेकिन किसका नंबर लगेगा ? जिसे संसार प्रिय नहीं है, अपितु मोक्ष प्रिय है । एक भाई आकर कहने लगे, "मुझे देवलोक चाहिए, मोक्ष नहीं चाहिए । मोक्ष में जाकर क्या करना है ?" भाई, मोक्ष माँगने से नहीं मिलता, स्वयं पुरुषार्थ करने से प्राप्त होता है । यदि मोक्ष देने-से मिल सकता तो स्वयं भगवान महावीरस्वामी अपने शिष्य जामालि को किल्विषी में क्यों जाने देते ? इसलिए पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है । भगवान कैसे हैं ? *'मग्गदयाणं चक्खुदयाणं ।'* भगवान मोक्षमार्ग बताने वाले हैं और अज्ञानी जीवों के ज्ञानचक्षु खोलने वाले हैं । पर कोई मोक्ष दे नहीं सकता । वह तो पुरुषार्थ से प्राप्त किया जाता है, बस एक बार मोक्ष तत्त्व की सच्ची रुचि जागनी चाहिए ।

वेदांती एकमात्र ईश्वर को कर्ता मानते हैं । उनका मानना है ईश्वर सबकुछ करने वाला है । सुख-दुःख देने वाला ईश्वर है । कोई अच्छा काम हो जाये तो, ईश्वर की कृपा और खराब हो जाये तो ईश्वर का कोप । परन्तु जैनदर्शन इस बात को

स्वीकार नहीं करता। पत्नी आपको कितनी ही प्यारी हो, पर उसकी शरण न लेकर आप प्रभु की शरण लेते हैं। कोई ऐसा नास्तिक हो, कि भगवान को जरा भी न मानता हो, लेकिन अंतिम समय में उसे आप किसकी शरण दिलाते हैं। (श्रोताओं में से आवाज - 'भगवान की') अरिहंत प्रभु की शरण किसलिए? क्योंकि वे मोक्ष-मार्ग बताने वाले और ज्ञानचक्षु उघाड़ने वाले हैं। आपसे प्रतिदिन उपाश्रय आने के लिए हम क्यों कहते हैं? ताकि रोज उपाश्रय आने और वीतराग वाणी के श्रवण से यदि सच्ची श्रद्धा जग जाये तो मोक्ष जाने की मोहर लग जाये। जिसे तैरना आता है वह डूबेगा नहीं, किनारे पहुँचेगा ही, वैसे ही जिसके जीवन में सम्यक्त्व आ गया है वह तीन भव में, सात भव में, पंद्रह भव में और अधिक से अधिक अर्ध-पुद्गल परावर्तन काल में मोक्ष जायेगा ही, संसार में डूबेगा नहीं।

भगवान '*तिन्नाणं तारयाणं*' हैं अर्थात् स्वयं तिर गये और अन्य जीवों को तिरने का मार्ग बता गये। अतः उनपर श्रद्धा होनी चाहिए। परदेशी राजा को अपने गुरु केशीस्वामी के प्रति कैसी अनन्य श्रद्धा थी? 'हे गुरुदेव! यदि आप मुझे न मिले होते तो इस पापी का क्या होता? यह पापी किसी गड्ढे में पड़ा होता?' भगवान के संत सिद्धान्त का वांचन-मनन करके, मंथन करके मक्खन रूप में प्राप्त तत्त्व आपके मुख में रखते हैं, परन्तु आप होठ बँध कर लेते हैं। यदि जबरदस्ती डाल दें तो उसे गले के नीचे नहीं उतारते। संसार की हरी-भरी बगिया में भ्रमण करते हुए सबको अपना मान रहे हैं, तो कहाँ पहुँचेंगे? यह मेरापन मार खिलवायेगा।

देवानुप्रियों! समझिए! मानव भव मिला है, पवित्र भूमि प्राप्त हुई है। जहाँ संतों का बारंबार आगमन होता रहता है, संत वीतराग वाणी रूपी जल से भव्य जीवों को सिंचित करते हैं, तो उस वाणी के श्रवण से भव्य जीवों का हृदय नाच उठता है। लेकिन जो जवासा जैसे होते हैं, वे सुनने के बाद भी जल जाते है। जब बरसात होती है तो सभी वनस्पतियाँ हरी हो जाती हैं, परन्तु जवासा जल जाता है, वैसे ही जवासा के समान जीव को श्रवण करने पर भी श्रद्धा नहीं होती, आनन्द नहीं होता। यदि ऐसे लक्षण हों तो समझ लेना चाहिए कि यह जीव अभी और भ्रमण करेगा। दूसरी तरह से विचारिए कि जिसे वीतराग शासन के प्रति, वीतराग वाणी के प्रति अरुचि हो, उस पर विश्वास या श्रद्धा न हो और मोक्ष की रुचि न हो तो वह दुर्भवी या अभवी है, क्योंकि अभवी को मोक्ष तत्त्व के प्रति श्रद्धा नहीं है और होती भी नहीं है।

राजा परदेशी का प्रसंग : राजा परदेशी महान शक्तिशाली थे । हमें तो उनके बारे में सिर्फ दो मिनट विचार करना है । राजा परदेशी को कैसे कठिन संयोगों से गुजरना पड़ा । उनकी पत्नी रानी सूरीकंता ने मरणांतिक उपसर्ग दिया, लेकिन उन्होंने उसे कोई दोष न देकर अपने कर्मों का दोष देखा । 'मैंने ऐसे कर्म किये होंगे तो मुझे भोगना ही होगा ।' ऐसे दुःख सहन करते हुए एकावतारी बन गये और रानी नरक में गई । पहले राजा परदेशी का उदाहरण देने पर लोग उसे हौलनाक मानते थे, परन्तु आज तो अखबार में ऐसी कई घटनाएँ छपती हैं । बडोदरा में एक पत्नी ने नौकर द्वारा हाथ-पाँव पकड़वा कर, चटनी पीसने के पत्थर से पति को मार डाला । राजा परदेशी को ऐसे कष्ट के समय भी आर्तध्यान या रौद्रध्यान नहीं आया, बल्कि उनकी आत्मा एक धर्मध्यान में ही रमी रही । खंधकमुनि के ५०० शिष्यों को कोल्हू में (घानी में) पील दिया गया, परन्तु क्षण मात्र को भी उनमें आर्तध्यान, रौद्रध्यान नहीं आया, केवल धर्मध्यान और अंत में शुक्ल ध्यान । शरीर यंत्र से कुचला जा रहा है, परन्तु मन नवकार में रमा हुआ है । 'तन पीलाय चीचोडामां, मन रमे नवकार मंत्रमां ।' यह कब संभव हो सकता है ? जब देह में रहते हुए विदेही दशा का अभ्यास किया हो तब ही । आज तो कायोत्सर्ग के समय एक मच्छर काटे तो ध्यान भंग हो जाता है । परदेशी राजा ने ज़हर पचाते हुए आत्मा का अमृत प्राप्त कर लिया । अंतिम समय रानी ने गला घोंट दिया, तब भी वही श्रद्धा, वही भाव ! पत्नी को दुश्मन नहीं माना, उसपर जरा भी क्रोध नहीं आया, बल्कि यह शुभ भाव मन में रहा कि इस नश्वर देह का तो नाश होना ही है, आत्मा तो शाश्वत और अजर-अमर है । गुरुदेव ! आप जहाँ विराजते हों, वहाँ मेरा वंदन स्वीकार करें ! अरिहंत और सिद्ध भगवान के प्रति नमोत्थुणं बोलते हुए आँख से आँसू नहीं आया पर अपने धर्मगुरु को वंदन करते, तीसरा नमोत्थुणं बोलते आँखें आँसुओं से भर गयीं । हम सब रोज़ यह पाठ बोलते हैं, परन्तु ऐसे भाव नहीं आते, भाव के बिना कल्याण संभव नहीं ।

कोई व्यक्ति बहुत सुंदर शब्दों में, शुद्ध भाषा और मधुर वाणी से लोगों को मुग्ध करता हुआ रोज़ प्रतिक्रमण करवाता हो, फिर भी ज्ञानी कहते है कि 'वाणी में वक्तृत्व हो पर हृदय में भाव न हो तो कर्म की निर्जरा नहीं होती ।' *'बंधे'*, *'वहे'*, *'छविच्छेए'*, शब्दों का उच्चारण करते हुए आत्मा में यह भाव आना चाहिए कि मैंने अन्य जीवों को त्रस्त तो नहीं किया, दुःख तो नहीं दिया ? किसीको गाढे बंधन में बांधा तो नहीं ? पुत्र परदेश में रहता हो, उसका पत्र आये तो पत्र पढ़ते हुए उसकी आकृति सम्मुख दिखती हैं ना ? पुत्र प्रत्यक्ष सामने नहीं

है, फिर भी प्रत्यक्ष मिलने जैसा ही आनन्द प्राप्त होता है ना ? भगवान का नाम लेते हुए, प्रभु स्मरण करते हुए, प्रभु की वाणी श्रवण करते हुए भी क्या वैसा ही आनन्द मिलता है ? हमारी आत्मा परमात्मा बनने की क्षमता रखती है। अपनी आत्मा को भगवान बनाओ और उससे बातें करो। बातें करते हुए यदि उत्साह आया, अंतर में झनझनाहट हुई तो कर्म चकनाचूर हुए बिना नहीं रहते।

भगवान की वाणी अमृतवाणी हैं। 'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन में जंबुस्वामी सुधर्मास्वामी को वंदन-नमन कर पूछते हैं : "हे प्रभु ! त्रिलोकीनाथ ! इस अध्ययन में क्या भाव बताये गये हैं ?" सुधर्मास्वामी के मुख से निकले शब्दों को अमृत के घूँट की तरह जंबुस्वामी घटक-घटक पी रहे हैं। जबतक वीतराग वाणी में रुचि नहीं, श्रद्धा नहीं, तबतक कल्याण नहीं, रुचि जागेगी तो मोक्ष का मोती मिलेगा। प्रतिक्रमण यदि भाव के साथ हो तो कर्मो की निर्जरा होती हैं। जैसे-जैसे भाव चढ़ते जाते हैं, भव टूटते जाते हैं। लेकिन अब तक भव टूटने जैसे भाव नहीं आये। बहुतेरे कहते हैं कि बीस-बीस वर्षो से सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध करते रहे हैं, व्याख्यान सुनते रहे हैं। अब करने की क्या ज़रूरत है ? जबतक आराधना में भाव नहीं आया तबतक करते रहना चाहिए। छोटा बालक जबतक एक लिखना नहीं सीखता, लकीर खींचता रहता है। लकीर खींचते-खींचते अंत में एक का अंक बना लेता है। आत्मसाधना करते हुए अभी तक भाव नहीं आया, जब भाव आयेगा तो केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त कर ही लेगा। अभी तो कुछ नहीं मिला और कहते हैं कि 'बहुत किया, अब करने की क्या ज़रूरत है ? ज्ञानी के वचनों को झूठ कहेंगे तो गूंगे बनेंगे। गूंगे में भी जिन्हें जीभ नहीं होती है उस एकेन्द्रिय की गति पायेंगे। इसलिए महापुरुष कहते हैं कि 'समझने का अवसर मिला है तो अवसर का लाभ लेकर तिर जाओ।'

'ज्ञाताजी सूत्र' में धर्मकथानुयोग है। दरवाजे को सही तरह लगाना हो तो कील-कब्जा से जोड़ना पड़ता है। न जोड़ने से दरवाजा खड़ा नहीं रह सकता।

परदेशी राजा की गुरुभक्ति कितनी अद्भुत थी ! "प्रभु ! आप मुझे न मिले होते तो इस जहर को पचाने की शक्ति मुझमें कहाँ से आती ? यह शक्ति आपके पावर हाउस की है।" पावर हाउस के बगल में एक झोंपड़ी थी। उसमें घोर अंधेरा था, और समस्त गाँव रोशनी से जगमगा रहा था। एक व्यक्ति ने झोंपड़ी में रहने वाले से पूछा : "भाई ! आप पावरहाउस के बगल में बसते है फिर भी आपके घर में अंधेरा क्यों है ?" वह जवाब देता है : "भाई ! पावरहाउस की बगल में तो है लेकिन कनेक्शन नहीं लिया है तो प्रकाश कैसे होगा ?" भगवान

के शासन में वीतराग के संत पावरहाउस के समान है, आप उनकी बगल में रहते हैं फिर भी आत्मा में अंधेरा है। किसलिए ? तन को, मन को और आत्म भाव के तार को जोड़ा नहीं है। तंबुरा चाहे जितना सुंदर दिखता हो, बजाने वाला भी बड़ा होशियार हो, परन्तु तार पर अंगुली न रखें तो आवाज़ कहाँ से निकलेगी ? जंबुस्वामी जिज्ञासा से भरे हुए हैं। सुधर्मास्वामी अपने प्रिय शिष्य से कहते है : "आयुष्यमान जंबु !

"तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं णयरी होत्था।"

उस काल और उस समय में चंपा नामक नगरी थी। भगवान के वचन तीनों काल में कभी बदलने वाले नहीं। चाहे जितना समय व्यतीत हो जाये, चाहे जितने युग बदलें। दुनिया का रंग-ढंग, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा सभी बदलते हैं, परन्तु ज्ञानी के वचन शाश्वत रहने वाले हैं। उसमें मीनमेख का भी फर्क नहीं हो सकता। जो प्रश्न भगवान ऋषभदेव से पूछा गया और उसका जो उत्तर प्रभु ने दिया, उसी प्रश्न को यदि भगवान महावीर से पूछा जाये तो उनका उत्तर भी वही होगा जो ऋषभदेव भगवान का था। 'आचारांग सूत्र' के चौथे अध्ययन में कहा गया है कि -

"से बेमि जे अइया, जे य पडुपन्ना, जेयं आगमिस्सा अरहंता भगवंतो ते सव्वे एव माइक्खन्ति, एव भासन्ति, एवं पन्नविंति एवं परुवेन्ति।"

सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जंबुस्वामी से कहते हैं कि "भूतकाल में जो तीर्थकर भगवंत हो गये हैं, वर्तमानकाल में जो तीर्थंकर है और भविष्यकाल में जो तीर्थंकर होंगे - वे सब एक समान कहते हैं, प्ररूपणा करते हैं। क्योंकि केवलज्ञानियों के ज्ञान में कोई फर्क नहीं होता। केवल ज्ञान सभी का सरिखा है।

'तेणं कालेणं' अर्थात् उस समय की बात है। आज की बात नहीं। दस क्रोड़ा-क्रोड़ी - सागरोपम के छः आरे। पहला आरा सुषम-सुषम, दूसरा आरा सुषम, तीसरा सुषम-दुषम, चौथा दुषम-सुषम ! सिर्फ भगवान ऋषभदेव तीसरे आरे में हुए, अन्य २३ तीर्थकर चौथे आरे में हुए है। चौथा आरा दुषम-सुषम यानी पहले, दूसरे, तीसरे आरे की अपेक्षा कम सुख और अधिक दुःख। फिर भी चौथा आरा धर्मक्षेत्र में अग्रणी है। कोई घर धर्म के रंग में रंगा हुआ हो। जहाँ धर्म की बातें होती हों, ऐसा घर देखने पर हृदय आनन्दित हो उठता है और मन में आता है कि यह घर चौथे आरे के समान धर्मक्रिया में अग्रणी है।

भगवान ऋषभदेव को याद करते हुए लगता है कि हे प्रभु ! तू तो संसार से तिरा और तेरा संसार भी कैसा कि तेरे ९९ पुत्रों और दो पुत्रियों ने दीक्षा ली और मोक्ष में गये । प्रभु ! तू तो उज्ज्वल, तेरा संसार भी उज्ज्वल ! भरत महाराज के आठ पट्टधर पुत्र भी मोक्ष में गये । 'साधुवंदना' में बोलते है -

श्री ऋषभदेवना भरतादिक सौ पुत्र
वैराग्य मन आणी, संयम लीधो अद्‌भुत ।
केवल उपराज्युं करी करणी करतूत,
जिनमत दीपावी सघला मोक्ष पहुंत ।
श्री भरतेश्वरना हुआ पटोधर आठ
आदित्य जशादिक पहोंच्या शिवपुर वाट ॥

५०० धनुष की अवगाहना वाले एक साथ १०८ जीव मोक्ष में गये, ऋषभदेव भगवान के समय में । भगवान ऋषभदेव, उनके ९९ पुत्र और भरत महाराज के ८ पुत्र - कुल १०८ जीव एक साथ मोक्ष में गये ।

बंधुओं ! किसीका सुंदर मकान देखकर आपके मन में विचार आता होगा कि इनका मकान कितना सुंदर है, मुझे भी ऐसा मकान बनवाना है । क्या कभी यह विचार भी आया कि ऋषभदेव भगवान का पूरा कुटुंब मोक्ष में गया, हम अभी तो मोक्ष में नहीं जा सकते, परन्तु इतना अवश्य करें कि मेरी कोई संतान दुर्गति में न जाये । विचार कीजिए हम कहाँ जा रहे हैं ? संतान को संस्कार देकर धर्म-मार्ग पर मोड़िए । जब भरत चक्रवर्ती बने, और अन्य ९८ भाइयों पर अपना अधिकार व सत्ता जताने चले, तब राज्य का झगड़ा लेकर ९८ भाई भगवान के पास पहुँचे । भगवान ने पूछा : "तुम्हे क्या चाहिए ?" उत्तर मिला : "राज्य चाहिए ।" भगवान ने फ़रमाया : "तुम्हे नाशवंत राज्य चाहिए या शाश्वत राज्य ? यदि शाश्वत राज्य चाहिए तो संसार त्याग कर मेरे पास आ जाओ ।"

'संबुज्झह किं न बुज्झह' ! समझो और बोध पाओ । ९८ पुत्र शाश्वत राज्य प्राप्त करने के लिए भगवान के श्रीचरणों में अर्पित हो गये । वे माता-पिता कैसे और उनके पुत्र कैसे ? आज धन अर्जन करने मनुष्य दुनिया के आखिरी किनारे तक चला जाता है । धन के लिए भीख माँगता है । इसीके लिए कितने छल-छंद और स्याह-सफेद करता है । बहनें हीरे के गहने कान में पहने होंगी पर राशन की पंक्ति में खड़ी होंगी । कहाँ है आपकी अमीरी ? क्या है यह संसार ? एक रोटी पाने के लिए संतानों को दूर देश भेजते हो । कुछ ठीक रहते हैं तो कुछ अखाद्य अंडा आदि का भक्षण करने लग जाते हैं । उनकी मानवता समाप्त होती जाती है, पर कहेंगे कि यह पाप नहीं है । हा, हा, कहाँ जा रहे हैं ? ज्ञानी कहते हैं कि 'आपका

कर्त्तव्य क्या है ?' अपनी संतान को सही संस्कार दीजिए। आप हर क्षेत्र में उनपर अपनी पसंद या इच्छा जबरदस्ती लाद सकते हैं, पर उपाश्रय आने में ही जोर नहीं कर सकते, यह आपका ढुलमुलपन है। आप कहेंगे, 'युग बदल गया है,' परन्तु काल के नाम के नीचे पाप दबा रहे हैं। अपने बालक से प्रेमपूर्वक कहिए कि 'मैं तेरा पिता हूँ तो मेरा कर्तव्य है कि तुझे दुर्गति में न जाने दूँ।' पुत्र यदि कोई बड़ी गलती कर बैठे तो आघात लगता है, तो पुत्र दुर्गति में जाने जैसे काम करे तो आघात क्यों नहीं लगता ?

उस काल और उस समय में संतान को पहले धर्म का मार्ग बताते थे। अपनी शक्ति के अनुरूप वे उसे अपनाते। जो न अपना सकते, अपनी लाचारी प्रकट करते, तब उन्हें संसार का मार्ग बताते। चौथे आरे में २३ तीर्थंकर और केवली हुए, ऐसा वह पवित्र काल था। यहाँ उसी काल और समय में चंपापुरी नामक नगरी थी। चंपापुरी का नाम भी सिद्धान्त के पन्नों तक पहुँचा। किस कारण से ? जहाँ धर्मध्यान की ध्वजा फहराती हो, मानवता महकती हो और संतों के प्रति भक्तिभाव हो, वहाँ संतों का आवागमन भी होता रहता है। आप लोग प्रतिक्रमण में बोलते हैं कि 'धन्य है उस भूमि को जहाँ स्वामी देशना देते हुए विचर रहे हैं। धन्य है उन राजा, मुखिया, सेठ, सेनापति, गाथापति आदि को जो उस देशना के श्रवण से अपने कर्ण पवित्र कर रहे होंगे, दर्शन करके नेत्र पवित्र करते होंगे और दान देकर हाथ पवित्र करते होंगे।' आज तीर्थंकर नहीं हैं परन्तु उनका मार्ग बताने वाले संत विद्यमान है।

चंपानगरी बड़ी प्रसिद्ध थी। संसार में सभी संयोग अनुकूल हों तो आराधना करना आसान होता है, प्रतिकूलता में कम आसान होता है। शारीरिक शक्ति से हीन मनुष्य क्या कर सकता है ? इसलिए जब तक शक्ति है, मोक्ष-मार्ग की ओर जाने में उसका उपयोग करो। अपनी शक्ति, बल, वीर्य, पुरुषार्थ सब मोक्ष की ओर मोड़ो। शरीर स्वस्थ है तबतक आराधना कर लो। कल की किसे खबर है ! मासखमण, सोलहभथ्थुं, जो करना चाहो, करने के लिए कमर कस लो। अनुकूल संयोगों का लाभ उठा लो। माटुंगा नगरी चंपानगरी जैसी बनानी है। लोग माटुंगा को 'डोलर एरिया' कहते हैं। हमें तो डोलर या पैसे से कोई मतलब नहीं है, परन्तु आप तप करके, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों को अपनाकर हमसे ऐसी उपाधि प्राप्त कर लीजिए कि हम अन्य जगहों पर जाकर कह सकें कि 'माटुंगा सिर्फ डोलर एरिया ही नहीं है, अपितु तप-त्याग में रचा-बसा 'आध्यात्मिक एरिया' है।' अतः प्रमाद न करके आत्मसाधना में लग जाइए। भगवान हमें तिरने का मार्ग बता गये है। अब चंपानगरी का वर्णन आदि भाव अवसर पर कहेंगे।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक

आषाढ़ कृष्ण ४, रविवार | दिनांक : ७-७-७४

संसार कैसा कारागार है ?

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शास्त्रकार भगवान ने जगत के जीवों के कल्याण के लिए, भव्य जीवों के उद्धार के लिए आगममय वाणी प्रकाशित की। सिद्धान्त अर्थात्, तीनों काल में सिद्ध हुई भगवान की शाश्वत वाणी। आप वर्षों तक साधना के इस स्थान में आते रहेंगे, परन्तु यदि आगम पर श्रद्धा दृढ़ नहीं होगी तो कर्म के दलों को उड़ा नहीं पायेंगे। श्रद्धा रहित सभी क्रियाएँ निष्फल होती हैं। श्रद्धापूर्वक की गयी एक क्रिया से भी बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं। जैसे एक के अंक के बिना कितने भी शून्य (०) लिखिए तो शून्य की कोई कीमत नहीं, परन्तु उसीके आगे यदि एक का अंक लगा देंगे, तो उसकी कीमत दस गुना बढ़ जायेगी। वैसे ही आप चाहे जितनी साधना करें, पर श्रद्धा के बिना उसका मूल्य शून्य के बराबर है और श्रद्धा के अंक के साथ साधना की कीमत अनेक गुना बढ़ जायेगी।

भगवान की वाणी अमृत से भी मीठी है। 'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन में जंबुस्वामी सुधर्मास्वामी से विनयपूर्वक वंदन-नमस्कार करके पूछते हैं, "मेरे नाथ ! भगवान ने १६वें अध्ययन में क्या [illegible] ?" जंबुस्वामी इस अमृत का घूँट पीने के लिए प्रभु से [illegible] ! एक बार आत्मा में ऐसी झंकार होनी चाहिए। [illegible] से [illegible] वाणी के श्रवण का अवसर मिला [illegible] ावण [illegible] उपयोग से छूटना नहीं चाहिए। [illegible] आते हैं ? वीतराग [illegible] ? [illegible] मा [illegible] कल्याण नहीं होगा। [illegible] जीव [illegible] हो, खाने बैठे हों, पर [illegible] पर आचरण में उतारा नहीं [illegible] आत्मा ने अनंत काल [illegible] भी इसे गुणस्थानक का [illegible]

संसार का मूल है फिर भी उसे गुणस्थानक नाम किसलिए दिया ? प्रत्येक गुण को खिलाने, विकसित करने और गुणों की श्रेणी में आगे चढ़ने का यह पहला सोपान है । इसलिए मिथ्यात्व होने पर भी इसे गुणस्थानक कहा गया है । 'उपासक दशांग सूत्र' में दस श्रावकों का अधिकार है । उसके एक-एक श्रावक का जीवन देखिए, वे साधु नहीं बने थे, गृहस्थाश्रम में रहते थे, परन्तु उनका जीवन बहुत पवित्र था । सिद्धान्त में तो यहाँ तक कहा गया है कि आनन्द श्रावक का जीवन जैन बनने के पहले भी बहुत ऊँचा था । उनकी आत्मा इतनी उज्ज्वल और प्रामाणिक थी कि समाज में, जाति में या गाँव में कोई उलझन या समस्या होती तो लोग राजा के पास जाते थे, यदि राजा से कोई समाधान संभव न हो सके तो आनन्द को बुलाते । आनन्द आकर न्याय करते तो प्रजा सहर्ष स्वीकार कर लेती । एक नागरिक के प्रति राजा का ऐसा सम्मान भाव था कि मेरे राज्य में ऐसे सत्यवान, न्यायी और प्रामाणिक व्यक्ति रहते हैं । राजा और प्रजा एक मत से उसकी बात स्वीकारें, ऐसा भला कब हो सकता है ?

जब जीवन में प्रामाणिकता हो तभी ना ? मैं आपसे पूछती हूँ कि आपके घर में ऐसा कोई प्रश्न उपस्थित तो होता होगा ना ? और जब आप न्याय करते होंगे, तब घर के सदस्य एकमत से स्वीकार करते हैं या भेद होता है ? (श्रोताओं में से आवाज : 'सभी को मान्य हो, ऐसा नहीं होता') । आनन्द श्रावक समकित प्राप्त करने के पहले भी इतने प्रामाणिक थे । उनका व्यवहार उत्तम और सरल था । लेकिन मिथ्यात्व और मिथ्यात्व में भी फर्क होता है । जैसे क्रम चढ़ता जाता है, गुण बढ़ते जाते हैं। धान कूटने से छिलका उड़ जाता है और चावल निकल आता है । परन्तु कुछ चावल जो लाल रंग के थे, उनकी ललाई रह जाती है । चावल में अभी तक कणकी और बारीक भूसी है फिर भी शालि की अपेक्षा उजले चावल हैं । अभी भी यदि इस चावल को पोलिश किया जाय तो और सफेद बनेंगे । पर अभी तक पूर्णतः निर्मल नहीं हुए हैं । इसी प्रकार जो गाढ़ा (गहरा) मिथ्यात्वी होता है वह अपने जाने हुए को कभी छोड़ता नहीं और दूसरा मिथ्यात्वी होने पर भी किसीकी सत्य बात सुनकर विचार करता है कि इसका कथन सत्य है या मेरा कथन सत्य है ? अतः मिथ्यात्व और मिथ्यात्व में भी अंतर होता है । संत प्रतिदिन कहते हैं कि 'सारा संसार आश्रव का घर है, संसार त्याग करने योग्य है ।' फिर भी आप पकड़े बैठे हैं, छोड़ते नहीं । संसार में विषय-वासना कैसे बढ़े, संसार कैसे फला-फूला रहे, लोग मुझे अच्छा कैसे कहें - हर समय यही भावना रहती है ।

ज्ञानी पुरुषों ने संसार को एक भयंकर कारागाँर की उपमा दी हैं । भौतिक सुख में लिपटे और अति राग की विडंबना भोगते सांसारिक जीवों को सजग बनाने तथा संसार की दुःखमय और दोषमय प्रकृति से परिचित करवाने की कोशिश ज्ञानी करते रहे हैं । राजा, सेठ, साहुकार आदि जिन्हें पुण्योदय से सारी सुख-सामग्री प्राप्त हुई है, जीवों से भी प्रभु समझाते हुए फ़रमाते हैं कि "संसार एक भयंकर कारागृह है ।" ऐसा कौन कह सकता है ? जो स्वयं संसार से तिरे और अन्य भव्य जीवों को संसार से तारने के लिए विचरते हैं - वही कह सकते हैं । सुख-सामग्री से भरा हुआ संसार जिन्हें बीभत्स लगा है, वही कह सकते हैं । ऐसे साधक आत्मप्रशंसा में नहीं रमते । समझदार मानव तो स्वयं ही कहते हैं कि 'हमारे आज के संसार में प्रशंसा करने योग्य है ही क्या ?' जबकि पहले के लोगों को संसार में कितनी अनुकूलताएँ थीं आज तो बड़े-बड़े सेठों को प्रायः नौकरों के आगे नौकरी करनी पड़ती है, चाहे कितना बड़ा सेठ हो, पर एक अदना-सा सरकारी अफ़सर भी उसे धमका सकता है । अवसर आने पर सेठ का नौकर भी उसे दबाने की क्षमता रखता है । आज अनेक स्थानों पर पिता को पुत्रों के नौकर या आश्रित की भाँति जीना पड़ता है । अपनी संपत्ति होने पर भी, यह धन मेरा नहीं है मानकर व्यवहार करना पड़ता है । धन के होते बही-खाते में धन नहीं है दिखाना पड़ता है । कहिए ऐसा संसार छोड़ने लायक है या नहीं ? मोक्ष आदरने योग्य है या नहीं ?

नवतत्त्व की बातें तो बहुत की, परन्तु उसे आचरण में नहीं उतारा । जब आचरण में यह उतरेगा तब बदलाव अवश्य होगा । नवतत्त्वों में यदि मोक्ष तत्त्व के प्रति रुचि जागृत हुई हो और वह आदरने योग्य प्रतीत हुआ हो तो मोक्ष पाने के लिए संसार को छोड़ना पड़ेगा । कहिए क्या करना चाहते है ? मोक्ष पाना है या संसार में ही रहना है ? (श्रोताओं में से आवाज़ 'मोक्ष पाना है ।') यदि आपको मोक्ष पाना है तो आपकी भावना और समस्त क्रियाएँ मोक्षलक्षी होनी चाहिए, संसारलक्षी नहीं ! मोक्ष में जाना है, कर्म से मुक्ति पानी है और घाती, अघाती कर्मों से छुटकारा लेना है तो जीवन में आचरण ज़रूरी है । आपकी कोई वृत्ति संसार की ओर नहीं होनी चाहिए । यहाँ आप वीतराग वाणी सुनने आते हैं, पर वृत्ति होती है कि मेरा संसार कैसे फला-फूला रहे ! कोई साधू-साध्वी सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिए कोई तंत्र-मंत्र देते हों तो आप दौड़ते हुए उनके पास पहुँचेंगे । 'मेरे संसार को जरा भी आँच नहीं आनी चाहिए ।' वीतराग

वाणी का श्रवण करते हुए वृत्ति में यदि संसार ही भरा है तो यह धर्म नहीं है। सांसारिक विषयों का पोषण करने के लिए, संसार रूपी बगीचे को हरा-भरा रखने के लिए किया गया धर्म धर्म नहीं है। जबतक वृत्ति से वासना नहीं हटती, मोक्ष नहीं मिल सकता। और तबतक धर्म सिर्फ नाम का रहता है, आचरण में नहीं। अपना ध्येय तो मोक्ष होना चाहिए।

आप धर्मगुरुओं के पास जाकर, व्याख्यान वाणी का श्रवण करते हैं तब ऐसे भाव जगने चाहिए कि अब मुझे संसार बिलकुल नहीं चाहिए। मेरा जन्म-मरण कब रुके ? इस ध्येय के आते ही आप अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देंगे। 'उत्तराध्ययन सूत्र' में भगवान के वचन है -

असंखय जीवियं मा पमायए, जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं।
एवंवियाणाहि जणेपमत्ते, किण्णु विहिंसा अजया गहिन्ति ॥

- उ. सू. अ-४, गा-१

महापुरुष क्या कहते हैं ? 'जीवन क्षणभंगुर है।' टूटा हुआ आयुष्य फिर से जुड़ता नहीं इसलिए क्षण मात्र का भी प्रमाद करना उचित नहीं। अतः बोध और समझ की ओर मुड़ो। **'कल का शत्रु आज मित्र बन सकता है, परन्तु प्रमाद कभी भी मित्र नहीं बनता'** इसलिए प्रमाद त्याग करने योग्य हैं। प्रमाद आत्मा के घर का डाकू है, बड़ा लुटेरा है। संसार के कार्यो में भी आप अपने प्रमादी पुत्र से कहते हैं ना कि 'उठो, कबतक सोते रहोगे ?' वहाँ सोये को जगाते है, और यहाँ आपको भी आत्मसाधना करने का सुंदर अवसर प्राप्त हुआ है फिर भी जीव प्रमाद का बिस्तर नहीं छोड़ता। सोते हुए पुत्र की तरह प्रमाद में रमी आत्मा को जगाने की ज़रूरत है। अपनी जीवन-डोर टूटने के बाद कोई साथी नहीं रहता, इसलिए आज ही प्रमाद छोड़कर जागने की आवश्यकता है। कल की हमें कोई खबर नहीं है - कुछ तो समझिए। किसान के लिए कण-कण की कीमत है, व्यापारी के लिए मन की, तो पंडित के लिए क्षण-क्षण अमूल्य है। किसान की दृष्टि में एक कण में 'लाखों' कण दिखाई पड़ते हैं, भला क्यों ? क्योंकि इस एक कण से ही पुरुषार्थ करने, बरसात आदि अनुकूल संयोगों के मिलने से लाखों कण मिलेंगे। इसी प्रकार जीवात्मा ने गत जन्मों में लाखों भूले की है, अनाड़ीपन किया है, उन पापों को धोने के लिए सही समझ का एक क्षण भी काफी है। सही समझ का एक क्षण लाखों वर्षो के पाप को सुधारने वाला है। 'आचारांग सूत्र' में प्रभु का कथन है कि '*खणं जाणाहि पंडिए*'। क्षण को पहचानने वाला पंडित है। पंडितों के लिए हर क्षण अमूल्य है। आपने लाख रुपये की राशि अंकों में लिखी,

उसमें से एक शून्य (बिंदु) उड़ा दिया, तो कितना बचा ? दस हजार। लाख में से एक बिंदु उड़ाते ही कितना नुकसान ? वहाँ नुकसान आपकी समझ में आता है। इसी प्रकार आत्मा का एक-एक अमूल्य क्षण उड़ा जा रहा है तो कितना नुकसान हो रहा है ? अतः क्षण को पहचानिए। व्यापार-धंधा करते हुए भी आप अक्सर कहते हैं कि 'यह कमाने का अवसर है, समय है तो पैसे कमा लीजिए।' वहाँ आत्मा को विचार करने की आवश्यकता है। यह तो आश्रव के काम हैं, करने योग्य नहीं हैं। (श्रोताओं में से आवाज : 'ऐसा लगता तो दुकान में क्यों जाता ?') ठीक है, पर संसार में ऐसे भी जीव हैं जो संसार में रहने की अनुभूति दीवानल में रहने जैसी मानते हैं। कैंसर के व्रण की जो पीड़ा होती है उससे बहुत अधिक पीड़ा इस संसार में रहते हुए होती है। उसे तो यही लगता है कि यह आश्रव का घर है, इस संसार के घोर पाप में मैं पड़ा हुआ हूँ, इससे मुझे कब छुटकारा मिलेगा। समकिती आत्मा को कदाचित चारित्र मोहनीय के उदय से संसार में रहना पड़े तो रहता है, परन्तु इसमें रमता नहीं। होम्योपैथी और बायोकेमिक दवा की पुड़िया शक्कर जैसी मीठी होती है, पर आपसे यदि कोई पूछे, "क्या खा रहे हो।" तो आप यह नहीं कहेंगे कि "शक्कर खा रहा हूँ।" आप कहेंगे, "दवा खा रहा हूँ।" दवा खाने की आवश्यकता है इसलिए खाते हैं, मीठी होने पर भी शौक से नहीं खाते। उसी प्रकार समकिती आत्मा को संसार में रहने पर भी आनन्द या शोक नहीं होता। आपका संसार बाहर से भले ही शक्कर जैसा दिखाई देता हो, परन्तु अंदर से तो मुसब्बर जैसा कड़वा है। होम्योपैथी की गोलियाँ मीठी होने पर भी दवा है। उसी प्रकार आपके पास में अकूत संपत्ति व वैभव हो, सोने के झूले में झूलते हों फिर भी क्या उसे स्वर्ग कहा जायेगा ? नहीं ना।

ज्ञानी कहते हैं कि 'ऋषभदेव भगवान जैसा जिसका कुटुंब हो, जिसके कुटुंब के सभी सदस्य, मोक्ष में गये हों तो संसार को स्वर्ग कहा जा सकता है। संसार को जब स्वर्ग की उपमा दी जाती है तब स्वर्ग भी संसार ही है। वहाँ भी सुख नहीं है, दुःख है। वहाँ धन-वैभव के लिए मारामारी है, परिग्रह संज्ञा इतनी प्रबल होती है कि, हर वक्त कहाँ से लाऊँ, कहाँ से पाऊँ ? इसलिए वहाँ भी सुख नहीं।

आप सब यहाँ आते हैं एकांत आत्मा के सुख के लिए, प्रभु की वाणी से मनोरंजन करने या घड़ी-भर के आनन्द के लिए नहीं। इस प्रकार तो बहुत बार श्रवण किया है, परन्तु प्रभु वाणी सुनने का ध्येय है मोक्ष-मार्ग में प्रवेश और संसार से छुटकारा, क्योंकि मोक्ष में ले जाने वाला ही सच्चा धर्म है। देवलोक में ले जाये

तबतक धर्म नहीं है । धर्म तो तब है जब आत्मा में निज गुण प्रगटे । **'आत्मा सो परमात्मा'** आत्मा परमात्मा बन जायेगा । जब आत्मा में धर्म का रंग खिलेगा तब वह विचार करेगा कि मैं अभी जिस गुणस्थानक में हूँ वहाँ से और आगे बढ़ना है । आत्मा का विकास करना है और गुणों के समूह को खिलाना है । गुणस्थानक १४ हैं । इनमें से अमर गुणस्थानक कितने हैं ? (श्रोताओं में से जवाब : 'तीसरा, बारहवाँ और चौदहवाँ - तीन गुणस्थानक अमर है ।') इन गुणस्थानकों में जीव की मृत्यु नहीं होती । इन्हें अमर क्यों कहा गया है ? जो जीव बारहवें गुणस्थानक में पहुँचा है वह वहाँ से तेरहवें में जायेगा ही । तेरहवें गुणस्थानक में जीव मरता नहीं बल्कि अलेश्यी अवस्था में चौदहवे गुणस्थानक में जाकर अयोगी स्थिति को प्राप्त करता है । तेरहवाँ गुणस्थानक सयोगी केवली गुणस्थानक कहलाता है और चौदहवाँ गुणस्थानक अयोगी केवली तेरहवें गुणस्थानक में मन, वचन और काया के शुभ योग रहते है । इस गुणस्थानक में पहुँचे केवली को इरियावहिया क्रिया होने के कारण सातावेदनीय कर्म का बंध होता है । यह कर्म भी पहले समय में बाँधता है, दूसरे समय में वंदन करता है और तीसरे समय में निर्जरा हो जाती है । अयोगी केवली गुणस्थानक में मन-वचन-काया का योग नहीं है । इस गुणस्थानकके बारे में जितना भी कह दिया जाय, कम ही होगा । यहाँ बाकी बचे चार अघाती कर्मो का क्षय करके, आठों कर्मो से मुक्त होकर पाँच ह्रस्व अक्षर अ, इ, उ, ऋ, लृ के उच्चारण करने जितने समय तक रहकर मोक्ष में चले जाते हैं । जिसे मोक्ष तत्त्व के प्रति रुचि जागी है उसे संसार में रहते हुए भी यह बँधन रूप प्रतीत होता है । संसार के राग और भोग विष के समान हेय प्रतीत होते हैं । जिस प्रकार सोने के पिंजरे में बंद तोता, पिंजरा स्वर्ण निर्मित होने के बावजूद बँधन रूप मानता है, उसी प्रकार समकिती आत्मा को संसार बँधन रूप लगता है । जब ऐसा होगा तो माटुंगा का यह डोलर-एरिया अध्यात्म एरिया बन जायेगा । जब अध्यात्म एरिया बनेगा तब (श्रोताओं में से आवाज : 'संसार ज़हर जैसा होगा ।') यह तो मेरी कही बात हुई, आपके अंदर की आवाज़ नहीं । आपकी यह आवाज़ रानी छाप रुपये जैसी नहीं बल्कि खोटे रुपये जैसी आ रही है । सिद्ध क्षेत्र में जाना हो तो रानी छाप चाँदी के सिक्के जैसे बनो । लोग कहते है कि आज रानी छाप एक रुपये की कीमत दस-ग्यारह गुना है । आपकी कीमत भी इतनी बढ़ जाये तो आपको कितना भारी लाभ हो जाये । आप लोगों से ही सुना है कि महासतीजी ! संसार में कोई आनन्द नहीं है । सारी स्वार्थ की माया है । आज स्वयं

देखते हैं कि जबतक संपत्ति से सराबोर हैं तब सब हमारे लिए हाजिर। परन्तु कर्म के उदय से संपत्ति नष्ट हो जाये तो कोई सगा नहीं होता। मदद का हाथ बढ़ाना तो दूर, आश्वासन के दो शब्द भी कहने वाला कोई नहीं होता।

अकळावे आ संसार मने, पण एनी माया न छूटे,
हुं जाणुं छुं के आ दुनिया स्वार्थी थईने सगपण राखे,
काले तो हुं बेहाल बनुं, कोई बटकुं रोटली न आपे,
तोय मारा मारा कहेवानी ममतानो तंतु ना तूटे... हाय न तूटे।

उत्तम मानव देह प्राप्त हुआ है लेकिन वृत्ति ऐसी रही तो जीवन में से मानवता ही खो जायेगी। पैसा प्राप्त करने में पाप, उसके संग्रह में पाप, त्याग करना न आये तो पाप। अरेरे! मैंने इतना पैसा कमाया, धंधा बढ़ाया। अब क्या होगा? पुत्र नासमझ और नादान है, धंधा संभाल नहीं पायेगा। फिर मेरी मृत्यु के बाद सबका क्या होगा? ज्ञानी कहते हैं कि 'हाय, हाय करते जाओगे तो हाय-हाय ही होगी।' अपने पुत्र के लिए आप क्या कर सकते हैं? सोचते हैं कि 'मैं अपने पुत्र के लिए करके जाऊँ!' आप सब कुछ व्यवस्थित करके भी जायेंगे। लेकिन पाप का उदय होगा तो सब चला जायेगा। राजाओं की सत्ता तक नष्ट हो गई।

बंधुओं! अपनी स्थिति के बारे में सोचिए। यूं देखा जाय तो आपका पुण्योदय जबरदस्त है। लेकिन पुण्योदय से प्राप्त सामग्री का उपयोग कैसा कर रहे हैं? यह देखने पर लगता है कि महान पुण्योदय से प्राप्त सामग्री के रहने पर भी धर्म के भाव का स्पर्श हुआ है क्या? आपका भाग्य तो ऐसा है कि इस माटुंगा क्षेत्र में बिना बुलाये ही साधू-संत खिंचे आते हैं। मैं आपसे पूछती हूँ कि 'यहाँ बैठे लोगों में कोई भी ऐसा है जिसे साधू-संतों का योग न मिला हो?' ऐसी सामग्री के योग में आपमें धर्मकरणी के लिए जो उल्लास विकसित होना चाहिए, वह दिखाई दिया है क्या? यह स्थिति बताती है कि गत जन्म में आपने धर्म तो किया होगा, परन्तु दोषयुक्त किया था। तत्त्वज्ञान सीखना, तत्त्व के स्वरूप का श्रवण करना, उसके रहस्य को समझना और भगवान ने जिसे हेय कहा है, उसे छोड़ना तथा जिसे उपादेय कहा है उसे ग्रहण करना - यही धर्म मोक्ष तक ले जायेगा। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि 'संसार की मूर्छा छोड़िए और धर्म में उल्लास बढ़ाइए।' सर्प के दाँत में ज़हर होता है, परन्तु उसकी जीभ या शरीर में नहीं होता। सँपेरा या मदारी सर्प के दाँत निकाल देते हैं फिर सर्प

हमारे जैसा हो जाता है । इसी तरह आपकी दाढ़ में मूर्छा का ज़हर भरा हुआ है । सर्प स्पष्ट रूप से फूँफकारता है और आप अंदर ही अंदर फूँफकारते रहते हैं । जबतक सर्प के विषदंत हैं तभी तक भय है । उसी प्रकार जबतक आपकी दाढ़ में मूर्छा है तभी तक संसार है । दाढ़ से मूर्छा जाते ही संसार भी छूट जाता है । ममत्व और अहंकार भाव ही संसार में भटकाता है ।

'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन में मान-कषाय की भयंकरता का स्पष्टीकरण है । मान के मचान पर चढ़े हुए होने के कारण केवल ज्ञान नहीं पा सके । कितनी अघोर साधना थी, परन्तु मान के कारण केवल ज्ञान अटक गया । मान के जाते ही केवल ज्ञान प्राप्त हो गया । हमारे अंदर मान-कषाय है, जरा भी त्याग का भाव नहीं और केवल ज्ञान ही इच्छा करें तो भला कैसे मिले ? मान के कारण जीव कैसे कर्म बाँध लेता है ? कितना संसार बढ़ा लेता है ? इस अध्ययन का मूल मान-कषाय है । जीवात्मा ने सबकुछ समझा पर सिद्धान्त के हार्दिक भाव को नहीं समझा । द्रौपदी के जीव को मान-कषाय के कारण कितना भटकना पड़ा, कहीं वही कारण मुझमें तो नहीं ?

जीव शरीर की कितनी जतन करता है ? सामान्य सर्दी-खाँसी हो और दवा लेने से कम न हो तो डर लगता है कहीं मुझे टी.बी. तो नहीं हो जायेगी ? रक्त की परीक्षा, एक्स-रे और डोक्टर से इलाज प्रारंभ कर देते हैं । देह के दर्द की कितनी चिकित्सा करवाते हैं ? इसी तरह क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषाय आ जायें तो विचारिए कि मुझे भव-रोग तो नहीं हो जायेगा ना ? शरीर बीमार पड़े तो उसके दुर्गुण ढूँढते हैं, उसी प्रकार मान-माया-ईर्ष्या-लोभ, रागद्वेष आदि जीवन में आ जाये तो समझ लीजिए कि मुझमें दुर्गुणों का भंडार प्रवेश कर गया है । इस सड़न को यदि जीवन से नहीं निकालेंगे तो यह भविष्य में फैलता जायेगा । यह सड़न कितना खराब है, कैसी दुर्बुद्धि उत्पन्न करता है इस पर आपसे एक कहानी कहती हूँ ।

करुण कहानी : माँ और बेटा थे । बेटे के तीन वर्ष के होते माता मृत्यु-शय्या में सो गयी । तीन वर्ष का छोटा बालक क्या समझता ? वह तो निर्दोष निष्पाप था । उसे कुछ मेरा-तेरा, अच्छा-बुरा और राग-द्वेष का पता न था । तीन वर्षो में भी माता ने संस्कारों की सुंदरता से बालक का जीवन-बाग खिला दिया था । जहाँ दाडिम, पपीता, केला आदि के अलग-अलग अनेक वृक्ष हों वह बगीचा नहीं कहलाता, परन्तु जहाँ सभी वृक्ष व्यवस्थित और सुंदर तरीके से सजाये गये हों वह बगीचा कहलाता है । उस बगीचे में आप शाम को सैर करने जाते

हैं। ज्ञानी कहते है कि 'आपको सैर करना हो तो '*धम्मा रामे चरे भिक्खु*' 'धर्म रूपी बगीचे में विचरो ।' आप किंग सर्कल के बगीचे की हरियाली में घूमने जाते हैं । जहाँ मेंहदी के पौधे छाँटकर घोड़ा, कुत्ता, बाघ, सिंह आदि आकार बनाये हुए हैं । बहुत से लोग अपने घरों के कंपाउंड में भी शोभावृद्धि के लिए तरह-तरह के पेड़ लगाते हैं । मेंहदी की बाड़ लगाते हैं । ज्ञानी कहते हैं कि 'आप बाग नहीं बनाते वरन् आत्मबाग के दुश्मन बना रहे हैं, मेंहदी नहीं काटते, आत्मा के सद्‌गुण काट रहे हैं ।' इसलिए समझकर काम कीजिए।

माता का परलोक प्रयाण : तीन वर्ष तक बालक के जीवन को सींचकर माता चली गई । चित्रकार चित्र बनाता है, परन्तु उनमें भी अंतर होता है । प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धि समान नहीं होती । किसीको एक बार समझाने से समझ आ जाती है तो किसीको एक ही बात सौ बार समझानी पड़ती है । बालक के पिता ने सोचा कि 'अब इस बालक का पोषण मुझे करना है ।' बच्चे को बालमंदिर में दाखिल करवाया । खिलखिलाते बच्चों से माँ का नाम सुनकर बच्चे ने घर आते ही पिता से माता के बारे में पूछा कि "मेरी माँ कहाँ है ?" मृत्यु के समय बच्चे को पड़ोसी के घर में रखा गया था, इसलिए वह इस बारे में अनजान था । माता ने पहले ही कह रखा था कि 'बच्चे को मेरे सामने न लाना, क्योंकि बालक को देखने पर हृदय भर आयेगा और कहीं मन उसमें अटक गया तो ! यह तो मेरी आत्मा का त्राण करने वाला शरण नहीं बनेगा ।' पति से भी कहा कि 'यदि आप मेरे पास रहना चाहते हैं तो धर्मगुरु के रूप में रहिए, पति बनकर नहीं ।' बालक माँ को न देखकर पूछता है : "मेरी माँ कहाँ गयी है ?" पिता बोले : "बाहर गयी है ।" "इतने दिन हो गये आती क्यों नहीं ?" जब उसने बहुत इसरार किया तब पिता ने कहा कि "तेरी माँ दुनिया छोड़कर चली गयी है ।" माँ के वात्सल्य का भूखा बालक कहता है : "कैसे भी करो पर मुझे मेरी माँ वापस ला दो ।" माता उसे बगीचे में घुमाने ले जाती थी, महानपुरुषों के जीवन-चरित्र सुनाती थी । रात में नवकार मंत्र बुलवाती और फिर चंदनबाला, महावीरस्वामी आदि की कथा कहती । पिता सोचने लगे कि 'बालक के हठ को मनाना बड़ा मुश्किल है ।' जो माँ चली गई है वह तो लौटेगी नहीं ।

पुत्र की इच्छा पूर्ति के लिए पिता का विचार : अंत में पिता ने अपने मित्रों से कहा कि "इस बालक को तो माँ चाहिए । यह किसी भी प्रकार अपनी हठ नहीं छोड़ रहा । अतः आपलोग मेरे लिए एक अच्छी, संस्कारी कन्या देखिए ।

मुझे रूप-रंग के आधार पर नहीं, बल्कि बालक को माता का प्यार दे सके ऐसे संस्कारों वाली स्त्री चाहिए।" एक लड़की के साथ सगाई हो गई। विवाह के दो दिन पहले लड़की के किसी परिचित ने उसे कहा कि "ससुराल में पहुँचते ही तू माँ बन जायेगी, पहली पत्नी का पुत्र वहाँ उपस्थित है, जबकि तू स्वयं अभी छोटी बच्ची जैसी है। इस उम्र में माँ बन जायेगी।" इस प्रकार उसके हृदय में ऐसा जहर उगला कि लड़की ने विवाह करने से इन्कार कर दिया। पिता बहुत संस्कारी थे - उन्हें बहुत समझाया और विवाह कर दिया।

लड़की ब्याहकर ससुराल आयी तो माँ के प्रेम को तरसता बालक 'माँ' कहकर उससे लिपट पड़ा। परन्तु लड़की ने उसे झटक दिया और बोली : "मैं क्या तेरी माँ हूँ ? मुझे माँ मत बोलो।" बालक का कोमल हृदय मुर्झा गया। वह एक कोने में बैठकर रोने लगा। अपनी माँ को याद करता रहा। माता-पिता के सामने दिखावा करती, परन्तु उसे लगातार दुत्कारती रहती। ऐसा करते... करते दो-ढाई वर्ष बीत गये। एक बार पिता दफ्तर गये हुए थे, माता भी समाज में किसीके यहाँ शोक में सांत्वना देने गयी थी। बालक ने ड्रायर खोलकर पोस्टकार्ड निकाला और माता को पत्र लिखने लगा। उसने लिखा, 'प्यारी माता, तेरे जाने के बाद माँ आयी है पर वह मुझे अपने को 'माँ' नहीं कहने देती, न ही मुझे तेरे जैसा प्रेम करती है ? रात में नवकार मंत्र नहीं बुलवाती है न चंदनबाला की कथा सुनाती है। बगीचे में खेलने भी नहीं ले जाती और शाला से लौटने पर प्रेम से गले भी नहीं लगाती। इसलिए हे माँ अपने इस लाड़ले बेटे को प्यार करने तू स्वयं आ जा।' पत्र लिखकर जेब में रख रहा था कि तभी माता लौटी और उनकी नजर पड़ गयी। आते ही लड़के की गर्दन पकड़ी। "क्या चोरी कर रहा था ?" लड़का माता के डर से काँप रहा था। बिल्ली से मुँह में पकड़े कबूतर की तरह वह थरथरा रहा था। "माता ! मैंने कुछ नहीं लिया है।" बोली : "तेरी जेब में क्या रखा है, निकाल।" पोस्ट कार्ड पढ़ा। एक-एक शब्द में बच्चे ने अपना दिल निकाल दिया था। भगवान की, चंदनबाला की वार्ता सुनने नहीं मिलती, माँ कहने का प्रेम नहीं मिलता - यह लिखा है, पर यह नहीं लिखा कि माँ मुझे खाने-पीने में तकलीफ देती है।

माता का हृदय-परिवर्तन : पत्र पढ़कर माता धरती पर बैठ गई। सोचने लगी, 'आह ! मैं कितनी दुष्ट हूँ ! मेरी आकृति मानव की है पर प्रकृति पशु जैसी है। मैंने इस बालक को मातृप्रेम नहीं दिया, इसलिए तो उसे ऐसा लिखना

पड़ा ।' उसका हृदय-परिवर्तित हो गया । कोमल फूल जैसे पुत्र के पत्र को पढ़ते ही वह कोमल बन गयी । उसे पुचकारते हुए बोली : "रो मत बेटा ! मैं तेरी माँ हूँ ! चल, स्नान करके भोजन कर ले, फिर मैं तुझे कहानी सुनाऊँगी ।" पिता के आने पर बालक अत्यन्त प्रसन्नता से उत्साहित होकर बोला : "बापूजी ! अब मुझे माँ मिल गयी है ।" सुनकर पिता संतुष्ट हुए ।

बंधुओं ! मेरे कहने का आशय यह है कि आज का क्रूर व्यक्ति भी अच्छे संयोग पाकर देव जैसा बन जाता है और बुरे संयोग मिलने पर राक्षस जैसा बन जाता है । अपने अंदर की मानवता को खिलाना है । बाती है परन्तु मिट्टी का दिया नहीं है तो दीपक रहेगा कैसे ? पावरहाउस चाहे जितना पास हो लेकिन कनेक्शन नहीं लिया हो तो प्रकाश कैसे प्राप्त होगा ? इसी प्रकार मानव जीवन उस मिट्टी के दिये की भाँति है जिसमें भगवान के वचनामृत रूपी तेल भरने पर सम्यक्त्व रूपी दीप अवश्य प्रकटेगा । वैभव-विलास और हरी-भरी वाड़ी से घर स्वर्ग नहीं बनता, बल्कि जिसके घर में नीति है, प्रामाणिकता है, वह स्वर्ग के समान बन सकता है । कूएँ में हो तो बाहर आ जाए । आपका संसार आदर्श होगा तो पवित्र जीव वहाँ से निकलकर संयम-मार्ग में आयेंगे । आपके कुटुंब से एक आत्मा में वैराग्य उत्पन्न हो तो वह पवित्र बनेगा और दूसरों को भी पवित्र बनायेगा। आहार-पानी, वस्त्र-औषध, लड़का-लड़की सब आपके घर से ही आयेंगे । आप साधू न बन सकें तो गृहस्थाश्रम तो सुंदर बनाइए कि जिसके लिए देव भी कामना करें कि हमारा जन्म ऐसे उत्तम घर में हो ।

आराधना के पवित्र, मंगल दिवस नजदीक हैं । शीतकाल में बहुत सर्दी और ग्रीष्म काल में गर्मी बहुत होती है, परन्तु चातुर्मास का समय मध्यम काल है, न अधिक सर्दी न अधिक गर्मी । इसीलिए आराधना में अनुकूल रहता है । जैसे पत्र पढ़कर माँ का हृदय बदला, वैसे ही वीतराग वाणी श्रवण कर आप सब आश्रव छोड़कर संवर में आइए ।

चंपानगरी की बात चल रही है । वहाँ धर्मात्मा और पुण्यात्मा निवास करते हैं । समुद्र है तो उसमें रत्न भी हैं और नमक भी है । कुछ जीव रत्न प्राप्त करते हैं तो कुछ मात्र नमक । चंपानगरी में रत्न के समान आत्माएँ निवास करती हैं । अब चंपानगरी में किसकी बात वर्णित होगी, किसका अधिकार चलेगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ४

आषाढ़ कृष्ण ५, सोमवार | दिनांक : ८-७-७४

साधक दशा में स्थिर बनो

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शास्त्रकार भगवंत ने ३२ आगम की प्ररूपणा की। उसमें ११ अंगों में छठे अंग 'ज्ञाताजी सूत्र' का अधिकार हमें जानना है, विचारना है, चिंतन करना है, 'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन में किसका अधिकार वर्णित है ? जिस आत्मा ने मान-कषाय से जुड़कर भूल की, उस नागश्री ब्राह्मणी का अधिकार है। नागश्री ने जो भूल की उसमें साधू को मारने का भाव अंश मात्र भी नहीं था, लेकिन अंदर मान था कि मेरी इज्जत कैसे बचे, मेरी आबरू को धक्का न लगे। देवरानी-जेठानी को अपनी भूल न मालूम हो जाय इसी अर्थ में मान का सेवन किया था। संसार की मान-माया आदि जीव को संसार में डुबा देते है। संत को आहार बहराने के समय मान से ही वह संचालित थी। इस अधिकार से हमें यह समझना है कि आत्मा ने मान किया तो संसार में भटकना पड़ा। वास्तव में मान मीठा ज़हर है जबकि क्रोध कड़वा जहर है। जीव प्रतिकूल संयोगों में स्थिर रह सकता है पर अनुकूल संयोगों में स्थिर रहना कठिन है। अनुकूल संयोगों में जीव फिसल जाता है। आत्मा में जब ज्ञान की ज्योति झलकती है तब दुश्मन को दुश्मन नहीं मानता। अनुकूल संयोगों में जीव की अस्थिरता कैसे हो सकती है - यह मैं आपको समझाती हूँ। आपका कोई शत्रु हो तो आप उससे सावधान रहेंगे कि पता नहीं कब वह वार कर बैठे, इसलिए दुश्मन से सावधान रहने के लिए आप उसका रास्ता छोड़कर अन्य मार्ग के पथिक बनेंगे। परन्तु जो आपका प्रिय घनिष्ठ मित्र है, उसपर आपको पूर्ण विश्वास है। यह मित्र कब शत्रु बनकर गुप्त रूप से छूरी चलायेगा - आप नहीं जानते। इसलिए आप उससे कोई खतरा महसूस नहीं करते। इस प्रकार प्रतिष्ठा, कीर्ति आदि भी अनुकूल उपसर्ग है।

ज्ञानी कहते हैं कि 'हे साधक ! तुम्हारे सामने कीर्ति, यश आदि अनुकूल उपसर्ग आयें तो उन्हें आग के समान मानना।' 'उत्तराध्ययन सूत्र' के ३५वें अध्ययन में भगवान ने फ़रमाया है कि "आग के समान कोई शस्त्र नहीं है।" क्योंकि एक

व्यक्ति पिस्तौल से गोली छोड़े तो जिस पर छोड़ी गयी है उसीको लगती है, किसी अन्य को नहीं । किसी धारदार हथियार से किसी पर वार किया जाये तो जिसे मारा जाये उसे ही लगता है किसी अन्य को नहीं । यही स्थिति लगभग प्रत्येक हथियार की है । लेकिन आग को यदि कोई बुझाने वाला न मिले, आग अनियंत्रित हो जाये तो सभी को अपने घेरे में लेती है । वह नहीं देखती कि वह अच्छा है या बुरा । इसीलिए भगवान ने फ़रमाया है कि "अग्निकाय के आरंभ-समारंभ से मत जुड़ो !" यह महापाप और हिंसा का कारण है, अग्नि दसों दिशाओं में फैल जाती है । इसलिए भगवान की वाणी है -

विसप्पे सव्वओ धारे , बहु पाणि विणासणे ।
नत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइं न दीवए ॥

- उत्त. सू. अ-३५, गा-१२

सर्वत्र जिसकी धाराएँ और शिखाएँ प्रसरित हैं और जो अनेक प्राणियों का नाश करने वाली है, उसके जैसा कोई अन्य शस्त्र नहीं है । अतः साधक को ऐसी अग्नि के आरंभ में अनुमोदना नहीं करनी चाहिए । प्रतिष्ठा, यश आदि अनुकूल उपसर्गों को आग के समान मानकर उससे प्रतिक्षण सावधान रहने की आवश्यकता है।

जंबुस्वामी सुधर्मास्वामी से वंदन-नमस्कार करके पूछते हैं कि "हे प्रभु ! 'उत्तराध्ययन सूत्र' के १६वें अध्ययन में भगवान ने क्या भाव प्ररूपित किये है ?" जंबुस्वामी का विनय कितना सुंदर है ! जबतक विनय नहीं आता, नम्रता नहीं आती, वहाँ तक गुणरूपी पानी प्राप्त नहीं हो सकता । सामान्य व्यवहार में बहनें रोटी बनाने के लिए आटा गूँधती हैं तो कितना कड़ा गूँधती है ? यदि गीला गूँधे तो रोटी अच्छी नहीं बनती । बड़ी मेहनत से आटा कड़ा-कड़ा गूँधती है, परन्तु रोटी बनाने के लिए उसे पानी और तेल के सहारे ढीला करती और लचीला तथा चिकना बनाती है । तब रोटी मुलायम बनती है । यह तो घर-घर में होता है । कर्म के सामने जूझने, कर्म की शृंखलाएँ तोड़ने में आप ढीले मत बनिए । इसमें ढीले बनने से काम नहीं बनेगा । उस आटे जैसा कड़ा और शूरवीर बनिए । सिद्धान्त में चार गोलों का न्याय दिया गया है । लोहे का गोला अग्नि में पिघल जाता है, मोम का गोला भी अग्नि में पिघल जाता है, लकड़ी का गोला अग्नि में जल जाता है, पर कच्ची मिट्टी का गोला अग्नि के संपर्क से और मजबूत होता है । मेरे महावीर के श्रावक मिट्टी के गोले जैसे होते है, लोहे, मोम या लकड़ी के गोले जैसे नहीं । उनकी कसौटी होती है तो वे मोम के गोले की भाँति गल नहीं जाते बल्कि मिट्टी के गोले की भाँति अधिक दृढ बनते हैं । कर्म के सम्मुख जूझने का समय

आने पर पक्की मिट्टी के गोले जैसे बन जाते हैं । जब आत्मा को कर्म का दर्शन समझ में आ जाता है तब वह कर्म बँधन से पीछे हटता है । जबतक घाती और अघाती कर्म की एक भी प्रवृत्ति रहेगी तबतक आत्मा मुक्त नहीं होगा । अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी की चौकड़ी चली जाये, पर संज्वलन क्रोध भी होगा तो केवल ज्ञान नहीं होगा । संज्वलन कषाय कितना अल्प है ! पानी में खींची लकीर जितना । जो तुरंत मिट जाता है । लेकिन इतना-सा कषाय भी केवल ज्ञान में बाधक है ।

ग्यारहवें गुणस्थानक को वीतरागी गुणस्थानक कहा गया है । उसे वीतराग की उपाधि मिली है । वहाँ एक कण जितना लोभ ढँका हुआ पड़ा है । समय आने पर निमित्त मिलते ही प्रज्ज्वलित हो जाये तो वहाँ से पतन संभव है । उसी स्थानक में काल करे तो अनुत्तर विमान में जाये और पतन हो या गिरे तो दसवें से पहले गुणस्थानक में भी आ सकता है । परन्तु आठवें गुणस्थानक पर पहुँचकर यदि आत्मा में विचार उपजे कि मैं किसलिए गिरा (पतित हुआ) ? एक कण जितना लोभ मेरे लिए हानिकारक बन गया । इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए यदि चेतनदेव जाग जाये तो आठवें गुणस्थानक से क्षेपक श्रेणी में प्रवेश कर ले । फिर नवमें, दसमें होकर सीधे बारहवें में चला जाये । बारहवें से तेरहवें में पहुँचकर केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त कर ले । ग्यारहवें गुणस्थानक से पड़वाई (गिरा हुआ) यदि आठवें में पहुँचकर क्षेपक श्रेणी में आ जाये तो बारहवें में जाता है, फिर तेरहवें चौदहवें से मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

प्राचीन काल में एक निमित्त मिलते ही लोग वैराग्य के रंग में रंग जाते थे । सगर चक्रवर्ती के ६०,००० पुत्रों की मृत्यु हो गयी । उनका निमित्त मिलते ही सगर चक्रवर्ती को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली । नमिराजर्षि को दाहज्वर हुआ । उन्हें राहत पहुँचाने के लिए उनकी पत्नियाँ चंदन घिसने लगा । चंदन घिसने से होनेवाले कंगन की ध्वनि सुनकर उनके मन में विचार आया कि 'जहाँ अनेक हैं वहाँ आवाज़ है, दुःख है और एक में शांति तथा सुख है ।' इस प्रकार कंगन के निमित्त मिलते ही नमिराजर्षि को वैराग्य हो गया और दीक्षा ले ली । अनाथीमुनि को जब रोग हुआ तब माता-पिता, पुत्र, भाई-भगिनी कोई रोग से राहत न दिला सका । उनकी प्राणप्रिय पत्नी, जिसने पति के लिए -

अन्नं पाणं च ण्हाणं च, गंधमल्लवीलेवणं ।
मए नायमनायं वा, सा बाला नेव भुंजइ ।।

- उत्त. सू. अ.-२०. गा-२९

अन्न-जल का त्याग किया था । इत्र-फुलेल, स्नान आदि का त्याग किया था । जो पति के प्रति '*अणुरत्ता*' अत्यंत अनुरक्त थी । जिसकी आँखों से '*अंसु पुण्णेहिं नयणेहिं ।*' आँसु बरस रहे थे, फिर भी पति का रोग मिटाने में समर्थ न हो सकी । आपकी स्त्रियाँ ऐसा त्याग करेंगी, भला ? (श्रोताओं में से आवाज : 'कैसे करेंगी ?') संसार का झटका लगते ही अनाथीमुनि ने विचार किया कि 'मुझे रोग से कोई नहीं बचा सकता' । बस इस विचार के निमित्त से संयम का चिंतन करने पर रोग मिट गया और उन्होंने संयम ग्रहण कर आत्म-कल्याण किया । देवानुप्रियों ! विचार कीजिए जिसे अपना मान लिया है वे सामान्य रोग से मुक्त नहीं कर सकते तो जन्म, जरा और मृत्यु रूपी रोग से भला कैसे बचा सकेंगे ? मेरे श्रावकों को संसार में ऐसे अनेक प्रसंग आये होंगे, आपके संसार में हर क्षण ऐसे प्रसंग आते रहते हैं जिनसे बोध मिलता है, परन्तु आप संसार में इस प्रकार उलझ गये हैं कि निकल नहीं पाते ।

कल मैंने कहा था कि संसार एक कारागार है, जेल है, परन्तु आपको यह जेल जैसा नहीं दिखता । जिसमें खाने-पीने मिलता हो, घूमने-फिरने मिलता हो, अखबार पढ़ सकते हो ऐसी प्रथम श्रेणीवाली जेल हो । उस जेल में ऐसे सब सुख हों तो इसे क्या कहेंगे ? (श्रोताओं में से जवाब : 'जेल ही कहा जायेगा') इसी प्रकार आपका संसार भी जेल है । भले ही उसमें आप सुख से रहते हों, धन-वैभव हो, आलीशान भवन हो पर है तो जेल ही । परन्तु अभी तक आपको वह जेल प्रतीत नहीं हुआ है । जिसे संसार जेलरूप लगा है उसका बेड़ापार अवश्य होता है । महान-पुरुषों को संसार कारागृह जैसा ही दिखा तो संसार से छुटकारा पाने के लिए ही सब कोशिशें कीं । संसार तो भयंकर कैदखाना ही माना जाता है । किसलिए ? संसार सदा ही कषाय रूपी दीवारों के कारण दुर्भेद्य होता है, इस दीवार में राग और द्वेष रूपी दो दरवाजे जड़े होते हैं । ऐसे निःसार संसार में अज्ञान रूपी अंधकार व्याप्त है जिसमें इष्ट संयोग और अनिष्ट वियोग की लालसाएँ पीड़ित रखती हैं । इष्ट का संयोग चाहने पर भी नहीं मिलता, मिलने पर नहीं टिकता । अनिष्ट का संयोग इच्छित नहीं होता और अनिष्ट के वियोग की तीव्र इच्छा हो तो भी अनिष्ट का संयोग हो जाता है । संसार रूपी कारागृह में पड़े हुए जीव को इष्ट के संयोग और अनिष्ट के वियोग की भावना लोहे की बेड़ी की भाँति जकड़े रहती है । विविध रोग और पीड़ा भुगतनी पड़ती है । बंधुओं ! मैं आपसे पूछती हूँ कि 'आपको इस प्रकार के दुःखों का अनुभव हुआ है या नहीं ?' (श्रोताओं में से आवाज : 'बहुत अनुभव

हुए हैं ।') जीव कषायों से घिरे हुए है और राग-द्वेष रूपी अंधकार की तरह अज्ञान में भटकते रहते हैं । इस भव में कर्मवश से प्राप्त कुटुंब को मेरा-मेरा कहकर आपने स्वयं को ही गाढे बँधन में बाँध लिया है - क्या ऐसा लगता है ? बार-बार ऐसा लगता है ना कि यह हमारे अनुकूल है और यह प्रतिकूल ? अनुकूल को बनाये रखने और प्रतिकूलता से बचने की चिंता आपको बाँधे रखती है । आपके शरीर में रोग और हृदय में भय कितना है ? हृदय में शोक की दाह भी कितनी है ? अपने अनुभवों को वास्तविक रूप सें विचार कर देखिए तो आपको लगेगा कि यह संसार भयंकर कैदखाना है । जब ऐसा लगेगा तभी संसार से छुटकारे का भाव जागेगा और फिर उस ओर पुरुषार्थ करने का मन अवश्य होगा । संसार जब कारागृह लगेगा तब मोक्ष के प्रति रुचि जगेगी ।

देवानुप्रियों ! आपको ऐसा विचार कभी आता है कि 'मुझे संसार में भटकाने वाला कौन है ?' विचार करेंगे तो अवश्य समझ में आयेगा कि मैं कर्मो के समूह से घिरा हुआ हूँ, इसीलिए संसार में भटकना पड़ता है । मेरे बाँधे हुए कर्म ही मुझे क्षण-क्षण दंडित कर रहे हैं ।' कर्मों के समूह तो बड़े-छोटे सभी को सजा देते हैं । मैं छोटा बालक हूँ तो कर्म यह नहीं सोचते कि यह छोटा बालक है, इसे छोड़ दें । कर्म तो सभी को भुगतने पड़ते हैं । आप यह महसूस करें मैं अनंतानंत काल पूर्व भी था और उस अनंतानंत काल में अनेक बार देवगति में, अनेक बार मनुष्य, तिर्यंच तथा नरक गति में गया होऊँगा । इन चारों गति की जो विडंबनाएँ है वह भी जीव ने अनंत बार भोगी होगी । इस प्रकार चार गति में भटकने का मुख्य कारण कर्मों का समूह है । कर्म समूहों की पराधीनता जीव को चार गति में भटकाती है । जब ऐसा विचार करेंगे तो मन में आयेगा कि क्या इस जीव को इसी प्रकार चार गति में भटकना और उसकी तकलीफें ही भोगनी है ? यदि जीव उपार्जित कर्मो के समूह से मुक्त नहीं हो और नवीन कर्म बाँधता रहे तो स्थिति यही रहेगी । इसलिए कर्म-समूहों से छूटने का पुरुषार्थ करना चाहिए ।

बंधुओं ! मैं आपलोगों से पूछती हूँ कि 'जीव अनंतकाल से भटक रहा है जानकर आपको अपनी स्थिति का ख्याल आया या नहीं ?' कदाचित आया भी हो तो अधिक समय तक स्थिर नहीं रहा होगा । अब मुझे इस जन्म में पूर्वकृत कर्मो की निर्जरा करनी है । यह ख्याल रखना है कि नये कर्म कम से कम बंधे, यदि बँधे भी तो उनका उदय मुझे इस संसार में सुख की ऐसी सामग्री प्रदान करे जो मेरी समाधि में सहायक बने । फिर भी मेरा पुरुषार्थ तो कर्म-समूहों से छूटने का

होगा । ऐसी लगन जब जागेगी तब पत्नी-परिवार का क्या होगा - यह चिंता नहीं करके, सदैव यह विचार रहेगा कि काया रूपी पिंजरे को छोड़कर जाना है तो क्यों न उसका सदुपयोग कर लूँ !

एक व्यक्ति तप करता है, तो शरीर सूखता है परन्तु आत्मा की अनंत शक्तियाँ खिलती हैं और कर्म की निर्जरा होती है । आत्मा का प्रकाश झलकता है । वह देह से जर्जर है पर आत्मा दृढ़ है । ऐसे श्रावक मिट्टी के गोले जैसे होते है । दूसरे व्यक्ति का शरीर रोग के कारण सूख गया है, डोक्टर कहेगा, 'अमुक वस्तु खाओगे तो मर जाओगे ।' होमियोपेथी या बायोकेमिक दवा होगी तो कहेगा, 'सुगंधित पदार्थ न खाओ ।' अतः मूली, लहसुन न खायें, तो क्या इसे त्याग कहेंगे ? डोक्टर तो इतना ही कहेंगे कि 'यह वस्तु लेंगे तो रोग नहीं मिटेगा' । परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि 'कांदा-लहसुन खायेंगे तो उसीमें जायेंगे ।' आज तो कंदमूल खाना कोमन हो गया है । अरे, कोई तो आकर कहते हैं कि 'महासतीजी आज तो अंडा भी कोमन हो गया है ।' क्या ऐसे आप जैन कहलाते है ? जैनकुल में जन्मे है, जैन नाम-से हैं, आत्मा से नहीं । सच्चा संत भी वही है जो स्वयं भी साधना करे और दूसरों से भी कराये । किसी भी कठिन प्रसंग में उसका स्पर्श तक नहीं करता, जिसे त्याग दिया है । उसके लिए तो -

रजकण के रिद्धि वैमानिक देवनी,
सर्वे मान्या पुद्‌गल एक स्वभाव जो... अपूर्व अवसर...

पुष्कल सुख और वैमानिक देव की अपार संपत्ति मिले तो भी साधक आत्मा को वह रोड़ा और कंकर दिखाई देता है । आपका तो रुपया किस हाल का है ? सौ रुपये की नोट को कल इंदिरा चालीस प्रतिशत घटा दे तो ? फिर भी जीव की आसक्ति और मूर्छा भाव है । जहाँ मूर्छा है वहाँ भटकन है । संसार नहीं छोड़ सकते तो कम से कम मूर्छा तो घटाइए । सगाई जैसे अवसर पर जहाँ बेटे के जाने से भी चल सकता है, पिता सोचता है 'मेरे बिना नहीं चलेगा,' और स्वयं जाता है । ज्ञानी कहते हैं कि 'मान की खातिर तू स्वयं मूंडा जायेगा ।' परन्तु जिसे संसार बेड़ी जैसा लगा है उसे तो जाना पड़े तो भी आनन्द नहीं होता । अपना कर्त्तव्य निबाहने के लिए जाना पड़ेगा - यह सोचकर जाता है । पुत्र की शारीरिक पीड़ा दूर करने के लिए पिता कितना सजग रहता है । परन्तु पुत्र कंदमूल, अंडा आदि का सेवन करता है, जिससे भवरोग बढ़ता है, इस भवरोग को मिटाने के लिए क्यों जरा भी सजगता नहीं है ? आपकी पेढ़ी में कोई लड़का उड़ाऊ निकले और संपत्ति

नष्ट कर डाले तो आप अखबार में खबर छपवा देते हैं कि 'फलाने के पुत्र को हमारी पेढ़ी से अलग कर दिया गया है, अतः उससे हमारे नाम पर कोई व्यवहार न किया जाये ।' इस प्रकार पैसे की खातिर पुत्र की सगाई भी छोड़ देते हैं, परन्तु पुत्र ऐसे पाप करता है इसलिए उसे पेढ़ी से अलग कर दें - कभी ऐसा विचार किया है ? मैं आप लोगों को देवों का वल्लभ अर्थात् देवानुप्रिय कैसे कहूँ ? वीतराग वाणी श्रवण करते हुए जिन्हें रोमांच हो जाता है, वे तो पुत्र से कह देंगे कि 'तू यदि वीतराग की आज्ञा के विपरीत चलता है तो मेरा पुत्र नहीं है । आप गाँव और देश को न सुधार सकें, पर अपने घर को तो सुधारिए ।

आगमकार कहते हैं कि 'भारतीय संस्कृति की जिस भूमि में अनेक महापुरुष हो गये हैं, उस भूमि में आज हिंसा का तांडव हो रहा है । भयंकर कत्लखाने खूल गये है और चारित्र रूपी सदाचार तो कहीं दब गया है ।' अन्य दर्शनों में भी शिवाजी जैसे नेता हुए, जिन्हें गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा थी कि जो 'मेरे गुरु कहें वह सत्य ।' गुरु रामदास भी कैसे थे ? रामदास लग्न-मंडप में बैठे थे;और पंडित ने कहा : **"शुभ मंगल सावधान"**, शब्द सुनते ही वे सावधान हो गये और लग्न-मंडप से उठ गये तथा स्वामी रामदास बने ।

भगवान सिद्धान्तों में कितनी बार बोलते है - *'समयं गोयम मा पमायए'*- एक समय मात्र का भी प्रमाद मत करो । भगवान ने यह वाक्य एक-दो बार नहीं बल्कि छत्तीस बार कहा है । चार ज्ञान और चौदहपूर्व के जानकार से यह कहा है । वे तो उत्तम पुरुष थे । नाम मात्र की भूल करने पर टोकते हैं कि 'गौतम ! समय मात्र का प्रमाद न करो ।' हमारी आत्मा तो अनेक भूल कर रहा है फिर भी कोई भूल सुधारने की बात करे तो ज़हर जैसी प्रतीत होता है । ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि 'प्रमाद छोड़कर कारागार समान दुःखमय संसार से छुटकारा पा लीजिए ।' जो जीव संसार नहीं छोड़ते और धर्म का आचरण नहीं करते उनके लिए नरक और तिर्यंच गति उपस्थित ही है । नरक में अनंत दुःख है और तिर्यंच गति में पराधीनता है । प्यास लगी हो, सामने पानी भी हो, परन्तु मुँह पर छींका होने से पानी पी नहीं सकता । मालिक छींका हटाये तभी पानी पी सकेगा । बहुतेरे कहते हैं कि 'नरक किसने देखा है ?' नरक की बात तो एक तरफ रखिए, इसी संसार में बहुत से जीव ऐसी पीड़ा भोगते रहते है कि उन्हें देखकर आप भी सोचेंगे कि ये बेचारे छूटें तो अच्छा, इस तरह उनके मृत्यु-चिंतक बन जायेंगे । यह नरक नहीं है पर नरक जैसे दुःख भोग रहे है, इसलिए नरक को स्वीकारना पड़ेगा । करोड़पति ने दो करोड़

होगा । ऐसी लगन जब जागेगी तब पत्नी-परिवार का क्या होगा - यह चिंता नहीं करके, सदैव यह विचार रहेगा कि काया रूपी पिंजरे को छोड़कर जाना है तो क्यों न उसका सदुपयोग कर लूँ !

एक व्यक्ति तप करता है, तो शरीर सूखता है परन्तु आत्मा की अनंत शक्तियां खिलती हैं और कर्म की निर्जरा होती है । आत्मा का प्रकाश झलकता है । वह देह से जर्जर है पर आत्मा दृढ़ है । ऐसे श्रावक मिट्टी के गोले जैसे होते है । दूसरे व्यक्ति का शरीर रोग के कारण सूख गया है, डोक्टर कहेगा, 'अमुक वस्तु खाओगे तो मर जाओगे ।' होमियोपैथी या बायोकेमिक दवा होगी तो कहेगा, 'सुगंधित पदार्थ न खाओ ।' अतः मूली, लहसुन न खायें, तो क्या इसे त्याग कहेंगे ? डोक्टर तो इतना ही कहेंगे कि 'यह वस्तु लेंगे तो रोग नहीं मिटेगा' । परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि 'कांदा-लहसुन खायेंगे तो उसीमें जायेंगे ।' आज तो कंदमूल खाना कोमन हो गया है । अरे, कोई तो आकर कहते हैं कि 'महासतीजी आज तो अंडा भी कोमन हो गया है ।' क्या ऐसे आप जैन कहलाते है ? जैनकुल में जन्मे है, जैन नाम-से हैं, आत्मा से नहीं । सच्चा संत भी वही है जो स्वयं भी साधना करे और दूसरों से भी कराये । किसी भी कठिन प्रसंग में उसका स्पर्श तक नहीं करता, जिसे त्याग दिया है । उसके लिए तो -

रजकण के रिद्धि वैमानिक देवनी,
सर्वे मान्या पुद्‌गल एक स्वभाव जो... अपूर्व अवसर...

पुष्कल सुख और वैमानिक देव की अपार संपत्ति मिले तो भी साधक आत्मा को वह रोड़ा और कंकर दिखाई देता है । आपका तो रुपया किस हाल का है ? सौ रुपये की नोट को कल इंदिरा चालीस प्रतिशत घटा दे तो ? फिर भी जीव की आसक्ति और मूर्छा भाव है । जहाँ मूर्छा है वहाँ भटकन है । संसार नहीं छोड़ सकते तो कम से कम मूर्छा तो घटाइए । सगाई जैसे अवसर पर जहाँ बेटे के जाने से भी चल सकता है, पिता सोचता है 'मेरे बिना नहीं चलेगा,' और स्वयं जाता है । ज्ञानी कहते हैं कि 'मान की खातिर तू स्वयं मूंडा जायेगा ।' परन्तु जिसे संसार बेड़ी जैसा लगा है उसे तो जाना पड़े तो भी आनन्द नहीं होता । अपना कर्त्तव्य निबाहने के लिए जाना पड़ेगा - यह सोचकर जाता है । पुत्र की शारीरिक पीड़ा दूर करने के लिए पिता कितना सजग रहता है । परन्तु पुत्र कंदमूल, अंडा आदि का सेवन करता है, जिससे भवरोग बढ़ता है, इस भवरोग को मिटाने के लिए क्यों जरा भी सजगता नहीं है ? आपकी पेढ़ी में कोई लड़का उड़ाऊ निकले और संपत्ति

नष्ट कर डाले तो आप अखबार में खबर छपवा देते हैं कि 'फलाने के पुत्र को हमारी पेढ़ी से अलग कर दिया गया है, अतः उससे हमारे नाम पर कोई व्यवहार न किया जाये ।' इस प्रकार पैसे की खातिर पुत्र की सगाई भी छोड़ देते हैं, परन्तु पुत्र ऐसे पाप करता है इसलिए उसे पेढ़ी से अलग कर दें - कभी ऐसा विचार किया है ? मैं आप लोगों को देवों का वल्लभ अर्थात् देवानुप्रिय कैसे कहूँ ? वीतराग वाणी श्रवण करते हुए जिन्हें रोमांच हो जाता है, वे तो पुत्र से कह देंगे कि 'तू यदि वीतराग की आज्ञा के विपरीत चलता है तो मेरा पुत्र नहीं है । आप गाँव और देश को न सुधार सकें, पर अपने घर को तो सुधारिए ।

आगमकार कहते हैं कि 'भारतीय संस्कृति की जिस भूमि में अनेक महापुरुष हो गये हैं, उस भूमि में आज हिंसा का तांडव हो रहा है । भयंकर कत्लखाने खूल गये है और चारित्र रूपी सदाचार तो कहीं दब गया है ।' अन्य दर्शनों में भी शिवाजी जैसे नेता हुए, जिन्हें गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा थी कि जो 'मेरे गुरु कहें वह सत्य ।' गुरु रामदास भी कैसे थे ? रामदास लग्न-मंडप में बैठे थे और पंडित ने कहा : **"शुभ मंगल सावधान"**, शब्द सुनते ही वे सावधान हो गये और लग्न-मंडप से उठ गये तथा स्वामी रामदास बने ।

भगवान सिद्धान्तों में कितनी बार बोलते है - *'समयं गोयम मा पमायए'*- एक समय मात्र का भी प्रमाद मत करो । भगवान ने यह वाक्य एक-दो बार नहीं बल्कि छत्तीस बार कहा है । चार ज्ञान और चौदहपूर्व के जानकार से यह कहा है । वे तो उत्तम पुरुष थे । नाम मात्र की भूल करने पर टोकते हैं कि 'गौतम ! समय मात्र का प्रमाद न करो ।' हमारी आत्मा तो अनेक भूल कर रहा है फिर भी कोई भूल सुधारने की बात करे तो जहर जैसी प्रतीत होता है । ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि 'प्रमाद छोड़कर कारागार समान दुःखमय संसार से छुटकारा पा लीजिए ।' जो जीव संसार नहीं छोड़ते और धर्म का आचरण नहीं करते उनके लिए नरक और तिर्यच गति उपस्थित ही है । नरक में अनंत दुःख है और तिर्यंच गति में पराधीनता है । प्यास लगी हो, सामने पानी भी हो, परन्तु मुँह पर छींका होने से पानी पी नहीं सकता । मालिक छीका हटाये तभी पानी पी सकेगा । बहुतेरे कहते हैं कि 'नरक किसने देखा है ?' नरक की बात तो एक तरफ रखिए, इसी संसार में बहुत से जीव ऐसी पीड़ा भोगते रहते है कि उन्हें देखकर आप भी सोचेंगे कि ये बेचारे छूटें तो अच्छा, इस तरह उनके मृत्यु-चिंतक बन जायेंगे । यह नरक नहीं है पर नरक जैसे दुःख भोग रहे है, इसलिए नरक को स्वीकारना पड़ेगा । करोड़पति ने दो करोड़

रुपये जमाकर लिए, पर ऐसा रोग आया कि एक बूँद पानी भी गले के नी
उतारना मुश्किल है। पेन्सिल छीलते समय कितना उपयोग रखते हैं कि यह धार
अस्त्र है, हाथ में चोट न लग जाये। इसी तरह संसार में रहते हुए भी उपयोग रखि
कि पाप रूपी शस्त्र मेरी आत्मा में न लग जाये। उपयोगपूर्वक रहने से बहुत
पापों से हल्के बन सकेंगे।

जंबुस्वामी सुधर्मास्वामी से विनयपूर्वक पूछते है, सुधर्मास्वामी कहते है :'
प्यारे जंबु! *"तीसेणं चंपाए णयरीए बहिया उत्तरपुरित्थिमे दिसीला सुभूमि भाग उज्जाणे होत्था।"* उस काल में चंपानगरी के बाहर ईशा
दिशा में सुभूमि भाग नामक उद्यान था।

शास्त्रकार भगवान फ़रमाते हैं कि "उस काल और उस समय में अर्थात् चौ
आरे की बात है।" उस समय धरती में सरसाई अच्छी थी। पहले आरे में तीन दिव
पर खाने की इच्छा होती है तो क्या तेला करने का लाभ मिल जायेगा ? न
मिलेगा, क्योंकि प्रत्याख्यान नहीं है। दूसरे आरे में दो दिन में खाने की इच्छा हो
है। तीसरे आरे में दिन प्रतिदिन आहार की इच्छा और पाँचवे आरे में तो खाते
सोते हैं और खाते हुए उठते है - फिर भी भूखे के भूखे। भगवान फ़रमाते है
"मेरा साधू प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, व्याख्यान में रहे।" आपका प्रथम प्रहर
क्या कार्यक्रम होता है ? चाय-नाश्ता, दूसरे प्रहर में माल-पानी, तीसरे प्रहर में चा
तानना और चौथे प्रहर में जीवन की बरबादी। सिद्धान्तों में शंख पोखली आ
श्रावक का अधिकार पढ़ते हैं कि वे व्याख्यान श्रवण के लिए जाते, गुरुदेव
पौषध का स्वरूप समझाया तो घर आकर पौषध ले लेते, क्योंकि पोरसी का
गये थे तो पौषध करने का मन भी हो गया।

उस समय चंपानगरी के उत्तर और पूर्व दिशा के मध्य ईशान्य कोण में सुभूमि
भाग नामक उद्यान था। उस उद्यान में सब देह के आनन्द के लिए क्रीडा करने
जाते थे और जब प्रभु उद्यान में पधारते तब आत्मा का आनन्द प्राप्त करने
जाते। आपको किस बगीचे में जाना है ? ब्रह्मचर्य का बाग खिलाना है। धर्मरूपी
बगीचे में विचरना है। हमारे इस उद्यान में अनेक प्रकार के फूल खिले हुए हैं।
इनमें से आप जो चाहें उस पुष्प की महक लेते जाइए। संयम ग्रहण करने जैसी
भावना हो तो संयम लीजिए। इतनी शक्ति न हो तो श्रावकत्व स्वीकारिए।
ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कीजिए। तप से जुड़िए। जिसकी जितनी शक्ति हो उतने
पुष्पों की महक ले सकते हैं।

आषाढ़ पूरा होने आया अब श्रावण भी आ जायेगा । यदि आपकी आत्मा में गति आ गयी है तो जाग जाइए । जब से जागे तब से सवेरा । जिसे मासखमण की भावना हो तैयार हो जाइए । आराधना के उद्यान में आ जाइए और भगवान के व्रत-नियम, तप-त्याग रूपी पुष्पों की सुगंध लीजिए । प्रभु ने साढ़े बारह वर्ष और पंद्रह दिनों तक उग्र तप किया । तप के इतने समय में उनके पारणे के दिन सिर्फ ३४९ थे । इतनी साधना के अंत में प्रभु ने केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया । चातुर्मास में तप करने से बहुत लाभ होता है । चौमासे में जीवों की उत्पत्ति बहुत होती हैं, जितनी शीतकाल और ग्रीष्मकाल में नहीं होती । तप न कर सकें तो ब्रह्मचर्य से जुड़ो । जब आत्मा जागती है तो छोटी और बड़ी उम्र का कोई महत्त्व नहीं होता । कितने ही ऐसे भाई-बहन दिखते है जो यौवन अवस्था की दहलीज पर होते हैं, लेकिन ब्रह्मचर्य अपना लेते है । उसमें मस्त रहते है तथा पूर्ण शुद्धता से पालन करते हैं । कुछ लोग ऐसे पक्की उम्र के भी है जिनके बाल सफेद हो गये हैं, पर वृत्ति पर विजय नहीं है । अतः जागिए और साधना कीजिए ।

सिद्धान्तों में नौ वर्ष की उम्र वाले की दीक्षा हुई है और नौ वर्ष में ही केवल ज्ञान भी प्राप्त कर चुके हैं । साधु की स्थिति नौ वर्ष कम पूर्व क्रोड़ी की कही गयी हैं । नौ वर्ष की इतनी योग्यताएँ हैं तो दूसरे क्या नहीं कर सकते ? चंपानगरी में प्रभु पधारे तो सभी आत्मा का आनन्द लेने जाते । जबतक आत्मा का आनन्द नहीं मिला तबतक सच्ची शान्ति प्राप्त नहीं होती । दाह-ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को ऊपर से ठंडक पहुँचाये जाने पर उसका क्या असर हो सकता है ? इसी प्रकार आत्मा को संसार का दाह-ज्वर होने पर ऊपर से शरीर को शीतल करने से लाभ होगा क्या ? देह का राग छोड़ेंगे तभी आत्मा का माल मिलेगा । इसलिए आत्मा से लगन लगनी चाहिए । मासखमण किसलिए है ? यदि आत्मा ने ऐसा अभ्यास किया होगा तो अंतिम समय में संथारा कर सकेगा । काया में रहते हुए काया का राग छोड़ना है । जबतक जीव औदारिक की झोली को न छोड़े, और तेजस का तार न तोड़े तबतक मोक्ष संभव नहीं । अतः मन मजबूत करो और आराधना में जुड़ जाओ । अब चंपानगरी में किस आत्मा की बात चलेगी और क्या अधिकार आयेगा आदि का भाव अवसर पर कहेंगे ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ५

आषाढ कृष्ण ६, मंगलवार | दिनांक : ९-७-७४

प्रतिक्रमण से क्या लाभ ?

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शास्त्रकार भगवंत करुणासागर त्रिलोकीनाथ के मुख से झरती शाश्वत वाणी का नाम है सिद्धान्त । यदि जीव इसका एक शब्द भी रसपूर्वक श्रवण करे तो कर्मों की ढेरी टूट जाये । आपके रानीछाप रुपये गिनने से कर्म के ढेर टूटेंगे तो नहीं उल्टे और गाढ़े मजबूत होते जायेंगे । वीतराग भगवान का एक शब्द भी अनिच्छा से, अरुचि से, न चाहते हुए भी कानों में पड़ गया तो मृत्यु की सजा के समय उस सुने हुए शब्द के प्रताप से, उसपर श्रद्धा-विश्वास होने से वह मृत्यु के मुख से बच गया । कौन ? रोहिणेय चोर । फिर यह परिवर्तन कैसा काम कर गया ? आपने कितना श्रवण किया, फिर भी वहीं के वहीं । अनिच्छा से सुनकर भी बाद में श्रद्धा होने पर साधू बन गया । आपको भगवान की वाणी के प्रति श्रद्धा होगी तो रास्ते में चलते हुए भी उसमें रमण करते होंगे । जैनदर्शन जैसा कोई दर्शन नहीं है । जबतक जैनदर्शन के प्रति रुचि और रस नहीं है, सहानुभूति का आनन्द नहीं, तबतक हमारी बात आपके गले नहीं उतरेगी । 'जैनदर्शन' ने जितनी सूक्ष्म बातें बतायी हैं उतना कोई दर्शन नहीं बताता ।

आत्मा समझे तो लंबे-लंबे भवों की लंबी बातों की ज़रूरत नहीं है, लेकिन आत्मा अभी तक समझा नहीं है । ऐसा उत्तम मानव भव प्राप्त हुआ है, उसकी सार्थकता विशेषता क्या है ? जीव समझ जाय तो एक साथ भवों को नष्ट कर दे । लकड़ी की मजबूत गाँठ को चीरने के लिए शक्तिशाली युवा की आवश्यकता होगी । हमारी आत्मा कर्मभूमि का संज्ञी पंचेन्द्रिय है । यह जन्म हमारे कर्मों की ग्रंथि तोड़ने के लिए हथियार रूप है । कितने ही जीव जैनदर्शन पाने के लिए लालायित है, जबकि आपको सहज रूप में प्राप्त हो गया है । आपके पूर्वजों को एक रुपया कमाने में कितनी मेहनत करनी पड़ती थी, आप उनसे अच्छी स्थिति में आ गये हैं और आपके पुत्रों की तो बस ऐश ही है । आपने पुत्र के लिए जमा किया और वह खाने के लिए जन्मा । परन्तु आपकी यह पूँजी सच्ची पूँजी नहीं है । किसी गरीब पिता ने यदि पुत्र को इस पूँजी के स्थान पर धर्म के संस्कारों

की विरासत प्रदान की और सद्‌गुणों की सुवास दी, तो वह करोड़ों की संपत्ति से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि पुत्र अज्ञानी होगा तो रोयेगा कि 'मुझे पिता से कुछ नहीं मिला,' परन्तु समझदार ऐसे नहीं रोयेगा। वह तो समझेगा कि 'आकाश में बादल आते हैं, बिखर जाते हैं, उसी प्रकार पुण्योदय से संपत्ति छलकती है और पापोदय से चली जाती है - इसमें फंसना उचित नहीं है।' संसार में रहिए पर अखिल भाव से रहिए, नहीं तो दुर्गति में जाना पड़ेगा।

आपके यहाँ करोड़ों की संपत्ति हो, वैभव हो और स्वर्ण सिंहासन पर बैठते हों, परन्तु ज्ञानी कहते है कि 'परिग्रह जीव को डुबाने वाला नहीं बल्कि उसके प्रति मूर्छाभाव जीव को डुबाता है।' धन को आपने ग्यारहवाँ प्राण मान लिया है, परन्तु यह जीव को दुर्गति में ले जायेगा। अतः सूखी रेत पर बैठे हो - इस भाव से संसार में रहिए तथा लक्ष्य यह रहे कि संसार छोड़ने पर ही मेरी सिद्धि है। संसार में रहते हुए सिद्धि नहीं मिलेगी। इसलिए सूखी रेत के ढेर जैसे रहिए, कि जब छूटना हो तो छूट सकें।

संसार की ओर दृष्टि करने पर पाते हैं कि जीव किन स्थितियों में रह रहे है। धन प्राप्त करने के लिए कितना कष्ट सहन करते है। कड़कड़ाती सर्दी के मौसम में कोई आपसे कहे कि "रोज सुबह चार बजे, किस को बिना बताये, मेरे घर में आकर मेरे दो नंबर के निजी खाते का लेखा-जोखा कर दें तो आपको एक हजार रुपया महीना दूँगा।" आप जाने के लिए तैयार होंगे या नहीं ! (श्रोताओं में से आवाज़ : 'विरला ही होगा जो न जाये। अरे, जायेंगे ही। धन-लोलुपता ही ऐसी है। सुबह जल्दी चार बजे उठकर जाने पर उसे नींद नहीं आती, न जंभाई आती है और न रतजगा महसूस होता है। संत आपसे कहें : "भाई ! सुबह पाँच बजे प्रतिक्रमण करने आइए। यहाँ रोज दो-चार भाई सोते हैं - वे आपको प्रतिक्रमण करवायेंगे या फिर आप घर पर कर लीजिए।" यहाँ उपस्थित लोगों में रोज़ प्रतिक्रमण करने वाले उंगलियों में गिनने लायक जितने भी न होंगे। पाँच बजे उठकर प्रतिक्रमण करने कहने पर सोचते है, 'दिन-भर के थके-माँदे रात्रि के ग्यारह बजे सोते हैं तो नींद तो पूरी ज़रूरी है ना ? ठंडी में इतनी जल्दी कैसे उठा जा सकता है।' पैसा प्राप्त करने के लिए रोज़ चार बजे उठना है इसलिए रात ग्यारह बजे तक गप्पे मारना बंद करके जल्दी सो जायेंगे। क्योंकि वहाँ रुपये मिलेंगे और प्रतिक्रमण करने से कुछ मिलता दिखता नहीं है, इसलिए जल्दी क्यों उठा जाय !

बंधुओं ! प्रतिक्रमण क्या है ? यह कोई जैसी-तैसी चीज नहीं है। इसमें विवेकपूर्वक समझ सहित पापों की आलोचना करनी है। पाप न करने की

प्रतिज्ञा न होने से, जगत के तमाम पापों की छूट होने से मन, वचन, काया से अकृत पापकारी विचार, पापकारी वाणी, कहीं क्रोध-मान-माया-लोभ-ममता, आसक्ति आदि की चमक के कारण और दुनिया के पुष्कल पदार्थों में और उसमें भी छोटे-छोटे भाग के प्रति राग के कारण, जीव एक दिन और एक रात में इतने पाप बाँध लेता है कि उसे धोने के लिए बड़े-बड़े पर्वतों के आकार जितना स्वर्ण दान करे तो भी नहीं घुलते । परन्तु यह समस्त पाप शुद्ध भाव से, उपयोगपूर्वक प्रतिक्रमण करने से घुल जाते है । दान करने से धर्म होता है, पुण्य की प्राप्ति होती है, परन्तु पाप से माफी नहीं मिलती । प्रतिक्रमण करने से पापों की माफी मिलती है । कहिए, प्रतिक्रमण से कितने सारे लाभ मिलते हैं ? परन्तु प्रतिक्रमण का लाभ प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता, इसलिए प्रतिक्रमण करने का मन कैसे होगा ? यदि आप ऐसा कहेंगे तो मैं आपसे पूछूँगी कि 'वृक्ष की शाखा, पत्ते, फल-फूल दिखाई देते है, परन्तु उसकी जड़ नहीं दिखती, तो आप उस जड़ को मानते हैं या नहीं ?' (श्रोताओं में से आवाज : 'मानते हैं ।') 'पवन दिखाई नहीं देती, पर उसे मानते हैं ना ?' इसी प्रकार धर्म का मूल भले ही न दिखे, परन्तु आज आप सुखी दिखाई दे रहे हैं, वह धर्म का फल है । धर्माराधना करते हुए समझ सही रखी तो कर्म की निर्जरा हुई और उसके प्रताप से समस्त सुख-सामग्री प्राप्त हुई । प्रतिक्रमण का लाभ, समझ में न आने का क्या कारण है ? हर कदम पर संसार में इतने सारे पाप होते हैं, परन्तु उनके प्रति पश्चात्ताप का भाव नहीं है । पश्चात्ताप हो तो, मन में आयेगा कि 'अहो ! एक दिन और एक रात में इतनी अविरति, कषाय, पापयोग और राग-द्वेष से इतने सारे कर्म बँध जाते हैं । इन पापों और कर्म बँधन का तीव्र पश्चात्ताप हो तब प्रतिक्रमण करने को मन जल्दी से तैयार हो जाता है । इससे रागादि पाप और अशुभ कर्म घुल जाते हैं, परन्तु विशेष गाढ़े पाप-कृत्यों के प्राक्षालन के लिए गुरु के समक्ष आलोचना करके तप आदि प्रायश्चित्त लेना पड़ता है । तब इनसे बँधे कर्म नष्ट हो जाते हैं । परन्तु अल्प पाप तो प्रतिक्रमण करने से ही नष्ट हो जाते है । ऐसा सुंदर प्रतिक्रमण सुबह पाँच बजे उठकर नहीं किया जाता, पर कोई लाभ की चाकरी हो तो सुबह चार बजे उठकर भी कर लेते हैं । प्रत्यक्ष लाभ दिखाई देने के कारण वह कष्ट रूप नहीं लगता, जबकि प्रतिक्रमण से प्रत्यक्ष फायदा न दिखने के कारण जल्दी उठना कष्ट रूप लगता है ।

कदाचित आपके मन में प्रश्न उठे कि 'दिन-भर पाप-कर्म किया तो उसके लिए संध्या समय प्रतिक्रमण करना ठीक है, परन्तु रात्रि में सोते हुए भला क्या पाप लग जाता है, जिसके लिए सुबह उठकर प्रतिक्रमण करना चाहिए ?' बंधुओं ! समझिए । रात्रि में पाप बँधते रहने का कारण अविरति है । आपने

अविरति को स्वीकारा नहीं है । नींद में यद्यपि क्रोध या मान मन में उत्पन्न नहीं हुआ, माया या लोभ का विचार नहीं आया फिर भी जागते हुए इन क्रोधादि कषायों का शमन नहीं किया और राग-द्वेष कषायादि के भाव जगाये रखे हैं, तो नींद में भी वे अव्यक्त ही पर हमेश रहते हैं ना ? इससे पाप बँधेगा ही । मिथ्याभाव को रोककर जबतक सम्यक्भाव या सम्यक्दर्शन प्राप्त नहीं किया है तबतक नींद में भी मिथ्याभाव तो जारी रहेगा ना ? दिन में जगते ही पाप के त्याग की प्रतिज्ञा नहीं की, विरति नहीं की तो अविरति नींद में भी साथ रहेगी और उससे पापकर्म बँधेगे - इसमें तो कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है । आपने सोते वक्त दृढ प्रतिज्ञा नहीं की कि मैं हिंसा नहीं करूँगा, नहीं कराऊँगा और न अनुमोदन करूँगा, इसलिए अविरति का पाप आता रहता है । सोते हुए भी व्यापार की बातें ध्यान में रहती है । रात्रि में सोते समय संथारा नहीं करने से संसार की समस्त क्रियाएँ चालू रहती है जिनसे पाप बँधेगा ही ।

श्रावक तो ऐसा विचार करता है कि 'अहो ! मेरे साधू-संतों ने तो अविरति छोड़कर विरति अंगीकार की है फिर भी सुबह-शाम रोज़ अवश्य प्रतिक्रमण करते हैं और मैं महाआरंभ और महापाप में पड़ा हुआ हूँ तो मुझे अपनी क्षतिपूर्ति और दोष प्राक्षालन करना चाहिए ।' भगवान महावीर ने तो सूक्ष्म अहिंसा यहाँ तक कही है कि -

उदाहरण स्वरूप - आप औषध या सामायिक में बैठे हैं । गर्मी के कारण व्याकुल हो रहे हैं । तभी बरसात के छींटे पड़ने से हवा में शीतलता आ गई । जीव को लगता है 'अहा ! अब ठंडक हुई, साता मिली ।' यहाँ ज्ञानी कहते हैं कि 'ठंडी हवा शरीर को सुखद लगी इसमें वाउकाय के जीवों की हिंसा की अनुमोदना हुई ।' क्योंकि वाउकाय के जीव इतने सूक्ष्म और कोमल काया के हैं कि अपने शरीर के स्पर्श से ही मर जाते है । ठंडी हवा के जीव हमारे शरीर का स्पर्श करते है और मर जाते हैं । इस मृत्यु में जीव ने आनन्द का एहसास किया, इसलिए वाउकाय के जीवों की हिंसा की अनुमोदना हो गयी । ऐसा सूक्ष्म और सुंदर जैन धर्म के अतिरिक्त और कौन-सा धर्म कहता है ?

दूसरी बात करूँ । साधू गोचरी के लिए गये । गोचरी गरम-गरम मिली तो मिली, उसका विचार नहीं करना चाहिए । क्योंकि संयम-मार्ग में एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा, करूँ नहीं, कराऊँ नहीं और करते हुए का अनुमोदन न करने का प्रत्याख्यान लिया है । इसलिए दूध-चाय आदि गर्म मिल जाने में प्रसन्न होने

का अर्थ है वाउकाय के जीवों की हिंसा में अनुमोदना की । अतः चारित्र में कितना ज्यादा सावधान रहने की ज़रूरत है । मन तो बंदर है और मन को अनंत-अनंत काल से विषयानन्द का अभ्यास है । इसलिए सावधानी न रहने पर हिंसा का पाप लग जाता है । ज्ञानियों ने इसीलिए कहा है कि 'शुद्ध चारित्र का पालन करना तलवार की धार पर चलने जैसा है ।' बँधुओं ! आप ऐसा मत मान लीजिए कि चाय या रसोई गर्म मिलने पर प्रसन्न होने में साधू को ही बाधा है श्रावक को नहीं क्योंकि श्रावक को कहाँ एकेन्द्रिय जीव की हिंसा के त्याग का व्रत है, और जब व्रत हो तभी तो खंडित होगी ? आपकी यह समझ योग्य नहीं है । श्रावक का व्रतभंग भले ही न होता हो, परन्तु दयाभंग होने की स्थिति तो है । श्रावक को एकेन्द्रिय जीव की हिंसा का व्रत नहीं है, इसका अर्थ यह तो नहीं कि उसके हृदय में इन जीवों के प्रति दयाभाव भी न रहे ।

भगवान का श्रावक पापभीरू होता है । घर-संसार चलाते हुए एकेन्द्रिय जीव की हिंसा होने पर भी उसका हृदय काँप उठता है । आह ! इन विचारे जीवों ने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा है फिर भी मेरी ओर से उनका कत्ल हुआ, इन जीवों को मेरी ओर से कितना भयंकर दुःख । इन जीवों के प्रति दिल में ऐसी करूणा-दया की भावना हो और हिंसामय संसार छोड़ने की भावना सदा रहे, उसे संसार में रहना जहर जैसा लगता है । आपके पास पैसा न हो तो कर्ज लेकर पत्नी के लिए गहने बनवायेंगे ? (श्रोताओं में से आवाज : 'नहीं बनवायेंगे') हाँ ! जिन्हें आबरू का ख्याल नहीं है वे करायेंगे । इसी तरह जिन्हें जन्म-मरण का फेरा खटक रहा है, वह भला पाप का बोझ बढ़ने देंगे ? उसका मन तो हर दिन इसी ख्याल में रहता है कि मुझे कब तक यह पापभरा संसार चलाना पड़ेगा ?

'जब एकेन्द्रिय जीवों के प्रति दयाभाव आ जाये तो इनके कत्लेआम पर बसा यह संसार उसे ज़हर जैसा लगे, हत्यारा लगे, पर शीतल नहीं लगता ।

संसार की बस्ती में, संसार की छाया शीतल नहीं है बल्कि दाहक है । ग्रीष्म ऋतु में वृक्ष की छाया शीतल लगती है, पर ऊपर की मंजिल की तपी हुई छत की छाया कैसी लगती है ? (श्रोताओं से आवाज : यह छाया जलाने वाली लगती है और उस स्थान को छोड़कर चले जाने का मन करता है ।') इसी प्रकार संसार की छाया धधकते ताप से तप्त छत की धधकती छाया जैसी है । इसमें जिन जीवों को एकेन्द्रिय जीवों के प्रति दया है, वह मैत्रीभाव है ।

प्रतिक्रमण की बात चल रही है । दिन भर में लगे हुए पापों का प्रायश्चित करने शाम को प्रतिक्रमण करते हैं । रात की अविरति, मिथ्यात्व भाव आदि द्वा

लगे पापों का प्रायश्चित्त करने सुबह प्रतिक्रमण करते हैं । यह आलोचना ऐसी होनी चाहिए कि फिर से वही भूल न दोहराएँ । भगवान तो फ़रमाते है कि, "मेरे साधक और श्रमणों ! यदि तुझसे कोई भूल हो जाये तो अपने गुरु के समक्ष जाकर कह देना, यह न सोचना कि मैं कह दूँगा तो बुरा कहाऊँगा ।" ज्ञानी कहते हैं कि 'तू चार गति का भय रख, परन्तु मानभंग होने का डर मत रख ।' जिसे भव का भय रहता है उसे मानभंग का भय नहीं होता । जिसे अपने पाप का तीव्र पश्चात्ताप होता है, उसे गुरु के समक्ष प्रकाशित करते हुए मानभंग की चिंता नहीं होती । वह तो सोचता है कि 'परलोक में पहचान और सिफारिश नहीं चलती ।' कोई तेरे चेक पर सही नहीं करेगा, उसमें तुझे स्वयं ही सही करनी होगी, अत: भले ही मेरा मानभंग हो या स्थान नीचे हो जाय, सब सहन कर लेंगे, परन्तु मेरा भव बढ़े यह कैसे सहन किया जा सकता है ? जैनदर्शन कहता है कि 'जीव अठारह प्रकार से पाप बाँधता है ।'

सच बात तो यह है कि कितने पाप लगते हैं इसका इसे भान नहीं है और न ही जानने की इच्छा है । फिर भला अफसोस कैसे होगा ? जब तक पाप से परिचय नहीं है, दिल में किये हुए पाप का पश्चात्ताप नहीं है तब तक उस पाप का नाश करने के लिए प्रतिक्रमण करने का मन भला कैसे होगा ? जिसे पाप पापरूप में समझ में आये, वह आस्तिक और जिसे पाप का विचार ही नहीं है वह नास्तिक । अनंतकाल से पापमय जीवन के कारण जीव संसार में भटक रहा है । यहाँ महान पुण्योदय से संत-समागम, शास्त्र-श्रवण और पाप को पाप समझने का सुयोग प्राप्त हुआ, फिर भी जीव नहीं समझना चाहता कि मैं अपने हाथों कितना पाप कर रहा हूँ । तो फिर उसका भावी जीवन कैसा बनेगा ? आप उपाश्रय में आये और संतदर्शन किया, क्या आप मानते हैं कि 'इससे जीवन पापरहित बन जायेगा और कल्याण होगा ?' ऐसे कल्याण संभव नहीं है, श्रद्धापूर्वक श्रवण करने और जीवन में आचरण करने से जीवन निष्पाप बनेगा । हाँ, उपाश्रय आने से, संतदर्शन करने से लाभ होता है, परन्तु श्रद्धापूर्वक तीनों तत्त्व में रुचि सहित दर्शन करेंगे तो कर्मों की निर्जरा होगी ।

बंधुओं ! हमारा सौभाग्य है कि जगत को जिन पापों का पता नहीं, ऐसे पाप से हमारी पहचान कराने वाला जैन धर्म हमें प्राप्त हुआ है । जगत के अन्य धर्म, विचार, वाणी या वर्ताव से पाप बताते होंगे; परन्तु 'जैनदर्शन' कहता है कि 'इनके बिना भी आत्मा के अमुक परिणाम से भी पाप बंध होता है ।' उदाहरण स्वरूप - आप हिंसा का व्यवहार न करते हों, हिंसामय वाणी न बोलते हों और

हिंसा के विचार भी नहीं रखते हों, फिर भी यदि आत्मा को ऐसा दृढ निर्णय नहीं है कि मुझे हिंसा का त्याग है या हिंसा के त्रिविध त्याग की प्रतिज्ञा नहीं हो तो ये आत्मा के अविरति के परिणाम कहे जायेंगे। उससे पाप बँधता है - यह जैन धर्म की मान्यता है। इसलिए हिंसा का विचार भी न करने तक बात नहीं रुकती बल्कि हमें हिंसा के त्याग की प्रतिज्ञा भी लेनी चाहिए। पाप को पाप न मानना, हेय को हेय न मानना, धर्म को धर्म न मानना, वीतराग को देवाधिदेव न मानना आदि मिथ्या भाव हैं।

बौद्ध धर्मावलम्बी कहते है : "स्वयं किसीको मारना नहीं चाहिए पर किसीके मारा हुआ हो तो उसका मांस खाया जा सकता है। इसमें पाप नहीं लगता।" परन्तु भाई ! तुम्हारे जैसे इसके ग्राहक हैं तो वो तुम्हारे लिए ही मारता है। भले ही आपने स्वयं हिंसा न की हो, परन्तु हिंसा को प्रोत्साहित तो किया, अनुमोदना भी की, इसलिए यह पाप है। जैन धर्म की यह सूक्ष्मता और विशेषता समझ में आ जाये तो लगेगा कि जैन धर्म शुद्ध धर्म है। मन में आयेगा कि मेरा अहोभाग्य है कि ऐसा सच्चा, वास्तविक और सूक्ष्म धर्म मुझे मिल गया है। मन में ऐसे भाव आने पर, सम्यक्‌दर्शन होने पर, संसार में रहकर कदाचित सूक्ष्म हिंसा करनी पड़े तो भी उसमें खुशी नहीं होती। अल्प हिंसा भी हिंसा ही है अहिंसा नहीं। पृथ्वीकाय, अपकाय, वाउकाय, तेउकाय, वनस्पतिकाय आदि की हिंसा भी हिंसा ही है। उससे भी बचना चाहिए। जब हम किसी जीव को जीवित करने में समर्थ नहीं हैं तो उसे मारने का भी कोई अधिकार नहीं है। परन्तु आज का मानव अपनी भूल मानना नहीं चाहता। सांसारिक भूलों पर कान पकड़ लेता है, परन्तु आत्मा की भूलों पर अकड़कर चलता है। चाहे आप वकील न हों पर आत्मा के वकील बनकर कहिए कि तेरे किये कर्म तुझे ही भोगने पड़ेंगे।

द्रौपदी का अधिकार

चंपानगरी में तीन ब्राह्मण : 'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन का अधिकार चल रहा है। चंपापुरीनगरी है। उसके ईशान्य कोण में सुभूमिभाग नामक उद्यान है। उस नगर में बहुत से लोग रहते है, पर जिनका अधिकार चलाना है उन्हीं को समज रखकर बात कही जानी चाहिए।

"तत्थ णं चंपाए णयरीए तओ माहणा भायरा परिवसन्ति तंजहा सोमे, सोमदत्ते, सोमभूए।"

चंपानगरी में तीन ब्राह्मण रहते थे - सोम, सोमदत्त और सोमभूत। एक ही पराशि के नाम थे सबके। तीनों भाईयों में बड़ा प्रेम था। आज अकसर दिखाई देता है कि जब तक कोई मुश्किल सामने न हो तब तक भाई-भाई में बहुत

प्रेम होता है, लेकिन अशुभ कर्मों के योग से कोई इनके बीच फूट डालने वाला मिल जाये तो प्रेम टूट जाता है। आज भाई-भाई के परस्पर प्रेम को तोड़ने वाला महत्त्वपूर्ण तत्त्व है परिग्रह की आसक्ति। राम-लक्ष्मण और कृष्ण-बलभद्र की जोड़ी कहलाने वाले भाईयों की जोड़ी तोड़ने वाली है परिग्रह की मूर्छा। भाई-भाई के झगड़े में निमित्त परिग्रह ही बनता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय के दस प्राण होते हैं, परन्तु धन की ममता रखने वाले के लिए धन ग्यारहवाँ प्राण है। इस ग्यारहवें प्राण के लिए लोग दसों प्राण का बलिदान भी दे देते हैं। आज गाड़ियों के नीचे आकर कितने ही मर जाते हैं, कितने दुर्घटनाग्रस्त होते हैं। यह सब भाग-दौड़ किसलिए है ? धन के लिए।

दो भाई का प्रसंग : एक माता की जुड़वा संतान। दोनों भाइयों का ऐसा प्रेम कि एक खाये तभी दूसरा खाता, एक न खाये तो दूसरा भी भूखा रहे। ऐसे प्रेम में दरार डालने वाली है परिग्रह की मूर्छा। यह मूर्छा झगड़ा और क्लेश करवाती है। आज देश-देश आपस में लड़ते हैं। काश्मीर के लिए प्रश्न खड़ा होता है। पाकिस्तान कहता है, 'काश्मीर हमारा है' और भारत कहता है, 'हमारा !' उसकी रक्षा के लिए लाखों रुपये खर्च करके सैनिक रखने पड़ते हैं। एक देश दूसरे देश को दबाने के लिए एटम बम, हाइड्रोजन बम आदि हिंसक शस्त्र तैयार रखता है और अनेक जीवों का विनाश करता है। अन्य देशों को भयभीत बनाता है और हिंसक शस्त्रों से विनाश को आमंत्रित करता है। यह सब किसलिए ? जमीन के टुकड़े के लिए ही ना ? एक एटम बम छोड़े तो देश के देश समाप्त हो जायें। अब्जों रुपयों से ऐसे हिंसक हथियारों का सर्जन किया गया है। भगवान फ़रमाते हैं, '*खेत्त वत्थुहिरण्णं च पसवो दास पारुसं।*' क्षेत्र, बगीचा, सोना, चाँदी, महल, दास-दासी, यह सब परिग्रह है। सिद्धान्त में कोणिक का प्रसंग आता है कि हार और हाथी के लिए पद्मावती ने कोणिक को उकसाया, 'आप महाराजा, आपके पास हाथी नहीं और मेरे पास हार नहीं, तो अपना क्या गौरव ?' उस समय यदि श्रेणिक ने कह दिया होता कि 'मेरे पिता ने उसे हार और हाथी दिया है और मुझे राज्य। तुझे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। तेरा नाम पद्मावती है तो नाम के अनुरूप गुण भी सीख।' परन्तु एक हार और हाथी के लिए एक करोड़ अस्सी लाख व्यक्ति युद्ध की भेंट चढ़ गये। धन प्राप्त करने के लिए बड़ी-बड़ी फैक्ट्री खोलते हैं, बहुत आरंभ-समारंभ करते हैं, परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि 'अब्जों रुपये जमा कर लीजिए लेकिन जाते समय खाली हाथ जाना पड़ेगा।' रात-दिन जिसकी देखभाल और रक्षा करते है उसे यहीं छोड़कर जाना

पड़ेगा। आपको पेट भरने जितना तो खुशी से मिल सकता है, पर आपकी तृष्णा का गडढा भरना हो तो वह कभी भर नहीं सकता।

'ठाणांग सूत्र' में भगवान ने चार प्रकार के गड्ढे बताये है :

पहला गड्ढा सागर का : सागर में चाहे जितनी नदियों का पानी डाला जाये, सागर कभी नहीं कहेगा कि अब बस करो और पानी मुझे नहीं चाहिए। अर्थात् सागर कभी भी भरता नहीं।

दूसरा गड्ढा स्मशान का : जहाँ अनगिनत बालकों, युवाओं, वृद्धों का राख बन गया फिर भी जगह खाली की खाली।

तीसरा गड्ढा पेट का : इस पेट में कितना डाला ? सुबह चाय-नाश्ता करके आये, बारह बजे फिर खाने के लिए तैयार, शाम होते ही तीसरी बार। इसमें जितना भी डालते रहें यह कभी भरने वाला नहीं।

चौथा गड्ढा तृष्णा का : जबतक मनुष्य संतोषी नहीं बनता तबतक उसकी तृष्णा कभी पूरी नहीं होती।

बंधुओं ! आज आपका जीवन देखें तो जोखिम से भरा हुआ है, आप चाहे गाड़ी में सफर करें, ट्रेन में या बस में। एक्सीडेंट से कितने ही मर जाते हैं। आपने अखबार में पढ़ा होगा कि 'जापान में भयंकर आँधी-तूफान में एक सौ एक की जान गई। कितने ही घर उड़ गये, कितने दब गये। कितने ही लोग डूब गये।' जापान में एक वर्ष में पचास बार ऐसा हो जाता है। आप मुंबई में समाचार सुनते हैं कि बरसात ने पालने में सोते बालक के प्राण लिए। कितने माता-पिता चले गये, युवा गये, वृद्ध गये, ऐसी खतरनाक स्थिति में भी आप सही-सलामत हैं, तो यह आपका पुण्य है। जिस प्रकार छत में पानी भरने पर नाली साफ करते हैं ताकि पानी नीचे निकल जाये, उसी प्रकार आत्मा में विषय-कषाय का, राग-द्वेष का कचरा भर गया है। इतना सुनकर भी अब तक उसे निकालने का पुरुषार्थ क्यों नहीं करते ?

दोनों भाई एक दूसरे के बिना नहीं रहते। पिता मृत्युशय्या पर थे। विचार करने लगे कि मरने की स्थिति में आ रहा हूँ तो सबकुछ बाँट दूँ ताकि पीछे दोनों भाई आपस में न लड़ें। सबकुछ बाँट दिया, एक अंगूठी रह गई थी कि पिता की हृदय गति थम गई। पिता के हाथ की अंगूठी थी। अग्नि संस्कार के बाद आकर, दोनों भाई उस अंगूठी पर अपना अधिकार जताने लगे। [illegible] अंगूठी हीरे [illegible] नहीं, सिर्फ सोने
[illegible] की अंगूठी
[illegible] डालकर

वहाँ संसार। इसलिए स्त्रीकथा आदि चार विकथाएँ न कर। विकथा आत्मा को बाँधने वाली है और गुणों का नाश करने वाली है। दोनों भाइयों को सलाह दी जाती है कि नीलामी की बोली बोलो। नीलामी में एक हजार रुपयें में छोटे लड़के ने अंगूठी ले ली। अंगूठी घर में आयी, साथ में वैर भी आया। प्रेम के स्थान पर दावानल सुलगने लगा। *"वेराणु वंधीणि महब्भयाणि।"* भाइयों में अब मुँह देखने तक का सगापन नहीं रहा। अतः बंधुओं। कदाचित हजार की मिल्कियत छोड़नी पड़े तो छोड़ देना (श्रोताओं में से आवाज : 'लाख की छोड़ेंगे') आप लाख छोड़ने वाले तो नहीं हैं। इसीलिए हजार कहा है। आपके जो अनुकूल हो वही कहना ठीक है। यदि हजार रुपये के साथ वैर की ज्वाला भी भड़कती आये तो वह पैसा धूल है। अंगूठी पाने में प्रेम गया और वैर की ज्वाला सुलगी। 'ज्ञाताजी सूत्र' में तीन भाइयों का अधिकार चलेगा। विशेष भाव अवसर पर।

ॐ शान्तिः।

व्याख्यान क्रमांक ९

आषाढ़ कृष्ण ८, गुरुवार | दिनांक : ११-७-७४

कषाय की कालिमा

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत उपकारी जिनेश्वर देव श्री महावीर प्रभु ने केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् जगत के जीवों के कल्याण के लिए सिद्धान्त की प्ररूपणा की। जिस प्रकार समुद्र में विचरण करते जहाज और नौकाओं को चट्टानों आदि की सूचना देकर सही दिशा बताने का कार्य दीप-स्तंभ करता है उसी प्रकार प्रभु के सिद्धान्त संसाररूपी समुद्र में राग-द्वेष रूपी चट्टानों और जन्म-मरण रूपी खतरे के स्थानों की सूचना देकर जीवों का मार्गदर्शन करते हैं। इस सिद्धान्त के आलंबन से भूतकाल में अनंत जीव मोक्ष में पहुँचे है, वर्तमानकाल में संख्याता जीव (महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से) मोक्ष में जा रहे हैं और भविष्यकाल में भी अनंत जीव मोक्ष जायेंगे। जिन जीवों का सद्भाग्य होता है, सुलभ बोधि बनने की तैयारी होती है, उन्हें भगवान के वचन सुनने मिलते हैं। आगम के एक-एक शब्द सुनते हुए जीव में उत्साह जगना चाहिए, फिर श्रद्धा और प्रतीति होती है। परन्तु अभी तक सांसारिक कार्यों में जितना आनन्द आता है उसका अंश भाग का आनन्द

वीतराग वाणी में नहीं आया । यही जीव की सबसे बड़ी कमी है । आप व्यवहार में बोलते हैं ना कि **'पृष्ठ फिरता है और सोना झरता है ।'** पुत्र से पुस्तक की ओर नजर करने के लिए उसे कहते हैं कि पुस्तकों में सबकुछ लिखा है उसे पढ़ने से सोना झरेगा । कदाचित सोना झरे भी परन्तु मोक्ष का मोती नहीं मिलेगा। जबकि आगम के एक-एक पृष्ठ फेरने से मोक्ष का मोती मिलेगा । तीर्थंकरों ने सिद्धान्तों का प्ररूपण किया, गणधरों ने गूँथा और आचार्यों ने लिपिबद्ध किया । आगम के एक-एक शब्द समझकर आत्मा कर्मों की निर्जरा करता है।

बंधुओं ! आज की सरकार ने आप पर कितने कानून लगाये हैं । आप गहने, पैसे बचाने के लिए बैंक में रख आते हैं । इसे भी सरकार कब जब्त कर लेगी आपको पता नहीं है । सरकार नये-नये कानून ला रही है जिससे दलाल कांप उठे हैं और बाज़ार में खलबली मच गयी है । यह खलबली क्यों है ? जो पैसे शाश्वत नहीं, नाशवंत हैं । जो अपने होने वाले नहीं उन्हें अपना मान रखा है इसलिए यह घबराहट है । भगवान फ़रमाते हैं कि, "जीव को सही समझ न होने से क्षण-क्षण आर्तध्यान करेगा ।" आप भोजन करने बैठे, बहन दाल में नमक डालना भूल गई तो बिना नमक की दाल खाते हुए मन में खटाश आ गयी । 'दाल में तो कुछ ठीक ही नहीं है' - यह विचार आया कि आर्तध्यान हुआ । आप किसीके यहाँ गये और उसने आदर न दिया तो जीव सोचता है कि "मैं तो इतने स्नेह से आया और इसे 'आओ' कहने का विवेक तक नहीं है ।" समझिए, आओ कहने के बदले यह पूछा, इस समय क्यों आये ? तो जीव कितना दुःखी होता है कि इतने उत्साह से मैं मिलने आया और इसने मेरा अपमान किया । यह सब विचार आर्तध्यान है।

महानपुरुष कहते है कि 'विचार कीजिए । जबतक सत्संग नहीं किया, शास्त्र-श्रवण का अवसर नहीं मिला, तबतक बहुत आर्तध्यान किया ।' लेकिन अब तो समझाने वाले सद्‌गुरु प्राप्त हो गये हैं तो आर्तध्यान से मत जुड़ो । जरा विचार कीजिए कि चींटी, मकोड़े आदि छोटे जंतुओं ने ऐसा क्या गुनाह किया है कि पैरों के नीचे आते ही उनका जीवन समाप्त हो जाता है ! खाट और चारपाई में होने वाले खटमल तथा अन्य जीवों ने क्या गुनाह किया है कि आप डी.डी.टी. छिड़कवा कर उन्हें मार डालते हैं ! बकरे, भेड़ आदि भोले निर्दोष होने के बावजूद कत्लखाने में काटे जाते हैं ! इन प्राणियों का नाश करने वालों के मन में क्या कभी यह विचार आता है कि 'यहाँ इन जीवों का कोई भयंकर अपराध न होने पर भी उन्हें कुमौत क्यों मरना पड़ता है ? इन जीवों ने आपका कुछ नहीं बिगाड़ा है फिर भी इन्हें इरादापूर्वक मार डालने का प्रयास करते हैं - यह बताता है कि इन जीवों ने

इस भव में पाप नहीं किया पर पूर्वजन्मों की कर्मसत्ता उन्हें यह दंड दे रही है। यदि मैं इन जीवों को मार डालने का भयंकर गुनाह करूँगा तो कर्मसत्ता दूसरे भव में मेरी क्या दशा करेगी ? यह विचार नहीं आता इसलिए डी.डी.टी. आदि जंतुनाशक दवाओं का प्रयोग करके असंख्य निद्रोष जीवों का नाश करते है। क्षणिक सुख के लिए जैन लोग भला ऐसी क्रूरता कर सकते है। यह जीव निर्दोष होने पर भी पूर्वकृत अपराध की सजा में यहाँ भयंकर दुःख भोगते हैं। गुनाह के बिना सजा नहीं होती अतः अब गुनाह करना बंद कर दीजिए, नहीं तो गुनाह की सजा अवश्य भुगतनी पड़ेगी।

आर्तध्यान वाला जीव मरकर तिर्यंच में जाता है। दिन में आर्तध्यान का परिणाम आया पर यदि जीव का बोध स्थिर न हो तो रात्रि में भी आर्तध्यान का परिणाम जारी रहता है। भगवान महावीर की आत्मा सम्यक्त्व प्राप्त करने के पश्चात् भी नरक में गया। भव रूप वन में भटकने का कारण आर्तध्यान का परिणाम ही था। भगवान महावीर के जीव ने विश्वभूति के भव में, महावैरागी, महात्यागी और महातपस्वी होते हुए भी, चचेरे भाई के मजाक के बोलों पर क्रोधित होकर, मान-कषाय के अधीन हो गये। सत्त्व गंवाया तो पतन कहाँ तक हुआ ? मात्र गाय को उछाल कर ही नहीं रुके, उसे अपने हाथ पर झेल कर कुशलता से नीचे रख कर, अपने बल का नियाणा कर लिया।

विश्वभूति का नियाणा : विश्वभूतिमुनि अपमान से क्रोधित हुए और मन में नियाणा कर लिया कि 'मेरे तप, संयम का यदि कुछ फल है तो मैं परभव में अकृत बल का स्वामी बनूँ।' क्या उस वक्त उन्हें यह विचार नहीं रहा कि इस तप और संयम को तो मैंने मोक्ष प्राप्ति के लिए ग्रहण किया है, तो ऐसी इच्छा कैसे कर सकता हूँ ? नहीं, चचेरे भाई द्वारा हुए अपमान ने क्रोधित कर दिया, जिससे विचार-शून्यता की स्थिति हो गई। मोक्ष-चोक्ष कुछ नहीं, यदि तप-संयम का फल बल में मिलता हो तो मिले। ज्ञानी कहते है कि 'जहाँ तक संयोग है वहाँ तक संसार है।' भगवान ने जीव के दो भेद बताये हैं - सिद्ध और संसारी। सिद्ध भगवान की अपेक्षा से साधू-साध्वी भी संसारी के भेद में गिने जाते है। जबतक सयोगी है, मन, वचन, काय के योग में प्रवृत्त हैं तबतक संसार स्थित हैं। मन, वचन और काया के योग से मुक्त होकर १४वें गुणस्थानक में जाने पर अयोगी अवस्था प्राप्त होती है। वहाँ पाँच ह्रस्व अक्षर अ, इ, उ, ऋ, लृ के उच्चारण समय तक रह कर जीव सिद्ध क्षेत्र में चला जाता है। १४वें गुणस्थानक में मन, वचन, काया के भोग का व्यापार बंद हो जाने से संसार छोड़ना ही पड़ेगा। विश्वभूति ने मुनि होने पर भी अपमान होते ही नियाणा कर लिया । तप और संयम के प्रभाव से

काल करके सातवें देवलोक में गये । फिर त्रिपृष्ठ वासुदेव हुए और अकूत बल हासिल किया । परन्तु वहाँ से मरकर सीधे सातवें नरक में गये ।

बंधुओं । विश्वभूति के भव में इतनी साधना करने पर भी नियाणा करके साधना गँवा दी । परिणाम क्या हुआ ? पुण्य की पूँजी बँट गयी और दुर्गति खरीद ली । पुण्य की पूँजी भूनाकर वासुदेवपन नहीं खरीदा बल्कि नरक ले लिया । क्योंकि वासुदेव निश्चित रूप से नरक में जाते हैं । अतः आपको जो शक्ति, बल और वीर्य प्राप्त हुआ है उसे सांसारिक कार्य में उपयोग न करके धर्म-कार्य में आत्मा के साथ जोड़िए । तेरहवें गुणस्थानक तक पहुँचने के लिए क्रोध-मान-माया लोभ संपूर्ण रूप से छोड़ना आवश्यक है । जब आपको यह बात रुचेगी, भवफेरा खटकेगा तब शास्त्रों की बातें अच्छी लगेंगी । परिणामों से तो यह जीव क्षण-क्षण भावमरण पा रहा है ।

क्षण क्षण भयंकर, भावमरणे कां अहो राची रहो !

जिसे रोग खटकेगा वह औषधि लेगा । यह तो शरीर का रोग है । सभी के लिए रोग तो सत्ता में हैं ही । असाता का उदय होने पर बाहर आते हैं । इस रोग को मिटाने के लिए ओक्सीजन की बोतलें लगाएँ, अस्पताल खड़ी कर दें, परन्तु यदि आयुष्य पूर्ण हो गया होगा तो जाना ही पड़ेगा ।

'खाक में खप जाना, गंदा माटी में मिल जाना ।'

हिन्दु होगा तो उसकी राख होगी और मुसलमान होगा तो मिट्टी में मिलेगा । औदारिक शरीर का स्वभाव ही सड़ना, गलना और नष्ट होना है । शरीर से आत्मा के चले जाने के बाद दो घड़ी में ही शरीर में असंख्य जीव उत्पन्न हो जाते हैं । यह शरीर रोग का घर और पाप का पुतला है । ज्ञानी की दृष्टि कितनी शुद्ध है ? सोलह शृंगार से सजी सुंदर स्त्री को देखकर वह यह विचार करते हैं कि यह तो कचरा भरने वाली म्युनिसिपल की मोटर है, जो मोटर बाहर से लाल रंग की चमकदार होती हैं, पर अंदर कचरा भरा रहता है । इसी प्रकार शरीर भी बाहर से सुंदर दिखाई देने पर भी अंदर तो अशुचि और दुर्गंध से भरा हुआ है । पौद्गलिक
...र करने पर अवश्य वैराग्य उत्पन्न होता है । आप संतरा-मौसंबी
... उपज के समय उसमें डाले जाने वाले खाद को यदि आप
खाना छोड़ दें । पुद्गल का यह तो स्वभाव है । अशुभ
पेट में गया, फिर शुभ का अशुभ हो गया । इस
... को अशुभ बना देती है ।

"जिसकी संगति से अति सुंदर, मिष्ट सुगंधित भोजन भी,
अति दुर्गंधित कृमि से पूरित, होता क्षण में हाय सभी !
मूल्यवान कपड़े क्षणभर में, तुच्छ मलिन बनजाते हैं,
ऐसे मलिन देह को सुंदर, कौन मूढ़ बतलाते हैं ?"

कितना ही सुंदर और सुगंधित भोजन हो, परन्तु शरीर में जाते ही अशुभ और दुर्गंधयुक्त हो जाता है । कितना भी मूल्यवान कपड़ा हो पर एक बार शरीर पर धारण करने के बाद उसकी चमक फीकी हो जाती है । इस आत्मा ने सबकुछ परखा, परन्तु इस परखने वाले को नहीं परखा । आप बाजार में अनाज, साग-भाजी खरीदने जाते है, तब जाँच-परखकर लेते हैं ना ? (श्रोताओं में से आवाज : 'बिना परखे नहीं लेते') अनाज नया हैं या पुराना ? साग-भाजी ताज़ी है या बासी ? सब कुछ परखते हैं, एक आत्मा को नहीं परखते ।

आपसे कोई पूछे कि "धर्म क्या हैं, हमें समझाइए ।" यदि आप नहीं जानते तो आप कहेंगे, "उपाश्रय में जाइए, महासतीजी समझा देंगी ।" बंधुओं ! इतना ज्ञान तो आपको होना ही चाहिए । भगवान ने कहा है : *"वत्थु सहावो धम्मो ।"* वस्तु का स्वभाव ही धर्म हैं । शक्कर में मिठास, मिर्ची में तीखापन, नमक में खारापन, नीम में कड़वाहट उसके धर्म हैं । अपना स्वभाव अपने अंदर ही रहता हैं । स्वभाव लाने के लिए अन्य किसी वस्तु की ज़रूरत नहीं होती । जिस प्रकार शक्कर में मिठास बाहर से लाकर डालना नहीं पड़ता, मिठास शक्कर का अपना गुण है । दूध को मीठा बनाने के लिए शक्कर डालना पड़ता है, पर शक्कर को मीठा करने के लिए शक्कर नहीं डालना पड़ता । इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव (श्रोताओं में से आवाज : 'ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप') है । सब समझते तो हैं पर अपनाते नहीं । आप इनका अंश भी उपयोग करें तो अच्छा है । करोड़पति का पुत्र हो, फिर भी उसे बचपन, यौवन और वृद्धावस्था तो आयेगी ही । वह तो शरीर का स्वभाव है । शरीर में झुर्रियाँ पड़ना, काले केश का सफेद होना, दाँतों का टूटना, आँखों का तेज घटना, कान से कम सुनना यह वृद्धावस्था का स्वभाव हैं । पुद्‌गल तो अपने स्वभाव में ही रमता है, पर आत्मा अपना स्वभाव छोड़कर विभाव में पड़ा है । इसीलिए घड़ी में क्रोध, घड़ी में माया, घड़ी में मान और घड़ी में लोभ सताता हैं । आत्मा अपना स्वभाव भूल गया है । यही इसकी सबसे बड़ी भूल हैं । इसी कारण से यह भटकत हैं । आत्मा का स्वभाव ज्ञाता और द्रष्टा है । दूसरों को देखो पर उनसे जुड़ो मत । महानपुरुषों को महान तप आदि करने से विलक्षण शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, परन्तु वे उसका उपयोग नहीं करते । यदि उपयोग करें तो समझिए वह साधू नहीं है । सनतकुमार चक्रवर्ती को ७०० वर्षो की तपस्या के प्रभाव से ऐसी लब्धि-प्राप्त हुई थी कि अपना थूक शरीर पर लगा दे तो रोगों से भरी काया कंचनवर्णी हो जाये । फिर भी इस लब्धि का उपयोग उन्होंने अपने

काल करके सातवें देवलोक में गये । फिर त्रिपृष्ठ वासुदेव हुए और अकूत बल हासिल किया । परन्तु वहाँ से मरकर सीधे सातवें नरक में गये ।

बंधुओं । विश्वभूति के भव में इतनी साधना करने पर भी नियाणा करके साधना गँवा दी । परिणाम क्या हुआ ? पुण्य की पूँजी बँट गयी और दुर्गति खरीद ली । पुण्य की पूँजी भूनाकर वासुदेवपन नहीं खरीदा बल्कि नरक ले लिया । क्योंकि वासुदेव निश्चित रूप से नरक में जाते हैं । अतः आपको जो शक्ति, बल और वीर्य प्राप्त हुआ है उसे सांसारिक कार्य में उपयोग न करके धर्म-कार्य में आत्मा के साथ जोड़िए । तेरहवें गुणस्थानक तक पहुँचने के लिए क्रोध-मान-माया लोभ संपूर्ण रूप से छोड़ना आवश्यक है । जब आपको यह बात रुचेगी, भवफेरा खटकेगा तब शास्त्रों की बातें अच्छी लगेंगी । परिणामों से तो यह जीव क्षण-क्षण भावमरण पा रहा है ।

क्षण क्षण भयंकर, भावमरणे कां अहो राची रहो !

जिसे रोग खटकेगा वह औषधि लेगा । यह तो शरीर का रोग है । सभी के लिए रोग तो सत्ता में हैं ही । असाता का उदय होने पर बाहर आते हैं । इस रोग को मिटाने के लिए ऑक्सीजन की बोतलें लगाएँ, अस्पताल खड़ी कर दें, परन्तु यदि आयुष्य पूर्ण हो गया होगा तो जाना ही पड़ेगा ।

'खाक में खप जाना, गंदा माटी में मिल जाना ।'

हिन्दु होगा तो उसकी राख होगी और मुसलमान होगा तो मिट्टी में मिलेगा । औदारिक शरीर का स्वभाव ही सड़ना, गलना और नष्ट होना है । शरीर से आत्मा के चले जाने के बाद दो घड़ी में ही शरीर में असंख्य जीव उत्पन्न हो जाते हैं । यह शरीर रोग का घर और पाप का पुतला है । ज्ञानी की दृष्टि कितनी शुद्ध है ? सोलह शृंगार से सजी सुंदर स्त्री को देखकर वह यह विचार करते हैं कि यह तो कचरा भरने वाली म्युनिसिपल की मोटर है, जो मोटर बाहर से लाल रंग की चमकदार होती है, पर अंदर कचरा भरा रहता है । इसी प्रकार शरीर भी बाहर से सुंदर दिखाई देने पर भी अंदर तो अशुचि और दुर्गंध से भरा हुआ है । पौद्गलिक पदार्थों का विचार करने पर अवश्य वैराग्य उत्पन्न होता है । आप संतरा-मौसंबी खाते हैं, परन्तु उनकी उपज के समय उसमें डाले जाने वाले खाद को यदि आप देख लें तो मौसंबी-संतरा खाना छोड़ दें । पुद्गल का यह तो स्वभाव है । अशुभ से शुभ हुआ । आपने खाया, पेट में गया, फिर शुभ का अशुभ हो गया । इस शरीर की संगति ही ऐसी है कि शुभ को अशुभ बना देती है ।

"जिसकी संगति से अति सुंदर, मिष्ट सुगंधित भोजन भी,
अति दुगंधित कृमि से पूरित, होता क्षण में हाय सभी !
मूल्यवान कपड़े क्षणभर में, तुच्छ मलिन बनजाते हैं,
ऐसे मलिन देह को सुंदर, कौन मूढ़ बतलाते हैं ?"

कितना ही सुंदर और सुगंधित भोजन हो, परन्तु शरीर में जाते ही अशुभ और दुर्गंधयुक्त हो जाता है । कितना भी मूल्यवान कपड़ा हो पर एक बार शरीर पर धारण करने के बाद उसकी चमक फीकी हो जाती है । इस आत्मा ने सबकुछ परखा, परन्तु इस परखने वाले को नहीं परखा । आप बाजार में अनाज, साग-भाजी खरीदने जाते है, तब जाँच-परखकर लेते हैं ना ? (श्रोताओं में से आवाज : 'बिना परखे नहीं लेते') अनाज नया हैं या पुराना ? साग-भाजी ताज़ी है या बासी ? सब कुछ परखते हैं, एक आत्मा को नहीं परखते ।

आपसे कोई पूछे कि "धर्म क्या हैं, हमें समझाइए ।" यदि आप नहीं जानते तो आप कहेंगे, "उपाश्रय में जाइए, महासतीजी समझा देंगी ।" बंधुओं ! इतना ज्ञान तो आपको होना ही चाहिए । भगवान ने कहा है : *"वत्थु सहावो धम्मो ।"* वस्तु का स्वभाव ही धर्म हैं । शक्कर में मिठास, मिर्ची में तीखापन, नमक में खारापन, नीम में कड़वाहट उसके धर्म हैं । अपना स्वभाव अपने अंदर ही रहता है । स्वभाव लाने के लिए अन्य किसी वस्तु की ज़रूरत नहीं होती । जिस प्रकार शक्कर में मिठास बाहर से लाकर डालना नहीं पड़ता, मिठास शक्कर का अपना गुण है । दूध को मीठा बनाने के लिए शक्कर डालना पड़ता है, पर शक्कर को मीठा करने के लिए शक्कर नहीं डालना पड़ता । इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव (श्रोताओं में से आवाज : 'ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप') है । सब समझते तो हैं पर अपनाते नहीं । आप इनका अंश भी उपयोग करें तो अच्छा है । करोड़पति का पुत्र हो, फिर भी उसे बचपन, यौवन और वृद्धावस्था तो आयेगी ही । वह तो शरीर का स्वभाव है । शरीर में झुर्रियाँ पड़ना, काले केश का सफेद होना, दाँतों का टूटना, आँखों का तेज घटना, कान से कम सुनना यह वृद्धावस्था का स्वभाव है । पुद्गल तो अपने स्वभाव में ही रमता है, पर आत्मा अपना स्वभाव छोड़कर विभाव में पड़ा है । इसीलिए घड़ी में क्रोध, घड़ी में माया, घड़ी में मान और घड़ी में लोभ सताता है । आत्मा अपना स्वभाव भूल गया है । यही इसकी सबसे बड़ी भूल है । इसी कारण से यह भटकत है । आत्मा का स्वभाव ज्ञाता और द्रष्टा है । दूसरों को देखो पर उनसे जुड़ों मत । महानपुरुषों को महान तप आदि करने से विलक्षण शक्तियाँ प्राप्त होती है, परन्तु वे उसका उपयोग नहीं करते । यदि उपयोग करें तो समझिए वह साधू नहीं है । सनतकुमार चक्रवर्ती को ७०० वर्षों की तपस्या के प्रभाव से ऐसी लब्धि-प्राप्त हुई थी कि अपना थूक शरीर पर लगा दे तो रोगों मे भरी काया कंचनवर्णी हो जाये । फिर भी इस लब्धि का उपयोग उन्होंने अपने

रोग मिटाने के लिए नहीं किया । आत्मा का स्वभाव जानना है । तू जगत को जान, परन्तु उसमें लिप्त न हो । विषय-भोग, राग-द्वेष आदि आत्मा के विभाव पर्यायहैं, उसका स्वभाव नहीं । आत्मा अनादिकाल से विभाव में उलझा हुआ है और दुःखी हो रहा है । नर्क-निगोद की यातनाऐ और भयंकर वेदनाएँ सह रहा है । अनादिकाल से हमने अनंत जन्म-मरण किये उसका मुख्य कारण है आत्मा की परभाव में रमण करने की स्थिति और परिणति में उस पर आसक्ति ।

आप किसीके घर गये और उसने आदर न दिया तो आर्तध्यान होगा । लेकिन कितने ही नौकरों को उनके मालिक बेवजह फटकारते रहते हैं फिर भी वे परवश होने से सहन करते है । जीव स्ववश होकर सहन नहीं करता । जीव को जब गरज होती है तो दूसरे के पास विनम्र होकर जाता है, परन्तु यह जीव तारणहार प्रभु के पास भी गया तो मान के साथ ।

मन के घायल न होने का उपाय : मन में यह आना चाहिए कि अहो ! मेरे जैसे अबूझ, गुणहीन को विश्ववंदनीय, विश्वविजेता वीतराग परमात्मा मिल गये ! इतनी ऊँची और कीमती वस्तु भला इस अज्ञानी को मिल सकती थी ? परन्तु मेरे असीम भाग्योदय से मुझे मिल गयी है । साथ में वीतराग प्रभु के वारिश संतों जैसे अनंत उपकारी गुरु भी प्राप्त हो गये है । इन्होंने मुझे ऐसा धर्म बताया है जो मुझे जन्मोजन्म तक भटकाने वाले पाप से बचाने वाला है । अहा ! उनका कितना उपकार ! इस जैनशासन का भी कितना उपकार ! मेरे पास दान-शील-व्रत-नियम-तप, ज्ञानदर्शन, चारित्र आदि साधन हैं - यह भी कितनी उच्च और मूल्यवान वस्तु है । ये सब देव-गुरु जिनशासन, धर्मसाधन आदि मेरे पास अनुष्ठान करने के लिए महानिधान हैं । फिर इनके समक्ष अत्यन्त तुच्छ लगने वाली कोई भी सांसारिक वस्तु या सुख-सामग्री छिन जाये तो मेरा मन क्यों कुंठित होगा ? जिसके पास बीस करोड़ की संपत्ति हो उसे कोच के चार टुकड़े नष्ट हो जाने से क्या कोई दुःख होगा । यदि हमें देवाधिदेव तीर्थंकर भगवान के प्रति, गुरु के प्रति, जैनशासन के प्रति और उनके द्वारा बताये धर्म के प्रति अगाध प्रेम हो तो सांसारिक कोई भी हानि हमारे मन को घायल नहीं कर सकती ।

मोक्ष साधना के लिए जो मन सबसे बढ़कर साधन है, वही मन यदि मूर्दे जैसा हो जाय तो कितनी बड़ी हानि है ? मन की शक्ति को जानकर सांसारिक बातों से अप्रभावित रहकर साधना में एकाग्र बनाया जा सकता है, सोचें तो साधना करने योग्य बनाया जा सकता है । ऐसे मन को यदि कमजोर बना दिया जाये तो कितना कुछ खो जायेगा ? चचेरे भाई ने मसखरी की, जिसका विश्वभूति के मन पर गलत असर हुआ और मानभंग होने से मन घायल हो गया । शक्ति का पतन हुआ और मन मुरदार बन गया । मोक्ष के लिए उपयुक्त क्षमा, समता, करुणा आदि ऊँची

साधना में चूक गये । और अधिक क्या कहूँ, मोक्ष पाने की इच्छा भी गंवा दी । कितनी बड़ी हानि ! मोक्ष की लेश्या को भुलाना क्या छोटा नुकसान है ? एक छोटी सी बात में अरति करवाने वाली अरति कितनी भयंकर है ? इसलिए खूब विचार करना चाहिए । सीधी-सी बात में भी हम मन बिगाड़ लेते है और फिर वह बिगड़ा हुआ मन कैसे-कैसे अनर्थ कर डालता है । कंचन के समान उत्तम भव तुच्छ धातु जैसा बनेग, इसकी चिंता नहीं ।

विश्वभूति मुनि ने तप-संयम आदि अनुष्ठान किये थे इसलिए कालवश होकर सातवें देवलोक में तो गये, परन्तु फिर नियाणा करने के कारण अत्यन्त बलशाली, महा समृद्ध त्रिपुष्ठ वासुदेव के रूप में जन्मे । पुण्य तो है परन्तु पापानुबंधी है, इसलिए पापानुबंधी के फल रूप में जालिम मोह बुद्धि में डूबे । विषय, विलास और सत्ता का बहुत अभिमान । किसीकी छोटी-सी भूल पर भी अत्यन्त भयंकर सजा देने की क्रूरता आदि कषायो बहुत फले-फूले ।

त्रिपुष्ठ वासुदेव के जीवन का एक प्रसंग : त्रिपुष्ठ अभी वासुदेव नहीं बने थे । उनके पिता प्रजापति राजा थे । वे राजकुमार थे । राज्य-सभा में एक बड़े राजा प्रति वासुदेव की ओर से दूत आकर संदेश देता है कि अमुक सीमाक्षेत्र में चौमासे के समय अक्सर सिंह निकलता है जिससे किसान प्रजा भयभीत रहती है । इसलिए आसपास के राजा बारी-बारी से उस क्षेत्र में रक्षा-कार्य करते है । इस समय आपकी बारी है । अतः उसकी रक्षा का भार आप स्वीकारें ।' इस समय सभा में त्रिपुष्ठ भी उपस्थित थे । संदेश सुनकर उनका क्रोध बढ़ जाता है कि 'यह हमें आज्ञा देना वाला कौन होता है ? क्या वह हमें नौकर समझता है ?'' ऐसा सोचकर दूत को दुत्कारते हुए उत्तर देते हैं, परन्तु पिता को लगता है कि दूत जाकर बंधु राजा को यह सब सूचित करेगा तो वैर बढ़ेगा, लड़ाई होगी । इसलिए पुत्र को शान्त करते हुए कहते हैं कि, ''वे मुझसे बहुत बड़े राजा हैं, उनसे ऐसा कहना उचित नहीं है ।'' फिर दूत को सांत्वना देते हुए राजा का आदेश स्वीकार लेते हैं । पूर्वभव में अभिमान मजबूत करके आये त्रिपुष्ठ भला चुप बैठ सकते हैं ! दूत के पीछे जाकर उसे खूब धमका कर आ गये ।

"एक जन्म में किसी कषाय की पक्की खेती करने पर, वह आगामी भवों में भी फलती-फूलती है ।"

राजा प्रजापति अपनी सेना को साथ लेकर सिंह से रक्षा करने जाने की तैयारी करते हैं, तब पुत्र त्रिपुष्ठ कहता है : "पिताजी ! आप न जाइए । साथ में सेना की भी आवश्यकता नहीं है । हम दोनों भाई जाकर कार्य पूर्ण कर देंगे ।" ऐसा कहकर दोनों भाई रथ में बैठकर जंगल की ओर चले । वहाँ पहुँचकर झोपड़ी निवासियों से बोले : "भाई ! सिंह कहाँ है ? उसे बुलाओ ।" वे कहने लगे : "भाई ! हम आपको सिंह का पता क्या बतायें और उसे कहाँ से बुलायें ?" तो पूछते हैं : "सिंह

कब आयेगा ?" "हमें क्या पता है ?" फिर पूछते हैं : "सिंह किस दिशा से आता है ?" वनवासी पर्वत की ओर संकेत करते हैं तो त्रिपुष्ठ रथ उसी ओर मोड़ देते हैं। देखिएगा, नियाणा किस प्रकार खींच रहा है ? सिंह दिखाई नहीं देता। अतः उसे बुलाने के लिए सिंह गर्जना करते हैं। आज मनुष्य सिंह की दिशा की ओर जाने से भी घबराते हैं जबकि त्रिपुष्ठ स्वयं आगे बढ़कर उसे आवाज़ दे रहे हैं। इसीसे समझिए उनका बल कितना अधिक होगा ? अखाड़े में अभ्यास करके और मेवा-मिष्ठान-मलाई खाकर यह बल प्राप्त नहीं किया है बल्कि तप और संयम से प्राप्त हुआ है। सुंदर, तेजस्वी बल खाने-पीने से नहीं मिलता, पर तप-संयम से मिलता है। आज कलियुग के ज़हरीले वातावरण ने मन को मूर्छित कर रखा है इसलिए तप और संयम की ओर मन नहीं जाता।

"आज भोग विलास के बहुत साधन होने पर जीव की भोग विलास की लालसा में वृद्धि हुई है। अतः तप और संयम तो स्वप्न में भी नहीं आते।"

संयम के बिना उदारता, सौम्यता का बल नहीं आता और तप बिना क्षुद्रता, तामसी वृत्ति आदि निर्बलता जाती नहीं। त्रिपुष्ठ ने पूर्वभव में उग्र तप और संयम द्वारा असीम बल प्राप्त किया था। उस बल से सिंह गर्जना करके सिंह को बुला रहा है। बुलाकर क्या करेगा ? मार डालना है। सिंह बाहर आया, उसे दो हाथों से पकड़कर चीर दिया। फिर वासुदेव होने से मरकर नरक में गये।

हमें यहाँ यह बात समझनी है कि वासुदेव मरकर नरक में गये इसका कारण एक ही है कि अघोर साधना करते हुए, सुंदर चारित्र पालन किया। परन्तु आर्तध्यान का काँटा रह गया, तो नियाणा करके वासुदेव बने, सिंह को स्वयं बुलाकर मार डाला। भगवान महावीर फरमाते हैं : "मैं स्वयं भूला तो डूबा।" महावीर भगवान के अतिरिक्त कोई अपने पाप को प्रत्यक्ष नहीं कहेगा, क्योंकि उन्हें मानभंग की या दुनिया मेरी निंदा करेगी इसकी चिंता नहीं थी बल्कि अपने पाप का प्रक्षालन करना था। पाप का काँटा दूर करना था। महावीर बनने वाली आत्मा ने अपना पाप प्रकट किया, यह कोई साधारण बात नहीं है। जबतक पाप को संरक्षण देते हैं, छिपाते है तबतक संसार सामने है। पाप खटकने लगेगा तब संसार से छूटने का मन होगा। कोई गुप्त रोग हुआ हो तो डोक्टर के पूछने पर उसे सत्य कह देते है ना ? परन्तु गुरु के समक्ष पाप व्यक्त करने में संकोच करते हैं। इतना समझ लीजिए कि जबतक हृदयपूर्वक स्पष्ट नहीं कह देते तबतक सच्चा प्रायश्चित्त नहीं होता। संत तो आपको देखकर, बात सुनकर ही परख लेंगे। संत जानते हैं पर बोलते नहीं। सच्चे संत मानव को नैन, बैन और चाल से पहचान जाते हैं। हमारी बात चल रही है आर्तध्यान की। आर्तध्यान के कारण जीव पाप बाँधता है जो आत्मा की वस्तु नहीं है, परवस्तु है, परभाव है। आत्मा का स्वभाव ज्ञाता और द्रष्टा का है। ये सब पुद्‌गल के रंग है उनमें मत फँसो। इस तरह रहेंगे तो निकाचित कर्म नहीं बँधेगे और भव का अंत आयेगा।

द्रौपदी का अधिकार

तीनों ब्राह्मण ऋद्धिवंत थे : 'ज्ञाताजी सूत्र' के अधिकार में, चंपानगरी के सोम, सोमदत्त और सोमभूत नामक तीन ब्राह्मण हैं । उस समय के ब्राह्मण कैसे होते थे ?

"अड्ढे जाव अपरिभूए जाव रिउवेदे जाव सुपरिनिट्ठिया । अड्ढे" अर्थात् ऋद्धिवंत थे । उन्हें लूट-पाट का भय न था । आपके जैसे दो नंबर के खाते रखने की आवश्यकता नहीं थी । सुख से खाते और आनन्द से रहते थे । आज तो धन काला और जीवन भी काला हो गया है । शास्त्रकार भगवान फ़रमाते हैं कि "तीनों ब्राह्मण ऋद्धिवंत और महासुखी थे । *'अपरिभूए'* किसीसे पराभव पाने वाले न थे, ऐसे चतुर, बुद्धिवंत और होशियार थे । उन्होंने व्यापार में जितना पैसा लगाया था उतना ही जमीन में गाड़ रखा था और उतना ही तिजोरी में था । आज पैसा न तो धरती में है न तिजोरी में और व्यापार भी लगभग उधार के पैसे से चलता है । तीनों ब्राह्मण धन से बहुत समृद्ध थे, बुद्धि और शक्ति से किसीसे पराजित होने वाले नहीं थे । पर थे कैसे ? *'रिउवेदे जाव सुपरिनिट्ठिया'* अपने धर्म के, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद आदि चार वेदों के ज्ञाता थे । वेदांत में पारंगत, किसीसे हारने वाले नहीं थे । आप धन, व्यापार में, शक्ति में अपराजित हो, परन्तु धर्म में नहीं । ये तीनों भाई अपने सिद्धान्त के जानकार थे । आज कितने ही जीव बाहर से उजले दिखते हैं पर उन्हे नवतत्त्व की भी जानकारी नहीं होती । धर्म क्या है ? इतनी भी खबर नहीं है तो क्या करेंगे ? धर्म का मर्म अगर सही समझे होंगे तो कहीं भी जाओ, आँच नहीं आयेगी । तीनों भाई वेदांत में पारंगत थे और जानकारी में समझदारी भी थी ।

तीनों ब्राह्मणों की तीन स्त्रियाँ थीं । उनके नाम कैसे हैं ? यह महत्त्व की बात है । जिसका जीवन जानना है उसका नाम भी जानना चाहिए । इन ब्राह्मणों के लिए ऋद्धिवंत शब्द क्यों लिखा गया ? वे गरीब न थे, ऋद्धिवंत शब्द इसी विशेषता को जताने के लिए प्रयुक्त हुआ । चंपानगरी में तीन ब्राह्मण ऐसी स्थिति में रहते हैं । 'जैनदर्शन' बहुत उपयोग वाला दर्शन है । पाप करना, करवाना और अनुमोदन करने में पाप है और धर्म करना, करवाना और अनुमोदन करने में लाभ ही लाभ है । जीव पाप को जानता है फिर भी उसका पोषण करता है । इस संसार में जहाँ जीव को पाप लगता है वहाँ आंतरिक अनुमोदना है । चटनी पीसते हुए यदि बहनों को यह विचार आये कि मैं संसार में रही तो ऐसे पाप करने पड़ रहे हैं । चटनी पीसने का दुःख होता होगा तो पाप कम बंधेंगे । परन्तु यह विचार कि मैं क्या करूँ ? संसार में हूँ तो करना ही पड़ेगा ना ? वहीं अधिक कर्म बंधन है ।

तीनों ब्राह्मण, सज्जन, समझदार, और होशियार थे । उनका संयुक्त परिवार था । उनकी पत्नियों के नाम क्या थे, आदि अधिकार के भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ७

आषाढ़ कृष्ण ९, शुक्रवार | दिनांक : १२-७-७४

चारित्र की चेतना

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन की बात चल रही है। शास्त्रों का वाचन, मनन और चिंतन किसलिए है ? आत्मा को संसार के भय से निर्भय बनाने के लिए। जब आपको धर्म के प्रति राग भाव होगा तो संसार का डर लगेगा ही और मुक्ति की आकांक्षा जागेगी। आपको यह संसार भला भय का स्थान लगता है ? जब ऐसा एहसास होगा तब समझ में आयेगा कि संसार यानी विषय-कषाय और उनमें आसक्त बनना अर्थात् संसार। विषय-कषाय रूप यह संसार भयरूप है। जब जीव के हृदय में यह बात बैठ जायेगी तब धर्म की ओर आकर्षण होगा। आप तो फिर भी भाग्यवान हैं कि आपको धर्म समझाने वाले संत मिले हैं। असाध्य रोगी को कोई भी डोक्टर ठीक कर सकता है क्या ? नहीं। परन्तु धर्म को जीवन अर्पित करनेवाले सांसारिक व्याधि को दूर करनेवाले संत रूपी वैद्य अभी उपस्थित हैं। अतः समझिए। संसार झूठा है, दुःखमय है और भयरूप है। जब अंतर में यह विश्वास जगेगा तब सामायिक, पौषध आदि प्रत्येक साधना फलीभूत होगी।

भाग्योदय से हमें मानव जन्म प्राप्त हो गया है। अनादिकाल से सूक्ष्म निगोद में यह आत्मा अंगुल से असंख्यातवें भाग जितने शरीर में अनंत जीवों के साथ रहा है। अनंत जीव एकत्रित होते हैं तब अंगुल के ... सूक्ष्म शरी...
हैं। साथ में उत्पन्न होना, साथ ही आहार, साथ ही ... [illegible] । इस...
अमुक संजया वाले आगे बढ़ सकते हैं ... हैं।
लाख भागीदारों की है। उनमें से ९९९ ...
रहे - यह भी विशेष नसीब से संभव ...
समय उसे मनुष्य, त्रस-बादर के बारे म...
को जाने बिना उनका विचार कैसे आ...
... इच्छा भला कैसे होगी ? कार्य...
...गी ? फिर उसके कार्यान्वयन की ...

से आत्मा यहाँ तक पहुँच गया तो अब क्षणभर का भी विलम्ब करना उचित होगा क्या ? प्रमादी बने रहना सही होगा क्या ? हमारी आत्मा ने प्रमाद में बहुत समय व्यतीत किया है। प्रमाद ही हमें संसार में डालता है। आप पलंग में सोये रहें - यही प्रमाद नहीं है। परन्तु मद, विषय-कषाय, निद्रा, विकथा, ये पाँच प्रमाद जीव को संसार में डुबाने वाले है। धर्म करते हुए यदि जीव आश्रव का सेवन कर रहा हो तो वह धर्म नहीं है। दान देने वाला यदि विचार करे कि मैं दान दूँ तो आगामी भव में मुझे सुख मिलेगा। यह तो पौद्गलिक सुख की माँग हुई, इसे दान नहीं कहेंगे बल्कि भीख या माँग हुई ! दान देते हुए परिग्रह का बोझ घटना चाहिए। कोई व्यक्ति सिर पर दो मन का बोझा लेकर जाता हो, उसके माथे से कोई एक मन का बोझ उठा ले तो वह क्या कहेगा ? हाँ, तुम्हारा भला हो, कहेगा ना ? सच्चा दान वही कहलाता है जो देने के पश्चात् उसपर ममत्व भाव न हो, मैं दान दे रहा हूँ, ऐसा गर्व न हो। ऐसा दान देने से पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जन करते है, जिस पुण्य को भोगते हुए पाप नहीं बंधता बल्कि पुण्य बँधता है। दान देने पर भी जिसे अंदर से परिग्रह मोह नहीं छुटा है उसका पुण्य तो बँधता है पर यह पापानुबंधी पुण्य होता है, जिसके पुण्य भोगते समय पाप का बँध होता है।

बंधुओं। सम्यक्त्व चाहिए तो गुण प्रकटाइए। जिसे सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है उसे संसार के प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक विषयों के प्रति अरुचि होती है। उसके लिए जहर का घूँट पीना और संसार का सुख भोगना एक समान होता है। जहर का घूँट तो यह जीवन नष्ट करेगा, परन्तु विषय-भोग रूपी जहर का घूँट तो भवोभव बिगाड़ देगा। सम्यक्त्वी को जीवन में दुःख आने पर वह यह विचार करता है कि मैंने कर्म बाँधे है वे उदय में आयें है इसलिए अपना उपयोग नहीं चूकना है। शास्त्रवाणी सुनने का प्रयोजन क्या है ? दुःख के समय में, कठिन प्रसंगों में जीव आर्तध्यान से न जुड़ जाये। भगवान पार्श्वनाथ की कहानी हमने पढ़ी ही है। उन्होंने पिछले भव में तापस से क्षमा माँगी कि "हे गुरुदेव ! मुझसे भूल हो गई। मैंने आपके दोष पिताजी से कहे तो उन्होंने आपको देशनिकाला दे दिया और आपने तापस रूप ग्रहण किया।" ऐसे माफी माँगने पर भी, तापस को उनपर क्रोध आया और शिलाखंड उठाकर उनके सर पर फेंका। पार्श्वनाथ के जीव ने पलटकर मारा तो नहीं, कटुवचन भी नहीं कहे, परन्तु मन में आया कि मैं तो क्षमा माँगने आया था तो भी मेरी यह दशा कर दी। इतना-सा विचार भी आर्तध्यान है। आर्तध्यान वाला मरकर तिर्यंच बनता है। इसलिए बहुत सजग रहने की जरूरत है। जैसे कच्चे धागे में बंधी हुई तलवार झूलती हो तो उसके नीचे बैठे व्यक्ति को कितनी जागृति रखनी होती है। वैसे ही आत्मा में आर्तध्यान न प्रवेशे इसके लिए

हुआ था, फिर भी रूप नष्ट करने के लिए अघोर तपस्या, आयंबिल आदि तप करके शरीर को सुखा डाला था। ऐसा ही एक प्रसंग है।

चारित्र की कसौटी : दो साध्वीजी थीं। उनका रूप बड़ा ही आकर्षक और अलौकिक था। संत एवं सतीजी गाँव में चातुर्मास के लिए पधारे। गुरुजी रोज व्याख्यान फरमाते और दोनों साध्वियाँ श्रवण करने आतीं। एक बार इन अति सौंदर्यवती साध्वियों को देखकर युवा राजकुमार की दृष्टि बदल गयी। मुनि समझ गये कि आज व्याख्यान में खोटा रुपया बैठा है। साध्वीजी उपाश्रय पहुँचकर संध्या समय प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, ध्यान करके विश्राम करने लगी। इन साध्वियों का शील सुरक्षित रहे, इस कोशिश में संत उपाश्रय में उनकी पहरेदारी में लग गये। भगवान ने फ़रमाया है कि "अपने चारित्र व शील की रक्षा के लिए तुझे मध्यरात्रि में भी चलना पड़े तो चलो।" सामान्य अवस्था में तो लघुशंका या शौच के अतिरिक्त सूर्यास्त के पश्चात् बाहर एक कदम भी रखने से प्रायश्चित्त लेना पड़ता है। दोनों साध्वियों को सुबह खबर हुई कि हमारे रूप के प्रति राजकुमार की कुदृष्टि के कारण संत को रात-भर यहाँ बैठना पड़ा। उन्होंने सोचा अब यह रूप नहीं चाहिए। दोनों ने तभी संथारा ग्रहण कर लिया। चारित्र की रक्षा के लिए शरीर का त्याग कर दिया, यह है संयम की लगन। ज्ञानियों ने कहा है कि 'चारित्र की रक्षा करो, देह का बलिदान देकर भी।' यह बात मात्र हमारे लिए कही गयी है, ऐसा नहीं है। भगवान ने श्रावक से भी यही कहा है, "जीवन में ऐसे प्रसंग आयें तो भले ही सबकुछ चला जाये, पर चारित्र न खोना।" चंदनबाला और धारिणी माता रथ में जा रही थीं, तब सारथी की कुदृष्टि धारिणी माता पर हुई। धारिणी देवी ने सारथी को बहुत समझाया, जब न माना तो अपनी जीभ खींचकर प्राण दिये और शील की रक्षा की। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। इतिहास के पन्नों में ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। बाह्य रूप रूप नहीं है, संयम ही रूप है। संयम उज्ज्वल होगा तो वह रूप ही है।

तीन ब्राह्मणों की पत्नियाँ सुकोमल है। विशाल विचार वाली हैं, आनन्द से रहती है। पैसा हो या न हो जहाँ एकता है वहाँ शान्ति है। ऐक्य ही सच्ची लक्ष्मी है। लक्ष्मी छोड़नी पड़े तो कोई बात नहीं, पर क्लेश को कभी प्रवेश मत दो। तीनों स्त्रियाँ आनन्द से, सुख से, मानव भव के सुख भोग रही थीं। अधिक भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ८

आषाढ़ कृष्ण १०, शनिवार | दिनांक : १३-७-७४

समकित का समां

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

त्रिलोकीनाथ करुणासागर ने जगत के जीवों के आत्मकल्याण के लिए आगममय वाणी प्रकाशित की । वीतराग वाणी के प्रति जब श्रद्धा होगी तो आत्मा की ध्वनि ही अलग होगी । भगवान की वाणी में इतना ओज और सामर्थ्य है कि जिसे सुनकर पापी भी पवित्र बन गये है । वही वाणी आज हमें प्राप्त हुई है । हम वाणी श्रवण करते है, परन्तु अंतर में नहीं उतारते । अगर अंतर में उतारा भी है तो अभी तक आचरण में नहीं लाया है । इस मानव जन्म की महत्ता आचरण में लाने के लिए है । देव भगवान की वाणी सुनने आते हैं, अंतर में प्रतीति भी होती है, परन्तु अमल में लाने में वे असमर्थ हैं । वे समझते है कि प्रत्याख्यान करने से जीव को यह लाभ होता है और अप्रत्याख्यान का इतना नुकसान है । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २९वें अध्ययन में गौतमस्वामी विनयपूर्वक भगवान से पूछते हैं कि "हे प्रभु !

"पच्चक्खाणेणं भंते जीवे किं जणयइ ? पच्चक्खाणेणंआसवदाराइ निरुम्भई । पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जण्यइ ।इच्छ निरोहं गए य णं जीवे सव्वदव्वेसु विणीयतण्हे सीइभूए विहरइ ।।"

– उत्त-सू. अ.-२९.

अर्थात् पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान) से जीव को क्या लाभ होते हैं ? पच्चक्खाण से जीव आश्रव के द्वार को रूंध (बंद कर) देता है और इच्छानिरोध करता है । इच्छा-निरोध से जीव समस्त द्रव्यों की तृष्णा से रहित होकर शान्ति से विचरता है । पच्चक्खाण करने से आश्रव द्वार बंद हो जाते हैं । आपके मकान में कचरा न भर जाये, इस दृष्टि से अनावश्यक खिड़की-दरवाजे बंद कर देते हैं, परदा लगा देते हैं । घर का कचरा साफ करने में जीव कितना जागृत रहता है ! आत्मा में कचरा भरने की फुरसत है, परन्तु साफ करने की नहीं । आत्मा का कचरा साफ करने के लिए कभी अवकाश लिया है ? बहुत-से लोग कहते हैं पच्चक्खाण की क्या जरूरत है ? हमारा मन मजबूत है । ज्ञानी कहते है कि 'तेरे ऐसा कहने से वीतराग

के वचनों की विराधना होती है।' भगवान की आज्ञा में वर्तने वाला जीव आराधक और आज्ञा विरुद्ध वर्तन करने वाला विराधक है।

जमाली कोई सामान्य व्यक्ति न थे। ग्यारह अंगों के जानकार थे। महान समर्थ पुरुष थे। उनका त्याग भी उत्तम था। परन्तु वीतराग की आज्ञा का एक शब्द उत्थापित करने से भगवान के समुदाय से बाहर हो गया। जगत में आज जीव पाप छिपाते फिरते है। एक पाप को ढाँकने अन्य सत्रह पाप करने पड़े तो करते है।

पाप कीधा अघोर छुपाव्या बहु, पुण्य कीधानो देखाव कीधो बहु,
भर्या अंतरमां जोर, बहार अमृत पण वेर,
एवां कामो जीवनमां में आचरिया... शुं ये शोभी रह्या छे मारा जिनवरियाँ।

'जैनदर्शन' में जहाँ देखिए वहाँ महान पुरुषों ने अपने पाप जगत के समक्ष प्रकट किये हैं, छिपाये नहीं। बंधुओं! अपने से कम हो तो कम कीजिए, परन्तु वीतराग की आज्ञा कभी उल्टने की कोशिश मत कीजिए। आज कितने ही जीव हिंसा करके धर्म मानते हैं, परन्तु जहाँ हिंसा है वहाँ धर्म है ही नहीं। जहाँ अहिंसा है वहीं धर्म है। अधर्म करके अहिंसा मनवाते हों तो वह अहिंसा भी हिंसा है। आज भगवान का नाम-स्मरण और भक्ति के नाम पर जीव पाप करते रहते है। यह भक्ति नहीं, पाप है। जबतक जिनेश्वरदेव के वचनों पर श्रद्धा नहीं, प्रेम नहीं तबतक जीव भटकता रहता है। जिसे *'जिणवयणे अनुरत्ता'* अर्थात् जिनेश्वर के वचनों के प्रति अनुराग है, वीतराग वाणी के अनुसार, उनकी आज्ञा के अनुसार चलता है, उसका उद्धार होता है। बहनें जब पीसने के लिए गेहूँ चक्की में डालती हैं तो जो दाना चक्की के कील से सटा रहता है वह पिसता नहीं। इसी प्रकार भगवान की आज्ञा रूपी कील का आधार छोड़ देने वाले, शास्त्रों का रहस्य न समझने वाले भटक रहे हैं। इसलिए भगवान की आज्ञा रूपी कील के आधार पर रहो। पतंग की डोर जबतक मालिक के हाथ में है तबतक आधार है, परन्तु डोर कट जाने पर पतंग कहाँ गिर पड़ी है, यह देखने मालिक नहीं जाता।

बंधुओं! इस जीव की संसार में भटकन किस कारण से है? भगवान की वाणी के प्रति श्रद्धा नहीं है। सम्यक्त्व प्राप्त करने के स्थान की पहचान नहीं है। जब तक पहचान नहीं है तबतक मिथ्यात्व के छः कारणों का सेवन करता रहता है। मोक्ष में जाने के लिए सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र - ये तीन रत्न है। सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् भी उपयोग सहित रहना आवश्यक है। कब कोई समकित जीव चूक जाये, इसी आधार पर उसके लिए अर्धपुद्गल परावर्तन काल बताया गया है। सभी समकिती सावधान व सजग ही रहेंगे - यह नहीं कहा जा सकता। समकित आने के बाद जागृति रहने जैसे संयोग मिल जायें और चारित्र

प्राप्त करने का ही लक्ष्य हो तो आगे बढ़ना संभव है। परन्तु सभी समकिती जीवों के लिए यह नियम नहीं है। ज्ञानी कहते हैं कि 'आप मिथ्यात्वी का संग या परिचय मत कीजिए, क्योंकि इससे सम्यक्त्व के समाप्त होने का प्रसंग आ सकता है।' क्षयोपशम समकित एक बार नहीं बल्कि असंख्याता बार आता है और असंख्याता बार चला भी जाता है। क्षायिक समकित एक बार आने के बाद जाता नहीं। क्षायिक समकित पाने तक क्षयोपशम समकित को मजबूत बनाने के लिए सिद्धान्तों का वाचन एवं श्रवण कीजिए।

जगत के सर्व जीवों को सुख चाहिए और सुख प्राप्ति के लिए यह भाग-दौड़ है। ज्ञानी कहते है कि 'संसार का सुख मात्र कल्पित सुख है, सुखाभास है।' संसार दुःख से रहित नहीं है। ज्ञानियों ने संसार की अनंत दुःखमय तरीकों से पहचान करवाई हैं। सांसारिक सुख कर्मजनित है और इस सुख को ज्ञानी आत्मा के दुःख रूप में बताते हैं। अज्ञानी को संसार का सुख सुख प्रतीत होता है, परन्तु ज्ञानी को नहीं। जिसे आप बहुत अच्छा सुख मानते हैं, वह भी दुःख मिश्रित होता है। क्योंकि आपका माना हुआ सुख प्राप्त हो जाये तो भी जन्म का, जरा (वृद्धावस्था) का, मरण का, रोग का दुःख तो रहेगा ही। लक्ष्मी भी स्थिर नहीं रहती। संसार के सुख ऐसे हैं जिन्हें प्राप्त करने में, प्राप्त करने के बाद भोगने में और उसे बनाये रखने में दुःख तो होता ही है। फिर यह स्थिर भी नहीं है। या तो यह आपको छोड़कर चला जायेगा या आपको छोड़ जाना पड़ेगा। ज्ञानी के वचन समझने की जरूरत है कि परिग्रह बहुत बढ़ाया अब मर्यादा में आना है, नहीं तो तृष्णा की आग सुलग रही है। 'जहाँ दुःख है वहाँ संसार है, जहाँ संसार है वहाँ दुःख है। जहाँ मोक्ष वहाँ सुख और जहाँ सुख वहाँ मोक्ष।"

बंधुओं! चक्रवर्ती को संपूर्ण सुख होता है या नहीं? नहीं। चक्रवर्ती को भी पूर्ण सुख नहीं होता। उसे मानसिक दुःख बहुत होता है। सनत्कुमार को अपने रोग की जानकारी हुई और तुरंत वैरागी बनकर निकल पड़े। सुभूम और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती मरते समय तक चक्रवर्ती बने रहे तो मरकर नरक में गये। जरा सोचिए कि मेरी कौन-सी गति होगी? क्षणिक सुख के लिए अठारह पापों का सेवन कर रहा हूँ तो मेरी आयुष्य डोर टूटने पर यह पतंग कहाँ जाकर गिरेगी? जीव नरक में गया तो वहाँ कोई छुड़ाने नहीं आयेगा। दस चक्रवर्तियों ने महान सुखों को त्याग कर संयम अंगीकार किया। गोचरी के लिए जाते हुए यह विचार नहीं आया कि कहाँ मेरा चक्रवर्ती स्वरूप और कहाँ यह घर-घर गोचरी जाना। उल्टे यह विचार आया, मैं चक्रवर्ती था पर जब आत्मा का चक्रवर्ती बनूं, सिद्ध-बुद्ध, निरंजन-

निराकार बनूँ तब आत्मा का चक्रवर्ती बना, कहा जायेगा। सुभूम नामक चक्रवर्ती को छः खंड का साम्राज्य भी कम लगने लगा। चक्रवर्ती बनकर सुभूम ने छः खंड तो साध लिए और सातवें खंड को साधने की इच्छा जगी। उनके मन में मान समाया कि सारे चक्रवर्ती तो छः खंड पर आधिपत्य जमा सके है, मैंने भी वही किया तो उसमें मेरी क्या विशेषता ? अतः अब मैं सातवाँ खंड भी साथ लूँ। (श्रोताओं में से आवाज : 'भूख नहीं मिटी।') तो मरकर नरक में गये। लोभ और मान का दुःख अन्य अनेक दुःख उपस्थित करता है। यह तो आपके अनुभव की बात है। जिसके पास पच्चीस से पचास हजार हों उसे लाख पाने की, लाख हो उसे दस लाख, दस लाख हो उसे करोड और जिसके पास करोड हों उसे अब्जपति बनने की इच्छा होती है या नहीं ? बड़े श्रीमंत बनने और सम्मान पाने का अनेक जीवों को रोग लगा है, जितना मिलता है उतना ही और पाने की तृष्णा रूपी यह रोग खूब फल-फूल रहा है। पैसा पाने की धून में पाप का बोझ बढ़ा रहे है, तो पाप की खाई में जाना पड़ेगा। संसार में इस आग के बीच खड़े रहकर इससे कैसे बच सकेंगे ?

१४वें अध्ययन में एक प्रसंग है, वन में वृक्ष की ऊँची डाल पर एक पक्षी बैठा है। वह विचार करता है कि 'इस वन में दावानल भड़का है। वन के सारे पशु-पक्षी इसमें जलकर समाप्त हो जायेंगे फिर मैं आराम से बैठकर सब खाऊँगा। यह सोचकर प्रसन्न होता है पर उसे यह ख्याल नहीं कि इस ज्वाला में मैं भी खाक हो जाऊँगा। सबमें मेरा भी तो नंबर है। इसी प्रकार परिग्रह में आसक्त बने जीव धन प्राप्ति के लिए कितने ही जीवों के प्राण लूटते हैं, उन्हें यह ध्यान नहीं रहता कि काल राजा आकर मेरे भी प्राण छीन लेगा। सभी को जाना है और जाना है तो सब कुछ यहीं छोड़कर जाना है। यदि आसक्ति रह गयी तो पाप और अनासक्ति आयी तो धर्म साथ में जायेगा।

सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् संतों को भी बहुत उपयोग रखना पड़ता है। एक मुनि अपनी मुनिचर्या के पालन में बहुत दृढ थे। गोचरी करने के पश्चात् कचरा साफ करने भूमि प्रतिलेखन करते हुए आत्मभाव की शुद्धि से अवधिज्ञान प्रकट हुआ। निमित्त तो छोटा-सा था, परन्तु परिणाम की धारा ऊंची थी। चार प्रत्येक बुद्ध हुए है।

करकंडु कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्महो।
नमी राया विदेहेसु, गंधारेसु य नग्गइ।

- उत्त. सू., अ.-१८, गाथा-४६

कलिंग देश में करकंडु, पंचाल देश में दुमुख, विदेह में नमिराजा और गांधार देश में निग्गई राजा। प्रत्येक बुद्ध हुए हैं।

नमि राजर्षि कंगन की आवाज सुनकर एकत्व भावना से भावित हुए और जातिस्मरण ज्ञान हुआ। निमित्त तो सहज था। आपने कंगन और झांझर की आवाज सुनी। यह सब निमित्त तो सभी को मिलता है, परन्तु उपादान भी सही था तो फल तक पहुँच गया।

मुनि को अवधिज्ञान हुआ तो विचार किया कि देवलोक की सुख की बातें तो बहुत सुनी हैं, देखें जरा वहाँ है क्या ? उपयोग लगाकर देखा तो पहले देवलोक के इन्द्र सौधर्मेन्द्र, जो ३२ लाख विमानों के स्वामी और इतने ही देवताओं के अधिपति है, अपनी रूठी हुई इन्द्राणी को मना रहे थे। अवधिज्ञान प्राप्त मुनि को यह दृश्य देखकर हँसी आ गयी कि 'वाह रे इन्द्र ! तेरी यह दशा !' चारित्र मोहनीय कर्म की २५ प्रकृति है, जिसमें १६ कषाय और ९ नोकषाय हैं। हास्य कषाय में आ जाते है - कषाय को मज़बूत करनेवाला कषाय। जैसे मूल या जड़ को सींचने से वह मज़बूत बनता है उसी तरह नोकषाय कषाय को मज़बूत बनाता है। हास्य आने से उनका अपना भाव भी उन्होंने गँवा दिया जिससे अवधिज्ञान हीयमान हो गया। हँसी आई कि मुनि का अवधिज्ञान चला गया। इस प्रकार हँसी आना ज्ञान का प्रभाव है या अज्ञान का ? (श्रोताओं में से आवाज : 'अज्ञान का') इन्द्र इन्द्राणी को मना रहा है, इसमें आश्चर्यजनक क्या है ? मोह के ऐसे झोंके तो संसार में रहते ही हैं - इससे बचे रहने वाले भाग्यशाली हैं। मुनि ने संसार के स्वभाव के बारे में विचार किया होता तो उन्हें कभी हँसी नहीं आती।

व्याख्यान स्वाध्याय है। जिसके ज्ञान में जितना क्षयोपशम होता है उतना ही वह खिलता है। आप रोज व्याख्यान सुनने आते हैं। हमारे मन में विचार आये कि इन सबको इतना समझाते है फिर भी यहाँ से निकलते ही रास्ते में किसीसे मुलाकात हुई तो सांसारिक बातें करने लग जाते हैं। घर पहुँचकर भी मोह के नचाये नाचते रहते हैं और एक दूसरे पर क्रोध करते हैं, जरा भी नहीं सुधरते। हमें ऐसे विचार मन में नहीं लाना चाहिए। बल्कि हमें संसार के स्वभाव का विचार करना चाहिए कि सांसारिक जीवों पर मोह का कैसा साम्राज्य फैला हुआ है ! आत्मा सम्यक्त्व पाकर भी पतन की ओर चला जाये, यह संभव है। कर्म शत्रुओं को क्षय करने के बदले अंतर शत्रुओं को दबाते हुए ग्यारहवें गुणस्थानक तक पहुँच जाता है। यथाख्यात चारित्र प्राप्त और वीतरागी गुणस्थानक में पहुँचा हुआ जीव किसलिए नीचे गिरता है ? क्योंकि कर्म की प्रकृति का क्षय नहीं किया, मात्र उपशम किया है। समकित प्राप्त जीव मुनि के जैसे परिणाम में पहुँचकर वमन कर दे तो अर्धपुद्गल परावर्तन काल भटकता है। साधक आत्मा कैसा होता है ?

देह छतां जेनी दशा वर्ते देहातीत
ते ज्ञानीना चरणमां वंदन हो अगणित

देह में रहते हुए परिणाम में जो देहातीत - देह अलग है । और मैं अलग हूँ। 'जहाँ शरीर है वहाँ संसार है और जहाँ शरीर नहीं, वहाँ संसार नहीं है, ।' सिद्ध अपना शरीर मृत्युलोक में छोड़कर जाते हैं । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के ३६वें अध्ययन में प्रश्न किया है कि 'सिद्ध के जीव अपना शरीर कहाँ छोड़कर जाते हैं ?' *"कहिं बोन्दि चइत्ताणं ?"* प्रभु का उत्तर है, *"इह बोन्दि चइत्ताणं"*, इसी मनुष्य लोक में शरीर छोड़कर लोक के अग्रभाग पर सिद्ध जाते है । अतः शरीर के साथ ही संसार, जन्म-मरण, आधि-व्याधि आदि है । आपको सुख चाहिए या दुःख ? (श्रोताओं में से आवाज : 'सुख') तो भगवान ने सुख पाने के जो उपाय बताये है उन्हें आचरण में लाना होगा । कोई आदमी किसी सेठ के यहाँ नौकरी करने आये तो सेठ जैसे कहेगा वैसा ही करेगा, तभी तो सेठ नौकरी पर रखेगा । या सेठ की बात न मान अपनी मनमानी करे तो सेठ उसे नौकरी पर रखेगा क्या ? इसी प्रकार भगवान के संत आपसे जैसा कहते है वैसा करो तो कल्याण दूर नहीं, परन्तु यदि आप अपनी मति से चलेंगे तो वीतराग शासन से बाहर फिंके जाओगे । संत कहते है कि 'आपको सुख चाहिए तो यह है ; सुख का उपाय है । आप संसार में रहते हुए अलिप्त भाव से रहिए, कषाय को मंद कीजिए और परिग्रह की ममता घटाइए ।' परलोक में जाते समय रत्ती भर भी यहाँ से साथ नहीं ले जाना है । जिनकी सेवा में देवता हाजिर रहते थे, ऐसे चक्रवर्ती को भी नरक में पीड़ा और दुःख से बचाने कोई नहीं गया, तो आपको आपकी देवियाँ भला कैसे बचायेंगी ? जबतक पुण्य की टाँकी भरी हुई है, तबतक सब खबर लेंगे, फिर कोई सामने देखेगा भी नहीं । इसलिए पाप से पीछे फिरो । सम्यक्त्व का स्पर्श पाने वाला जीव संसार के प्रत्येक भाव को देखता है पर उससे जुड़ता नहीं । धर्म प्राप्ति का यह मौसम है, ज्ञानी कहते हैं -

"जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ
जाविन्दिया न हायन्ति, ताव धम्मं समायरे ।।"

- दश. सू. अ-८, गा-३६

जबतक वृद्धावस्था नहीं आई है, व्याधियाँ बढ़ी नहीं हैं, इन्द्रियाँ क्षीण नहीं हुए है तबतक धर्म की आराधना कर लो ।

तेरे वेदनीय कर्म जबतक उदय में नहीं आये हैं तबतक साधना कर ले । आप व्यवहार में कहते हैं ना कि युवावस्था में कमाया हुआ बुढ़ापे में काम आयेगा ।

धन-कमाने के मौसम में भूख-प्यास सब कितना सहन करते हैं ? ज्ञानी कहते हैं कि 'इसी प्रकार यह मानव भव आत्मा की कमाई का मौसम है ।' लेकिन अभी तक मानव भव को पहचाना नहीं है । फिर भी भाग्यशाली हैं कि आपको समझाने वाले संत पुरुष मिल गये हैं, तो कमाई कर लीजिए, साधना कर लीजिए । चूक गये तो समझिए डूब गये । यह हमारा अस्पताल है । जन्म-मरण का फेरा मिटाने के लिए मरीज इसमें आते हैं । हम आगम की सुंदर औषधि लेकर बैठे हैं । यह औषधि ग्रहण कर शासन में स्थिर बनिए । जो भगवान के सिद्धान्तों को जान लेंगे और उन्हें जीवन में अपनायेंगे तो उनका भवफेरा अवश्य ही टल जायेगा ।

द्रौपदी का अधिकार

देवरानी-जेठानी में प्रेम : 'ज्ञाताजी सूत्र' में तीन ब्राह्मण की तीन पत्नियाँ है । सबसे बड़ी का नाम नागश्री है । बड़े होने में बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है । ट्रेन की अपेक्षा से प्लेन चलाने वाले की जवाबदारी अधिक है, क्योंकि प्लेन गिरे तो बैठे हुए सभी मानवों का नाश हो जाता है । प्लेन से ट्रेन चलाने वाले का दायित्व कम, उससे गाड़ी चलाने वाले का कम और साइकल चलाने वाले का दायित्व सबसे कम होता है । ऐसे ही ८४ लाख जीवायोनियों में भटकता जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय कर्मभूमि के स्टेज पर आया है । इस समझ के घर में आने के बाद यदि उपयोग में चूकेंगे तो चूर-चूर हो जायेंगे । साधू के एक उपवास में १००० उपवास का लाभ कहा गया है और साधू यदि भूल करे को दंड भी हजार उपवास का आता है । छद्मस्थ की लहर और मोहनीय कर्म के उछाल से कदाचित भूल हो जाये तो उस भूल को गुरु के समक्ष कह दें और गुरु जो प्रायश्चित्त दें उसे प्रेम से स्वीकार करें ।

आपको मोक्ष के सुख चाहिए तो उसके लिए ज्ञानियों द्वारा बताये उपायों को ग्रहण करना पड़ेगा । इतना कहने मात्र से सम्यक्त्व आ नहीं जाता । मोक्ष है, मोक्ष का उपाय है तो उस उपाय को जानकर उसपर श्रद्धा रखनी होगी तथा यह निश्चय करना होगा कि ये उपाय मुझे आचरण में उतारने हैं । इसके बिना सम्यक्त्व नहीं आता, सच्चा सुख प्रत्यक्ष होता है त्याग में । सामायिक, पौषध, दान आदि में यदि आनन्द अनुभव हो तो मोक्ष का सुख प्रत्यक्ष होना संभव है ।

नागश्री जेठानी है । तीनों देवरानी-जेठानी आनन्द से रहती हैं । जिस घर में विनय-विवेक है उनका संसार स्वर्ग के समान है और जिस घर से विनय, विवेक चला जाता है वहाँ का संसार दावानल है । इसलिए नींव मजबूत बनाइए, धर्म का मूल विनय है । विनयी, विवेकी, सदाचारी स्त्री, अपने घर में कदाचित पाप के योग से, गरीब हो पर बाहर किसीसे बताती नहीं । तीनों देवरानी-जेठानी में आपस में अभी तक प्रेम बहुत है । एक दूसरे का विवेक संभालती हैं, अभी उनके संसार

में कलह, लड़ाई, क्लेश का दावानल नहीं सुलगा है । सभी आनन्द से रहते हैं। शेष भाव अवसर पर ।

स्व.स. के स्व. पू. छगनलालजी म.सा. की पुण्यतिथि

आज हमारे पूज्य गुरुदेव की पुण्यतिथि है अतः उनके बारे में दो शब्द कहता हूँ । जैन धर्म के एक महान दीपक पूज्य छगनलालजी म.सा. खंभात के निवासी थे । पिता का नाम अवलसंग और माता रेवाकुंवरबाई थीं । उनकी एक बह थी । पिताश्री नवाबी राज्य में नौकरी करते थे । क्षत्रिय होने पर भी जैन मित्र के साथ उपाश्रय आते रहते थे । उनकी आत्मा इतनी हलुकर्मी थी कि एक बा के संत परिचय ने उन्हें वैराग्य के रंग में रंग दिया । आत्मकल्याण की भावना जा उठी । परन्तु उनके चाचा-चाची ने दीक्षा नहीं दिलाने की नीयत से उनका जबरदस्त विवाह करवाया । लेकिन जिसका मन वैराग्य में रंग गया था वह किसी प्रका संसार से न जुड़ सका । अपने एक जैन मित्र के साथ वे भाग गये । श्री वेणीरामज महाराज का समागम हुआ और उन्होंने अपनी बात उनसे कही । महाराज सा. कहा : "भाई, जैन धर्म के कायदे के अनुसार बिना आज्ञा के दीक्षा नहीं जाती ।" अंत में काका ढूँढ़ते हुए उन्हें वापस घर ले गये । परन्तु वैरागी कभी छु नहीं रह सकता । उन्होंने काका-काकी से कहा कि "मेरा एक-एक पल अमू है । आपलोग मुझे क्यों रोक रहे हैं ? क्या मेरी मृत्यु को आप रोक सकेंगे ? आ लोग मेरी आत्मा का अहित मत कीजिए । अपने कुल का सद्भाग्य है कि मु आत्मकल्याण का मार्ग मिल गया है, अब मुझे शीघ्र विदा दीजिए ।" क्षात्रते के देदीप्यमान शब्दों का अद्‌भुत असर हुआ । आखिर में पत्नी तथा परिवार सदस्यों ने आज्ञा प्रदान की । संवत् १९४४ की पौष शुक्ल दसमी के दिन खंभा संप्रदाय के पूज्य श्री हर्षचंद्रजी स्वामी से सूरत में दीक्षित हुए । साधना के प पर एक महान योगी आत्मकल्याण साधने निकला । दीक्षा के पश्चात् पाँच व में ही उन्हें गुरुदेव का वियोग सहन करना पड़ा । सहिष्णुता के स्वामी, जैन ध के योद्धा श्री छगनलालजी म.सा. पू. श्री भाणजी रखजी महाराज तथा पूज्य गिरधरलालजी महाराज के साथ विचरने लगे । संवत १९८३ में पूज्य पदवी दायित्व पूज्यश्री पर आ गया । पूज्य छगनलालजी म.सा. की गंभीरता, कार्यकुशल तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व के प्रभाव से अनेक भव्य जीवों ने उनकी छत्रछा में आश्रय प्राप्त किया । पूज्य गुरुदेव की प्रभावशाली-ओजभरी वाणी से मह विभूतिरत्न पूज्य श्री रत्नचंद्रजी म.सा., तपस्वी पू.श्री छोटालालजी म.सा., मह

विभूति पूज्य श्री आत्मारामजी म.सा., सेवाभावी खीमचंद्रजी म.सा. तथा महान तपस्वी पू. फूलचंद्रजी म.सा. जैसे महान शिष्य हुए। महान पूज्यश्री के शिष्य भी महान हुए। आज विराजमान महान वैरागी पूज्य कांतिऋषिजी म.सा. आदि ठाणा भी पूज्य छगनलालजी म.सा. के शिष्य हैं। पूज्य गुरुदेव का जैसा प्रभाव था वैसा ही प्रभाव आज वे शासन पर डाल रहे हैं।

पूज्यश्री ने जीवन में अनेक महान कार्य किये हैं। जैन-शाला, श्राविका-शाला आदि संस्थाएँ जहाँ नहीं थीं वहाँ प्रारंभ करवाई तथा उन्हें विकसित करते रहने का उपदेश दिया। सेवा का मूल्य समझाया। डगमगाते जैनों को स्थिर करने तथा जैनेत्तरों को प्रेम से जैनधर्मी बनाने का उत्तम कार्य उन्होंने किया। सर्वप्रथम सं. १९७५ का चातुर्मास कांदावाड़ी में किया। सं. १९७८ में अजमेर के वृहद साधू संमेलन में उन्हें आमंत्रित किया गया था। शिष्यों के साथ वहाँ पहुँचकर शोभा बढ़ाई। उनके जैसे ही महान विभूतियों से समागम हुआ। पूज्य श्री अमोलख ऋषिजी म. से उन्होंने लवजी स्वामी का जीवन इतिहास जाना। गोंडल संप्रदाय के पूज्य श्री जशाजी महाराज से भी अपनी जिज्ञासा वृत्ति के कारण बहुत कुछ प्राप्त किया।

पूज्यश्री के शिष्यसमुदाय में प्रथम शिष्य, महान विभूति पूज्य बा.ब्र. श्री रत्नचंद्रजी म.सा. हुए, जो रत्न के समान थे। वे सदा देदीप्यमान रहे। गुरु और शिष्य दोनों राजपूत, फिर क्या पूछना ? महान जीवन जीकर हम सबको प्रेरणा प्रदान कर गये। पूज्य श्री वयोवृद्ध, अनुभवी, विचक्षण, विद्वान, शांत और गंभीर थे। अपने सुचारित्र की ज्योति प्रसारित करके ५१ वर्ष की दीक्षा पर्याय के पश्चात् ७५ वर्ष की उम्र में संवत १९९५ की वैशाख कृष्ण दसमी की शुभ प्रभात में अपनी आत्मा का कल्याण करते हुए, हम सबको छोड़कर इस फानी दुनिया से विदा लेकर चल निकले।

हसते मुखड़े मृत्युने भेट्या पूज्य प्रतापी गुरुदेव,
नमन करता नयन भीना छे, वियोग साले छे गुरुदेव,
प्रेरणानी ए ज्वलंत ज्योति, क्यारे गई बुझाई,
अम सौ बालकोनी मिल्कत, क्यारे गई लुटाई।

संघ-सेवा और पुरुषार्थ उनका जीवन उपदेश था। नवीन साहस, नया बल, नई जागृति, नया विधान यह सर्व पूज्यश्री के सुधारक और क्रांतिमय हृदय में बसा हुआ था। पूज्यश्री के जीवन से कोई गुण अपनाकर ही उनकी पुण्यतिथि को सार्थक किया जा सकता है।

पूज्य गुरुदेव श्री छगनलालजी महाराज सा. के स्वर्गवास के पश्चात् संवत् १९८५ में बाल ब्रह्मचारी पूज्य श्री रत्नचंद्रजी म.सा. आचार्य पद पर आसीन हुए। पूज्य गुरुदेव का संवत् २००४ में स्वर्गवास होने पर आचार्य की पदवी पूज्यश्री गुलाबचंद्रजी म.सा. को प्रदान की गयी। वे महान आत्मार्थी और घोर तपस्वी थे। वे शासन के एक महान रत्न थे। अंतिम समय तक उनकी आत्म-साधना चलती रही। उन्होंने २७ बार 'भगवती सूत्र' का वांचन किया था, ३२ सिद्धान्तों का रहस्य उन्हें कंठस्थ था। ऐसे महान संत को जब याद करते है तब उनके जगमगाते चारित्र की ज्योति आँखों के सम्मुख घूमने लगती हैं। पूज्य महान संतों, पूज्य गुरुदेव छगनलालजी म.सा. तथा पूज्य गुलाबचंद्रजी म.सा. की पुण्यतिथि के निमित्त पर आप सब लोग आज व्रत-प्रत्याख्यान अंगीकार कीजिए।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ९

आषाढ़ कृष्ण ११, रविवार | दिनांक : १४-७-७४

स्व से पहचान

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

त्रिलोकीनाथ वीतराग परमात्मा की शाश्वती वाणी का नाम है सिद्धान्त। प्रभु वीतराग कब बने ? *'राग-द्वेष विजेतारं'* राग-द्वेष के विजेता बने तब। सिद्धान्त वाणी की लौ में रंगे महापुरुष अनादिकाल से अज्ञान में भटकते जीवों को पुकार कर कहते हैं कि 'हे जीवों ! अब तो जागो। संसार के रसिक बन कर नश्वर आनन्द बहुत लिया, परन्तु स्वानुभूति का आनन्द नहीं पाया।' बाह्य आनन्द से आपके भव की भूख भंग नहीं होगी। दुनिया की वाह-वाह में आप अपने को धोखा दे रहे हैं। यदि शाश्वत संपत्ति और आनन्द चाहिए तो ज्ञानी पुरुषों के जैसा पुरुषार्थ करके अपने अंदर बैठे मिथ्यात्व और अज्ञान के अंधकार को उलीच कर सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान का दीपक प्रकाशित कीजिए। विभाव से पीछे हटिए। स्वरूप में स्थिर रहकर सत् स्वरूप को प्राप्त कर लीजिए। अंतर में अनादिकाल से वासना के पड़े हुए कुसंस्कारों को अंतर्दृष्टि से अवलोक कर दूर कीजिए, दृढ मत कीजिए।

अनादि की कालिमा नष्ट करने का साधन मानव भव ही है क्योंकि तिर्यच पराधीन है, देव सुखों में मग्न हैं और नैरेये दुःख में डूबे हुए हैं, बाकी बचा मानव भव । भवोभव में बाँधे हुए कर्मों की जो परतें आत्मा पर जम गईहैं वे यहीं साफ होंगी । अन्य भवों में इस मैल को दूर करने का पानी नहीं है । इस मानव भव में समता की शिला पर समझ/बोध का साबुन लेकर, वीतराग वाणी रूपी पानी के द्वारा आत्मा रूपी कपड़े पर लगे दागों को धो डालिए । अनादि की दुःख परंपरा को मिटाने का अवसर झड़प लीजिए और स्वानुभूति का आनन्द प्राप्त कीजिए । एक क्षण का स्वानुभव हजारों वर्षो के शास्त्र-ज्ञान से महान है । आत्म-भान के बिना, हजारों वर्षो तक किये गये शास्त्राभ्यास में कर्म क्षय करने की ताकत नहीं है । वह एक सेकन्ड मात्र में आत्म-भान-(स्वबोध) से हो सकता है । संसार-समुद्र से पार उतरने का साधन सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र है । जब जीव विभाव से निवृत्त होकर स्वभाव में स्थित होता है, तब मोक्ष प्राप्त होता है । ऐसा अद्‌भुत अनुभव जीव ने कभी प्राप्त नहीं किया है, यदि किया होता तो यह भ्राँति और भव-भ्रमण टिक नहीं सकते थे । भगवान ने दिव्य ध्वनि में उपदेश दिया है, जिसका सार स्वानुभव से स्वरूप में समा जाने का है । 'आचारांग सूत्र' में प्रभु फरमाते है -

"जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।"

सूत्र छोटा-सा है, पर उसमें रहस्य गूढ़ है । जो एक अपनी आत्मा को जानता है वह जगत के सर्व पदार्थो को जान लेता है । जो सर्व पदार्थों को जानता है वह एक अपनी आत्मा को जान लेता हैं । जिसने स्वयं को नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना ।

जाणी जाणीने जाण्युं तो ये जाण्यो नहि जाणनारो रे,
एक जाग्यो न आतम तारो, तो निष्फल छे जन्मारो रे,
अनंत शक्तिनो स्वामी थईने बनी गयो बिचारो रे... एक जाग्यो न...

शास्त्रकार ने सिद्धान्त में कहीं भी यह नहीं कहा है कि 'जिसे धन-संपत्ति, वैभव नहीं मिला उसका जन्म निष्फल है ।' जागने के समय में यदि आपकी आत्मा जागेगी नहीं तो यह जन्म निष्फल जायेगा । व्यापार कैसे करना, संसार कैसे चलाना आदि सब जाना, पर जिसे जानना चाहिए उसे नहीं जाना । मृत्यु लोक में आकर इस मानव भव को पाकर क्या किया जाना चाहिए ? किसलिए मानव जन्म प्राप्त हुआ है ? इन बातों को नहीं समझा । इस जगत में अपनी आत्मा, सर्वोत्तम है । वह निश्चय से अरिहंत है, सिद्ध है, आचार्य है, उपाध्याय

पूज्य गुरुदेव श्री छगनलालजी महाराज सा. के स्वर्गवास के पश्चात् संवत् १९८५ में बाल ब्रह्मचारी पूज्य श्री रत्नचंद्रजी म.सा. आचार्य पद पर आसीन हुए। पूज्य गुरुदेव का संवत् २००४ में स्वर्गवास होने पर आचार्य की पदवी पूज्यश्री गुलाबचंद्रजी म.सा. को प्रदान की गयी। वे महान आत्मार्थी और घोर तपस्वी थे। वे शासन के एक महान रत्न थे। अंतिम समय तक उनकी आत्म-साधना चलती रही। उन्होंने २७ बार 'भगवती सूत्र' का वांचन किया था, ३२ सिद्धान्तों का रहस्य उन्हें कंठस्थ था। ऐसे महान संत को जब याद करते है तब उनके जगमगाते चारित्र की ज्योति आँखों के सम्मुख घूमने लगती हैं। पूज्य महान संतों, पूज्य गुरुदेव छगनलालजी म.सा. तथा पूज्य गुलाबचंद्रजी म.सा. की पुण्यतिथि के निमित्त पर आप सब लोग आज व्रत-प्रत्याख्यान अंगीकार कीजिए।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक १

आषाढ़ कृष्णा ११, रविवार | दिनांक : १४-७-७४

स्व से पहचान

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

त्रिलोकीनाथ वीतराग परमात्मा की शाश्वती वाणी का नाम है सिद्धान्त। प्रभु वीतराग कब बने ? *'राग-द्वेष विजेतारं'* राग-द्वेष के विजेता बने तब। सिद्धान्त वाणी की लौ में रंगे महापुरुष अनादिकाल से अज्ञान में भटकते जीवों को पुकार कर कहते हैं कि 'हे जीवों ! अब तो जागो। संसार के रसिक बन कर नश्वर आनन्द बहुत लिया, परन्तु स्वानुभूति का आनन्द नहीं पाया। बाह्य आनन्द से आपके भव की भूख भंग नहीं होगी। दुनिया की वाह-वाह में आप अपने को धोखा दे रहे हैं। यदि शाश्वत संपत्ति और आनन्द चाहिए तो ज्ञानी पुरुषों के जैसा पुरुषार्थ करके अपने अंदर बैठे मिथ्यात्व और अज्ञान के अंधकार को उलीच कर सम्यक्‌दर्शन और सम्यक्‌ज्ञान का दीपक प्रकाशित कीजिए। विभाव से पीछे हटिए। स्वरूप में स्थिर रहकर सत् स्वरूप को प्राप्त कर लीजिए। अंतर में अनादिकाल से वासना के पड़े हुए कुसंस्कारों को अंतर्दृष्टि से अवलोक कर दूर कीजिए, दृढ मत कीजिए।

अनादि की कालिमा नष्ट करने का साधन मानव भव ही है क्योंकि तिर्यच पराधीन है, देव सुखों में मग्न हैं और नैरेये दुःख में डूबे हुए हैं, बाकी बचा मानव भव। भवोभव में बाँधे हुए कर्मों की जो परतें आत्मा पर जम गईहैं वे यहीं साफ होंगी। अन्य भवों में इस मैल को दूर करने का पानी नहीं है। इस मानव भव में समता की शिला पर समझ/बोध का साबुन लेकर, वीतराग वाणी रूपी पानी के द्वारा आत्मा रूपी कपड़े पर लगे दागों को धो डालिए। अनादि की दुःख परंपरा को मिटाने का अवसर झड़प लीजिए और स्वानुभूति का आनन्द प्राप्त कीजिए। एक क्षण का स्वानुभव हजारों वर्षों के शास्त्र-ज्ञान से महान है। आत्म-भान के बिना, हजारों वर्षों तक किये गये शास्त्राभ्यास में कर्म क्षय करने की ताकत नहीं है। वह एक सेकन्ड मात्र में आत्म-भान-(स्वबोध) से हो सकता है। संसार-समुद्र से पार उतरने का साधन सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र है। जब जीव विभाव से निवृत्त होकर स्वभाव में स्थित होता है, तब मोक्ष प्राप्त होता है। ऐसा अद्‌भुत अनुभव जीव ने कभी प्राप्त नहीं किया है, यदि किया होता तो यह भ्राँति और भव-भ्रमण टिक नहीं सकते थे। भगवान ने दिव्य ध्वनि में उपदेश दिया है, जिसका सार स्वानुभव से स्वरूप में समा जाने का है। 'आचारांग सूत्र' में प्रभु फरमाते है -

"जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ।"

सूत्र छोटा-सा है, पर उसमें रहस्य गूढ़ है। जो एक अपनी आत्मा को जानता है वह जगत के सर्व पदार्थो को जान लेता है। जो सर्व पदार्थों को जानता है वह एक अपनी आत्मा को जान लेता हैं। जिसने स्वयं को नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना।

जाणी जाणीने जाण्युं तो ये जाण्यो नहि जाणनारो रे,
एक जाग्यो न आतम तारो, तो निष्फल छे जन्मारो रे,
अनंत शक्तिनो स्वामी थईने बनी गयो भिचारो रे... एक जाग्यो न...

शास्त्रकार ने सिद्धान्त में कहीं भी यह नहीं कहा है कि 'जिसे धन-संपत्ति, वैभव नहीं मिला उसका जन्म निष्फल है।' जागने के समय में यदि आपकी आत्मा जागेगी नहीं तो यह जन्म निष्फल जायेगा। व्यापार कैसे करना, संसार कैसे चलाना आदि सब जाना, पर जिसे जानना चाहिए उसे नहीं जाना। मृत्यु लोक में आकर इस मानव भव को पाकर क्या किया जाना चाहिए ? किसलिए मानव जन्म प्राप्त हुआ है ? इन बातों को नहीं समझा। इस जगत में अपनी आत्मा, सर्वोत्तम है। वह निश्चय से अरिहंत है, सिद्ध है, आचार्य है, उपाध्याय

है, साधू है । पहँचपरमेष्ठि पद का परम वैभव आपमें भरा हुआ है, परन्तु उसकी
पहचान नहीं की है । जहाँ अनंत तृष्णा है वहाँ अनंत दुःख है । स्वर्ग के इन्द्र
हों या छत्रधारी सम्राट या फिर भिखारी, जिसे आत्मस्वरूप का बोध नहीं है, वह
अज्ञानी है । क्षण-क्षण तृष्णा की दाह में जल रहा है, इसलिए है चेतन ! तू प
में जिस सुख को ढूँढ रहा है, उस अज्ञान को छोड़कर आत्मज्ञान की दिव्य ज्योति
अंतर में प्रकाशित कर । जिसे आध्यात्मिक शास्त्र की लगन लग गयी है उसे
दूसरा वांचन तुच्छ जान पड़ता है ।

बंधुओं ! सम्यक्त्व की प्राप्ति यानी मोक्ष की ओर बढ़ता कदम । तत्पश्चात
पुरुषार्थ द्वारा सर्वविरति निर्ग्रन्थ दशा की भूमिका की ओर प्रयाण किया जा
सकता है । उसके बाद क्रमशः वीतराग दशा प्राप्त कर केवल ज्ञान पाया जा
सकता है । केवल ज्ञान का मुख्य कारण आत्मा का भेद विज्ञान है । इसके बि
मोक्ष नहीं है । अनादिकाल से देह को आत्मा मानने की भूल किसने की
आत्मा स्वयं अज्ञान के कारण भूल करता है और स्वयं आत्मज्ञान से सुधार भ
सकता है । भूल आप करें और सुधारे कोई अन्य, ऐसा कभी नहीं ह
सकता । इसलिए अपने अनंत दुःखों की भूल को इस दुर्लभ मानव जन्म
सुधार लीजिए । अपनी भूल सुधारने के लिए आपको किसी अन्य की राह न
देखनी है । बल्कि पर भाव से पीछे हटकर, विकारी भावों का विसर्जन करे
अपने वास्तविक स्वरूप में रमण करने का अजोड़ साहस करना है । अपने आन
सागर में डूबकी लगाकर सच्चे मोती निकाल, विभाव के शंख-घोंघे से आपका
काम नहीं बनेगा । पहले तो यह काम कठिन लगेगा । शीतकाल में भोर बेला
में सरिता के शीतल जल में स्नान करने के पहले बहुत ठंड लगती है, डर लगता
है, कँपकँपी होती है, परन्तु हिम्मत करके पानी में कूद जाने के बाद तैरने का
कुछ और ही आनन्द आता है । वैसे ही स्नेह की रेशमी शोल में लिपटे रहने तक
मुक्ति की कल्पना नहीं भी आये और आये तो उस कल्पना के साथ जन्मी अनेक
उलझनें भी साथ आती हैं । परन्तु मुक्त होने के बाद जो आनन्द प्राप्त होता है,
हृदय प्रमुदित होता है उसे क्या शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है ? कलम
से लिखा जा सकता है ? अतः एक बार जीवात्मा को प्रचंड पुरुषार्थ करना
पड़ेगा ।

बंधुओं ! इस जीव ने बाह्य त्याग तो बहुत बार किया है, परन्तु आभ्यंतर त्याग
नहीं किया । अणगार किसे कहते हैं ?

'संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ।।'

- उत्त. सू. अ.-१, गा-१

जिन्होंने संयोगों का विशेष प्रकार से त्याग किया है उनका नाम अणगार है । भगवंत फ़रमाते हैं कि "संयोग दो प्रकार के हैं । एक बाह्य और दूसरा आभ्यंतर ।" घर-बार, पैसा, लाड़ी, वाडी और दास-दासी आदि सब कुछ छोड़ने का नाम बाह्य संयोग है । संयम लेने वाली आत्मा ने यह सब राजी-खुशी से छोड़ा और दूसरों को छोड़ना पड़ा तब छोड़ा । काल राजा के आने पर इच्छा हो या न हो, सब कुछ छोड़कर जाना पड़ता है । एक ने प्रेम से त्यागपत्र दे दिया और दूसरे को राजीनामा देना पड़ा । जो आत्मा बोधपूर्वक बाह्य संयोगों को छोड़कर निकलता है उसे धन्य (२) है और जब उसकी आत्मा देह छोड़कर जाती है तब भी वह धन्य है । संसार त्यागकर आने वाले संयमी की जय और अंतिम समय भी जय । जो बोधपूर्वक नहीं छोड़ते उसके लिए लोग हाय... हाय... करते है । अतः जीवन का मूल्य समझिए । बाह्य संयोग अनंत बार प्राप्त हुए और छोड़े । बहुत लोग पहले बर्मा में रहते थे । जो वहाँ के नागरिक बन गये वे वहीं रह गये, परन्तु जो भारतीय रहे, उन्हें अपना सब कुछ वहीं छोड़ खाली हाथ भारत लौटना पड़ा ना ? सुंदर विदेशी डिज़ाइन का बँगला बनवाया, विदेशी फर्निचर से सजाया, विदेशी गाड़ी लाये, अचानक काल राजा का बुलावा आ जाये तो क्या उन्हें कहेंगे कि 'मैंनें कितने उत्साह और शौक से यह सब बनाया है । छः महीने तो यह सब भोगने का मौका दे दो' तो क्या वह दे देगा ? नहीं । वहाँ तो तुरंत जाना पड़ेगा, सब छोड़ना पड़ा ना ?

एक बार एक बहन कम उम्र में विधवा हो गयी । मैं उसे मांगलिक सुनाने गयी । बहुत रो रही थी वह । मैंने कहा : "बहन ! इतनी समझदार हो, क्यों रो रही हो ?" बहन बोली : "महासतीजी ! मैंने फॉरेन से साडियाँ मँगवाई थीं, अभी उन्हें खोला भी नहीं था कि श्रावकजी चले गये ।" मुझे लगा, 'यह संसार कितना स्वार्थमय है । साड़ी पहन न पायी इसका शोक है ।' सभी अपने स्वार्थ के लिए रोते हैं, आदमी के लिए नहीं । यदि उन्हें उनकी चिंता होती तो सोचना चाहिए था अरे, हमारे सुख के लिए इतना काला-सफेद किया, भूख-प्यास तक भूलकर काम में लगे रहे, बेचारे, मानव भव प्राप्तकर आत्मसाधना किये बिना चले गये । हम सबके लिए तो बहुत किया, परन्तु अपने लिए कुछ न किया । ऐसी स्त्रियाँ तो विरल होंगी । फानी दुनिया से विदा लेते हुए सब छोड़ना पड़ता

है । फिर स्वेच्छा से क्यों न छोड़ा जाये ? सबके छोड़ने में भी फर्क होता है। एक स्वाधीन-भाव से छोड़ता है तो दूसरा पराधीन-भाव से । भगवान् फरमाते हैं कि "स्वाधीन-भाव से द्रव्य परिग्रह का त्याग करने के पश्चात् भी, आभ्यंतर परिग्रह का त्याग करना मुश्किल है ।" वस्तु के त्याग के साथ उस वृत्ति का त्याग भी जरूरी है । उपवास तो किया, लेकिन वृत्तियों का घोड़ा यदि पारणे की तरफ दौड़ता हो तो ऐसे उपवास या दूसरे किसी त्याग से जो लाभ मिलना चाहिए वह नहीं मिलता । इसलिए त्याग सच्चे अर्थ में करना चाहिए । प्रभु से यही प्रार्थना है कि

"मोह मस्तीने मारजे, विषय वृत्तिने वारजे,
शरणे आव्याने उगारजे, नाविक बनीने तारजे ।"

संसार त्यागकर सत्‌शास्त्रों में मन लगे तो मन से मोह की मस्ती मरे । इन्द्रियों के विषयों की ओर की वृत्ति स्व की ओर मुड़ जाये तो इस जीवन नैया का नाविक स्वयं बनकर संसारसागर से पार उतर जाये । अतः स्व में स्थित होने की आवश्यकता है । स्व में स्थिर होने पर आत्मा का सुख पायेंगे, सम्यक्त्वी जीव पाप कार्य करते समय ही काँप उठता है । अन्याय, अनीति उसे डँसते हैं । एक बार स्वानुभूति हो जाये, सम्यक्त्व आ जाये तो जीवन की दिशा बदल जाती है । जबकि मिथ्यात्व का प्रबल जोर विभाव में ले जाकर, पर को अपना मनवाकर दुःखी कराता है । आठ कर्मों में सबसे बड़ा और सात कर्मों का राजा मोहनीय कर्म है जिसकी स्थिति सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की है । संसारी जीवों को भान नहीं है इसलिए ममत्व और विभाव में जाकर माया और कपट करते हैं । बड़ी-बड़ी फैक्ट्री खोलकर हिंसा का तांडव रचकर महाआरंभ और महापरिग्रह से जुड़कर नरक में चले जाते हैं । अज्ञान दशा में पड़ा हुआ साधक भी यदि भूले न तो डूबे । सिद्धान्त में साधु और श्रावक दोनों के बारे में कहा गया है । पेट्रोल की टंकी फटे तो बचना मुश्किल है, कदाचित् भाग्योदय से बच जायें । इसी तरह जीवन में अघोर तपस्या करके अखंड चारित्र्य पालन किया हो पर यदि अनंतानुबंधी कषाय की टंकी फटे तो बचना मुश्किल है । जहर तो यह जन्म बिगाड़ता है, परन्तु कषायों का जहर भवोभव बिगाड़ देता है ।

चित्त और संभूति ने चंडाल के भव में दीक्षा ली । फिर संभूतिमुनि नमुचि प्रधान के घर गोचरी के लिये गये । नमुचि प्रधान संभूतिमुनि पर क्रोधित हुआ और उन्हें खूब मारा । मार खाते-खाते उनका धैर्य छूट गया और क्रोधित होकर अपनी तेजोलेश्या छोड़ी । सारा नगर धुएँ से भर गया । भयभीत लोगों ने अप

अपराध की क्षमा माँगी । खबर मिलते ही चक्रवर्ती सनत्कुमारमुनि के दर्शन करने आये । चरणों में वंदन कर पूछा : "मेरी प्रजा का क्या अपराध है ? गुनाह हुआ हो तो क्षमा कीजिए ।" उसी समय चित्तमुनि भी वहाँ पहुँच गये और संभूतिमुनि को समझाकर शांत किया । सनत्कुमार संभूतिमुनि को वंदन करते हैं, साथ उनकी स्त्री भी दर्शन करने आयी है । उसके बालों में कीमती सुगंधित तेल लगाया हुआ है । मुनि ध्यानावस्था में बैठे हैं । चक्रवर्ती की स्त्री नमस्कार करती है । भगवान ने फ़रमाया कि "साधू-साध्वी को वंदन करते समय बीच में डेढ़ फूट जगह रहनी चाहिए ।" वंदन करते हुए स्त्री की लट का हल्का-सा स्पर्श मुनि के पैरों से हुआ । बाल का स्पर्श होते ही शरीर में शीतलता छा गई । तब मुनि के मन में आया 'कि अहा ! इतनी शीतलता कहाँ से आयी ?' आँख खोलकर देखा । अहा ! इतनी सुंदर जोड़ी ! साधक आत्मा को साधना करना आसान है, परन्तु साधना में स्थिर रहना मुश्किल है । लाखों मन रूई को अग्नि की एक चिंगारी जलाकर समाप्त कर देती है । संभूतिमुनि ने इतनी उग्र साधना होने पर भी चक्रवर्ती और उसकी रानी को देखकर नियाणा किया कि 'मेरे तप और संयम का फल हो तो मैं अगले भव में इसके जैसा चक्रवर्ती बनूँ ।' उस समय चित्तमुनि ने उन्हें प्रतिबोधित किया कि "भाई ! आलोचना कर लीजिए । छद्मस्थ हैं, भूल हो जाती है, परन्तु अब आलोचना कर लीजिए । आलोचना नहीं करने से विराधक बनेंगे ।" 'निशीथ सूत्र' में भगवान ने फ़रमाया है कि "साधू हो या श्रावक, छद्मस्थ रूप में कदाचित भूल हो जाये तो गुरु के समक्ष अपनी भूल कहकर, प्रेम से प्रायश्चित्त स्वीकारे तो फिर से अपनी स्थिति पर आ जाता है ।" परन्तु प्रायश्चित्त ऐसा नहीं होना चाहिए कि घड़े फोड़ते जायें और *मिच्छामि दुक्कडं* बोलते जायें । संध्या समय प्रतिक्रमण करके *मिच्छामि दुक्कडं* किया और सुबह उठकर फिर से वही गलती नहीं दोहरानी चाहिए ।

दोनों मुनि आयुष्य पूर्णकर देवलोक में गये । संभूतिमुनि का जीव ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप में जन्मा और चित्तमुनि सुखी कुटुंब में जन्मे, दीक्षा लेकर मुनि बन गये । ब्रह्मदत्त ने जाति-स्मरण ज्ञान होने से अपने पाँच भव देख लिए ।

दासा दसण्णे आसी, मिया कालिंजरे नगे ।
हंसा मयंगतीराए, सोवागा कासीभूमिए ।।

- उत्त. सू. अ-१३, गा-६

इस भव में हम जुदा हो गये । मेरा भाई मुझे कहाँ मिलेगा ? उसकी बहुत तलाश करवाते हैं । मुनि विचरते हुए उसी नगरी में पहुँचते है । चित्तमुनि के

मन में आता है कि पाँच भव से साथ रहने वाला मेरा भाई दुर्गति में नहीं जाना चाहिए। त्यागी त्याग की बात करता है और भोगी भोग की। ब्रह्मदत्त कहते हैं कि "हे भाई ! मैं चक्रवर्ती और तू घर-घर भिक्षा लेने जाये, मुझे शर्म आती है। तू अपना साधूपन छोड़कर मेरे महल में आ जा।" अन्य महल तो बहुत थे पर पाँच प्रकार के महल उत्तम थे।

उच्चोयए महु कक्केय बंभे, पवेइया आवसहा य रम्मा।
इमं गिहं चित्त धणप्पभूयं, पसाहि पंचाल गुणोववेयं ॥

---उत्त. सू. अ-१३, गा-१३

मेरे यहाँ ऊँच, उदय, मधु, कर्क और ब्रह्म देवकृत महल अतुल धन-सामग्री, पांचाल देश का राज्य आप भोगिए। अपना तप, त्याग, छोड़कर इन सुंदर महलों में आइए।" सुंदर संयम-मार्ग में ब्रह्मदत्त को दुःख दिखाई देता है। समुद्र के किनारे मछुआरा मछली देखता है, खार का काम करनेवाला उसमें नमक देखता है और जौहरी रत्न देखता है। चित्तमुनि को संयम-मार्ग में रत्न दिखे जबकि ब्रह्मदत्त को नमक के समान दुःख दिखाई देते है। भोगी त्यागी को भोग के लिए आमंत्रित करता है। कितने प्रलोभन देता है, परन्तु मुनि को संयम से जरा भी डिगा नहीं पाता। ब्रह्मदत्त के वचन सुनकर चित्तमुनि कहते है कि, है ब्रह्मदत्त ! सुनो, जिन सुखों के लिए मुझे आमंत्रित कर रहे हो वे सुख मुझे कैसे लगते हैं !

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्ट विडम्बियं।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥

- उत्त. सू. अ-१३, गा-१६

चित्तमुनि कहते हैं कि-"हे ब्रह्मदत्त ! जिन गीतों को तुम आनन्ददायक मान रहे हो वे मुझे सद्यः विधवा के विलाप जैसे लग रहे है। आपके नाटक मुझे विडंबना रूप लगते हैं। ये आभूषण- निरर्थक भार रूप लगते हैं, और जिन काम-भोगों को आप सुख मान रहे हैं वे अंत में दुःखदायक है तथा अति भयंकर हैं।" अज्ञानी आत्मा को सुख में दुःख दिखाई देता है और ज्ञानी दुःख में भी सुख मानता है। आपको गाड़ी-मोटर, लाड़ी-वाडी मिल जाये कि मान लेते हैं बहुत सुखी है। परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि 'यह सब पुद्गल की माया है।' जहाँ पुद्गल के प्रति राग है वहाँ संसार का परिभ्रमण है। जब पुद्गल का आकर्षण नष्ट होगा और स्वानुभूति होगी तब आत्मा शाहंशाहों का भी शाहंशाह होगा चक्रवर्ती पद पाने के लिए, छः खंड साधने के लिए कितने युद्ध करने पड़े, हिंसा

का कैसा तांडव रचा गया । इतना सब करके छः खंड प्राप्त किया, पर जिस क्षण यह सच्चाई समझ में आ गयी कि मैंने हीरा देकर कंकड़ लिया है तो क्षण भर में सब कुछ त्यागकर संयम-मार्ग में प्रयाण कर दिया। आप क्षण को कितनी कीमती मानते हैं ! चाहे जितना पैसा दीजिए, क्या बीता हुआ क्षण प्राप्त कर सकते हैं ? मृत्यु का समय आ जाये तो डोक्टर से क्या कहते हैं ? इतना कीजिए कि हाथ हिला सके । किसलिए ? सही करवाने के लिए या अंगूठा लगवाने के लिए । उस समय यदि महासतीजी मांगलिक सुनाने आयी हों तो उन्हें भी आप प्रतीक्षा में खड़े रखेंगे । संसार कैसा स्वार्थभरा है !

चित्तमुनि ब्रह्मदत्त को बहुत समझाते हैं कि "भाई ! ये तेरे महल, हीरे-मोती, सोना-चाँदी तेरे साथ नहीं आयेंगे । तेरी सारी संपत्ति मिलकर भी तेरी मृत्यु को एक पल के लिए नहीं रोक सकती । तेरी आत्मा के जाते ही तेरे इस सुंदर शरीर को सब मिलकर जला डालेंगे । परिग्रह तुझे दुर्गति में ले जायेगा । अतः हे भाई ! तू समझ जा ।" परन्तु ब्रह्मदत्त नहीं समझे, परिणाम स्वरूप नरक में गये । बारह चक्रवर्तियों में से ब्रह्मदत्त और सुभूम चक्रवर्ती भोग न छोड़ने के कारण नरक में गये है । ब्रह्मदत्त सात सौ वर्ष के भौतिक सुख के कारण सातवीं नरक में तैंतीस सागरोपम के दुःख भोग रहे हैं । कहाँ सात सौ वर्ष और कहाँ तैंतीस सागरोपम ! अतः स्व में स्थित रहो ।

मदालसा जैसी सद्गुणी माताएँ अपने पुत्र के जीवन में ऐसे संस्कारों का सिंचन करती है कि 'हे पुत्र ! सबके बीच रहकर भी तू एक है । तेरा स्वरूप सच्चिदानन्द है । तू संसार में रहे, तो भी किनारे खड़ा रहना, कीचड़ में न जाना ।' कृष्ण वासुदेव दीक्षा भले ही न ले सके, परन्तु जब वे भगवान नेमिनाथ के पास जीवों को दीक्षित होते देखते हैं तो उनकी आँखों से आँसू टपकने लगते कि 'प्रभु ! आपका शरण प्राप्तकर सभी जीव अपना श्रेय कर रहे हैं, परन्तु मैं रह गया ।' संयम न ले सकने की वेदना उनके मन में थी । आज जीवों को यह वेदना नहीं होती । यदि एक बार सम्यक्त्व का स्पर्श हो जाये तो जीवन बदल जाये ।

मरते-मरते भी माता की शुभ भावना : एक राजकुमार था। उसकी माता बहुत धार्मिक वृत्ति वाली थीं । उनकी भावना यह थीं कि संसार में अलिप्त भाव से रहें । पाँच वर्ष के बालक को भी अच्छे संस्कार दिये थे । पुत्र अभी पाँच वर्ष का ही है और माता मृत्युशय्या में पहुँच गयी । उसे तो पुत्र को संयमी बनने की प्रेरणा देनी है । परन्तु एकलौता पुत्र है तो राजा यह स्वीकार नहीं करेंगे । बेटा

बड़ा होकर राज्य में, संसार में लिप्त हो जायेगा तो दुर्गति में जाना पड़ेगा । अतः क्या किया जाए ? पुत्र संसार में खो न जाये इसलिए माता ने एक तावीज बनवाया उसमें एक चिट लिखकर रखा और कुंवर के गले में ... दिया । फिर माता की मृत्यु हुई । आज की माताएँ विचारती हैं कि बेटा बड़ा होगा, उसका विवाह करूँ, सासु बनूँ ।' परन्तु सासु बनने में साँस बीच में अटक जायेगी । राजा को नयी रानी ब्याहने की सलाह दी जाती है पर राजा कहते हैं : "पत्नी के लिए यदि पति एक होता है तो पति के लिए भी पत्नी एक ही होगी । कुछ वर्षों में कुंवर युवा हो जायेगा, फिर क्या चिंता है !" कुंवर बीस वर्ष का हुआ तो राजा ने उसे राजगद्दी सौंपी और स्वयं दीक्षा अंगीकार की । राजकुमार राज्य-संपत्ति का स्वामी बनकर सत्ता के शिखर पर चढ़कर मदमत्त बन जाता है । कर्मसत्ता किसीको नहीं बख्शती । उतार-चढ़ाव की चमक तो जीवन में आती रहती है ।

एक बार दुश्मन राजा ने चढ़ाई कर दी । युवा राजा घबरा गया । दुश्मन राजमहल तक चढ़ आया और भयभीत होकर राजकुमार जंगल की ओर भाग निकला । दुश्मन ने उसके राज्य पर अधिकार कर लिया । राजा इतना डर गया था कि बालक के जैसे बैठकर रोने लगा । राज्य की आसक्ति छूटी नहीं थी । सुख में जिसने खूब ऐश-आराम अनुभव किया था, वह दुःख में धीरज कैसे रख सकेगा ? जो सुख में सावधान रहता है वही दुःख के समय धैर्य रख सकता है । कर्म राजा ने तीर्थंकरों को भी नहीं छोड़ा है ।

पर में स्व की भावना से होता दुःख : जंगल में एकाकी भटकता राजा निराधार होकर फूट-फूट कर रोने लगा । 'अब मैं क्या करूँगा ? मेरा राज्य नहीं रहा, अब मेरे लिए सुख कहाँ है ?' अपने को समाप्त करने के अतिरिक्त कोई रास्ता उसे नजर नहीं आता और आत्महत्या करने के लिए अपना गला दबाता है । गला दबाते हुए ताबीज टूटने से उसके अंदर रखी चिट नीचे गिर पड़ती है । चिट देखकर राजा आश्चर्य चकित होता है कि 'इसमें भला किसने लिखकर रखा है !' क्षणभर के लिए दुःख भुलाकर चिट को खोलकर पढ़ने लगा । लिखा था - 'यह भी रहने वाला (टिकने वाला) नहीं ।' वाक्य पढ़ते ही राजा के चेहरे पर आनन्द की ऊर्मियाँ उछलने लगीं कि 'अहा ! कितना सुंदर वाक्य है ? मैं व्यर्थ ही रोना-धोना कर रहा हूँ । मेरी माता ने दुःख के समय हिम्मत रखने के लिए कितना सुंदर वाक्य तावीज में लिखकर रखा था ? यह वाक्य मुझे कहता है कि यह दुःख अधिक समय तक रहने वाला नहीं है, तो फिर मुझे शोक किसलिए करना चाहिए ? उठ खड़ा हो जा । पुरुषार्थ कर ।' राजा में हिम्मत आ गयी, क्योंकि उसकी दृष्टि बदल गयी ।

बंधुओं ! राजा ने कैसा अर्थ लगाया ? दुःख के समय में छोटा-सा हितोपदेश आश्वासन का कार्य करता है । माता का यह सयानापन था । पहले के लोग ऐसे ख्याल बहुत रखते थे । मानव जीवन की महत्ता संपत्ति और भोगविलासों से नहीं आंकी जाती । राजा के लिए छोटा-सा उपदेश भी सुनहरा बन गया । आपके हिसाब के खाते के किसी कोने में ऐसे वाक्य लिखते रहिए कि 'सत्य, नीति और सदाचार का पालन करने वाला सद्गति प्राप्त करता है, लक्ष्मी पाने के लिए मानव जीवन नहीं है ।' इतना लिख लेंगे तो किसी दिन आत्मा को जागृति प्रदान करेंगे ।

राजा ने चिट को तावीज में रखकर गले में पहन लिया और अपने एक बाल-मित्र राजा के पास गये । दोनों साथ पढ़े थे, पर उसके बाद मुलाकात नहीं हुई थी । वे आज के मित्रों जैसे न थे कि खाने-पीने मिले तबतक दोस्ती और बाद में तू अपने रास्ते, मैं अपने रास्ते । सच्चा मित्र तो वही होता है जो दुःख में साथ देता है । राजा की स्थिति आज कंगाल जैसी है । मित्र ने उनकी स्थिति देख सहानुभूतिपूर्ण तरीके से पास बैठाकर सब पूछा । अपनी सेना सहायता के लिए देकर राजा को अपना राज्य वापस पाने में मदद की और राजा ने अपना राज्य पहले जैसा व्यवस्थित बना लिया ।

एक दिन सिंहासन पर विराजमान राजा अपने प्रधान और मित्र सबके समक्ष कहता है कि "अहो ! मैं कितना पुण्यवान हूँ कि हारा हुआ राज्य वापस प्राप्त कर सका । कहिए प्रधानजी मैंने राज्य किस प्रकार वापस पाया ?" प्रधान ने कहा : "मित्र की सहायता से ।" "लेकिन मुझे मित्र की सहायता कैसे मिली ?" प्रधान बोले : "यह तो मुझे नहीं मालूम आप ही बताइए ।" "प्रधानजी यह तो एक चमत्कारिक घटना बन गई । मैं जंगल में पहुँचा, मेरे दुःख का पार न था । तभी मेरे ताबीज से एक चिट निकल कर गिरा । उस चिट को पढ़कर मुझमें हिम्मत जगी और मित्र राजा की मदद से अपना खोया राज्य फिर से प्राप्त किया । अब इस दुश्मन में साहस नहीं कि हमारी ओर आँखें उठाकर देखे । अब कोई चिंता नहीं । निश्चिंत होकर आनन्द करो, मौज-मजा करो ।" प्रधान ने पूछा : "चिट में क्या लिखा था ?" राजा कहते है : "यह भी रहने वाला (टिकने वाला) नहीं ।' बस इतना ही लिखा था ।" मंत्री ने सोचा, 'कितने सुंदर शब्द हैं, परन्तु राजा ने उसका आधा ही अर्थ ग्रहण किया है । सम्यक्त्वी प्रधान कहते हैं : "महाराज ! आपने इसका क्या अर्थ किया ?" "अरे मंत्रीजी, आप इसका अर्थ नहीं समझे ? इसका अर्थ है, दुःख भले ही आया पर अधिक समय टिकने

वाला नही है ।" जहर उतारने वाला गारुड़ी है तो नाग
में मिथ्यात्व का जहर भरा है और उस जहर को उतारने वा
गया । प्रधानजी बोले : "राजन् ! क्षमा कीजिए । इस
देखिए, आपने दुःख के समय वह वाक्य पढ़ा और अर्थ
नहीं ।' अब आप सुख के सागर में विचर रहे हैं, पर
है । तो इसका यह अर्थ हुआ ना कि सुख भी टिकने वा
राजपाट, वैभव-विलास सब नश्वर है । जैसे दुःख न
रहने वाला नहीं ।"

राजा प्रधान का उत्तर सुनकर स्थिर हो गये । सोचने
सच है । मेरी माता ने चिट तो सुख के समय में लि
दुःख शब्द कहाँ लिखा है ?' राजा के अंतर में मंथन
में राजा जग गये । 'सच ही मैं कितना अज्ञानी हूँ,
दीं, सत्य स्वरूप का बोध करवाया । यह राजवैभव,
ये मुझे छोड़कर जायें, इसके पहले मैं ही इन्हें छोड़ दूँ
हुए राजा समस्त संसार छोड़कर संयमी बन गये । एव
समझते ही त्याग की राह पर चल निकले और वहाँ आ
कर ली । दृष्टि के बदलते ही सम्यक्त्व तो क्या, चा
लगती। मैं तो अपनी बहनों से कहती हूँ कि आप अपने
पहनाएँ तो ऐसा पहनाइए कि जिससे उसे बार-बार जन्म
न पड़े । अवसर मिला है तो चूकना नहीं चाहिए । रा
उतारने जैसी है । अनंतकाल से भटकते भटकते मनुष्
कब सिद्ध होगी ? सम्यक्त्व प्राप्त करेंगे तब । मो
तब । पाने के बाद जीव अधिक से अधिक अर्धपुद्गल
चला जाता है । अर्धपुद्गल परावर्तन काल कोई छोटा
भी अनंत उत्सर्पिणी और अनंत अवसर्पिणी काल व्यत
दृष्टि आत्मा को लगता है अब मेरी भटकन थमेगी । अ
तो डोक्टर जो दवा देगा, वो लेगें या नहीं ? वैसे ही
कि मुझे अपना भव-फेरा रोकना है, गुरु
करेंगे । हम मोक्ष नहीं देते, परन्तु

वाला, चतुर्गति के चक्र बढ़ाने वाला और रोकने वाला भी आत्मा है। मिथ्यादृष्टि समाप्त न होने तक संसार बहुत मीठा लगता है और सम्यक्दृष्टि आने पर संसार कड़वा लगेगा। जब आत्मा को ऐसी लगन लगेगी, तब कितने ही आफत या उपसर्ग आयें, जरा भी व्याकुलता नहीं होगी और कहेगा -

'दुर्गुण ने कोई कही आओ, कही आओ, कोई कही आओ,
संदेशो मारो दई आओ, दई आओ, कोई दई आओ.
तारा ताबे थावुं नथी अने दुर्गतिमां हवे जावुं नथी... दुर्गुणने
क्रोधने कहेजो आवे लई हथियार (२) ढाल क्षमानी राखी में तैयार,
कोई गाल दे, एने प्यार करूँ, शक्ति छतां समता धरूँ,
पण क्रोधी मारे थावुं नथी अने दुर्गतिमां हवे जावु नथी, दुर्गुणने कोई...

अग्नि के समक्ष शीतल बनो। आप सामायिक में रोज बोलते है ना कि '*सिद्धासिद्धिममदिसंतु।*' जिसे सिद्धि पद लेना हो वह क्या करे? क्रोध-मान-माया-लोभ आत्मा का अहित करने वाले हैं। इसलिए क्रोध से कहेंगे, 'तुझे आना हो तो भले ही आओ, परन्तु मैंने क्षमा की ढाल तैयार रखी है। अब मुझे क्रोध नहीं करना है। मान-माया-लोभ नहीं करना है और दुर्गति में नहीं जाना है। कहिए आपको कबूल है? सब्जी में नमक कुछ कम डल गया हो. तो यह ख्याल कीजिएगा कि उपाश्रय जाकर आत्मा के स्वामी बनकर आये हैं, तो फीका-मीठा चला लेंगे, आज क्रोध नहीं करेंगे। दूकान में गुमास्ते से कुछ भूल हो जाये तो शान्ति से कहेंगे, पर उसपर सत्ता नहीं जमायेंगे।' यह भी रहने वाला नहीं शब्द से राजकुमार संसार छोड़कर त्यागी बन गया। जो शूरवीर होते हैं वे सिंह के समान छलांग मारकर निकल पड़ते हैं, भेड़ घूरे में झाँकते रह जाते हैं। मुंबई में सूअर बहुत दिखाई देते हैं। उन्हे अच्छी चीजें मिलें तो भी घूरे को ही टटोलते रहते हैं। इसी तरह नासमझ जीव संसार के घूरे को ही गींजते रहते हैं। अतः आत्मा की ओर मुड़ो।

मंगलमय दिवस आ रहे हैं। स्वर्ण को शुद्ध करने के लिए तेजाब की जरूरत होती है, मशीनरी साफ करने के लिए पेट्रोल की जरूरत होती है। वैसे ही पूर्व कर्मो को जलाने के लिए तप की आवश्यकता है। आते कर्मों को रोकने के लिए चारित्र की जरूरत है, इसलिए चारित्र लेने योग्य है। 'ज्ञाताजी सूत्र' में तीन देवरानी-जेठानी की बात है, वहाँ क्या घटेगा, यह सब वर्णन अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक १०

आषाढ़ कृष्ण १२, सोमवार | दिनांक : १५-७-७४

संसार का सच

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

करुणानिधि, शासन सम्राट, सर्वज्ञ, भगवान, आत्मा के अनंत गुणों को ढंकने वाले अज्ञान-अंधकार को दूर करनेवाले, वीतराग भगवंत के मुखारविन्द से झरी शाश्वत वाणी का नाम है सिद्धान्त । इसका एक शब्द भी आचरण में आ जाये तो भव का नाश संभव हो जाये । वाणी का श्रवण तो बहुत बार किया है, परन्तु सुनकर आचरण में उतारा नहीं । इसमें प्रमुख कारण है श्रद्धा की कमी । सम्यक्त्वी जीव तो जबतक सर्वविरति में नहीं पहुँच जाते, उन्हें अविरति का काल खटकता रहता है, उनकी भावना तो यही होती है कब इससे, अव्रत से मुक्त हो जाऊँ ? देशविरति में आ गया हूँ पर सर्वविरति स्वीकारने का लाभ कब मिलेगा ? सम्यक्दर्शन की प्राप्ति के पश्चात् जब सम्यक्ज्ञान आयेगा तब यह विचार उठेगा कि आत्मा कितने समय से परिभ्रमण करते करते मनुष्य भव में आया है । आप दो-चार सीढ़ियाँ चढ़कर कहने लगते हैं कि थक गया । जबकि यह आत्मा अनंत पुद्‌गल परावर्तन काल से भटकते हुए कितनी सीढ़ियों में चढ़ आया ? कितना लंबा समय उसीमें खोया ? दो-चार सीढ़ी चढ़ने में थक गये पर यह जीव अनंतकाल से पुद्‌गल परावर्तन की सीढ़ियाँ चढ़कर आया है फिर भी थकान नहीं महसूस करता । किसी असाध्य रोग से परेशान मरीज डोक्टर से कहता है कि "मैं अब रोग से बहुत परेशान हो गया हूँ । मुझसे अब यह सहन नहीं होता ।" फिर डोक्टर के कथनानुसार दवा लेगा, परहेज करेगा, यहाँ तक कि अगर डोक्टर कहे कि 'आपको करवट भी नहीं बदलना है' तो वह भी नहीं बदलेगा । परन्तु यहाँ आकर सामायिक करने में थकान लगती है ।

> तन दुर्बल होने के भय से, तूने तप, व्रत किया नहीं :
> सामायिक एकासन करके, शुद्ध भाव रस पिया नहीं ।

सामायिक में एकत्वभाव अपनाकर जो समभाव का आनन्द उत्पन्न होना ाहिए वह अभी तक उभरा नहीं है, उससे एकतार हुए नहीं हैं । आत्म भाव में ब स्थिर हुआ जा सकता है ? देहाध्यास छूटने पर । गजसुकुमार के मस्तक पर गारे रखे गये, खोपड़ी तड़-तड़ करके तड़कने लगी । उस समय उनकी वेदना ार ऐसे ही प्रसंग में हमारी वेदना में कोई अंतर नहीं है । दोनों की वेदना, ड़ा समान है, परन्तु गजसुकुमार का उपयोग वेदना में नहीं था, आत्मा में था । इस देह को पर के कारण तो अनेकों बार जलाया है । देह जलता है, इसमें ा कुछ नहीं जलता । आज बहनों के लिए अधिकांश नायलोन का कपड़ा आ ग है । ऐसे कपड़े पहनकर रसोई करते हुए जो जरा उपयोग चूके, असावधानी जाये तो बिना इच्छा के भी जल जाते हैं । बहुत बार क्रोध के आवेश में न्हें घासलेट छिड़ककर स्वयं जल जाती हैं । देह तो गजसुकुमार की भी जली ार रसोई करने वाली बहन की भी । परन्तु उपसर्गों के समक्ष समता रखी, क्षमा ी तो उनके कर्म खप (क्षय हो) गये । वे आत्मभाव में स्थिर रहे तो आत्मा ो साध सके । परन्तु यह कब संभव हो सकता है ? जब यह अध्यवसाय सीख ाया हो कि देह में रहते हुए भी आत्मा अलग है और देह अलग है, तभी उपसर्ग समय स्थिर रहा जा सकता है ।

एक व्यक्ति को दो-तीन डिग्री बुखार हो, शरीर में पीड़ा भी बहुत हो रही है घर के सब लोग उसकी वेदना कम करने के लिए दबाने लगते हैं । कोई ा आगे-पीछे हुआ तो वह व्यक्ति लाल-पीला हो उठता है । ऐसी स्थिति में क व्यापारी आ गया । (श्रोताओं में से आवाज़ : 'तब झट से उठ पड़ेगा') ापारी से बातें करने में इतना मशगूल हो जाता है कि घर के लोगों को लगे ि क्या इनका बुखार उतर गया ? नहीं, उतरा नहीं है बल्कि उनका ध्यान बातों लग गया है । ध्यान बातों में है इसलिए शरीर का ख्याल भूल गया है । ब वीतराग वाणी और आत्मस्वरूप में मन रमने लगेगा तब संसार के सुख ल जायेंगे । आपका जन्म जिस क्षेत्र में हुआ है, उसकी कितनी महत्ता है ? गलिया के पास सुख, सुख और सुख ही होता है, संपत्ति-वैभव है - इन सब ी बातें नहीं है बल्कि जिस स्थान से मोक्ष में जाने का मार्ग मिलता है अविरति विरति आ सकती है, घाती और अघाती कर्मों का क्षय करके शाश्वत सुख ाप्त कर सकते है - ऐसे स्थान का मूल्य है । आपके उपाश्रय में भले ही कितने हँगे और सुंदर टाईल्स लगे हों, किसान के लिए उनका क्या उपयोग है ? कसान के लिए तो उसी भूमि का मूल्य है जिसमें बीज बोकर फसल उगाई जा

सके । आपकी टाईल्स पर खेती नहीं की जा सकती । इसलिए किसान के लिए उस भूमि की कोई कीमत नहीं । इसी प्रकार कर्मभूमि क्षेत्र की कीमत कब होती है ? जब जीव सम्यक्त्व प्राप्त करे, अविरति से विरति भाव में आये, घाती और अघाती कर्मों को तोड़कर शाश्वत स्थान प्राप्त करे । अतः कर्मभूमि का स्थान महत्त्वपूर्ण है ।

त्रस और स्थावर जीव के दो भेद हैं । त्रस किसे कहते हैं ? जिन जीवों को त्रास (तकलीफ-दुःख) होने पर स्थान से अन्य स्थान पर खिसकते हैं वे त्रस और जो स्थिर रहते हैं उन्हें स्थावर कहा जाता है । त्रस जीव हिलते-डुलते हैं । स्थावर जीवों के कितनी इन्द्रियाँ होती हैं ? (श्रोताओं में से आवाज : 'एक स्पर्शेन्द्रिय') स्थावर में जीव ने कितना समय व्यतीत किया ? संख्याता, असंख्याता, नहीं, अनंतकाल व्यतीत करने के पश्चात् त्रसकाय में आया । त्रसकाय के जीव कहाँ से गिने जाते हैं ? बेइन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रसकाय में स्थान पाते हैं । त्रसकाय में आना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । त्रसकाय में जीव अधिक से अधिक दो हज़ार सागरोपम तक रहते हैं । स्थावर की अपेक्षा से त्रसकाय का काल बहुत अल्प है । गौतमस्वामी ने हमारी वकालत करते हुए भगवान से प्रश्न पूछे हैं । उन्होंने पूछा है इसलिए हमें जानने मिले हैं । उन्होंने प्रश्न किया कि "हे प्रभु ! स्थावर जीवों की अपेक्षा से त्रसकाय का काल कितना है ?" प्रभु न्याय के माध्यम से समझाते है -

"कोई चिड़िया, समुद्र के बीच किसी द्वीप पर बैठी हो, चोंच खोलकर समुद्र से जल ग्रहण करे, तो कितना जल ले सकेगी ? बिंदु जितना । समुद्र के समक्ष बिंदु कितना होगा ? इसी प्रकार स्थावर की अपेक्षा से त्रसकाय का काल भी सिंधु में बिंदु जितना है ।" यदि इतने समय में सावधान न हो जायें तो कहाँ पटक दिये जायेंगे । इस पर जरा विचार कर लीजिए । अतः समझ कर त्याग-मार्ग में आने की आवश्यकता है । कुछ जीवों को लगता होगा कि महासतीजी तो 'संसार छोड़ो और त्याग करो' के सिवाय दूसरा कुछ नहीं कहते, परन्तु भाई यह किसकी पेढ़ी है ? आपकी साड़ियों की दूकान है तो ग्राहकों को भाँति-भाँति की साड़ियाँ ही दिखायेंगे या दूध-दही पेश करेंगे ? (श्रोताओं में से आवाज : 'साड़ियाँ ही दिखायेंगे') आपके पास जो माल होगा वही तो दिखायेंगे । हलवाई की दूकान पर जायेंगे तो मिठाइयाँ बतायेगा । झवेरी की दूकान पर जायेंगे तो जवाहरात दिखायेगा, वैसे ही हमारी दूकान में त्याग का माल है । आप दिन में आइए या

रात्रि में, परन्तु जो संसार हमें कारागार प्रतीत हुआ है, उसे प्रिय कैसे कह देंगे ? यदि संसार प्रिय और मीठा होता तो तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महान पुरुष इसे छोड़कर क्यों निकलते ? जबतक आपके दिल में यह कील न गड़ जाये कि संसार है तो छोड़ने योग्य, छोड़ सकें या नहीं, तबतक हम आपसे रोज यही कहेंगे । मात्र जीभ से नहीं पर जिस दिन अंतरतम से यह कहेंगे तो संसार में रहते हुए भी कर्मबंधन में फर्क आ जायेगा । एक बार जीवन में सम्यक्त्व आ जाये तो बार-बार कहना नहीं पड़ता । यह तो भगवान महावीर की पेढ़ी है, त्रिशलानंदन की दूकान है । इसमें अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूपी पाँच रत्न हैं । आज सरकार के कानून के साथ लूट-मार और खलबली मची हुई है, किसलिए ? ज्ञानी की आज्ञा के विरुद्ध चल रहे हैं इसलिए । यदि ज्ञानी की आज्ञा के अनुरूप परिग्रह की मर्यादा करके जीएँ तो यह खलबली नहीं मचे । भगवान की वाणी सुनकर महापापी आत्माएँ भी पुनीत बन जाती है । भगवान के एक शब्द से चंडकौशिक सुधर गया । प्रतिदिन सात जीवों की घात करनेवाला अर्जुनमाली सुधर गया, तो हम कैसे नहीं सुधर सकते ?

मंगलकारी तप की आराधना के दिन आ रहे हैं । जिसे साधना करनी हो तैयार हो जाइए । दूसरे पर्यूषण की राह मत देखिए । जिसकी भावना जगी हो, आराधना शुरू कर दीजिए । क्योंकि अपने जीवन का कोई भरोसा नहीं है । जीवन क्षणभगुंर है ।

> *कुसग्गे जह ओसबिन्दुए, थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए ।*
> *एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए ।।*
>
> – उत्त. सू. अ-१०, गा-२

जैसे दूब के अग्रभाग पर पड़ा हुआ ओसकण पवन के हल्के झोंके से गिर पड़ता है, इसी प्रकार मनुष्य का जीवन क्षणिक है, अतः क्षण मात्र का भी प्रमाद उचित नहीं ।

चार ज्ञान और चौदह पूर्व के जानकार गौतमस्वामी से भी भगवान कहते हैं कि "हे गौतम ! समय मात्र का प्रमाद न कर ।" गौतमस्वामी को अवधिज्ञान था, यदि उपयोग लगाते तो जान सकते थे, परन्तु विशेष उपयोग नहीं करते थे । गौतमस्वामी के जीवन के दो प्रसंग 'भगवती सूत्र' में वर्णित हैं । स्कंधक सन्यासी से पिंगल नियंठा (निर्ग्रन्थ) ने पाँच प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर उनके पास नहीं था, तो उनके मन में विचार आया कि यह श्रावक इतनी शक्ति रखता है और

में वेदांत का जानकार उसके प्रश्नों का जवाब न दे सका ? श्रावक में इतनी शक्ति आयी कहाँ से ? इसका मूल कहाँ है ? स्कंधक स्वयं जिज्ञासु साधक थे । पता लगा कि पिंगल की यह क्षमता उसके गुरु के कारण है; तो उसके गुरु कौन हैं ? यह सन्यासी वेदांत में पारंगत और अपने धर्म में निपुण था; फिर भी मन में यह भाव था कि जो शक्ति मेरे पास नहीं है उसे पाने कि लिए अन्य के पास जाने में हीनता नहीं है । ज्ञात हुआ कि पिंगल के गुरु तीर्थंकर महावीर हैं। उसने यह विचार नहीं किया कि मैं वहाँ जाऊँगा तो लोग मुझे क्या कहेंगे ? बल्कि यह सोचा कि 'प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए मुझे उनके पास जाना चाहिए । मुझे तो ज्ञान का लाभ लेना है, भले ही कहीं से मिले ।' भगवान् तो केवली थे । उन्होंने जान लिया कि स्कंधक मेरे पास आ रहा है, आने के बाद परिणाम क्या होगा - यह भी जान लिया । भगवान ने गौतमस्वामी से कहा : "हे गौतम ! तुम्हारा गृहस्थी के समय का परम मित्र यहाँ आ रहा है ।" उस समय गौतमस्वामी ने अवधिज्ञान का उपयोग किया होता तो देख सकते थे कि मेरा कौन-सा मित्र आ रहा है । परन्तु शंका का समाधान करने वाले महाज्ञानी, समर्थ गुरु समक्ष है तो फिर उपयोग वहाँ ले जाने की क्या आवश्यकता है ? गौतमस्वामी ने उपयोग किया होता तो उनमें ऐसी विनम्रता नहीं आती । जबतक अहंकार नहीं गया तबतक सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती ।

भगवान के शासन की ओर दृष्टि कीजिए । चार ज्ञान और चौदह पूर्व के धारी होने पर भी कितना विनय ! कितनी नम्रता ! भगवान से पूछते हैं : "प्रभु ! वह साधू बनेगा या नहीं ?" हमें क्या प्रिय होता है ? (श्रोताओं में से आवाज़ : 'संयम') आपको भी संयम प्रिय होना चाहिए । आपके हृदय में कील पहुँचे या न पहुँचे, हथौड़ा तो मारते ही रहेंगे । आपके दिल में यह बात जमा देनी है कि सर्वथा आश्रव को रोके बिना, तीनों काल में, सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती । गौतमस्वामी ने पूछा : "प्रभु ! स्कंधक प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे ?" "हाँ गौतम" यह सब गौतमस्वामी अपने ज्ञान में देख-जान सकते थे, परन्तु स्वयं जान लेते तो विनय, विवेक और नम्रता का प्रसंग कहाँ से आता ? विनय सहित, समझपूर्वक, गुरु से प्राप्त किया हुआ ज्ञान दूसरे भव में भी साथ आयेगा । अतः वहाँ संयोग मिलते ही ज्ञान प्रकट हो जायेगा, परन्तु पैसा [illegible] नहीं होगा । मान लीजिए [illegible] आपको जातिस्मरण ज्ञान हुआ और [illegible] पिछले जन्म में मैंने इस [illegible] था । अब वहाँ धन लेने [illegible] का [illegible] आपको [illegible] धक्का मारकर [illegible] ? ([illegible] आवाज [illegible] धक्का

मारकर भगा देगा, खड़ा भी न रहने देगा ।') प्रमाण दिखाने पर भी वह नहीं मानेगा । जिसके घर में विनय-विवेक है वह घर स्वर्ग जैसा आदर्श है । आदर्श घर में जन्मी संतान भी आदर्श होती है ।

'ज्ञाताजी सूत्र' में तीनों जेठानी-देवरानी में भी विनय, विवेक और नम्रता थी । गौतम- स्वामी स्कंधक के सम्मुख गये । विरति अविरति के सम्मुख नहीं जाती पर गौमतस्वामी गये । जाकर कहते है : "हे स्कंधक ! मैं तुम्हारा स्वागत नहीं कर रहा, बल्कि तुम भविष्य में दीक्षित होने वाले हो, उस आत्मा का स्वागत करता हूँ ।" संत-सती को देखकर आपके मन में कभी ऐसा उल्लास प्रकट होता है कि 'अहो ! मैं कब इस बँधन को छोड़कर साधू बनूँगा ? आश्रव का द्वार छोड़कर संयम की साधना कब करूँगा ? जीवन में तत्परता से बढ़ने की जरूरत है । त्रसकाय की अपेक्षा से जीव ने स्थावर में अनंतकाल बिताया । जीव त्रसकाय में अधिक से अधिक दो हजार सागरोपम काल तक रहता है । इसलिए तबतक में प्रमाद छोड़कर जल्दी से जल्दी साधना कर लीजिए । काल (मृत्यु) की किसे खबर है । 'कल करेंगे' कहने वाले बहुतों को कल के बदले काल आ गया । आज एक व्यक्ति को आप बाजार में मिलते है कल उसीकी मृत्यु का समाचार सुनाई पड़ जाता है या नहीं ? आयुष्य टूट जाने पर पल भर भी कोई नहीं रुक सकता । फिर भी शरीर के लिए कितना करते है ? डोक्टर यदि दूकान जाने की मनाही कर दे तो दूकान का मोह भी छोड़ देते है । शरीर के लिए डॉक्टर जो कहे वही करते हैं । परन्तु चातुर्मास में संत आपको ललकारते हुए कहते हैं कि 'देवानुप्रियो ! चातुर्मास के १२० दिने हैं, इन दिनों को साधना द्वारा सार्थक बना लीजिए ।' दो हज़ार सागरोपम का समय तो देखते-देखते बीत जायेगा । अनंतकाल की अपेक्षा से दो हजार सागरोपम का समय बहुत कम है, अतः समय को पहचानिए ।

बहु पुण्य केरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मल्यो,
तोये अरे भवचक्रनो आंटो नहि एके टल्यो ।

यह पद सिर्फ जीभ से नहीं अंतर से बोलिए । पुण्य की कितनी थैलियाँ अर्पण की होंगी तब अकाम निर्जरा करते हुए निगोद से निकला जीव यहाँ तक पहुँचा है । आप जब कोई मूल्यवान वस्तु लाते हैं तो पुत्र से कहते हैं ना कि 'इतने पैसे दिये तब यह वस्तु मिली है, इसलिए इसे यों ही बर्बाद मत करना ।' बिल्कुल वैसे ही बहुत साधना के बाद मानव जन्म मिला है ।

आ भूमि आ शरीर, आ धरम, आ प्रभु,
खून महेनत कर्यायी मल्युं छे नधुं,
कै युगोथी करेली फली साधना, हाथमांथी तुं जोजे सरी जाय ना,
जे मोको छे अहीं, अरे मानवी ! आवो मोको तुजने क्यांय पण नहि मळे।

असीम पुण्योदय से आर्यभूमि, मानव भव, वीतराग का धर्म प्राप्त हुआ है। ऐसा अवसर फिर से मिलना दुर्लभ है । महान पुण्य रूपी धन देकर यह काया रूपी नौका खरीदी है । भगवान ने 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २३वें अध्ययन में फरमाया है -

"सरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरन्ति महेसिणो ।।"

- उत्त. सू. अ-२३, गा-१३

इस संसार रूपी समुद्र में जीव नाविक है और शरीर नौका । जो महर्षि हैं वे संसारसागर को पार कर जाते हैं । यदि नौका में छिद्र होगा तो आश्रव का पानी भर जायेगा तथा नाव डूब जायेगी । अतः छिद्र को बंद रखने के लिए व्रत-प्रत्याखान का ताला लगा लीजिए ।

प्रभु ने गौतमस्वामी से कहा कि "स्कंधक, प्रव्रज्या ग्रहण करेगा । मोक्ष जाने का प्रमाण प्राप्त करेगा ।" यह जानकर गौतमस्वामी बहुत आनन्दित हुए । आपके घर में धर्मिष्ठ या ज्ञानगोष्ठी करनेवाला मित्र आये तो आनन्दित होते हैं या नकद देने वाला आये तो ? नकद देने वाला आये तो आप अधिक आनन्द महसूस करते है ।

'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन में तीनों जेठानी-देवरानी में विनय है, एकता है । एक दूसरे का ख्याल है । जिस घर में विनय नहीं है उस घर में भले ही लाखों रुपये हों पर एक थाली में भोजन नहीं कर सकते । बिना विनय के घर क्लेश का घर है ।

सेठ-सेठाणी का प्रसंग : एक सेठ ने आधुनिक ढंग का सोलह कमरों का बँगला बनाया । सेठ-सेठानी नौकर-चाकर सबके लिए अलग-अलग कमरा । पैसा है पर विनय नहीं । विनय रहित कुटुंब के सदस्य एक दूसरे से प्रेम से बोलते नहीं । उल्टे सम्मुख पड़ जायें तो एक-दूसरे की आँख से जहर बरसे । संपत्ति है, परन्तु एकता नहीं है । पूर्व के पुण्योदय से लक्ष्मी [illegible] हुई है, पर घर के लोग ऐसे मिले हैं कि स्वयं तो सुख [illegible] ते, दू[illegible] नहीं भोगने [illegible]ते । सेठानी का रोब तो इतना ज्यादा [illegible] था [illegible] । कहावत

है ना कि 'जिसकी स्त्री बिगड़ी उसकी जिन्दगी बिगड़ी ।' दुनिया की दृष्टि में सेठ सुखी-संपन्न व्यक्ति हैं, परन्तु उसका मन अशांत है । क्योंकि जीव की अज्ञान दशा है । यदि जीव में अज्ञान दशा न होती तो वह विचार करता कि कौन किसका है ? सेठ सेठानी से कुछ भी पूछने की कोशिश करे तो सेठानी का मुँह पहले ही बिगड़ जाये । सेठ-सेठानी का मेल ३६ के अंक जैसा है । यदि विनय होता तो यह अंक ३६ न होकर ६३ होता ।

सेठ विचार करते हैं कि 'किसी भी उपाय से सेठानी को सुधारना तो पड़ेगा ।' पति-पत्नी परस्पर अनुकूल न हो तो घर दावानल के समान होता है । सेठ सेठानी से धर्म करने कहते तो सेठानी का उत्तर होता : "आप खाली बैठे हैं, कीजिए धर्म । इतना ही काफी है, मुझे कुछ नहीं करना है ।" सेठ ने फिर हँसते हुए कहा : "तू एक काम कर । अपने बँगले के सामने झोपड़ी में एक लकड़हारे का परिवार रहता है । तू तीन दिन तक रोजएर-एक घँटा वहाँ बैठने जाना, तुझे बहुत शान्ति मिलेगी ।" सेठानी बोली : "क्या मैं उन भिखारियों के यहाँ बैठने जाऊँ ?" सेठ के बहुत आग्रह करने पर दूसरे दिन सेठानी लकड़हारे की झोपड़ी के पास पहुँची । दरवाज़ा अंदर से बंद था । सेठानी ने दरवाजा खटखटाया तो अंदर से स्त्री ने पूछा : "कौन हैं ?" सेठानी ने परिचय देते हुए दरवाजा खोलने कहा । लकड़हारे की पत्नी बोली : "थोडी देर ठहरिए, अभी मेरे पति भोजन कर रहे हैं । लगभग आधा घँटा लगेगा ।" सेठानी ने सोचा, 'मैं क्या खाली बैठी हूँ जो इन्तजार करूँ !' और घर रवाना हो गई । लकड़हारे के घर में पति-पत्नी और दो बच्चे थे । मजदूरी करके उदर निर्वाह करते थे । पत्नी सुशील और आज्ञाकारी थी, इसलिए परिवार में शान्ति थी ।

सेठानी ने घर आकर सेठ से कहा कि "मैं उस झोपड़ी में गई थी, उसने तो दरवाजा तक न खोला, अब फिर से मुझे वहाँ जाने मत कहिए ।" सेठ ने सोचा, 'सेठानी को सुधारना कठिन हैं ।' फिर से सेठ आग्रह करने लगे कि "तू एक बार तो वहाँ जा । लाखों रुपये खर्च करके भी जो नहीं मिलता वह तुझे वहाँ मिलेगा ।" सेठ की बात मानकर सेठानी दूसरे दिन भी वहाँ पहूँची और द्वार खटखटाया । लकड़हारे की पत्नी ने कहा : "सेठानी आप पधारी, स्वागत है । परन्तु आज मेरे स्वामी की आज्ञा नहीं हैस, आप कल आइयेगा, मैं स्वामी से आज्ञा लेकर रखूँगी ।" घर आकर सेठ से कहने लगी कि "लकड़हारे की पत्नी स्वामी-स्वामी कहती थी, स्वामी नाम का कोई प्राणी है क्या ?" (हँसी) स्वामी

प्रभु को भी कहते हैं और पति को भी। अन्य किसीको स्वामी नहीं कहते। महासती को महासती कहते हैं, स्वामी नहीं। सेठ ने खुलासा किया कि 'स्वामी अर्थात् जिसे अपना सर्वस्व अर्पण किया हो ऐसा पति अथवा भगवान।' सेठ को इसीमें बहुत संतोष हुआ कि सेठानी के मुँह से स्वामी शब्द सुनने मिला। कैसी राग दशा है!

तीसरे दिन सेठानी लकड़हारे के घर पहुँची। स्वागत करते हुए उसे बैठाया। आने का कारण पूछा। घर मिट्टी का था पर साफ-सुथरा। सेठानी ने कहा: "मैं यहाँ घँटा भर बैठने के लिए आयी हूँ।" लकड़हारिन ने कहा: "आपके आने से मेरी झोंपड़ी पावन हो गयी।" सामने पड़ी एक लकड़ी देखकर सेठानी ने जिज्ञासा रखी कि यह किसलिए? उत्तर मिला: "मेरी सेवा में यदि कोई कमी रह जाये तो पति इस लकड़ी से मुझे मारे। यद्यपि अभी तक ऐसा अवसर नहीं आया है। परन्तु मुझसे कोई भूल न हो जाये इसकी सावधानी रखती हूँ और लकड़ी सामने रहने से सदा सजग रहती हूँ।" एक गरीब कुटुंब की स्त्री से आज सेठानी को बोधपाठ मिल गया। इतने में लकड़हारा घर लौटा। पत्नी ने स्नान के लिए गर्म पानी करके दिया। सबने मिलकर प्रार्थना की और फिर बड़े प्रेम से सबको भोजन कराया। यह सब देखकर सेठानी को लगा कि 'कहाँ मैं बंगले में रहने वाली और कहाँ यह झोंपड़ी में रहने वाली!' घर पहुँचकर सेठानी ने रसोई तैयार किया और पति की प्रतीक्षा में दरवाजे पर खड़ी हो गयी। सेठ के आते ही कहने लगी: "पधारो, स्वामीनाथ।" सेठ-सेठानी का संसार फिर तो स्वर्ग के समान बन गया।

यहाँ हमें तो यही समझना है कि समझदार और संस्कारी आत्मा के परिचय से जीवन में परिवर्तन आता ही है। इसलिए सदा सज्जन का संग करना चाहिए, दुर्जन का नहीं। जीवन में प्रेम और एकता से रहना सीखिए। मृत्यु तो पाँच-पचास वर्ष में आयेगी, परन्तु कषाय के परिणाम से जुड़ने पर आत्मा प्रति क्षण भाव-मरण में मरता रहता है। हर क्षण आत्मा सात या आठ कर्म बाँधता है और कुछ की निर्जरा करता है। सेठानी के व्यवहार से पुत्र-वहू को भी समझ आ गई और दावानल जैसा संसार स्वर्ग जैसा बन गया। जिसमें सद्गुणों और सुसंस्कारों की क्यारियाँ खिल उठीं।

तीनों ब्राह्मण की पत्नियाँ हिलमिल कर रहती हैं। अब वहाँ क्या होगा - आगे भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ११

अषाढ़ कृष्णा १३, मंगलवार | दिनाक : १६-७-७४

मानव देह की सार्थकता

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शासन सम्राट, त्रिलोकीनाथ के पावन मुखमंडल से झरती शाश्वत वाणी का नाम है सिद्धान्त । वीर प्रभु की वाणी में अद्भुत ताकत है, जिन आपत्तियों को दूर करने के लिए उग्र पुरुषार्थ करके भी आप सफल नहीं होते, वह वीर वाणी कर सकती है । यह वाणी संपत्ति-प्रदाता, विपत्ति का भेदन करनेवाली तथा त्रिविध ताप मिटाने वाली है । ऐसी वीर वाणी के प्रति जबतक जीव में अटल श्रद्धा नहीं जगी है तबतक वह इस अमृत के घूँट को पी नहीं सकता । आगम के ये शब्द यदि हमारी आत्मा में उतर जायें तो इस भव के साथ अगले भवों में भी सुख मिलता है । संसार का प्रत्येक प्राणी सुख की इच्छा करता है और सुख प्राप्ति के लिए दौड़-धूप करता है । ज्ञानी कहते है कि 'आपको कौन-सा सुख चाहिए ? उभय भव में प्राप्त हो ऐसा सुख या वर्तमान संसार के क्षणिक सुख की प्राप्ति के पीछे अनंत दुःख आयें वह सुख चाहिए ?' अबोध बालक जैसे किसी शब्द को पकड़कर छोड़ता नहीं, उसी प्रकार अज्ञानी जीवों को पता नहीं है कि सच्चा सुख कहाँ हैं और उसे पाने की भाग-दौड़ करते है । जब भगवान के वचनामृत पर विश्वास दृढ होगा तब समझ में आयेगा कि किसी जड़ी-बूटी में भी वैसी शक्ति नहीं है जितनी अनंत शक्ति भगवान के वचनों में है । भगवान ने केवल ज्ञान यूँ ही आसानी से नहीं पा लिया । साढ़े बारह वर्ष और पंद्रह दिन तक प्रभु ने न आहार किया न निद्रा के लिए सोये । कितने ही भयंकर उपसर्गो का सामना किया ! सारे परिणामों के बीच अगर निद्रा आ भी गई हो तो मात्र दो घड़ी के लिए ।

भगवान ऋषभदेव का जीवन देखें । उन सब ने तो कमाल किया है । आपको तो आराम से रहना है । दरवाजे को जुड़ने के लिए कील का प्रवेश सहना पड़ता है । आपको दुःख का एक भी कील नहीं सहना है और मन में मुक्ति की कामना करते हैं तो यह भला कैसे संभव है ? भगवान ऋषभदेव ने एक हजार वर्ष तक

ऐसी अघोर साधना की कि हमें सुनते-पढ़ते हुए ही रोमांच हो जाता है । प्रभु ! कहाँ आपकी अघोर उग्र तपस्या और कहाँ यह पापी जीवड़ा ! हजार वर्ष की साधना में उन्हें निद्रा कितनी आयी ? मात्र एक अहोरात्रि । एक वर्ष में कितनी ? सिर्फ डेढ़ मिनट । आज आदमी को रात में नींद लाने के लिए गोली लेनी पड़ती है । खाया हुआ पचाने के लिए भी गोली । इस प्रकार जीवन दवा के आधार पर चलता है । परन्तु क्या यह विचार आता है कि आज मेरी नींद उड़ गई है तो आत्मसाधना कर लें ?

जिसे मोक्ष तत्त्व की ओर रुचि हुई है, यथार्थ श्रद्धा जगी है वह देह का दुश्मन बनता है और आत्मा का पुजारी । जिसे मोक्ष चाहिए उसे देह का दुश्मन बनना पड़ेगा । आप मेरी हाँ में हाँ मत मिलाइए । समझ में आये तभी हाँ कहिए । यह भी मत मानिए कि आपको समझ में नहीं आया तो वह गलत है । देह के दुश्मन किसलिए ? आप प्रतिक्रमण में बोलते हैं, यह शरीर रत्न के करंडक के समान है । समझ में आये तो स्वीकार कीजिए । देह के दुश्मन किसलिए ? सुनिए । देह के राग के वश होकर उसके पालन-पोषण के लिए माया, कपट, अन्याय, अनीति आदि पाप करते हैं । मेरा शरीर कैसे स्वस्थ रहे ? देह को गर्मी न लगे इसलिए पंखा और एअरकंडिशन लगवाते हैं । देह के रागी तो यहाँ तक कामना करते हैं कि धर्मस्थानक में भी पंखा रहे तो अच्छा । कितना अधिक है देह का ममत्व ? धर्मस्थानक में भी ऐश-आराम ढूँढते है । उष्णकाल की भयंकर गर्मी में एक ओफिस से दूसरी ओफिस में जाना होता है तब गर्मी नहीं लगती । संसारी जीवों का वर्तन देखकर लगता है कि ये जीव माता के गर्भ में नौ महीने कैसे रहे होंगे ? (श्रोताओं में से आवाज : 'उल्टा सिर करके, क्योंकि वहाँ और कोई उपाय नहीं था !') अब सीधे माथे वाले हो गये हैं तो जैसा देह चाहे वैसा करने लगे हैं । सीधे माथे से उल्टे मार्ग पर चलेंगे तो और अधिक बार उल्टे सिर लटकना पड़ेगा । मोक्ष की साधना के लिए देह की रक्षा करनी है तो ठीक, परन्तु पाप करके देह को बचाना चाहें तो मोक्ष की श्रद्धा झूठी कही जायेगी ।

आत्मा का पुजारी बनना हो तो देह का दुश्मन बनना पड़ेगा । देह को यदि दुश्मन के रूप में देखेंगे, तो देह की संभाल ऐसी नहीं करेंगे कि वह हमारी आत्मा का अहित करनेवाली बन जाये । देह के सुख के [illegible] ...या करते हैं [illegible] प्रपंच, झूठ, विश्वासघात आदि जालिम पाप हो रहे [illegible] चुनावों [illegible] लिए कितने छल-कपट और कितना पाखंड होता है [illegible] अनीति, अन्याय, विश्वासघात हो रहे हैं । यह [illegible]

देह का पुजारी आत्मा का दुश्मन है। जैसे सौतेली माँ अपने बच्चे को प्रेम से रखती है, परन्तु सौत का बच्चा उसे दुश्मन प्रतीत होता है। सुबह उठकर जो नाश्ता माँगे तो भभक उठेगी कि 'जगने के साथ ही इसकी कड़कड़ाहट शुरू हो गई, मानो दूकान से काम करके लौटा हो, ऐसे खाऊँ-खाऊँ करता रहता है।' वहीं अपने बेटे के लिए उसके जगने से पहले ही नाश्ता तैयार करके रखेगी और जागने पर बड़े प्रेम से खिलायेगी। ऐसा ही देह का प्रेमी आत्मा का दुश्मन बनता है। सुबह उठकर सामायिक, प्रतिक्रमण या प्रार्थना करने कहो तो देह के प्रेमी को कड़वा लगता है। कदाचित रोज करने को विवश किया जाये तो कहेंगे 'सुबह हुई कि इनकी बड़बड़ शुरू हो गई।' वहीं सुबह होने पर भी यदि घरवाले कहें कि 'अभी सोये रहो।' उठते ही अखबार मिले, नाश्ता मिले, तो बहुत अच्छा लगता है। जैसे सौतेली माता अपने बालक के लिए तैयार है, परन्तु सौत के बेटे के लिए नहीं, वैसा ही देह के लिए है। धर्म को मानने वाला आत्मा देह का पुजारी होगा या आत्मा का पुजारी ! हमें दूसरों को देखने की जरूरत नहीं है, अपने आप अपनी जाँच करनी है। आत्मा के सुख का प्रेमी बनना हो तो आत्मा के लाभ की वस्तुओं- न्याय, नीति, सरलता, दान, शियल, तप, भाव, संयम, क्षमा आदि का (होश) ख्याल रखना पड़ेगा और देह के लाभ की वस्तुओं, यथा - भोग-विषय, असंयम, सत्ता, मान आदि में ठगे जायेंगे, समझकर सजग रहने की आवश्यकता है। अतः देह के दुश्मन और आत्मा के पुजारी बनने की जरूरत है।

मोक्ष तत्त्व की रुचि किसे होती है ? मोक्ष में जाने योग्य जीव कौन हैं ? मोक्ष प्राप्ति के लिए कितनी योग्यताएँ आवश्यक हैं ? जो देह के दुश्मन बनते है, आत्म-सुख के इच्छुक बनते हैं, उन्हे संसार के प्रति निर्वेद भाव आता है। जहाँ वेद है वहाँ विकार है। केवली बनने के लिए अवेदी अवस्था जरूरी है। स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद से निकला हुआ जीव सिद्ध होता है, परन्तु जबतक वेद है तब तक सिद्ध नहीं बनता। वेद को प्रधान नहीं कहा गया है। संसार की जड़ को मजबूत बनाने वाला है वेद। आप गृहस्थ जीवन में हैं, पर संसारी पदार्थों में ओत-प्रोत न होकर विकारी भाव को नष्ट करने की कोशिश कीजिए। आत्मा को मोक्ष चाहिए तो देह के प्रति राग घटाना होगा। मोक्ष जाने के लिए देह साधन रूप है, परन्तु उसीमें फँसकर पाप करते रहना गलत है, पाप है।

'उत्तराध्ययन सूत्र' के २८वें अध्ययन में सम्यक्त्व के ७३ बोल की बातें हैं। उसमें दूसरा बोल यह है कि- हे प्रभु !

"निव्वेदेणं भन्ते जीवे किं जाणयइ ? निव्वेदेणं दिव्वमाणुस्स तिरिच्छएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ। सव्व विसएसु

विरज्जइ । सव्व विसएसु विरज्जमाणे आरंभ परिग्गह परिच्चा करेइ । आरंभ परिग्गह परिच्चाय करेमाणे संसार मग्गं वोच्छिन्दइ सिद्धिमग्गं पडिवण्णे य हवइ।"

- उत्त. सू. अ.-२९

वंधुओं ! चिंतन कीजिए, मनन कीजिए । क्या मैंने सम्यक्त्व प्राप्त किया है ? सम्यक्त्व के लक्षण मुझमें है ? मोक्ष तत्त्व के प्रति मेरी रुचि जगी है ? सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् आत्मा शाहंशाहों का भी शाहंशाह होता है । उसे मोक्ष में जाने की निश्चिंति मिल गई है । यदि सम्यक्त्व का वमन न कर दे तो तीसरे, सातवें और अधिक से अधिक पंद्रहवें भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है । यदि नरक, तिर्यच गति का वंध न किया हो तो नरक, तिर्यच में भी नहीं जाता । देवगति में जाता है । देवगति में भी भवनपति, वाणव्यंतर या ज्योतिषी में नहीं जाता, वैमानिक देवगति में जाता है । जीव के ५६३ भेद में १४ भेद नारकी के, ४८ भेद तिर्यंच के, ३०३ भेद मनुष्य के, १०१ सम्मूर्छिम मनुष्य का अपर्याप्ता, १०१ गर्भज मनुष्य का अपर्याप्ता और पर्याप्ता - कुल ३०३ भेद और ९९ जाति के देवों का अपर्याप्ता तथा पर्याप्ता कुल १९८ भेद देव के । देव के चार भेद भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक । १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ९ लोकांतिक और ५ अनुत्तर विमान, वैमानिक देव माने जाते हैं । ज्ञानी कहते हैं कि 'जैसे नस-(२) में रक्त प्रवाहमान है उसी प्रकार हर नस में, रोम-(२) में, श्वास-उच्छ्वास में अपने शरीर से लेकर अन्य सभी पर निर्वेद भाव आना चाहिए । निर्वेद भाव कहाँ तक ले जाता है ? मोक्ष तक पहुँचाता है । निर्वेद से क्या लाभ होता है ? निर्वेद से देव-मनुष्य और तिर्यच संबंधी कामभोग से जल्दी विरक्ति होती है । ओफिस जाने या धन कमाने में जल्दी शब्द का उपयोग नहीं किया है । ओफिस का समय हो गया हो तो गाड़ी का वेग बढ़ा देते हैं, परन्तु इसमें जितनी तीव्रता है उतना ही पाप भरा है । आत्म साधना में जितनी तीव्रता होगी कर्मबँधन में उतनी मंदता रहेगी और जितनी कर्मबँधन में तीव्रता रहेगी उतनी आत्मसाधना में मंदता रहेगी । निर्वेद से जीव देव-मनुष्य और तिर्यंच संबंधी कामभोगों से विरक्त होता है । क्योंकि देव, तिर्यंच और मनुष्य तीनों में कामभोग है । नरक में वासना है, परन्तु मूर्छा नहीं है ।

भगवान ने सर्वप्रथम कामभोग छोड़ने के लिए कहा है । याद रखिए, मकान कितना ही वड़ा और ऊँचा वनाया हो पर उस पर छत्त न हो तो उसकी शोभा नहीं होती । इसी तरह आप अनेक प्रकार की क्रियाएँ करते हों, परन्तु कामभोग के विषय यदि विष जैसे नहीं लगते हैं तो यह सव क्रियाएँ विना छत्त के मकान जैसी लगेंगी । लहू से भरा कपड़ा लहू से धोने पर साफ नहीं होता । कीचड़ का डव्वा उलटने से कीचड़

ही मिलेगा। संसार के कामभोग में रचा-वसा रहेगा तो कर्मबँधन घटेगा नहीं बल्कि बढ़ेगा। इसलिए कामभोग से विरक्त बनिए। जिसका सेनापति पकड़ में आ गया फिर उसकी सेना की क्या औकात है? काम भोग सिंह के समान है और बाकी सब हाथियों का झुंड। पाँच इन्द्रियों के विषयों से रात-दिन आश्रव का सेवन होता है। शराबी अपना पैसा खर्च के दारु पीता है, नशे में बेसुध होता है और ऐल-फैल बोलता है, अंत में कचरापेटी में जाकर गिर पड़ता है - ऐसे व्यक्ति को आप क्या कहेंगे? (श्रोताओं में से आवाज : 'मूर्ख') अपने पैसे खर्च करके पागलोंर-सा भटकता फिरता है! ज्ञानी कहते हैं कि 'तू दूसरों को उपदेश देता है, तेरी अपनी क्या स्थिति है?' यह तो द्रव्यदारु है, परन्तु मोहनीय कर्म भाव-दारु है। जीव तीस प्रकार से महामोहनीय कर्म बाँधता है। ये तीसों ऐसे हैं कि जरा भी चूके या उपयोग हटा तो भव-वन में ऐसा भटकाते हैं कि हड्डी तक टूट जाये। मम्मण सेठ के पास करोड़ों की संपत्ति थी, पर नरक में जाना पड़ा, क्योंकि मोह में बुरी तरह उलझ गये थे। मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियाँ हैं। उनमें से १६ कषाय की है। मुख्य कषाय चार हैं - क्रोध - मान - माया - लोभ। जिससे संसार का लाभ होता है उसे कषाय कहते हैं। जिसे मोक्ष तत्त्व के प्रति रुचि जगी है, श्रद्धा जगी है। वह निर्वेद भाव में आ जाता है। सम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्था - ये पाँच सम्यक्त्व के लक्षण हैं। सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् कदाचित संसार में रहना पड़े तो रहता है, परन्तु उसका पुरुषार्थ मोक्ष की ओर ही होता है। जैसे दवा पीनी पड़ती है तो पीते हैं, उसी तरह सम्यक्त्वी को लगता है कि संसार रहने योग्य नहीं है। इसे छोड़ने का पुरुषार्थ करता है।

मनुष्य भव पा लेने से मंजिल नहीं मिल गई है। यहाँ आने के बाद सम्यक् पुरुषार्थ नहीं किया तो न जाने किस गड्ढे में गिर पड़ेंगे। निर्वेद भाव आने पर सर्व विषयों से विरक्त बनेंगे। कान से सुनना नहीं, आँख से देखना नहीं यह बात नहीं बल्कि विकारी दृष्टि को बंद करना है। निर्वेद आने पर संसार हेय लगेगा और मोक्ष उपादेय लगेगा। देह के लिए पाप करने वाला आत्मा दुर्गति में जाता है, इसलिए देह को दुश्मन कहा गया है। दुश्मन है, यह भाव आये तो समझ लीजिए कि निर्वेद आ गया। निर्वेदी भोग से विरक्त होता है और विरक्त होकर आरंभ-परिग्रह का त्याग करता है। आरंभ-परिग्रह के त्याग करने वाले को क्या लाभ होता है? संसार-मार्ग का उच्छेद करके मोक्ष-मार्ग ग्रहण करता है।

अनादिकाल से वासना की ऐसी दुर्गंध भरी है जो सद्गुणों को आने नहीं देती। एक भाई को पाँचों विगय का त्याग था - जबतक वह दीक्षा न ले ले। उससे

पूछा गया, "भाई ! तुम्हारा त्याग इतना अधिक है, उच्चकोटि का वैराग्य है तो किस कारण से आप संसार में अटके हुए हैं ? आपकी पत्नी आज्ञा नहीं देती ? पुत्र के लालन-पालन की चिंता है ?" तो कहता है : "मुझे सबकी आज्ञा मिल गई है, शरीर भी नीरोगी है ।" "तो क्या अब तक आपको गुरु नहीं मिले ?" तो कहता है, "गुरु भी मिल गये हैं ।" "फिर आप संयम से क्यों नहीं जुड़े ? क्या संयम पालने में कायरता है ?" उत्तर देता है, "नहीं, संयम पालने की शूरवीरता मेरे पास है, परन्तु थोड़ी उगाही बाकी है । ग्राहक पुत्रों की मानने वाले नहीं हैं, अतः इतनी उगाही वसूल करने के बाद दीक्षा लूँगा । भाई !" तगादा करने में रुके हुए, तुम्हारा तगादा करता हुआ काल न आ जाये इसका ध्यान रखना । कल (२) करते हुए अनेकों का काल आ गया ।

'जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अन्त काले ।
न तस्स माया व पिया व माया, कालम्मि तम्मं सहरा भवन्ति ॥

- उत्त. सू. अ-१३, गा-२२

जैसे सिंह मृग को पकड़कर ले जाता है, वैसे सिंह रूपी काल मृग रूपी मनुष्य को झड़प लेता है । तब माता-पिता, भाई-बहन कोई उसे बचा नहीं सकता । तगादा - उगाही या पुत्र कोई आपके साथ नहीं आयेगा । इतना उच्चकोटि का वैराग्य है तो शीघ्रता से साधना कर लीजिए । संयम पर इतना बल दिया है प्रभु ने उसी प्रकार श्रावक के लिए श्रावकत्व पर भी उतना ही बल दिया है । यदि संयम न ले सकें तो श्रावकत्व में रहकर भी दान-शील-तप और भावना, इन चार बोलों की आराधना कीजिए । शुद्ध भाव से भावना करते हुए भव-चक्र चूर हो जाता है । दूकान खोलते हैं पर दूकान में कोई माल न हो तो वह दूकान नहीं पर वखार कही जायेगी, जैसे आपको कोई रजिस्ट्री करवा कर माल पैक करके भेजे, डिब्बे खोलने पर पायें कि वहाँ माल नहीं है तो खाली डिब्बे की भला क्या कीमत ? आपकी भावना में भाव का माल है या नहीं ? जबतक आंतरिक श्रद्धा न हो कि मुझे यह करना चाहिए तबतक क्रियाएँ व्यर्थ है ।

ठगवा विभु आ विश्वने वैराग्यना रंगो धर्या,
ने धर्मनो उपदेश लोकने रंजन करवा में कर्या ।

इस जीव ने साधू बनकर, श्रावक बनकर कितने नाटक किये हैं ! यहाँ आकर संतों को चकमा देने का काम किया है और संत बनकर परमात्मा को ठगने का काम किया है । जगत को ठगते हुए आत्मा स्वयं को ठग रहा है । वे भाई तगादे से उगाही का कारण बताकर दीक्षा टाल रहे थे । जब वर्ष-भर बाद उस गाँव से

गुजरे तो पूछा कि "उन भाई ने दीक्षा ले ली ?" तो जवाब मिला, "नहीं उनकी तो मृत्यु हो गयी ।" उगाही करने में कालराजा ने उनकी उगाही कर ली । सम्यक्त्व के लक्षण वाला जीव श्रद्धा का स्पर्श कर चुका है । उसे तो निश्चय है कि सम्यक्त्व के बीज के बिना मोक्ष संभव नहीं, इसलिए संसार से छूटने का प्रयत्न करता है । धन प्राप्त न होने का उसे आघात नहीं लगता बल्कि धर्म न होने का आघात लगता है । परन्तु संत की अपेक्षा संतान, धर्म की अपेक्षा धन और परमेश्वर की अपेक्षा पैसा प्रिय लगता है । आप सोचते हैं कि 'उपाश्रय में जाकर, व्याख्यान श्रवण करने और पाँच माला फेर लेने से मोक्ष मिल जायेगा ।' यदि तत्त्व समझने की जिज्ञासा से यहाँ सुनने आते हैं तो वीतराग वाणी सुनने पर हृदय में उथल-पुथल होने लगेगी । फिर संसार की माया फीकी, भार रूप, बँधनरूप और भयंकर दुःखद लगेगी । तत्त्वज्ञान सुनने की इच्छा को व्यर्थ न समझिए, यह सम्यक्दर्शन का चिह्न है ।

महापुरुष कहते हैं, 'अपने हृदय को सम्यक्त्व के रंग में रंग लो ।' यह रंग कैसा होता है ? कोई युवा पुरुष, जिसे मनपसंद कन्या मिल गई हो, धन-वैभव अपार हो, संतान भी संस्कारी, लाड़ी-वाडी-गाड़ी सब कुछ उपस्थित हो । इन सब में उस युवा को जो सुख और आनन्द मिलता है उससे बहुत गुना अधिक सुख और आनन्द समकिती को धर्म सुनने में मिलता है । उसे संसार असार और पाप का गुंजल दिखता है । धर्म सारभूत और तारणहार लगता है । इसलिए उसे धर्म-श्रवण में उत्कृष्ट रस और आनन्द मिलता है तथा पाप, मोह और विषयों की बातें सुनना अरुचिकर लगता है । यदि पाप की बातें सुनने में सुख मिले और धर्म-श्रवण में नहीं, तो उसे धर्म प्रिय है कैसे कहा जायेगा ? सम्यक्त्व देव-गुरु-धर्म के प्रति राग और विषयों से वैराग्य चाहता है । समकिती को देव-गुरु-धर्म सरस लगते है और विषयों को नीरस समझता है । यदि शरीर में बेचैनी हो, सुस्ती लगती हो तो आरोग्य को खतरा है और किसी रोग की पीड़ा है - यह समझना चाहिए । इसी तरह देव-गुरु-धर्म का माहात्म्य सुनने में सुस्ती और नीरसता का भाव हो तो मानना चाहिए कि सम्यक्त्व रूपी आरोग्य को खतरा है और उसे मिथ्यात्व रूपी रोग की पीड़ा है । शरीर की चुस्ती या सुस्ती आरोग्य या रोग का मापक यंत्र बैरोमीटर है । इसी प्रकार धर्म-श्रवण में नीरसता या रस आना मिथ्यात्व या सम्यक्त्व का मापक यंत्र है । सम्यक्त्व की समस्त क्रियाएँ भाव सहित होती हैं । प्रत्येक क्रिया में भाव जुड़ा होना चाहिए ।

द्रौपदी का अधिकार

तीन ब्राह्मणों और उनकी पत्नियों : 'ज्ञाताजी सूत्र' में तीन ब्राह्मणों और उनकी पत्नियों, नागेश्री, भूतश्री और यक्षश्री की कथा है। तीनों सुकोमल काया और नैसर्गिक सौंदर्य से युक्त हैं। मनुष्य को जितने सुख के साधन चाहिए, सभी उन्हें उपलब्ध थे। उन्हें इन साधनों की प्राप्ति के लिए आकाश-पाताल एक नहीं करना पड़ा था। जन्म से ही उन्हें यह सब सुख-सामग्री प्राप्त थी। पूर्व की पुण्याई से, बाप-दादा के समय से संपत्ति, रिद्धि-सिद्धि और वैभव-विलास का अपार खजाना था। तीनों भाई एकत्र रहते थे, मतभेद न था। दूध में शक्कर मिले तो स्वाद बढ़ता है, परन्तु छाछ की बूँद भी मिले तो दूध फट जाता है। यह परिवार दूध में शक्कर की भांति प्रेम से हिलमिल कर रहता था। इन ब्राह्मणों की तरह जिसके घर में पति-पत्नी एक मत हों, साथ में धर्म के बारे में भी एकमत हों, तो जीवन का रथ सही दिशा में और तेजी से बढ़े। आज धर्म के बहाने कितने की कषायों के प्रसंग उभर आते हैं। पति को संसार हेय लगने लगे और उसके प्रति निर्वेद भाव आ जाये तो पत्नी को यह उचित नहीं लगता, फिर आपस में क्लेश ही होगा ना ? यह पुण्य की कमी ही है। जिस घर में माता-पिता और संतान संस्कारी होते हैं, उस घर में धर्म का रंग कैसा खिलता होगा ? आप पैसे वाले को भाग्यवान कहते हैं, परन्तु ज्ञानी की दृष्टि से जिसे आत्मा की पहचान हुई है वही भाग्यवान हैं। पैसा प्राप्त करने के लिए आपने कितनी तकलीफ सही, पर आत्मा के लिए कुछ किया ? वहाँ आप सोचते हैं क्या कि आत्म सुख के लिए जो दुःख मिलेगा भोग लेंगे ? ऐसा वेग अभी तक उभरा नहीं है। ...

एक दिन की बात है –

"तएणं तेसिं माहणाणं अन्नया कयाई एगयओसमुवागयाणं जाव इमेयारुवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था।"

तीनों भाई एक स्थान पर बैठकर परस्पर विचार करने लगे कि हे देवानुप्रिय ! हमारे पास पुष्कल प्रमाण में गणीम, धरिय, मेय और परिच्छेद्य रूपी चारों प्रकार का धन है। पद्मराग आदि स्थापत्य के रूप भी हैं, स्वर्ण, रत्न, माणिक, मोती आदि सब इतने अधिक हैं कि सात पीढ़ियों तक खूब दान देते रहने के बावजूद समाप्त नहीं होगा। तो हमें क्या करना चाहिए ? तीनों भाईयों ... खत्म नहीं हुई है इसलिए उन्हें भौतिक वस्तुओं में सुख ...

सत्संग करते हैं, शास्त्रों का वांचन करते हैं, धर्म का आचरण करते हैं उन्हें आपत्ति के समय में सहन करने की शक्ति प्राप्त होती है ।

किसीने अनिष्ट किया हो तो भी महान पुरुष उसे अपने अंदर समा लेते हैं, अनिष्ट करने वाले की संकीर्णता या ओछापन बाहर नहीं गाते फिरते । सीता को बिना वजह, लोकोपवाद के कारण वनवास दिया गया । सीता की महानता यह है कि वन में आश्रय प्रदान करनेवाले धर्म-बांधव मिले, उनसे उन्होंने राम की या अयोध्या के लोगों की कोई शिकायत नहीं की । यहाँ तक कि अपने पुत्रों लव, कुश के साथ लगातार वर्षों तक दुःख सहती रहीं, यह नहीं कहा कि पुत्रों के लिए पिता ने क्या किया ? दोनों पुत्र धनुर्धारी बन गये, फिर लोगों से जानकर माता से पूछते हैं : "हे माता ! हमारे पिता ने आपको बिना किसी दोष के जंगल में छोड़ दिया, क्या हमारे पिता ऐसे थे ?" दोनों के मन में था कि किसी अपराध के कारण ऐसा किया हो तो ठीक है, परन्तु बिना किसी दोष के यदि ऐसा किया है तो हम उन्हें पाठ पढ़ायेंगे । देखिए, माता क्या उत्तर देती हैं ? "बेटा ! तुम्हारे पिता ने मुझे कुछ दुःख नहीं दिये, बिना अपराध के वन में नहीं भेजा । यह तो मेरे कर्म थे जिन्होंने मुझे दुःख दिये और जंगल में भेजा है ।" आज ऐसा कहने वाली स्त्री मिलेगी ? (श्रोताओं में से आवाज : 'उसे जंगल में ही कहाँ जाना है ?') देखिए, अपने बच्चे के सामने भी पति का ओछापन नहीं जताती । अगर कहे तो पुत्रों के मन में माता के प्रति प्रेम और बढ़े, ऐसे मातृभक्त बालक हैं । परन्तु किसीको नीचा दिखाकर अपने लिए प्रेम बढ़ाने से क्या फायदा ? महासती की यही महानता है ।

पुत्र कहते है, "आप अपने कर्मो का दोष देखती हैं, यह ठीक है । परन्तु हमारे पिता ने लोकोपवाद के भय से ऐसी आज्ञा दी, क्या यह सही था ? कहाँ आपकी गंभीरता और कहाँ उनकी यह जुल्मी आज्ञा ! क्या वे समझते हैं कि आपका कोई रखवाला नहीं है इसलिए आपके साथ कैसा भी दुर्व्यवहार कर सकते हैं ? हम लड़ाई करके उन्हें बता देंगे कि सीता माता के रखवाले तैयार हो गये हैं, अतः हमें लड़ाई में जाने की आज्ञा दीजिए ।" तब सीता बोली, "अरेरे, बच्चों ! यह क्या कह रहे हो ? पिताजी के साथ लड़ाई करने जाना चाहते हो ? पिता के सुपुत्र होकर उन्हीं के साथ लड़ा जाता है क्या ? जाना हो तो जरूर जाओ, परन्तु लड़ने नहीं उनके चरणों में नत होने !" देखिए, यह है सीता की महानता !

महानता तो यह है कि ओछा कहना तो दूर, ओछी बात सोचती भी नहीं । उल्टे उस पति के चरणों में नमन करने की सलाह देती है, जिसने निरपराध होते हुए उन्हें

वन में त्यागकर दुःखद स्थिति में डाल दिया। दिल विशाल बनाना हो तो कितनी हद तक बना सकते हैं ? हम मनुष्य हैं, सीताजी भी मनुष्य हैं ना ! जैसा हमारा हृदय है वैसा ही उनका भी हृदय है ! फिर भी उनमें कहीं अधमता, परदोष बुद्धि या नीच विचारों की एक किरण तक नहीं है। सीताजी में महानता का पूर्ण प्रकाश जगमगा रहा है, विशालता का विशुद्ध प्रवाह बह रहा है। सीताजी में सम्यक्त्व का प्रकाश ऐसा देदीप्यमान है कि जब उन्हें जंगल में छोड़कर सारथी मुड़ता है और पूछता है कि "रामचंद्रजी से कोई संदेश देना है ?" तो सीता कहती हैं, "श्री रामचंद्रजी से कहना के लोकोपवाद से आपने सीता का त्याग किया पर जैन धर्म का त्याग मत करना।" आपकी पत्नी यह कहेगी भला ? जैसे पैसे का दिखावा है वैसे ही धर्म का भी दिखावा चल रहा है। कितने ही पाखंडियों के मत चल रहे है। भगवान के सिद्धान्तों की गलत व्याख्या की जा रही है। भगवान के नाम पर हिंसा का तांडव रचा जा रहा है। वहाँ भगवान का सच्चा श्रावक भला बैठा रह सकता है ? भगवान महावीर तो निरंजन निराकार बन गये। उनके नाम से पाप नहीं होना चाहिए।

तीनों ब्राह्मण मिलकर क्या विचार करेंगे और आगे क्या होगा आदि भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक

आषाढ़ कृष्ण १४, बुधवार | दिनांक : १७-७-७४

सम्यक्दृष्टि का कमाल

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

द्रौपदी का अधिकार : रागद्वेष के विजेता, मोक्ष-मार्ग के प्रणेता, त्रिलोकीनाथ वीर भगवान ने भव्य जीवों के उद्धार के लिए सिद्धान्तमय वाणी की प्ररूपणा की। 'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन का अधिकार चल रहा है। एक दिन तीनों भाई मिलकर विचार कर रहे हैं। तीनों में बहुत एकता है। बड़ा भाई जो कहे, दोनों भाई उसे प्रेम से स्वीकार कर लेते हैं। जहाँ ऐसी एकता होती है वहाँ सच्ची लक्ष्मी होती है। तीनों भाई मिलकर बैठे हैं। उनकी पत्नियों के मन में भी शंका

नहीं होती कि सब मिलकर क्या कर रहे हैं ? पुण्य का उदय होने पर किसी तरह की शंका नहीं होती । जहाँ वितर्क उठते हों वहाँ पाप का उदय होता है ।

बड़ा भाई कहता है कि "देवानुप्रिय ! हमारे पास धन-वैभव, रिद्धि-सिद्धि अपार है। इतना है कि सात पीढ़ी तक सुख और आनन्द से रह सकें । तो मेरा एक प्रस्ताव है कि हम सब हर दिन एक-दूसरे के घर असन, पान, खाद्य और स्वाद्य रूप चार प्रकार के आहार अधिक प्रमाण में बनवायें और सब मिलकर भोजन करें, *'उवक्खडावित्ता परिभुंज भाणाणं विहरित्तए'* । सब ने प्रसन्नता से प्रस्ताव स्वीकार कर लिया ।

बंधुओं ! इन ब्राह्मणों के पास विपुल संपत्ति है, सुख-सामग्री है, परन्तु धर्म नहीं है। कौन-सा धर्म नहीं है ? (श्रोताओं में से आवाज : 'जैन धर्म नहीं है।') अपार समृद्धि है, सब में एकता भी है, यदि जैन धर्म मिला होता तो वे विचार करते कि हमें लक्ष्मी तो बहुत मिली है अब कमाई करने की जरूरत नहीं है । इसलिए पाप के धंधे और आश्रव का व्यापार बंद कर दें । परन्तु जैन धर्म न होने से ऐसे विचार भला कैसे आयें ? जैनदर्शन और अन्य दर्शन में इतना फर्क है । जो समय और अवसर मिला है उसे गँवाइए मत । संसार के व्यवहार संसार बढ़ाने वाले है । भोजन, मौज-मजा आदि संसार में वृद्धि करने वाले हैं । धर्म की दृष्टि से यह बात प्रशंसनीय नहीं है । लाखों रुपये हों, परन्तु पुण्य का यह भोग करते हुए पाप बँधना प्रशंसनीय नहीं है । परन्तु यहाँ यही हो रहा है । सभी पुण्य से प्राप्त सुख भोग रहे हैं, परन्तु उस पुण्य को भोगते हुए साथ में धर्म नहीं होने से पाप बँधता जाता है । क्योंकि वहाँ संसार की ही बातें हैं । संसार किस कारण से सम्मुख उपस्थित है ? वह समाप्त क्यों नहीं होता ?

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति ।
कम्मं च जाइ मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाइ मरणं वयन्ति ।।

- उत्त. सू. अ-३२, गा-७

भगवान ने क्या कहा है ? ज्ञानी ने दुःख का हेतु किसे कहा ? और आप दुःख का कारण किसे मानते हैं ? पैसा न हो, इच्छानुसार धन न मिलता हो, या भोजन करते समय अपने पसंद की रसोई न मिलती हो तो क्या होता है ? (श्रोताओं में से आवाज : 'दुःख होता है ।') इच्छित वस्तु प्राप्त न होने को जीव दुःख मान लेता है, यह जीव की अज्ञान दशा है । मिथ्या दृष्टि है, समकित दृष्टि नहीं । सम्यक्दृष्टि आत्मा क्या सोचता है ? 'मैंने आज यह वस्तु बनाने के लिए कहा था और वह न बनी तो आज मेरा वृत्तिसंक्षेप तप हो गया ।' सम्यक्दृष्टि जीव को इसमें आनन्द प्राप्त होगा

कि 'आज का दिन मेरे लिए धन्य बना कि मैं अपनी वृत्तियों को जीत नहीं पाता था, आज स्वाभाविक रूप से वृत्तियों पर विजय प्राप्त हो गया ।'

गजसुकुमार का दृष्टांत तो आपने बहुत बार सुना होगा । गजसुकुमार के माथे पर उसके श्वसुर सोमिल ने मिट्टी की पाड़ बनाकर जलते अंगारे रखे थे, तब उनके क्या भाव थे ? मेरे श्वसुर ने मुझे मोक्ष की पगड़ी पहनाई । मोक्ष की पगड़ी किस लिए कहा ? क्योंकि सम्यक्‌दृष्टि थे । मिथ्यादृष्टि जीव, पर के दोष देखता है और सम्यक्‌दृष्टि जीव स्वदोष देखता है । गजसुकुमार ने ऐसा विचार किया कि 'हे मेरे नाथ ! यदि आप मुझे न मिले होते तो मैं यह संसार छोड़ नहीं सकता । मेरी तो सगाई हो गई थी, मैं तो संसार में डूबने वाला था । उस समय मुझे जरा भी ज्ञान या विवेक कहाँ था ? त्याग किसे कहते हैं यह भी मैं नहीं जानता था । प्रभु आपकी असीम कृपा है मुझ पर, संसार रूपी महासमुद्र में डूबने से आपने मुझे बचाया ।' नदी या तालाब में कोई व्यक्ति डूब रहा हो और उसे कोई बचा ले तो वह उसका कितना उपकार मानेगा ! (श्रोताओं में से आवाज : 'अनंत उपकार' अरिहंत भगवान और निर्ग्रंथ गुरु का हम पर असीम उपकार है । ज्ञानी कहते हैं कि 'कभी चमड़ी उतारने का प्रसंग आ जाये तो भी कबूल करना, परन्तु गुरु के उपकार को कभी नहीं भूलना ।' गुरु तो महान मोक्ष-मार्ग बताने वाले हैं, अब डूबना या तरना हमारे पुरुषार्थ पर निर्भर है ।

'प्रभु ! आपने असीम कृपा करके मेरी माँग को सहर्ष स्वीकार किया और मुझे आज्ञा प्रदान की । भूखे को भोजन, प्यासे को पानी तथा अंधे को आँख मिलने पर जो आनन्द होगा वैसा ही आनन्द मुझे आपकी आज्ञा प्राप्त कर हुआ । प्रभु ! आपने आज्ञा प्रदान की तभी मैं स्मशान में बारहवीं प्रतिमा का वहन करने जा सका ।' वे यह नहीं सोचते कि मुझमें योग्यता थी इसलिए प्रभु ने आज्ञा दी । गजसुकुमार मुनि को देखते ही, सोमिल को रोष हो आया और माथे पर मिट्टी से पाल बाँधकर जलते अंगारे रखकर भयंकर उपसर्ग दिया । तब भी उनके विचार कैसे ! कैसा आत्म-मंथन ! सोमिल आया और मुझे उपसर्ग दिया, जिससे मुझे मोक्ष जाने का साधन शीघ्र मिल गया । खोपड़ी को जलने में कितना समय लगता है ? (श्रोताओं में से आवाज : 'दो घड़ी, हाथ-पैर जलने में समय लगता है ।) हे आत्मन् ! तुझे यह उपसर्ग दो घड़ी सहना है । इस समय में अपना आत्म-मान मत भूलना । सुलगते अंगारे खोपड़ी में रखे हैं, अन्य किसी स्थान पर रखे होते तो बच भी जाते । एक ही उपसर्ग से कभी मानव बच जाता है कभी मर जाता है । किसीने गोली मारी यदि हृदय में लगी तो आदमी मर जाता है अन्य किसी स्थान पर लगे तो बच भी जाता है ।

बाल गजसुकुमार मुनि की आत्मा क्या कहती है ? 'हे चेतन ! तेरे श्वसुर ने तुझ असीम कृपा की । भगवान और गुरु ने तो असीम उपकार किया ही है, परन्तु श्वसुर ने भी बड़ा उपकार किया कि मेरे जवाँई राजा शीघ्र मोक्ष में जाएँ ।' देखिए यक्दृष्टि की सोच । सोमिल मिथ्यादृष्टि हैं । उसकी मिथ्यादृष्टि के कारण गजसुकुमार देखते ही उसके मन में द्वेष का दावानल भड़क उठा । अरे दुश्मन ! यदि तुझे धू ही बनना था तो मेरी पुत्री का जीवन क्यों बर्बाद किया ? यदि सम्यक्दृष्टि ता तो सोचता, 'मेरी कन्या को दूसरा वर मिल जायगा । ये साधू बने तो धन्य उनकी आत्मा को ।'

सती अंजना की सगाई मेघकुमार से होने वाली थी कि खबर मिली - 'मेघकुमार क्षा ले रहे हैं । इसलिए सगाई नहीं हुई ।' उस समय अंजना ने क्या विचार या ? 'अहो ! इतनी छोटी उम्र में दीक्षा लेंगे और मोक्ष में जायेंगे, अतः उन्हें व-वंदन करती हूँ ।' जंबुस्वामी विवाह नहीं करना चाहते थे, परन्तु माता-पिता अति आग्रह से इस शर्त पर तैयार हुए कि मैं विवाह कर लूँगा और दूसरे ही न दीक्षा लूँगा । जंबुकुमार की यह शर्त आठों समधियों को बताई गई । उन्होंने पनी पुत्रियों से इस बारे में पूछा तो आठों ने कहा कि 'हमारे जीवन में एक ही ते हैं, हम उनसे परिणय करेंगे । उनका जो मार्ग है वही हमारा भी मार्ग है, वे हाँ जायेंगे वहीं हम भी जायेंगे ।' आठों कन्याओं के माता-पिता ने यह नहीं सोचा 'दीक्षा लेकर हमारी पुत्रियों को संसार में छोड़ना ही है तो विवाह क्यों कर रहे ? (श्रोताओं में से आवाज : 'उन्हें भी दीक्षा लेनी थी ।') भाई ! उस समय तो दीक्षा लेने वाली नहीं थीं, दीक्षा तो बाद में सबने साथ ली । आज के माँ-प क्या कहेंगे ? ऐसा तो नहीं कहेंगे, उल्टे बोलेंगे, 'तुझे मुंडित ही होना था, धू ही बनना था तो विवाह नहीं करना चाहिए था ।' जैसे पीलिया के रोगी को चीज पीली दिखाई पड़ती है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव सद्गुण में दोष देखता और सम्यक्दृष्टि दोष में भी गुण देखता है । सम्यक्त्व को मोक्ष का बीज सीलिए कहा गया है कि वह दावानल में भी शीतलता का अनुभव करता है । गजसुकुमार की दृष्टि सम्यक् है इसलिए उनकी आत्म मस्ती कितनी अलौकिक । वे अपनी आत्मा से कहते हैं, 'हे चेतन ! यह जो उपसर्ग आया है, यह तो सिर्फ घड़ी के लिए है । यह उपसर्ग नहीं बल्कि मोक्ष शीघ्र पहुँचने की साधना है । अपने क्षमाभाव में रहना । देहाध्यास छोड़ देना । जो जल रहा है वह तेरा नहीं और जो तेरा है वह जलने वाला नहीं, इसलिए तू अपनी साधना में मस्त

रहना । यदि गजसुकुमार सम्यक्दृष्टि न होते तो इस उपसर्ग को सहन करते हुए अनं
संसार बढ़ा चुके होते । क्योंकि देह के प्रति राग होने से उपसर्ग करनेवाले के
व्यक्ति-द्वेष होता । इसलिए भगवान ने कहा है कि *'रागो य दोसो वि ह
कम्मबीयं'* अर्थात् राग और द्वेष कर्म के बीज है । माया और लोभ राग की
संतान है, राग को पोषण देने वाले हैं । क्रोध मनोद्वेष का मूल है । आप किसी
घर गये और उसने आइए कहकर स्वागत नहीं किया तो आपके मन में होगा कि
'मैं इतनी दूर से इससे मिलने आया और इसने 'आओ' तक नहीं कहा ।' मन
मान आने से क्रोध आता है औ द्वेष भभक उठता है । 'बस अब कभी इसके
नहीं जाना है, इसका नाम भी नहीं लेना है ।' यह सब किसने करवाया ? द्वेषबुद्धि
ने । आपकी दृष्टि में राग-द्वेष चाहे जैसे दिखते हों, परन्तु ज्ञानी की दृष्टि
संसारवर्धक हैं । किसान खेत में बीज बोता है तो उसे उसका अनेक गुना प्र
होता है, यदि न बोये तो क्या मिलेगा ? इसी प्रकार सम्यक्त्व का बीज बोने
मोक्ष की फसल उगती है और राग-द्वेष का बीज बोने से संसार की ।

छद्मस्थ अवस्था में भूल हो जाती है, राग-द्वेष की परिणति आ जाती है, क
भी उभर आते हैं । क्योंकि ग्यारहवें गुणस्थानक में भी सूक्ष्म लोभ सत्ता में र
है । जीवन से अभी मान आदि कषाय नष्ट नहीं हुए हैं जिसके कारण कभी
आ जाये तो नियंत्रण कीजिए । आत्मा से कहिए : 'हे आत्मन् ! यह तूने
किया ? क्या यह तुझे शोभा देता है ?' इससे तेरा अनंत संसार बढ़ जायेगा, अ
इसे पकड़कर न रखो । पकड़कर रखने से जीव को हर क्षण आर्तध्यान होता
आर्तध्यान जीव को दुर्गति में ले जायेगा । इसलिए कभी कषाय आ भी जाए
उस पर ब्रेक लगाइए और वहाँ से पीछे मुड़ जाइए । कषाय को छोड़ दीजिए, मत
मत कीजिए ।

राग-द्वेष कर्म के बीज हैं तो इस बीज को किसने जन्म दिया ? इसका
मोहनीय कर्म ने, मोहनीय कर्म डाकू से भी बुरा है । यह सही समझने
देता । मोहनीय कर्म तो उपाश्रय में भी जोर जमाता है । उपाश्रय में आते है
मन में आ जाता है कि तुझे कोई मान देता है ? तुझे कोई आगे बुलाता है ? ह
रुपये दान दें तो आगे बैठाते हैं, मान देते है । यह सब मोहनीय कर्म की प्रकृ
है । राग-द्वेष कर्म के बीज है जो मोह से उत्पन्न होते हैं । मोह के पोषण मे
वाला कष्ट कष्ट नहीं लगता । क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव को संसार सुखमय ल
है । एक दृष्टांत द्वारा स्पष्ट करती हूँ ।

आप एक गाँव में बँगला बनवाकर रहते हैं । अचानक ऐसा भयंकर आँधी-तूफान आता है कि सारे गाँव की धूल आपके बँगले में आ जाती है । आप साफ करते जा रहे हैं पर धूल भरती जा रही है । आप हैरान, परेशान हो जाते हैं । यह तो गाँव में तूफान आया था, आसपास घर भी थे, तब भी इतना भयंकर लगता है, यदि कहीं यह तूफान जंगल में हो तो कितना भयंकर होगा । ऐसे समय में अगर कोई आपसे जंगल में जाने के लिए कहे तो जायेंगे भला ? (श्रोताओं में से आवाज : 'कोई भी नहीं जायेगा ।') साथ ही एक अन्य बात बता दूँ । यदि कहा जाए कि 'भाई ! जहाँ तूफान आया है उस जंगल में हीरे की खान है, अगर आप कुछ दिन वहाँ रह सकें तो वह खान आपको मिल जाएगी ।' अब बताइए, आप कहाँ रहना ठीक समझेंगे, बँगले में या जंगल में (श्रोताओं में से आवाज : 'जंगल में ही भई !') अब आपको वहाँ तकलीफ, दु:ख कुछ भी महसूस नहीं होगा क्योंकि हीरे की खान है और कीमती रत्न प्राप्त होने वाले हैं । देखिए ! लोभ-संज्ञा ने कैसे वश में कर लिया ? भौतिक सुख मिलता हो तो कितने ही दु:ख सहने के लिए आप तैयार हैं ।

जब राम ने सीताजी को वन में भेजा, उन्हें अकेले ही जंगल में जाना पड़ा । ऐसे दु:ख के समय भी सीताजी ने दु:ख नहीं विचारा, विलाप या क्रन्दन नहीं किया । इसके पीछे भी रहस्य छिपा हुआ है । सीताजी समझती थी कि राम ने मुझे हीरे की खान खोदने के लिए भेजा है । यह संसार एक वन है, जिसमें मानव भव एक मकान है । वन में मकान हो तो दु:ख, आपत्ति रूपी आँधी तो आयेगी ही, परन्तु पास में मानव-देह-वाणी-इन्द्रिय और मन हीरे की खान हैं । इसमें से हीरा-माणिक खोदकर निकालना आता हो तो उस आँधी से तकलीफ नहीं होती । मानव काया रूपी खान में हीरा-माणिक कहाँ है ? अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, व्रतनियम, तपश्चर्या, संतों की सेवा, वीतराग भगवान का स्मरण, शास्त्र स्वाध्याय, सर्व जीवों के प्रति मैत्रीभाव विषयों के प्रति वैराग्यभाव, धर्म का अनोखा रंग और शुभ विचार आदि सब हीरा-माणिक हैं । मुझे तो मौज है ! पूर्वकृत कर्म क्षय करने का शुभ समय मिल गया है । हे स्वामी ! आपसे दूर रहने के कारण स्वाभाविक रूप से ब्रह्मचर्य पालने का सुअवसर प्राप्त हो गया । यदि आप साथ होते तो मौज-शौक में पड़कर और चिकने कर्म बाँध लेती । आत्म-साधना के लिए हीरे की खान जैसा मानव भव प्राप्त हुआ है, कर्म उदय में आये हैं तो उन्हें प्रेम से भोग ले ।' सीताजी दु:ख के प्रसंगों में भी मन-वचन-काया रूपी हीरे की खान में से यथाशक्ति ऐसे हीरे-माणिक निकालती रहीं । वे कर्म की फिलासोफी (दर्शन) बहुत अच्छी तरह समझती थीं, इसलिए उदय में आये कर्म को

समभाव से सहन करने में मस्त बन गयी थी, उन्हें वन के दुःख भला कैसे दुःखी करते ? वन की तकलीफों में भी उन्होंने मन से अरिहंत का शरण काया, वाणी और इन्द्रियों से चारित्र साधना तथा तप साधना का ही विचार किया। राम से मिलने के बाद अग्निप्रवेश करते हुए मन में निश्चय कर लिया होगा, अतः अग्निपरीक्षा के तुरंत पश्चात् इस मन, वाणी और काया रूपी हीरे की खान में से श्रेष्ठ कोटि का रत्न लेने के लिए संसार त्यागकर संयम-मार्ग पर निकल पड़ी।

बंधुओं ! मानव भव रूपी हीरे की खान में सद्गुरु का संग, वीतराग वाणी का श्रवण, व्रत-प्रत्याख्यान आदि आपको हीरा-माणिक जैसे लगते हैं ? इसके विपरीत पाप, प्रमाद, आश्रव-अज्ञान, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि जो संसार में पटकने वाले हैं, धूल के समान लगते हैं क्या ? हीरे की खान में से हीरा-माणिक मिलते हैं और धूल-पत्थर भी मिलते हैं। परन्तु जो हीरे की खान में जाकर हीरा-माणिक के बदले पत्थर और धूल लाए, उसकी कैसी मूर्खता है ! इस मानवदेह से प्रभात होने पर भी बिस्तर पर पड़े हुए नींद लेना धूल-पत्थर कमाने जैसा है और प्रतिक्रमण करना हीरा-माणिक-सा है - ऐसा प्रतीत होता है क्या ? विषयों के रंग में रमना, पापमय वाणी बोलना पत्थर-धूल है और त्याग, तपश्चर्या, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और हीरा-माणिक हैं - ऐसा लगता है क्या ? यदि अभी तक ऐसा लगता भी नहीं है तो मन, वचन, काया से पत्थर-धूल छोड़कर माणिक-हीरा निकालने का श्रम कैसे संभव होगा ? सीताजी ने वन में पूर्वकृत कर्म भोगने के समय को हीरे की खान माना। कैसी ज्ञानदृष्टि ! दुःख में भी सुख का अनुभव।

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री के यहाँ भोजन की तैयारी : इधर तीनों भाईयों ने मिलकर निर्णय किया कि 'एक-एक भाई के घर पर भोजन बनवाकर सब साथ मिलकर खाना और मौज-मजा करना है।' परन्तु यह विचार नहीं किया कि 'हम अष्टमी-पक्खी के दिन उपवास करें।' पैसा था, परन्तु जैन धर्म नहीं था। जैन धर्म होता तो विपुल रकम की बात नहीं करते वरन् गरीबों को आश्रय देने की बात मन में आती। गृहस्थ हैं, परन्तु सम्यक्दृष्टि नहीं है और जबतक मिथ्यादृष्टि है तबतक किसी दूसरे की बात सुनना पसंद भी नहीं आता। आप दिन में जिस बात का चिंतन-मनन करेंगे रात में नींद में भी उसीकी गूंज होगी। जिसका व्यापार तेजी से चल रहा होगा और ध्यान पूर्णतः व्यापार में होगा उसे रात में भी यही विचार आयेंगे। जो आत्मा धर्म के रंग में रंगा हुआ है उसे रात में भी धर्म के ही विचार आयेंगे। जिसमें जिसकी लगन है। कोई व्यक्ति दिन में पढ़ाई करने में लीन रहता है तो रात के समय नींद में भी उसे गाथाएँ याद आयेंगी। जब यह लगन धर्म-साधना में लगती है तो कर्म खपने (क्षय होने) लगते हैं।

एक कपड़े का व्यापारी था, व्यापार में मशगूल। परदेश से एक आढतिया माल लेने आया। अपनी व्यस्तता की सूचना उसने घर पर पहुँचाई कि 'आज भोजन के लिए मेरी राह न देखना।' सुबह से शाम ग्राहक को माल देने में हो गयी। उस समय भूख-प्यास भी याद न आयी। रात में कुछ खा-पीकर सो गये। दिन-भर का थका-मांदा सोते ही गहरी नींद में पहुँच गया। नींद में भी यही विचार चल रहा है कि 'इसे यह माल देना है, लड़के से कहो उधर से थान निकाले, ग्राहक को यह कपड़ा फाट कर दूँ।' ऐसे विचारों में अपनी ओढी हुई अढाई हजार की शाल को बीच से फाड़ डाला। कुछ समय बाद ही उसकी नींद खुली, सोचने लगा कि नींद में क्या बड़बड़ा रहा हूँ? बंधुओं! इस समय यदि आयुष्य का बंध पड़े तो किस गति का होगा? सेठानी ने पूछा, "यह क्या किया, व्यापार की धुन में आपने कीमती शाल के टुकड़े कर दिये।" अब व्यापारी की आँख खुली। आप यहाँ से सामायिक करके जाते हैं तो वही भाव बना रहता है क्या? (श्रोताओं में से जवाब : 'कभी-कभी रहता है।') अधिक भाव तो संसार का ही होता है। दिन-भर जैसी रटन करेंगे, रात भी वैसी ही रहेगी। अतः समझने की जरूरत है। जब सही समझ आ जायेगी, तब समस्त लोग सो रहे होंगे, परन्तु आप अपनी आत्म जागृति में चिंतन रत रहेंगे कि 'हे प्रभु! मेरा संसार कैसे घटे? आश्रव कैसे घटे? पाप कैसे घटे?

यहाँ बड़े भाई ने निर्णय लिया और अन्य भाईयों ने मंजूर किया। भाईयों ने मंजूर किया तो उनकी पत्नियों ने भी स्वीकार लिया। अक्सर भाई, पत्नियों से पूछे बिना कुछ निर्णय नहीं कर सकते हैं पर यहाँ पति को जो स्वीकार वही पत्नी को भी। पहले दिन नागेश्री के घर, दूसरे दिन भूतश्री के घर और तीसरे दिन यक्ष श्री के घर बारी-बारी से भोजन का क्रम चलने लगा। भगवान फ़रमाते हैं, "हर काम करने में उपयोग रखो।" बिना उपयोग के कार्य करने पर पछताना पड़ता है। यदि कोई भूल हो जाये तो उसका पछतावा करना और कोशिश रखना कि फिर से वह भूल न हो। एक बार, *'तएणं तीसे नागसिरीए माहणीए अन्नया भोयणवारए जाए यावि होत्था।'* नागेश्री ब्राह्मणी की भोजन बनाने की बारी थी। उसने पुष्कल प्रमाण में चारों प्रकार के आहार बनाये।

रसोई बनाने में आरंभ तो है ही, उपयोग रखने से जतना (यतना) रहती है, उपयोग न रहने से अनेक जीवों की हिंसा होती है। नागेश्री के यहाँ बहुत से लोग भोजन करने आयेंगे। सारी रसोई तैयार करवा रही हैं। सब्जी बनाने का प्रसंग चल रहा है। सब्जी बनाने के पहले चखना चाहिए। नागेश्री किस प्रकार बनाएगी, फिर क्या घटेगा आदि भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक १३

आषाढ़ कृष्ण १५, गुरुवार | दिनांक : १८-७-७४

श्रद्धा से सजो

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत करुणानिधि, शासन सम्राट, वीर भगवान ने जगत का स्वरूप निहार कर, हम पर अपार करुणा की कि संसारी जीवों को जन्म, जरा, मरण के दुःख से छुटकारा दिलाने के लिए, तो कुछ केवली भगवान ने जाना-देखा, उसे हमारे समझ प्रस्तुत कर दिया। आज लोग कह देते हैं कि 'केवली थे तो उस समय में वैज्ञानिक साधनों के अभाव में कैसे और क्या देखा होगा ?' ऐसा कहना मिथ्यात्व है। ऐसा कहने से अनंत केवली की अशातना होती है। केवली किसे कहते हैं ? *"सर्व द्रव्य पर्यायेसु केवलस्य"* अर्थात् जो सर्व द्रव्य और सर्व पर्यायों को जानते हैं और जिनके ज्ञान की कोई सीमा नहीं होती, ऐसी तीनों काल का ज्ञान होता है। इन केवली आत्माओं से अनंत चौबीसी में पूछा गया, यदि वर्तमान में कोई पूछे तो उत्तर एक ही होगा। कहाँ अपनी अल्पबुद्धि ! अपने छिद्र ढँकने के लिए, केवली के वचन को पलटने तैयार हो जाते हैं। आश्रव के दो भेद बताये गये हैं, उसमें से यह एक भेद है। अपने स्वार्थ का पोषण करने के लिए केवली के वचन उलटने से भयंकर पाप का प्रवाह आता है। भगवान् ने ज्ञान से जितना देखा उतना बोल नहीं पाये, क्योंकि आयुष्य मर्यादित है, भाषा मर्यादित है और ज्ञान अनंत हैं। आपको उपाश्रय का होल देखने एक से दो मिनट लगेगा, परन्तु उसका वर्णन करने में बहुत समय लगेगा। जितने समय में आप उपाश्रय को देख सके हैं उतने समय में वाणी से कह नहीं सकते। भगवान का आयुष्य मर्यादित होता है, पर देखने से कुछ भी नहीं छूटा है, वे तो अनंत ज्ञान के धारक हैं।

संसार में यदि कोई नौकर मालिक से अवर्णवाद (उल्टा-सीधा) बोले तो उसे दूकान से निकाल दिया जाता है और फिर कभी दूकान में नहीं रखा जाता। इसी प्रकार केवली के वचन उलटने-पलटने का अर्थ है केवली का अवर्णवाद बोलना। इससे जीव को दुर्गति में जाना पड़ता है। आज जीवों को श्रद्धा नहीं है। जिसे वीतराग के वचनों के प्रति श्रद्धा है, उसका शरीर कुर्बान हो जाने

पर भी श्रद्धा नहीं टूटती । श्रद्धा कहाँ तक रहनी चाहिए ? काया नष्ट हो जाय तो हो जाए, परन्तु वीतराग वाणी के प्रति जो रुचि और यथार्थ श्रद्धा है वह कम नहीं हो । *'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यक्‌दर्शनम् ।'* सम्यक् दर्शन के विषय में जानना हो तो पहले उसके आधार को समझना चाहिए । सम्यक्‌दर्शन शब्द से समकित नहीं आ जाता, परन्तु यह दृढ विश्वास होना चाहिए कि भले ही सब कुछ बदले पर केवली के वचन तीनों काल में कभी नहीं बदलते । भगवान के वचनों पर इतनी श्रद्धा होनी ही चाहिए । 'नंदी सूत्र' में पाठ है कि सम्यक्‌दृष्टि आत्मा रामायण, महाभारत, वैद्यक आदि ग्रंथों का अध्ययन करें तो भी उसे सम्यक्‌रूप में परिणमेगा और मिथ्यादृष्टि जीव भगवती जैसे महान सूत्र का वांचन करके भी उसे मिथ्या रूप में परिणमेगा ।

सम्यक्‌दृष्टि मोक्षमार्ग में है और मिथ्यात्व की अमंदता वाले तीव्र मिथ्या दृष्टि जीव बेचारे भवमार्ग में हैं । वीतराग भगवान द्वारा बताये तत्त्वों में जीव को यथार्थ श्रद्धा होना ही सम्यक्‌दर्शन है । सम्यक्‌दृष्टि आत्मा कर्म के उदय से भवसमुद्र में रहता है पर उसमें रमता नहीं । रहने और रमने में आकाश-पाताल का अंतर है । रहना पड़े, यह चारित्र मोहनीय का उदय है और रमना मिथ्यात्व मोहनीय का उदय । इसलिए रहता हो पर रमता न हो तो जीव बहुत कम पाप बांधता है । समकिती आत्मा विपुल वैभव के बीच रहता हो पर उसकी आंतरिक ज्ञानदशा जागृत रहती है । वैभव भी उसके लिए वैराग्य का निमित्त बनता है, वह हर क्षण संसार की असारता का चिंतन करता रहता है । मिथ्यादृष्टि पाप में रुचि से प्रवृत्त होता जबकि समकिती उसमें प्रवृत्ति करने पर भी उदासीन भाव से करता है, इससे बंध अल्प होता है ।

भगवान ने 'भगवती सूत्र' में असोच्चा केवली की बात कही है । जंगल में रहने वाले सन्यासी, तापस आदि जो शैवाल खा के रहते है, सूर्य की आतापना लेते हैं, अनेक प्रकार के कष्ट सहन करते हुए अकाम निर्जरा होती है । अकाम निर्जरा के परिणामस्वरूप उन्हें विभंगज्ञान होता है । विभंगज्ञान द्वारा पाँच देवलोक तक देखा जा सकता है, उससे आगे नहीं । तब वे विचार करते हैं कि जैनदर्शन में तो बारह देवलोक, नौ ग्रैवेयक, पाँच अनुत्तर विमान और उससे आगे सिद्ध क्षेत्र कहा गया है और मुझे तो सिर्फ पाँच देवलोक तक ही दिख रहा है । जैनदर्शन कहता है तो वह अवश्य होगा । जैनदर्शन सच कहता है, इस प्रकार जैनदर्शन पर दृढ विश्वास जमा, श्रद्धा हुई और उनका ज्ञान उघड़ने लगा, जिससे पाँचवें देवलोक से आगे वे देखने लगे । अब तो श्रद्धा अटूट हो गई,

'हे भगवान ! तेरे वचन सत्य हैं ।' सम्यक्‌दृष्टि आ गयी और भगवान के वचनों पर श्रद्धा बढ़ते-बढ़ते घाती कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान की ज्योति प्रकाशित हो गयी । केवल ज्ञान प्राप्त करने के बाद तुरंत काल करे तो उसे असोच्चा केवली कहा जाता है । अपने धर्म की श्रद्धा टूटी और वीतराग के वचनों पर सच्ची श्रद्धा हुई तो केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया । अतः सच्चे धर्म पर श्रद्धा कीजिए ।

जिस धर्म में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और त्याग-वैराग्य की ज्योति प्रज्ज्वलित है, वही सच्चा धर्म है । जैन धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों पर दृष्टि फेरिए तो पायेंगे कि उनमें कई अंशों में पाप छुपा हुआ है । जबकि जैन धर्म में जरा भी कचाई नहीं है । जीव कर्म कब बाँधता है ? भगवान कहते हैं कि "मैं मद में चढ़ा तो मुझे भी कर्म को बदला देना पड़ा है ।" किये हुए कर्मों को भोगे बिना किसीको छुटकारा नहीं है । अनुत्तर विमान के देव को एकान्त समकिती होते हैं, छः द्रव्य, नय और निक्षेप के चिंतन में उनका जघन्य ३१ और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का काल व्यतीत हो जाता है और उन्हें पता भी नहीं लगता । फिर भी वे उसी भव में मोक्षगामी नहीं हैं । सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों का एक भव बाकी रहता है । जब तक घाती कर्म हैं तबतक सजा मिलती है । *कैसी सजा ? अनुत्तर विमान के देव होने पर भी वहाँ की स्थिति पूर्ण करके* माता के गर्भ में आना पड़ेगा और गर्भ के दुःख भोगने पड़ेंगे । यह क्या कम सजा है । चमरबंधी इन्द्र को भी माता के गर्भ में आना पड़ता है - यह है कर्म का खेल ! इसलिए जन्म, जरा और मरण का फेरा रोकने तथा घाती कर्मों पर आघात करने के लिए पुरुषार्थ कीजिए ।

जिस प्रकार रोग से पीड़ित व्यक्ति डोक्टर के पास जाता है और रोग मिटाने के लिए डोक्टर के आदेशानुसार कार्य करता है । उसी प्रकार जन्म-जरा और मृत्यु रूपी रोग से पीड़ित जीव भगवान के सम्मुख रोगी है । जिसे जन्म जरा और मरण का रोग नष्ट करना होगा वह वीतराग के अस्पताल में आयेगा । यह रोग जिसे खटकेगा, वह घाती कर्मों को नष्ट करने के पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहेगा । यदि लोक-व्यवहार में भले बनने की कोशिश करते रहेंगे तो कहाँ जाकर गिरेंगे ! पहले-दूसरे देवलोक के देव वहाँ से निकलकर, पृथ्वी, पानी, वनस्पति, मनुष्य और तिर्यच - इन पाँच दंडकों में जाते हैं । जिसे सब देव-देवी 'खम्मा महाराज' कहते रहे, जो हजारों देवियों का स्वामी रहा, वह तिर्यंच में चला जाता है । वहाँ कितना दुःख है ? सोच करे या क्रन्दन करे, पर कोई उसके पास नहीं आता । जब्कि देव को देवलोक में से आना छः महीना बाकी रहे तो उनका

माला मुरझा जाता है जिससे यह मालूम पड़ता है कि मेरी आयु छः महीना ही है। अतः उपयोग से देखते है कि मैं किस गति में जाने वाला हूँ। पहला-दूसरा देवलोक के देवता पाँच दंडक में जाते हैं। पृथ्वी, पानी, वनस्पति, मनुष्य और तिर्यच। देव पानी में जाकर उत्पन्न होता है। आप पानी गर्म करने के लिए चूल्हे पर चढ़ाते हैं उस समय, तू मुझे क्यों मारता है ? मुझे अग्नि में क्यों डाल रहा है ? इतना कहने की भी उस जीव में शक्ति है क्या ? नहीं है। इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि 'अपने जीवन का लक्ष नहीं रखेंगे, ध्यान नहीं रखेंगे तो क्षण-क्षण आर्तध्यान के कारण सामने आयेंगे।' आप संसारी सुख को स्वर्ग के जैसा सुख मान रहे हैं और मेरा-मेरा कहकर बैठे हुए हैं, परन्तु यह तो सुलगता हुआ दावानल है। चारों ओर आर्तध्यान की आग सुलगी हुई है जो जीव को दुर्गति में ले जाती है। ऐसे समय में आनन्द से बैठे रहना कैसे रुचेगा ? तिर्यच के जीव, जैसे खटमल, मच्छर, तिलचट्टा आदि को पैसे खर्च करके दवा छिड़कवा कर मार डालते हैं और फिर प्रसन्न होते हैं। महावीर का श्रावक क्या ऐसा होता है ? जरा सिद्धान्तों पर नजर फेरिए। चींटी की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों का बलिदान दे दिया। जो एकेन्द्रिय जीवों की दया पालता हो वह बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय आदि जीवों को मारने भला कैसे तैयार होगा ? आप सामायिक के पाठ में कहते हैं ना, *'इरियावहियाए, विराहणाए, गमणागमणे उसा, उत्तिंग, पणग, दग, मटिट्, मकड़'* मेरी आत्मा से इनमें के किसी भी जीव का छेदन-भेदन हुआ है, तकलीफ दी गई हो, तो आलोचना करते है और दूसरी तरफ हिंसा का तांडव प्रस्तुत करते है। धर्म कहाँ है ? यह तो खाली दिखावा है।

ज्ञानी कहते हैं कि 'बँगला, फर्निचर आदि को अपना मानकर बैठे हैं, परन्तु आपका घर कौन-सा है ?' जिस घर से आपको कोई, कभी भी बाहर न निकाल सके वही सच्चा घर है। बाकी सब पराया है। इस शरीर से आत्मा अनंत बार निकला है। जहाँ यह शरीर भी अपना नहीं है वहाँ चार दीवारों को कहाँ अपना मानकर बैठ गये हो ? अपना घर छोड़कर आप दूसरे का घर बाँध रहे हैं। ज्ञानी कहते हैं कि 'आपने घर नहीं बाँधा है पाप बाँधा है, हिंसा का तांडव सिरजा है।' क्योंकि घर बाँधने या बनाने में छहकाय के जीवों की हिंसा होती है। अच्छा फ्लैट लेने, पैसा प्राप्त करने के लिए कितने स्याह-सफेद करने पड़ते हैं ? जहाँ सुख नहीं पर सुख की कामना है। जहाँ सोते समय भी मन में संताप लेकर सोते हैं। जिस समय शालिभद्र जैसे असीम संपत्ति के स्वामी और ऐश्वर्यवान लोग थे, जिन्हें किसी प्रकार का कोई भौतिक दुःख नहीं था, उस समय भी

भगवान ने संसार को दु:खों की खान कहा । छोटा बालक रेत से महल बनाकर प्रसन्न होता है, ऐसा महल जिसे हल्का-सा धक्का तोड़ सकता है । आपने चार दीवारों के चौखटे को घर मान लिया है और उस बालक ने रेत के ढेर को ।

मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा पर ऐसा अंधकार व्याप्त हो गया है कि आत्मा का प्रकाश दिखाई नहीं देता । आत्मा को कर्म के बंधन में बँधना पड़ता है फिर उसी कर्म के कारण अनेक बातों की गुलामी सहन करनी पड़ती है । यदि जीव को इस बात का ख्याल आ जाये तो वह उन बँधनों को तोड़ने के उपाय अवश्य ढूँढेगा । त्रिलोकीनाथ करुणासागर प्रभु महावीरस्वामी के पाँचवें गणधर श्री सुधर्मास्वामी ने जंबुस्वामी को दीक्षा लेकर आने के बाद कहा -

'बुज्झिज्जत्ति तिउट्टिज्जा, बंधणं परिजाणिया ।'

"हे आयुष्मान जंबु ! तू बँधन को जान और फिर उसे तोड़ ।" सुधर्मास्वामी यह कब कहते हैं ? जब जंबुस्वामी ११ करोड़ की संपत्ति घास के तिनके के समान छोड़ आये थे । माता-पिता की एक मात्र संतान थे और उन्हें छोड़ आये थे । इसके अतिरिक्त अप्सरा समान आठ नवपरिणीता रमणियों का त्याग कर संयमी जीवन में आ गये थे । उन्होंने यह विचार नहीं किया कि मेरी संपत्ति का वारिस कौन होगा ?' क्योंकि उन्होंने जिस संपत्ति को जहर मानकर छोड़ दिया है उसे किसे पिलाने जायें ? इतना त्याग करके जंबुस्वामी संयम मार्ग पर आये, तब उनसे गुरु कह रहे हैं कि "पहले बँधन को पहचानो, फिर उसे तोड़ने के लिए पुरुषार्थ करो ।" यहाँ मन में विचार आता है कि यह किस भाव से कहा होगा ? इतना सब छोड़ने के बाद अब कौन-से बँधन बाकी बचे ? इतने अधिक प्रलोभन वाले, मोहमाया के बँधनों का त्याग करने के पश्चात् क्या अब भी बँधन बचे हुए हैं जिसे तोड़ने के लिए कह रहे हैं !!

हाँ ! जंबुकुमार ने जो त्याग किया वह आत्मा के बाहरी बँधनों का त्याग था । बाह्य परिग्रह छोड़ा । जीव बाह्य परिग्रह छोड़कर आता है, परन्तु आभ्यंतर परिग्रह तो साथ ही आता है । राग, आसक्ति, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कर्म के आंतरिक बँधन अभी बँधे हुए ही है । इन्हें पहचानना, इन्हें निरन्तर अपनी नजरों के समक्ष रखना और इन्हें तोड़ने का कार्य अभी बाकी है । जबतक जीव तेरहवें गुणस्थानक में नहीं पहुँचा है तबतक उत्कृष्ट वैराग्य वाला आत्मा सातवें गुणस्थानक में ही है । सातवें गुणस्थानक की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है, अतः इतना समय रहकर छट्ठे में आ जाता है । अर्थात् छट्ठे और सातवें में झूलता रहता है । इस प्रकार श्रेणी बढ़ने पर आगे बढ़ता है । आठवें गुणस्थानक में पहुँचकर क्षपक श्रेणी में आये तो बारहवें गुणस्थानक से होकर तेरहवें तक पहुँचता है,

अर्थात् केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है । इसीलिए सुधर्मास्वामी ने जंबुस्वामी से कहा कि 'पहले बँधन को जानो और फिर उसे तोड़ो ।' दीक्षा लेकर बैठ जाने से सबकुछ नहीं हो जाता । वहाँ से आत्मा को अगले सोपानों, गुणों की श्रेणियों में चढ़ना है । मानव जन्म में, इन बँधनों को पहचानने, उन्हें निरन्तर अपने ध्यान में रखकर तोड़ने की सुविधा प्राप्त होती है, अन्य जन्मों में नहीं । जरा विचार कीजिए, 'तिर्यच में विवेक नहीं है, नरक में दुःख की सीमा नहीं और न ही कोई धर्मगुरु मिलता है ।' देव भव में भोग-विलास की प्रचुरता उन्हें उसीमें मस्त रखती है । बँधनों को पहचानने का अवसर प्राप्त होता है मात्र मानव जन्म में । अतः अहिंसा, संयम और तप द्वारा इन बँधनों को तोड़ने का पुरुषार्थ कीजिए । जब जीव को मोहनीय कर्म का स्वरूप समझ में आयेगा तब वह संसार छोड़कर निकल पड़ेगा ।

मुंबई में लोग अलग-अलग प्रांतों और शहरों से आकर बस गये है । गुजरात, काठियावाड, कच्छ, मारवाड़, मेवाड़ आदि प्रदेशों से लोग आये है । जीव को भी समझने की आवश्यकता है कि मैं कहाँ से आया हूँ ? क्या यह मेरा स्थायी निवास है ? यहाँ से मुझे कहाँ जाना है ? कोऽहं, सोऽहं और मोऽहं की त्रिपदी में दुनिया भर का ज्ञान समावेश पा लेता है । आज मनुष्य प्रत्येक स्थान पर 'मैं' को आगे रखता है, परन्तु मैं कौन हूँ ? इसकी ही उसे खबर नहीं होती । मैं कौन ? मैं शरीर नहीं, राग-द्वेष का कर्ता नहीं, मोह में फँसने वाला नहीं, परन्तु मैं यानी क्या-इसीका विचार करना जरूरी है ।

'हुं कोण छूं क्यांथी थयो, शुं स्वरूप छे मारुं खरूँ,
कोना संबंधे वलगणा छे, राखुं के ए परिहरूँ ?
एना विचार विवेकपूर्वक शांत भावे जो कर्या
तो सर्व आत्मिक ज्ञानना सिद्धान्त तत्त्वो अनुभव्या ।'

मैं, कौन ? धनपति ? सेठ ? मिल मालिक ? बड़ा नेता ? नहीं, यह सब नहीं । मैं हूँ सोऽहं । मैं सिद्ध स्वरूपी आत्मा हूँ । सोऽहं शब्द पर चिंतन करते हुए समझ में आता है कि जैसा अनंत सिद्धों का स्वरूप है, तत्त्व दृष्टि से वही मेरा भी स्वरूप है । मैं कर्मो का कर्ता और भोक्ता हूँ । परद्रव्य कोई भी तेरे नहीं । जबतक कर्मो से संपूर्ण मुक्ति नहीं मिलती तबतक शरीर मिलेगा ही । शरीर है तो पीड़ा है, बाधाएँ है, रोग हैं, जन्म-मरण है । शरीर के लिए अनेक पाप करने पड़ते हैं । आत्मा द्रव्यानुपेक्षा से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है । आत्मा असंख्यात प्रदेशी है, पर उसके किसी एक प्रदेश को भी कोई मार नहीं सकता, छेद नहीं सकता । गजसुकुमार के सिर पर अंगारे रखने पर

आत्मा ने क्या कहा, 'हे चेतन ! तू तो अमर है । तेरे एक भी प्रदेश को कोई जला नहीं सकता । देह के जलने से तेरी आत्मा का कुछ भी नहीं जलता ।' बंधुओं ! कितना आत्मविश्वास ! घंटी बजा-बजाकर मोक्ष नहीं मिलता । निश्चय नय की अपेक्षा से आत्मा तू सिद्ध बुद्ध निरंजन-निराकार है । सत्ता में पड़े हुए केवल ज्ञान को प्राप्त करने की क्षमता वाला, असंख्यात प्रदेशी, सुख-दु:ख का जानकार व वेद तथा सिद्ध पद प्राप्त करनेवाला है । मैं सिद्ध भगवंतों की जाति का हूँ, परन्तु अनादिकाल से कर्मों के योग से संसारी बन गया हूँ । पुरुषार्थ से कर्म का आवरण हटा दूँ तो मैं वही हूँ । इस प्रकार का कोऽहं और सोऽहं का ज्ञान हो जाने के पश्चात् मोह बेचारा कहाँ रह सकेगा ? अतः कोऽहं और सोऽहं का ज्ञान होने पर मोह की मृत्यु हो जाती है । मोहं अर्थात् मोहनीय कर्म । प्रकाश के समक्ष अंधकार टिक नहीं सकता वैसे ही ज्ञान के सामने मोह नहीं टिक सकता । ज्ञान होने के बाद मोह नचाने आये भी तो जीव उसके पंजे में नहीं फंसता । जीव इस यथार्थ को समझ ले तो दु:ख में भी सुख का अनुभव करता है ।

पति-पत्नी का प्रसंग : एक बार का प्रसंग है । एक बहन बड़ा गमगीन चेहरा लेकर बैठी थी । किसी ने पूछा, "बहन ! भगवान महावीर का शासन और सुंदर जैन धर्म प्राप्त हुआ है फिर इतनी निराशावादी क्यों हो ? तुम्हें क्या दु:ख है ?" बहन ने कहा, "संसार दु:ख से भरा हुआ है । जिसमें लोग मोहनीय कर्म के कारण घिरे रहते हैं । ज्ञानी जन कह गये हैं *'अधुवे असासयम्मि संसारम्मि दुक्खपउराए'* । यह संसार अध्रुव, अशाश्वत और दु:ख से भरा हुआ है । मुझे गुरुदेव अक्सर समझाते थे । परन्तु असर नहीं हुआ । दु:ख की खान में सुख तलाशना मेरी मूर्खता नहीं तो क्या है ? कोयले की खान से हीरा कैसे मिल सकता है ?" "अरे बहन ! तू इतनी सुंदर बात कह रही है, तो तुझे दु:ख क्या है ?" "दु:ख कहूँ तो बहुत हैं, न कहूँ तो कुछ भी नहीं ।

मेरी सासुजी, मैं, मेरे पति और दो पुत्रियाँ - हम पाँच जनों का परिवार है । मैं समृद्ध खानदानी घर की पुत्री हूँ । मुझे ऐसे गरीब घर में नहीं ब्याहते, परन्तु आज की दुनिया रूप से मोहित होती है और मैं श्याम रंग की हूँ । इसलिए इस गरीब घर में आयी । मेरे पिताजी ने स्त्री धन के रूप में काफी कुछ दिया था- उसीसे गृहस्थी चलने लगी । इसी बीच दो पुत्रियाँ मेरी गोद में आ गयी । पुरुष घर में बेकार बैठा रहे - यह उचित नहीं है - मैंने उनसे कहा : 'आप घर में बैठे रहोगे तो पाँच आदमी का खर्चा कहाँ से आयेगा ? मेरे पिता के पास पैसे काफी हैं, पर मैं रोटी- [illegible] खाकर रहूँगी लेकिन उनसे माँगने नहीं जाऊँगी ।' यह सो[illegible] मैंने [illegible]ने की चूड़ियाँ बेचकर पैसों का

इन्तजाम किया तथा पति से मुंबई जाकर नौकरी ढूँढने की विनती की । मुंबई पहुँचकर १५ दिनों में उन्हें २०० रु. महिने की नौकरी मिल गई । उनका पत्र आया और पैसे भी आये । इससे हमें खूब आनन्द हुआ । इस प्रकार दिन बीतने पर पुण्य का उदय हुआ और अच्छा सेठ मिल गया ।

साल बीतते (२) पत्र आना बंद हो गया । माता चिंतित होने लगी कि पत्र का जवाब क्यों नहीं आ रहा ? कहीं तबियत न बिगड़ी हो, नौकरी छूट न गई हो ? शंकाओं ने मन में घेरा डाल लिया । वहू ने कहाँ, 'माँ घबराओ नहीं, मैं पता करने जाऊँगी ।'

उसी समय एक पड़ोसी भाई मुंबई से लौटे । अधीर बनी हूई माता ने अपने पुत्र की कुशल पूछी । भाई ने कहा, 'स्वस्थ व कुशल है ।' माता ने राहत की साँस ली । परन्तु बहू ने पूछा, 'अगर कोई मुश्किल नहीं है तो पत्र क्यों नहीं लिखते ?' भाई ने सांत्वना देते हुए कहा कि 'काम भी कर रहे हैं और कुशलसे भी हैं, परन्तु आप लोगों को संभालने की स्थिति में नहीं हैं । तुम रोओ मत, यह कुछ रुपये रखो, काम आयेंगे ।' पर बहन ने रुपये नहीं लिये और विचारने लगी कि अवश्य दाल में कुछ काला है । स्वयं जाकर वस्तु स्थिति की जानकारी करनी चाहिए । सासु से आकर बोली कि 'मैं एक बार मुंबई जाकर आपके पुत्र के समाचार ले आती हूँ ।' मुंबई में दिये हुए पते पर पहूँची, तो दरवाजा खोलने वाली स्त्री से कहा कि 'यहाँ रहने वाले व्यक्ति मेरे पति हैं ।' इस पर स्त्री उससे नाराज होकर झगड़ने लगी कि 'वे मेरे पति हैं, तुम्हारा उनसे क्या संबंध ?' तभी पति लौटा । उसे देखते ही नयी पत्नी ने इस स्त्री की ओर संकेत करके पूछा, 'क्या यह आपकी पत्नी है ?' पति क्या जवाब देता है - 'में इसे नहीं पहचानता, घर से बाहर निकाल दो ।' उसने तुरंत उसे बाहर निकाल दिया । वह सोचने लगी, कंगन बेचकर मुंबई क्या इसीलिए भिजवाया था ? बाहर बैठी रही कि जब दफ्तर के लिए निकलेंगे तब उनसें बात करूँगी । दफ्तर जाने के लिए जब पति बाहर आये तब उसने बड़ी विनम्रता से कहा कि 'चलिए, मेरी आपको चिंता नहीं तो कोई बात नहीं पर अपनी माता का तो ख्याल कीजिए कितने कष्ट सहकर आपको पाला-पोपा, उस माता को तो याद करो ? मुझे भले ही भूल जाइए ।' पत्नी के शब्द सुनकर भी उसपर कोई असर नहीं हुआ । दो दिन राह देखती, थककर घर लौट पड़ी ।

सासु अपने पुत्र के समाचार जानने की उत्सुकता में आनन्द मग्न है । बहू ने कहा कि 'आपके पुत्र ठीक है और १०-१५ दिन में आयेंगे ।' उसे झूठ बोलना पड़ा । बहू ने सोचा कि यदि सही बात बता दूँ और सासु को कुछ हो गया तो

मैं क्या करूँगी । अब तो मुझे ही इनका संभाल रखना है । यही तो मेरे लिए आश्वासन रूप है । मेरे जवानी का रक्षक है । माता ने बहू से पूछा कि 'मेरे बेटे ने तुम्हे कुछ नहीं दिया ?' बहू ने जवाब दिया, 'वे १५ दिवस में आनेवाले हैं, इसलिए कुछ नहीं दिया ।' माता ने फिर दूसरा सवाल किया कि 'तू अकेला वहाँ से क्यों आया ? तुझे मेरे लड़के के साथ आना था ।' वहू चालाक थी। उसने कहा, 'माँ इतने लंबे समय तक मैं आपको अकेला कैसे छोड़ सकती थी ? इसलिए मैं आ गई ।' माँ को बेटे से मिलने की प्रबल इच्छा थी । क्यों न हो ? बड़े ही लाड़ प्यार से लड़के को पाला था । लेकिन लड़का जब कमाने गया तो वह माँ और सुंदर-सी पत्नी को भुलाकर पराया हो गया । इस जालिम संसार को कोटि नमस्कार ।

इस प्रकार निराश होकर बैठी थी कि आशा का एक किरण दिखा । मन में हुआ कि पति तो बिगड़ ही गया है पर नई आनेवाली स्त्री कैसी है उसकी परीक्षा लूँ । रात को कोने में बैठकर वह बहुत रोयी । अभी कितना खराब समय आया है ? चार-चार लोगों का भरण-पोषण कैसे करें ? उसकी रोने की आवाज़ सुनकर पड़ोसी आया और २०० रु. दिया और सांत्वना देते हुए कहा कि 'चाहिए तो फिर से और माँग लेना ।' बहू ने कहा कि 'मेरे लिए तो २०० रु. काफी है । यह भी मैं समय मिलने पर वापस लौटा दूँगी ।'

समय व्यतीत होता रहा । घर की दशा बिगड़ने लगी । पड़ोसी ने फिर रुपयों से मदद की । शीघ्र लौटाने की बात कहकर रुपये लिए तो मलिन वृत्ति वाला पड़ोसी कहने लगा, 'रुपये तुम्हारे ही है, जब मैं पराया नहीं तो रुपये भी पराये कैसे होंगे ?' यह सुनकर चरित्रवान स्त्री एकदम सजग हो गई और स्पष्ट शब्दों में बोली, 'मेरा जो होना होगा, पर आप अब मेरी चौखट पर कदम नहीं रखेंगे। अगर न माने तो या तो आपका सिर रहेगा या मेरा ।' वह तो सिर पर पैर रखकर भागा । सासु को पुत्र के आने का आश्वासन देते (२) छः महीने बीत गये । माँ बार-बार बेटे के आने के बारे में पूछती । अपने दुःख को भूलकर उस बहन ने सोचा कि पति ने तो मानवता खो दी है लेकिन वह नयी स्त्री कैसी है ? संभव है वह बात समझ ले । आखिर उसने एक पत्र लिखा -- 'प्रिय बहन ! तू मेरी बहन है । मैं तेरे सांसारिक सुख में ज़रा भी अड़चन डालना नहीं चाहती । परन्तु उस पुत्र के प्रेम में विलखती माता की दशा बहुत ख़राब है । अगर वे न आना चाहें तो तुझसे विनती है कि उन्हें एक बार माँ से मिलने जरूर भेज दे ।' पत्र पढ़कर नई स्त्री विचार करने लगी कि मैंने उसके साथ बुरा किया । पति को उसके व्यवहार के लिए उलाहना देकर माँ से मिलने जाने कहने

लगी । पर पति तैयार न हुआ । आखिर सुनते-सुनते उसका हृदय बदला और साल-भर बाद वह माता से मिलने आया । माँ के चरणों में गिरकर रोता रहा, कुछ कह नहीं सका । पत्नी ने नई स्त्री से कहा कि 'तुम्हारा बहुत उपकार है कि तुम पति को माँ से मिलाने ले आयी । तुम संसार-सुख में आनन्द से रहो, मैं तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करूँगी ।'

कहने का आशय यह है कि स्त्री पर कितने दुःख पड़े, परन्तु उसमें समझ और विवेक था तो दुःख में भी सुख मानती रही । दुःख में धीरज धर सकी ।

नागेश्री ने स्वाद और सुगंधित साक बनाया : नागेश्री ब्राह्मणी के यहाँ भोजन की बारी है। वह पाक-कला में बहुत कुशल है। बहुत से लोग इतनी अच्छी रसोई बनाते हैं कि आप कहते हैं ना कि स्वाद मुँह में रह गया। नागश्री ने काफी मात्रा में चारों प्रकार का आहार तैयार किया। *"अवक्खडिता एगं महं सालइयं तित्तालाउअं बहुसंभार संजुत्तं णेहावगाढं उवक्खडेइ ।"* शरद ऋतु में उत्पन्न अथवा रस से युक्त तिक्त रसवाली तुंबी (कुम्हड़ा) का साग उसने बनाया। उसमें स्वाद और सुगंध के लिए हींग, मेथी, जीरा आदि का बघार दिया था। इससे ऊपर रंग से सजा घी तैर रहा था। नागश्री ने ऐसा साग या तरकारी बनाया है। अब आगे क्या होगा, वह भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक १४

श्रावक शुक्ल १, शुक्रवार | दिनांक : १९-७-७४

शान्ति की चमक

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत करुणा के सागर, करुणा के जादूगर, घनघाती कर्मों की घटा को बिखेरने वाले भगवंत की शाश्वत वाणी को सिद्धान्त कहते है । भव्य जीवों के आत्म-उद्धार के लिए भगवान का फरमान है कि, "हे आत्माओं ! संसार के राग रंग से भयभीत बनो । संसार और विषयों के राग में यदि रंग गये तो दुर्गति में जाना पड़ेगा ।" अतः वीतराग वाणी और भगवान के वचनामृतों से राग करो, पर संसार और विषय के प्रति राग भाव न रखना । यह राग जीव को दुर्गति में ले जाएगा । इसलिए महापुरुषों का कहना है कि 'संसार के रंग-राग छोड़िए ।' जब तक राग की होली नहीं होगी तबतक आत्मा की उन्नति भी नहीं हो सकती ।

ज्यां लगी हैयुं खेले रागनी होली, फीकी फीकी लागे तारी त्यागनी होली,
दुनियानी संगे, रमु रंगे उछरंगे
हैयाने ठोकर ज्यारे वागे त्यारे तारूं नाम प्यारूं लागे...

जबतक आत्मा राग की होली खेल रहा है तबतक उसे त्याग, वैराग्य की बातें फीकी लगती हैं । क्योंकि मिथ्यादृष्टि है । जब जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है तब उसके प्रभाव से आत्मा में इतना निश्चय हो जाता है कि कर्मों को बाँधने वाला भी मैं हूँ और कर्म बंधन तोड़ने वाला भी मैं ही हूँ । सम्यक्दृष्टि वाले दृढ़ श्रावक को देवलोक से उतरकर देव भी डिगाने आयें तो उसे डिगा नहीं सकते । मोक्ष जाने के तीन मार्ग ज्ञानियों ने बताए हैं -

'सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः!'

अर्थात् सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र - मोक्ष जाने के यही तीन मार्ग हैं । इन तीनों की प्राप्ति मानव जन्म में ही संभव है । इसीसे मोक्ष मिलता है । यह सूत्र तो आप सभीको कंठस्थ हो गया है - बोलते भी हैं । परन्तु विचार कीजिए, क्या सिर्फ बोलने से मोक्ष मिलेगा ? यदि यह सूत्र सीखकर बोलते रहने से मोक्ष मिल जाता हो तो सभी से कहूँ । लेकिन वाणी से एक बार क्या अनेक बार उच्चारण करने पर भी, जबतक आचरण में नहीं उतरता तबतक कल्याण नहीं हो सकता । मोक्ष के उपाय जान लेने से, मान लेने से मोक्ष प्राप्त नहीं हो जाता । मोक्ष के उपाय जानना जरूरी है, मानना जरूरी है और अंत में आचरण करना भी जरूरी है । डोक्टर दर्द का निदान करता है, जाँच करके दवा देता है। यह दवा बिना पीये रोग मिटेगा क्या ? (श्रोताओं में से आवाज : 'नहीं मिटेगा') बहनें स्वादिष्ट रसोई पकाकर थाली में परोस दें, परन्तु मुँह में कौर डालकर, चबाकर, गले के नीचे उतारने से ही भूख मिटेगी ना ? इसी प्रकार भगवंत ने मोक्ष में जाने के तीन मार्ग बताये हैं, इन्हे अपनाना हमारे हाथ में है ।

दूसरी बात यह है कि मोक्ष में जाने के लिए सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों चाहिए । जहाँ सम्यक्चारित्र होता है वहाँ सम्यक्ज्ञान-दर्शन भी होता है । जिन आत्माओं ने मोक्ष प्राप्त किया है, उन्होंने अंतिम अवस्था में चारित्र अवश्य अंगीकार किया है । द्रव्य चारित्र न भी लिया हो तो भाव चारित्र तो आया ही है । जरा सोचिए, मोक्ष में जाने के लिए क्या करना चाहिए ? (श्रोताओं में से आवाज : 'चारित्र ग्रहण करना चाहिए ।') सिर्फ बातें करनी है ना ?

एक तोता पिंजड़े में बैठा-बैठा बोलता रहता - 'बिल्ली आई उड़ जाऊँ, बिल्ली आई उड़ जाऊँ ।' उसके मालिक ने उसे यही बोलना सिखाया था, इसलिए वह यही वाक्य बोलता रहता था । मालिक सोचता था कि मेरा तोता जागृत, सावधान है । उधर बिल्ली रोज आती और तोते के बोल सुनती । एक दिन उसने सोचा, 'जरा

आजमा के तो देखूँ ।' संयोग से पिंजड़ा खुला हुआ था । बिल्ली ने झपट्टा मारा और तोते को पकड़ लिया । तोता बिल्ली के मुँह में चला गया फिर भी उसकी वही रटन जारी रही, परन्तु आचरण नहीं किया । इसी प्रकार सिर्फ मुँह से बातें करते रहेंगे, उन्हें आचरण में नहीं लायेंगे तो चतुर्गति के चक्र में भटकते रह जायेंगे । भगवंत ने इससे बचने के लिए कहा है कि सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र तीनों के संयोग से मोक्ष में जाना निश्चित हो जाता है । जिसके जीवन में सम्यक्‌चारित्र होता है उसमें सम्यक्‌दर्शन और ज्ञान भी होता है । यदि सम्यक्‌दर्शन और सम्यक्‌ज्ञान न हो तो समझना चाहिए कि उसका चारित्र भी सम्यक्‌चारित्र नहीं है । सम्यक्‌दर्शन और ज्ञान प्राप्त करनेवाला आत्मा सम्यक्‌चारित्र पाने की कोशिश करता है । देशविरति पालने वाला श्रावक सर्वविरति के लिए प्रयत्न करता है । सर्वविरति रूप धर्म मनुष्य जन्म के अतिरिक्त कही भी प्राप्त नहीं हो सकता । 'उत्तराध्ययन सूत्र' में कहा गया है - *'दुल्लहे खलु माणुसे भवे'* अर्थात्‌ दुनिया में मानव भव दुर्लभ है । मानव जन्म जैसा कोई उत्तम जन्म नहीं है । एक ओर प्रभु कहते हैं, *'जन्मदुक्खं'* जन्म दुःख का कारण है और दूसरी ओर कहते है मानव जन्म उत्तम है । भला इसका क्या कारण है ? भले ही जन्म दुःख का निमित्त हो पर यही जन्म लेकर अगर सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान और चारित्र प्राप्त हो जाए तो दुःख का कारण जन्म भी उत्तम बन जाता है, क्योंकि वह मोक्ष पहुँचाता है ।

देवलोक के एकांत सुख भोगते हुए भी सम्यक्‌त्वी देव चारित्र के लिए बेचैन रहता है और सोचता रहता है कि यहाँ से कब छुटकारा पाऊँ ? कब मानव जन्म प्राप्तकर सर्वविरति रूप चारित्र अंगीकार करूँ ! क्योंकि देवलोक में अव्रत का बहुत जोर रहता है । यह ऐसा भव है जहाँ देशव्रत या सर्वव्रत ग्रहण नहीं किया जा सकता । एक नवकारसी का प्रत्याख्यान (पच्चक्‌खाण) तक नहीं कर सकता । समकिती देव विचार करते हैं :

आवो अवसर अमने क्यारे आवशे,
क्यारे पामीशुं आर्य कुल अवतार जो
सर्व दुःखोनुं अंत करवानुं स्थान ज्यां,
जैन शासनमां लेशुं संयमभार जो... आवो अवसर...

हे प्रभु ! रहने के लिए महल के बदले छोटी-सी झोंपड़ी मिले, खाने के लिए बाजरे की मोटी रोटी ही मिले, पर मेरा जन्म वहाँ पर हो जहाँ त्याग-वैराग्य की बातें होती हों, जहाँ जैन धर्म हो । जहाँ अपार लक्ष्मी हो, राजमहल जैसा निवास हो, रोज मिष्टान्नों की मेजबानी होती हो, पर वहाँ जैन धर्म न हो, वीतराग वचनों पर श्रद्धा न हो, वहाँ मेरा जन्म न हो । मिथ्यादृष्टि देवों को जब देवलोक से च्यवन करना पड़ता है तो वे बहुत दुःखी

होते हैं । देवलोक का वैभव-विलास अपार और देव का शरीर भी कैसा ? उनके शरीर में रक्त-मांस-चर्बी नहीं होती, बचपन, युवावस्था, बुढ़ापा या रोग नहीं आता । मिथ्यादृष्टि और समकितदृष्टि देवों में इतना अंतर आ जाता है । मिथ्यादृष्टि को देवलोक से च्यवन करते समय बहुत दुःख होता है ।

उदाहरणस्वरूप करोड़पति सेठ एक अन्य सेठ के यहाँ दावत में गये । श्रीमंत सेठ ने बड़े स्वागत-सत्कार के साथ मिष्ठान्न-पकवान का भोजन करवाया । उसी समय एक अन्य व्यक्ति आया, उसे छाछ-रोटी का भोजन दिया गया । वह व्यक्ति भी पहले करोड़पति था, पर पाप के उदय से अब बहुत गरीब हो गया था । इसीलिए उसके साथ ऐसा व्यवहार किया गया । उसकी आँखें भर आयी और दिल में कितनी पीड़ा हुई होगी । बिल्कुल इसी प्रकार महान सुख में डूबे देव को देवलोक के सुख के समक्ष मनुष्य का सुख छाछ-रोटी जैसा लगता है । इसीलिए वह दुःखी होता है कि कहाँ मेरा देवलोक । क्या पता अब मैं कहाँ जाऊँगा ? परन्तु यदि सम्यक्दृष्टि हो तो मानेगा कि भले ही मुझे छाछ और रोटी मिले, कम से कम जो देवलोक में नहीं मिला, वह तो यहाँ प्राप्त हुआ ! देवलोक के वैभव की स्थिति समझाते हुए कहा गया है कि मृत्युलोक की इस दुनिया की तमाम संपत्ति एकत्रित करें । अरे ! आप जिस अमरिका को सोने की खान कहते हैं, उस देश और दुनिया के सभी देशों की संपत्ति इकट्ठी कर लें तो वह, देव के पैर पोंछने में जो रत्न जड़े होते है, उनके तुल्य भी नहीं होगी । फिर भी सम्यक्दृष्टि आत्मा को वे रत्न कंकड़ प्रतीत होते हैं । क्योंकि वहाँ सुख की बहुतायत है, पर व्रत-पच्चक्खाण नहीं है । आज बहुत से लोग कहते हैं कि प्रत्याख्यान की क्या आवश्यकता है ? (श्रोताओं में से आवाज : 'मन मजबूत है तो सब कुछ है ।') यदि प्रत्याख्यान की आवश्यकता न होती तो सिद्धान्त में पृच्छा न होती कि हे भगवान ! *'पच्चक्खाणेणं भंते जीवे किं जणयइ ?'* पच्चक्खाण की आवश्यकता न होती तो चार ज्ञान और चौदह पूर्व के ज्ञानी यह प्रश्न नहीं पूछते । अतः पच्चक्खाण की जरूरत है । किस प्रकार ? यह देखिए ।

आपके परिवार के एक व्यक्ति हैं जिन्हें आप पचास हजार रुपये देते हैं तो कुछ लिखा-पढी करते हैं या नहीं ? (श्रोताओं में से आवाज : 'बिल्कुल करते हैं') आप जिसे पैसे देते है वह व्यक्ति प्रामाणिक और विश्वसनीय हैं फिर लिखा-पढ़ी क्यों करते हैं ? यहाँ आप समझते है कि लिखा-पढ़ी रहेगी तो उसे चुकाने की चिंता रहेगी । लिखा-पढ़ी होने से पैसा सलामत रहेगा, लेनदार को चुकाने का ख्याल रहेगा । पैसा आपके साथ आयेगा नहीं, जाते समय सब छोड़कर जाना होगा । जो पैसा दिया है उसे वापस पाने तक जीवित रहेंगे या नहीं - यह पता नहीं है फिर भी पक्की लिखा-पढ़ी करवाते हैं । पच्चक्खाण भी ऐसी ही लिखा-पढ़ी है अर्थात्

जो पच्चक्खाण ले लिया उसे पालन करना पड़ता है । प्रत्याख्याण बिना क्रिया अकाम रहती है और प्रत्याख्याण सहित क्रिया सकाम । क्योंकि वीतराग वाणी के प्रति श्रद्धा होने से प्रत्याख्याण में आये । जिनकी श्रद्धा नहीं है वे तो यही कहेंगे कि हम प्रत्याख्याण को नहीं मानते । वाणी से इतना सा कहा पर कर्म कितने बँधेंगे- जीव को इसका ख्याल नहीं । अरे ! मन में पाप नहीं, छल-कपट नहीं, फक्त मजाक करते हैं । वह मजाक जीव को कहाँ ले जायेगा, यह भी पता नहीं है । इसलिए समझकर आत्मा की ओर मुड़ो । किये हुए कर्म जीव को अवश्य भोगने पड़ते है ।

कृष्ण महाराज की पत्नी रुक्मणी ने अपने पिछले भव में पाप करने या मारने की बुद्धि से नहीं बल्कि सहज जिज्ञासा वश मोर के अंडे को अपने हाथ में पकड़ा । हाथ में ताजी लगी हुई मेंहदी थी जिसकी छाप अंडे में लग गयी । अंडे को कोई तकलीफ पहुँचाना उनकी मंशा नहीं थी । मेंहदी के रंग से अंडे का रंग बदल गया । रुक्मणी तो अपनी उत्सुकता पूर्णकर अंडे को उसकी जगह पर रख आई, परन्तु मोरनी ने सोचा, यह उसका अंडा नहीं है क्योंकि उसका रंग अलग था, और बारह घड़ी तक उसे सेया नहीं । अचानक बरसात होने से अंडे में लगी मेंहदी घुल गई और मोरनी ने पहचाना कि यह तो मेरा ही अंडा है । रुक्मणी के जीव का भाव माता-पुत्र का वियोग करना नहीं था । सहज जिज्ञासा और मजाक में किया गया यह कृत्य उसको इस तरह फला कि उसने पुत्र को जन्म दिया और देव उसे उठाकर ले गया और माता-पुत्र को बारह वर्ष का वियोग सहना पड़ा । मोरनी और अंडे को वियुक्त करने का भाव न था, सहज मजाक में जीव को दंडित होना पड़ा तो जो जीव जानबूझकर ऐसे कर्म करते है उन्हें भोगना पड़े तो क्या नयी बात है ?

इस संसार-प्रवाह में रात-दिन मन-वचन और काया के व्यापार चल रहे है । इन तीन दंडों से जीव दंडित होता है । दंडक नाम किसलिए दिया गया है ? जिसमें जीव दंडित होता रहता है - कभी उसका अंत नहीं आता । एक गति से दूसरी गति में, दूसरी से तीसरी गति में इस तरह अनादिकाल से दंडित हो रहा है । अतः जो मेरा है वह सच्चा है की भावना छोड़कर जो सच्चा है वह मेरा है का भाव ग्रहण कीजिए । केवली भगवान के वचन सत्य है - "यह श्रद्धा होने पर संसार का परिभ्रमण थमे विना नहीं रहेगा ।"

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री का कड़वा साग के बारे में मनोमंथन : 'ज्ञाताजी सूत्र' के अधिकार में नागेश्री ब्राह्मणी के यहाँ भोजन की बारी आयी है । संसार में यश प्राप्ति के लिए नागेश्री विचार करती है कि 'मैं ऐसा भोजन बनाऊँ, ऐसे पकवान पेश करूँ कि मेरी देवरानियाँ चकित रह जाएँ ।' ऐसा सोचकर विपुल रसोई बना रही है ।

शास्त्रकार यह वर्णन नहीं करते कि वह क्या-क्या पका रही है, सिर्फ उसका वर्ण
करते हैं जिसके बनने से अध्ययन की रचना हुई अर्थात् उस साग-सब्जी को ब
बताते हैं । पहले लोगों की वृत्ति, आज के जैसी संकुचित नहीं होती थी, इसलि
रसोई बनाते थे तो घर-भर के लिए बहुत होता था । (श्रोताओं में से आवाज
'उस समय इतनी कमी नहीं थी ।') आज संसारी जीवों को कितना दुःख है । व
सुखी नहीं दिखता । सच्चा सुखी कौन है ?

"नवि सुहि देवता देवलोए, नवि सुही पुढवी पइराया ।
नवि सुहि सेठ सेणावइए, एगंत सुही मुणी वीतरागी ।"

अर्थात् चक्रवर्ती, सेठ, सेनापति और देवलोक का इन्द्र भी सुखी नहीं है ।
भगवान की आज्ञा में विचरते संत सच्चे सुखी हैं ।

नागेश्री ब्राह्मणी ने बड़े पतीले में भरकर विपुल साग बनाया । साग का
था तुंबी । आज की आपकी भाषा में कहिए तो कद्दू या दूधी । काकड़ी, त
कुम्हड़ा आदि बहुत बार कड़वी भी निकल आती है । उस तुंबी के साग में
सुगंधित मसाले, घी, हींग-जीरा आदि खुले हाथों से उसने डाला था । साग
महक आने लगी पर सुगंध अच्छी नहीं आ रही थी, इसलिए उसने एक बूँद नि
कर चखा । चखते ही समझ में आ गया कि यह कड़वा कुम्हड़ा है, खाने य
नहीं है । अभक्ष्य और त्याग देने योग्य है । एक बूँद चखने से जो कड़वाहट
में भर गई, शक्कर खाने पर भी कड़वापन दूर न हुआ, इतनी भयंकर क
सब्जी । उसने विचार करते हुए अपने आप से कहना प्रारंभ किया -

'धिरत्थुणं मम नागसिरी, अहन्नाए, अपुन्नाए, दुभग
दुभगसत्ताए दुभगनिंबोलियाए ।' मुझ नागेश्री को धिक्कार है । मैं अ
और पुण्यहीन हूँ । मैं लोगों द्वारा आदर प्राप्त करने योग्य नहीं । मेरे बल को धि
है जो व्यर्थ है । साग तैयार करने में मैंने जितना श्रम किया सब व्यर्थ गया ।
नीम की निंबोली लोगों में आदर प्राप्त करने योग्य नहीं मानी जाती, वैसे
भी लोगों में आदर प्राप्त करने योग्य नहीं रह गई । एक साग बिगड़ा तो उसे कि
पश्चात्ताप होता है । मैंने शरदकाल की सरस तुंबी के फल का हींग, जीरा
द्रव्यों से युक्त घी आदि सब मसालों से सुंदर साग बनाया । इसे तैयार कर
इतने मसाले और घी आदि का भी दुर्व्यय किया । यहाँ हमें इतना समझना
सब्जी खराब हो जाने का कितना आघात लगता है कि वह अपने को इतनी
मानने लगती है । परन्तु जब पाप करेगी तब अपने को दुर्भागी, अभागी नहीं म
। अब नागेश्री का विचार किस ओर मुड़ेगा और क्या होगा, आदिभाव अवस
। आज से व्याख्यान के पश्चात् एक चरित्र प्रारंभ कर रही हूँ ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

कनकरथ और रुक्मणी : चरित्र ऐसे होते हैं जिन्हें सुनने पर जीव में वैराग्य भाव जागृत होता है। जगत में कोई जीव ऐसा नहीं है जो संसार से संयुक्त न रहा हो। परन्तु जो संसार से बाहर निकलते हैं, अपना सिर देकर भी शील की रक्षा करते हैं, ऐसे जीवों का चरित्र स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता है। यह चरित्र करुण रस से भरा हुआ है।

जंबु भरत रथमर्दन पुर में, हेमरथ महिपाल,
सुयशा रानी सुखदाई, सुंदर रूप रसाल
यह चरित्र रसीला सुनिए श्रोताजन पूर्ण प्रेम से (२)

जंबुद्वीप के भरत क्षेत्र के मध्यखंड में रथमर्दनपुर नामक नगर था। वहाँ हेमरथ नाम के राजा राज्य करते थे। राजा किसे कहते हैं ? जो प्रजा का हितचिंतक हो, प्रजा के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी हो, उसे राजा कहा जाता है। राजा न्याय-नीति से राज्य करते थे इसलिए प्रजा सुखी, संतोषी थी। रात्रि के समय, वेश बदलकर, राजा अपने राज्य की प्रजा का सुख-दुःख जानने के लिए निकलते थे। हेमरथ राजा के सुयशा नाम की रानी थी। इन दोनों की जोड़ी सांसारिक और धार्मिक सभी दृष्टि से सुशोभित थी। कनकरथ उनका पुत्र है, जो बहुत शूरवीर है। संसार में उसकी जैसी शूरता है वैसी ही आत्मा के लिए भी शूर हैं। कहावत है **'पूत के पाँव पालने में।'** जन्म के समय यह रोता नहीं, कभी रोया तो धर्मकथा सुनाने पर शांत हो जाता। उसकी माता 'सो जा बेटा' कहकर लोरी नहीं गाती बल्कि 'जाग, बेटा जाग' कहकर सुंदर संस्कारों का सिंचन करती थी। कोई साधू-संत घर में पधारे तो बालक प्रसन्न हो जाता। समय जाते कनकरथ बड़ा होता है, हर तरह की विद्या और कला में पारंगत बन जाता है। परन्तु कुमार का मानना था कि जबतक धर्म-कला नहीं आए तबतक इन बहत्तर कलाओं का मूल्य मिट्टी के बराबर है। अतः राजा ने कनकरथ को धर्मगुरु के पास अध्ययन करने भेजा। कुमार धर्म-कला सीखता है। वह समझता है कि धर्म-कला मेरे जीवन को तिराने वाली नौका बनेगी। धर्म को समझने वाला आत्मा संसार में रहते हुए भी चिकने कर्म नहीं बाँधता। कनकरथ कुमार युवावस्था में कदम रख चुका है।

दूसरी ओर कंबेरी नगरी है जो संगीत विद्या में बहुत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित है। उसके चर्मवाद्य, काष्ठवाद्य, कास्यवाद्य, तंतुवाद्य बनाने वाले कारीगरों से इस नगरी की ख्याति दूर दूर तक थी।

'कंबेरी नगरी नृप कृतब्रह्मा, लवणसुंदरी नार,
पुत्री नाम रुक्मणी कहीए, तनदामन अनुसार... यह चरित्र...

कंबेरी नगरी में कृतब्रह्म नामक राजा हैं उनकी रानी का नाम लवणसुंदरी है। राजा अपने परिवार के साथ नगरी के मध्य भाग में रहते थे । राजाओं को अपना निवास जनता के बीच में रखना चाहिए ताकि वे प्रजा के सुख-दुःख से परिचित हो सकें । कृतब्रह्म राजा जनता से दूर न रहने की भावना से सपरिवार प्रजा के मध्य रहते थे । राजभवन के द्वार प्रजा के लिए सदैव खुले रहते थे । कृतब्रह्म राजा हर प्रकार से सुखी और समृद्ध थे । उनका राज्य विशाल नहीं था और न ही अधिक भूमि प्राप्त करने का लोभ था । उनके पास संतोष रूपी धन पुष्कल मात्रा में था । जहाँ संतोष होता है वहाँ प्रजा को कोई कमी नहीं होती ।

राजा और रानी के एक सुंदर कन्या थी रुक्मणी । अप्सरा के समान रूपवती और चौंसठ कलाओं में निष्णात । यौवन में पदार्पण करने वाली पुत्री के माता-पिता उसके भविष्य की चिंता करने लगते है । उस जमाने में पुत्री बारह वर्ष की होने के पश्चात् पिता के महल की ओर नहीं जाया करती थी । रुक्मणी अठारह वर्ष की हो गई तो माता ने उसे सोलह शृंगार से सजाकर पिता को वंदन करने भेजा । पिता पुत्री को देखकर चकित रह गये कि मेरी पुत्री इतनी बड़ी हो गई। अब तो इसके लिए योग्य वर की तलाश करनी चाहिए । राजा अब प्रधान को बुलायेंगे, फिर क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक १५

श्रावण शुक्ल २, शनिवार | दिनांक : २०-७-७४

मानव भव का मूल्य

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

त्रिलोकीनाथ, कृपासिंधु, विश्वविजेता भगवंत ने जगत के जीवों को उपदेश प्रदान करते हुए फ़रमाया कि "इस संसार में जीव को सर्वाधिक दुर्लभ है मानव भव ।" जिसके पीछे आप रात-दिन दौड़ रहे है उसकी महत्ता नहीं बताई, परन्तु महत्ता और दुर्लभता बताई है मानव भव की । एक ओर भगवान यह भी फ़रमाते है कि "जन्म दुःख का कारण है।" चार गति में से किसी भी गति में जन्म लेना दुःख का कारण है तो फिर मानव भव की प्रशंसा क्यों की ? क्योंकि मानव जन्म से अजन्म दशा प्राप्त की जा सकती है। मनुष्य भव जन्म, जरा और मरण के दुःखों को दूर करने की जड़ी-बूटी है । दुःख के इन

कारणों को दूर करने के बदले इन्हीं में वृद्धि करेंगे तो यह जन्म प्रशंसनीय नहीं। मोहनीय कर्म की सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की स्थिति और शेष सात कर्मों में से किसीकी तीस और किसीकी बीस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की स्थिति को एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम में ला देने की ताकत, शक्ति मनुष्य भव में है। परन्तु यह तभी संभव है जब समकित प्राप्त हो, अन्यथा नहीं। क्षायक समकित एक बार आने पर जाता नहीं, इस क्षायक समकित को प्राप्त करने की योग्यता मानव भव में है। मनुष्य जन्म दुःख का निमित्त होने पर भी, मनुष्य जन्म प्राप्त आत्मा यदि चाहे तो अपने जन्म को सुलब्ध बना सकता है, यानी जन्म को महासुख का निमित्त बना सकता है। परन्तु यह कब संभव हो सकता है? जब आत्मा सम्यक्दर्शन से शुद्ध ज्ञान और चारित्र प्राप्त करे तब।

हमें सम्यक्दर्शन पाना है। बातें करने से वह नहीं मिलेगा। सम्यक्दर्शन पाने के लिए पहले क्या करना चाहिए? आप व्यापार करने के पहले उसकी जानकारी प्राप्त करते हैं। आपका पुत्र इंजिनियर हो तो उसे भी प्रशिक्षण दिलवाने के बाद ही स्वतंत्र धंधा करने देते हैं, सीधे व्यवसाय में नहीं लगा देते। जरा सोचिए कि मानव भव की महत्ता किस लिए है? अनुत्तर विमान के देव एकांत समकिती होते हैं फिर भी प्रभु ने यह नहीं कहा कि 'देव भव प्राप्त होना दुर्लभ है' बल्कि कहा '*दुल्लहे खलु माणुसे भवे।*' अन्य भवों में केवल ज्ञान पाने की योग्यता नहीं मिली थी, अब वह प्राप्त करना है।

अभी आपके समक्ष महासतीजी ने बताया कि भृगु पुरोहित और यशा भार्या अपने दोनों लाड़ले पुत्रों के लिए अधीर व चिंतित रहते हैं। क्योंकि उन्हें ज्योतिषी ने कहा था कि 'दो बेटे होंगे और वे बालपन में हीं साधू बन जायेंगे।' यदि यह सच हो जाये तो! 'दो पुत्र होंगे' - सुनकर अच्छा लगा, मन प्रफुल्लित हो उठा। जब पुत्रों का जन्म हुआ, तब भी लगा, 'वाह ज्योतिषी! आपका सब सच हुआ।' साथ में यह विचार न आया कि 'यदि आपके कथनानुसार पुत्र दीक्षा लेंगे तो मैं कितनी भाग्यशाली बनूँगी?' उसे यह ज्ञात नहीं था देव ज्योतिषी के रूप में आये थे। पुत्रों के दीक्षा लेने की बात उन्हें अच्छी नहीं लगी, इसका कारण मोह है।

बंधुओं! यह संसार कीचड़ से भरा हुआ है जिसमें राग-द्वेष के फव्वारे उड़ रहे हैं। जो आपको सूखा रहने नहीं देते। जीव को संसार जितना प्रिय है, संसार में जितनी श्रद्धा है, उतनी आत्मा में नहीं। यदि सम्यक्दर्शन प्राप्त करना है तो सम्यक्त्व के छः स्थानों का विचार करना पड़ेगा। सर्वप्रथम आत्मा है। आत्मा है तो नित्यानित्य है। नास्तिक को छोड़कर जितने आस्तिक जीव हैं वे मानते है कि आत्मा है। आत्मा का अस्तित्व मानने के पश्चात् आत्मा कैसा है, इस बारे में मतभेद है। नित्यानित्य स्वरूप के संबंध में अधिकांश लोग भ्रम में पड़े हैं। जो एकान्त नित्यवादी है वे आत्मा को एकान्त नित्य

मानते हैं, अनित्य नहीं मानते । कितने ही आत्मा को एकान्त अनित्य मानते हैं । अनित्य होने से पाप-पुण्य करने की जरूरत नहीं, क्योंकि आत्मा एक क्षण में है तो दूसरे क्षण में नहीं है – तो फिर किये हुए पाप किसके नाम में जमा करेंगे ? जिन्हें मोक्ष की अभिलाषा है, जो मोक्षगामी आत्मा है, जिन्हें केवली के वचनों पर यथार्थ श्रद्धा है वे तो मानते हैं कि आत्मा द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य । आत्मा है और वह कर्मो का कर्ता और भोक्ता है । कर्म बाँधने वाला और कर्मबँधन तोड़ने वाला आत्मा ही है । जो एकान्तवादी एक-एक नय के आधार पर बात करते हैं, उनका परिचय या संग करने से आपका सम्यक्त्व दूषित होगा । यदि इस संग को न छोड़े तो फिर सम्यक्त्व नष्ट हो जायेगा । घर की दौलत नष्ट न हो जाय, उसकी रक्षा के लिए चाबी लिये घूमते हैं । यह आत्मा रूपी घर लूट रहा है, इसकी चिंता है क्या ? इसकी जानकारी है क्या ? सामायिक करते हुए कैसे भाव आते हैं ? सामायिक में आनन्द का अनुभव होता है भला ? आप लोगस्स में क्या कहते हैं ?

"आरुग्ग बोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमंदितु, चंदेसुनिम्मलयरा, आईचेसु अहियं पयासयरा, सागरवर गंभीरा, सिद्धासिद्धिं मम दिसन्तु" इतने सारे शब्दों में अंतिम शब्द क्या कहते हैं ? कि मुझे सिद्धि पद प्रदान करो । लेकिन वहाँ पहुँचने के लिए '*बोहिलाभं*' यानी सम्यक्त्व की पहले आवश्यकता है । मिथ्यात्व की ग्रंथि कैसे टूटती है ? जबतक मिथ्यात्व नहीं जाता धर्म के प्रति रुचि होना मुश्किल है । गाढ़ा मिथ्यात्व जीव को धर्म के प्रति रुचि नहीं जागने देता । सच्ची श्रद्धा में जहर भर देगा । पाखंडी का धर्म प्रिय लगेगा । फिर भी यदि आत्मा में यह भाव आता हो कि 'अहो वीतराग प्रभु ! ऐसा उत्तम आपका शासन मिला, अनुपम धर्म मिला, आपके वचनामृत पान करने का अवसर मिला, फिर भी मैं कुछ नहीं कर पाता । तो समझिए कि अभी भाग्यसितारा जागृत है, नहीं समझे तो दुर्गति के गड्ढे में धकेल दिये जायेंगे' । जलते नाग-नागिन को नवकार मंत्र पर श्रद्धा हुई तो देव और देवी बने । चंडकौशिक को भगवान के एक वचन पर श्रद्धा हुई तो प्रतिबोधित होकर, मरकर देव बना । जब जीव को जन्म-मरण खटकेगा तब लगेगा कि मुझे निर्मल सम्यक्त्व प्राप्त करना है और पाकर उसे सहेजना है । इसके लिए आत्मा को कितनी सावधानी रखनी पड़ेगी ! हर क्षण जागृत रहना पड़ेगा । जीवन में धर्म को चमकता रखने के लिए कुमारपाल राजा का दृष्टांत अद्भुत है ।

कुमारपाल राजा का प्रसंग : कुमारपाल राजा अठारह देश के राजा थे । श्रावक धर्म प्राप्त करने के पश्चात् का प्रसंग है । एक बार कुमारपाल राजा की बहन और बहनोई अर्णोराज चौपड़ खेलते हुए पासा फेंक रहे थे । खेलते हुए अर्णोराज गोटी के बदले कहते हैं **'मार-मार मुंडीया को मार'** । तब कुमारपाल राजा की बहन उन्हें टोकते हुए कहती हैं कि "आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? मुंडियां । शब्द से साधू की मसखरी होती

है। अतः ऐसा न कहें और जो कहा उसके लिए माफी माँगें। ये मुंडिया नहीं हैं। इन्होंने केश के साथ जन्म, जरा और मरण का भी लुंचन किया है, भविष्य में मोक्ष जाने वाले जीव हैं। मुनि को मुंडियो कहकर जघन्य दो हजार करोड़ और उत्कृष्ट नौ हजार करोड़ साधू-साध्वी की घोर अशातना की है। संत की अशातना धर्म की अशातना है और धर्म की अशातना से देव-गुरु-धर्म की अशातना होती है, अतः आप क्षमा माँगिए।" किसी भी संप्रदाय के संत हों, परन्तु जो पाँच महाव्रत विशुद्ध पालते हों, वे मेरे भाई के गुरु हैं। मेरा भाई सब कुछ सहन करेगा, परंतु अपने गुरु की अशातना नहीं सहन करेगा। यह है सम्यक्त्व का लक्षण! यदि आपमें इतना जोश हो तो जहाँ देव-गुरु-धर्म के प्रति अभद्र बात कही जाए, आप भी सहन नहीं कर सकेंगे। है इतना जोश!

भगवान ने शकडाल के मत के अनुसार उससे पूछा, "हे शकडाल! तुम्हारे सामने तुम्हारी पत्नी के साथ कोई जार पुरुष व्यभिचार करे तो उसे तुम सहन कर लोगे?" "अरे भगवान! यह क्या कहते हैं? वैसे पुरुष को सहन क्या करना, उसे जीवित न छोड़ूँ।" "अब तुझे समझ में आया? यहाँ तुम यह क्यों नहीं कहते कि जो जो होना था हुआ या हो रहा है। एकान्त नियतिवाद के अनुसार मटका फूटने पर तुमने कहा कि फूटना था तो फूटा, सभी में जो होना हैं वह हुआ – यह मान रहे हो। फिर पत्नी के साथ परपुरुष के व्यभिचार को भी यही मान लो कि जो होना था हुआ। यहाँ तो तुम नहीं मान रहे हो!" प्रभु के इन वचनों से शकडाल ने अपना नियतिवाद छोड़कर प्रभु का मत स्वीकार किया। ऐसे श्रावकों को जब सही मार्गदर्शन करनेवाला मिल जाता तो वे जाग उठते हैं। शकडाल राह पर आ गया और प्रभु चरणों में नत हो गया। गोशालक को जब यह सूचना मिली कि मेरा श्रावक बदल गया तो वह वहाँ आया। यह वार्ता तो बहुत लंबी और सुंदर है। परन्तु शकडाल ने गोशालक से कह दिया कि "अब मेरे जीवनरथ के सारथी सच्चे भगवान मिल गये हैं – अब तुम्हारे मत में मुझे नहीं आना है।" साथ ही यह भी कहा, "आप मेरे गुरु थे इस नाते से मैं आपको स्थान या गोचरी का लाभ नहीं दे रहा हूँ बल्कि अनुकंपा भाव से दे रहा हूँ। अनुकंपा मानव का कर्तव्य है।" कितनी अटूट श्रद्धा!

आज दुनिया में भगवान कहलाने वाले अनेक घूम रहे हैं। पर आपको अपने भगवान महावीर पर श्रद्धा है कि नहीं? मेरे भगवान ने भगवान बनने के लिए असीम संपत्ति का त्याग किया। सब कुछ छोड़कर ही भगवान बना जा सकता है। भगवान के प्रति श्रद्धा हो तो तुलना कीजिए, अपने भगवान और आज के भगवान नाम रखने वाले भगवानों से।

कुमारपाल की बहन अपने पति से कहती है कि "यदि आप हमारे गुरु को मुंडिया कहेंगे तो मेरा भाई चुप नहीं बैठेगा।" राजा क्रोधित होकर कहते हैं, "क्या कर लेगा तुम्हारा भाई? गद्दी पर तो उसे मैंने बैठाया।" रानी बोली, "आपको देखना है कि क्या कर

सकता है, तो देखिए ।" साधू की मजाक बनाना रानी को सहन नहीं हुआ तो वहाँ से उठकर भाई के पास पहुँची और भाई से सारी बातें बताईं । उस समय उसने यह भी ख्याल नहीं किया कि भाई को कहने से पति और भाई में लड़ाई होगी और लड़ाई में कदाचित पति की मृत्यु हो तो मैं विधवा हो जाऊँगी । बस, गुरु को अपशब्द कहा जाये - यह सहन नहीं करूँगी । गुरु के प्रति कैसा भक्तिभाव और धर्म का कैसा जनून ! मीराबाई की गुरु के प्रति कैसी गहरी भक्ति थी ! राणाजी ने मीरा को दुःखी करवाने का कोई उपाय नहीं छोड़ा । उन्होंने जहर का प्याला भेजा, टोकरी में फूलों के स्थान पर सर्प भिजवाया । परन्तु मीरा की प्रभु-श्रद्धा अगाध थी । रात-दिन प्रभु भक्ति में लीन रहती थी । इसी श्रद्धा के बल से जहर अमृत बन गया और सर्प पुष्पमाला में बदल गया । मेरे महावीर के श्रावक कैसे होते हैं ? दृढ धर्मी और प्रिय धर्मी । जिन्हें धर्म अपने प्राणों से भी प्रिय होता है । अर्हन्नक श्रावक को धर्म-श्रद्धा से डिगाने के लिए देव ने बहुत ऊँचे उछाला और बोला कि "कहो तुम्हारा धर्म झूठा है ।" तब अर्हन्नक ने क्या कहा, "मेरी काया जाये तो उसे कुर्बान कर दूँगा पर तीनों काल में कभी नहीं कहूँगा कि मेरा धर्म झूठा है ।

हूँ कहूँ छुं प्रतिज्ञायी, धर्म खोटो नहिं बोलूँ,
आवे कष्टो गमे तेवा, मारी श्रद्धा ने नहि त्यागुं,
तमे कष्टोनी ज्वालामां, मारा तनने तपावी लो... विनती करूँ...

जब धर्म का अपमान होता दिखे और धर्म खतरे में जान पड़े तो सच्चा धर्मप्रेमी जोश से उछल उठता है और धर्म की रक्षा तथा सम्मान के लिए बड़ी कुर्बानी देने के लिए तैयार हो जाता है । 'मैं विधवा भले ही बनूँ पर धर्म का अपमान सहन नहीं करूँगी ।' ऐसी खुमारी है । रानी कुमारपाल के पास जाने लगी कि अर्णोराज ने समझ लिया कि अब खैर नहीं है । उसने भी अपने बचाव के लिए दिमाग दौड़ाना शुरू कर दिया । कुमारपाल के बड़े मंत्रियों, ओहदेदारों, सरदारों और सेनापति को अपनी ओर फोड़ लिया । राजा कुमारपाल सेना लेकर चले और आक्रमण का आदेश दिया, पर सेना में कोई हलचल नहीं । यदि जीव धर्म का मर्म समझा हुआ न हो तो ऐसे वक्त पर खेद में डूब जाता है । राजा धर्म समझते थे कि जहाँ कषाय है वहाँ कर्म अवश्य बँधते है । परन्तु धर्म का जनून था कि मेरे गुरु को मुंडिया कहने वाले को कैसे सहन किया जाय ! हाथी पर बैठे हुए राजा कुमारपाल महावत से पूछते हैं कि "ऐसा क्यों हो रहा है ?" महावत जवाब देता है कि "सेना फूटी हुई लगती है इसलिए आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर रही है ।" "फिर अब हमारा कौन है ?" "मैं और हाथी दोनों आपके हैं ।" कुमारपाल सब समझ गये । बिना घबराये, हिम्मत से पुरुषार्थ करने की सोचने लगे ।

राजा कुमारपाल रणक्षेत्र में पहुँचकर, स्थिति देखकर सोचते हैं कि 'युद्ध करूँगा तो अनेक जीवों का संहार होगा । मुझे तो अर्णोराज से ही लड़ना है । राजा सेनापति, सरदार किसीको मनाने नहीं जाते क्योंकि जो स्वयं बिक चुके हैं वो मेरी नहीं सुनेंगे, उल्टे मुझे दुश्मन को सौंप देंगे । जिंदगी भर के लिए वह अपमान सहने से अच्छा है सामने-सामने दो हाथ कर लें । राजा कुमारपाल महावत से कहते हैं, "भले है सब बदल जाएँ, कोई चिंता नहीं । हमें तो धर्म की जय करवानी है । धर्म के प्रताप से हमारी विजय अवश्य होगी । तुम सीधे अर्णोराज के हाथी पर आक्रमण करो ।" महावत ने हाथी को उस ओर बढ़ाया । परन्तु अर्णोराज चेत गया और उसने सिंहनाद करवाया । सिंहनाद सुनकर कुमारपाल का हाथी पीछे हटने लगा । तीव्र और विलक्षण बुद्धिशाली कुमारपाल ने महावत से पछेड़ी (उत्तरीय, वस्त्र) हाथी के कान में भरने कहा । इससे हाथी को सिंहगर्जना सुनाई पड़नी रुक गयी । वह राजहस्ती मदोन्मत्त बनकर तेजी से अर्णोराज के हाथी के नजदीक जाकर खड़ा हो गया । कुमारपाल तुरंत उछलकर अर्णोराज के हाथी के हौद में पहुँच गया । अर्णोराज को तो स्वप्न में भी ख्याल नहीं आया था कि कुमारपाल एकाएक छलांग लगाकर मेरी अंबाडी में आ जायेगा । वह बुरी तरह घबरा गया । कुमारपाल तलवार हाथ में लेकर कहने लगा, "मुंडिया कहने वाले अब बोल, क्या कहना चाहता है ?"

अर्णोराज ने जान लिया कि अब अंत आ गया । बचने का एक ही उपाय है – माफी माँगना । झट बोला, "मुझसे भूल हो गई, मुझे क्षमा करो ।" यह सब इतने कम समय में इतनी जल्दी से घट गया कि सेना को अर्णोराज की रक्षा करने का अवसर ही नहीं मिला । उल्टे राजा कुमारपाल की हिम्मत और शूरता सभी चकित-से देखते रह गये । अंत में सेना ने कुमारपाल की जय जयकार से आसमान गुंजा दिया, जिससे अर्णोराज को अभयदान मिले ।

राजा कुमारपाल की उदारता और लोभनिग्रह : अर्णोराज ने एक तो गुरु का अपमान किया था, दूसरे सेना में फूट डाली थी । ये दोनों अपराध ऐसे थे कि भले ही उसे अभयदान दें पर जिंदगी-भर कैद में तो रखा जा सकता था और उसका राज्य छीना जा सकता था । कुमारपाल ने ऐसा नहीं किया, उसे अभयदान देकर राज्य भी लौटा दिया । क्या राजा ने यह अपनी बहन के स्नेह के कारण किया होगा ? यदि बहन का स्नेह कारण होता तो नजरबंद करके हर तरह की सुख-सुविधा प्रदान कर सकते थे । यह बहन के स्नेह की वजह से नहीं बल्कि लोभ के निग्रह के कारण किया ।

सम्राट कुमारपाल की दृष्टि कितनी विशाल ! अपनी सेना में फूट डालने वाले अर्णोराज पर दया की, जीवन-दान दिया और राज्य भी लौटा दिया । अपनी सेना के अधिकारियों को भी कोई सजा नहीं दी, नहीं कोई ताना या उलाहना दिया । उन्होंने सोचा कि 'मुझे

तो धर्म को विजयी बनाना था, वह हो गया अब वैर-विरोध की क्या आवश्यकता है ? राजा कुमारपाल का दृष्टांत अपने समक्ष रखकर देखिए कि वह ऐसे बड़े अपराधी को क्षमा कर सके तो हम मामूली भूल करनेवाले को भी क्या माफ नहीं कर सकते ? जिसकी दृष्टि सम्यक् है, वह देव-गुरु-धर्म की निंदा सहन नहीं करेगा । जब तक वीतराग धर्म का जनून नहीं आता तबतक कर्म का जाल भस्म नहीं हो सकता। सांसारिक मायाजाल, राग-द्वेष जैसे-जैसे घटेगा वैसे-वैसे धर्म के प्रति जोश जागेगा। शास्त्रकार भगवान की वाणी है -

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ॥

- उत्त. सू. अ-३२, गा ४

दुःख को दूर करने के लिए जीव को पहले मोह को जीतना पड़ेगा । मोह से कह दीजिए कि *मैंने तुझमें फँसकर बहुत दुःख भुगता है । तूने मुझे बहुत बिगाड़ा,* बहुत भटकाया है। इस मोहनीय कर्म पर विजय प्राप्त न करें और दर्शन सप्तक (अनंतानुबंधी कषाय की चौकड़ी, सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय) दूर न हो तब तक सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हो सकता । मोहनीय कर्म टूटने पर दूसरे चार कर्म भी टूटते है । चारों घनघाती कर्म टूटने पर जीव तेरहवें गुणस्थान में पहुँच जाता है । तेरहवाँ गुणस्थआन संयोगी केवली गुणस्थान है, वहाँ मन-वचन-काया का योग है । इस योग से कर्म बँधते हैं । *'पढमं समये बद्धं, बिइय समए वेइय, तइयं समए निज्जरियं'* परंतु वे पहले समय में बांधे, दूसरे में वेदे और तीसरे में निर्जरा हो जाती है । भगवान फरमाते हैं कि "जब सयोगी अवस्था मैं तबतक रहना पड़ता है ।" अयोगी गुणस्थानक में पहुँचने पर मन-वचन-काया के व्यापार नहीं रहते । चौदहवें गुणस्थान तक पहुँचने के लिए सबसे पहले मोह को जीतना पड़ेगा । जिसका मोह गया, उसका दुःख गया । दुःख गया तो तृष्णा गई । जहाँ तृष्णा है वहाँ लोभसंज्ञा प्रबल होती है । तृष्णा मोह को मजबूत करती है । ये सब मोह के सगे-संबंधी हैं। लोभ गया तो तृष्णा भी मर जाती है । तृष्णा मरने पर मोह भी नहीं रहता । मोह गया तो सब दुःख दूर हुआ । सर्व पाप का जनक लोभ है जो सर्व अंग में बसा हुआ है । यह सारे गुणों को खा जाता है । धन प्राप्ति के लिए जीव कितने पाप करते हैं फिर भी तृष्णा का गढा कभी भरता नहीं ।

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री का कड़वी तुंबी पर मनोमंथन : नागेश्री ब्राह्मणी कहती है कि मैं अधन्य हूँ, दुर्भागी हूँ, पुण्यहीन हूँ । ये शब्द वह अपने लिए क्यों कहती है ? क्योंकि इतनी विपुल मात्रा में सारे स्वादिष्ट मसाले और घी आदि से उत्तम साग बनाया पर कड़वा होने के

कारण सब व्यर्थ हो गया । लोभ और मोह उसे रुलाते हैं । मोह में लोभ और मान-कषाय आ गया है । दुःखी है कि मेरी देवरानियाँ जान जायेंगी तो मेरी हँसी उड़ायेंगी, निंदा करेंगी । मान कितना भयंकर है ! केवल ज्ञान पाने की योग्यता वाले को भी मान के कारण केवल ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ । मान मीठा जहर है । 'मेरी देवरानियाँ कहेंगी कि बड़ी फूली-फूली फिरती हैं और एक साग बनाना तो आता नहीं ।' अपने को कोसती हुई वह रोती रही । सूखे पेड़ की तरह एक कोने में बैठकर आर्तध्यान करती रही । अंत में सोचा कि इस साग का क्या किया जाए ? बंधुओं ! देखिए, मान के पोषण के लिए कैसा विचार करती हैं, परन्तु अंत में क्या परिणाम आयेगा ?

जन्म मरण करतां करतां केटलो काल तें काढ्यो,
छेवटमां शून्यतणो सरवाळो,
मनुष्य जन्म पामीने करवो सद्गुणनो सरवाळो,
क्रोध कषाय ने जीती शक्यो ना, थईश नाग तूं कालो... छेवट...

आप व्यापार के समय को काम करके रोज यहाँ आते हैं, प्रवचन सुनते हैं । यहाँ आने के पश्चात् यदि आपको वीतराग धर्म से परिचय न हो, वीतराग के वचनों के प्रति श्रद्धा न हो, जीवन में परिवर्तन न आये तो आखिर में यहाँ बिताये समय का मूल्य शून्य ही होगा । अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ समकित के दुश्मन हैं । जबतक यह चंडाल-चौकड़ी हमारे अंदर है समकित पाना संभव नहीं । समकित का जो शत्रु है वह मोक्ष का भी शत्रु है अर्थात् मोक्ष में नहीं जा सकता । तीव्र कषाय में फूंफकारता जीव मरे तो उसीमें उत्पन्न होता है । साधक आत्मा असावधान हुआ और क्रोध आ गया तो विराधक हुआ । विराधक होने से अग्नि देव में गया । वहाँ से मरकर सन्यासी बना और फिर मरकर चंडकौशिक नाग हुआ । अतः समझिए कषाय बहुत खराब है । अनंतानुबंधी कषाय नरक में ले जायेंगे और सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करने देंगे । अप्रत्याख्यानी कषाय होगा तो श्रावकत्व नहीं लेने देगा । प्रत्याख्यानी कषाय जबतक रहेगा साधूपन नहीं संभव होगा और संज्वलन का कषाय केवल ज्ञान को रोक देगा । इसलिए कषाय का त्याग अत्यन्त आवश्यक है और धर्म को अपनाना जरूरी है ।

ज्ञानी कहते हैं कि 'दूसरों को धर्म का स्वरूप समझाते हुए, सत्य धर्म को स्वीकार करवाते हुए, भूले हुए को राह दिखाते हुए, बहुत ध्यान रखना कि तुम्हारा अपना ही लूट न जाए । ''सूयगडांग सूत्र' में पुष्करणी बावडी का दृष्टांत देकर समझाया गया है कि तुम किनारे खड़े रहकर प्रयत्न करना, परन्तु समझाने के लिए अंदर मत जाना । कमल के समान आत्मा तो ऊपर आ जायेगी, जिसे जन्म-मरण खटका है वे तो इसमें डूबेंगे नहीं । कदाचित कर्मोदय से सत्य की समझ न आ सके तो फिर तुम उसे छोड़ देना । भगवान ने जमालि को बहुत

समझाया, परन्तु उसकी परिणति नहीं सुधरी तो कह दिया कि जैसा तेरा भाव। नागेश्री ने क्या विचारा कि 'मेरा यह साग सामने आया तो मेरी हँसाई होगी, मैं निंदा की पात्र बनूँगी।' अतः कड़वी तुंबी की सब्जी को कहीं छिपाकर रख दूँ और दूसरी मीठी सरस तुंबी से साग तैयार कर लूँ। *"अन्नं सालइयं महुरालाउयं जाव नेहावगाढं उवक्खडेतए।"* जिससे किसीको कुछ ज्ञात नहीं होगा और मेरा दोष ढँक जायेगा। अब नया साग बनायेगी फिर क्या घटेगा आदि भाव अवसर पर।

श्रावण का महीना धर्म का प्रमुख महीना माना जाता है। अपने-अपने धर्म के अनुसार सभी इस मास में तपश्चर्या, वांचन, स्वाध्याय आदि करते हैं। हमें भी इस महीने से तप की आराधना प्रारंभ करनी है। मंगलमय दिवसों को जाते देर नहीं लगती। जिसे जैसी भावना हो, आराधना शुरू कर दीजिए। विशेष भाव अवसर पर।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

कृतब्रह्म का प्रधान रथमर्दनपुर गये : राजा कृतब्रह्म ने प्रधान को बुलाकर कहा : "प्रधानजी ! अपनी रुक्मणी कुंवरी अब युवावस्था में पदार्पण कर चुकी है, अतः आप उसके योग्य कुंवरी की तलाश कीजिए।" प्रधानजी अपनी मुहिम पर निकले। पहले के प्रधान बहुत होशियार, धर्मप्रेमी और राजा के विश्वासपात्र होते थे। सारा राज-काज संभालते थे। प्रधान राजा की आँख के समान होते थे। प्रधान ने आकर कहा, "महाराज ! ग्यारह राज्यों में घूमते हुए मुझे एक स्थल उचित प्रतीत हुआ है। रथमर्दनपुर में हेमरथ राजा है। सुयशा उनकी रानी हैं, जो बहुत गुणवती, प्रेमल और दृढ जैनमतावलंबी हैं। उनके एक राजकुमार और दो राजकुमारियाँ हैं। उनका पुत्र कनकरथ अपनी कुंवरी के लिए हर प्रकार से योग्य है। वह बहत्तर कलाओं में निपुण है, साथ ही धर्म कला भी जानता है। जिस घर में धर्म है वहाँ अपनी कुंवरी दुःखी नहीं रहेगी। कनकरथ कुमार गत वर्ष जीतशत्रु भी बने हैं। उनका रूप-गुण सौंदर्य भी अलौकिक है।" राजा ने प्रधानजी से राजकुमार की तस्वीर माँगी। तस्वीर में सुंदर चेहरा, विशाल नयन और अपूर्व तेज देख दोनों प्रसन्न हो गये। तत्पश्चात् रुक्मणी को बुलाकर राजकुमार की तस्वीर दिखाई और पूछा कि तुम्हारी क्या इच्छा है ? माता के प्रश्न के उत्तर में रुक्मणी को मौन रही तो वे उसकी संमति मानकर प्रसन्न हो गयीं। प्रधान ने फिर से कनकरथ कुमार के विनय, विवेक और नम्रता की प्रशंसा की। पहले के प्रधान [illegible] प्रामाणिक और निःस्वार्थी होते थे, अतः राजा भी उनकी [illegible] कार [illegible]

सबकी संमति से रुक्मणी की सगाई [illegible] ार से [illegible] य हुआ। महामंत्री, राजपुरोहित आदि को साथ लेकर [illegible] नपुर [illegible] हुए और पंद्रह दिन में वहाँ पहुँच [illegible] हेमर [illegible] सा [illegible]

किया । उनका परिचय तथा आने का कारण जानना चाहा । प्रधान ने अपने राजा और राजकन्या का परिचय देते हुए राजा की यह इच्छा भी जाहिर की कि वे अपनी राजकुमारी को आपके राजकुमार के साथ संबंध करना चाहते हैं । यह जानकर राजा प्रसन्न होकर बोले, "ऐसे उत्तम कुल की कन्या को कौन स्वीकार नहीं करेगा ? मेरा पुत्र माता-पिता की आज्ञानुसार चलता है, फिर भी उसकी संमति लेकर मैं अपना निर्णय आपको कल बताऊँगा ।" अब राजा कनकरथ कुमार से यह बात कहेंगे, कुमार क्या उत्तर देंगे आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक १६

श्रावण शुक्ल ३, रविवार | दिनांक : २१-७-७४

सच का मार्ग

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत करुणानिधि, शास्त्रकार भगवान त्रिलोकीनाथ ने केवल ज्ञान और केवल दर्शन में जो जाना, देखा वह आपके समक्ष प्रस्तुत कर दिया । उनके श्रीमुख से अमृतवाणी की धारा का प्रपात बहा । उस वाणी को गणधरों ने ग्रहण किया । इसीका नाम है सिद्धान्त, जिसके लिए यह निश्चित है कि केवली के वचन तीनों काल में अटल रहते हैं । ऐसा वचनामृत हमें प्राप्त हो गया है । जिस प्रकार आपलोग संसार में खाते (चोपड़े) को सोने की खान कहते हैं और मानते है कि खाता होगा तो सब बोलेंगे । उसी प्रकार आत्म-उत्थान के लिए सिद्धान्त सोने की खान हैं । आपकी खान तो आपको दुर्गति में ले जायेगी, परन्तु सिद्धान्त रूपी सोने की खान मुक्ति दिलवायेगी । केवली का एक वचन भी यदि जीवन में उतर जाये तो भवपार हुए बिना नहीं रहे और एक वचन उत्थापने से दुर्गति भी दूर नहीं रहे ।

किसी व्यक्ति ने लाख रुपये उधार लिए हैं । दानवीर, दयालु सेठ उससे कहते है कि "भाई ! तुम्हारा सारा उधार मैं माफ करता हूँ सिर्फ एक अधेली उधार रखता हूँ ।" उस समय उस व्यक्ति को कितना हर्ष होगा । इसी प्रकार केवली के वचनों पर श्रद्धा हो जाए तो इतना देना कट जाता है और अधेला चुकाने चारित्र-मार्ग पर आने के लिए पुरुषार्थ करता है । श्रद्धा होने पर सम्यक्ज्ञान आयेगा और फिर चारित्र आ जाये तो बस कल्याण है । अतः पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है ।

भगवान फ़रमाते हैं कि "हम मोक्षमार्ग बताने वाले हैं, किसीको मोक्ष में पहुँचा देने वाले नहीं।" समस्त विश्व पर प्रभु का अनंत उपकार है। रास्ता सही न मिले तो कितनी ही तेजी से चलने वाला पथिक हो, अपने गंतव्य स्थान तक कैसे पहुँच सकेगा ? मार्ग भूले हुए व्यक्ति को कोई सही रास्ता बता दे तो वह उसका कितना उपकार मानता है ? यह तो द्रव्यमार्ग की बात है। तो मोक्षमार्ग रूपी भावमार्ग बताने वाले का तो कितना उपकार मानना चाहिए ? इसीलिए तीर्थंकरों का हम पर असीम उपकार है। तीर्थंकर कर्म क्षय करने का मार्ग बता देते हैं, परन्तु अनंत शक्ति के स्वामी होने पर भी किसी दूसरे का कर्म क्षय नहीं कर सकते। कर्म क्षय करना हो तो तीर्थंकर द्वारा बताये रास्ते पर स्वयं चलकर, पुरुषार्थ द्वारा कर्म क्षय करना पड़ेगा।

महावीर प्रभु ने कर्म क्षय करने के लिए तप की तलवार और क्षमा की ढाल ली थी। संगम देव ने असीम कष्ट व उपसर्ग दिये, पर प्रभु ने उस पर किंचित् भी क्रोध नहीं किया। प्रभु की शक्ति क्या कम थी ? जिस मेरु पर्वत को तो क्या, उसके शिखर को भी प्रलयकाल की झंझावात तक हिला नहीं सकती, प्रभु ने उस पर्वत को एक अंगूठे के स्पर्श से हिला दिया था।

अंगूठे डुंगर डोलाव्यो, संगम पर रोष जरा न आव्यो,
डंका शुभ धर्म सनातन का, बजवाया वीर महावीर ने...

संगम ने इतने उपसर्ग प्रदान किये तो क्या भगवान उसे कुछ नहीं कर सकते थे ? क्या उनमें शक्ति नहीं थी ? अरे असीम शक्ति थी, परन्तु उनका सर्व जीवों के प्रति मैत्र-भाव था। हम बोलते हैं ना -

"मैत्री भावनुं पवित्र झरणुं, मुज हैयामां वह्या करे,
शुभ थाओ आ सकल विश्वनुं, एवी भावना नित्य रहे।"

प्रतिक्रमण में भी रोज बोलते है -

'खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवावि खमंतु मे,
मित्तीमे सव्वभूएसु वेर मज्झं ण केणइ.'

वाणी से यह बोलते हैं, परन्तु अभी तक यह भाव आया नहीं है। जब ऐसे भाव आयेंगे तो भवचक्र चकनाचूर हो जाएगा। जिस प्रकार दही का मंथन करने से मक्खन मिलता है उसी प्रकार हृदय में भावमंथन पूर्वक जो वाणी निकलेगी तो पाप मथ जायेगा और संवर-निर्जरा रूप मक्खन प्राप्त होगा। संगम ने छः महीने तक भगवान को उपसर्ग दिया पर उस पर जरा भी रोष न किया, उल्टे करुणा का स्रोत बहाया। हे संगम ! तेरा क्या होगा ? तेरी कौन-सी गति होगी ? मारने वाले व्यक्ति के प्रति मैत्रीभाव रखना सरल या आसान नहीं है। जिससे मित्रता है उसे तो बाहों में भर लेंगे पर जिसने घाव दिये हैं उसे

बाहों में भरो तब सच्चा मैत्री भाव समझा जायेगा । भगवान कहते हैं कि "कोई तेरा दुश्मन नहीं है ।"

"न तं अरीकंठ छेता करेइ ।" तू अपने स्वभाव में स्थिर रहे तो गला काटने वाला भी तेरा शत्रु नहीं । दुश्मन आये और प्रकृति में हल्का-सा आवेश भी आया तो वहाँ आर्तध्यान हुआ । घर में संतान गलत राह पर न जाये, इस उद्देश्य से यदि आप डाँटते-फटकारते है तो ठीक है क्योंकि इससे संस्कार सुधारने का काम होता है । परन्तु यदि आप घर पहुँचे और सब अपने-अपने मिजाज में आर्तध्यान करने लग जाते है और दूसरों से भी करवाते है । सिरदर्द हो या पेटदर्द होता हो तो कहेंगे, 'मेरी कोई खबर तक नहीं लेता, डोक्टर को भी नहीं बुलवाते, कोई मेरा सिर नहीं दबाता' यहाँ आप दूसरों के लिए कर्मबँधन के निमित्त बन जाते है । रोग आया, यह अपने अशाता वेदनीय कर्म का उदय है । यदि यहाँ गुस्से में भड़केंगे तो स्वयं आर्तध्यान करेंगे और दूसरों को करवाने में निमित्त बनेंगे । यहाँ आपके पुरुष रूप की प्रधानता नहीं है । एक समय में पुरुष एक सौ आठ सिद्ध हो सकते हैं, इसमें यदि आप अपना नंबर लगा लो तो आपका पुरुषत्व सच्चा है । इस पुरुषत्व का भाव भूलकर, विषयों में डूबकर जो महा-आरंभ, महा-परिग्रह में रचा-पचा रहे, वह सातवीं नरक में चला जाता है । इसलिए सावधान रहने की जरूरत है । आत्मा को समझाइए कि हे चेतन ! यह मनुष्य भव किसलिए मिला है ? कर्म के काजल को धोने और कर्मबँधन से छूटने के लिए । मोक्षमार्ग में गमन करना है तो अनुकूल-प्रतिकूल हर प्रकार के संयोगों में सबके प्रति समान दृष्टि रखनी होगी । भगवान के पास कितनी शक्ति थी ! परन्तु शक्ति का उपयोग कर्म तोड़ने के लिए किया, कर्म बाँधने के लिए नहीं । दुश्मन के प्रति करुणाभाव आने पर वैरभाव का मूल नष्ट होगा और मैत्री भाव आ जायेगा । मैत्रीभाव आने पर माध्यस्थ भावना और प्रमोद भावना भी आ जायेगी । भाव में रहे तो मोक्ष और भाव को भूले तो दुर्गति ।

भरत चक्रवर्ती ने अरिसाभुवन में केवल ज्ञान पाया । कैसे ? भरत चक्रवर्ती को अरिसाभुवन में अंगूठी गिर जाने से अंगुली सूनी लगी । जिससे विचार आया कि देखूँ तो जरा सारे अलंकार उतारने पर काया की शोभा कैसी लगती है ? सारे आभूषण उतारने पर देखा तो काया बिल्कुल फीकी, असुंदर लगी । मन में भावना उपजी की 'अहो ! इस काया की शोभा मेरी आत्मा से है या बाह्य अलंकारों से ? काया से आत्मा निकल जाने के पश्चात्, इस काया को कितने ही आभूषणों से सजा दें पर उसका मूल्य कुछ भी नहीं । वह शोभाविहीन और जलाने योग्य हो जाती है । अतः इसकी सही शोभा तो आत्मा से ही मानी जायेगी । मैं कैसे अज्ञान, अंधकार में भूला हुआ हूँ कि प्रतिदिन इस

शरीर को सुंदर आभूषणों से सजा रहा हूँ। तथा इन खोखली शोभा वाले अलंकारों को अपना मानकर उनकी संभाल रखने में लगा हुआ हूँ। वास्तव में जिससे देह की शोभा है उस आत्मा की चिंता या ममता नहीं है। यह कैसा मोह का नशा है! मेरी शोभा काया से है या काया की शोभा मुझसे ? मैं जबतक जीवित हूँ तभी तक इस शरीर का सौंदर्य है, आत्मा के चले जाने के पश्चात् शरीर की कोई शोभा नहीं रहने वाली है।' इस प्रकार अनित्य भावना में आगे बढ़ते हुए शरीर से उनकी आसक्ति समाप्त हो गयी। अनासक्त भाव में चढ़ते हुए मोहनीय आदि घाती कर्मों के बँधन टूटते ही केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। भगवान ने कहा है कि यह शरीर कैसा है ? -

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइ संभवं।
असासया वासमिणं, दुक्खं केसाण भायण ॥

- उत्त. सू. अ.-१७, गा-१२

यह शरीर अनित्य है और अशुचि से भरा हुआ है, अशाश्वत है और दुःख-क्लेश का पात्र (भाजन) है। महान पुरुषों ने इस दुःख के भाजन रूप शरीर को आत्मसाधना में सहायक बनाया। आज मानव ने मिट्टी से सोना और हीरे की खोज की है, वैसे ही इस नाशवंत शरीर की इस तरह देखभाल करनी है कि वह साधना में सहायक बने। मोक्ष में जाने के लिए यह शरीर सीढ़ी के समान है। सिद्धान्तों में ऐसे कई दृष्टांत है कि संत-सतीजी उग्र तपस्या करते थे। जब लगने लगता कि यह शरीर कुछ काम नहीं कर पा रहा है तो भगवान के सम्मुख पहुँचकर आज्ञा माँगते तथा आज्ञा मिलने पर संथारा कर लेते। जीते जी काया का त्याग करते। जब शरीर द्वारा आत्म-साधना का माल मिलना बंद हो जाता तो वे शरीर का त्याग कर देते।

मानव जब मृत्युशय्या में है तब उसे '*नमो अरिहंताणं*' बुलवाने के बदले वसीयत की चर्चा ले बैठते है। सारा संसार स्वार्थ से भरा हुआ है। संसार पुण्य-पाप का अखाड़ा है। पुण्य से सुख और पाप से दुःख मिलता है। बंधुओं! समझिए आपकी लाखों-अब्जों की संपत्ति में वह पावर (शक्ति) नहीं है जो सम्यक्त्व की झलक में है। मिथ्यादृष्टि देवता जो सुख भोगते है उनसे अधिक सुखी नरक की रौरव वेदना सहने वाले सम्यक्दृष्टि जीव होते हैं। क्योंकि वे समझते है कि जो बाँधा है वही भोग रहे हैं, जल्दी भोग लेंगे तो संसार से जल्दी छुटकारा मिल जायेगा [illegible] में दुःख आये तो वह सोचता है कि मुझसे कर्म का बोझ [illegible] को संगम ने उपसर्ग दिये तब उन्होंने यही विचार किया [illegible] आया है।

नागेश्री के यहाँ भोजन समारंभ : नागेश्री ब्राह्मणी सेठानी है । उसका सरस मसालेदार तुंबी का साग कड़वा निकला तो मन में भान आया कि मेरी देवरानियों में मेरी हीनता दिखेगी और निन्दा होगी । मान कषाय कितनी बुरी चीज है । मैं इस संबंध में एक दृष्टांत द्वारा स्पष्ट करती हूँ ।

दो भाईयो का प्रसंग : पल्ली ग्राम में काकु और पातक नामक दो सगे भाई रहते थे । काकु बड़ा और पातक छोटा था । घर में विपुल संपत्ति थी । वैभव-विलास छलकता था । माता-पिता के आयुष्य पूर्ण करने पर दोनों भाईयों ने संपत्ति का बँटवारा कर लिया और अलग-अलग रहने लगे । लक्ष्मी प्राप्त होना पुण्य के अधीन है । बड़े भाई के पाप का उदय आया । जो भी व्यवसाय करे, नुकसान उठाना पड़ा । कर्मयोग से ऐसा दिन आ गया कि खाने के लाले पड़ गये । पत्नी और बालक के साथ छोटा-सा परिवार है । बालक भूख से विलखने लगा तब पत्नी ने कहा, "हे स्वामीनाथ ! आप छोटे भाई के नौकरी कर लीजिए । किसी दूसरे के यहाँ नौकरी करने से अच्छा है भाई के यहाँ नौकरी करना ।" काकु पातक के घर पहुँचता है और कहता है, "भाई मैं नौकरी के लिए आया हूँ ।" धन के घमंड में चढ़ा छोटा भाई इतना भी नहीं पूछता कि 'भाई ! तेरा आना किस काम से हुआ ? तेरी दशा ऐसी कैसे हो गयी ?' बंधुओं ! लक्ष्मी पाना आसान है, पर उसे पचाना बहुत मुश्किल है । लक्ष्मी दो रूप में आती है दैवी कृपा रूप और आसुरी रूप में । जब दैवी लक्ष्मी घर में आती है, घर में शान्ति और अपनत्व में वृद्धि होती है । धर्म की भावना बढ़ेगी, धर्म विमुखता मिटती है । जिस प्रकार आम्रवृक्ष में फल लगते ही झाड़ नमने लगता है उसी प्रकार दैवी लक्ष्मी आयी होगी तो मान नहीं आयेगा, परन्तु देव-गुरु-धर्म के प्रति भावों में अभिवृद्धि होगी । आज भी ऐसे कई सुखी कुटुंब दिखाई पड़ते है, जो असीम संपत्ति के मालिक होने पर भी परिवार के प्रति प्रेमभाव और धर्मगुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा रखते है । आसुरी लक्ष्मी घर के वातावरण को क्लेशमय बनाती है और जीवों को धर्म से विमुख करती है । ऐसे लोगों को उपाश्रय आने के लिए कहें, तो उत्तर मिलेगा टाईम नहीं है । जब काल आयेगा तब टाईम हो या न हो, जाना ही पड़ेगा । छोटे भाई के यहाँ बहुत नौकर-चाकर थे । उसी में अपने बड़े भाई काकु को गाय-भैंस चराने और खेती का काम सौंपा । खेती का काम कभी किया नहीं था, उसे भला कैसे आता ? मजदूरों जैसा काम देकर छोटे भाई का व्यवहार भी नौकरों जैसा था । ये तीनों प्राणी उसके मकान के पास झोंपड़ी बनाकर रहने लगे । बड़ा भाई अब छोटे भाई के यहाँ एक वेतन-भोगी नौकर था । दिन-भर गाय-भैंस चराकर खेती में पसीना बहाकर थका लौटता और जो दो कौर मिलता उससे पेट भर लेता ।

एक दिन मूसलधार बरसात हुई । चारों ओर खेतों में सिंचन के लिए बनायी गई नालियाँ भरकर छलकने लगी । दिन-रात की मेहनत से थका हुआ काकु पातक के घर जाकर सो गया । रात में पलंग में सोये पातक की आँख खुली और उसने काकु को जमीन पर सोया देखा । उसे देखते ही उसका गुस्सा उभरा और लात मारकर उसे उठाते हुए बोला, "हरामखोर ! चल उठ, हराम की पगार खाता है ? खेतों में पानी की नालि टूट रही है और तू आराम से सो रहा है ?" तब बड़ा भाई काकु कहने लगा, "भा मैं बहुत थक गया हूँ, मुझे जरा सोने दो ।" पातक बोला, "यदि सोना ही है तो गाँव छोड़ दे ।" छोटे भाई के यह वचन सुनकर काकु के मन में आया कि इतना अपम सहने से अच्छा है मर जाना । सोचने लगा कि 'हे कर्मराजा ! तेरी कला अजब है । पु का प्रभाव अजीब है । हम रात-दिन मेहनत-मजदूरी करें, भूख-प्यास सहें और हमा मेहनत की मिट्टी पर, हमारे पसीने के पानी से दूसरे मौज मनावें । उन्हें रात-दिन सोन तथा आराम करना और हमें चार घँटा भी सोना नसीब नहीं ।'

काकु पातक के घर से निकला । अपनी झोंपड़ी में आकर उसने पत्नी व पुत्री से कहा कि "अब हम इस गाँव में नहीं रहेंगे । चाहे जिधर चलेंगे, मजदूरी से जो मिलेगा उससे गुजारा करेंगे ।" चलते-चलते दूसरे गाँव में पहुँचते है, वहाँ झोंपड़ी बनाकर रहते है। विचार करता है कि 'माता-पिता ने विरासत में हमें धर्म भी दिया था, लेकिन हम धर्म को भूल गये । धर्म न होने से धन भी न रहा । माता-पिता ने कहा था कि 'किसी भी अवस्था में सत्य, नीति और प्रामाणिकता को न छोड़ना ।' धर्म भूलने से अपनी यह हालत हुई । अब तो हमें प्रभु को और धर्म को नहीं भूलना है । बंधुओं ! दुःख में भगवान याद आया, पर सुख में याद किया होता तो दुःख क्यों आता ! -

'दुःखमें सुमिरन सब करे, सुखमें करे ने कोई
जो सुख में सुमिरन करे तो दुःख काहे को होई ।'

तीनों झोंपड़ी में रहते है और मजदूरी से अपनी आजीविका चलाते है । पहले लोग सात-सात दिन भूखे रह लेते थे, पर किसीके आगे हाथ नहीं पसारते थी । उन्हें जो कुछ मिलता उसका चौथा भाग गरीबों, अपंगों, अनाथों को देते थे । देते समय भी यह भाव नहीं रखते कि मैं दे रहा हूँ । काकु रोज की तरह चौथा भाग देने के लिए किसीकी शोध में है । उसी समय एक अवधूत योगी गिरनार की गुफा से एक तुंबडी में सुवर्णसिद्धि का रस लेकर आ रहा था । काकु की झोंपड़ी में आने पर तुंबडी में से 'काकुय तुंवड़ी' की आवाज बार-बार आने लगी । तो योगी ने सोचा कि 'अभी मुझे बहुत दूर जाना है, यह तुंवड़ी इसीके यहाँ रखकर चला जाऊँ, लौटते समय ले लूँगा ।' उसने काकु से पूछा, "भाई ! मेरी यह तुंबड़ी कुछ दिनों के लिए रखोगे ?" काकु कहता है ,"महाराज ! मैं

ो गरीब आदमी हूँ, मेरे पास रखने के लिए कोई अलमारी या बक्सा नहीं है। मेरी झोंपड़ी ने कोई उठा ले जाये या टूट जाय तो, इसलिए मैं नहीं रख सकूँगा," वह समझता है के किसीकी थाती हड़प लीजिए तो व्याज सहित लौटाना पड़ेगा । योगी बोला, 'भाई ! इस तुंबड़ी को तुम कहीं भी कैसे भी रख लो । मुझे तुम पर भरोसा है ।" इतना कहकर तुंबड़ी रखकर वह चलता बना ।

काकु ने तुंबड़ी एक कोने में रख दी । उसके घर में पकाने के लिए एक लोहे की कड़ाही थी । एक दिन सफाई करते हुए तुंबड़ी को उठाया । उसमें एक पतली सी दरार ड़ी थी । उठाकर रखते हुए उस कड़ाही में एक हल्की बूँद गिर पड़ी । बूँद के गिरते ही कड़ाही तुरंत सोने की बन गई । काकु समझ गयाकी तुंबड़ी में लोहे को सोना बनाने की शक्ति है । पर वह सोचता है 'चाहे कितनी कीमती हो, मुझे नहीं लेना है । मैंने चोरी हीं की है, तुंबड़ी उठाते अपने आप बूँद गिरी । प्रभु ने आठ महापापी कहे है उसमें वेश्वासघाती को महापापी कहा है । योगी ने मुझ पर विश्वास किया है यदि मैं रख हूँ तो विश्वासघाती बनूँगा । जो गुरु को छिपाता है, गुरु का उपकार भूल जाता है वह हापापी । अतः मैं तुंबड़ी का मालिक नहीं, मात्र रक्षक हुँ ।

काकु के पुण्य का सितारा चमका । जिसे खाने के लाले थे, अब अमीर बन ाया । सोने की कड़ाही बेचकर बहुत पैसा मिला । झोंपड़ी छोड़ अब बँगले में आ ाया । तुंबड़ी को अब जहाँ-तहाँ नहीं रखते । एक लोहे का पट्टा लाकर उसके ऊपर ुंबड़ी रख दी । दो-चार महीने में एक बूँद गिरती और लोहे का पट्टा सोने का हो ाता । इस तरह पैसा बढ़ता रहा पर उसकी नियत नहीं बिगड़ी । तुंबड़ी को हड़पने का ख़्याल भी न आया । अनीति के दस पैसे से नीति का एक पैसा भला ।

छोटे भाई ने काकु को लात मारकर बाहर निकाल दिया था, उसका क्या हुआ होगा ? काकु के मन में विचार आया कि मेरा भाई क्या कर रहा होगा ? पुण्य-पाप का खेल है जैसे नाटक में राजा, प्रधान, भिखारी आदि अलग-अलग भूमिका करते है वैसा ही कर्म का खेल है । भाई की स्थिति कैसी है यह जानने जाता है तो देखता है यहाँ सब उलट गया है । भगवान फ़रमाते है, "धन आये तो अभिमान न करो और दुःख आये तो दीन मत बनो ।" धन का आना-जाना तो पाप-पुण्य का खेल है । पुण्य का उदय था तबतक चक्रवर्ती के सुख भोगे और बाद में यदि संयम नहीं लिया तो नरक में चले गये । जीव नौ प्रकार से पुण्य बाँधता है और बयालीस प्रकार से उसका फल भोगता है ।

काकु पातक के घर गया । अब वह झोंपड़ी में रह रहा था । जिस घर में पिता न हो, बड़े भाई को पिता समान मानना चाहिए । पिता समान बड़े भाई को छोटे भाई ने लात

मारकर निकाल दिया था। लेकिन काकु इस समय कुछ भी याद नहीं करता। उसके
दिल में मानवता महक रही थी। 'मैं सुखी हो गया पर मेरे छोटे भाई की स्थिति कैसी
है यह मुझे देखना चाहिए, यह मेरा कर्त्तव्य है।' काकु को अपनी झोंपड़ी में देखकर
छोटा भाई रो पड़ा। अपनी भूलों की क्षमा माँगते हुए, पाप का पश्चात्ताप करने
लगा। बड़े भाई ने उसे गले लगाते हुए कहा, "तू क्यों रो रहा है? बीती बातें भूल जा,
जो कुछ तूने किया वह नासमझी में किया। तू मेरा छोटा भाई है, इसलिए तू मेरे पुत्र
समान है। तू जरा भी घबरा नहीं, जरा भी दुःख न कर। अब तुम सब मेरे घर चलो,
हम सब मिलकर रहेंगे, क्योंकि जो मेरा है, वह तेरा भी है।"

इस समय यदि कहना चाहता तो बड़ा भाई कह सकता था कि 'तूने मुझे लात
मारी थी, वह भूल गया? अब अपने कर्म भोग, तू इसीके योग्य है।' यदि आप
धर्म समझते हैं तो ऐसा कभी नहीं बोलेंगे। इस समय यह विचार करना है कि
'इसमें भाई का क्या दोष, मेरे ही कर्मों का दोष है।' भाई अपने साथ सबको
चलने के लिए कहता है, पर यदि भाभी की भावना न हो तो? यहाँ तो भाभी
ने ही भाई को देवर की खबर लेने भेजा था, यह कहकर कि सुखी हो तो उत्तम
है, अगर कोई दुःख हो तो साथ लेते आइए। कितनी सुंदर भावना है। कहिए
आपको गुलाब के फूल जैसा बनना है ना? गुलाब मुर्झा जाय, कुचला जाय, पीसा
जाय तब भी अपनी सुगंध नहीं छोड़ता। चंदन को कोई काटे या जलाये पर वह
तो सुगंध ही देता है।

"चंदन मारे बनवूं छे प्रभुजी चंदन मारे बनवूं छे"

हमें अपना जीवन चंदन जैसा, गुलाब के फूल जैसा बनाना है। सारा परिवार प्रेम से
रहने लगा। मेरे कहने का आशय यह है कि छोटा भाई मान में चढा तो बड़े भाई की
कैसी हालत कर दी। अतः क्रोध-मान-माया-लोभ चारों छोड़ने योग्य है।

नागेश्री ने अपना मान रखने के लिए ऐसा विचार किया, 'कड़वी तुंबी का साग एक
ओर छिपाकर रख दूँ और दूसरी सरस, मीठी तुंबी का साग बना लूँ।'

*'एवं संपेहेइ, संपेहित्ता, तं सालइयं जाव गोवेइ, अन्नं
सालइयं- महुरा लाउयं उवक्खडेइ।'*

इस प्रकार दूसरी तुंबी से बढ़िया सब्जी बनाकर उसने रखा। इतने में तो तीनों ब्राह्मण
स्नानादि से निवृत्त होकर भोजनशाला में आकर अपने आसनों पर विराजमान हो गये।
तीनों को चारों प्रकार का उत्तम, स्वादिष्ट आहार परोसकर उसने भोजन करवाया। तीनों
भाई भोजन करके अपने-अपने काम पर लग गये। नागेश्री की छुपाई बात छुपी
गयी। अब देवरानियाँ भोजन करने आयेंगी। भोजन के पश्चात् नागेश्री क्या विचार करेगी
आदि भाव अवसर पर। समय अधिक हो जाने से आज चरित्र आगे नहीं बढ़ेगा।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक १७

श्रावण शुक्ल ४, सोमवार | दिनांक : २२-७-७४

यथार्थ का ज्ञान

ज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

त्रिलोकीनाथ, जिन्होंने राग-द्वेषादि भावों को जड़ से नष्टकर अमृत रस का स्वाद नुभव किया है, ने जगत को यही उपदेश दिया है। 'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन का अधिकार चल रहा है। वही आज वांचन रूप में, अर्थ रूप में ग्रहण करने के लिए न तैयार है। व्याख्यान भी स्वाध्याय है। श्रद्धापूर्वक सिद्धान्त का एक शब्द भी जो तर में प्रवेश कर जाये तो काम बन जाए। परन्तु अबतक हमें इसके प्रति उतनी रुचि हीं हुई है, जितनी होनी चाहिए। कोई व्यक्ति एक स्थान पर मकान बनवाने के लिए व खुदवाता है। पहली ही खुदाई में धरती से रत्नों का ढेर निकल आये तो उसे कितना ानन्द होगा ? ये रत्न तो शाश्वत नहीं हैं। या तो यह खो जायेगा या आपको उसे छोड़कर ाना पड़ेगा। मानव जन्म रूपी भूमि में से सम्यक्त्व रूपी रत्न प्राप्त करने के लिए कैसा ीवन जीना है ? इस पर विचार कीजिए। कैसा पुरुषार्थ करूँ, कैसी साधना करूँ, सससे मुझे इस भूमि में सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी रत्न मिल जाए ?

सम्यक्दृष्टि आने पर जीव की झलक ही कुछ और होगी। सम्यक्त्व रहित क्रिया देवलोक े सुख प्रदान करवायेगी, परन्तु मोक्ष का सुख नहीं। भगवान के भवों की गिनती म्यक्त्व प्राप्ति के बाद से होती है। उसके पहले उनकी आत्मा बहुत भटकी । सम्यक्त्व पाने के पहले के भव में वे कौन थे, यह कोई नहीं देखता, क्योंकि उसका ोई मूल्य नहीं है। परन्तु सम्यक्त्व पाने के पश्चात् ही जीवात्मा की कीमत हुई। प्राण े बिना देह की कीमत नहीं होती। सम्यक्त्व के बिना जीव की कोई कीमत नहीं आंकी ाती। मिथ्यात्त्व की ग्रंथि टूटे बिना सम्यक्त्व नहीं आ सकता। मिथ्यात्व महारोग । भगवान ने 'आचारांग सूत्र' में सोलह महारोग बताये हैं, यूँ तो शरीर के एक-एक रोम पौने दो-दो रोग हैं। अपना असातावेदनीय कर्म मंद होगा और सातावेदनीय कर्म का दय होगा तो सोलह महारोग नष्ट हो जायेंगे। परन्तु मिथ्यात्त्व का रोग ऐसे नष्ट नहीं होता श्रोताओं में से आवाज : 'इसके लिए प्रबल पुरुषार्थ करना पड़ेगा।') इसके लिए आत्मा ो निर्णय करना पड़ेगा कि *'तमेव सच्चं निःशंकं जं जिणेहिं पवेइयं ।'* हे भु ! तेरा वचन सत्य है निःशंक है। पाँचवें 'श्रमण सूत्र' में क्या बोलते हैं *"तं धम्मं*

सद्दहामि पत्तियामि, रोएमि, फासेमि, पालेमि, अणुपालेमि ।" तेरे धर्म पर श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति (विश्वास) करता हूँ, स्पर्श करता हूँ, पालन करता हूँ - ऐसे दृढ़ श्रद्धा हो तो मिथ्यात्व जाये और समकित आये । ये शब्द बोलते हुए अंतर के भाव से शरीर में झनझनाहट होनी चाहिए । हे मेरे नाथ ! आपका यह शासन और वाणी बार-बार नहीं मिलेगी । प्रबल पुण्योदय से विरासत में जैन धर्म प्राप्त हो गया है । हाथ में आया हुआ खज़ाना गंवा देंगे तो फिर से कहाँ मिलेगा ? 'प्रभु ! मैं आपके वचनों पर यथार्थ श्रद्धा करता हूँ और दूसरों को भी श्रद्धा करवाऊँगा ।' परन्तु यह कैसे संभव हो सकता है ? जिसके रोम-रोम में, अणु-अणु में यह बात पूरी तरह भर चुकी है कि भगवान की वाणी सौ प्रतिशत शुद्ध सोना है, वही दूसरों में श्रद्धा उत्पन्न कर सकता है ।

आज बहुत से लोग कहते है कि 'भगवान ने कहाँ सिद्धान्त लिखे थे ? यह तो आचार्यों ने लिखा है, क्या पता सत्य है या झूठ ?' बँधुओं ! आचार्यों ने भगवान की वाणी ही लिखी है । यदि आपको भगवान के वचनों पर श्रद्धा नहीं है तो मिथ्यात्व अभी हटा नहीं है । आप आगम को प्रभु की वाणी नहीं मान रहे है पर आपके पूर्वज (बाप-दादा) जो खाते-बही लिख गये है उन्हें कैसे मान लेते हैं ? इसमें आपका विश्वास है पर उसमें नहीं । जो आत्मा दूसरों का सम्यक्त्व तुड़ावे, धर्म की निंदा करके धर्म से विमुख होता है और दूसरों को भी विमुख करता है वह महामोहनीय कर्म बाँधता है । विष को हम विष ही कहते है, परन्तु उसकी विशेषता बताने के लिए उसका नाम तालकूट विष दिया है । यह ज़हर हथेली में रखने से कुछ ही देर में तल फट जाता है और व्यक्ति मरण के शरण में पहुँच जाता है। जो स्वयं भी राह भूलता है तथा औरों को भी भटकाता है, स्वयं भी उल्टी राह पर चलता है और दूसरों को भी गलत राह बताता है तथा सत् और धर्म से विमुख बनाता है वह तालकूट विष के समान है । वह महामोहनीय कर्म का बँध करता है ।

इसलिए शास्त्रों का वांचन कीजिए । नरक, तिर्यंच के दुःख आँखों के सामने हों तो जीव पाप करने से रुकेगा । पौषध किया हो, कड़ी गर्मी में भूख-प्यास लगी हो उस समय यदि समभाव रहे तो कर्म चूर-चूर हो जाते है । आपकी प्यास नारकी जीव की प्यास के आगे कुछ भी नहीं है । 'सूयगडांग सूत्र' में नरक का वर्णन पढ़ते हुए हृदय काँप उठता है । संसार में कोई एक गुनाह करे या हजार, एक बार फाँसी का दंड ही दिया जा सकता है । परन्तु कर्म का कहना है कि इतने से बात समाप्त नहीं हो जाएगी, अपने गुनाहों की सजा अभी और भुगतनी पड़ेगी । अतः यदि चाहते है कि नरक के दुःख न भोगना पड़े तो वीतराग वाणी को हृदय में उतारिए । सामने पका हुआ आम्रफल हो तो देखकर ही कह देंगे कि यह आम अत्यन्त स्वादिष्ट और मीठे रसवाला है । परन्तु उसका स्वाद कब आयेगा ? उसका टुकड़ा जीभ में डालकर चबायेंगे तभी ना ? जिनेश्वर भगवान की वाणी भी ऐसी है । उसे श्रवण करने के बाद अंतर में उतारिए चिंतन-मनन कीजिए तभी उस वाणी का स्वाद मिलेगा ।

सोने पर यदि पारा रखा जाए तो पारे के अणु-अणु सोने के आर-पार उतर जाते हैं, सोने के पीले रंग को सफेद बना देते है, सोने में छेद कर देते है और सोना रत्न या मोती की भांति चमकता शुभ्र बन जाता है । इसी प्रकार यदि वीतराग वाणी के प्रति श्रद्धा हो और वह वाणी हृदय के आर-पार उतर जाए तो मिथ्यात्व रूपी ग्रंथि का छेदन हो और आत्मा मोती की तरह चमकने लग जाए । अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्त कर ले । इसलिए समझकर पाप से पीछे हटिए । आत्मा पापभीरू बनेगा तो संसार के स्वर्ग जैसे लगने वाले सुख भी क्षणमात्र में त्याग देगा । श्रावक धर्म प्राप्त करने के बाद, वीतराग वाणी का श्रवण करने के पश्चात्, चतुर्गति के दुःखों से परिचित होने के बाद भी यदि संसार की ओर दौड़ जारी रहेगी तो आप कहाँ पहुँचेंगे ? दौड़ जारी है, परन्तु उलटी दिशा में । जाना है राजकोट और पूना की गाड़ी में बैठेंगे, तो कैसे राजकोट पहुँच सकेंगे ? इसी प्रकार चाहिए मोक्ष के सुख और गति संसार की ओर है तो सुख कैसे प्राप्त होगा ?

ज्ञानी कहते हैं कि 'चाहे जितनी कलाएँ सीख लीजिए, परन्तु जबतक धर्म-कला का ज्ञान नहीं है तबतक सारी कलाएँ व्यर्थ है । *'सव्वं कला धम्मकला जाणइ'* सब कलाओं में धर्मकला श्रेष्ठ है । धर्मकला क्या है ? धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा, धर्म का विवेक और धर्म की तारक क्रिया । श्रद्धा, विवेक और क्रिया जिसमें होती है वह श्रावक कहलाता है । जिसमें ये तीनों होती है उसे धर्मकला का ज्ञाता माना जाता है । जगत में अनेक प्रकार के हुन्नर तथा कलाएँ ऐसी होती हैं जो लोगों को चकित कर देती हैं, परन्तु धर्मकला के सम्मुख उनकी भी कोई बिसात नहीं । जगत में सर्वोपरि धर्म है । इसकी कीमत नहीं आंकी जा सकती । इसका महत्त्व और दर्जा अजोड़-असाधारण और अनुपम है । धर्म दुर्गति से बचाता है, सद्गति में ले जाता है और अंत में मुक्ति के समान सर्वोच्च सुख के स्थान पर हमेशा के लिए स्थिर करवा देता है । धर्म से आत्मा सच्चे सुख की प्राप्ति कर सकता है । धर्म से आत्मा अपने दबे, छिपे खजाने को प्रकट करता है । रोग, शोक, दुःख और दारिद्रय भी धर्म दूर कर सकता है । सच्ची शान्ति और आजादी धर्म से ही मिलती है । धर्म की शक्ति असीम है । इसका प्रभाव अनोखा, अपूर्व है ।

एक पांखडी का प्रसंग : एक पाखंडी विद्वान, जो वाक्चातुरी की कला में बहुत निपुण था । परन्तु आत्मा, स्वर्ग-नरक, धर्म, पुण्य-पाप, मोक्ष आदि में विश्वास नहीं रखता था । इन सब बातों से असहमत होने के कारण सभी उसे नास्तिक-असंमत कहते थे । उस नगर में एक बार एक विद्वान आचार्य का आगमन हुआ । उस पाखंडी से वाद-विवाद करने के बदले आचार्य नगर के बाहर ही तप और ज्ञान-साधना में जुटे रहे । ज्ञानियों ने कहा है कि 'वाद करना हो तो विवेकी के साथ करो, झूठे और अविवेकी से नहीं ।' इसलिए मुनि इस झमेले में नहीं पड़े । असंमत स्वयं मुनि के पास गया और बोला कि "आप स्वर्ग-नरक की बातें करते हैं, मुझे प्रमाण द्वारा सिद्ध करके बताइए

तो मानूँ ।" मुनि ध्यान में रत थे, दस प्रकार के यतिधर्म का पालन करने वाले थे। यदि यतिधर्म में न हों तो द्रव्य से साधू दिखाई देते हैं, परन्तु भाव से साधूपन नहीं रहा है। मुनि तो क्षमा धारण करके ध्यान मुद्रा में खड़े थे । मुनि एक शब्द भी न बोले, उन्होंने सोचा मैं अपने भाव में रहूँ और वह अपने । अतः असंमत गाँव में चारों ओर उनकी निंदा करते हुए कहने लगा कि "एक ढोंगी साधू आया है जो धर्म का ढोंग कर रहा है । जो कुछ कहता है उसे सिद्ध नहीं कर सकता, इसलिए बेचारा मुझसे वाद किये बिना नगर के बाहर बैठ गया है ।" इस प्रकार निंदा का प्रचार जानकर भी मुनि अपनी धर्मकला में लीन रहे ।

गुरुदेव की निंदा होते सुनकर बहुतों का दिल दुःखा । कई भोले जीव असंमत की बात सही मानकर उसके साथ हो गये, तो कई मुनि से आग्रह करने लगे कि 'अपना धर्म असंमत के समक्ष सिद्ध कर दीजिए ।' कुछ ऐसा भी कहने लगे कि 'यदि आप में शक्ति नहीं थी तो इस नगर में आये ही क्यों ?' परन्तु मुनि को निंदा या प्रशंसा से कोई मतलब न था, वे तो कालभाव देखकर स्थिर व मौन रहे । उनके मौन ने असंमत को और उकसाया और लोगों के मन में शंका होने लगी । बंधुओं ! अब देखिए, धर्मकला बड़ी है या वाद कला ?

मुनि के तप का प्रभाव : तभी छः दिन तक मूसलधार बरसात हुई । नदी के दोनों किनारे छलछलाकर नगर के बाहर बाढ का पानी भर गया । परन्तु मुनि के तप के प्रभाव से उनके आसपास तीन फूट की जगह बिल्कुल कोरी रही । नगर में चारों ओर पानी-पानी, परन्तु मुनि के आसपास पानी की बूँद तक नहीं – लोग चकित हो गये । मुनि का गुणगान करते हुए लोग असंमत से कहने लगे कि 'तेरे घर में घुटने तक पानी है और मुनि के यहाँ बिल्कुल कोरा स्थल । तुझमें शक्ति है तो अपने घर से पानी उतारकर दिखा । देखें प्रभाव किसका है ? मुनि का या तेरा ?' अब तो धर्म का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है । लोग मुनि के चरणों में गिरकर क्षमा माँगते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे, पर मुनि को न तो प्रशंसा से प्रेम है, न निंदा से द्वेष । असंमत से यह सहन नहीं हुआ कि उसकी वादकला को धर्मकला हरा दे । उसने सोचा 'जबतक यह साधू है मेरा अपयश बना रहेगा और इसे सम्मान मिलेगा । इसलिए इसे नष्टकर देना ही ठीक होगा । अपनी प्रशंसा के लिए साधू का नाश करने की तैयारी करने लगा ।

एक रात्रि में जब सब विश्राम कर रहे थे, असंमत मुनि के पास पहुँचा । मुनि तो ध्यान में मग्न है, ध्यान भी ऐसा कि कर्मों की जाल जलकर भस्म हो जाए । असंमत ने द्वेष बुद्धि से ध्यानस्थ मुनि के आसपास लकड़ियाँ सुलगा दी और चुपके से घर आकर परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा । खराब विचारों से पोषित द्वेष का अधम भाव मनुष्य को कितना नीच बनाता है ! निरपराधी महामुनि को जलाकर भस्म करने के विचार और प्रवृत्ति तक असंमत पहुँच गया । वे जलेंगे या नहीं यह परिणाम तो उनके पुण्य-पाप के उदय पर आधारित है, परन्तु उसने तो जलाने के कृत्य से अशुभ लेश्या में नरक के लिए पाथेय जमा कर लिया । दूसरों के प्रति अधम भाव रखने से दूसरों का नुकसान हो या नहीं पर अपना पाप बंध निश्चित है ।

असंमत तो मुनि के चारों ओर चिता सुलगा कर चला गया । परन्तु मुनि के तप-त्याग, चारित्र और ब्रह्मचर्य के प्रभाव से क्षेत्रदेव प्रसन्न हुए । देव ने उस लकड़ियों को जलने दिया पर उसकी जरा भी आँच मुनि के करीव न आने दी और मुनि की रक्षा की । असंमत ने सोचा जाकर देखूँ अबतक तो मुनि राख में बदल गये होंगे । परन्तु अव उसके चकित होने की बारी थी, क्योंकि मुनि तो जीते-जागते स्वस्थ थे ।

असंमत का पश्चात्ताप और पश्चात्ताप से प्रकटता केवल ज्ञान : मुनि को जीवित देखकर असंमत के मन में आया कि 'इनके बचने का मुख्य कारण धर्म का प्रभाव ही है क्योंकि ऐसी कोई चीज नजर नहीं आती जो उन्हें बचा सकती । अवश्य ही इनके धर्म ने इन्हें बचाया है । कहाँ ये पवित्र आत्मा और कहाँ मैं पापी ? सारी लकड़ियाँ जलीं पर मुनि का वस्त्र तक अप्रभावित रहा, ऐसे चमत्कारिक और धर्म की रक्षा करने वाले मुनि का मैने विरोध किया । धिक्कार है मेरी मिथ्या मति को । अव हे प्रभु ! मेरा क्या होगा ? मैं झूठा, पाखंडी हूँ, ये मुनि सच्चे है । मेरी कितनी दुष्टता ?' नास्तिक के मन में ऊहापोह जगा और जीवन में की गई भूलों का पश्चात्ताप होने लगा । मुनि के पास जाकर क्षमा मांगता है । अब उसे यह विचार नहीं आती कि लोग मुझे देख लेंगे तो क्या कहेंगे ? सच के सामने सिर झुकाने के लिए तैयार हो गया । "मेरे अभिमान ने मुझे सच की समझ न होने दी । हे गुरुदेव ! मैंने आपका अपमान किया, निंदा की, मजाक उड़ाया, आशातना की । मेरा यह पाप मैं कैसे भोगूँगा ?" पाप का पश्चात्ताप करते हुए सम्यक्त्व भाव, सर्वविरति भाव और उससे भी आगे बढ़कर अप्रमत्त भाव आ गया । अपने शरीर आदि समस्त बाह्य भाव से आसक्ति छूट गई । आत्मा के शुद्ध ज्ञानादि स्वरूप में लीनता और स्थिरता आते ही समस्त मोहनीय कर्म नष्ट हो गये और वीतराग दशा आ गई । वीतरागता के बल पर ज्ञानावरणीय आदि घातीकर्मों का नाशकर केवल ज्ञान की ज्योति प्रकट की । भूल के गहरे पश्चात्ताप से नास्तिक भी किस ऊँची अवस्था तक पहुँच गया !

केवल ज्ञान महोत्सव के लिए देवों का आगमन : मुनि तो छद्मस्थ रूप में धरती पर खड़े है और एक समय का पक्का नास्तिक असंमत वीतरागता और सर्वज्ञता के आसमान की उँचाई पर पहुँच गया । केवल ज्ञान के प्रभाव से देव नीचे उतरे । केवल-ज्ञानी मुनि को साधू का वेश प्रदान कर उसे वंदन करते हैं । दिव्य वाद्य (देवदुन्दुभी) बजने लगी। जय-जयकार से वातावरण गूँजने लगा । नगर की जनता यह सुनकर इधर दौड़ पड़ी । यहाँ केवल ज्ञानी असंमत मुनि धर्म देशना दे रहे हैं । मुनि तक भी यह खवर पहुँची तो वे भी वहाँ पधारे । उन्हें देख असंमत केवली ने कहा, "मुझे केवल ज्ञान प्राप्त करवाने में निमित्त बनने और मेरा मार्ग शुद्ध कराने वाले यही मुनिश्रेष्ठ हैं ।

बंधुओं ! मुनि ने अपनी क्षमा न छोड़ी तो परिणाम कितना सुंदर हुआ ! कैसा सुंदर योग ! मुनि के तप के प्रभाव से नास्तिक आस्तिक ही नहीं बना, केवल ज्ञानी बन गया । सारा प्रताप धर्मकला का है । इसलिए कहा गया है कि 'सर्व कलाओं में धर्मकला श्रेष्ठ है ।' धर्मकला न हो तो हल्का सा निमित्त मिलते ही आर्तध्यान भड़क उठेगा, अतः आत्मा को समझने की जरूरत है ।

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री ब्राह्मणी की कथा : नागेश्री ब्राह्मणी में धर्मकला नहीं थी । यदि धर्मकला होती तो वह विचार करती कि कदाचित मेरी देवरानियाँ हंसी उड़ायें तो कह दूँगी कि मुझसे भूल हो गयी । साधक दशा में यदि भूल हो जाए और गुरु के समक्ष स्वीकार कर ले तो वह पाप धुल जाता है । साधक हो या संसारी, हर छद्मस्थ भूल का पात्र है । परन्तु धर्मकला होगी तो पाप छिपाने के लिए तैयार नहीं होगा । नागेश्री ने फिर से नया साग बनाया । परन्तु बनाये हुए उस साग के लिए दूसरा रास्ता न ढूँढा होता तो अच्छा होता । इस रास्ते में अंत में क्या बचेगा, यह ख्याल उसने नहीं रखा ।

दीक्षा लीधी प्रभु पासे, पण उल्टो चाल्यो गोशालो,
अंत समये सवळो थातां, सुधरी गयो सरवालो... छेवटमां...

गोशालक को भगवान महावीर जैसे प्रभु मिले । उनके साथ रहकर भी नहीं सुधरा और भगवान के मार्ग से विपरीत चलता रहा । अंत में भगवान पर तेजोलेश्या छोड़ी तब भगवान ने कहा, "हे गोशालक ! मैं अभी मरने वाला नहीं, परन्तु आज से सातवें दिन तेरा आयुष्य पूर्ण होने वाला है ।" जब मरण की दो घड़ी शेष रही तब गोशालक को भान हुआ कि प्रभु सच्चे है और मैं गलत हूँ । उस समय पाप का ऐसा पश्चात्ताप किया कि हिसाब सुधर गया । सम्यक्दृष्टि प्राप्त कर देवलोक पहुँच गया । इसीलिए ज्ञानी कहते है कि 'समझने का अवसर मिला है उस अवसर का लाभ ले लो, नहीं तो अंत में शून्य हाथ आयेगा ।'

इधर तीनों ब्राह्मण भोजन करके गए ।

'तएणं ताओ माहणीओ ण्हायाओ जाव विभूसियाओ तं विपुलं असणं ४ आहारित्ता ।' तत्पश्चात् ब्राह्मणियों ने जो स्नान आदि के पश्चात् स्व वस्त्रालंकारों से सज्जित थीं, विपुल मात्रा में बनाए गये आहार का सेवन किया । रसोई सुंदर और स्वादिष्ट थी । भोजन करते समय यदि जीव यह विचार करे कि जो कुछ खा रहा हूँ इसे तैयार करने में कितने ही जीवों की हिंसा हुई है तो खाते हुए भी जीव कर्म तोड़ता हूँ । बहुत स्वाद और रसपूर्वक खाने से कर्म बाँधकर उठता है । गौतमस्वामी ने भगवान से पूछा कि "आपका कहना है कि चलते, खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते

समय पाप लगता है तो हमें किस प्रकार रहना चाहिए, जिससे पाप न बँधे ?" भगवान ने कहा, "समस्त क्रियाएँ यत्नपूर्वक करेंगे तो पाप नहि बँधेगा ।" एक श्वासोच्छ्‌वास जितनी क्रिया भी यदि सम्यक्त्व सहित की हो तो बेड़ापार हो जाएगा । सम्यक्त्वी संसार में रहते हुए भी निर्मल रहता है ।

दोनों देवरानियाँ भोजन के पश्चात् अपने-अपने भवनों में जाकर अपने-अपने कार्यो में लग गयीं । नागेश्री को लगा मेरी इज्जत रह गई । अब उस कड़वी तुंबी के साग से भरा बर्तन कोने में पड़ा है । योगानुयोग से वहाँ क्या घटेगा आदि भाव अवसर पर कहे जायेंगे ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

कनकरथ की बारात कंबेरीनगरी की ओर : राजा हेमरथ ने कनकरथ कुमार की सगाई रुक्मणी के साथ करने का निर्णय किया । जब राजा ने कनकरथ को बुलाकर इस बारे में उसकी राय पूछी तो राजकुमार ने कहा, "पिताजी ! किसी राजा के प्रधान ने आकर बात कही और आप स्वीकार कर लें, यह कैसे उचित है ? प्रस्ताव आया है, परन्तु पात्र को परखे बिना, उसके गुण-दोष जाने बिना, संबंध कैसे बनाया जा सकता है ?" कनकरथ कुमार को विवाह की हड़बड़ी नहीं है, क्योंकि उसके लिए जड़ का महत्त्व नहीं है । कन्या के गुण और योग्यता जाने बिना रूप में आकर्षित होकर, विषय-राग में अंध बनकर संबंध करने के लिए वह तैयार नहीं । कुमार के मन में आत्मा का महत्त्व अधिक है । वह विचार करता है कि 'विषयलंपटता के अंधेपन में यदि कुपात्र के साथ जीवन-संबंध जुड़ गया तो आत्मा को प्रतिदिन आर्तध्यान, असमाधि में बिताना होगा तथा अच्छे सहयोग से आत्महित साधने की अनुकूलता भी नष्ट हो जायेगी ।' उसे तो ऐसी कन्या चाहिए थी जो जैन धर्म के संस्कारों से सजी हो, अपनी हृदय-व्यथा पिता से कहने पर राजा उसे समझाते हुए बोले, "यह अच्छे खानदान की संस्कारी कन्या है । इसमें तू जरा भी शंका मत कर । दुनिया में राजकुमार तो बहुत है, परन्तु इन्हें अपनी कुंवरी के योग्य राजकुमार की तलाश करने की चिंता हुई, यही बताता है कि राजकुमारी विशिष्ट योग्यता से संपन है । अत: मन से शंका निकालकर विवाह कर ले ।"

दूसरे दिन कंबेरीनगरी से आये प्रतिनिधिमंडल को बुलवाकर अपनी सहमति दर्शायी । कंबेरीनगरी के मंत्री ने विनती करते हुए कहा कि "हमारे महाराजा की भावना यह है कि आप हम पर इतनी कृपा करें कि स्वयं युवराज कुंवरी रुक्मणी का पाणिग्रहण करने कंबेरीनगरी में पधारें ।" हेमरथ राजा ने प्रसन्नता से स्वीकार किया । पिता के वचन की खातिर कुमार विवाह के लिए राजी हुआ था । रामचंद्रजी पिता के वचन पालने के लिए बनवास की राह पर निकल पड़े थे । वचन की कीमत होती थी । पिताजी के वचनों

पर कनकरथ को संतोष तो नहीं है, परन्तु दाक्षिण्य गुण के कारण विचार करते हैं कि 'पिताजी के सामने दलील देना ठीक नहीं,' अतः अब कर्म और भवितव्यता के अनुसार जो होना है उसे होने दें। राजा हेमरथ लग्न की तैयारी में लगे।

कुछ समय पश्चात्, माता-पिता का आशीर्वाद लेकर रिसाले के साथ युवराज कनकरथ कंवेरीनगरी की ओर विदा हुए। रथमर्दनपुर से कंवेरीनगरी जाने का रास्ता बहुत बीहड़ था, इसलिए महाराज ने युवराज के साथ सेना, हाथी, घोड़े, रथ, दास-दासी आदि भेजे थे। इन सब से सजी कनकरथ की बारात ऐसी प्रतीत होती थी, मानो कोई शक्तिशाली क्षत्रिय पुत्र विजय-यात्रा के लिए निकला है। हाथी को सुंदर तरीके से सजा कर कनकरथ को उस पर बैठाकर सेना सहित विदाई देते हैं। रिसाला बड़े आनन्द से आगे-आगे प्रयाण करने लगा। रोज सुबह प्रवास प्रारंभ करते हैं और संध्या समय एक स्थान पर पड़ाव डालते। कनकरथ रोज संध्या समय प्रतिक्रमण करते। सूर्यास्त के पहले पूरा दल भोजन समाप्त कर लेता। इस प्रकार रिसाला आगे बढ़ रहा है। रास्ते में क्या होगा आदि भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक १८

श्रावण शुक्ल ५, मंगलवार | दिनांक : २३-७-७४

मासखमण का धर

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंतज्ञानी महापुरुषों का कहना है कि 'हे भव्य जीवों ! यदि आपको मुक्ति की कामना है तो धर्म की आराधना कीजिए।' मुक्ति प्राप्ति के योग्य धर्म की आराधना करने से जीव मुक्ति प्राप्त करता है। तबतक उसे जो भव करने पड़ते हैं, उनमें भी उसे सुख की विपुल सामग्री मिलती हैं। भव भी अच्छी गति की मिलती है। इस जीव को जबतक संसार में रहना पड़ता है तबतक उसे सांसारिक राग से अधिक धर्मकथा का राग रहता है। धर्मकथा के आनन्द से उस आत्मा को अनुभव होता है कि मोह रूपी विष की मारक शक्ति एकमात्र आत्मस्वरूप की पहचान में है। अतः आत्मा में सुंदर तत्त्व के पहचान की जिज्ञासा जागती है जिससे संवेग का रस-रूपी अमृत आत्मा में प्रकट होता है और मोह-रूपी महाविष विलीन हो जाता है। उस समय भौतिक सुख की सामग्री प्राप्त है

पर यह विवेक जागता है कि यह तो मेरे पुण्य-पाप का फल है। परन्तु यह उपादेय नहीं है और मोक्ष का ख्याल आने पर आत्मा ऐसा आनन्द अनुभव करता है, मानो साक्षात् मोक्ष का सुख प्राप्त कर रहा हो।

बंधुओं। चारों पुरुषार्थ में से जब धर्म और मोक्ष में रुचि जागेगी तब मोक्ष की अनुभूति होगी। जब आपके अंदर भरा हुआ मोह का जहर निकल जायेगा तब आपको यह संसार कैसा लगेगा ? जो संसार सुख का सागर लगता था, वह दुःख से भरा प्रतीत होगा। अनित्य और अपूर्ण सुख वाला लगेगा। जब आपके मन में यह भाव जगे कि संसार का सुख मुझे नहीं चाहिए, तब समझिए कि आपमें संवेग प्रकट हुआ है और मोक्ष की जबरदस्त इच्छा जागी है।

'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन के अधिकार का वाचन चल रहा है, जिसे सुधर्मा-स्वामी ने अपने प्रिय शिष्य जंबुस्वामी से कहा, ''महान पुरुषों ने मानव जन्म की महत्ता, विशेषता किसलिए बताई है ? जन्म-जन्म की जंजीर तोड़ने के लिए न कि इसकी कड़ियों को मजबूत करने के लिए। जंजीर को पूर्णतः तोड़ न भी सकें तो थोड़ा ढीला तो कर सकते है।'' गौतमस्वामी ने प्रभु को वंदन-नमस्कार करके पूछा, ''हे प्रभु !

"वंदणएणं भंते जीवे किं जणयइ ? वंदणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ, उच्चागोयं कम्मं निबन्धइ।"

- उत्त. सू. अ-२९

वंदन करने से जीव को क्या लाभ होता है ? वंदन करने से जीव नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है और उच्च गोत्र बाँधता है। आत्मा का पुरुषार्थ, आत्मा की क्रियाएँ, सभी सम्यक्त्व के आधार पर होनी चाहिए, न कि संसार के आधार पर। पुरुषार्थ प्रत्येक मानव करता है। एक का पुरुषार्थ उसे दुर्गति में ले जाता है तो दूसरे का पुरुषार्थ मोक्षगति प्रदान करवाता है। एक का पुरुषार्थ विपरीत दिशा में है तो दूसरे का सही दिशा में। दो-तीन महीने का छोटा बच्चा भी अपने हाथ-पैर हिलाने का पुरुषार्थ करता है। आप भी रात-दिन पुरुषार्थ कर रहे है। किसलिए ? (श्रोताओं में से आवाज : 'धन के लिए।) *'अहो य राओ परितामम्माणे'* रात-दिन यही चिंता कि कहाँ से प्राप्त करूँ ? रात्रि में नींद में भी यही ख्याल रहता है। जहाँ संसार की वासना है, संसार की प्रवृत्ति है, वहाँ संसार का मूल मजबूत होता जाता है। यदि संसार से परे होना है, जन्म, जरा और मरण की शृंखला तोड़नी है तो सबसे पहले आत्मा का निरखना होगा। कभी तो आत्मा से पूछिए कि 'हे चेतन देव ! तू कौन है ? तेरा स्वभाव कैसा है ?' आपका पुत्र यदि एक वर्ष फेल हो जाए उसे आप क्या कहेंगे ? 'तुझे मन लगाकर पढ़ना है या भटकना है ?' पुत्र को आप डाँटते

है, ललकराते हैं, उसका हिसाब लेते हैं। अपनी आत्मा से भी तो कहिए कि पुत्र सफल न हो सका तो एक वर्ष बेकार हो गया, परन्तु तू तो अनंतकाल से भटक रहा है। अब भी तुझे भटकते रहना है या अपने स्वभाव में स्थिर होना है ? पुद्‌गल परावर्तन का थोकड़ा पढ़िए तो आपको ख्याल आयेगा कि हमारी आत्मा अनंतकाल से कितनी भटक रही है ? सम्यक्त्व एक बार आकर, फिर चला जाये तो भी जीव अर्धपुद्‌गल परावर्तन काल में मोक्ष पहुँचता है। यह अर्धपुद्‌गल परावर्तन काल भी कोई थोड़ा-सा समय नहीं है। इतने काल में तो अनंत चौबीसी हो जाती है। परन्तु जीव अनंतकाल से भटक रहा है, उस अनंतकाल के समक्ष यह काल भी अल्प ही कहा जायेगा। चेतन जागृत हो जाये तो इतना समय भी कठिन लगता है।

केवली अवस्था में विचरने वाला आत्मा अनेक जीवों को तारेगा, फिर भी उसे लगता है कि अघाती कर्मों का उदय है इसलिए संसार में रहना पड़ रहा है। हम तो आठों कर्मों से घिरे हुए हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय-चारों घाती कर्म है। घाती कर्म डाल या पत्ते पर आघात नहीं करते बल्कि आत्मा के मूल गुणों पर आघात करते हैं। जिन्होंने घाती कर्मों रूपी दुश्मन को दूर कर दिया है ऐसे केवली भगवान भी क्या कहते हैं ? अघाती कर्मो का उदय है इसलिए सयोगी अवस्था है। अयोगी, शैलेशी अवस्था नहीं है और कंपन दशा है। केवली भगवान को भी अघाती कर्म खटकते हैं। कहिए आठ कर्मों का खटका आपको लगता है ? जब आत्मा जागेगा तब कहेगा कि 'मुझे भौतिक सुख की आकांक्षा नहीं है पर अपना कल्याण कैसे हो ? वह मार्ग ढूँढेगा। जिस प्रकार दर्द सहकर परेशान मरीज डोक्टर के पास जाकर कहेगा कि डोक्टर-साहब ! आप जो कहेंगे, मैं करूँगा, परन्तु मुझे दर्द से बचाइए। यह दर्द तो अवधि तक सीमित है। जन्म-जरा-मरण का रोग अनंतकाल से लगा हुआ है, परन्तु यह रोग अभी तक खटकता नहीं है। जिसे सम्यक्‌दर्शन प्राप्त हुआ है, वीतराग वचनों पर श्रद्धा हुई है, वह इन रोगों को दूर करने के उपाय तलाशेगा।

बंधुओं ! सम्यक्‌दर्शन की शक्ति को कम मत समझिए, सम्यक्‌दर्शन की शक्ति इतनी अधिक है कि उसके समक्ष धन-वैभव का भंडार भी आकर्षणहीन लगता है, चित्त को बहका नहीं सकता, उन्मादी नहीं होने देता। साथ ही, कदाचित पूर्व के अशुभ कर्मों का उदय से दुःख का पहाड़ टूट पड़े तो भी चित्त की समता बनी रहती है। मन दीन और दुःखी नहीं बनता। यह शक्ति सम्यक्‌दर्शन की है। वीतराग शासन और वीतराग वाणी के प्रति अगाध रागभाव और जीव-अजीव आदि नौ तत्त्व के प्रति दृढ श्रद्धा की शक्ति है। देवानुप्रियों ! भरत चक्रवर्ती के पास चौदह रत्न, नौ निधान और छः खंड की विशाल संपत्ति थी, परन्तु इन सब के प्रति उनके अंतर में कोई अनुराग नहीं था। पूर्वभव में सुंदर

धर्म की आराधना करके आये थे। इसी सुसंस्कार के बल पर छः खंड का साम्राज्य
पर भी सम्यक्दर्शन और आत्मसमाधि का अनुभव कर सकते थे। विचार तो
ए, भरत महाराजा के आत्मरमण का वेग दिन-प्रतिदिन कितना वढ़ता गया होगा
रिसाभुवन में केवल ज्ञान प्राप्त कर सके।
क दूसरी बात कहती हूँ। श्रेणिक और कृष्ण महाराजा नरक में भयंकर दुःख भोगं
। नरक में कितने भीषण और प्रचंड दुःख होते है! ये दोनों आत्माएँ समकिती होने
रण नरक के भीषण दुःखों में भी मिथ्यादृष्टि जीवों के समान दूसरों को मारूँ, काटूँ,
दूँ, ऐसी दुष्ट बुद्धि नहीं रखते। वे वहाँ भी यही सोचते है कि 'यह सब हमारे किये
कर्मों का उदय है।' किये हुए कर्म तो जीव को भोगने ही पड़ते हैं। इस प्रकार
कर्मो का उदय समझकर, अपने चित्त को असमाधि में नहीं जाने देते। दूसरों के
त सह लेते है, परन्तु किसीको मारना और छेदन-भेदन करने से परहेज करते है।
भयंकर दुःख के समय चित्त की समाधि बनाये रखना आसान काम नहीं है।
क्दर्शन के प्रभाव से ही वे अपने किये अशुभ कर्म का ख्याल करते हैं और
ताप करते हैं। उन्हें नरक के भयंकर दुःखों का उतना दुःख नहीं होता जितना अपने
त अशुभ कर्मों का होता है। श्रेणिक और कृष्ण महाराजा समकित के प्रभाव से
के भयंकर दुःखों को सहते हुए भी अपनी समाधि-भाव नहीं छोड़ते। वे अभी
ग नहीं बने हैं, इसलिए बाहर का दुःख मन को प्रभावित तो करता है, परन्तु दुःख
ाले के प्रति जरा भी द्वेष या तिरस्कार का भाव नहीं। सम्यक्दर्शन की यह शक्ति
धुओं! कदाचित आप सोचते हों कि विपुल वैभव-विलासी सुख में और विपत्ति
मय में आत्म-समाधि कैसे रह सकती है? इसके उत्तर के लिए भरत महाराजा,
क राजा और कृष्ण महाराजा के उदाहरण नजरों के समक्ष रखिए। ताकि हम भी
त्ति और संपत्ति में, सुख और दुःख में समाधिभाव रख सकें।
म्यक्त्वी आत्मा को आपके भौतिक सुख मिल जाएँ तो वह मन में क्या
र करता है? मुझे कहाँ चारों ओर का सुख मिला है कि विष्टा के कीड़े की
उसमें सुख मानूँ। कहाँ शालिभद्र और भरत महाराजा का अपार सुख और
मेरा सुख। इसी प्रकार जब उस पर दुःख आता है तव सोचता है ऐसे क्या
के पहाड़ मुझ पर टूट पड़े है कि मैं इतना दीन और दुःखी बन जाऊँ! कहाँ
क-कृष्ण का नरक का भयंकर दुःख। कहाँ जंगल में अकेले त्यागे जाने का
का दुःख और कहाँ मेरा दुःख! यदि ऐसे विचार आते हों तो समझना चाहिए
सम्यक्त्व का स्पर्श हमें भी हुआ है। सम्यक्दर्शन का यह प्रभाव है कि भौतिक
के समय इस सुख के पीछे आने वाले रागादि पापों से उसका अंतर दुःखी

रहता है । समकिती बाहर से सुखी, परन्तु अंदर से दुःखी होता है जबकि संयमी साधक बाहर से दुःखी परन्तु अंदर से सुखी होता है ।

संयमी साधक को बाहर से, बाइस परिषह आदि के कारण कष्टभरा जीवन होता है, परन्तु अंतर में संयम स्वाध्याय, शास्त्र-वांचन, निष्पापता, वीतराग देव का शासन और उनकी वाणी प्राप्त होने का असीम आनन्द होता है । आप सोचेंगे कि ठीक है साधु को बाहर से दुःखी और अंदर से सुखी कहा, वह सही लगता है, परन्तु समकिती को बाहर से सुखी और अंदर से दुःखी क्यों कहा गया ? चलिए बताती हूँ । देव-गुरु, वीतराग का शासन और केवली का धर्म मिलने के कारण समकिती बाहर से सुखी है, परन्तु ऐसा उत्तम वीतराग शासन पाने के बाद भी संसार में रहकर आरंभ-समारंभ करना पड़ता है, अठारह पापों का सेवन करना पड़ता है, व्यापार करना पड़ता है – इन सब पापों की भयंकरता देखकर उसका हृदय दुःखी हो जाता है । मुनियों ने तो इन सब पापों का त्याग कर दिया है, इसलिए उनके अंतर में यह दुःख नहीं है । मोक्षमार्ग के पथिक बनाकर, मोक्ष तक पहुँचाने वाले संयम आदि की प्राप्ति का असीम सुख उनके अंतर में है ।

वंधुओं ! दूसरे देवलोक तक के देव, जो विपुल विलास और ठाठ-बाट भोगते हैं, वो तिर्यंच में भी सुअर आदि की जाति में जायें तो उनकी वहाँ कैसी दशा हुई होगी ? वनस्पति की स्वादिष्ट सब्जी बनाकर बड़े शौक से खाते हों । इस वनस्पति में भी जीव देवगति से च्यवन करके आते हैं । आपको साग-भाजी बहुत प्रिय है पर एक क्षण के सुख की खातिर अनंतकाल का दुःख बाँध लेते हैं । इसलिए त्याग के सुख जैसा कोई सुख नहीं और वैराग्य के आनन्द जैसा कोई आनन्द नहीं । आप जिसे सुख मान रहे हैं, वह सुख वस्तु के कारण नहीं वरन् वस्तु के प्रति राग के कारण अनुभव होता है । जहाँ राग हुआ वहाँ सुख का अनुभव हुआ और जहाँ रोग हुआ वहाँ दुःख का । उदाहरणस्वरूप आप खीर-पूड़ी का भोजन कर रहे है तो खीर के प्रति राग हुआ और आप खुश हो गये । खीर के बाद श्रीखण्ड परोसा गया को श्रीखण्ड पर राग आ गया और खीर पर कम हो गया, इसलिए खीर से आप नाखुश हो गये । एक अन्य उदाहरण से समझिए, कि पुण्योदय से आपने लाख रुपये कमाए और उसमें सुख महसूसा । परन्तु इसी पैसे के कारण घर में क्लेश हुआ, दूकान बँट गया, भाई अलग हो गया, तो सुख होगा या दुःख ? (श्रोताओं में से आवाज : 'दुःख होगा ।') अथवा आपने लाख रुपया कमाया और किसी और ने पाँच लाख कमाया तो आपके मन के भाव क्या होंगे ? मन में ईर्ष्या की आग भड़क उठेगी, अतः दुःख होगा । क्या आपके लाख रुपये कहीं चले गये ? नहीं, वे तो आपके पास ही है । फिर सुख के वदले दुःख क्यों हुआ ? वह सुख लाख रुपये से नहीं पर उसके प्रति राग के कारण था, इसलिए सुख लगा और दूसरे का पाँच लाख देखकर अपने लाख रुपये पर से राग हट गया और ईर्ष्या के कारण मन दुःखी हो गया । संसार के विष

सुख राग और विषाद से भरे हुए हैं। घड़ी में उस पर राग तो अगली घड़ी में द्वेष-विषाद होता है। ऐसे राग-द्वेष से भरे संसार में सच्चा सुख कहीं दिखता है, भला ? राग और द्वेष सच्चे सुख को नष्ट करते हैं। सच्चा सुख राग के त्याग में है। राग और द्वेष तो जहर है। जहाँ सुख का भ्रम और सुख की कल्पना मात्र है वहाँ सच्चा सुख कैसे मिलेगा ? आत्मा से कहिए कि हे आत्मन ! तू दुनिया के विषय-भोग, पैसा-प्रतिष्ठा, पुत्र परिवार और खाने-पीने में सुख क्यों मान रहा है ? यह सुख सुख नहीं है। जबतक उस पर राग भाव है वह सुख लगेगा। अतः इस राग का त्याग कर।

इस संसार का सुख कैसा है। जैसे घोर अंधेरी रात में बिजली की चमकार। बिजली की झलक कितनी देर रहती है ? उसी प्रकार बिजली की झलक के समान यह सुख भी क्षणिक है और पीछे दुःख की लंबी अंधेरी रात है। संसार सुख के राग में रंगकर महान आरंभ-समारंभ के पाप, कितनी हिंसा, क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषायों में रत है। इसीलिए जीव अनंतकाल से इस विराट विश्व में भटकता रहा है। अतः अब शांत हो जाइए, अपने स्वभाव में स्थिर होकर राग-विषाद की अकुलाहट बंद करने पर ही सच्चे आत्मिक सुख का आनन्द प्राप्त होगा। लेकिन संसार की विडम्बना यदि विडम्बना रूप लगे ही नहीं तो संसार में भटकने की थकान भी कैसे महसूस होगी ?

जब सम्यक्त्व का दिया दिल में जगेगा, तब मन में आयेगा कि में ऐसा निष्ठुर और विषयों का लोभी कबतक बना रहूँगा ? पुत्र-परिवार के भरण-पोषण के लिए ढेरों पाप के कार्य करने पड़ते हैं और इसीमें अपनी पूर्व की पुण्याई गँवा रहा हूँ, तो इस आरंभ-समारंभ से कब निवृत्ति लूँगा ? कर्मबँधन से मुक्त करनेवाली वीतराग भगवान की वाणी, सद्गुरु का योग और धर्माराधना करने का अनुपम अवसर प्राप्त हुआ है फिर भी संसारी सुखों के राग में अंधा बनकर इस अवसर को खो रहा हूँ। प्रभु ! मेरा उद्धार कैसे होगा ? सम्यक्त्वी को संसार में रहना पड़ता हे इसलिए रहता है, परन्तु अंतर में पाप का पश्चात्ताप चलता रहता है।

राजा श्रेणिक का पुत्र कोणिक, भगवान महावीर का परम भक्त था। श्रेणिक राजा के समान ही कोणिक भी भगवान का भक्त था। भगवान कहाँ विचर रहे हैं यह समाचार लाने के लिए उसने लोगों को नियुक्त किया था। जबतक उनके अनुचरों द्वारा भगवान महावीर का समाचार नहीं मिलता तबतक भोजन ग्रहण नहीं करते थे। आज तो कइयों के यहाँ संत स्वयं ही आ जाएँ को उठकर वंदन करने की भी फुरसत नहीं है। यह जैनकुल यों ही नहीं मिल गया है। भगवान महावीर कह गये हैं कि "मैंने जाति का मद किया तो मुझे भी नीच गोत्र में उत्पन्न होना पड़ा।" हरिकेशीमुनि ने घृणा की तो चांडालकुल में जन्म लेना पड़ा। चांडालकुल में जन्मे हुए को कोई दीक्षा नहीं देता। उसे जातिस्मरण ज्ञान हो तो दीक्षा लेता है। आपका तो जबरदस्त पुण्योदय है।

जैनकुल, वीतराग वाणी का श्रवण, सुपात्र दान का अवसर आदि मिल गया है। परन्तु भाग्यशाली ही इन सब का लाभ उठा सकता है।

एक देव गरीब आदमी पर प्रसन्न हुआ। उसकी देवी ने कहा, "इस गरीब आदमी पर आपको दया आई है तो उसका दुःख दूर कर दीजिए।" देव बोले, "उसे मैं चाहे कुछ भी दूँ पर वह सुखी नहीं होगा।" देवी ने पूछा, "भला क्यों नहीं होगा ?" देव ने कहा, "उसकी किस्मत ही ऐसी है।" यह बताने के लिए उस आदमी के रास्ते में उन्होंने एक कलश रख दिया। गरीब आदमी के मन में विचार आया कि 'कदाचित मैं अंधा हो जाऊं तो कैसे चलूँगा ?' यह सोचकर आँखों में पट्टी बाँधकर चलने लगा और उसे कलश दिखाई नहीं दिया। वह गरीब ही रह गया। देव बोले, "देख देवी, जब हमने दिया तो आँखों में पट्टी बाँध ली।" इसी प्रकार जैनशासन, उत्तम कुल और उत्तम जैन धर्म प्राप्त हुआ है लेकिन (श्रोताओ में से आवाज : 'आँखों पर पट्टी बाँध दी है।')

मेरे श्रमणोपासकों ! आपसे कोई पूछे कि आप कौन हैं ? तो ऐसा जवाब दीजिए कि वह भी आपको जान सके। मेरे महावीर के श्रावक खोटे रुपये जैसे नहीं होते, उनकी झनकार तो रानी छाप चाँदी के सिक्के जैसी होती है। पूछने वाले से कह दीजिए कि मैं शासनपति भगवान महावीर का श्रमणोपासक हूँ, जैन हूँ। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनेवाला हूँ।' आत्मा के सम्राट के समक्ष अन्य सभी सम्राट दुर्बल है। ऐसे वचनों से शासन की शोभा बढ़ेगी।

राजा कोणिक ने भगवान का समाचार देने के लिए लोग नियुक्त किये थे ताकि भगवान किस क्षेत्र में विचरण कर रहे है, उसकी जानकारी मिले। प्रभु के प्रति ऐसी भक्ति थी। आचार्य मानतुंग भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं कि - हे प्रभु !

त्वत्संस्तवेन भवसंतति सन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीर भाजाम्
आक्रान्त लोक मलिनीलम शेषमशु
सूर्यांशु भिन्नमव शार्वरमंधकारम् ।

भक्तामर स्तोत्र - श्लोक ७

अर्थात् हृदय के शुद्ध भाव से तेरा नाम स्मरण करें तो एक भव के नहीं भव-भव के पाप क्षणभर नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार रात्रि के गहन अंधकार में सूर्य की एक किरण भी आये तो अंधेरा नष्ट हुए बिना नहीं रहता है, उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक तेरी भक्ति करने से पाप नष्ट हुए बिना नहीं रहते।

ऐसे नियम धारण करनेवाले राजा कोणिक एक बार भगवान के दर्शन के लिए पधारे। भगवान परिषद में धर्मकथा कह रहे थे। धर्मकथा पूर्ण होने के पश्चात् कोणिक ने वंदन, नमस्कार करके अपनी जिज्ञासा प्रभु के समक्ष रखी कि "हे त्रिलोकीनाथ ! मैं

यहाँ से मरकर कहाँ जाऊँगा ?" भगवान ने कहा, "कोणिक ! तू धर्मकथा श्रवण करता है । अपने कर्तृत्व के आधार पर विचार कर ले कि तू यहाँ से मरकर कहाँ जायेगा ?" हमने जैसे कर्म किये हैं वह तो हमारी आत्मा जानती है । बाहर से सफेद पोश बने फिर रहे हो पर अंदर से कितने काले कर्म किये है, यह हमारी आत्मा को तो ज्ञात है । सामान्य-सी बात में आर्तध्यान आ जाता है । अपनी आत्मा में राग-द्वेष तथा आर्तध्यान कितना भरा है, इसकी साक्षी आत्मा स्वयं ही है । एक बार मिथ्यात्व दूर होगा तभी जीव को विचार आयेगा कि इस भव में पाप की पोटली को झाड़ने के लिए आया हूँ फिर पाप का बोझ सिर पर क्यों रख रहा हूँ ? पाप का इकरार करने लगेगा । जैसे मुँह में पानी भरा हो तो बोलना संभव नहीं होता, वैसे ही अंतर में यदि पाप का पानी भरा होगा तबतक शुद्ध आराधना संभव नहीं होगी ।

कोणिक ने पूछा, "भगवन् ! मैं मरकर कहाँ जाऊँगा ?" प्रभु ने कहा, "तू स्वयं निर्णय कर ले कि तू मरकर कहाँ जायेगा ?" आत्मा क्षण-क्षण का विचार करेगा कि मैंने कैसे-कैसे पाप किये है तो नरक-तिर्यच गति सामने दिखने लगेगा ! 'सूयगडांग सूत्र' का पाठ है कि मरण का भय ध्यान में रखकर तू पाप से पीछे हट । कुछ आत्माएँ जब विदा लेती है तो लोग कहते है कि हमारा प्राण गया । भगवान मोक्ष में जाने वाले थे, उस समय राजा-महाराजा, साधू-श्रावक तो क्या इन्द्र तक आकर उनके चरणों में गिरकर विनती करते है, "हे प्रभु ! आप दो घड़ी रुक जाइए ।" लेकिन भगवान कहते है, *'न भूतो न भविष्यति'* न कभी हुआ है न होगा । जिसके जाने पर सब दुःखी हो, वे जीवन जीकर गये और हम भी जीवन जी रहे है । वर्द्धमान भगवान कब बने ? उग्र साधना की तब ।

राजकुमार वर्द्धमान असीम संपत्ति और राज-वैभव त्यागकर संयमी बने । वे उसी भव में मोक्ष जाने वाले चरमशरीरी जीव थे । फिर भी साढ़े बारह वर्ष और एक पक्ष तक घोर तपस्या करने के बाद केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर सके । मोक्ष में प्रयाण करते समय केवली को तप करने की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु सोलह प्रहर तक अखंड देशना (प्रवचन) करने से स्वतः ही बेला हो गया । तप के बिना कर्म कुंद नहीं होते । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २९वें अध्ययन में भगवान से पूछा गया कि "हे मेरे नात् ! *तवेणं भन्ते जीवे किं जणयइ ? तवेणं वोदाणं जणयइ ।* तप से जीव को कौन-सा गुण प्राप्त होता है ? तप से पूर्व में बंधे कर्मों का नाश होता है । तप आत्मा को पदवी दिलाने का इकरार है । जैसे कर्जदार स्वयं आकर पैसे चुकाये और आप उसके पास माँगने जाएँ, दोनों में अंतर है या नहीं ? देनदार खुद आकर कर्ज चुकायेगा तो आप क्या कहेंगे ? भाई, ऐसी जल्दी क्या थी ? तेरी तिजोरी में है या मेरी तिजोरी में क्या फर्क है । यदि कर्जदार चुकाने वाला नहीं है तो आप उसे तगादा करेंगे और जबतक पैसा नहीं देगा

फेरे लगाते रहेंगे। वैसे ही कर्म भी देनदार है। सत्ता में पड़े हुए है। यदि तप द्वारा कर्म क्षय करेंगे, तो देनदार के स्वयं आकर कर्ज चुका देने जैसे उदय में पड़े कर्म उदीरणा के काल शीघ्र भुगत लिये जायेंगे। कर्म सत्ता में पड़े हुए है। जबतक विपाक उदय नहीं हुआ है तबतक सत्ता में पड़े हुए कर्म को साफ करने के लिए तप महान औषधि है, जड़ी-बूटी है। तप से आत्मशुद्धि के साथ शारीरिक शुद्धि भी होती है। रोग का प्रकोप होने पर डोक्टर के कहने से परहेज करते है, पर यहाँ परहेज करने, त्याग करने से भी पाप नहीं घटता, जबकि स्वेच्छा से छोड़ने पर लाभ होता है। भगवान ने परिग्रह की मर्यादा करने की बात कही है। आज जीवन में यदि यह परिग्रह व्रत ही आ गया होता तो समाजवाद, साम्यवाद कोई वाद नहीं रहता। सिर्फ एक आत्मवाद रहता। लेकिन अभी तक जीव समझा न है इसलिए भटक रहा है।

भगवान ने कहा, "कोणिक ! तू स्वयं विचार कर ले। तेरे पिता श्रेणिक तुझे राज्य सौंपने वाले ही थे, उन्हें राज्य नहीं चाहिए था। फिर भी इस राज्य सुख की खातिर तूने भविष्य में तीर्थंकर बनने वाले पवित्र पिता को कैद करवाया। कैद करके भी तेरा मन न भरा तो रोज ५०० चाबुक उनपर चलवाता रहा। तेरे इस पिता का तुझ पर प्रेम सामान्य रूप का नहीं था। तुझे घूरे में फेंक दिया गया था, वहाँ कुत्ते ने तेरी अंगुली कचर डाली थी और उससे मवाद बहने लगा था। उस समय तेरे यही पिता तुझे घूरे से उठाकर लाये थे और तेरी अंगुली का मवाद चूसकर तुझे दुःखमुक्त किया था। ऐसे पिता को तूने लोहे की बेड़ियों से जकड़ा और चाबुक लगवाई, फिर भी उनके मन में यह विचार नहीं आया कि कहाँ मेरा अभयकुमार जैसा पवित्र पुत्र और कहाँ यह कोणिक? उ उन्होंने सोचा कि अहो ! अभयकुमार और नंदा आदि रानियों ने दीक्षा लेकर आत्मसाधना की और मैं राज्य में पड़ा रहा, इसीलिए यह स्थिति आई। हे आत्मा तू दीन न बनना। तेरे किये कर्म ही उदय में आये है। अतः खुशी से भोग ले। इस प्रकार उन्होंने जरा भी तेरा दोष नहीं देखा।

पद्मावती के एक वचन की खातिर मामा के साथ युद्ध छेड़ दिया। चेला राजा का नियम था कि सामने वाला जबतक हथियार न उठाये तबतक शस्त्र न चलाना और शरणागत की रक्षा करना। ऐसे चेला राजा के साथ लड़ने चला। युद्ध में कितने जीवों का नाश हो गया। तेरे ये कर्म तुझे कहाँ ले जायेंगे? "प्रभु ! मुझे बचाइए।" "मैं बचाव कैसे कर सकता हूँ? तेरे आयुष्य का बँध पड़ चुका है अर्थात् छट्ठी नरक में जाना निश्चित है। नरक में जाने से अब तुझे कोई नहीं बचा सकता।" "भगवन् ! कोई उपाय तो बताइए। मैं आपका परम भक्त।" भगवान ने कहा, "जो बँध पड़ गया है उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता।" पाप का पश्चात्ताप करने लगा। "प्रभु ! मेरी भूलों

ए क्षमा माँगता हूँ।" इस समय अंतर का पश्चात्ताप इतना गहरा था कि यदि आयुष्य । बँध न पड़ा होता तो वह तिर जाता। अपने आयुष्य का बँध कब होगा, यह ज्ञात हीं है; इसलिए हर क्षण जागृत रहने की जरूरत है। यहाँ कोर्ट के मुकदमे में घूस-रिश्वत कर फैसला बदलवा सकते है। पर कर्म का कायदा अटल है, इसमें कुछ नहीं बदल कता। इसलिए कर्म करते समय ही सावधान रहना आवश्यक है। आज आराधना का न है, आज मासखमण का थर है। आप निश्चित कीजिए कि क्या करना है?

नेसवूं होय तो नेसी जाजो, गाड़ी उपड़ी जाय छे,
चेतवुं होय तो चेती जाजो, गाड़ी उपड़ी जाय छे।
सत्संगरूपी सिग्नल बतावी, लाइन क्लियर थाय छे,
धर्म नीतिना पाटा उपर गाड़ी दोड़ी जाय छे।

मोक्ष नगर में जाने की गाड़ी माटुंगा सेन्ट्रल से छूटने वाली है। इस गाड़ी में चार क्लास । पहला एअरकंडिशन फर्स्ट क्लास, दूसरा फर्स्ट क्लास, तीसरा सेकन्ड क्लास और था थर्ड क्लास। जो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करेंगे उन्हें एअरकंडिशन फर्स्ट लास की टिकट मिलेगी, क्योंकि इसमें जीवन-भर का प्रत्याख्यान लिया जाता है। ते-पीते हुए भी यह व्रत सरलता से पाला जा सकता है। ब्रह्मचर्य के समान कोई नहीं है। *'तवेसु वा उत्तम बंभचेरं'* ब्रह्मचर्य व्रतों में श्रेष्ठ है। ब्रह्मचारी के चरणों देवता तक झुकते है।

देवदानव गंधव्वा, जक्ख रक्खस्स किंनारा।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति ते॥

- उ. सू. अ-१६, गा-१६

ब्रह्मचर्य जैसे दुष्कर व्रत पालने वाले के चरणों में देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, न्नर सभी नमन करते हैं। चार मुनि, सिंह की गुफा, नाग के बिल और वेश्या के यहाँ तुर्मास करके लौटे तो गुरु ने वेश्या के यहाँ चातुर्मास करके आने वाले शिष्य को न बार दुष्कर कहा जबकि अन्य को एक बार। तीन बार दुष्कर कहने का कारण यह कि वेश्या के घर में रहकर ब्रह्मचर्य पालन करना आसान काम नहीं है। भगवान ने इस परिषहों में स्त्री परिषह भी बताया है। वेश्या ने मुनि को चलायमान करने के लिए संभव उपाय किये, पर वे अपने चारित्र से जरा भी नहीं डिगे। उनके चारित्र के प्रभाव वेश्या सच्ची श्राविका बन गयी। श्राविका तो बनी और डिगने वालों को सही मार्ग र भी लाने लगी। जो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेंगे उन्हें एअरकंडिशन फर्स्ट क्लास की कट मिलेगी। जो मासखमण करेंगे उनका तीस दिन के बाद पारणा होगा। इसलिए

...रखते रहेंगे। वैसे ही कर्म भी देनदार है। सत्ता में पड़े हुए है। यदि तप द्वारा क... करेंगे, तो देनदार के स्वयं आकर कर्ज चुका देने जैसे उदय में पड़े कर्म उदीरणा के ब... शीघ्र भुगत लिये जायेंगे। कर्म सत्ता में पड़े हुए है। जबतक विपाक उदय नहीं हु... तबतक सत्ता में पड़े हुए कर्म को साफ करने के लिए तप महान औषधि है, जड़ी-... है। तप से आत्मशुद्धि के साथ शारीरिक शुद्धि भी होती है। रोग का प्रकोप होने पर डॉ... के कहने से परहेज करते है, पर यहाँ परहेज करने, त्याग करने से भी पाप नहीं घट... जबकि स्वेच्छा से छोड़ने पर लाभ होता है। भगवान ने परिग्रह की मर्यादा करने की... कही है। आज जीवन में यदि यह परिग्रह व्रत ही आ गया होता तो समाजवाद, साम्यव... कोई वाद नहीं रहता। सिर्फ एक आत्मवाद रहता। लेकिन अभी तक जीव समझा ... है इसलिए भटक रहा है।

भगवान ने कहा, "कोणिक ! तू स्वयं विचार कर ले। तेरे पिता श्रेणिक तुझे रा... सौंपने वाले ही थे, उन्हें राज्य नहीं चाहिए था। फिर भी इस राज्य सुख की खातिर तू... भविष्य में तीर्थंकर बनने वाले पवित्र पिता को कैद करवाया। कैद करके भी तेरा ... न भरा तो रोज ५०० चाबुक उनपर चलवाता रहा। तेरे इस पिता का तुझ पर प्रेम सामान... रूप का नहीं था। तुझे घूरे में फेंक दिया गया था, वहाँ कुत्ते ने तेरी अंगुली कचर डा... थी और उससे मवाद बहने लगा था। उस समय तेरे यही पिता तुझे घूरे से उठाकर... लाये थे और तेरी अंगुली का मवाद चूसकर तुझे दुःखमुक्त किया था। ऐसे पिता ... तूने लोहे की बेड़ियों से जकड़ा और चाबुक लगवाई, फिर भी उनके मन में यह विच... नहीं आया कि कहाँ मेरा अभयकुमार जैसा पवित्र पुत्र और कहाँ यह कोणिक ? उन्हें... उन्होंने सोचा कि अहो ! अभयकुमार और नंदा आदि रानियों ने दीक्षा लेकर आत्मसाधन... की और मैं राज्य में पड़ा रहा, इसीलिए यह स्थिति आई। हे आत्मा तू दीन मत... बनना। तेरे किये कर्म ही उदय में आये है। अतः खुशी से भोग ले। इस प्रकार उन्होंने... जरा भी तेरा दोष नहीं देखा।

पद्मावती के एक वचन की खातिर मामा के साथ युद्ध छेड़ दिया। चेला राजा का नियम था कि सामने वाला जबतक हथियार न उठाये तबतक शस्त्र न चलाना और शरणागत की रक्षा करना। ऐसे चेला राजा के साथ लड़ने चला। युद्ध में कितने जीवों का नाश हो गया। तेरे ये कर्म तुझे कहाँ ले जायेंगे ? "प्रभु ! मुझे बचाइए।" "तेरा बचाव कैसे कर सकता हूँ ? तेरे आयुष्य का बँध पड़ चुका है अर्थात् छट्ठी नरक में जाना निश्चित है। नरक में जाने से अब तुझे कोई नहीं बचा सकता।" "भगवन् ! कोई राह तो बताइए। मैं आपका परम भक्त।" भगवान ने कहा, "जो बँध पड़ गया है उसमें जरा भी परिवर्तन नहीं हो सकता।" पाप का पश्चात्ताप करने लगा। "प्रभु ! मेरी भूलों

ाए क्षमा माँगता हूँ ।" इस समय अंतर का पश्चात्ताप इतना गहरा था कि यदि आयुष्य ा बँध न पड़ा होता तो वह तिर जाता । अपने आयुष्य का बँध कब होगा, यह ज्ञात हीं है, इसलिए हर क्षण जागृत रहने की जरूरत है । यहाँ कोर्ट के मुकदमे में घूस-रिश्वत कर फैसला बदलवा सकते है । पर कर्म का कायदा अटल है, इसमें कुछ नहीं बदल कता । इसलिए कर्म करते समय ही सावधान रहना आवश्यक है । आज आराधना का न है, आज मासखमण का धर है । आप निश्चित कीजिए कि क्या करना है ?

नेसवूं होय तो नेसी जाजो, गाड़ी उपड़ी जाय छे,
चेतवुं होय तो चेती जाजो, गाड़ी उपड़ी जाय छे ।
सत्संगरूपी सिग्नल नतावी, लाइन क्लियर थाय छे,
धर्म नीतिना पाटा उपर गाड़ी दोड़ी जाय छे ।

मोक्ष नगर में जाने की गाड़ी माटुंगा सेन्ट्रल से छूटने वाली है । इस गाड़ी में चार क्लास । पहला एअरकंडिशन फर्स्ट क्लास, दूसरा फर्स्ट क्लास, तीसरा सेकन्ड क्लास और ौथा थर्ड क्लास । जो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करेंगे उन्हें एअरकंडिशन फर्स्ट लास की टिकट मिलेगी, क्योंकि इसमें जीवन-भर का प्रत्याख्यान लिया जाता है । ाते-पीते हुए भी यह व्रत सरलता से पाला जा सकता है । ब्रह्मचर्य के समान कोई प नहीं है ।*'तवेसु वा उत्तम बंभचेरं'* ब्रह्मचर्य व्रतों में श्रेष्ठ है । ब्रह्मचारी के चरणों देवता तक झुकते है ।

देवदानव गंधव्वा, जक्ख रक्खस्स किन्नारा ।
नंभयारि नमंसंति, दुक्करं जे करंति ते ॥

- उ. सू. अ-१६, गा-१६

ब्रह्मचर्य जैसे दुष्कर व्रत पालने वाले के चरणों में देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर सभी नमन करते हैं । चार मुनि, सिंह की गुफा, नाग के बिल और वेश्या के यहाँ चातुर्मास करके लौटे तो गुरु ने वेश्या के यहाँ चातुर्मास करके आने वाले शिष्य को ीन बार दुष्कर कहा जबकि अन्य को एक बार । तीन बार दुष्कर कहने का कारण यह कि वेश्या के घर में रहकर ब्रह्मचर्य पालन करना आसान काम नहीं है । भगवान ने ाइस परिषहों में स्त्री परिषह भी बताया है । वेश्या ने मुनि को चलायमान करने के लिए र संभव उपाय किये, पर वे अपने चारित्र से जरा भी नहीं डिगे । उनके चारित्र के प्रभाव े वेश्या सच्ची श्राविका बन गयी । श्राविका तो बनी और डिगने वालों को सही मार्ग र भी लाने लगी । जो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेंगे उन्हें एअरकंडिशन फर्स्ट क्लास की टिकट मिलेगी । जो मासखमण करेंगे उनका तीस दिन के बाद पारणा होगा ।

उन्हें फर्स्ट क्लास की टिकट मिलेगी । सोलह उपवास करनेवाले को सेकन्ड क्लास के और अट्ठाई करनेवालों को थर्ड क्लास की टिकट मिलेगी । इससे नीचे छक्काय, पंचोले (पचोला) आदि करनेवालों का नंबर लोकलगाड़ी में होगा । अत: आप सब तप की गाड़ी से जुड़ जाइए । यह गाड़ी सत्संग रूपी सिग्नल और धर्मनीति की पटरियों पर दौड़ रही है । संतों को चातुर्मास में कब आनन्द आता है ? जितनी अधिक धर्माराधना हो, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य की महक से संघ गूँजता हो तब ।

नागेश्री की देवरानियाँ भोजन करके अपने-अपने घर गयीं । कड़वी तुंबी की सब्जी पड़ी हुई है । योगानुयोग से उस समय कौन पधारेगा और आगे क्या घटेगा आदि सब भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

कनकरथ अरिमर्दन के वनप्रदेश में : कनकरथ कुमार रिसाले के साथ प्रवास करते हुए राजा अरिमर्दन के वन-प्रदेश में पड़ाव डालते हैं । उन्हें कल्पना तक न थी कि इस वन का कोई राजा है और वह भयंकर भी है । कनकरथ कुमार संध्या समय प्रतिक्रमण करने बैठे हैं । एक आदमी आकर मंत्री से पूछता है, "आपका मालिक कौन है ?" "राजा हेमरथ के राजकुमार कनकरथ हमारे मालिक हैं, वे प्रतिक्रमण कर रहे हैं ।" प्रतिक्रमण क्या ? आत्मा में लगे पापों का प्राक्षालन करना । कुमार का प्रतिक्रमण पूरा होने पर, उस व्यक्ति ने पूछा कि, "महाराज अरिमर्दन की इस भूमि पर पड़ाव लेने से पहले आपश्री ने उनकी अनुमति मंगवाई थी क्या ? हमारे राज्य की सीमा में किसकी आज्ञा से बैठे हैं ?" "इसमें पूछने की क्या बात है । हम तो यात्री हैं और यात्रियों के लिए ऐसा कोई नियम नहीं हो सकता । देशांतर जाने के मार्ग पर कोई भी प्रवासी आ-जा सकता है ।" परन्तु उस व्यक्ति ने कहा, "आपने हमारे राजा का नियम भंग किया है, अत: वापस लौटिए ।" कनकरथ ने बहुत शान्ति से कहा, "महाशय ! हम इस प्रदेश तथा इसके मार्ग से अपरिचित हैं । हमें बस इतना ज्ञात है कि समग्र भारत में कोई भी, कहीं भी बिना किसी रोक-टोक के स्वाधीनता से घूम-फिर सकता है, विश्राम कर सकता है । हमें इस प्रदेश से कुछ भी लेने की मंशा नहीं है । आप अपने महाराजा से कहिए कि हम रात-भर के मुसाफिर हैं और प्रात:काल यहाँ से चले जायेंगे । आपके राजा को भी देशांतर में कहीं जाना हो तो क्या वे बीच में पड़ने वाले अन्य राज्[illegible]ओं से [illegible] लिए उन सबसे अनुमति माँगेंगे ?" व्यक्ति के समझ में [illegible] हाँ [illegible], "तब की बात तब देखेंगे । अभी तो आप बिना [illegible] हुए हैं, अत: अपराधी हैं । या तो अपने गनाह की [illegible] युद्ध [illegible] ।"

कनकरथ कुमार का मंत्री बोला, "आपके राजा ने किसी के साथ युद्ध किया है ?" "हाँ, बहुत संग्राम किये है ।" कनकरथ बोले, "संग्राम नहीं किये होंगे वरन् निर्बल यात्रियों के काफिले लूटे होंगे । अपने राजा से कह दो कि हम ऐसे नियमों को नहीं मानते । यदि उन्हें युद्ध का मजा लेना ही हो तो हम यहाँ उनकी प्रतीक्षा में हैं । वे अपनी सेना तैयार कर सकें इसलिए हम सुबह अपना पड़ाव नहीं उठायेंगे । एक रात और रुक जायेंगे ।" कनकरथ कुमार ने देखा कि यह राजा मिथ्याभिमानी है इसलिए गलत तरीके से लड़ना चाहता है और मेरे पिता तथा मेरे प्रति ओछी प्रवृत्ति रखता है । पिताजी की गौरव-रक्षा के लिए एक बार उसे उसका सही स्थान बताना जरूरी है । अब कनकरथ कुमार और अरिमर्दन राजा के बीच कैसे युद्ध होगा और कनकरथ कैसे विजयी होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक १९

श्रावण शुक्ल ६, बुधवार | दिनांक : २४-७-७४

सच्चा ज्ञान

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शासनपति श्रमण भगवान महावीरस्वामी के मुखारविन्द से निसृत वाणी का नाम है सिद्धान्त । 'ज्ञाताजी सूत्र' में जंबुस्वामी अत्यन्त विनम्रतापूर्वक सुधर्मास्वामी से पूछते हैं । "ज्ञान कहाँ रहता है ?" "जहाँ विनय, विवेक, नम्रता और सरलता हो वहीं ज्ञान टिकता है ।" फिर यह तो शाश्वत ज्ञान है । सिंहनी का दूध रखने के लिए स्वर्ण-पात्र आवश्यक है । एक तो सिंहनी का दूध मिलना मुश्किल है, मिल जाये तो उसे संभालना कठिन है । इसी प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना मुश्किल है और प्राप्त करने के पश्चात् टिकाये रखना भी कठिन है । बहुत-से लोग कहते हैं कि 'हम बहुत मेहनत करते है फिर भी ज्ञान दिमाग में बैठता नहीं ।' यदि उनका पुरुषार्थ प्रबल होगा तो कुछ न कुछ ज्ञान मिलेगा ही । ज्ञानवरणीय कर्म के उदय से ज्ञान न प्राप्त कर सकते हों, परन्तु उससे अधिक जो कुछ सीखा है उसका स्वाध्याय - अनुप्रेक्षा आदि न करते रहने से सीखा हुआ भूलते है और नये ज्ञानावरणीय कर्म बाँध लेते है । तवे पर रोटी (पलटी) फेरी न जाए तो जल जाती है, पान

के पत्ते न फेरने से सड़ जाते है, वैसे ही ज्ञान को न फेरने से (दोहराते रहने से) ज्ञान भूल जाते है । इस काल में ज्ञान की स्मरणशक्ति पखवाड़े तक की है । शिष्य गुरु से पूछता है कि 'मैं क्या करूँ ? स्वाध्याय करूँ, वांचन करूँ, पृच्छना करूँ, अनुप्रेक्षा करूँ या धर्म-कथा करूँ ?' गुरु का उत्तर है कि 'सब करने योग्य हैं, कुछ भी छोड़ने जैसा नहीं है।' गौतमस्वामी ने भगवान से प्रश्न किया कि "हे प्रभु ! *'सज्झाएणं भंते जीवे किं जणयइ ? सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ।'*- अर्थात् स्वाध्याय करने से जीव को क्या लाभ होता है ?" प्रभु ने कहा, "स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है ।" कर्मो का क्षय होते-होते एक दिन आत्मा पूर्णतः कर्ममुक्त हो जायेगा । सूर्य के प्रकाश को बादल घेर लेने पर भी, पवन के झोंके से धीरे-धीरे बादल बिखरते है और सूर्य का प्रकाश बाहर आ जाता है । इसी तरह स्वाध्याय-अनुप्रेक्षा आदि करने से कर्म क्षय होते जाते हैं और कर्म के बादल बिखरने पर सूर्य के तेज समान आत्मा का प्रकाश बाहर दिखने लगता है, । जो पुरुषार्थ करता है वह अवश्य प्राप्त कर सकता है । आपको यहाँ से राजकोट जाना है, अपनी गाड़ी में जायेंगे तो अमुक समय लगेगा । ट्रेन पकड़ेंगे तो उससे थोड़ा ज्यादा समय लगेगा और प्लेन में गये तो घँटे-डेढ़ घँटे में पहुँच जायेंगे । राजकोट जाने के लिए पुरुपार्थ करेंगे तो, जल्दी या देर से, पहुँच जायेंगे । परन्तु जो पुरुपार्थ (कोशिश) ही नहीं करता, वह कैसे पहुँच सकेगा ? जो व्यक्ति पुस्तक के पन्ने तक नहीं खोलता, नहीं पढ़ता, याद नहीं करता, वह ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकता है ? संसार का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए कितना पुरुपार्थ कर रहे हैं, परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति की ओर उसका जरा भी पुरुपार्थ नहीं है । दूध और दही की सत्ता में मक्खन होता ही है, परन्तु दही का गोरसी में डालकर विलाने का पुरुपार्थ न करें तो मक्खन अपने आप ऊपर नहीं आ जाता । मक्खन प्राप्त करने के लिए पुरुपार्थ करना पड़ेगा । जीव ज्ञानावरणीय कर्म ६ प्रकार से बाँधता है : (१) ज्ञानी की निंदा करे, (२) ज्ञानी का उपकार भूले, (३) ज्ञान और ज्ञानी की अशातना करे, (४) स्वयं ज्ञान न सीखे और दूसरों को सीखने में अंतराय दे, (५) ज्ञानी पर द्वेष-भाव रखे, (६) ज्ञानी के साथ झूठा विवाद या झगड़ा करे । इन छः कारणों से जीव ज्ञानावरणीय कर्म बाँधता है । ज्ञानावरणीय कर्म तोड़ने का सुअवसर हमें प्राप्त हुआ है ।

बंधुओं ! मैं आपसे पूछती हूँ कि जैन धर्म प्राप्त करनेवाले जीव कितने है ? सर्व जीवों की अपेक्षा से सिंधु में बिंदु जितने । जैनकुल में जन्मे, पर उसमें श्रद्धा हो ऐसे जीव कितने ? बहुत अल्प । जैनशासन, वीतराग वचनों पर श्रद्धा, वीतराग-मार्ग जानने की जिज्ञासा, वीतराग की आज्ञानुसार चलने वाले महाव्रतधारी निर्ग्रंथ त्यागी गुरु, अहिंसामय जैन धर्म, अनेकांतवाद, स्यादवाद दर्शन कितनों को मिला है ? आप कहेंगे, अल्प से

भी अल्प को । कुछ जीव ऐसे है जिनमें वीतराग-मार्ग जानने की जिज्ञासा है पर अपनी उपाधि के कारण कुछ नहीं कर पाते हैं । अब आपके ध्यान में आया कि जो जीव अल्प में भी अल्प है, उनमें हमारा नंबर आता है । मूल्य किसका होता है ? लकड़ी के वन तो सभी होते है, परन्तु मूल्य चंदन-वन का किया जाता है । पत्थर तो अनेक होते है, पर कीमत हीरे की होती है । पत्थरों के खान बहुत होते हैं, पर हीरे के नहीं । हीरे की खान, चंदन के वन बहुत अल्प होते है फिर भी उनकी कीमत अधिक होती हैं । जिनकी संख्या दुनिया में अल्प से अल्प में है, उसमें अपना स्थान है, तो इसकी कितनी कद्र है ? अभी शारीरिक शक्ति काफी है, सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, इस समय कर्म तोड़ने का पुरुषार्थ नहीं करेंगे तो कब करेंगे ? कीजिए, करवाइए और अनुमोदना कीजिए । दलाली करनी हो तो धर्म की दलाली कीजिए । व्यापार, घर, शादी-सगाई के दलाल तो बहुत दिखाई देते है । ये दलाल स्वयं भी डूबते है और दूसरों को भी डुबाते है । संसार के दलाल तो बहुत ढूँढ़े, कभी आत्मा का दलाल भी ढूँढ़ा ? धर्म की दलाली करने से जीव तीर्थकर नाम कर्म उपार्जित करता है । सांसारिक दलाली दुर्गति में ले जायेगी और धर्म की दलाली मोक्ष में ले जायेगी ।

जिसे अपना नंबर अल्प में आ जाने की कद्र होती है उसे देव-गुरु-धर्म, शास्त्र-श्रवण प्राप्त होने का इतना अपूर्व आनन्द होता है कि उसके समक्ष संसार की संपूर्ण अनुकूलताएँ तुच्छ लगती है । आज मानव जड़ वस्तुओं की अनुकूलता में आसक्त बन गया है । वह कहीं भी जाये उसका ध्यान इसीमें लगा रहता है । जड़ पदार्थ-सामग्री मुझे बराबर प्राप्त हो गई है ना ? जहाँ जड़ पदार्थो की आकांक्षा है वहाँ देव-गुरु-धर्म पाने का आनन्द कहाँ से होगा ? जड़ को जितनी कीमत दी है, उतनी देव-गुरु-धर्म को नहीं । बंधुओं ! आत्मा से पूछिए कि तुझे वास्तविक और गहरा आनन्द जितना जड़ सामग्री व सुविधाओं, मान प्रतिष्ठा प्राप्त होने का है उतना वीतराग देवाधिदेव, उनकी वाणी और त्यागी, संयमी गुरु प्राप्त होने का है ? बाहर सब कुछ बहुत अच्छा मिला, पर यदि आपको सरागी देव मिले होते तो ? सरागी देव किसे कहते हैं ? जिस देव के साथ पत्नी हो, जिनके पास शस्त्र सरंजाम हो, जो शृंगार सजते हों, ऐसे देवों को सरागी देव कहते हैं । ऐसे देव मिलते तो आत्मा का कोई विचार ही कहाँ से आता ? फिर जो भगवान स्वयं सबकुछ रख सकते है, ऐसे सरागी देव से सर्व त्याग, वैराग्य, संयम का महान आदर्श भला कैसे मिलता ? जबतक जड़ वस्तु की अनुकूलताएँ महत्त्वपूर्ण लगती हैं तबतक देव-गुरु-धर्म महत्त्वपूर्ण नहीं लगते । जड़ अनुकूलताएँ यदि कम होने लगी तो मन में खेद होगा । जब जड़ काया और काया के हितकर पैसा-परिवार आदि भौतिक पदार्थ आत्मा और वीतराग देवाधिदेव के समक्ष कौड़ी जैसे लगने लगें तब जीवन में आध्यात्मिक भाव आयेगा और व्रत-प्रत्याख्यान करेंगे । इन्हीं प्रवृत्तियों से आत्मा की उन्नति होगी ।

द्रौपदी का अधिकार

धर्मघोष मुनि चंपानगरी में : नागेश्री ब्राह्मणी ने भूल की । उपयोग में चूक हो गयी । कुम्हड़ा चखे बिना सब्जी बना डाली । वह तो संसारी थी, उसे न परठने का कोई बँधन तो था नहीं । लेकिन अभिमान कैसी भयंकर चीज है । मानकषाय से भरा व्यक्ति गुरु के पास जाकर भी कोरा लौट आता है । अपने पाप खोल नहीं सकता । पाप प्रकट करने में अपना मानभंग होता प्रतीत होता है । कभी कोई भूल हो गई तो गुरु के समक्ष यह नहीं कहता कि 'मुझसे यह गलती हो गई है, इसका क्या प्रायश्चित्त होगा ?' वरना वह पूछेगा कि ऐसी भूल होने पर क्या प्रायश्चित्त आयेगा ?

गुरु के कहे अनुसार अपने आप प्रायश्चित्त ले लेना, सच्चा प्रायश्चित्त नहीं होता, क्योंकि माया रखकर प्रायश्चित्त किया गया है । मन से काँटा उखड़ा नहीं है । भगवान ने तीन प्रकार के शल्य बताये है - *"मायासल्लेणं, नियाणसल्लेणं, मिच्छादंसण सल्लेणं"* मिथ्यादर्शन शल्य वाला अपने पाप छिपाकर, मन में माया-कपट रखकर प्रायश्चित्त लेता है जो सच्चा प्रायश्चित्त नहीं हो सकता ।

नागेश्री के यहाँ बर्तन भरा हुआ कड़वा साग पड़ा है । देवरानियाँ भोजन करके जा चुकी हैं । अतः वह हल्की हो जाने की निश्चिंतता में है कि मेरा मान रह गया । उसी समय योगानुयोग से उस नगर में विशेष योग हो गया । *'तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्म धोसा नाम थेरा जाव बहु परिवारा जेणेव चंपा नामं नयरी जेणेव सूभूमि भागे उज्जेणे तेणेव उवागच्छइ ।'* उस काल और उस समय में अर्थात् चौथे आरे के काल में । उस समय जीव भद्रिक, सरल और कोमल थे । कुछ मायावी जीव भी थे । भगवान ऋषभदेव स्वामी तीसरे आरे में हुए तथा अन्य तेइस तीर्थंकर चौथे आरे में हुए । उस समय धर्मघोष नामक स्थविर अपने शिष्य परिवार के साथ चंपानगरी के सुभूमिभाग नामक उद्यान में पधारे । वहाँ आकर अपने आचार के अनुसार उद्यान में ठहरने की उन्होंने आज्ञा माँगी । स्थविर तीन प्रकार के होते है - ज्ञान स्थविर, वय स्थविर और चारित्र स्थविर । स्थविर से तात्पर्य है वे, जो संयम में इतने स्थिर हो गये है कि कितने ही उपसर्ग आने पर भी विचलित नहीं होते । जिस वृक्ष की जड़ (मूल) मजबूत नहीं होती, वह डालियों और पत्तों से भरा होने पर भी पवन के झोंको से उखड़ जाता है । परन्तु जिसकी जड़ मजबूत है वह पवन के झोंकों से चलित नहीं होता । भगवान ने फ़रमाया है कि "नवदीक्षित शिष्य की छः महीने वैयावच्च कीजिए ।" इसका अर्थ यह नहीं है कि उसके हाथ-पैर दबाइए । कहने का तात्पर्य है कि छः महीने तक उसका ध्यान रखना, क्योंकि वह संयम की क्रियाओं से अपरिचित और अनजान है । इतने समय में संयम की जड़ मजबूत हो जाए और उसके संयम के परिणाम डोलायमान न हों ।

भगवान के चौदह हजार साधू और छत्तीस हजार साध्वियाँ थीं । केवल ज्ञान प्राप्त होने पर प्रथम देशना के समय मात्र देवी-देवता उपस्थित थे, अन्य कोई नहीं । इसलिए प्रभु की प्रथम देशना खाली गई । दूसरी देशना में सभी पहुँचे । भगवान के सान्निध्य में कैसे जीव बोध प्राप्त कर चुके है ? ग्यारह गणधर कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे । ब्राह्मण जाति में श्रेष्ठ, वेदों में पारंगत तथा बड़ों-बड़ों को हराने की क्षमता रखने वाले विद्वान थे । परन्तु भगवान ने उनके समस्त संशय दूर कर दिये । अतः वे प्रभु के चरणों में समर्पितहो गये । ग्यारह गणधर अपने चार हजार चार सौ शिष्यों के साथ प्रभु के पास दीक्षित हो गये । ऐसा यह काल और समय था कि सच्चा बताने वाला मिल जाए तो झूठे को छोड़ देते थे (श्रोताओं में से आवाज : 'वे केवली थे ।') हम सब भी केवली के पास जाकर आये है । केवली के पास पहुँचकर भी उनकी आत्मा को नहीं देखा । जड़ का संगी जड़ पुद्गल को ही देखता है । बंधुओं ! आत्मा से पूछिए कि उपाश्रय में आकर बैठा है तो हृदय की तिजोरी में ज्ञान का माल भरता है या रद्दी ? समझिए, संसार की प्रवृत्ति से निवृत्ति लेने की और आत्मा की प्रवृत्ति में जुड़ने की जरूरत है ।

चंपानगरी में धर्मघोष स्थविर मुनि पधारे हैं । ये ज्ञान स्थविर है, साथ ही चारित्र में भी स्थविर हैं । ऐसे ज्ञानी मुनि को ज्ञान का अजीर्ण, अभिमान नहीं होता । वाणी में अहंभाव नहीं होता । आज थोड़ा-बहुत सीखा होगा तो प्रचार करेंगे कि मैं जानता हूँ, मुझे सब मालूम है । परन्तु ज्ञान में अभिमान नहीं हो तो आत्म की बगिया खिल उठती है ।

आनंदघनजी का प्रसंग : आनंदघनजी महाराज विचरते-विचरते एक गाँव में पधारे । उस गाँव में ५०० ध्वजपताकाएँ फहरा रही थीं । यह देखकर आनंदघनजी ने पूछा, "यह ठाठ-बाट किस कारण से है ? किसी संत के शुभप्रवेश की तैयारी है क्या ?" उत्तर मिलता है, "प्रखर विद्वान यशोविजयजी पधार रहे है । उन्होंने ५०० विद्वानों पर विजय प्राप्त की है । इसलिए वे अपने विजय की प्रतीक रूप में ५०० ध्वजाएँ फहराते चलते हैं ।" आनंदघनजी के मन में आया कि 'भोग-विलास को तिलांजलि देकर, संसार के समस्त सुख छोड़ संयम लेकर इतना ज्ञान प्राप्त किया है, परन्तु ज्ञान का अजीर्ण हो गया है । उनके होश ठिकाने लाना पड़ेगा नहीं तो प्रगति के बदले पतन के गड्ढे में गिरेंगे और आत्मा के उद्धार के बदले अधोगति में चले जायेंगे । चलो मैं उनसे मिलता हूँ ।' आनंदघनजी यशोविजयजी से कहते हैं, "बहुत समय से आपसे मिलने की उत्कंठा थी, आज वह पूरी हुई है । आप प्रतिभा-शाली और प्रखर व्याख्याता हैं । वाद-विवाद में आपने अनेकों को हराया है । अब मैं आपसे एक बात समझने आया हूँ ।" आनंदघनजी की वाणी में कितनी नम्रता व सरलता है । यशोविजयजी कहते हैं, "आप कुछ भी पूछ सकते हैं ।" उनके मन में यह भाव था कि पाँच सौ को हरा दिया तो यह कौन-सा विशेष है ?

आनंदघनजी ने कहा -

"धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सयामणो ।"

- दश. सू. अ-१, गा-१

"गुरुदेव ! मुझे इस गाथा का अर्थ समझाइए । आनंदघनजी ज्ञान, चारित्र, श्रद्धा और उम्र में स्थविर थे । यशोविजयजी के मन में आया कि 'इस सरल-सी गाथा का अर्थ तो मेरा कोई साधारण-सा साधू भी बता सकता है । हो सकता है आनंदघनजी को मेरे ज्ञान के बारे में ज्ञात न हो, इसलिए उन्होंने इतनी सरल जिज्ञासा सामने रखी है ।"

यशोविजयजी ने अर्थ बताया । "धर्म उत्कृष्ट मंगल है । अहिंसा सत्रह प्रकार का संयम और बारह प्रकार का तप रूपी धर्म जिसके मन में सदैव स्थिर रहता है उसे चक्रवर्ती तो क्या देवता भी नमस्कार करते है ।" इस प्रकार गाथा का सुंदर अर्थ बताया । लेकिन आनंदघनजी के चेहरे पर जरा भी स्मित-रेखा न आयी । यशोविजयजी के पूछने पर आनंदघनजी ने कहा, "कुछ और विशेष समझाइए ।" यशोविजयजी ने अर्थ सही बताया था, झूठ तो नहीं कह सकते थे कि समझ में नहीं आया । इसीलिए कहा विशेष समझाइए । उन्होंने फिर से अर्थ बताया और पूछा, "अब संतुष्ट है ?" आनंदघनजी बोले, "और अधिक विशेष विस्तार से बताइए ।" यशोविजयजी ने पाँच बार अलग-अलग शैली में, सुंदर तरीके से, हृदय को स्पर्श कर जाये, इस तरह समझाया और पूछा, "अब संतोष है ?" तो कहते हैं, "मुझे अभी और जानने की इच्छा है । यह तो रत्नों की खान है । इसका अर्थ इस प्रकार कीजिए कि मेरा हृदय-पट खुल जाए ।" यशोविजयजी ने पंद्रह बार इस गाथा का अर्थ बताया, परन्तु आनंदघनजी को संतोष नहीं हुआ । अंत में यशोविजयजी ने आनंदघनजी से कहा कि "आप ही इस गाथा का भाव और अर्थ समझाइए" । तब आनंदघनजी बोले, "मैं तो आपसे समझने आया हूँ पर आपकी आज्ञा हुई है इसलिए कहता हूँ ।"

आनंदघनजी महाराज बहुत विद्वान थे । ज्ञान प्राप्त कर उसका खूब मंथन किया था, इसलिए किलष्ट अर्थ को स्पष्ट कर सकते थे, वह भी एक नहीं अनेक तरीके से समझाकर । उन्होंने उपरोक्त गाथा का अर्थ और उसका गूढ़ रहस्य तीन दिन और तीन रात तक समझाया । यशोविजयजी म. सा. तो सुनकर आश्चर्यचकित हो गये । जिस गूढ़ रहस्य से वे अनजान थे, वह भाव आज जानने मिला, जिससे उनका मान नष्ट हो गया । वे आनंदघनजी के चरणों में [illegible] । [illegible] आनंदघनजी और कहाँ मैं ! उस समय आनंदघनजी ने [illegible] है । भगवान महावीर के समक्ष गौतमस्वामी का ज्ञान कित [illegible] में अगाध

जल है, उसमें से चिड़िया की चोंच में जितना जल टिक सकता है, उतना ज्ञान गौतमस्वामी का था, भगवान महावीर के ज्ञान के सामने । जबकि गौतमस्वामी चार ज्ञान और चौदह पूर्व के धारक थे, तब भी उनका ज्ञान अल्प था तो उनके सामने हमारा ज्ञान कितना अल्प है ! एक पूर्व यानी क्या ? तीन सौ हाथ ऊँचे हाथी पर चार सौ हाथ का हौद हो और उसे स्याही में डुबा दिया जाय, फिर उस स्याही से लिखा जाए तब एक पूर्व का ज्ञान होता है ।" बुद्धिमान को इशारा काफी होता है । यशोविजयजी समझ गये । तुरंत सभी ध्वजाएँ उतरवा दी । "गुरुदेव ! आप महान हैं । मेरी आत्मा समझ नहीं पायी, इसलिए अभिमान का दास बनकर मैं पाँचसो पताकाएँ लेकर फिरता रहा । मेरा अभिमान उतारने के लिए आपने मुझे मीठी गोली दी है ।" ज्ञानी को अभिमान नहीं होता । तत्त्वज्ञान पाना हो तो मान छोड़ना पड़ेगा ।

हमारे परम भाग्योदय से हमें वीतराग देव के सिद्धान्त मिल गये हैं । इन सिद्धान्तों पर श्रद्धा विशेष लाभ प्रदान करती हैं । यह जैनशासन कितना अपूर्व और अलौकिक है समझने वाले महसूस कर सकते हैं । बंधुओं ! जैनशासन सिर्फ धर्म ही नहीं बताता, सारी दुनिया का स्वरूप समझाता है । जगत में आत्मा की संख्या कितनी है । गति, योनि और कुल कितने है ? इनका यथार्थ दर्शन करवाने के साथ, ये जीव कहाँ रहते हैं ? उनका आयुष्य कितना है ? प्राण कितने है ? इन्द्रियाँ कितनी हैं ? कम ज्यादा होने का कारण क्या है ? आत्मा क्षण में सुखी तो क्षण में दुःखी किस कारण से होता है ? एक धनवान तो दूसरा दाने-दाने को मोहताज, यह सब करनेवाला कौन है ? जगत क्या है ? जगत के कार्य व्यापार कौन चलाता है ? इसका कोई संचालक है या यह स्वाभाविक रूप से चलता है ? जड़-चेतन के भेद, द्रव्य, गुण और पर्याय आदि पदार्थों का तलस्पर्शी ज्ञान प्रदान करनेवाला एकमात्र जैनशासन है । जैनशासन के अतिरिक्त इतना सर्वज्ञान दुनिया का कोई भी दर्शन नहीं करा सकता । वर्तमान काल में भौतिक क्षेत्रों में बड़े-बड़े डिग्रीधारी लोग दिखाई पड़ते हैं, परन्तु वे धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े होते है । इसका मूल कारण ढूंढने पर ज्ञात होता है कि आज के पढ़े-लिखे वर्ग की आत्मा-परमात्मा और कर्मों पर श्रद्धा नहीं है । सद्गुरु का समागम कभी नहीं करते और सद्गुरु के समागम के बिना, कितना भी बुद्धिमान, शिक्षित और होशियार व्यक्ति हो, परन्तु धर्म के तत्त्व को नहीं जान पाता है ।

'विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो तत्त्वं न जानाति विचक्षणोपि ।
आकर्णदीर्घोज्ज्वल लोचनोऽपि, दीपं विना पश्यति नांधकारे ।।'

तत्त्ववेत्ता और गुणी गुरु के समागम के बगैर अत्यन्त होशियार, विचक्षण व्यक्ति भी तत्त्व नहीं जान सकता । आँखें चाहे जितनी बड़ी और तेजस्वी हों पर अंधकार में दीपक

के बिना दिखाई नहीं दे सकता । अतः समझदार और बुद्धिमान व्यक्ति को भी सद्गुरु समागम आवश्यक है । व्यवहार में मानव बहुत होशियार हो, ढेरों धन-संपत्ति जोड़ लिया हो, फिर भी जन्म पूर्ण करके, सब कुछ यहीं छोड़कर चले जाना पड़ेगा । आत्मा अपने कर्मानुसार दूसरा जन्म लेता है, क्योंकि आत्मा अमर है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैन कलदेयत्या च न शोषयति मारुतः ।।

तीक्ष्णतम शस्त्र भी आत्मा को छेद नहीं सकते । अग्नि उसे जला नहीं सकती । कोई भी महानतम समुद्र उसे डुबा नहीं सकता तथा प्रचंड पवन भी उसे सुखा नहीं सकता क्योंकि आत्मा अजर, अमर, अखंड, अविनाशी है । जब यहाँ से आत्मा परलोक में जाता है तो यहाँ के शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करता है । यहाँ की कोई वस्तु साथ नहीं जाती । अरे ! भक्ष्य-अभक्ष्य का ख्याल भूलकर रात-दिन शरीर को हृष्ट-पुष्ट बना लीजिए फिर भी इस शरीर को तो यहीं छोड़कर जाना है और अंत में उसकी राख ही बनेगी । साथ जाने वाली वस्तु एकमात्र धर्म है । दुर्लभ मानव जीवन और प्राप्त दुर्लभ सामग्री निष्फल न चली जाये, अतः सद्गुरु का समागम करके, धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझकर, उसपर श्रद्धा रखकर धर्म आराधना में मगन होना चाहिए ।

धर्मघोष नामक स्थविर मुनि अपने शिष्य परिवार सहित चंपानगरी के सुभूमिभाग उद्यान में पधारे है । भगवान के संत कैसे होते है ? -

एकेक मुनिवर रसना त्यागी, एकेक ज्ञान भंडार रे प्राणी,
एकेक मुनिवर वैयावच्च वैरागी एना गुणनो नावे पार रे प्राणी
साधूजीने वंदना नित-नित कीजे...

कितने ही ज्ञान सीखने में रत हैं, कितने ही तपस्वी है तो, कितने स्वाध्याय में लीन है, तो कितने वैयावच्च (सेवा) में लगे हुए हैं । आत्मा से कर्म की निर्जरा के उद्देश्य से संयम पालन करते थे । धर्मघोषमुनि उद्यान में पधारे हैं । शिष्य परिवार के साथ अन्य भाविक जन भी उपस्थित हैं । संत धर्मकथा प्रारंभ करते हैं । धर्मकथा स्वाध्याय का ही अंग है । अब गाँव से लोग आकर दर्शन-वंदन करेंगे, व्याख्यान वाणी का लाभ लेंगे । आगे का भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

अरिमर्दन को पराजित किया : अरिमर्दन राजा सेना तैयार करके लड़ने के लिए आ रहे है । कनकरथ कुमार भी युद्ध के लिए तैयारी कर रहे है । अधिकारी उनसे कहते है कि "राजकुमार, आप मत जाइए, आप हमारे प्राण हैं - नेता रत्न हैं, और फिर आप तो

विवाह करने के लिए निकले हैं, युद्ध के लिए नहीं । आप जैसे रत्न की रक्षा के लिए हम हैं, अतः हम लड़ेंगे, आप पीछे रहिए ।'' कनकरथ बोले, ''आप लोग बड़े हैं, आपकी आज्ञा का उल्लंघन करना मेरे लिए शोभास्पद नहीं है, परन्तु क्षत्रियों का एक धर्म है, चाहे विवाह करने जा रहा हो या परिणीता को लेकर आ रहा हो, रणभेरी बजने पर वह चुप नहीं बैठ सकता ।'' राजा अरिमर्दन की सेना विशाल थी, परन्तु उसके पास हाथी-घोड़े नहीं थे । कनकरथ कुमार की सेना छोटी होने पर भी तेजस्वी थी । युद्ध शुरू करने के पहले अरिमर्दन राजा ने कहा, ''तेरी धृष्टता के लिए क्षमा देने का एक मौका मैं तुझे दे सकता हूँ, परन्तु एक शर्त के साथ ।'' कुमार ने कहा, ''अपनी शर्त बताइए ।'' राजा बोले, ''मेरी आज्ञा-भंग करने का अपराध करने के बदले में तुझे तीन सौ जवान और तीन लाख स्वर्ण मुद्राएँ सौंपकर आज संध्या से पहले मेरा राज्य छोड़ देना होगा ।''

कनकरथ ने कहा, ''आपकी दया के लिए आभार ! परन्तु आपको समझना चाहिए कि वीरमाता का दूध पीने वाला क्षत्रिय ऐसी दया का भिखारी नहीं होता । क्षत्रियों के लिए मौत तो जीवन की महक है । आपको सूचित करना चाहता हूँ कि हम युद्ध करने नहीं निकले हैं बल्कि विवाह करने जा रहे है । परन्तु बीच मार्ग में यदि रणभूमि में वंदनवार बाँधने की नौबत आ गई है तो मैं इसे अपना सौभाग्य मानता हूँ । हम आपकी विराट सेना से भयभीत नहीं है, क्योंकि हमारा एक सैनिक इतना युद्धकुशल है जो सौ सैनिकों पर भारी पड़ेगा । आपकी सेना मुझे बकरों का झुंड प्रतीत हो रही है ।'' अरिमर्दन राजा बोले, ''मेरा पहाड़ जैसी सेना के पैरों तले आप सब पीस दिये जायेंगे । इसलिए मेरी शर्त मानने में ही आपका कल्याण हैं ।'' कनकरथ ने तत्काल उत्तर दिया कि ''क्षत्रिय कभी शर्त का मौखिक नहीं रहने देता, उसकी तलवार ही सब निर्णय करती है । मेरी हाथी-घोड़ों से सजी सेना आपके सैनिकों को कुचल कर रख देगी ।''

युद्ध शुरू हुआ । कनकरथ ने तेजस्वी बाण अरिमर्दन की ओर निशाना लगाकर फेंका कि तुरंत अरिमर्दन का मुकुट छिटककर दूर गिर पड़ा । कनकरथ कुमार ने अपने पराक्रम से कुछ ही समय में राजा को जीत लिया । जहाँ राजा पराजित हो गया, वहाँ सेना की क्या औकात ? कनकरथ की विजय होते ही चारणों ने ललकार के साथ उसकी यशगाथा का गान प्रारंभ किया । इसी समय राजा अरिमर्दन की रानी अपने आठवर्षीय पुत्र के साथ मंडप में दाखिल हुई । युवराज ने उनका सत्कार किया और आसन दिया । कुमार के चेहरे की ओर देखकर रानी ने जाना कि उनके मुख पर किसी प्रकार का रोष या गर्व नहीं है, फिर बोलीं, ''महाराज ! मेरे स्वामी का अपराध क्षमा कीजिए । उनका अभिमान टूट गया, यह उनके लिए बहुत बड़ा दंड है ।'' कनकरथ कुमार ने कहा, ''माता ! आपके स्वामी के प्रति मेरे मन में कोई रोष नहीं है, परन्तु राह चलते यात्रियों पर जुल्म करना उचित नहीं है । राजा अरिमर्दन ने मानवता को कलंकित करने का अपराध किया है । मैंने राजसिंहासन के लिए युद्ध नहीं किया है ।''

कनकरथ कुमार ने बँदी राजा अरिमर्दन को बुलवाकर कहा, "राजन् ! आपके बारे में मुझे बहुत सूचना मिली है। आपको इस प्रदेश में अनेक काफिलों को लूटा है और स्वयं को बलवान मानते हैं। मेरे मंत्रियों की राय तो यह है कि आपको मृत्युदंड दिया जाना चाहिए। परन्तु आपकी धर्मपत्नी दया की भीख माँगने आयी है और एक आर्य सन्नारी की भावना को मैं तिरस्कृत नहीं कर सकता। यदि मेरी एक शर्त आप मान्य करें तो इसी क्षण आप सबको मुक्तकर दिया जायेगा।" रानी बोली, "मैं वचन देती हूँ कि आपकी एक नहीं आप जितनी कहेंगे सभी शर्तें मानी जायेंगी।" कनकरथ ने कहा, "देवी ! आपके स्वामी के प्रति हमारा कोई वैर नहीं है। राजा अरिमर्दन राजगद्दी का त्याग करें और राजकुमार को सिंहासन पर बैठायें तथा भविष्य में कभी किसी यात्री को इस तरह परेशान न किया जाये। बस इतना करने का भरोसा दीजिए तो सभी कैदियों को सम्मान के साथ छोड़ दिया जायेगा।" राजा अरिमर्दन ने कहा, "मुझे अपने कुकर्म का पश्चात्ताप हो रहा है। आपकी शर्त मैं शिरोधार्य करता हूँ।" सबने कनकरथ कुमार की जय जयकार की और सभी ने मुक्ति की साँस ली। अब युवराज अपनी आगे की यात्रा प्रारंभ करेंगे, राह में क्या घटेगा आदि भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक २०

श्रावण शुक्ल ७, गुरुवार | दिनांक : २५-७-७४

भाव का चमत्कार

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शास्त्रकार भगवंत जन्म-मरण की शृंखला तोड़कर अमर स्थान प्राप्त कर चुके हैं। इन सर्वज्ञ भगवंत की शाश्वत वाणी का नाम सिद्धान्त है। केवली भगवंत की वाणी में शंका का कोई स्थान नहीं। जिस वाणी का निरूपण जिनेश्वर भगवंतों द्वारा हुआ है, वह सत्य है, निःशंक है। इस वाणी का श्रद्धापूर्वक पान करने से जीव महान सुख का भोक्ता बनता है। सांसारिक सुख, चाहे कितना उत्तम हो, परन्तु उसमें भय का समावेश होता ही है। जबकि महान पुरुषों द्वारा बताया गया सुख निर्भय होता है। आपको साथ में कीमती सामान लेकर किसी मार्ग से जाना हो तो किसी परिचित से पूछ लेते हैं कि 'भाई ! इस रास्ते में कोई भय तो नहीं है ?' आप पूरी चौकसी करके, फिर उस रास्ते पर जाते हैं। भगवान कहते हैं, "ऐसे में

कदाचित लूट भी गये तो आपका माल ही जायेगा। बहुत गया तो आपकी जान जायेगी। परन्तु आत्मिक धन नहीं लुटेगा, वह तो आपके साथ ही साथ रहेगा।" जबकि इस संसारवर्धक मोह-माया और ममता के विषम-मार्ग में जाने से आपके भवों में वृद्धि हो जायेगी। मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियाँ है। उनमें सात प्रकृति मुख्य है। अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ, सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय, इन सात प्रवृत्तियों पर विजय पाने वाले का संसार परित हो जाता है। भवभ्रमण घटता है। एक समकित के बीज में असीम शक्ति है। बरगद का बीज बहुत छोटा होता है, पर बीज विकसित होकर, समय के साथ-साथ विशाल बरगद के रूप में प्रत्यक्ष होता है। आम की छोटी-सी गुठली बोयें तो बड़े आम्रफल वाला वृक्ष बनता है। इसी प्रकार भगवान कहते है कि, "अपने हृदय रूपी भूमि पर सम्यक्त्व रूपी बीज का वपन कर दीजिए। उसके फल के रूप में अर्धपुद्गल परावर्तन काल का संसार नष्ट हो जायेगा और उतने ही समय में आपका उद्धार हो जायेगा।"

आत्मा को जब समकित प्राप्त हो जाता है तब उसे संसार असार प्रतीत होता है। संसार के तमाम पदार्थों पर जो प्रेमभाव और आनन्द था, वह कम होने लगता है और देव-गुरु-धर्म के प्रति प्रीति बढ़ने लगती है। फिर वह आत्मा से कहेगा, 'हे आत्मन्! तू आज तक भूला रहा, चौरासी के चक्कर में झूलता रहा, नरक-निगोद में रुलता (भटकता) रहा, इसीलिए तुझे संसार सार रूप लगता था। अब देव-गुरु-धर्म ही सार रूप हैं। यही मेरे जीवन का आधार तथा डूबती नैया का सच्चा तारनहार है। आज तक भवसागर में डूबाने वाले साधनों पर तू रागी बना रहा। जर, जमीन और जोरु तुझे अच्छे लगते रहे, जिनके राग के कारण तू अनंतकाल से इस संसार में भटका, नरक-निगोद में अपार दुःख भोगे। अब मुझे यह सच समझ में आया कि यह सब तो धूँए को मुट्ठी में भरने जैसा है। ऐसे सुंदर विचार आएँ तो आसक्ति कम होती है, मोह ढीला पड़ता है। राग-द्वेष रिटायर होने लगते है और मान समाप्त हो जाता है। तब आत्मा को स्वस्वरूप की पहचान होती है। परभाव से हटकर निज स्वभाव में रमण करता है। मैं कौन हूँ? मेरा स्वरूप क्या है। मेरा अपना कौन और पराया कौन है? इन सबका भान होता है। भूतकाल में की गई भूलों का पश्चात्ताप होता है। स्व और पर की पहचान न होने के कारण देव-गुरु और धर्म की आराधना में प्रमाद किया और सांसारिक सुख की खातिर अपना जन्मोजन्म गंवाया। अतः हे आत्मा! अब तू पर-वस्तु के प्रति रागभाव का सत्वर त्याग कर, क्योंकि वह वस्तु तेरी नहीं है, आत्मा को दगा देने वाली है। पौद्गलिक सभी वस्तुओं के राग को त्यागकर अपनी आत्मा रूपी बाग को गुण रूपी पुष्पों से सजाइए। इस संसार में देव अरिहंत, गुरु, निर्ग्रंथ और केवली प्ररूपित धर्म, यही तेरे है और तेरा हित करनेवाले हैं। बाकी कुछ भी तेरा नहीं है। आजतक तूने अपनी आत्मा के अलावा अन्य वस्तुओं को अपना माना और उस पर जन्मो-जन्म प्राण देता रहा, फिर भी वे तेरी न

हुईं। वे तेरी थी ही नहीं तो भला कैसे तेरी हों ? माता-पिता, पुत्र-प
सब में 'मेरा-मेरा' रटते हुए अनंतकाल गंवाया। अब तो कुछ सम
जाग। अब समझदार और विवेकी बन, मूर्ख मत बनना। अनादिकाल
सुधार ले। देव-गुरु-धर्म ही मेरे सच्चे आधार हैं, यह दृढ निश्चय क
सम्यक्त्व दृढ होगा और अंतर में प्रकाश-पुंज प्रसरित हो जायेगा। तेरा
तुझे महामूल्यवान ये वस्तुएँ प्राप्त हो गई हैं। मकान बनाने में नींव खोद
खजाना हाथ लग जाए तो जीव कैसा नाच उठता है, वैसा ही खजाना तुझे
निधि तो क्षणिक है, इसी जीवन तक साथ देगी, जबकि धर्मरूपी महान नि
तेरे साथ रहेगी और अंत में मोक्ष का शाश्वत सुख प्राप्त करवायेगी।

कामधेनु सेवन से भी जो शुभ फल प्राप्त नहीं हो
कल्पवृक्ष चिंतामणि जिसको, नहीं कभी भी दे सकता
और न कोई देव जगत में, दे सकता जो फल सुखदा
ऐसा अनुपम महामोक्ष फल देता केवल धर्म महान

कामधेनु गाय और कल्पवृक्ष चिंतामणि से मानव को मन-वांछित प्राप्त होता
क्या मिलता है ? भौतिक सुख के साधन ही, मोक्ष-फल प्रदान नहीं कर सकत
कितना बड़ा महर्धिक देव हो, परन्तु मोक्ष नहीं दे सकता, सिर्फ धर्म ही ऐसा अनुप
महान मोक्ष रूपी फल प्रदान करता है। अतः आप बहुत भाग्यशाली हैं। अरे, देवों
ईर्ष्या होने लगे ऐसी सुंदर सामग्री आपको प्राप्त हुई है। जैनशासन जैसा विराट श
जिनेश्वर देव का धर्म, उस धर्म पर श्रद्धा होना आदि सभी दुर्लभ सामग्री आपको प्राप्त हो
है। अतः हे जीव ! कमाने का सुंदर अवसर है, कमाई कर ले। बार-बार ऐसा सुअव
मिलना कठिन है, इसलिए आलस्य और प्रमाद छोड़कर आराधना करने के लिए कद
बढ़ाइए। आराधना में कमी न आने देना और विराधना नहीं करना। क्योंकि विराधना वर्ष
की साधना को समाप्त कर देती है। इसलिए जो क्षण मिले है, उन क्षणों को पहचानकर
आत्मकल्याण के मार्ग पर अपने कदम बढ़ाइए।

बंधुओं ! संसार का कोई भी कार्य हो, यदि उसमें उत्साह और उमंग होगा तो आप उसे
सही तरीके से पूर्ण कर सकेंगे। नाशवंत कार्यों के लिए जब इतने उत्साह की आवश्यकता होती
है तो सोचिए, शाश्वत सुख पाने के लिए कितने उत्साह और उमंग की जरूरत होगी ! आज कर्म
की फिलोसोफी को समझने वाले लोगों का प्रतिशत एक से अधिक नहीं होगा। उनके समक्ष
हमलोग कर्म का ज्ञान रखते हैं, कर्मफल के बारे में जानते हैं और इतना ही नहीं कर्म क्षय करने
के उपाय भी जानते हैं। इससे अधिक क्या चाहिए ? इतनी धार्मिक ऋद्धि मिल गई है फिर भी
जीव कर्म तोड़ने के स्थान पर और गाढ़े कर्म बाँधता जा रहा है। मनुष्य तेरी...

सिद्धि में मुख्यतः मन की भावना और विचार का हाथ होता है। जैसी जिसकी भावना होती है वैसी ही उसे सिद्धि प्राप्त होती है 'यादृशी भावना यस्य तादृशी सिद्धिर्भवति' भावना से विकास होता है और भावना से विनाश होता है। जैसे सीढ़ी एक ही होती है, पर आने-जाने के आधार पर रास्ता दो हो जाता है। ऊपर चढ़ने वाला ऊँचाई पर जाता है और नीचे उतरने वाला नीचे। ऊँची भावना से उन्नति और नीची भावना से दुर्गति होती है। अग्नि और पानी जितना काम नहीं करते उतना भाप(बाष्प) करता है - इसी प्रकार जीवन में कार्य और वाणी से अधिक भावना का जोर रहता है। आत्मा में शक्ति न हो, संयोग न हो, पुरुषार्थ न हो फिर भी दूसरों के प्रति दुर्भावना से आत्मा का अधःपतन होता है।

स्वयंभूरमण समुद्र में रहने वाले विशाल मगरमच्छों के आँख की पलकों में तांदुलिया मछली होती है, जो चवली जितनी छोटी होती है। सागर की उछलती लहरों में कितनी ही मछलियाँ मगरमच्छ के मुँह में पानी के साथ जाती हैं और बाहर निकल आती है। यह दृश्य देखकर तांदुलिक मच्छ मन में विचार करता है कि ये मगरमच्छ कितने मूर्ख हैं? उनके स्थान पर मैं होता तो एक छोटी-सी मछली भी मुँह से निकलने नहीं देता। खाया नहीं, किसीको मारा भी नहीं लेकिन दूसरे को मारने की दुर्भावना के कारण तांदुलिक मच्छ मरकर सातवीं नरक में जाता है। देखिए! मन से कैसा अधःपतन हुआ! 'भगवद् गीता' में भी कहा है कि, "मनः एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः।" मुक्ति और बँधन का कारण, सुख-दुःख का कारण, सद्गति और दुर्गति के बँधन का कारण, पतन और उत्थान का कारण, यही एक मन है। मन का शरीर और आत्मा पर बहुत प्रभाव पड़ता है। क्रोध, काम, मद, मोह, मत्सर और लोभ आदि आत्मा के सच्चे शत्रु हैं और सुंदर मनोभावना पर हमेशा आधिपत्य जमाते आये हैं। इसलिए उन्हें नियंत्रित करके भावना का संरक्षण करना जरूरी है जिससे भावना का प्रलय न सर्जित हो। यदि भावना इन छहों के आवेग से तन जाये तो आत्मा स्थान, समय और कार्य के साथ स्वयं को भी भूल जाता है।

प्रभु महावीर के शिष्य राजर्षि प्रसन्नचंद्रमुनि आत्मा के कल्याण के लिए नगर के बाहर एक पाँव पर खड़े, दोनों हाथ ऊँचे करके, सूर्य के सामने दृष्टि करके आतापना में ध्यानमग्न है। देखिए, कल्याण की कितनी सुंदर दृष्टि है! फिर भी मानव कहाँ और कैसे पछाड़ खाता है? प्रसन्नचंद्र राजर्षि के पास से गुजरते हुए दुर्मुख नामक दूत के मुँह से राज्यतंत्र की बात उनके कानों से टकराई कि 'राज्य पर शत्रु ने घेरा डाल रखा है, राज्य आपत्ति में है' और मोह का आवेग आ गया। राजपुत्र तथा प्रजा की चिंता होने लगी। फिर क्या था? मुनि अपना मुनिपन भी भूल गये। मैं कहाँ हूँ? क्या कर रहा हूँ? क्या करना चाहिए? सब भूल गये। मन से शत्रु से संग्राम करने लगे। कर्मों को जीतने के लिए नहीं वरन् शत्रु को मारने के लिए। युद्ध में क्या होता है? महा आरंभ, संहार, आर्तध्यान और रौद्रध्यान। ओह! यह जीव किस

जंजाल में फँस गया। आर्तध्यान, रौद्रध्यान, महाआरंभ का प्रचंड झंझावात अवश्य दुर्गति में पहुँचाता है।

उसी समय श्रेणिक महाराज भगवान महावीर से पूछते हैं कि "हे प्रभु ! यह प्रसन्नचंद्र राजर्षि अभी काल करें तो किस गति में जायेंगे ?" प्रभु ने उत्तर दिया कि "इस समय मृत्यु हो तो सातवीं नरक में जायेंगे।" श्रेणिक के मन में आया कि 'ऐसे ध्यानस्थ, उच्च कोटि के उन्नत साधक सातवीं नरक में जायेंगे तो फिर मेरे जैसे वासना के कीड़े कहाँ जायेंगे ?' इस ओर क्षणभर में राजर्षि प्रसन्नचंद्र मन में संग्राम लड़ते हुए हताश होने लगे कि अब मेरी हार निश्चित है, मेरे पास कोई शस्त्र नहीं बचा। आखिरी दाँव के रूप में उन्हें एकाएक अपना मुकुट याद आया और सोचा, 'मेरे मुकुट से शत्रु राजा के सिर पर वार करके विजय प्राप्त कर लूँ। यह ख्याल आते ही हाथ सिर पर रखा तो अरे, यह क्या ? माथे पर मुकुट नहीं है, अरे, बाल तक भी नहीं है। एक क्षण के लिए तो मुनि अचंभित रह गये।

संत के जीवन में एक ही धक्का काफी है। राजर्षि को याद आ गया, अररर ! यहाँ न तो युद्धक्षेत्र है, न कोई शस्त्र, न संग्राम, न कोई शत्रु। मैं तो मुनि के रूप में हूँ, संयमी हूँ।' बस इस एक आघात ने नवसर्जन का काम किया, जागृति आ गयी। यदि वे मुनि न होते तो क्या यह जागृति आती ? आज के विषम काल में भवसागर में गिरते प्राणियों के लिए, आत्मा के संरक्षण के लिए, संयम ही समर्थ आलंबन है। देखिए, कभी-कभी साधन भी भावों में परिवर्तन लाने का कार्य करते है। मुंडित सिर ने मुनि की भावना में जबरदस्त परिवर्तन ला दिया। पश्चात्ताप की पावक अग्नि ने धीमे-धीमे भावों में वृद्धि की। उसी समय राजा श्रेणिक को भगवान के कहे पर ठीक से भरोसा न होने के कारण फिर से प्रश्न किया। प्रभु ने कहा, "प्रसन्नचंद्र राजर्षि इस क्षण मृत्यु प्राप्त करें तो सर्वार्थसिद्ध विमान के देव बनेंगे।" तबतक में तो देवदुन्दुभी बजने लगी और प्रसन्नचंद्र राजर्षि को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

राजर्षि की मुनि-भावना को, ध्यान दृष्टि की दुर्भावना ने नष्ट कर डाला था। सातवें नरक की ओर प्रयाण की तैयारी करवा दी थी। पश्चात्ताप की धारा से एक क्षण में उत्पन्न होने वाली सद्भावना की विद्युत शक्ति ने सर्वार्थसिद्ध विमान और अगले ही क्षण संसार के सारे बँधन छुड़वा दिये। दुर्भावना, दुर्गति और भवबँधन प्रदाता है तो सद्भावना सुगति देने वाली और भवबँधन काटने वाली है। सद्भावना त्याग, प्रेम, समर्पण, तृप्ति आदि प्राप्त करवा कर आत्मा के शुद्ध दर्शन कराती है। दुर्भावना राग-द्वेष-स्वार्थ-तृष्णा-अशान्ति-अज्ञान आदि सर्जित करके आत्मा से विमुख करनेवाली है। किसीको खराब पसंद नहीं है। सुंदर और अच्छा चाहिए, तो भावना भी सुंदर रखिए। भावना के प्रयोग से जीवन की निर्बलता दूर हो जाती है। जिस प्रकार सरिता अपने प्रवाह से कचरे को किनारे पर फेंक देती है, उसी प्रकार आप भी दुर्भावना के कचरे को दूर फेंक दीजिए, ताकि हृदय स्वच्छ जल जैसा बन जायेगा।

स्वच्छ पानी द्वारा जीवन में जैसा प्रतिबिंब इच्छा करेंगे वैसा पाया जा सकेगा । सद्भावना जीवन का परमार्थ है । भावना सिद्धि के सोपान तक ले जाती है । भाव सहित किये हुए कार्य मोगरे के फूल जैसे होते है । भाव रहित आचार-विचार, धर्म आदि कागज के फूल के समान होते है जो दिखते सुंदर है पर सुगंधरहित होते है ।

संसार में अनेकवार देव-गुरु-जैनशासन प्राप्त हुए, उन्हें पहचाना, आराधना के लिए दान-शील-तप-संयम का उत्तम प्रकार से पालन भी किया, फिर भी अबतक जन्म-मरण का चक्कर चल ही रहा है । इसका कारण है *'यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भाव शून्या ।'* कोई भी क्रिया या पुरुषार्थ भावरहित होने पर फल प्रदान नहीं करती । अतः जबसे जागे तबसे सवेरा, जानकर आत्मकल्याण के लिए भाव जागृत कीजिए । माता मरुदेवी भावना रूपी अणुबम से कर्म का किला तोड़कर क्षणभर में सिद्धि के द्वार पर पहुँच गयीं । इलाची कुमार को नट के रूप में तार पर नाचते हुए भावना की प्रबलता के कारण केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई । पृथ्वीचंद्र गुणसागर तो अभी संसार की सान पर चढ़ने विवाह-वेदी पर थे, तभी किसने मोहिनी डाली ? भावों के द्वारा ही अंतर का अंधकार उलीच दिया । भाव की व्यापकता से ही आत्मा परमात्मा बनता है । 'उत्तराध्ययन सूत्र' में भगवान से प्रश्न पूछा गया है कि –

"भावसच्चेणं भंते जीवे किं जणयइ ? भावसच्चेणं भावविसोहिं जणयइ । भावविसोहिए वट्टमाणे जीवे अरहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ, अरहंत पन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोग धम्मस्स आराहए भवइ ।"

हे भगवान ! भाव सत्य से क्या लाभ मिलता है ? भाव सत्य से भावों की शुद्धि होती है । शुद्ध भाव वाला जीव अरिहंत प्ररूपित धर्म की आराधना में तत्पर होकर पारलौकिक धर्म का आराधक बनता है ।

भाव कार्य का प्राण है । जीवन का सत्व है । आत्मा की उन्नति गढ़ने वाला है । भाव का झरना यदि हृदय में वहना बंद हो जाए तो जीवन जड़ के समान बन जाता है । अतः जीवन में भाव जगाइए ।

द्रौपदी का अधिकार

धर्मघोषमुनि के शिष्य धर्मरुचि अणगार : 'ज्ञाताजी सूत्र' में अधिकार का वर्णन चल रहा है । उस काल और उस समय में धर्मघोष स्थविर मुनि अपने विशाल शिष्य परिवार के साथ चंपानगरी के सुभूमिभाग नामक उद्यान में पधारे । नागरिकों को सूचना मिली कि तारणहार गुरुश्री पधारे हैं । बंधुओं ! आपका पूर्ण भाग्योदय है कि आपको वीतरागी गुरु मिले है । अतः आत्मा को जागृत कीजिए और उससे कहिए कि तू अनंतशक्ति का स्वामी है, तू कर्मो से

डर मत। तेरे किये हुए कर्म तो तुझे ही भोगने है। परन्तु आत्मा पर श्रद्धा और विश्वास होगा तो कर्म उसके समक्ष रंक लगते है और आत्मा शूरवीर। आत्मा अगर कमजोर रहा तो कर्म शूरवीर बन जायेंगे। हम यदि बलवान तो कर्म बेचारे हैं। आत्मा तो ध्रुव-नित्य है। उसे कोई छेद-भेद नहीं सकता, जला नहीं सकता। सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करनेवाला हमारा आत्मा ही है। अनादि से बँधे कर्मो को दूर करने के लिए प्रबल पुरुषार्थ किया जाये तो कर्म क्षय होते ही हैं। भवों का भय और थकान महसूस हुआ होगा तो पुरुषार्थ में कमी नहीं होगी।

चंपानगरी के लोग गुरुदेवश्री के दर्शन, वंदन और वाणी श्रवण का लाभ लेने आये। गुरुदेव ने श्रुतचारित्र रूप धर्म का उपदेश दिया। चंपानगरी की पर्षदा धर्मकथा श्रवण कर अपने घर की ओर रवाना हुई। *"तएणं तेसिं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी धम्मरुई नाम अणगारे उराले जाव तेउलेस्से मासमासेणं खममाणं विहरइ।"* तत्पश्चात् धर्मघोष स्थविर के अंतेवासी, धर्मरुचि अणगार थे, जो बहुत उदार प्रकृति के थे और विशिष्ट तपस्या करते थे। तप के प्रभाव से उन्हें तेजोलेश्या की प्राप्ति हुई थी, जिसे उन्होंने अपने शरीर में धारण किया था। तेजोलेश्या का प्रभाव ऐसा होता है कि जब यह शरीर से बाहर निकलती है तब बहुत योजन तक के क्षेत्र में रखी वस्तुओं को भस्म कर डालती है। धर्मरुचि अणगार उस समय मासखमण तप करके विचर रहे थे।

गुरुश्री जैसे पावन-पवित्र है उनके शिष्य भी वैसे ही पवित्र हैं। धर्मघोष मुनि के अंतेवासी शिष्य थे धर्मरुचि अणगार। अंतेवासी का अर्थ है समीप या नजदीक। शिष्यों के हृदय में गुरु का निवास होना तो स्वाभाविक है, परन्तु गुरुदेव के हृदय में शिष्य का वास मुश्किल है। गुरु कठोर शब्दों का प्रयोग करें या कर्कश-कोमल भाषा कहें, शिष्य तो यही समझता है कि *"मम लाभो त्ति पेहाए"* गुरु जो कुछ भी कह रहे है, मेरे हित और लाभ के लिए है। वे शिष्य इंगियागार संपन्न होते हैं यानी गुरु के आँख के इशारे से समझ लेते हैं, परन्तु जो हृदय के भाव को जान ले, ऐसे शिष्य को भगवान ने अंतेवासी कहा है। गुरुआज्ञा में जीवन जीने वाले अंतेवासी शिष्य धर्मरुचि अणगार घोर तपस्वी थे। उराल तपस्वी अर्थात् जो रोज तपस्या करता है। एक उपवास, दो उपवास, तीन-चार उपवास तो सदैव ही रहता है। धर्मरुचि अणगार का मासखमण तप का पारणा था। धर्मरुचि मुनि गौतमस्वामी की भांति प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान और तीसरे प्रहर में वस्त्र-पात्र का प्रमार्जन करके, पात्र लेकर अपने गुरुदेव धर्मघोष स्थविर के पास आये। अब उनसे कैसे आज्ञा माँगेंगे और आगे क्या होगा आदि भाव अवसर पर।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

कनकरथ ने जंगल में सुंदर कन्या को देखा : राजकुमार कनकरथ ने दूसरे दिन अपना प्रवास प्रारंभ किया। चलते-चलते काफिला जंगल के मध्य स्वच्छ मैदान में पहुँच गया।

मंत्री ने कुछ लोगों को जलाशय की तलाश में भेजा। संध्या का समय देख कुमार प्रतिक्रमण करके निवृत्त हुए। जलाशय की शोध में निकले लोग आ आये। मंत्री ने पूछा, "क्या जलाशय नजदीक में नहीं है? आपलोगों को "इतनी देर क्यों लगी?" "कृपावंत! जलाशय तो बिल्कुल नजदीक है, पर उसी राह पर हमें एक चमत्कार भी दिखा, उसीमें इतना समय व्यतीत हो गया। एक सुंदर उपवन दिखाई दिया, जो अनेक फलों-फूलों से सजा बहुत व्यवस्थित था। हमने सोचा, यहाँ कोई रहता होगा और जलाशय भी उधर ही हो सकता है, अतः हम उस ओर बढ़े। उपवन में पैर रखते ही चकित हो गये।

'कुंवरी एक झूल रही वहाँ पे, गाँधे अम्ब के डोर,
हुए अचंभित है वनदेवी, विद्याधरणी कोय...श्रोता तुम...'

एक घने आम के वृक्ष पर झूला बँधा था और उस झूले पर कोई देवकन्या झूल रही थीं। उस देवकन्या का जैसा रूप था - हमने कभी न देखा, न सुना। स्वप्न में भी कभी ऐसा मनोहर, पवित्र, आकर्षक रूप हमें नहीं दिखा। उसे देख हमें लगा, यदि यह कन्या कुंआरी हो तो आपके लिए सर्वथा योग्य है। जलाशय के बारे में उससे पूछने के उद्देश्य से पाँच-सात कदम आगे चढ़े होंगे कि उस रूपवती की दृष्टि हम पर पड़ी और वह अदृश्य हो गई। इसीमें हमें देर हो गयी।" राजकुमार कनकरथ की भावना ऊँची है। वह विचार करता है कि संसारी जीव कौतुकप्रिय होते है, इसलिए इसमें खो जाते है। जीवन तो उच्च मानव का मिला, परन्तु बाहर देखने का मजा ऊँचे जीवन तो नष्ट कर देता है। कर्तव्य पालन भूलकर इन तुच्छ विषयों के पीछे जीव को घुमाता है। कुमार ऐसी उच्च भावना करता है। उसकी विचारधारा में अप्सरा के समान उस बाला के बारे में कोई विचार नहीं है। युवावस्था के गर्म खून में तो ऐसी बातें इतनी आकर्षित करती है कि दूसरा कुछ सूझता ही नहीं। झट ख्याल आता है कि वह कैसी होगी? परन्तु कुमार के मन में ऐसा कोई विचार नहीं आता और न ही अप्सरा जैसी कन्या के देखने से वंचित रहने का कोई खेद होता है। दूसरे दिन सुबह वहाँ से प्रयाण किया। थोड़ा चलने पर ही वह उपवन आ गया। भृत्यों ने आगे जाकर वृक्ष की डाली से बँधा झूला दिखाते हुए कहा, "कृपावतार! इसी झूले पर हमने देवकन्या को झूलते हुए देखा था।" कुमार ने मन में सोचा कि 'झूला है तो कोई मानव भी होना चाहिए। नहीं तो इस घने और निर्जन प्रदेश में झूला क्यों बाँधा जायेगा?' थोड़ा आगे बढ़ने पर एक अति सुंदर तरुणी हाथ में डोलची लिए फूल चुनती नजर आयी। सुभटों ने कहा, "यही वह देवकन्या है जिसे हमने झूलते हुए देखा था। कन्या की नजर कनकरथ पर पड़ते ही वह अदृश्य हो गई। कनकरथ सोचने लगे कि देवलोक की देवांगना यहाँ कैसे होगी? ऐसी सुंदर स्त्री को देखकर भी कुमार के मन में उसके प्रति कोई विकार भाव नहीं आता। अब कनकरथ कुमार इस कन्या के लिए कैसे शुद्ध विचार करते है, आगे क्या घटता है, आदि भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक २१

श्रावण शुक्ल ८, शुक्रवार   दिनांक : २६-७-७४

साधक का जीवन

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

द्रौपदी का अधिकार : शास्त्रकार भगवान ने जगत के जीवों के कल्याण के लिए सिद्धान्तमय वाणी का निरूपण किया। वीतराग भगवान के वचनामृत का एक शब्द भी यदि आत्मा अपूर्व श्रद्धापूर्वक श्रवण करे तो अनंत कर्म के जत्थे टूट जाएँ। 'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन में धर्मघोष मुनि ज्ञान सम्पन्न, चारित्र-सम्पन्न, वय संपन्न और गुण गंभीर हैं। जिनके अंतेवासी शिष्य धमरुचि अणगार उग्र तपस्वी और गुरु- आज्ञापालन करनेवाले हैं। जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है, वह वीतराग की आज्ञा का पालन करता है, जो गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता वह वीतराग की आज्ञा का पालन भला कैसे कर सकेगा ? धर्मरुचि अणगार प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, द्वितीय प्रहर में ध्यान करके तीसरे प्रहर में गौचरी जाने के लिए गुरुआज्ञा प्राप्त करने आये। मासखमण का पारणा है, पर जरा भी उतावली नहीं है, क्योंकि तप का भाव समझते हैं।

अनंत उपकारी श्री वीर भगवान ने तप की महिमा का बहुत बखान किया है। भगवान ऋषभदेव को संयम लेने के पश्चात् तेरह महीने और ग्यारह दिन का उपवास हुआ। भगवान ने प्रारंभ से इतने उपवास का भाव नहीं किया था। वे तीसरे प्रहर मौन लेकर गोचरी के लिए निकलते थे। उस समय प्रजा बहुत सुखी थी, संयमी कोई नहीं था। इसलिए गोचरी क्या है ? दान क्या है ? क्या सूझता और असूझता है आदि बातों से प्रजा अनभिज्ञ थीं। भगवान जब गोचरी के लिए निकलते तो लोग विचार करते कि यह भगवान, हमारे महाराजा, अपना सिर छत्र और सबकुछ छोड़कर निकले है। उन्हें रोटी कैसे दिया जा सकता है ! हम उनका सत्कार कैसे करें ! अतः जब प्रभु पधारते तब लोग बहुत भावपूर्वक उनके समक्ष हीरे-माणिक-स्वर्ण, वस्त्र, कन्या-रत्न आदि प्रस्तुत करते। प्रभु तो कुछ कहते न थे कि मुझे यह सब नहीं कल्पता। उनका तो एक ही लक्ष्य था कि मुझे कर्म रूपी ईंधन को तप रूपी अग्नि में जलाकर राख कर देना है। निर्दोष आहार-पानी न मिलने पर प्रभु लौट जाते और ध्यानमग्न हो जाते,

फिर दूसरे दिन तीसरे प्रहर गोचरी की गवेषणा के लिए निकलते । परन्तु गोचरी न मिलने पर फिर से लौटकर ध्यान में खड़े हो जाते । इस प्रकार प्रभु का कितने दिन का तप हो गया ? फाल्गुन कृष्ण सप्तमी से उपवास शुरू किया । फाल्गुन कृष्ण अष्टमी को दीक्षा ग्रहण की और नवमी से भिक्षा लेने फिरते रहे । परन्तु निर्दोष गोचरी न मिली । दूसरे वर्ष वैशाख शुक्ल द्वितीया तक यही स्थिति चलती रही । इसीलिए तेरह महीने और ग्यारह दिन का चौविहार उपवास हो गया । वैशाख शुक्ल तीज के दिन श्रेयांसकुमार के हाथों निर्दोष इक्षुरस से भगवान का पारणा हुआ । भगवान ने जैसे तप किया वैसी शक्ति हमारे पास नहीं है, परन्तु उनके अनुकरण के रूप में एकांतर उपवास से वर्षीतप करते हैं ।

धर्मरुचि अणगार स्थविर मुनि धर्मघोष से गोचरी के लिए आज्ञा लेने गये । भगवान ने 'आचारांग सूत्र' में फ़रमाया है कि "साधक को गोचरी, पडिलेहन, स्वाध्याय आदि समस्त क्रियाएँ विवेकपूर्वक करनी चाहिए । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २६वें अध्ययन में साधू समाचारी का वर्णन है । वहाँ बताया गया है कि 'पडिलेहन करते हुए यदि उपयोग (ध्यान) चूकेंगे तो छःकाय के जीवों की हिंसा के अधिकारी बनेंगे और शुभ उपयोगपूर्वक क्रिया करेंगे तो छःकाय के जीवों के पालक बनेंगे ।' उपयोग-सहित क्रिया निर्जरा का कारण है । उपयोग-शून्य क्रिया पाप का कारण है ।

"से भिक्खू कालन्ने, बलन्ने, मायन्ने, खेयन्ने, खणयन्ने, विणयन्ने, ससमय परसमयन्ने, भावन्नो परिग्गहं असमायमाणे कालाणुष्ठाई अपडिण्णे दुहओ छेत्ता नियाइ ।"

- आचारांग सूत्र

इस सूत्र में, साधू के लिए किन-किन बातों का ज्ञान आवश्यक है ? उसका वर्णन है ।

कालन्ने - **कालज्ञ :** साधू कार्य करने के अनुकूल समय को जानने वाला होता है । इस कार्य के लिए कौन-सा समय योग्य है, किस समय कैसा वर्तन करना चाहिए आदि बातों को समझकर, समय (काल) को पहचानकर क्रिया करनी चाहिए । काल के अनुरूप क्रिया न करे तो दोष का अधिकारी बनता है । पडिलेहन प्रथम प्रहर में और दूसरी बार पिछले प्रहर में करने की सूचना है, परन्तु उस समय न करके, सोचे बाद में कर लूँगा तो दोष का अधिकारी है । भगवान ने मर्यादा बतायी है जो लाभ का कारण है । काल की मर्यादा तोड़ना, वीतराग की आज्ञा न मानने जैसा है ।

बलब्बे - बलज्ञ : साधक अपनी शक्ति न छिपाये । शक्ति के अनुसार संयम में प्रवृत्ति करे । ज्ञानी कहते हैं कि 'अपनी शक्ति को गोपनीय न रखो बल्कि पुरुषार्थ कीजिए ।' संसार में शक्ति के उपरांत बल-शक्ति खर्च करने का पुरुषार्थ करते है, परन्तु संसार में लगाई गयी शक्ति से पाप में वृद्धि होने वाली है । अपनी शक्ति को तुम वहाँ लगाओ जहाँ संसार के जाले साफ हो जाएँ । कर्म क्षय करने के लिए भगवान महावीर ने छह-छह महीने के उपवास किये । अपनी शक्ति और बल का अंदाज लगाइए कि आपकी शक्ति कितनी है ? जितनी भी शक्ति हो उसे छिपाइए मत । आपनी शक्ति तप करने की न हो और सेवा (वैयावच्च) करने की हो तो जो आत्माएँ ज्ञान सीखते-सीखाते हों, तप करते हों, उनकी सेवा में लग जाइए । किसीके ज्ञान का क्षयोपशम कम हो तो अपनी शक्ति का उपयोग इतरों को ज्ञान देने में कीजिए । ज्ञान देने से ज्ञान में वृद्धि होती है । ज्ञान समझाते-सिखाते हुए कई बार उत्कृष्ट भाव आने से कर्म चकनाचूर हो जाते हैं ।

केशी श्रमण और गौतमस्वामी एक साथ मिले तो ज्ञानगोष्ठी के लिए । केशीस्वामी के चार महाव्रत को उस समय की प्रजा समझ नहीं पा रही थी । वे शंकित थे कि कौन सच्चा है ? इससे वितंडावाद उपस्थित हो सकता है, यह सोचकर गौतमस्वामी और केशीस्वामी को मिलकर जनता को समझाना चाहते थे । केशीस्वामी दो हुए हैं । यह केशी श्रमण तीन ज्ञान के स्वामी थे और गौतमस्वामी चार ज्ञान के धारक थे । पर गौतमस्वामी को यह घमंड नहीं था कि मैं चार ज्ञान का स्वामी, मैं क्यों इनसे मिलने जाऊँ । उल्टे उन्होंने विचार किया कि 'केशीस्वामी भगवान पार्श्वनाथ के संत है, अतः मुझसे बड़े है और मुझे ही उनके पास जाना चाहिए ।' कितने विनयी है ! ज्ञान पूर्णतः पचाया हुआ है । आज तो थोड़ा-सा जानने वाला भी समझता है कि वह सब जानता है । यह ज्ञान नहीं बल्कि ज्ञान का अजीर्ण है । केवली के समक्ष गणधरों का ज्ञान अल्प है तो अपने ज्ञान की क्या विसात ?

'लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर,
कीड़ी साकर कण लहे, हाथी फाकत धूल ।'

लघुता, नम्रता, विनय, विवेक से प्रभुता प्राप्त होती है, परन्तु प्रभुता से प्रभु दूर रहते है । बाहुबलि के पास प्रभुता थी ! लघु भ्राताओं को कैसे वंदन करूँ ? तबतक केवल ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके । साधना अति उग्र थी, परन्तु अभिमान का जहर भरा हुआ था । ताड़ के पेड़ बहुत लंबे होते है, परन्तु अपने अंगों को ढंक भी नहीं पाते ।

'बडा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर,
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ।'

उम्र से, धन-संपत्ति और सत्ता से बड़े होकर भी यदि आत्मा के गुण से बड़े नहीं हैं तो खजूर के पेड़ जैसे है। बाहुबलि के मन में मान था, परन्तु जैसे ही मान नष्ट हुआ और वंदन करने के लिए कदम बढ़ाया कि केवल ज्ञान की ज्योति प्रकट हो गयी।

'उपाड्यो वंदन करवा पाय, अनुपम केवल ज्ञान सोहाय...मुनिवर...

आत्मा गर्दभ या सूअर जैसा नहीं, बल्कि सिंह जैसा है। कर्मराजा से कहिए कि आना है तो आओ, यह सिंह सामना करने के लिए तैयार है। कर्म के सम्मुख आत्मा जब दहाड़ेगा तो कर्म थरथराने लगेगा। महावीर के श्रावक रोना रोने वाले नहीं होते। उन्हें तो इन्द्र भी विचलित करने आये तो मुँह की खाये। इन्द्र ने दशार्णभद्र राजा को हराया, परन्तु दशार्णभद्र राजा ने अपनी आत्मा को महावीर के चरणों में अर्पित कर दिया तो इन्द्र को झुकना पड़ा। महावीर के श्रावक खनखनाते रानी छाप चाँदी के रुपये जैसे बनेंगे, तब जैनशासन जयवंत बनेगा। श्रावक कर्म से जूझने में सिंह जैसा और छःकाय जीवों की दया पालने में गुलाब की कली जैसा कोमल हो। पैसे की खुमारी या सत्ता के आधार पर दूसरों को दबाने, या कुचलने का काम नहीं करे। अपनी शक्ति और बल को पहचानकर गुरु के समक्ष जाकर आज्ञा माँगें और अपनी शक्ति को जाँचे।

मायन्ने - **मात्रज्ञ :** मात्रज्ञ अर्थात् कौन-सी वस्तु किस मात्रा में ली जाती है आदि का ज्ञान। साधू को गोचरी के लिए जाते समय गोचरी की मात्रा का ज्ञान होना चाहिए। यदि साधू अपनी मात्रा न जाने तो कभी आवश्यकता से अधिक या कम आहार आ जाने से दोषों की संभावना रहती है। अतः मात्रा के ज्ञान से इन दोषों से बच सकता है। उपयोगपूर्वक गोचरी करने से कर्म की निर्जरा होती है और उपयोग शून्य करने से कर्म बँधते हैं। गोचरी घर और भाव देखकर करना चाहिए। गरीब घर हो और भाव उत्तम हों तो अंश मात्र वस्तु लेकर उसकी उत्कृष्ट भावना के निमित्त बने, पर तोड़ने में निमित्त नहीं बनते। गोचरी में उपयोग न रखे और आधा कर्मी आहार ग्रहण करे तो, प्रभु 'सूयगडांग सूत्र' में फ़रमाते है कि, "तेरी हालत वैतालिक मछली जैसी होगी।" अतः साधू मात्रज्ञ हो, मात्रा का जानकार हो। इस प्रकार करने से कर्म की निर्जरा होती है।

खेयन्ने - **खेदज्ञ :** संसारी सुख-दुःख का ज्ञान हो। इसे दो प्रकार से कह सकते है - खेदज्ञ और क्षेत्रज्ञ। खेद शब्द के दो अर्थ होते है : (१) अभ्यास (२) श्रम। साधू सतत अभ्यास और अनुभव द्वारा सारी बातों को जान लेता है। साधू विहार करते हुए गाँव में पहुँचे। दोपहर के बारह बज चुके है, सभी का भोजन समाप्त हो गया है। उस

समय साधू गोचरी के लिए निकले । कुछ लोग ऐसी भावना वाले होते हैं कि महाराज इस समय आये हैं अब कहाँ जायेंगे ?, चलो थोड़ी सेवई ही पका दें । गाँव में चूल्हों में पानी गर्म चढ़ा ही रहता है, उसीमें सेवई डालकर तैयार कर देते है। महाराज गोचरी के लिए पधारने पर चौकसी करते हैं कि "लगता है सबने भोजन कर लिया है और पतीली भरकर सेवई हैं, तो बहन ! आपने किसके लिए बनाया है ?" बहन मौन रह जाये या कहे कि "हम भी खायेंगे और आपको भी बहरायेंगे ।" यह समझ में आने पर साधू उस घर से गोचरी नहीं लेते । अरे, यदि बहन ने वही सेवई बहन या पुत्री या पड़ोसी के घर भिजवा दी और साधू समझ जायें तो वहाँ से भी वह वस्तु नहीं लेते। क्योंकि वस्तु आरंभिक है, इसलिए नहीं कल्पती । साधू को भूखा रहना स्वीकार है, परन्तु आधाकर्मी आहार ग्रहण नहीं करे। जो संयम के पिपासु है, जिन्हें चारित्र की लगन लगी है, वे स्वयं को कुर्बान कर देंगे, परन्तु संयम में विचलित नहीं होंगे । भगवान ने श्रावकों के लिए भी ऐसा ही फ़रमाया है कि, "शरीर छूटे तो हर्ज नहीं, पर लिये हुए व्रत को नहीं छोड़ते ।"

अंबड सन्यासी के सात सौ शिष्यों ने व्रत लिया था कि किसीके द्वारा न दिये जाने पर ग्रहण नहीं करेंगे । ग्रीष्म काल है । भयंकर गर्मी है । प्यास से कंठ सूख रहा है । बीच में विशाल सरोवर आया । शिष्यों ने गुरु से पूछा : "गुरुदेव ! हम पानी पी लें ?" गुरु ने कहा : "हमने व्रत लिया है कि किसीकी आज्ञा बिना कुछ न लेना । अतः सरोवर का कोई मालिक दिखे तो उसकी आज्ञा लेकर पी सकते है ।" आज कई जीव व्रत लेकर फिर बदलाने आते है । लेकिन प्रतिज्ञा तो प्राण के साथ जुड़ जाती है । इन शिष्यों ने गुरु से यह नहीं कहा कि 'हमें तीसरे व्रत के स्थान पर चौथे व्रत की प्रतिज्ञा प्रदान कीजिए ।' अंतिम स्थिति यह आयी कि सभी ने वहाँ संथारा कर लिया । सात सौ लोगों ने एक प्रतिज्ञा के लिए अपना बलिदान दे दिया, परन्तु अपना व्रत नहीं छोड़ा । उनका निश्चय अडिग था ।

'सिर जावे तो भले जावे पण लीधेला व्रत नहि जावे,'

भगवान का श्रावक क्या कहता है -

"सिर जावे तो भले जावे, मेरा जैन धर्म नहि जावे ।"

धर्म जिनकी हाड़-हाड़(रग-रग) में भरा हुआ है, वे तो यही कहेंगे कि 'सिर जाय तो फिक्र नहीं पर मेरा जैन धर्म न जाये ।' ऐसे ही रत्नों से जैनशासन सुशोभित होगा । अतः ऐसे तेजस्वी बनिए । हम यह कह रहे थे कि साधू अभ्यास और ज्ञान से गोचरी आदि की सारी

बातों का जानकार होता है। खेद का दूसरा अर्थ है, श्रम। संसार चक्र में भटकने से जीव को जो थकान लगती है, साधू उसे जानने वाला होता है। क्षेत्रज्ञ का अर्थ है कि साधू को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का अनुभव करना चाहिए। यह क्षेत्र किस प्रकार का है? वहाँ जाने से राग-द्वेष तो पैदा नहीं होंगे? गोचरी के लिए कौन-सा क्षेत्र या कौन-सा कुल योग्य है। इस प्रकार अलग-अलग क्षेत्रों का अनुभव साधू के लिए आवश्यक है।

खणयन्ने - **क्षणज्ञ :** साधू समय का जानकार होता है।

'काले कालं समायरे।' अमुक कार्य करने का अवसर यह है या नहीं, यह जानना भी जरूरी है। गोचरी जाने के लिए उचित समय का ज्ञान होना आवश्यक है। क्योंकि यदि यह ज्ञान नहीं होगा तो समय से पहले या बाद में जाने से, आहारादि की प्राप्ति न होने पर कदाचित चित्त में ग्लानि और असमाधि उत्पन्न हो। अत: समय को जानकर कालानुसार क्रिया करनी चाहिए। देश की परिस्थिति देखकर गोचरी के लिए जाना चाहिए। गोचरी के लिए जाते हुए मेरे निमित्त से किसीको खेद न हो, यह ख्याल रखना ज़रूरी है।

विणयन्ने - **विणयज्ञ :** ज्ञान, दर्शन और चारित्र को विनय कहते है। साधू इस प्रकार के विनय के स्वरूप का जानकार होता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र के स्वरूप को समझकर उसकी आराधना करनेवाला विनयज्ञ कहलाता है। साधक दशा हो या संसारी, विनय सर्वत्र आवश्यक है। विनय वैरी को वश में कर लेता है। धर्मरुचि अणगार बहुत विनीत है। गुरुआज्ञा लेकर वे गोचरी के लिए कहाँ जायेंगे, आदि भाव अवसर पर।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

कनकरथ मुनि से मिले : कनकरथ ने देवांगना जैसी कन्या को फूल चुनते हुए देखा। उसके मन में विचार आया कि यह देवलोक की देवांगना यहाँ क्यों आयी होगी? अवश्य ही आस-पास में कहीं संत विचरते होंगे, उन्हीं के दर्शन करने आयी होगी। यद्यपि कुमार विवाह करने जा रहे हैं, परन्तु उनका ध्यान आत्मा की ओर ही है। देवांगना समान कन्या के रूप-रंग, सौंदर्य पर दृष्टि न जाकर संत के विचरने और उनके दर्शन पर था। कनकरथ की शुद्ध भावना है, इसलिए उनमें हेय-उपादेय का विवेक जागृत है।

कनकरथ ने आसपास नजर दौड़ायी तो एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ योगी दिखाई दिये। योगी को देखकर वंदन नमस्कार किया। जिस प्रकार अनाथीमुनि को

देखकर श्रेणिक महाराजा ने वंदन करके पूछा था, उसी प्रकार कुमार मुनि को वं करके उनके नजदीक बैठा । "परम पावनकारी गुरुदेव ! मैं कितना भाग्यशाली कि संसार के पिंजड़े में फँसने जा रहा हूँ और आपश्री के पवित्र दर्शन का ला मिल गया । पिताजी की आज्ञा से विवाह के लिए निकलना पड़ा, परन्तु मेरा पर सफल हो गया । इस विराट विश्व में भटकते जीवों को ऐसे सद्गुरु का समागम और संतदर्शन भला कहाँ मिलता है ? मेरी यह घड़ी धन्य हो गई । मेरा धन्य भाग !" राजकुमार गुरुभक्ति में ऐसा लीन हो गया कि कब वह कन्या वहाँ आई इसका भान न रहा । कन्या उसे देखकर विचार करने लगी कि 'यह कौन है ? क्या इन्द्र है ? कोई देव या साक्षात् कामदेव है !' कुमार को उपमाएँ देते हुए सोचती है कि 'यह महा भाग्यवान कौन है ?' तबतक कुमार की दृष्टि कुंवरी पर पड़ी । कुमार ने योगी से प्रश्न किया कि "आप कौन है और यहाँ कैसे ? आपके साथ देवलोक की देवांगना के समान यह कन्या कौन है ?" तब सन्यासी ने कहा : "आप मेरी कुटिया में पधारिए । मैं आपसे सारी बात बताता हूँ ।"

सन्यासी कुमार से पूछते हैं कि "हे नररत्न ! आप कौन है ? इस वन में आने का क्या प्रयोजन है ?" राजकुमार स्वयं अपने बारे में क्या कहे ? कहावत है कि **'भरा घड़ा नहीं छलकता, अधजल गगरी छलकत जाय'** तो राजकुमार कुछ नहीं बोलता । उसके सुभट परिचय देते है -

'रथमर्दनपुर राय हेमरथ का नन्दन महाराज,
कंबेरी नगरी की कन्या, जाके परणवा काज ।... श्रोता तुम...

"रथमर्दनपुर नगर के राजा हेमरथ के युवराज कनकरथ कुमार हैं । राजकन्या रुक्मणी से परिणय करने के लिए उनके पिता के आग्रह से कंवेरीनगरी जा रहे है ।" साथ आये लोग विचार करते हैं कि बारात सही समय पर कैसे पहुँचेगी ! पर राजकुमार शांत चित्त से बैठे हैं । सन्यासी के आग्रह से राजकुमार उनकी कुटिया में गये । सन्यासी ने अपने साधनों के अनुसार उनका सत्कार किया । फिर कहा : "भाई ! आप जानना चाहते है कि यह कन्या कौन है ? इस कुटिया में कैसे आयी ? मैं आपको इस बारे में सब स्पष्ट करता हूँ ।" अब सन्यासी राजकुमार से बात कहेंगे । आगे क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक २५

श्रावण शुक्ल ९, शनिवार | दिनांक : २७-७-७४

साधू-धर्म की विशेषता

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत ज्ञानी भगवंत द्वारा प्ररूपित सिद्धान्त सागर में अनेक अमूल्य मोती हैं । पारखी जवेरी ही उसकी परख करके मूल्य आँक सकता है । मोती की माला पहनकर अपने कंठ की शोभा बढ़ाकर, मानव हर्षित होता है, परन्तु यह मोती की माला जीवन का कल्याण नहीं कर सकती । जबकि वीर वाणी रूपी अमूल्य मोती की माला पहनने से स्वकल्याण के साथ अन्य का भी कल्याण साधा जा सकता है । वीर प्रभु की वाणी संसार समुद्र से तिराने वाली है, इसीलिए वीरवाणी को जगत उद्धारिणी भी कहा जाता है ।

देवानुप्रियों ! आपलोग भाग्यशाली हैं कि आपको जैनकुल और जैनधर्म विरासत में मिल गया है । महान पुरुष कहते है कि 'महान पुण्य रूपी धन देकर इस मानवदेह रूपी नौका खरीदी है ।' आपकी चाहे जितनी संपत्ति दे दीजिए पर यह नौका नहीं खरीद सकते । आपको नौका मिल गई है तो ऐसी साधना कीजिए, ऐसा पुरुषार्थ कीजिए कि इसके द्वारा मोक्ष के किनारे पहुँच जायें । चौरासी लाख जीवायोनि की अपेक्षा से मानवदेह भी किनारा है । कैसे ? जरा समझिए । निगोद में जीव अनंतकाल किस प्रकार व्यतीत करता है ? वनस्पति के तीन भेद है - सूक्ष्म, प्रत्येक और साधारण । सूक्ष्म में असंख्याता काल बिताकर साधारण में जाता है, वहाँ असंख्याता काल व्यतीत करता है । फिर साधारण से सूक्ष्म में जाकर असंख्याता काल निकालता है । इस प्रकार बार-बार दोनों में आते-जाते अनंतकाल व्यतीत करता है । निगोद के अतिरिक्त और कहीं भी अनंतकाल तक नहीं रहता । ग्यारहवें गुणस्थानक में यथाख्यात चारित्र है, परन्तु उसमें बारहवें में प्रवेश करने या केवल ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता नहीं ।

११वें गुणस्थानक से पड़े और बीच में न अटके तो ठेठ मिथ्यात्व गुणस्थानक में पहुँच जाये । इसलिए समझने की जरूरत है । मानवदेह रूपी नौका किनारे आयी है तो हर तरह की सावधानी रखना चाहिए कि नौका डूब न जाय ।

आपके पिता ने आपके लिए बँगला, फर्निचर, कपड़े आदि सब कुछ बसाया हो, तो आप उनकी कृपा मानते है ना ? उन वस्तुओं का उपयोग किये बिना रहते हैं क्या ? इसी तरह अनंतज्ञानी महर्षिओं ने हमारे लिए सिद्धान्त रूपी महान अमूल्य खजाना छोड़ा है । इस बात का आनन्द है, हमारे दिल में ? इसका उपयोग आप करते है ना ? वीतराग देव के प्रति श्रद्धा, बहुमान और ममता का भाव होगा तो उनके द्वारा प्ररूपित शास्त्रों का उपयोग अवश्य करेंगे । मेरे परम हितैषी, कल्याण कामना करनेवाले महर्षिओं ने मेरे लिए जो विशेष सिद्धान्त रचे है, मुझे उनका उपयोग करना ही चाहिए । कदाचित आप कहें कि मेरे पिताजी का मुझ पर विशेष प्रेम था, इसलिए उन्होंने खास मेरे लिए बँगला बनवाया, अतः उस घर का उपयोग करता हूँ । तो क्या तीर्थकरों का आपके प्रति प्रेम नहीं था ? ये ग्रंथ क्या उन्होंने प्रेम से नहीं बनाये ? त्रिलोकीनाथ द्वारा प्रेम से रचे शास्त्रों की अमूल्य विरासत आपको प्राप्त हुई है तो उसका सुंदर उपयोग कीजिए, नहीं तो फिर दूसरे भव में ऐसी विरासत पाने का हक गँवा बैठेंगे । योग्यता समाप्त हो जायेगी । दुनिया की बातों में रुचि रखकर विचार-व्यवहार करते रहने से शास्त्रों के प्रति रुचि नहीं जागती, तो फिर सिद्धान्त में व्यक्त महान तत्त्वों और गूढ़ रहस्यों को जानने की इच्छा भला कैसे होगी ? आप हिसाब लगायेंगे तो जरूर समझ जायेंगे कि बहुत-सा समय अनावश्यक बातों में बर्बाद हो रहा है । उस समय का उपयोग यदि सिद्धान्त की बातें सुनने, समझने में करें तो आत्मा का असीम आनन्द प्राप्त कर सकेंगे ।

कल गोचरी की चर्चा हो रही थी । गोचरी जाने में विनय होना चाहिए । शिष्य स्वच्छंद रूप से गोचरी के लिए नहीं जाता वरन् गुरुदेव को वंदन करके विनयपूर्वक पूछता है, "गुरुदेव ! आपकी क्या आज्ञा है ?" गुरुदेव द्वारा बताये गोचरी-गवेषणा के मार्ग के अनुसार गोचरी करता है, ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप संयम न लूटे, इस रीति से करता है । गोचरी न प्राप्त हो तो लौट आता है और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अवहेलना न हो इस प्रकार निर्दोष गोचरी मिले तो ग्रहण करता है । आहार निर्दोष हो तो देने वाले और लेने वाले दोनों की सुगति होती है ।

बलभद्र मुनि का प्रसंग : कृष्ण महाराज के भाई बलभद्रमुनि तपस्या का पारणा करने के लिए गोचरी लेने जा रहे थे । मुनि बहुत सौंदर्यवान थे । कूँए की जगत पर खड़ी बहन ने मुनि का रूप देखा और मन में बोली : 'अहो ! क्या मुनि का रूप है ! कैसी तेजस्वी और सौम्यमूर्ति है !' बहन खड़ी है पानी भरने, कुएँ की जगत पर लेकिन दृष्टि है मुनि की ओर । भगवान ने फ़रमाया है कि "एक साथ दो क्रियाएँ नहीं

करना चाहिए ।" किसलिए ऐसा फ़रमाया है ? उदाहरणस्वरूप पडिलेहन करते समय उपयोग अन्य की ओर रहे तो छःकाय जीवों की हिंसा का दोष लगे । पड़िलेहन करने का अर्थ क्या है ? पूंजते हुए कोई छोटा-सा जीव चढ़ गया हो तो उसकी रक्षा के लिए है, पडिलेहन । इसी प्रकार गोचरी भी उपयोगपूर्वक करो ।

बलभद्रमुनि का निमित्त मिलते ही अपना भान भूली उस बहन ने घड़े के स्थान पर अपने पुत्र के गले पर रस्सा बाँध दिया । पानी निकालने के लिए खींचने पर घड़े के स्थान पर बेटे का माथा देख दु:खी हो गई । अपनी दृष्टि का दोष नहीं देखा और बोली : "अरे मुनि ! तेरे रूप को धिक्कार है !"

यह जानकर मुनि ने भी कहा : "मेरे रूप को धिक्कार है । मेरे निमित्त से पंचेन्द्रिय जीव की घात हुई । अब मैं नगर में गोचरी के लिए नहीं आऊँगा । अब वन में ही रहूँगा । वहाँ निर्दोष आहार मिलेगा तो ग्रहण करूँगा नहीं तो जीवन-भर का प्रत्याख्यान कर लूँगा ।" मुनि गाँव के बाहर वृक्ष के नीचे बैठे है और एक सुतार लकड़ी काट रहा है । उसी समय सुतार की पत्नी सुतार के लिए भात लायी । नजदीक ही एक मृग बैठा है । सुतार मुनि से भाव व्यक्त करता है कि 'आप थोड़ी भिक्षा लेकर मुझे पावन करें ।' यह सुनकर मृग ने सोचा, "मैं कैसा कमनसीब हूँ; मेरे पास कुछ भी नहीं है । कुछ होता तो मैं भी साधू को बहराने का लाभ लेता ।" उसी समय तेज आँधी से वृक्ष की डाल टूटी और सुतार, मुनि और मृग तीनों पर गिरी । तीनों मरकर पाँचवें देवलोक में गये । निर्दोष आहार-पानी बहराने का लाभ खरे सोने जैसा होता है । गोचरी करते हुए चारित्र में कोई दोष न लगे, इस प्रकार से संत गोचरी करते हैं ।

स्वसमय परसमयज्ञ : संयमी साधक को स्वसमय अर्थात् अपने सिद्धान्तों का ज्ञान होता है और परसमय यानी अन्य दर्शनों के सिद्धान्तों का भी ज्ञान होता है स्वसमय और परसमय जाने बिना संपूर्ण विवेक नहीं हो सकता । इसलिए साधुओं को अपने तथा अन्यों के सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । जिससे प्रसंग आने पर प्रश्न का समाधान करने की योग्यता प्राप्त हो ।

भावन्ने - **भावज्ञ :** साधू इतना निपुण एवं व्यवहार कुशल होना चाहिए कि व्यक्ति की चेष्टा, हाव-भाव द्वारा उसके आशय को समझ सके ।

परिग्गहं अममायमाणे : साधू किसी प्रकार के परिग्रह पर अपनी ममता नहीं रखते । अपने शरीर के प्रति ममत्व भाव नहीं होता तो अन्य पदार्थों पर भला ममता कैसे होगी ? साधू संयम के लिए तथा लज्जा निवारणार्थ वस्त्र-पात्रादि उपकरण रखते हैं, परन्तु उस पर ममता नहीं रखते । 'दशवैकालिक सूत्र' में भगवान की वाणी है कि -

"जं पि वत्थं च पायं वा, कंवलं पायपुच्छणं ।
तं पि संजम लज्जट्ठा, धारन्ति, परिहरन्ति या ।।"

- दश. सू. अ-६, गा-२०

भगवान ने कल्पने वाले वस्त्र-पात्र को परिग्रह नहीं कहा, परन्तु *"मुच्छा परिग्गहो वुत्तो ।"* मुर्छा को परिग्रह कहा है । इसलिए संयम के लिए उपयोगी उपकरण का स्वीकार करते हुए भी साधू अपरिग्रही है । संयम के लिए आवश्यक उपकरणों के अतिरिक्त किसी प्रकार का परिग्रह साधू स्वीकार नहीं करते ।

कालाणुट्ठाइ : कालानुष्ठान से संयमी साधक समय से समस्त क्रियाएँ करता है । जिस काल में जो क्रिया करनी चाहिए, उसे उसी समय करना साधू का धर्म है । पडिलेहन का समय हो, उस समय कोई दर्शनार्थी आ जाये । वातों में व्यस्त होकर पडिलेहन का समय वीत जाने पर पडिलेहन करने से भगवान की आज्ञा में दोष लगता है । कदाचित आपके मन में शंका हो कि कालज्ञ शब्द से कालानुष्ठायी का अर्थ निकलता ही है, फिर यह एक और अलग विशेषण क्यों दिया गया है ? तो इसका समाधान यह है कि कालज्ञ यानी समय को जानने वाला । यहाँ 'ज्ञ' परिज्ञा का कथन किया गया है और कालानुष्ठायी में जिस काल में, जो क्रिया करनी चाहिए उस क्रिया को करने की बात कही गई है, अतः आसेवन परिज्ञा का कथ किया गया है । इन शब्दों का संक्षेप में इतना ही अर्थ है कि योग्य समय पर योग्य क्रिया करनी चाहिए ।

अपडिन्न - अप्रतिज्ञ : साधू किसी भी प्रकार का नियाणा नहीं करे । मेरे तप और संयम का जो फल हो उसमें मुझे अमुक-तमुक प्राप्त हो ऐसा निदान (नियाणा) न करे । नियाणा समस्त क्रिया के फल को नष्ट कर देता है, उससे कुछ भी आत्मिक लाभ नहीं मिलता । इसलिए विवेकसंपन्न और मोक्षाभिलाषी साधक का कर्तव्य है कि वह किसी भी प्रकार का नियाणा न करे । नियाणा करना चिंतामणि रत्न समान धर्मक्रिया को काँच के टुकडों के समान सांसारिक सुखों की कीमत में वेच देना है । अतः सच्चा साधक कभी भी नियाणा नहीं करता ।

द्रौपदी का अधिकार

धर्मरुचि अणगार गोचरी लिए निकले : धर्मघोषमुनि के शिष्य धर्मरुचि अणगार समस्त वातों के जानकार हैं । तीसरे प्रहर गोचरी के लिए गुरु के पास आज्ञा लेने पहुँचे । जैसे गौतमस्वामी श्री प्रभु महावीरस्वामी से पूछकर आहार लेने के लिए

निकलते थे, उसी प्रकार धर्मरुचि अणगार ने आहार लाने के लिए धर्मघोष स्थविर से आज्ञा माँगी। धर्मघोषमुनि ने कहा : "ओ धर्मरुचि अणगार, मेरी आज्ञा है। आप सुख से गोचरी के लिए पधारिए।" मुनि गोचरी जाते समय ईर्या समिति के ख्याल से देख-देखकर यत्नपूर्वक चलते हैं। गोचरी के लिए निकले साधक को आहारादि की मात्रा का ज्ञान होना चाहिए और मर्यादित आहार लेना चाहिए।

"लद्ध आहारे अणगारो मायं जाणिज्जा, से जहेयं भगवया पवेदितं, लालुत्ति न मज्जिज्जा, अलालुत्ति न सोइज्जा, बहुं पि लध्धु न निहे।"

'आचारांग सूत्र' में भगवान का कथन है कि साधू को मर्यादित आहार लेना चाहिए। संयमी साधक का यह कर्तव्य है कि आहारादि की प्राप्ति हो जाये तो यह अभिमान न करे कि 'मैं कितना लब्धिसंपन्न हूँ कि मुझे ऐसा आहार प्राप्त हुआ है' तथा आहारादि न मिले तो यह शोक भी न करे कि 'मैं कितना अभागा हूँ कि आहार तक की प्राप्ति नहीं होती।' गोचरी मिले तो ठीक, न मिले तो भी ठीक। न मिले तो साधू यह सोचे कि 'आज मुझे स्वतः तप करने का अवसर प्राप्त हो गया है।' परन्तु दोनों अवस्था में समभाव रखना, साधू का कर्तव्य है। अधिक वस्तु मिल जाने पर साधू संग्रह भी न करे। जहाँ संग्रहवृत्ति है, वहाँ अणगार भाव नहीं टिक सकता। धर्मरुचि अणगार गुरु की आज्ञा लेकर गोचरी के लिए निकले हैं। मासखमण तप है पर जरा भी उतावली नहीं, समभाव से विचरते हैं।

आज, बहुत बार तप करते हैं, परन्तु समझ न होने से वह तप ताप बन जाता है।

सासु-बहू का प्रसंग : एक बार सासूजी ने पौषध सहित अट्ठम (तेला) किया। बहू के मन में आया कि 'मैं तो पौषध नहीं कर सकूँगी, पर घर बैठे अट्ठम तो कर लूँ।' दोनों ने अट्ठम किया है, पर समझ का फेर है। सासुजी के पारणा का दिन आया तो बहू ने सारी तैयारी की। सासुजी पौषध पूर्ण करके घर पहुँची। सासुजी को आने में देर होते देख बहू आपना चौविहार पारने लगी। पारणा की सब तैयारी कर चुकी थी। रसोई में सब व्यवस्थित रखा हुआ देखकर सासू ने सोचा कि 'कैसी बहू है, पारणा की कोई तैयारी नहीं और स्वयं दातुन करने बैठ गई है।' सासू ने तप किया है, परन्तु तप के भाव को समझी नहीं है, बहू पर क्रोध आ गया। क्रोध के आवेश में बर्तन उठाकर बहू पर आघात किया। बहु के कपाल में जोर से चोट लगी और रक्त छलक आया। फिर भी बहू इस बारे में न कहकर, यही बोली कि "माताजी ! मेरे निमित्त से आपको असाता हुई, दुःख हुआ ! मुझे माफ कीजिए।"

पारणा के लिए बनायी सभी वस्तुएँ सासुजी के सम्मुख परोसी। यह सब देख सासुजी के मन में आया कि यह तो मक्खन जैसी कोमल और क्षमा का सागर ! मैंने इसके साथ क्या किया ? मारा तो भी गुस्से नहीं हुई, उल्टे कहने लगी कि 'मेरे निमित्त से आपको असाता हुई ना ? मुझे क्षमा दीजिए ।' इसकी कितनी धीरता और कैसी क्षमा है ! मैंने तो उपाश्रय में बैठकर अट्ठम किया जबकि बहू ने घर का सारा बोझ उठाकर अट्ठम किया है। इतने में श्वशुर आ पहुँचे। उनके पूछने पर बोली : "जरा चोट लग गयी है।" पर यह न बोली कि सासुमाँ ने मारा है। सासु का दोष जरा भी न माना। अतः सासु बहू के सम्मुख नत हो गयी, बोली : "बेटी ! तू हमारे घर की देवी है।" पति से कहने लगी : "बहू को लगा नहीं है, मैंने मारा है। पर यह क्षमामूर्ति किसीके दोष नहीं देखती।" सासु को बहुत पछतावा होती है। फिर उनका जीवन सुधर गया। मन में जान लिया कि मैं चाहे जितनी क्रियाएँ करूँ, पर क्रिया के भाव को समझे बिना कल्याण संभव नहीं। बहू ने अट्ठम कितनी समझ के साथ किया। अतः तप के साथ क्षमा होनी चाहिए। धर्मरुचि अणगार गुरु से आज्ञा माँगते है। गोचरी के विधि-विधान समझ कर कहाँ गोचरी के लिए जायेंगे और वहाँ क्या होगा आदि भाव अवसर पर।

सती ऋषिदत्ताका चरित्र

सन्यासी की कहानी : सन्यासी के आग्रह से कनकरथ कुमार कुटिया में आये। सन्यासी अपने और उस देवकन्या के बारे में बताते हुए कहते हैं कि "अमरावती जैसी महान नगरी है मित्रावती। वहाँ राजा हरिषेण राज्य करते हैं। उनकी पटरानी प्रियदर्शना है, जिनका पुत्र है अजीतसेन। हरिषेण के पिता दो वर्ष पहले संसार के सारे सुख सर्प की केंचुली की भांति त्यागकर दीक्षित हो गये। प्रतिभासंपन्न हरिषेण प्रजा के सुख में राज्य का सुख मानकर राज्य का कार्य चला रहे। पिछले दो वर्ष में तो वे इतने लोकप्रिय हो गये कि जनता अपने राजा को देवतुल्य समझने लगी। राज्य में किसी प्रकार का कोई भय नहीं था। सभी नीति और प्रामाणिकता से व्यवसाय करते थे। राजा हरिषेण राजकाज में कुशल होने के साथ वीतरागदेव के उपासक भी थे। धर्म का स्थान उनके जीवन में महत्त्वपूर्ण था। राजा हरिषेण ज्ञान-विज्ञान के शौकीन थे।

हरिषेण राजा की उम्र पैंतीस वर्ष की थी। आज उनका जन्मदिन होने के कारण सारी नगरी में आनन्द और उल्लास का वातावरण था। आज से एक वर्ष पहले उनकी प्रिय रानी प्रियदर्शना का स्वर्गवास हो गया था, जिसका उन्हें गहरा आघात लगा था। परन्तु धर्म के ज्ञान के कारण यह समझते थे कि संसार में संयोग-वियोग

रहेगा ही। कर्म का लेन-देन पूर्ण होने पर जाना ही पड़ता है। प्रियदर्शना की मृत्यु के पश्चात् अनेक राजघरानों से संबंध के लिए प्रस्ताव आये, परन्तु राजा ने किसी पर ध्यान नहीं दिया। राज्य के वयोवृद्ध मंत्री ने राजा से कहा कि "आपकी उम्र तो अभी बहुत कम है। युवावस्था का प्रारंभिक काल है। जीवन-संगिनी के बिना, राजभवन सूना नहीं रहना चाहिए।" हरिषेण ने उत्तर दिया कि "आपकी बात सच है, परन्तु जिसके साथ दस वर्ष से संबंध जोड़ा था, उसकी चिता की राख भी ठंडी नहीं हुई है और मुझे फिर से विवाह करने की सलाह दे रहे हैं - क्या यह आपको शोभा देता है?" मंत्रियों से बहुत आग्रह करने पर राजा ने कहा : "एक वर्ष तो बीतने दीजिए, तब देखेंगे। रानी के स्थान पर यदि मेरी मृत्यु हो गई होती तो रानी एक वर्ष तक घर से बाहर भी नहीं निकलती और आपलोग मुझे दस दिन में फिर से परिणय करने कह रहे हैं।" अंत में एक वर्ष की मुद्दत रखी गयी।

न सीखा हुआ घोड़ा : एक बार राजा एक घोड़े पर सवार होकर नगर के बाहर सैर के लिए निकले। यह घोड़ा राज्य की रीति के अनुसार सिखाया हुआ नहीं था, इसलिए एकाएक जंगल के रास्ते में दौड़ा। राजा के रक्षक देखते रह गये और घोड़ा राजा को लेकर सरपट भाग खड़ा हुआ। राजा उसे रोकने की बहुत कोशिश करते हैं, पर वह अशिक्षित घोड़ा रुका ही नहीं। बंधुओं! मानव का मन भी ऐसा ही है। जैसे घोड़ा राज्य की रीति सीखा हुआ नहीं उसी तरह मन भी तत्त्व की शिक्षा प्राप्त नहीं होने से अनिच्छनीय विकल्पों के जंगल जैसे मार्ग पर दौड़ा चला जाता है। नवकार मंत्र की माला गिनते समय या कोई धर्मक्रिया करते समय मन को रोकने के लिए कितने प्रयत्न करते हैं फिर भी सांसारिक विचारों में मन दौड़ा जाता है। एक वस्तु के विचार से, दूसरी वस्तु के विचार में जाने का कारण क्या हो सकता है? मन को धर्मरूपी लगाम से नियंत्रित नहीं किया हे। धर्मशिक्षा रूपी लगाम से मन को शिक्षित नहीं किया होगा तो जिंदगी के अंत तक ऐसे ही उल्टे-सुल्टे, गलत विचारों रूपी जंगल में दौड़ता रहेगा और दुर्गति में ले जायेगा। 'उत्तराध्ययन सूत्र' में प्रभु ने फ़रमाया है कि "मन रूपी घोड़े को शिक्षित करो।"-

'साहसिक अने भीम, दुष्ट घोड़ा समुं मन,
दोडे ते वश्य थाये छे, धर्म शिक्षा लगामथी।'

दुष्ट घोड़े के समान मन रूपी घोड़ा उछलता रहता है। उसे धर्मशिक्षा रूपी लगाम लगाकर ही वश में किया जा सकता है। राजा हरिषेण को लेकर वह अशिक्षित घोड़ा जंगल में भागा जा रहा हैं। राजा की कोई कोशिश उसको रोकने में सफल

नहीं हो पा रही थी । तब राजा ने सोचा, 'कुछ आधार मिले तो कूद पड़ूँ ।' तभी बरगद के पेड़ के नीचे से घोड़ा गुजरा और राजा उछलकर डाली पकड़ पेड़ पर चढ़ गये । घोड़ा तो भागता आगे चला गया । राजा वृक्ष से नीचे उतरे । वृक्ष के सहारे और भटकने से राजा बच गये वैसे ही वीतराग वाणी के आलंबन से कुविचारों में आगे बढ़ता मन अटक जाता है और सुविचारों से जुड़ जाता है ।

राजा चारों ओर नजर दौड़ाते हैं तो दूर-दूर तक घना जंगल है । अब सोचते है किधर जायें ? जबतक राजमहल में बैठे सुख की छाया में थे तबतक दुःख का पता न था । आज जंगल में दुःख का प्रसंग आया तो चिंता होने लगी । बंधुओं ! आप सब भी तो यही सोचते है कि 'आज जो कुछ सुख प्राप्त हुआ है उसे भोग लें, आनन्द उठा लें, दुःख आयेगा तो देखा जायेगा ।' जबतक जीवन चल रहा है, परलोक प्रयाण नहीं हुआ है, परभव का दुःख सहने की स्थिति नहीं आयी है, तबतक क्या चिंता ? आयेगा तब देखेंगे । परन्तु यह विचार नहीं करते कि परलोकगमन और नरक, तिर्यंच के दुःख सम्मुख आ जायेंगे, तब क्या करेंगे ? आज आपकी पत्नी या पुत्र कुछ समय के लिए दूर जाते है, तो आपका मन व्याकुल हो जाता है । इतना ही नहीं यदि उनका पत्र या समाचार न मिले तो भी परेशान हो जाते हैं । तो फिर जब परलोक जाते हुए, सदा के लिए और बिना समाचार दिये वियोग होगा, तब क्या स्थिति होगी ? आज तो शारीरिक दुःख या अन्य कोई वेदना सहन करना मुश्किल लगता है, फिर नरक, तिर्यंच गति के भयंकर दुःख जब परलोक में भोगने पड़ेंगे तब क्या शान्ति रह सकेगी ? इसलिए अभी से विचार करना उचित है जिससे दुःख न आयें, परेशानी न हो । इसके लिए ज्ञानी कहते है कि 'अपनी भावना को शिक्षित कीजिए ।'

धन-संपत्ति, पुत्र-परिवार सभी संयोग नाशवंत हैं । एक दिन छोड़कर जाना है । इसमें 'मेरा-मेरा' क्या करें, कुछ भी मेरा नहीं है । आप अभी से मान लीजिए कि यह सब चले गये, मैं अकेला हूँ । अकेले होने पर भी चिंता नहीं, भाग्य मेरे साथ हैं । अरिहंत और उनका धर्म मेरे साथ रहने वाला है, फिर मुझे क्या चिंता ? इस जगत में बहुत-से जीव क्या बिल्कुल अकेले नहीं दिखते ? वे किस पर ममत्व रखते है ? जब ऐसी भावना आयेगी तब जीव यह नहीं सोचेगा कि जब होगा तब देखेंगे । राजा जंगल में अकेले खड़े हैं । दुःख के इस प्रसंग में विचार करते है कि अब कहाँ जाऊँ ? राजा अब किधर जायेंगे ? फिर क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक २३

श्रावण शुक्ल १०, रविवार | दिनांक : २८-७-७४

धर्म की महानता

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शासन सम्राट वीर भगवान के मुख से निःसृत शाश्वती वाणी का नाम है सिद्धान्त । इन महापुरुषों ने आपके द्वारा मान्य संसार के सुख को दुःखमय जाना और आप जिसे दुःख मानते है, उसमें सुख देखा । संसार को दुःखमय जाना, इसलिए संसार छोड़कर चल निकले । जबतक संसार के प्रति राग कम न होगा तबतक मोक्ष की बातें समझ में नहीं आयेंगी । आप अपनी बैठक के 'शो-केश' में अनार, अमरूद, संतरा, आम आदि फलों की लकड़ी या मिट्टी की प्रतिकृति सजाकर रखते है । यदि कोई व्यक्ति भूखा हो तो क्या इनसे उसकी भूख मिटेगी ? (श्रोताओं में से आवाज : 'नहीं मिटेगी !') ज्ञानी भी यही कहते है कि 'बनावटी फलों से जैसे भूख नहीं मिटती वैसे ही मोक्ष की बनावटी बातें करने से कल्याण नहीं हो जाता ।' जिसे मोक्ष के प्रति रुचि जागी है उसे संसार के सर्व सुख दुःखमय प्रतीत होते है । उन्हें संसार दुःख का दरिया लगता है और संयम सुख का समुद्र । उपवास करना, संयम ग्रहण करना, घर-घर भिक्षा लेने जाना, बाईस परिषह सहन करना, आदि में आपको दुःख दिखता है, जबकि ज्ञानियों को इसमें सुख दिखाई देता है । उन ज्ञानी महापुरुषों ने सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप अंगीकार करके, अघोर परिषह सहन करके विचारमंथन द्वारा हमारे समक्ष सिद्धान्त रूप में प्रस्तुत किया है । अतः अब जागने की जरूरत है ।

जागो, जागो रे ओ मानवी भैया, किनारे आवी छे मानव देहनी नैया
घोर दुःखोंने सही सहीने जिंदगी वीती, जीवन सुधारवाने आचरो नीति
भवनी परंपरा कापजो भैया, किनारे आवी छे...

ज्ञानी पुरुष कहते है कि 'तेरी नौका किनारे आ गयी है । '*संबुज्झह संबोहि खलु पेच दुल्लहा !*' परलोक की अपेक्षा से सम्यक्त्व बोध की प्राप्ति होना दुर्लभ है । काली मिट्टी वाली भूमि में बीज की बोआई आसानी से हो सकती है और पथरीली भूमि में बीज बोना मुश्किल है । सम्यक्त्व रूपी बीज को बोने के लिए

मानव भव की भूमि सुंदर और सुविधाजनक है । मनुष्य भव प्राप्त करना कितना दुर्लभ है, फिर भी यहाँ जन्म प्राप्त हो गया है । जन्म पाने के पश्चात् मोह की पराधीनता छोड़कर प्रभु की अधीनता स्वीकार कर लेना चाहिए । मोह के सिखाये अनुसार करने के लिए तो जगत में बहुत जन्म मिले, परन्तु वीतराग देव की आज्ञानुसार करने के लिए यही एक मनुष्य भव है । प्रभु की आज्ञा के वशानुवर्ती होने का कितना महान अवसर इस दुर्लभ मानव अवतार में प्राप्त हुआ । परन्तु इस महान अवसर का मूल्य नहीं समझा और कंगाल बनकर मोह की अधीनता में पड़ा रहा । मोह के अधीन बने, इतना ही नहीं, बल्कि मोह ने जो दुष्कृत्य, दुश्चरित्र सिखाया, उसका आचरण भी करने लगे । करुणासागर जैसे प्रभु के दर्शन मिले पर उसमें अपना चित्त न लगा और मलमूत्र से भरे, सिर्फ ऊपर से रूपवान दिखने वाले मोह के पुतले देखने में ओत-प्रोत बन गये । परन्तु जीव को यह भान नहीं होता कि ऐसे अशुचि भरे पुतले तो जन्मोजन्म मिले और प्रत्येक जन्म में मन को उसीमें रमाया फिर भी मन को कभी तृप्ति नहीं मिली । तृप्ति तो होती वीतराग तेरे दर्शन से, तेरी वाणी से, एक तार हो जाने से । यह अवसर इस जन्म में मिला है पर जीव इसे पहचान नहीं पाता, इसीलि अभी तक भवसागर में भटक रहा है । प्रभु की आज्ञा के आधीन रहकर, उसमें चि लगाया होता तो जीव का भटकाव समाप्त हो गया होता । मानवदेह में मोह के व होकर इन्द्रियों द्वारा मोह का खेल खेलने से उसीके अनुरूप संस्कार उत्पन्न हो हैं । फिर इन संस्कारों से भव-भव भटकना पड़ता है । उसके बदले यदि मन व जिनेश्वर देव की आज्ञा अधीन कर दें तो मोह का कुटिल खेल समाप्त हो जाये । फि चित्त उसमें नहीं जाता तब धीरे-धीरे अनादि के कुसंस्कार कम होते जाते हैं । मो का खेल बंद होने और वीतराग प्रभु में चित्त के एकमेक हो जाने से भव का अं आ जाता है । यह सब मानव भव में ही हो सकता है । सम्यक्त्व रूपी बीज को बो के लिए यह सुंदर फलद्रुप जमीन प्राप्त हुई है । कोई व्यक्ति जहर को जानने के बा जहर पीयेगा क्या ? (श्रोताओं में से आवाज : 'नहीं पीयेगा ।') आपने चार सेर डालकर, सुंदर जाली वाली मैसूर पाक बनायी । तश्तरी में लेकर मुँह में डालने र रहे हों कि कोई कह दे कि 'इसमें जहर है' तो उसे वहीं छोड़ देंगे, या आजमायेंगे वहाँ विश्वास है । भगवान ने भी फ़रमाया है कि "यह संसार असार है, इसमें रम उचित नहीं है ।" 'संसार दावानल है' ज्ञानी के इस वचन पर यदि विश्वास जम जा आत्मा की जागृति होगी । आत्म जागृति होने पर वैरागी जीव संयम में आनन्द महसू करेगा । ज्ञानगर्भित वैराग्य आने पर आत्मा की झलक ही कुछ विशेष होती है ।

द्रौपदी का अधिकार

धर्मरुचि अणगार नागेश्री के घर पहुँचे : 'ज्ञाताजी सूत्र' में धर्मघोष मुनि के
अंतेवासी शिष्य धर्मरुचि अणगार गुरु से गोचरी के लिए आज्ञा माँगते है । धर्मरुचि
'यथा नाम तथा गुण' है । नाम के अनुरूप उनमें गुण भी है । इसलिए उनके रग-रग
में धर्म और तप की रुचि प्रकट है । बंधुओं ! संसार छोड़कर निकल जाने से ही सब
पूरा नहीं हो जाता । दीक्षा लेते है तब अपनी जीवननैया गुरुचरणों में अर्पण कर देते
है । अर्पणता के बिना तर्पणता नहीं मिलती । गुरु ही मेरे जीवन और गुरु की आज्ञा
मेरा प्राण है - जिस शिष्य के रग-रग में यह भाव भरा है, वह तरे बिना नहीं रहता ।

संयति राजा और गर्दभालीमुनि का प्रसंग : वीतराग के एक शब्द में असीम
शक्ति है । संयति राजा शिकार करने निकले । एक निर्दोष हिरनी को निशाना
बनाया । दुनिया के समस्त प्राणी को जीना अच्छा लगता है, मरना किसीको पसंद नहीं
है । वह तड़फड़ाती हिरनी ध्यानस्थ गर्दभालीमुनि के नजदीक जाकर गिर पड़ी । अपने
शिकार को ढूँढते हुए राजा वहाँ पहुँचे तो हिरनी को मुनि के चरणों के पास पड़ा देखकर
भयभीत हो गये । कहीं यह हिरनी मुनि की तो नहीं ? मैं कितना रसलोलुप ! कितना
हतभागी ! मैंने निरपराध जीव को मारा । अब यदि मुनि ने श्राप दिया तो मेरी मौत
निश्चित है । जीव को मरने का कितना डर है ? भगवान फ़रमाते हैं कि -

"सव्वे जीवा वि इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं ।"

सर्व जीवों को जीना पसंद है, मरने की इच्छा कोई नहीं रखता । अस्सी-नव्वे
वर्ष के, जर्जरित शरीर वाले वृद्ध-वृद्धाएँ भी मरना नहीं चाहते । ज्ञानी को जन्म
का डर है और अज्ञानी को मृत्यु का । कांपते कदमों से राजा मुनि के पास
आये । मुनि के चरणों में नमस्कार करके कहने लगे कि "हे भगवान ! मुझे क्षमा
कीजिए । मुझे ज्ञात न था कि यह आपकी हिरनी है ।"

मुनि के चरणों में गिरकर राजा माफी माँगते हैं, कहते हैं : "मैं संयति राजा
हूँ, मुझसे कुछ कहिए ।" उन्हें डर है कि क्रोध में आकर साधू अपने तेज से करोड़ों
को भस्म कर सकते हैं *"डहेज्ज नरकोडिओ ।"* राजा को पता नहीं है कि
चाहे जितनी सिद्धियों के स्वामी हो, परन्तु जैन-साधू शक्ति का उपयोग कदापि
नहीं करते । सनत्कुमार चक्रवर्ती को सोलह रोग हुए थे । उनके तप के प्रभाव से
ऐसी शक्ति उत्पन्न हुई थी कि अपना थूक भी यदि शरीर पर स्पर्श करवायें तो
सारे रोग मिट जायें । फिर भी लब्धि का प्रयोग नहीं किया । वरन् सत्ता में पड़े
हुए बल- वीर्य का उपयोग कर्म तोड़ने के लिए किया । संयति राजा मरण के भय
से कहता है, "हे गुरुदेव ! मुझे अभयदान दीजिए ।" तब मुनि ने क्या कहा ? -

*"अभओ पत्थिवा तुब्भं, अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्च जीव लोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसी ।।"*

उत्त. सू. अ-१८, गा ११

"हे राजन् ! मेरी ओर से तुझे अभय है । तू इतनी हिंसक क्रिया में लगकर बेचारे निर्दोष जीवों का घात करता है, क्या अन्य जीवों को मरने का भय नहीं है ? तुझे जो पसंद नहीं है वह भला दूसरे जीवों को क्यों पसंद होगा ! अपने समान सभी जीवों को समझ । अनित्य संसार में तू हिंसा में क्यों लगा हुआ है ? हे राजन् ! मेरी ओर से तुझे अभय है । तू भी अभयदाता बन अर्थात् अन्य जीवों को अभय देने वाला बन ।" मुनि की वैराग्यभरी वाणी सुनकर संयति राजा गर्दभालीमुनि के पास दीक्षित होकर सर्व जीवों के अभयदाता बन गये ।

बंधुओं । सब्जी छीलते हुए अंगुली न छिल जाये, इसका कितना ध्यान ! परन्तु कभी विचार आता है कि सब्जी छीलते हुए वनस्पति के जीवों को छीले जा रही हूँ । मैं यह क्या कर रही हूँ ? वनस्पति में केवली बनने वाले जीव भी उत्पन्न हो सकते है, तो केवली की असातना होती है । पृथ्वी, पानी और वनस्पति से निकला जीव केवली हो सकता है । वनस्पति में प्रत्येक की बात है, साधारण की नहीं । जब समकित के लक्षण आयेंगे तब पाप करते हुए कांपेंगे । पानी ढोलते समय यह विचार आयेगा कि 'मैं पानी नहीं फेंक रहा, आत्मा का गुण नष्ट कर रहा हूँ ।' जीव मिट्टी में अधिक है या पानी में ? दोनों में असंख्याता जीव होते है, परन्तु असंख्याता असंख्याता में अंतर है । पृथ्वीकाय में से ज्वार जितनी पृथ्वीकाय लें और उसमें से एक-एक जीव निकलकर कबूतर जितनी काया करे तो जंबुद्वीप में नहीं समाये । पानी की एक बूँद में असंख्याता जीव है । उसमें से एक-एक जीव निकलकर सरसों के दाने जितनी काया धारण करें तो जंबुद्वीप में नहीं समायेंगे और अग्निकाय के जीव खसखस के दाने जैसी काया धारण करते है । पृथ्वीकाय से पानी में अधिक और पानी से अग्नि में अधिक जीव होते है । छःकाय के जीवों का आरंभ-समारंभ करके मेजबानी उड़ाते हो, पर इस आनन्द के पीछे बहुत दुःख है । सम्यक्दृष्टि जीव यह विचारेगा कि कबतक मैं इस पाप में रहूँगी ? चारित्र मोहनीय के उदय से संयम न ले सकते हों तो भी रात-दिन यही भावना रहती है कि मैं इससे कैसे छूटूँ ? तथा छःकाय के जीवों को अभयदान दूँ ? संसार में रहने वाला जीव छःकाय के जीवों को अभयदान नहीं दे सकता । इसके लिए तो चारित्र ही लेना पड़ता है । भगवान महावीर भी भाई के कहने से दो वर्ष तक संसार में साधू की भांति रहे । सचित वस्तु का संपूर्ण त्याग किया था । संसार में भी अलिप्त

भाव से रहते थे, फिर भी मनःपर्याय ज्ञान नहीं हुआ । परन्तु जैसे ही दीक्षा ली, *'करेमि भंते'* का पाठ पढ़कर नौ कोटि का प्रत्याख्यान किया, तभी मनःपर्याय ज्ञान हुआ । संसार में चाहे जितना सुंदर धर्ममय जीवन जीते हों पर त्याग के एक अंश की तुलना में भी वह नहीं बैठता ।

महा तपस्वी धर्मरुचि अणगार मासखमण के पारणा के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान और तीसरे प्रहर गुरु की आज्ञा लेकर गोचरी के लिए निकले । ईर्या समिति शोधते हुए मुनि घर-घर में गोचरी के लिए जाते है । निर्दोष आहार-पानी न देख लौट जाते है । इसी तरह विचरते हुए नागेश्री के घर के नजदीक पहुँचते है । नागेश्री के घर में सबका भोजन हो चुका है । फक्त एक पतीली में कड़वी सब्जी रखी हुई है । दिन में यदि कहीं फेंकने जाये तो कोई देख लेगा - यह सोचकर उसने रखा था कि रात में फेंक आयेगी । रात में किसीको पता न चलेगा । परन्तु रूई में लपेटी आग छिपी रहे तो पाप भी छिपा रह सकता है । मुनि को उत्कृष्ट भाव से दान देते हुए जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है और नागेश्री साधू को दान देकर भी नरक में गयी । यदि हम कहें कि दान देने से नरक मिलेगा तो आप कभी बहरायेंगे ? (श्रोताओं में से आवाज : 'अरे, यहाँ आइए मत, ऐसा कह देंगे ।') क्रिया वही है, परन्तु परिणाम में बहुत अंतर है । नागेश्री ने स्वागत में सुंदर शब्दों का प्रयोग किया, उसकी वृत्ति सही परिणाम वाली होती तो काम बन जाता, परन्तु उसकी दृष्टि उल्टी थी, वृत्ति मलिन थी, मानभंग होने का भय था ।

'नागेश्री मानमां मंडानी, दानमां दंडानी, जगतमां भंडानी ।'

ज्ञानी कहते है कि 'तू हँस-हँस के कर्म बाँधेगा पर रोते-रोते भी छूटेगा नहीं ।' निर्दोष, मासखमण के उग्र तपस्वी को ऐसा कड़वा - बिगड़ा साग कभी बहराना चाहिए ? अरे तपस्वी न हो, सामान्य साधू हो तो भी नहीं दिया जा सकता । लेकिन मान में चढ़ा जीव सब भान भूल जाता है ।

राजा भोज का प्रसंग : उज्जैनीनगरी के राजा भोज एक सुबह घोड़े पर सवार होकर उद्यान की ओर जा रहे थे । उनकी दृष्टि एक लड़के पर पड़ी जो अनाज गोदाम के बाहर धूल में पड़े अनाज के दाने चुन रहा था । राजा भोज विचार करते है कि 'मेरी पुण्यवान नगरी में यह छोकरा ऐसा कैसे निकला जो धूल से कण बीन रहा है । मेरी राजधानी में ऐसा भुखमरा ? इस लड़के को श्रम करने में जोर आता है क्या, जो ऐसा कर रहा है ?' राजा अभिमान में आकर व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहते हैं, **"जननी ऐसा मत जनो, भोंय पड्या कण खाय"** । -'हे माता ! तूने कैसे

पुत्र को जन्म दिया जो धूल में से दाने चुनकर खाता है ? ऐसे पुत्र को जन्म देकर राष्ट्र पर भार क्यों बढ़ाती है ?" यह आवाज उस लड़के के कानों तक पहुँची तो उसने सोचा, 'ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त होकर राजा दरिद्र पर व्यंग्यबाण छोड़ रहे हैं। वैभव और सुख विलास में पलने वाले को क्या पता है कि पेट की पीड़ा क्या होती है ? यह तो हमीं जानते है। पेट की भूख मिटाने के लिए धूलमिश्रित कण एकत्रित कर रहा हूँ, यह भी इन्हें पसंद नहीं है। इन्होंने मुझे तो दोष दिया ही है पर मेरी माता का अपमान किया है। अतः मुझे भी इनको बराबर जवाब देना चाहिए।' उसने कहा –

"छते योगे दुःख ना हरे, ऐसो न जनिए माय।"

हे माता ! तू कहाँ बांझ रहने वाली थी कि जिसके पास देने की शक्ति है, संपत्ति-धन-वैभव का भंडार है फिर भी जनता का दुःख-दर्द दूर करने का प्रयत्न न करे। ऐसी शक्ति होने पर भी गरीब की मदद न करे तो संपत्ति किस काम की ?" भोजराज घोड़े से उतरकर लड़के को गले लगाकर कहते है : "बेटा ! तू राजाओं का राजा है। तूने मेरी आँख खोल दी। मेरा भरा-पूरा भंडार मेरा कहाँ है ? वह तो प्रजा का है और प्रजा के काम न आये तो क्या लाभ ? मैंने तेरा ध्यान न रखा, इसलिए आज तेरी यह अवस्था हुई।" ऐसी माताओं की संतानों से धरती की शोभा बनी हुई है।

भगवान महावीर जिधर-जिधर विचरते, लोग कहते 'त्रिशलानंदन पधारो।' माता का नाम पहले लिया जाता था। सिद्धान्त में पाठ है कि वैरागी आत्माएँ दीक्षा लेने तैयार होने पर पहली आज्ञा किससे लेने जाते हैं ? (श्रोताओं में से आवाज : 'माता से') क्यों आपसे आज्ञा लेने नहीं आये ? क्योंकि माता का हृदय कोमल होता है। माता को समझाते हुए पिता भी समझ जाते हैं। भोजराज का परिवर्तन हुआ, मानवता का गुण प्रकट हो गया। गुण तो था ही, परन्तु मान उस पर चढ़ा हुआ था। प्रगटाने वाला मिल गया तो गुण खिल उठा।

जिसके आँगन में मासखमण करनेवाले उग्र तपस्वी पधारें, उनके यहाँ तो कल्पवृक्ष फल गया कहा जाता है। उत्कृष्ट भाव से निर्दोष सुपात्र दान देकर उनके संयम में पुष्टिकारक बनिए, पर संयम के लुटेरे मत बनिए। संग्रहणी के मरीज को सच्चे मोती का भस्म नहीं दिया जाता, सेवन करे तो मर जाता है। आप भी साधू का संयम लूटें, ऐसे रागी न बनिए। क्योंकि आधाकर्मी आहार वहराने से अनंतबार गर्भ में आना पड़ता है। पहले के समय में श्रावकों के घर में ही निर्दोष वस्तुएँ प्राप्त हो जाती थीं। आज कोई बीमार पड़े तो औषधि खरीद कर ही लानी पड़ती है।

भगवान महावीर को रक्त के दस्त लग रहे थे । उनके एक शिष्य सिंहा अणगार उस समय पर्वत पर थे । उन्हें ज्ञान हुआ कि गोशालक बोलता फिर रहा है कि 'भगवान महावीर मरने वाले है ।' यह सुनकर वह फफक-फफक कर रोने लगे । तब भगवान ने गौतमस्वामी से कहा : "हे गौतम ! गोशालक के झूठे प्रचार से सिंहा अणगार पर्वत पर बहुल रुदन कर रहे हैं । तू जाकर उन्हें शान्ति प्रदान कर !" गौतम स्वामी, वहाँ पहुँचकर उन्हें शांत करते है और भगवान के पास ले आते हैं । भगवान उनसे कहते हैं : "सिंहा ! तू क्यों इतना रो रहा है । मैं अभी मरने वाला नहीं और सोलह वर्ष तक इस धरती पर विद्यमान रहकर विचरण करूँगा । अतः रोओ मत ! गुरु के मुखारविन्द से निःसृत अमृतघूँट ने सिंहा को शांत कर दिया । अब मेरे प्रभु को कुछ नहीं होगा ! भगवान ने उनसे कहा : "हे सिंहा अणगार ! इस नगरी में रेवती नामक एक श्राविका के यहाँ जो बीजोरापाक बनाया है, वह मुझे नहीं कल्पता, क्योंकि वह मेरे लिए बनाया गया है, इसलिए वह मत लाना । परन्तु उसने घोड़े के लिए जो कोळापाक बनाया है, वह लेकर आना ।"

सिंहा अणगार मन में विचार करते है, मैं कितना भाग्यशाली हूँ, मुझे गुरुसेवा का लाभ मिला है ।' गुरु की सेवा तो मुक्ति का मेवा है । सिंहा अणगार को आते देखकर रेवती हर्षित होकर आगे गई और 'पधारो गुरुदेव' कहकर घर में ले गयी । रेवती उमंग से बीजोरापाक बहराने आयी तो सिंहा अणगार ने कहा : *'न मे कप्पइ तारिसं ।'* "यह आहार मुझे नहीं कल्पता ।" रेवती ने पूछा, "भगवान ! क्यों नहीं कल्पता ?" तब उन्होंने कहा : "यह आहार भगवान के लिए आरंभ-समारंभ करके बनाया गया है - इसलिए नहीं कल्पना ।" रेवती आश्चर्य में पड़ गई कि 'यह बात मेरी बहू तक नहीं जानती, मुनि को कैसे ज्ञात हुई ?' पूछने पर उत्तर मिला कि "मेरे केवल ज्ञानी गुरु ने अपने ज्ञान में सब देख लिया है और मुझे कहा है ।" दिल झनझना उठा कि 'अहो ! मेरे प्रभु का इतना ज्ञान, मेरे मन के भाव भी जान गये !' घोड़े के लिए बनाया गया कोळापाक ग्रहण कर सिंहा अणगार भगवान के पास पहुँचे । भगवान का दर्द शांत होने वाला था, सातावेदनीय के उदय से रोग दूर हुआ । भगवान ने फ़रमाया हैं : "हे मेरे संतों ! आप द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव देखकर गोचरी कीजिए ।" गोचरी लेते हुए देने वाले के भावों में वृद्धि हो, न कि भाव लूट जाये । साधू और श्रावक दोनों को स्वयं में स्थिर बनना चाहिए ।

धर्मरुचि अणगार गोचरी की गवेषणा करते हुए नागेश्री के यहाँ आ पहुँचे । नागेश्री घर से बाहर निकलकर बोली : "गुरुदेव ! पधारो, पधारो ! मुझे पावन करो । आज मेरे आँगन में कल्पवृक्ष फला है ।" नागेश्री अभी और भी मीठे शब्दों से मुनि का कैसा सत्कार करेगी, आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

राजा हरिषेण जंगल में : राजा हरिषेण को अशिक्षित घोड़े ने जंगल में पहुँचा दिया । अव चिंता हुई कि कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? एक पेड़ पकड़कर घोड़े से पीछा छुड़ाया । नीचे उतरकर चारों ओर देखा तो एक सरोवर दिखाई पड़ा । सरोवर के पास जाकर हाथ-मुँह धोकर स्वस्थ हुए । पड़ोस में एक आश्रम भी नज़र आया । वहाँ पहुँचे तो तापसों ने उनका स्वागत किया तथा अपने कुलपति विश्वभूति के पास ले गये । राजा ने उन्हें प्रणाम किया । ऋषि उनके लक्षण से अंदाज कर लेते है कि ये कोई राजा हैं । विश्वभूति उनसे पूछते है कि "आप अकेले क्यों है ? तथा यहाँ आने का कारण क्या है ?"

राजा कहते है : "भगवन् ! संसार में जीव एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपनी धारणा से अलग ही पहुँच जाता है, आज मुझे इसका अनुभव हुआ है । मैं मित्रावतीनगरी का राजा हरिषेण हूँ । घुड़सवारी के लिए निकला था, मुझे ज्ञात नहीं था कि घोड़ा उल्टी लगाम वाला है और उसने जंगल की ओर अपनी दौड़ जारी रखी । किसी भी प्रकार वह रुका नहीं तो नजदीक के एक वृक्ष की डाली पकड़कर कूद पड़ा । मेरा सद्भाग्य है कि वृक्ष से उतरकर यहाँ तक पहुँच गया और आपके पावन दर्शन हो गये । यह आश्रम किसके द्वारा स्थापित है ?" कुलपति ने कहा कि "भगवान ऋषभदेव स्वामी के समय में कच्छ और महाकच्छ नामक महा तापस, भगवान के भक्त हुए । उन्हीं के द्वारा स्थापित यह आश्रम चल रहा है । संसार से थके हुए तथा मानव जीवन का सार पाने के इच्छुक भव्यात्माएँ यहाँ आकर तपस्या करती हैं ।" इस प्रकार निवृत्तिमय जीवन का स्वरूप समझाते हैं । सुनते हुए राजा के मन में आया कि 'अहो ! कैसी धन्य आत्माएँ हैं जो संसार के तापम जंजाल से छूटकर यहाँ तपोमय जीवन बिताते हैं । मेरे जीवन में वह धन्य दिन कब आयेगा जब मैं भी इस दुःखभरे संसार से छुटकर तपोमय जीवन से जुड़ूँगा ।' क्या यह मानवदेह जीवन के अंत तक संसार के जंजाल में पीड़ित होने के लिए है ? विषयों से व्याकुल होते रहने के लिए है ? जीव की यह अज्ञान दशा है कि संसार के मायाजाल में हर कदम पर दुःख मिलते है, चिंता, भय और संताप हर क्षण सताते है, परिवार की ओर से भ्रमरी के काँटे की तरह चुभन मिलती है फिर भी उसमें मस्त होकर आनन्द मानता है । आपको समझ में आ गया है कि विषयों का सुख क्षणभंगुर है और उसकी तकलीफ रात-दिन आपके साथ है । अतः विषयों में माना हुआ सुख नहीं बल्कि भ्रम है, यह समझकर छोड़िए ।

किसे होता है ? भोगियों को होती है, त्यागियों को नहीं । ...
ति के साथ बातें करते हुए शुभ भावना में रम रहे थे । तभी जंगल में
ल होने लगा । आश्रमवासियों को कोलाहल सुनकर डर न लगा कि
हम लूट जायेंगे ? क्योंकि उनके पास है ही क्या जिसके लूटे जाने का भय
सके पास परिग्रह है उसे लूटे जाने का भय होता है । ये तो त्यागी तापस
हें यह भी भय नहीं है कि हमें कोई मार डालेगा । क्योंकि काया के प्रति
त्व भाव है ही नहीं । तपस्या करके काया को सुखा ही रहे है । तापसों को
भय नहीं है, परन्तु जिज्ञासा है कि यह कोलाहल कैसा ? राजा हरिषेण को
आया कि संभवतः मेरी सेना ही मुझे ढूँढती हुई आ पहुँची है । इसलिए राजा
निकलकर देखते है तो उनकी सेना ही है । उन्हें दर्शन देकर राजा ने आनंदित
। अपने महाराज को देख सबने प्रसन्नता से जय जयकार किया । सेनापति
लगे : "महाराज ! अब अपनी नगरी में पधारिए ।" परन्तु राजा बोले : "आप
भी यहाँ रुकिए । यहाँ आत्मा को शान्ति देने वाले महर्षि का आश्रम है, इनके
का लाभ लीजिए । शहर में जाने के पश्चात् यह महामूल्यवान सत्संग कहाँ
ा ?" अचानक यहाँ आने का प्रयोजन बन गया है तो कम से कम एक
तो सत्संग और आत्मा की शान्ति के लिए यहाँ रुकना ही है । अतः आप
भी यहीं पड़ाव डालिए ।"

षि के प्रति श्रद्धा : राजा का आदेश हुआ तो सेना ने वहाँ छावनी सजा
राजा अपना अधिकांश समय विश्वभूति ऋषि के सान्निध्य में, तत्त्व गोष्ठी
प्रतीत करते । दिन-प्रतिदिन राजा की भावना में वृद्धि होती जाती । सत्संग
सत्श्रवण का यह प्रताप है कि मनुष्य के दिल को बदल दे । असद् विकल्पों
विचारों से बचाकर दिल में शुभ भावनाओं को स्फुरित कर दे ।
नकरथ कुमार से वृद्ध तापस कहते हैं : "हरिषेण राजा विश्वभूति ऋषि की
सना करते हैं, सद्श्रवण से अपने हृदय को भावित करते जाते है । परमात्मा
प्रति उनकी श्रद्धा दृढ़ हो गई । एक मास के पश्चात् राजा वहाँ से जाने की
ा माँगते है : "भगवन् ! यहाँ आपश्री की छाया में ऐसा निर्मल आनन्द प्राप्त
ा है कि यहाँ से जाने की इच्छा नहीं होती, परन्तु राज्य का कार्यभार संभालना
वश्यक है अतः आपकी अनुमति चाहता हूँ ।" विश्वभूति ऋषि भी समझते हैं
संसारी जीव स्वेच्छा से जितना सत्संग करे उतना अच्छा । राजा से बोले :
खो, यहाँ आपने संत-समागम और तत्त्वश्रवण का लाभ लिया है, तो उसे
ावर दिल में रखना ।" कहकर ऋषि ने 'विषापहर' मंत्र (जहर उतारने का मंत्र)
जा को प्रदान किया । अब हरिषेण राजा सेना के साथ अपने नगर जायेंगे । वहाँ
या घटेगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक २५

श्रावण शुक्ला ११, सोमवार | दिनांक : २१-७-९४

जीवन का सार

सुज्ञ बंधुओ, सुशील माताओ और बहनों !

सर्वज्ञ भगवंत ने केवल ज्ञान और केवल द ... के सर्व पर्यायों को हस्तरेखा की भाँति स्पष्ट देख ... में भटकते जीवों की ओर करुणा भरी दृष्टि डा ... लिए आगममय वाणी प्रकाशित की । इस पर जीव को ... दुःख दूर करने के अवश्य होगी । *'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'* । सम्यक्दर्शन कब होगी ? तत्त्वों पर यथार्थ श्रद्धा होने का नाम सम्यक्दर्शन है । भगवान द्वारा प्ररूपित नव तत्त्वों में से जीव, अजीव मुख्य तत्त्व हैं । आज जगत अजीव का समरांगण है । अजीव की जबरदस्त सत्ता चल रही है । चैतन्य भाव को भूल गये हैं । जीव अपना घर भूले तो उसे भटकना ही पड़ता है । आत्मा के परभाव और परवस्तु में आसक्त बनने से यह दशा हो गयी है । परन्तु जैनकुल में जन्म लेने पर भी जैन सिद्धान्त के प्रति श्रद्धा नहीं हुई, रुचि नहीं हुई, इसीलिए जीव को सही समझ नहीं आई । अतः सही क्या है और गलत क्या है, इसका विवेक नहीं है । *'पढमं नाणं तओ दया ।'* पहले ज्ञान की जरूरत है, जीव को सच्चा ज्ञान होगा तब समझेगा कि मुझे वीतराग का शासन मिला है, वीतराग का महान मार्ग मिला है, मैं जिसके कारण अब्जोपति हूँ, शहंशाहों का शहंशाह हूँ । किसलिए ? आपके शासन को पाने वाला दुःख में भी सुख का अनुभव करता है । कर्म उदय आने पर उन्हें भोगते हुए यह विचार करता है कि मेरे ही बांधे कर्म मैं भोग रहा इसमें किसी अन्य का कोई दोष नहीं है । उसे सांसारिक सुखदुःख जैसे लगते क्योंकि इन सुखों के पीछे दुःख होता ही है ।

जहा किम्पाग फलाण, परिणामो न सुन्दरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो ॥

॥ ... ॥ उत्त. सू. अ. १९, गा-१८

किंपाक वृक्ष के फल रूप में, स्वाद में सुंदर होते हैं, परन्तु उसे खाने से जीव और काया जुदा हो जाती है । ऐसे ही संसार के भोग दिखने में सुंदर हैं, परन्तु उनका परिणाम सुंदर नहीं होता । मिथ्यादृष्टि टलने और सम्यक्दृष्टि आने पर यह समझ में आता है । मोहनीय कर्म इतना मजबूत है कि वह सचाई समझने नहीं देता । मोहनीय कर्म की संतान है मिथ्यात्व । मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियाँ है, जिनमें २५ चारित्र मोहनीय की हैं । दर्शन मोहनीय के तीन भेद - सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय । मोहनीय कर्म के अधीन बना हुआ जीव सुख में दुःख और दुःख में सुख मानता है । अर्थात् जहाँ वीतराग धर्म है, आत्मा का श्रेय-मार्ग है, वहाँ दुःख मानता है और संसार दुःख है वहाँ सुख मानता है । यह संसार कैसा है ?

"कलय संसारमति दारुणं, जन्म मरणादि भयभीत रे ।
मोह रिपुणेह सगलग्रहम्, प्रतिपदं विपदमुपनीत रे ।।"

हे आत्मा ! यह संसार क्लेश का घर है । संसार अर्थात् संयोग-वियोग और क्लेश का दारुण अखाड़ा । इस संसार को तू भयंकर समझ, क्योंकि यह जन्म-मरण आदि भय से भरा हुआ है । भय किसे होता है ? जिसमें सम्यक्दर्शन का प्रकाश नहीं हुआ है, संसार से छूटने का कोई मार्ग जिसने ढूँढा नहीं, और जो संसार के स्वरूप को नहीं समझता, उसे भय लगता है । अचानक कोई बीमारी आई तो डोक्टर बुलाकर यही पूछते हैं ना कि 'मैं इससे बचूँगा या नहीं ?' यदि बचने के उम्मीद न हो तो, मर जाने का डर लगेगा । मिथ्यादृष्टि टल गई होगी और सम्यक्दृष्टि आ गई होगी तो डोक्टर से पूछेंगे कि मेरा रोग साध्य है या असाध्य ? निःसंकोच कहिए । यदि असाध्य रोग हो जो दवा लेने से भी दूर न हो तो मैं अपनी आत्मा के उद्धार के लिए साधना कर लूँ । -

'उत्तराध्ययन सूत्र' में जैसे कहा है कि -

जहा गेहे पलितम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सार भण्डाणि नीणेइ, असारं अवउज्झई ।।

- उत्त. सू. अ-१९, गा-२३

जब घर में आग लगती है तो घर का मालिक व्यर्थ वस्तुओं को छोड़ सारभूत को साथ लेकर घर से निकल जाता है । इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि आत्मा जरा और मृत्यु से सुलगते इस संसार में से अपनी आत्मा का सत्व ढूँढ लेते है । आप सार वस्तु किसे मानते हैं ? हीरा-माणिक-मोती आपके लिए सार वस्तु है । आप क्या कह सकते हैं कि इन सार वस्तुओं को आप साथ लेकर जायेंगे ? जो आपके साथ

अणुपविट्ठे ।' वे चंपानगरी के उच्च, निम्न एवं मध्यम कुल के घरों में भ्रमण करते हुए नागेश्री के घर की ओर पहुँचे । लाभांतराय और दानांतराय कर्म का उदय होता है तो घर असूझता (दोषयुक्त) हो जाता है । दोनों की अंतराय टूटी हो तो गोचरी प्राप्त हो जाती है । नागेश्री ब्राह्मणी मुनि को देखकर, उनका कैसा सत्कार करेगी, क्या बहरायेगी तथा क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

विषहर मंत्र का प्रजा की भलाई के लिए उपयोग : हरिषेण राजा विश्वभूति ऋषि के आश्रम में एक मास व्यतीत करके लौटने की आज्ञा माँगते हैं । तब विश्वभूति ने उन्हें एक विषहर मंत्र प्रदान किया । राजा हरिषेण सेना के साथ अपनी नगरी में लौटे । राज-काज संभालते है, परन्तु तापस के आश्रम से प्राप्त संस्कारों ने उनकी दृष्टि बदल दी है । राज्यसत्ता, संपत्ति आदि में अब उन्हें पहले जैसा आनन्द नहीं आता । उन्हें बार-बार याद आता है, 'कहाँ वह तपोवन के निवृत्त जीवन का आनन्द और कहाँ इन प्रवृत्तियों में जीवन की खटपट !' निवृत्ति जीवन के आनन्द ने राजा के मन से सांसारिक प्रवृत्तियों में आने वाला स्वाद समाप्त कर दिया । राजा को मिला था जंगल का दुःख, परन्तु उस दुःख में से उन्हें सुख प्राप्त हो गया । वह समझते है कि दुःख भी मेरे भले के लिए ही आया । जब नमिराजर्षि को रोग उत्पन्न हुआ तो उन्होंने क्या विचार किया कि मुझे रोग न होता तो पत्नियाँ कंगन पहनकर चंदन न घिसतीं और चंदन नहीं घिसती तो कंगन का आवाज नहीं होता । कंगन की ध्वनि ही मेरे वैराग्य का निमित्त बन गई । सम्यक्दृष्टि आत्मा सभी के गुणों को ग्रहण कर लेता है । हरिषेण राजा को विश्वभूति ऋषि ने जो विषहर मंत्र दिया उसका उपयोग वे प्रजा की भलाई के लिए करते हैं । उनकी यही भावना है कि मुझे यह मंत्र मिला है तो इससे दूसरों का दुःख दूर करूँ । राजा लोगों का सर्पदंश उतारते है - यह बात देश-देशान्तर में फैल गई ।

मंगलावती नगरी प्रियदर्शन पृथ्वीपति का वास,
विद्युतप्रभा राणी उर उपनी, प्रीतिमति गुणरास हो... श्रोता...

राजकुमारी प्रीतिमती को सर्पदंश : एक बार का प्रसंग है । भरी सभा में राजा विराजमान है, उनका मन तो तत्त्व की रुचि में रमा हुआ है । प्रधान राह देख रहे हैं कि एक वर्ष का समय पूर्ण होने आ रहा है अतः दूसरी कन्या से राजा का विवाह रचाएँ । तभी एक राजदूत आकर समाचार देता है कि "महाराज ! मंगलों से भरी मंगलावती नगरी में प्रियदर्शन नामक राजा राज्य करते हैं । उनकी रानी विद्युतप्रभा

है तथा एकमात्र पुत्री है प्रीतिमती । प्रीतिमती को सर्प ने डँस लिया है । अनेक दिव्य औषधियों का प्रयोग भी निष्फल हो गया है । मंत्रवेत्ताओं और गारुड़ियों ने भी हाथ झाड़ लिए हैं । राजकन्या का जीवनदीप मृत्यु के झंझावात में घिर गया है । राजा-रानी का बुरा हाल है । हमें ज्ञात हुआ है कि विश्वभूति ऋषि के आश्रम में एक माह रहकर आपने विषहर मंत्र प्राप्त किया है, जिससे आप सभी का जहर उतारते हैं । क्या आप इस मंत्र द्वारा हमारी राजकुमारी को जीवनदान बख्शेंगे ?" सुनकर राजा तुरंत तैयार हो गये । परन्तु वह राज्य यहाँ से बहुत दूर है और वहाँ जल्दी कैसे पहुँचा जा सकता है ? जल्दी न पहुँचे तो राजकुमारी कैसे बचेगी ? फिर भी प्रयत्न करता हूँ । वायुवेग से पहुँचने वाली सांढ़नी मंगवाते हैं ।

राजा-रानी का रुदन : मंगलावती नगरी में हाहाकार मचा हुआ है । राजा-रानी व प्रजाजन सभी भरे हृदय से रो रहे है । उन्हें अब कोई आशा नहीं दिखती । इस ओर राजदूत जब दरबार में पहुँचा तब राजा के जन्मदिन का कार्यक्रम होने वाला था । राजा के लिए मानव जीवन के सम्मुख इन कार्यक्रमों का कोई महत्त्व न था । किसाका दुःख दूर करना उनके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण था । राजा तीव्रगति वाली सांढनी पर सवार होकर मंगलावती नगरी पहुँचे । वहाँ सब राजा के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे । मानव सत्ता और समृद्धि से संपन्न होकर अपने को कितनी ही सुखी मान रहा हो, परन्तु एकाएक सामने आते कर्म के उपद्रव के समक्ष रंक बन जाता है । वे माने हुए सुख के साधन तब दुःख रूप लगते हैं । प्रियदर्शन राजा के पास राज-पाट, रानियाँ, खजाना और राजशाही साधन तो सभी उपस्थित हैं, फिर भी अपनी एकलौती पुत्री को इस तरह-मृत्युशैय्या पर देख ऐसे दुःखी हैं, मानों उनको कोई सुख ही न हो । संसार के एक दुःख में तमाम मौजूद सुख भी नष्ट होने लगते हैं । यदि संसार में सच्चा सुख होता तो सुख कभी भी दुःख रूप न बनता । अतः संसार में सच्चा सुख है ही नहीं । हरिषेण राजा मंगलावती में पहुँचे। दूत ने आकर राजा को समाचार दिया कि 'हे कृपावंत ! महाराजा हरिषेण पधारे हैं ।' राजा ने उनका स्वागत किया और बोले -

प्रभु पधारो, जहर उतारो, हो मोटो उपकार,
तुरत तिहाँ जा राजसुता का, दीन्हा गरल उतार... श्रोता...

प्रभु, पधारिए ! आपका हम पर महान उपकार है । राजा इतने सुंदर शब्दों से सत्कार क्यों करते है ? अपना स्वार्थ है । कुंवरी का जहर उतराना है । अब हरिषेण राजा प्रीतिमती का जहर किस प्रकार उतारेंगे, आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक २५

श्रावण शुक्ल १२, मंगलवार | दिनांक : ३०-७-७४

संसार और संयम

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत करुणानिधि, शासन सम्राट वीर भगवान ने जगत के जीवों के आत्मकल्याणार्थ सिद्धान्तमय वाणी की प्ररूपणा की । आज जिससे चिपटे हुए हैं, वह कंचन, कामिनी, काया और कुटुंब चारों ककहरे मोहनीय कर्म को मजबूत करने वाले हैं। महामोहनीय कर्म में ले जाने वाले है । आपको आत्मा का सुख पाना हो तो इन चार ककहरों को छोड़ना होगा । नहीं छोड़ेंगे तो ये आपको दुर्गति में ले जायेंगे । जैसे कोई पक्षी भ्रम के कारण जाल के तंतुओं से बँधे प्रदेश में घूमता रहता है, जहाँ उसे पिंजरे में बंद होना पड़ता है और नजदीक में ही कोई बाज ताक लगाये बैठा होता है । उस समय पिंजरे को तोड़-फोड़ कर पक्षी वहाँ से छूटकर जाल के ढेर में फिर से फँसकर दूसरे पिंजरे में कैद हो जाता है और उसको झपटने के लिए बिल्ली भी तैयार रहती है । वैसे ही यह जीव शरीर रूपी पिंजरे में बंद है, उसे झपटने के लिए मृत्यु नजदीक ही है ! मृत्यु से शरीर का नाश होने पर जीव छूटा तो भी कर्मजाल के असंख्य तंतुओं से बँधा हुआ चार गति रूपी संसार में भटकता रहता है । इसीमें फिर से शरीर रूपी पिंजरे में कैद हो जाता है । जहाँ मृत्यु नजदीक ही खड़ी है । अपना शरीर वह पिंजरा है, मृत्यु बिल्ली है ।

असंख्य कर्मजाल के तंतुओं से जीव बँधाता है और ये कर्मतंतु जीव को भटका कर नये-नये शरीर में कैद करते रहते हैं । चतुर्गति में भटकाने और शरीर रूपी पिंजरे में बंद करानेवाला कौन है ? कर्म । उदाहरणस्वरूप जीव के लिए शरीर पिंजरा है और इसमें स्वयं पक्षी की भांति वह कैद हुआ है । पक्षी को यों तो देश-विदेश घूमने की अपनी इच्छा के अनुरूप गगन में उड़ान भरना पसंद है । परन्तु पिंजरे में बंद किये जाने के बाद वह यह सुख को भूल जाता है । जीव का स्वभाव अनंत ज्ञान, अनंत सुख में विचरने का है । लेकिन शरीर रूपी पिंजरे में बँधने के बाद विभाव में जाकर इस सुख को भूल गया है । बंधुओं ! अज्ञानी लोग अपने रूपवान और शक्तिशाली शरीर पर अभिमान करते है । परन्तु यह उनकी मूर्खता है । पक्षी

को सुंदर सोने का मजबूत पिंजरा हो, रोज अनार की कलियों का भोजन मिलता हो और यदि वह इसीमें सुख समझता हो, तो यह सुख है या दुःख ? जो इसीमें सुख मानता है उसकी कैसी मूर्खता ! कहाँ गगन में स्वतंत्र उड़ने का अपूर्व आनन्द और कहाँ सोने के पिंजरे में पड़े रहने का बँधन ! इसी आधार पर हमें भी समझना चाहिए। कहाँ जीव की अनंत ज्ञानादि सुख में विचरण करने की मजा और कहाँ शरीर में कैद रहने की गुलामी ! शरीर रूपी पिंजरे में बँधे जीव को क्या-क्या दुःख सहने पड़ते है ? शरीर है तो भूख लगती है, गरमी लगती है, ठंडी लगती है और इसे दूर करने के लिए आहार, पानी, कपड़ा आदि की, हवा के लिए पंखे, एअरकंडिशन कमरे की व्यवस्था करनी पड़ती है। भले ही कुछ समय के लिए इससे राहत मिल जाती है, परन्तु वास्तव में तो भूख-प्यास की आग बुझती नहीं, फिर से पेट में घूमने लगती है।

मान लीजिए, आपको खुजली हो गई है। खुजली आने पर बार-बार खुजला कर उसे शांत किया जाता है। खुजलाते समय आपको अच्छा भी लगता है, परन्तु क्या खुजलाना अच्छा है ? नहीं ! इस आनन्द के पीछे जलन उपस्थित है। यदि खुजलाने में ही आनन्द है तो स्वस्थ शरीर को खुजलाने में क्यों आनन्द नहीं आता ? खुजली के मरीज को खुजलाने में मजा आता है। यह हमें स्पष्ट बताता है कि आनन्द खुजलाने की क्रिया में नहीं, परन्तु खुजली के दर्द को शांत करने का है। यहाँ हम बिल्कुल सही समझते है कि खुजली को खुजलाने के आनन्द के लिए नहीं रखते उल्टे उसे जड़ से निकालने की कोशिश में लगे रहते है। बस इसी प्रकार शरीर रूपी पिंजरे में कैद आत्मा की स्थिति है। बारंबार भूख-प्यास की खुजली उठती रहती है, उसे शांत करने के लिए अन्न-पानी प्राप्त करने की तकलीफ सहनी पड़ती है। भूख-प्यास भी खुजली जैसा रोग है, जहाँ खाने-पीने से शरीर के लिए सहज राहत का उपाय दिखता है, परन्तु यह सुख का साधन नहीं है। जीव को कभी यह विचार आता है कि इस खुजली जैसे भुख-प्यास का रोग कब मिटेगा ? कब खान-पान की यह मुसीबत बंद होगी ?

देवानुप्रियों ! सिद्धान्त में ऐसे कई उदाहरण मिलते है कि महानपुरुषों ने इस भूख-प्यास के रोग को मिटाने के लिए अघोर तपश्चर्या की। 'अनुत्तरोववाई सूत्र' में धन्ना अणगार की बात आती है, जिनके यहाँ विशाल वैभव था। बड़े आलिशान भुवन में आनन्द से रहते थे। वैभव का कोई पार न था। पानी माँगने पर दूध हाजिर होता था। अप्सरा जैसी बत्तीस स्त्रियाँ थीं। अभी कल तक मेवा, मिष्ठान्न, फरसाण आदि में मौज कर रहे थे। दूसरे ही दिन प्रभु महावीर के पास चारित्र लेकर छट्ठ-छट्ठ के पारणे में आयंबिल करने की प्रतिज्ञा कैसे ली होगी ? प्रभु की वाणी

से उनका विवेक प्रकट हो गया कि अच्छे खाने-पीने की वस्तुएँ सुख का साधन नहीं है बल्कि भूख-प्यास, आहार-संज्ञा आदि के रोग की पीड़ा को कामचलाऊ राहत देने वाले है। अत: अब मुझे स्वाद का, भूखेपन का रोग मिटाना है। इस रोग की अकसीर दवा है, आयंबिल का बिल्कुल रूखा-सूखा आहार। आहार-संज्ञा का रोग मिटाने के लिए दो-दो उपवास का अभ्यास जरूरी है। जिनका ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाये उन्हें बेले के पारणे में आयंबिल क्या कठिन लगेगा ? उन्हें समझ में आ गया है कि आहार की भूख और रस का स्वाद महारोग है।

संसार में प्रत्येक बात में यही स्थिति है। धन-माल-मिल्कियत आदि में जरा भी सुख नहीं है। इन्हें पाने के लिए कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं ! इनके लिए कितने पाप और अधर्म करने पड़ते हैं, यह विचार करेंगे तो हृदय में हलचल मच जायेगी। यह सब परिग्रह-संज्ञा के रोग में तत्कालिक राहत दिला सकते हैं। जिनकी परिग्रह-संज्ञा समाप्त हो गई है, ऐसे साधू-संतों को ढेर धन-संपत्ति का जरा भी आनन्द नहीं होता। आज दुनिया में देख लीजिए, पैसे के लिए और पैसा प्राप्त करने के बाद भी कितने प्रपंच करने पड़ते है। यह संसार ही ऐसा है, जो हिंसा-झूठ-अनीति आदि करवाता है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों, राग-द्वेष, वैर-विरोध आदि दुर्गुणों को प्रकट करवाता है। इसीका नाम संसार है। ज्ञानी कहते हैं कि 'इस जीव ने भ्रम से भरे अनंत जीवन जीये और इसी प्रकार अनंतानंत पुद्गल परावर्तन काल व्यतीत किया।' संसार अनादि है। जन्म के साथ मृत्यु तो निश्चित है। जो जीव सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गये हैं, उन्हें छोड़कर अनंतानंत जीव अनंतानंत पुद्गल परावर्तन काल से अनंत बार भटकते, अनंत जन्म-मरण किये जा रहे हैं। महान पुण्योदय से ऐसा उत्तम सामग्री वाला मानव जन्म मिला है तो तू धर्म का आचरण कर ले। कल की प्रतीक्षा मत कीजिए। पाप के कार्य में रुक जाइए, पर आत्मसाधना करने में विलंब मत कीजिए।

द्रौपदी का अधिकार

धर्मरुचि अणगार गोचरी लेके गुरु पास पहुँचे : 'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन में उग्र तपस्वी धर्मरुचि अणगार गुरुदेव की आज्ञा लेकर गोचरी के लिए निकले है। आजकल मंगलकारी तपश्चर्या के दिन चल रहे हैं और हम भी तपस्वी मुनि की बात कर रहे हैं। आज सामान्य तप करें या अघोर तप करें, तप का विधि-विधान नहीं करते। इन उत्तम पुरुषों के नाम सिद्धान्त के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखे गये, क्योंकि उनका तप विधि-विधान सहित था। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने अपने चारित्र पर जरा भी आँच न आने दी। वे समझते थे कि हमने

चारित्र ग्रहण किया है। अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए, लोगों से वाह-वाह बटोरने के लिए नहीं। स्व-कल्याण के साथ पर-कल्याण करना है। कोई चंदन की लकड़ी लेकर जाता हो, अपने गंतव्य तक न पहुँचने के पहले, मार्ग में यदि कोई उसकी सुगंध ले तो, उसे मना नहीं करते। इसी प्रकार चारित्र अपने लिए है। अपना चारित्रपालन करते हुए दूसरों को भी प्रेरणा प्राप्त हो सकती है।

तीर्थंकर चक्रवर्तियों की बातें पढ़ने पर लगता है कि इन लोगों ने कितना छोड़ा। चक्रवर्ती के पास नौ-निधान और चौदह रत्न होते है। आपको धूप लगे तो सिर पर छाता लगा लेते है और चक्रवर्ती जब चलते है तो छत्र-रत्न अड़तालीस गाउँ तक छाया कर देता है। समुद्र या नदी लाँघना हो तो चर्म-रत्न नाव की भांति कार्य करता है। चक्र-रत्न छ:खंड साधने का मार्ग बताता है तो दंड-रत्न आगे जाकर गुफा के दरवाजे खोल देता है। खड्ग-रत्न शत्रु को समाप्त करता है। मणिरत्न-हस्तिरत्न के कपाल पर बाँधने से प्रकाश फैलाता है। काकण्य-रत्न गुफा के अंदर योजन-योजन के अंतर में वर्तुलाकार घर्षण करने से सूर्यमंडल के समान प्रकाश प्रदान करता है। ये सात एकेन्द्रिय रत्न है। सात पंचेन्द्रिय रत्न होते है। जिनमें सेनापति-रत्न देश पर विजय प्राप्त करता है। गाथापति-रत्न चौबीस प्रकार के धान्य उत्पन्न करवाता है। वर्धिक-रत्न बयालीस भूमि में आवास-पुल आदि का निर्माण करता है, पुरोहित-रत्न चोट-घाव आदि को ठीक करता है, विघ्न टालता है तथा धर्मकथा सुनाता है। स्त्री-रत्न विषय के उपभोग प्रदान करती है। गज-रत्न और अश्व-रत्न दोनों बैठने में काम आते हैं। जिसके यहाँ ऐसे चौदह रत्न हैं, जिसकी सेवा में देव हाजिर रहते हैं, ऐसे चक्रवर्ती भी सारे ठाठ-बाट छोड़कर, साधू बन गये। उन्हें समझ में आ गया कि यह सुख सुख नहीं है, क्योंकि इसके पीछे भयंकर दुःख स्थित है। तीनों काल में संयम के बिना सिद्धि संभव नहीं है। ऐसे चक्रवर्ती भी जब दीक्षा लेते है तब नंगे पैर चलते है। जिन्हें छत्र-रत्न की छाया प्राप्त थी, धूप से जिनका परिचय न था, वे दोपहर की कड़ी धूप में खुले सिर गोचरी के लिए जाते है। लोच किये जाने के कारण माथा और अधिक तपता है। फिर भी खुले सिर घूमते हैं। भगवान के संत कैसे होते हैं?

ना छत्र धरे कदी तडकामां, ना फरे कदी वाहनमां,
मारग हो चाहे कांटालो, पहरे ना कांई पगमां,
हाथेथी सगळा वाल चूंटी, माथे मुंडन करनारा,
आ छे अणगार अमारा...

आपसे कोई पूछे कि आपका धर्म क्या ? आपके गुरू कौन ? तो ढुलमुल जवाब मत दीजिए। किसी गरीब को जमीन खोदते हुए खजाना मिल जाए तो उसे कितना

आनन्द हो ! उसमें कितनी खुमारी आ जाए ! जब सम्यक्त्व आ जायेगा, तब महान खजाना प्राप्त होने की खुमारी आ जायेगी । आप किसी ऐसे-वैसे की संतान नहीं है, बल्कि महावीर की संतान है । भगवान बाल्यावस्था में जब खेल रहे थे तो एक सर्प सामने आया, जिसे उन्होंने हाथ से उठाकर दूर रख दिया । खेल में देव ने उन्हें ऊँचाई पर उछाल दिया, फिर भी न जरा भयभीत हुए, न जरा ही डिगे । (श्रोताओं में से आवाज : 'अनंत बल के धारक थे ।')

धर्मरुचि अणगार घर-घर घूमते हुए कहाँ पहुँचे !

एक मासखमणने पारणे, मुनि गोचरी लेवा संचर्या,
स्वाधीनपणे भिक्षार्थे जइ, नागेश्री द्वारे जइ रह्या,
घर-आंगणे उकरडो जाणी, कडवी तुंबी वहोरावे रे
धर्मघोष तणा शिष्य धर्मरुचि, कीडियोंनी करुणा आणे रे,
निग्रंथ मुनिओ प्राण साटे छकायनी रक्षा जाणे रे...

संयम जीवन की बाजी है । पर जीव की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान दे देंगे (श्रोताओं में से आवाज : 'हँसते-हँसते ।') कैसी दया ! कितनी करुणा ! सच्चा संत अन्य जीवों को मारकर स्वयं जीने की इच्छा नहीं करता । धर्मरुचि अणगार गोचरी के लिए निकले है, तीन पात्र के साथ । दो पात्र पानी के लिए और एक आहार के लिए । जीभ के स्वाद को उन्होंने जीत लिया है । वीतराग के बताये चारित्र मार्ग में परिपूर्ण हैं । चारित्र में कभी भी काल भाव लागू नहीं होता । तीनों काल में एक और एक दो ही होंगे, तीन मत कहिए । इसी प्रकार ऋषभदेव भगवान का समय हो या महावीरस्वामी का परन्तु चारित्र यानी चारित्र ही रहेगा । जो चारित्र के लिए कालभाव की बात कहते है वे चारित्र को एक ओर रख देते हैं । लुंचन (लोच) किसलिए कहा है ? द्रव्य से केश का लुंचन है, परन्तु भाव से चार कषाय और राग-द्वेष का लुंचन करना है । खंधक मुनि के ५०० शिष्य घानी में पिलने के लिए तैयार हो गये । जब उन्हें पता चला कि उन्हें घानी में डाल दिया जायेगा, तब यदि वहाँ से भाग जाना चाहते तो क्या नहीं भाग सकते थे ? लेकिन उन्होंने क्या विचार किया ? बाईस परिषह में आज वध का परिषह आया है । ऐसा दिन तो भाग्य से कभी ही आता है - यह हमारे लिए आनन्द का दिन है । परिणाम की धारा कितनी विशुद्ध ! आत्मा का यह मंथन कि हम नहीं पेरे जायेंगे, हमारे कर्म घानी में पेर दिये जायेंगे ।

धर्मरुचि अणगार गोचरी के लिए नागेश्री के घर आ पहुँचे । नागेश्री में समझ नहीं थी, वह मुनि की राह नहीं देख रही थी । महावीर के श्रावक भोजन के समय

साधू की चिंतना करते है कि 'अहो ! यदि संत मुनि पधारे तो सुपात्र दान देकर
फिर भोजन ग्रहण करूँ ।' नागेश्री का सद्भाग्य कि ऐसे घोर तपस्वी मुनि के चरण
उसके घर पर पड़े । मुनि को आते देख, अपना घी-मसाले वाला कड़वी तुंबी का
साग लाने भोजनशाला की ओर चली ।

तपस्वी मुनि पधारे पर वह अभागी मान-कषाय से जुड़कर हर्षित हो गयी । उसे
साग फेंकने के लिए कहीं जगह नहीं थी ? उसने तो विचारा, सहज ही ये संत आ
गये, तो मेरा बाहर जाकर साग फेंकने का काम बच गया

"उवागच्छित्ता तं सालइयं तित्तकडुयं च बहुसंभारसंलियं णेहावगाढं धम्मरुइस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सव्वमेवनिसिरइ ।"

रसोई में जाकर उत्तम रीति से पकाया हुआ कड़वे तुंबे का साग ले आई और
धर्मरुचि अणगार के पात्र में सारा उड़ेल दिया । नागेश्री ने मुनि का आदर-सत्कार
किया, परन्तु अंदर मान-माया भरी है । झूठे मान और दंभ से भरी है । मुनि का
उकरडा मानकर उनके पात्र में सारा साग डाल दिया । मुनि के 'बस बस' करने पर
भी न रुकी, सारा डाल दिया । साधू को सुपात्र दान देना तो महान लाभ का कारण
है, परन्तु दृष्टि में फेर है । नागेश्री के भाव में मलिनता भरी है । उसे लगा कि ऐसा
घूरा फिर-से नहीं आयेगा । उसने यह नहीं सोचा कि मैंने एक बूँद चखा तो इतनी
कड़वाहट फैल गयी कि ढेरों चम्मच शक्कर खाकर भी कड़वाहट दूर नहीं हुई और सिर
में चक्कर भी आ गया, तो मुनि उसे कैसे खायेंगे ? जैन मुनि आहार परठते नहीं और
किसीको देते भी नहीं । मान के पोषण के लिए ऐसा कड़वा आहार मुनि को बहरा
दिया । धर्मरुचि अणगार गोचरी को पर्याप्त मानकर इर्यासमिति का ख्याल रखते हुए
गुरु के सम्मुख पहुँचे । आपको लगता होगा क्या बात-बात में गुरु की आज्ञा !
कितना बँधन ! परन्तु भाई, यह बँधन नहीं है । जो गुरु के प्रति अर्पित होता है, वही
कल्याण कर सकता है ।

मेघकुमार के परिणाम बदले तो अशुभ ध्यान में चढ़ गए । लेकिन यह विचार
किया कि यहाँ से जाना है तो जिससे यह लिबास और वस्तुएँ ग्रहण की है, उन्हें
लौटा कर जाऊँ । चोरी से छिपकर न जाऊँ । यदि वैसे ही चले गये होते तो
(श्रोताओं में से आवाज : 'संसार में भटकना पड़ता ।') वे भगवान के पास गये
तो भगवान ने कहा -

"याद कर याद कर हाथीना भवमां, ससलुं पग नीचे शोर नकोरमां
केम मेघ ! मनड़ाए गोथुं मार्युं... आज मने संतोए ठेनुं मार्युं ।"

"ओ मेरे मेघ !" भगवान के वचनामृत, अमृत से भी मीठे ! "हे मेघ ! तू हाथी के भव में था, तब तूने अपने तथा अपने झुंड की रक्षा के लिए मांडला बनाया था। घास आदि पड़ा हो तो आग लगने से जल उठेंगे, इससे बचने के लिए घास-तिनके आदि दूर करके जमीन का बड़ा हिस्सा साफ करके तूने मांडला बनाया था, ताकि जंगल में आग आदि लगने के समय बचाव हो सके। एक बार वन में भयंकर दावानल सुलगा। सभी जीवों को जीना पसंद है, मरना कोई नहीं चाहता। वन के सभी प्राणी भागते हुए, प्राण-बचाने के लिए तेरे मांडले में आये। तूने सभी को आश्रय दिया। खुजली आने पर तूने एक पैर जरा ऊपर उठाया कि तभी उस स्थान पर, मरने से बचने के लिए एक खरगोश आकर बैठ गया। पैर नीचे रखने की कोशिश में तूने वहाँ खरगोश को बैठे देखा। तुझे लगा कि मरने के डर से यह खरगोश मेरी शरण में आया है, यदि मैं पैर नीचे रख दूँ तो उसका क्या होगा ? कितनी अनुकंपा ! खरगोश की रक्षा के लिए तूने अढ़ाई दिन तक अपना पैर अधर में रखा। इससे तेरी नसें खिंचने लगीं। जब दावानल शांत हुआ तो सभी अपने-अपने स्थान पर चले गये। फिर तू जैसे ही पैर जमीन में टिकाने गया कि गिर पड़ा और मरण के शरण हो गया। तो हे मेघ ! तू हाथी के भव को याद कर। एक खरगोश के प्राण बचाने के लिए प्राण दे दिये और आज मेरे संतों की ठोकर तुझे चुभ गई ! तू श्रेणिक राजा का पुत्र बना और इतनी रिद्धि-सिद्धि मिली। यह सब किसका प्रताप है ?" भगवान के इन शब्दों ने मेघकुमार के हृदय को झनझना दिया। यह सब सुनते हुए उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया और वह भव, वह मांडला, वह खरगोश सब स्पष्ट दिखने लगा। "बस प्रभु ! आँख की दो पुतलियाँ और श्वासोश्वास के सिवाय मेरा सारा जीवन आपको अर्पण करता हूँ।" कितनी जागृति आ गयी। गुरु को अर्पण किया तो तर गये।

धर्मरुचि अणगार गोचरी लेकर नागेश्री के घर से निकलकर चंपानगरी के मध्य से गुजरते हुए सुभूमिभाग उद्यान में आये। आकर सीधे अपने गुरु धर्मघोष स्थविर के पास पहुँचे और भिक्षा में प्राप्त आहार दिखाया। गुरुआज्ञा क्या होगी और क्या घटेगा आदि भाव अवसर पर।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

हरिषेण राजा प्रीतिमती का सर्पदंश का जहर उतारने के लिए मंगलावती नगरी में पधारते हैं। प्रियदर्शन राजा उनका आदर-सत्कार करके कहते हैं, "वैद्यों के अनुसार [illegible] मेरी प्रिय पुत्री के जीवन की अंतिम रात्रि है। हमारे सारे उपाय निष्फल हुए हैं [illegible] हमारी आशा के आधार हैं।" हरिषेण राजा ने कहा, "पहले मुझे [illegible] दीजिए ! यदि उसमें प्राण है तो अवश्य बच जायेगी।" कक्ष

में विराजमान सभी लोगों की नजरें हरिषेण राजा पर थीं और उनके लिए वह देवदूत समान लग रहे थे, मात्र आशा के दूत नहीं ।

प्रीतिमती ने पाया नवजीवन : राजा ने कुंवरी को देखा । अभी उसमें प्राण थे, अतः वह बच जायेगी । राजा से बोले, "आप चिंता न कीजिए, अभी राजकुमारी का जहर उतर जायेगा और कुंवरी स्वस्थ हो जायेगी ।" अभी कुंवरी का जहर उतरा नहीं है, पर उनके इतने से शब्दों से राजा-रानी को कितना आश्वासन मिला ! राजा ने भगवान का स्मरण करके विषहर मंत्र का उपयोग किया । सारी विधि पूर्ण की । मंत्र के प्रभाव से कुंवरी को उल्टियाँ होने लगीं और सारा जहर निकल गया । कुंवरी स्वस्थ होकर उठ बैठी । सामने हरिषेण राजा को देख पूछने लगी, "माता ! ये सज्जन कौन है ?" मातानेकहा, "बेटी ! मित्रावती नगरी के राजा हरिषेण हैं । इन्ही उत्तम पुरुष ने तेरे जाते हुए प्राणों को लौटाया है ।" कुंवरी को सकुशल देख माता-पिता तथा प्रजाजन प्रसन्न हो गये । हरिषेण ने रानी से कहा, "महारानी ! विष का प्रभाव तो नष्ट हो गया है, परन्तु अब इन्हें जीवन में कभी भी सर्पदंश हो तो उसका कोई असर नहीं होगा ।" महारानी ने कृतज्ञ भाव से कहा, "महाराज ! आपका उपकार हम कभी भूल नहीं सकते ! आपने हमारे जीवन की आशा को बचाया है ।" राजा प्रियदर्शन भी सोचने लगे कि 'हरिषेण राजा का हम पर महान उपकार है तो मुझे उन्हें इसका बदला कैसे देना चाहिए ?' अब प्रियदर्शन राजा हरिषेण के उपकार का बदला किस प्रकार चुकायेंगे और फिर क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक १

श्रावण शुक्ल १३, बुधवार	दिनांक : ३१-७-७४

कर्म की करामात

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

द्रौपदी का अधिकार : चरम तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीरस्वामी ने जगत के जीवों के आत्मकल्याणार्थ सिद्धान्त की प्ररूपणा की । नागेश्री ब्राह्मणी के घर धर्मरुचि अणगार सहज ही आ गये थे । साधू का नियम नहीं होता कि वह इसी घर से गोचरी ग्रहण करना । उनके लिए कोई तिथि या दिन निर्मित नहीं होता ।

"ओ मेरे मेघ !" भगवान के वचनामृत, अमृत से भी मीठे ! "हे मेघ ! तू हाथी के भव में था, तब तूने अपने तथा अपने झुंड की रक्षा के लिए मांडला बनाया था। घास आदि पड़ा हो तो आग लगने से जल उठेंगे, इससे बचने के लिए घास-तिनके आदि दूर करके जमीन का बड़ा हिस्सा साफ करके तूने मांडला बनाया था, ताकि जंगल में आग आदि लगने के समय बचाव हो सके । एक बार वन में भयंकर दावानल सुलगा । सभी जीवों को जीना पसंद है, मरना कोई नहीं चाहता । वन के सभी प्राणी भागते हुए, प्राण-बचाने के लिए तेरे मांडले में आये । तूने सभी को आश्रय दिया। खुजली आने पर तूने एक पैर जरा ऊपर उठाया कि तभी उस स्थान पर, मरने से बचने के लिए एक खरगोश आकर बैठ गया । पैर नीचे रखने की कोशिश में तूने वहाँ खरगोश को बैठे देखा । तुझे लगा कि मरने के डर से यह खरगोश मेरी शरण में आया है, यदि मैं पैर नीचे रख दूँ तो उसका क्या होगा ? कितनी अनुकंपा ! खरगोश की रक्षा के लिए तूने अढ़ाई दिन तक अपना पैर अधर में रखा । इससे तेरी नसें खिंचने लगीं । जब दावानल शांत हुआ तो सभी अपने-अपने स्थान पर चले गये । फिर तू जैसे ही पैर जमीन में टिकाने गया कि गिर पड़ा और मरण के शरण हो गया । तो हे मेघ ! तू हाथी के भव को याद कर । एक खरगोश के प्राण बचाने के लिए प्राण दे दिये और आज मेरे संतों की ठोकर तुझे चुभ गई ! तू श्रेणिक राजा का पुत्र बना और इतनी रिद्धि-सिद्धि मिली । यह सब किसका प्रताप है ?" भगवान के इन शब्दों ने मेघकुमार के हृदय को झनझना दिया । यह सब सुनते हुए उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया और वह भव, वह मांडला, वह खरगोश सब स्पष्ट दिखने लगा । "बस प्रभु ! आँख की दो पुतलियाँ और श्वासोश्छ्वास के सिवाय मेरा सारा जीवन आपको अर्पण करता हूँ ।" कितनी जागृति आ गयी । गुरु को अर्पण किया तो तर गये ।

धर्मरुचि अणगार गोचरी लेकर नागेश्री के घर से निकलकर चंपानगरी के मध्य से गुजरते हुए सुभूमिभाग उद्यान में आये । आकर सीधे अपने गुरु धर्मघोष स्थविर के पास पहुँचे और भिक्षा में प्राप्त आहार दिखाया । गुरुआज्ञा क्या होगी और क्या घटेगा आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

हरिषेण राजा प्रीतिमती का सर्पदंश का जहर उतारने के लिए मंगलावती नगरी में पधारते हैं । प्रियदर्शन राजा उनका आदर-सत्कार करके कहते हैं, "वैद्यों के अनुसार आज मेरी प्रिय पुत्री के जीवन की अंतिम रात्रि है । हमारे सारे उपाय निष्फल हुए हैं । आप ही अब हमारी आशा के आधार हैं ।" हरिषेण राजा ने कहा, "पहले मुझे कुंवरी को देखने दीजिए ! यदि उसमें प्राण है तो अवश्य बच जायेगी ।" कह

में विराजमान सभी लोगों की नजरें हरिषेण राजा पर थीं और उनके लिए वह देवदूत समान लग रहे थे, मात्र आशा के दूत नहीं ।

प्रीतिमती ने पाया नवजीवन : राजा ने कुंवरी को देखा । अभी उसमें प्राण थे, अतः वह बच जायेगी । राजा से बोले, "आप चिंता न कीजिए, अभी राजकुमारी का जहर उतर जायेगा और कुंवरी स्वस्थ हो जायेगी ।" अभी कुंवरी का जहर उतरा नहीं है, पर उनके इतने से शब्दों से राजा-रानी को कितना आश्वासन मिला ! राजा ने भगवान का स्मरण करके विषहर मंत्र का उपयोग किया । सारी विधि पूर्ण की । मंत्र के प्रभाव से कुंवरी को उल्टियाँ होने लगीं और सारा जहर निकल गया । कुंवरी स्वस्थ होकर उठ बैठी । सामने हरिषेण राजा को देख पूछने लगी, "माता ! ये सज्जन कौन है ?" मातानेकहा, "बेटी ! मित्रावती नगरी के राजा हरिषेण हैं । इन्ही उत्तम पुरुष ने तेरे जाते हुए प्राणों को लौटाया है ।" कुंवरी को सकुशल देख माता-पिता तथा प्रजाजन प्रसन्न हो गये । हरिषेण ने रानी से कहा, "महारानी ! विष का प्रभाव तो नष्ट हो गया है, परन्तु अब इन्हें जीवन में कभी भी सर्पदंश हो तो उसका कोई असर नहीं होगा ।" महारानी ने कृतज्ञ भाव से कहा, "महाराज ! आपका उपकार हम कभी भूल नहीं सकते ! आपने हमारे जीवन की आशा को बचाया है ।" राजा प्रियदर्शन भी सोचने लगे कि 'हरिषेण राजा का हम पर महान उपकार है तो मुझे उन्हें इसका बदला कैसे देना चाहिए ?' अब प्रियदर्शन राजा हरिषेण के उपकार का बदला किस प्रकार चुकायेंगे और फिर क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक २१

श्रावण शुक्ल १३, बुधवार | दिनांक : ३१-७-७४

कर्म की करामात

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

द्रौपदी का अधिकार : चरम तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीरस्वामी ने जगत के जीवों के आत्मकल्याणार्थ सिद्धान्त की प्ररूपणा की । नागेश्री ब्राह्मणी के घर धर्मरुचि अणगार सहज ही आ गये थे । साधू का नियम नहीं होता कि वह इसी घर से गोचरी ग्रहण करना । उनके लिए कोई तिथि या दिन निर्मित नहीं होता ।

साधू तो अतिथि है । बारह व्रतों में ग्यारह व्रत स्वाधीन हैं, परन्तु बारहवाँ व्रत पराधीन है । आपकी चाहे जितनी भावना हो, सुपात्र दान देने की, परन्तु अंतराय टूटा हो तभी लाभ मिलता है । वही दान सच्चा दान है । जिनके जीवन में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की ज्योत जगमगा रही है, ऐसे उग्र तपस्वी धर्मरुचिमुनि नागेश्री के घर पधारे । नागेश्री ने कड़वी तुंबी का साग मुनि को बहरा दिया । धर्मरुचि अणगार ने यह सोचकर कि यह उदर पोषण के लिए पर्याप्त है, उसके घर से बाहर निकले । मुनि का तप क्रिया सहित है ।

कोई एकान्त क्रिया को मानते हैं, तो कोई एकांत ज्ञान को मानते हैं । ऐसे जो एकांतवादी है, वे मिथ्यात्वी है । जैनदर्शन अनेकांतदर्शन स्याद्वाद दर्शन है । वह ज्ञान और क्रिया दोनों को मानता है । दोनों की जरूरत है । रुपये का चित्र बना देने से रुपया नहीं मिल जाता । लड्डू शब्द लिखने से भूख नहीं मिटती । इसके लिए क्रिया करनी पड़ती है ।

कागळ तणी होडी वडे सागर कदी तराय ना,
चीतरेल मोटी आगथी, भोजन कदी रंधाय ना ।

कागज की कश्ती से सागर पार करना संभव नहीं है, उल्टे नाव उसीमें डूब जायेगी । आग का चित्र बना देने से रसोई तैयार नहीं होगी । आपके घर में कैलेंडर में बहुत स्थानों पर आग जैसे चित्र होते हैं, लेकिन उनपर हाथ रखने से जल नहीं जाते । ज्ञान से जाना जा सकता है, परन्तु आचरण में लाने के लिए क्रिया करनी पड़ती है । सिर्फ जान लेने से कल्याण नहीं होगा । जानने के साथ क्रिया भी करनी पड़ेगी । अतः हेय, ज्ञेय और उपादेय तीनों का ध्यान रखिए । अपने सांसारिक व्यवहार में भी आप गेहूँ रखते है और कंकड फेंक देते हैं । क्योंकि आप जानते है कि गेहूँ रखने योग्य है और कंकड छोड़ने योग्य । इस तरह आप संसार में भी हेय-ज्ञेय और उपादेय का विवेक रखते हैं । यहाँ आपका स्वार्थ है । अरे क्या बात कहूँ ! जहाँ आपका स्वार्थ सधता हो, उस व्यक्ति के ऐलफैल वचन भी चुपचाप सुन लेते है या नहीं ? (श्रोताओं में से आवाज : 'आनन्द से सुनते हैं ।') संसार की चाहे जितनी गुलामी कीजिए, परन्तु उद्धार नहीं होगा ।

ज्ञानियों ने संसार को भयंकर कहा है तो झूठ नहीं कहा । अपने महान उपकारी के साथ भी, यदि अपने स्वार्थ में अड़चन दिखे तो, अपकार करानेवाला संसार ही है ना ? कितना भयंकर ! इसके समक्ष धर्म उतना ही कल्याणकारी है । यह अपकारी की भूल को न देख, अपने कर्म का दोष दिखाने का काम करवा कर, अपकारी के प्रति भी मैत्रीभाव रखवाता है । धर्म की यही विशेषता है । संसार और

धर्म में इतना बड़ा अंतर दिखाई देता है, फिर भी कभी संसार के प्रति घृणा होती है ? संसार जहर जैसा लगता है ? कभी मन में आता है क्या कि ऐसे कृतघ्न संसार को छोड़ दूँ ?

जब कोई दुःखद प्रसंग उपस्थित होता है तब व्यक्ति को संसार की भयानकता दिखाई देती है । ज्ञानीजन तो पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि 'संसार हमेशा के लिए दुःख से भरा हुआ है ।' संसार में जहाँ जीव रोज दुःख, पीड़ा और रोग रूपी अग्नि की चिंगारियों से बलता रहता है, पर तन, धन और परिवार के पीछे लगातार अनुरक्त रहता है । मोह-मदिरा के नशे में दुर्बल बनकर परिवार, पैसा, अपनी काया के प्रति, एक न एक चिंता में उलझा रहता है । ऐसा अनुभव किसे नहीं है ? आज किसी एक संबंधी के बारे में बुरा कहते है, तो कल किसी और के बारे में, आज एक को बीमारी है तो कल दूसरे को, आज एक को नाराजी है तो कल दूसरे को, इस प्रकार परिवार के निमित्त से दुःख सम्मुख आते रहते है और तन-मन-धन का कष्ट सहना पड़ता है । फिर भी जीव की मोह दशा ऐसी है कि दोबारा वहीं-वहीं रागभाव से दौड़ा जाता है । यह सब मोहनीय कर्म का नाटक है । ऐसे दुःखों का सामना करने के बाद भी जीव मन को मोह की ओर मोड़ लेता है कि जीवन है तो थोड़ी खलबलाहट होती है । वैसे पत्नी, पत्नी और पुत्र तो पुत्र ही है । समय आने पर ये अपने ही होकर रहेंगे । अन्य लोग, काका-काकी, मामा-मामी या पड़ोसी आदि थोड़े ही अपने बनेंगे ! संसार के दुःखों में ऐसा समाधान अच्छा लगता है, परन्तु धर्म में कष्ट आने पर इस प्रकार नहीं सोचते, इसलिए धर्म से दूर रहते है ।

बंधुओं ! मोहनीय कर्म के नशे से जीव इतना गरीब बन गया है कि रोज-रोज परिवार के निमित्त से प्राप्त भांति-भांति के दुःखों के बावजूद उस पर वैराग्य भाव नहीं आता । यह विचार नहीं आता कि 'हाय ! मैं इस परिवार के साथ कहाँ सुखी हूँ ? मन की शान्ति कहाँ पा रहा हूँ ? जरा भी नहीं । उल्टे इनके कारण दुःख, चिंता, संताप की आग मुझे रातदिन जलाये रखती हैं । ये न थे तो मैं सुखी था ।' फिर भी इन पर राग क्यों ? कैसे इनका भरोसा ? जीव यह नहीं सोचता । चिंता रूपी लात खाने के बाद भी उसे सर्वस्व मानें, यह कितनी मूर्खता है ! जीव की अज्ञानता है कि परिवार के लिए बार बार ऐसे दुःख, पीड़ा, दुर्दशा झेलने के बाद भी उसपर से राग नहीं छोड़ता और वीतराग शासन या वीतराग धर्म के प्रति ऐसा राग-भाव नहीं रखता । पैसा आदि के संबंध में भी यही स्थिति है । आज करोड़पति या लखपति भी हो तो इन्कमटैक्स, सेल्सटैक्स आदि चिंताएँ सताती रहती है । शरीर

है तो भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी मान-अपमान, रोग आदि पीड़ा से वास्ता पड़ता है है । फिर भी कभी धन, माल-मिल्कियत अथवा काया पर वैराग्य भाव आता है क्या ?

जिनके लिए देव-गुरु और धर्म सर्वस्व है, ऐसे दृढ़ वैरागी धर्मरुचि अणगार की साधना क्रिया सहित है । ज्ञानरहित क्रिया से पुण्य बँधेगा, परन्तु कर्म की निर्जरा नहीं होती । धर्मरुचि अणगार अपने संयम में स्थिर रहे, यह ज्ञान सहित संयम का परिणाम है । मुनि नागेश्री के घर पधारे तो उसने क्या माना ? कि मेरे आँगन में उकरड़ा (घूरा) आ गया । महानपुरुषों के जीवन से साधू के आचार-धर्म के बारे में बहुत कुछ जानकारी मिलती है । मुनि तो पूर्णतः निर्दोष है । उनका किसीके प्रति वैरभाव नहीं है । उनके लिए जगत के जीव *'आत्मवत् सर्व भूतेषु'* अपनी आत्मा के समान है । मुनि रास्ते में चलते हुए भी ईर्या समिति देखते देखते चलते है । बहुत उतावली में चलने से जीवों की यत्ना नहीं हो सकती । साधू रास्ते में बातें करते हुए नहीं चलते । गोचरी के लिए निकले मुनि अन्य जीवों के लिए भी कल्याण के निमित्त बनते हैं । आपने बहुत बार सुना होगा । हीरे-सी जगमगाती, सोलह शृंगार सजी नवयौवना स्त्री मुनि को मोदक बहरा रही हैं । मुनि सूझता, निर्दोष आहार की गवेषणा करते हैं । न तो मुनि बहन की ओर देखते हैं और न बहन मुनि के चेहरे की ओर देखती हैं । मुनि की युवावस्था और रूप का चमकता तेज है । मखमल जैसी कोमल काया है, सब कुछ ऐसा कि स्त्री का मन विचलित हो जाये, परन्तु स्त्री की दृष्टि त्याग की ओर है । मोदक की थाली हाथ में लेकर खड़ी स्त्री आग्रहपूर्वक मुनि को बहरा रही है । मुनि की दृष्टि नीची है और जरा भी विकारी भाव नहीं है । यह दृश्य किसने देखा ? तार पर नाचते हुए इलाची कुमार ने और उनकी पूरी दृष्टि बदल गई । क्या विचारने लगे ? मुनि की कैसी संयम की मस्ती है । नटनी के पीछे अंधे बने हुए मुझे बार-बार धिक्कार है और मुनिराज को लाख-लाख बार धन्यवाद है । मुनिराज अपने जीवन में अमृत भर रहे हैं और मैं सिर्फ कातिल जहर के घूँट भर रहा हूँ । विषयाधीन बनकर मैं अपने जीवन को धूल में मिला रहा हूँ । पश्चात्ताप की भट्टी सुलगने पर पाप नष्ट होना निश्चित है । दृष्टि सम्यक् हो गई और उनकी आत्मा क्षपक श्रेणी में आरूढ़ होकर शुभ परिणामों की धारा बढ़ाते हुए बाँस में बँधे तार पर ही केवल ज्ञान की अधिकारी बन गयी । मुनि की गोचरी का निमित्त ऐसा मिला कि ठेठ केवल ज्ञान तक पहुँच गये ।

धर्मरुचि अणगार ईर्या समिति देखते हुए गुरु के पास आये । गुरु को वंदन नमस्कार करके, लाया हुआ आहार उनके समक्ष रखा । मासखमण का पारणा,

पर कितनी समता ! गुरु पूछते है, "ओ शिष्य ! आहार पर्याप्त या अपर्याप्त ?" गोचरी संपूर्ण मिलने को साधू की भाषा में पर्याप्त कहते है । धर्मरुचि कहते हैं, "गुरुदेव ! पर्याप्त हैं ।" गुरु ने गोचरी देखी । पात्र में एक ही वस्तु है । गुरु के मन में आया कि उग्र तपस्वी का मासखमण का पारणा है और सिर्फ एक साग मिला है, अन्य कुछ भी नहीं ! अहो ! कितना सुपात्र शिष्य है ! गंभीर गुरु विचारते हैं कि ऐसा आहार मिलने पर भी चेहरे में शिकन तक नहीं । ज्ञान-दर्शन-चारित्र की ज्योति जगमगा रही है । ऐसे शिष्य के लिए गुरु के मन भी सम्मान का भाव होता है । गुरु ने आहार देखा, उसमें कड़वाहट की गंध आयी । तो शंका हुई कि इसका परिणाम अच्छा नहीं दिखता ।

'तएणं से धम्मघोसा थेरा तस्स सालइस्स जाव नेहाव गाढ़स्स गंधेण अभिभूया समाणा तओ सालइयाओ जाव नेहाव गाढ़ाओ एगं बिंदुगं गहाय करलयंसि आसाएइ ।'

अतः धर्मघोष स्थविर ने उस मसालेदार घी में डूबे कड़वे तुंबे के साग को हथेली पर लेकर चखा । चखने के बाद गुरु धर्मरुचि अणगार से क्या कहेंगे और आगे क्या होगा, आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

प्रियदर्शन राजाने उपकार व्यक्त किया : राजा हरिषेण ने प्रीतिमती के सर्पदंश का जहर उतारा तो राजा-रानी उनके इस उपकार के लिए आभार मानते हुए उनके लिए कुछ करना चाहते है । अज्ञानी और मूढ़ लोगों की अपेक्षा सुज्ञ व्यक्तियों में यह विशेषता होती है कि उपकार करनेवाले के प्रति कृतज्ञता तथा अपने ऊपर उनका भार चढ़ा लगता है । बेफिक्र, अज्ञानी को यत्किंचित् भी बदला चुकाने की वृत्ति नहीं होती । यहाँ विचारने योग्य यह है कि देव-गुरु-धर्म और उच्च मानव भव प्राप्त करने पर धर्म प्रदान करनेवाले के उपकार का बदला देने की कितनी तमन्ना है ? थोड़े दिन कुत्ते को रोटी का टुकड़ा डालने वाले के उपकार को कुत्ता भी नहीं भूलता, उसके घर की चौकीदारी करने लगता है । परन्तु आज, जन्म से लेकर पालने-पोषने और शिक्षा-दीक्षा दिलवा कर उँचाई तक पहुँचाने वाले माता-पिता का उपकार, संतान भूल जाते है । माँ-बाप को शान्ति मिलने के स्थान पर संताप मिलता है । यह जमाने का जहर नहीं तो क्या है ? बंधुओं ! धर्म ने आप पर कितना उपकार किया है ! पूर्वजन्म के धर्म ने आपको यहाँ अमूल्य मानव अवतार और मानव देह से लेकर कितनी-कितनी सामग्री प्रदान की है । धर्म का यह महान उपकार बार-बार याद आता है क्या ? याद आने पर उपकार की अजस्त्र धारा के समक्ष, धर्म के प्रति बदला देने का मन होता

है क्या ? यदि मन महान हो, क्षुद्र न हो, तो धर्म की असीम उपकार याद आते रहते हैं और उसके बदले में बहुत कुछ करने की इच्छा भी होती है ।

हरिषेण राजा प्रीतिमती के माता-पिता से कहते हैं, "आप ऐसा न कहिए। मैं तो निमित्त मात्र हूँ । जो कुछ अच्छा परिणाम दिखा वह राजकन्या के पुण्यबल का फल है ।" प्रियदर्शन राजा हरिषेण को गले लगाते हुए फिर से कहते हैं, "महाराज, मैं आपके उपकार का बदला नहीं चुका सकता ।" तब हरिषेण राजा ने कहा, "महाराज ! मैंने कुछ भी नहीं किया है, आप इसे उपकार मत मानिए। यह तो एक मानव का दूसरे मानव के प्रति कर्त्तव्य है ।" प्रियदर्शन राजा हरिषेण का उपकार नहीं भूलते, इसी प्रकार, हमें भी ज्ञान प्रदान करनेवाले गुरु का उपकार नहीं भूलना चाहिए । जो गुरु का उपकार भूल जाता है, वह ऐसे ज्ञानावरणीय कर्म बाँधता है कि अगले जन्म में उसे जीभ नहीं मिलती । प्रजाजन भी हरिषेण का उपकार मानते है । अब राजा प्रियदर्शन हरिषेण के उपकार का बदला चुकाने, उनके ऋण से मुक्त होने के लिए क्या विचार करेंगे; आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक २७

श्रावण शुक्ल ४, गुरुवार | दिनांक : १-८-७४

भेद-विज्ञान की मस्ती

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

द्रौपदी का अधिकार : शासन सम्राट, वीर भगवान के मुखारविन्द से निःसृत शाश्वती वाणी का नाम है सिद्धान्त । भगवान की वाणी का एक शब्द भी जो जीव श्रद्धापूर्वक समझ ले तो कल्याण हो जाये । ऐसी शाश्वती वाणी अमृत बिंदु है । धर्मरुचि अणगार गोचरी लेकर आये और भिक्षा में प्राप्त आहार गुरु के सम्मुख रखा । गुरु ने घी तैरते, मसालेदार साग को हथेली में रखकर चखा । साग से कड़वी गंध आयी, उस कड़वाहट का वर्णन न हो सके ऐसे जहर जैसा था । साग चखते ही -

'तत्तगं, खारं कडुयं, अखज्जं, अभोज्जं, विसभूयं जाणित्ता धम्मरुइ अणगारं एवं वयासी-जइणं तुमं देवाणुप्पिया ! एयं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारेसि तो णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।'

-यह एकदम तीखा है, खारा है, कड़वा है। खाने योग्य नहीं, सेवन योग्य नहीं तथा विष से भरा हुआ है, जान लिया। जानकर धर्मरुचि अणगार से कहा, "अहो, देवानुप्रिय ! अहो, महातपस्वी अणगार ! यह आहार मसाले से भरपूर, घी तैरता हुआ, दिखने में स्वादिष्ट और भभकदार है, परन्तु अंदर से असार है। इसका एक बूँद भी ग्रहण करने योग्य नहीं है। इस आहार को ग्रहण करोगे तो अकाल मरण निश्चित है।

आहार लई गुरु पासे जई, विनयसहित देखाडे रे,
गुरुजी कहे निर्दोष स्थाने परठवजो मुनि यत्नाए,
कड़वी तुंबीना आहार थकी मृत्युना खोले मुकाशो रे...धर्मघोष...

इस कड़वी तुंबी का आहार करने से तुम्हारी अकाल मृत्यु होगी। गुरुजी ने स्पष्ट न कह दिया कि यह आहार परठ देना। गुरु शिष्य की योग्यता देखकर उसे आज्ञा देते हैं। राजसुकुमार की शक्ति देखकर भगवान ने उन्हें आज्ञा दी थी। भगवान जानते थे कि गजसुकुमार मुनि श्मसान में बारहवीं पड़िमा (प्रतिमा) वहन करने जायेंगे तो उन्हें भयंकर उपसर्ग आयेंगे, फिर भी वे आत्मसाधना से जरा भी डोलायमान नहीं होंगे, इसीलिए आज्ञा दी थी। उस समय तो केवली भगवान थे, इसलिए सब जानते थे। लेकिन जिनका मतिज्ञान और श्रुतज्ञान निर्मल होता है वे भी ज्ञान से जान लेते है कि साधक अपने संयम भाव से हटने वाला है या नहीं, अतः आज्ञा दे सकते है। एक बार का प्रसंग है।

गुरु-शिष्य का प्रसंग : एक गुरु के बहुत से शिष्य थे। उनमें एक शिष्य उदास बैठा रहता। जब देखो तब उसके मुख पर उदासीनता छाई रहती। एक दिन गुरु समय निकालकर उसके पास आये और पूछा, "मेरे शिष्य ! यह संयम का मार्ग तो आनन्द का मार्ग है, आत्मा के आनन्द लूटने का मार्ग है। तू संसार की ममता छोड़कर साधना के क्षेत्र में आया है। यहाँ तो तुझे सदैव प्रसन्न रहना चाहिए। गमगीन होने का तो कोई कारण नहीं है, फिर तू इतना खिन्न और उदासीन क्यों रहता है ?" शिष्य ने उत्तर दिया, "गुरुदेव ! आप जो कह रहे है, वह सत्य है। मुझे उदासीन नहीं रहना चाहिए। आपके पवित्र चरणों में मुझे कोई दुःख नहीं है। आपकी असीम कृपा मेरे जीवन की सबसे बड़ी थाती है। संयमी जीवन का मुझे अपूर्व आनन्द है। उदासीन होने का एकमात्र कारण यह है कि इन सब संतों को ज्ञान सीखते, स्वाध्याय करते और प्रगति करते देखता हूँ तब मेरे मन में आता है कि ये सब ज्ञान-ध्यान में कितने मस्त हैं ! रोज स्वाध्याय करते हैं, परन्तु मुझे कुछ

नहीं आता । मैं पढ़ने के लिए बहुत मेहनत करता हूँ फिर भी मुझे कुछ नहीं आता । मैं कितना अभागा हूँ । मेरे मन में यही दुःख है । मुझे थोड़ा में सब आ जाये, ऐसी आपकी कृपा हो तो दुःख दूर हो ।

गुरु ने जाना कि शिष्य का खेद आत्मा के लिए है । अतः कहा, "तू चिंता मत कर, घबड़ा मत । तुझे कल्याण करना है ना ! तो ठीक है, मैं तुझे छोटा-सा सूत्र बतलाता हूँ, तू उसे कंठस्थ कर लेना । उसका चिंतन-मनन करना तो अवश्य तेरी आत्मा का कल्याण होगा ।" गुरु ने अपने मंदबुद्धि शिष्य को यह सूत्र सिखाया *"मा रुष मा तुष"* चाहे जितनी कठिन परिस्थिति हो, कटु शब्दों के प्रहार हों, परन्तु किसी पर रोष नहीं करना, और अच्छे प्रसंग में किसीके प्रति राग न रखना ।" सभी संत जो स्वाध्याय करते हैं उसका यही फल है । तू भी अच्छे-बुरे किसी भी प्रसंग में समभाव में रहना । इतना कर लोगे तो वही तुम्हारा स्वाध्याय होगा । यह सुनकर शिष्य को आनन्द हुआ । "गुरुदेव ! आपकी असीम कृपा है ।" इस छोटे से सूत्र को शिष्य रात-दिन रटने लगा । गुरु ने छोटा परन्तु गहरा सूत्र बता तो दिया । शिष्य था मंदबुद्धि, इसलिए इतना छोटा-सा सूत्र भी उसे याद न रहा । उसके बदले *'मासतुस'* रटने लगा । शिष्य चाहे जो शब्द रट रहा हो, परन्तु उसके हृदय में भाव यही है कि तू किसीके प्रति राग नहीं करेगा, द्वेष नहीं करेगा, तुझ पर प्रहार हो तो भी कषाय का कण तक प्रकट नहीं होने देगा । शिष्य को गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा है, विश्वास है, सद्भाव है कि गुरु ने मुझे स्वाध्याय के लिए छोटा पद दिया है । मुझे तो जड़ी-बूटी मिल गई है । राग-द्वेष सबसे बड़ा बँधन है । जबतक राग-द्वेष दूर नहीं होगा तबतक साधना सफल नहीं हो सकती ।

शिष्य गुरु द्वारा प्रदत्त सूत्र भूल गया और *'मासतुष'* शब्द रटने लगा । *'मासतुष'* का अर्थ है कि जिस प्रकार उड़द और उसका छिलका अलग-अलग है उसी प्रकार आत्मा और शरीर भी भिन्न है । जैसे काला छिलका दूर होने से अंदर से उड़द सफेद निकलता है वैसे ही काले विकार दूर होने पर अंदर से आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट हो जाता है । दूसरे शब्दों में कहें तो मिथ्यात्व रूपी छिलका उड़ जाने पर देव-गुरु-धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा होती है अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्त करता है । सम्यक्त्व आने के बाद उसका मन परभाव में नहीं जाता । आत्मा का स्वभाव ज्ञान-दर्शन में रमण करना है । सम्यक्दर्शन आया यानी सम्यक्ज्ञान आया । ये दोनों अलग नहीं हैं । सम्यक्दर्शन आत्मसत्ता में आस्था है । संसार में अनंत पदार्थ हैं । अनंत चेतन और अनंत जड़ हैं । जड़-चेतन में भेद विज्ञान करना ही सम्यक्दर्शन का मुख्य उद्देश्य है । स्वरूप की प्राप्ति होने पर आत्मा अर्हंता और

ममता के बँधनों में बँधा नहीं रहता । जिसे आत्मबोध हो जाता है, वह आत्मा निश्चय कर सकता है कि मैं शरीर नहीं । मैं मन नहीं, क्योंकि ये सब भौतिक और पुद्गलमय है । इसके विपरीत मैं चैतन्य हूँ, आत्मा हूँ । मैं ज्ञान स्वरूप हूँ और पुद्गल कभी भी ज्ञान स्वरूप नहीं बन सकता । आत्मा और पुद्गल को एक मानना अध्यात्म क्षेत्र में सबसे बड़ा अज्ञान और सबसे बड़ा मिथ्यात्व है । सिद्धान्त इसका एक समाधान प्रदान करते है कि पुद्गल के अभाव की चिंता मत करो । आत्म साधक को इतना समझना चाहिए कि अनंतकाल से पुद्गल के प्रति, जो आत्मा की ममता है, उसे दूर करने के बाद, एक पुद्गल तो क्या अनंत पुद्गल भी आत्मा का कुछ नहीं बिगाड़ सकते ।

सम्यक्ज्ञान का अर्थ है आत्मा के विशुद्ध स्वरूप का ज्ञान । आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् अन्य भौतिक ज्ञान की प्राप्ति होने से आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ता । ज्ञान कम हो तो वह हानिकर नहीं लेकिन अज्ञान रूपी विपरीतता भयंकर है । आत्मज्ञान कण जितना हो और भौतिक ज्ञान मन जितना हो फिर भी आत्मज्ञान भौतिक ज्ञान से श्रेष्ठतम है । ज्ञान-दर्शन तो आत्मा का स्वभाव है, परन्तु आत्मा पर आवरण आ गया है । सूर्य जब बादलों से घिरा होता है तो सूर्य दिखाई नहीं देता । इससे यह नहीं सोचना चाहिए कि अब गगन में सूर्य की सत्ता नहीं रही । सूर्य की सत्ता तो है पर बादलों का आवरण उस पर छा गया है । बादल जैसे ही हटते हैं, सूर्य का प्रकाश और गर्मी एकसाथ गगनमंडल और भूमंडल पर प्रसारित हो जाता है । प्रकाश पहले आता है और पीछे गर्मी या पहले गर्मी और पीछे प्रकाश आता हो, ऐसा नहीं है । दोनों एक साथ प्रकट होते है । इसी प्रकार सम्यक्दर्शन होने पर सम्यक्ज्ञान भी हो जाता है । इन दोनों को प्रकट होने में क्षण मात्र का भी अंत्तर नहीं होता ।

गुरु ने शिष्य को एक शब्द सिखाया । परन्तु गुरु द्वारा प्रदत्त शब्द भूलकर मासतुष शब्द रटने लगा । उसे तो गुरु पर अटूट श्रद्धा है । आज तो श्रद्धा का दिवाला निकल चुका है । श्रद्धा हो तो नवकार मंत्र से भयंकर जहर भी उत्तर जाये । आप कहेंगे कि हम तो रोज गिनते हैं, हमारे छोटे-छोटे बच्चे भी बोलते हैं । परन्तु श्रद्धा को तो तोड़-फोड़ दिया है । वस्तु वही है, लेकिन परिणाम में फेर है । शब्द की रटन के साथ उसका मिथ्यात्व का छिलका उड़ गया । इस प्रकार शब्द से गलत पर अर्थ से सत्य, सूत्र का भावात्मक ध्यान करते हुए एक दिन वह मंदबुद्धि शिष्य आठवें गुणस्थान में पहुँच गया । वहाँ क्षपक श्रेणी में परिणाम की धारा बढ़ते, बारहवें से होकर तेरहवें में पहुँचकर केवल ज्ञान की अमर ज्योति प्राप्त कर ली,

आभरण, उत्तम वस्त्र, दास-दासी, रथ, हाथी-घोड़े आदि विदाई में साथ दिये। हरिषेण राजा ने सास-श्वसुर के चरणों में नमन करते हुए कहा, "आपका आशीर्वाद सदैव मेरी और आपकी कन्या की रक्षा करेगा। आपने इतनी श्रद्धा और विश्वास से जो रत्न मुझे सौंपा है, वह रत्न ऐसा ही प्रकाशमान रहेगा।" सबसे बिदा लेकर, रिसाले के साथ राजा हरिषेण मित्रावती नगरी में आ पहुँचे। राजा राज्य संभालते हैं, पर उनका मन ऋषि द्वारा समझाये तत्त्वज्ञान में ही है- 'यह जन्म भोगायतन के लिए नहीं योगायतन के लिए प्राप्त हुआ है।' संसार की प्रत्येक क्रिया आश्रव रूप हैं, परन्तु कुंवरी को परिणय करके लाये हैं, तो उसे यह न लगे कि मुझे अकेला छोड़ दिया है - यह सोचकर उसके साथ आनन्द से रहते हैं। अब आगे क्या घटेगा आदि भव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक २८

श्रावण शुक्ल १५, शुक्रवार | दिनांक : २-८-७४

सम्यक्दृष्टि के उच्चभाव

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

स्याद्वाद के सर्जक, भव-भव के भेदक, परम पंथ के दर्शक, अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी, जिन्होंने अपने जीवन से राग दशा विलीन कर वीतराग दशा प्राप्त की हैं तथा परम साधनों द्वारा परम साध्य की सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं और अत्यन्त जबरदस्त पुरुषार्थ करके केवल ज्ञान और केवल दर्शन की जगमगाती ज्योति को प्रकट किया है, ऐसे जिनेश्वर देवों ने जगत के जीवों के उद्धार के लिए, कल्याण के लिए, करुणाभाव से सिद्धान्त रूपी वाणी प्ररूपित की है। सिद्धान्त अर्थात् आत्मा के अक्षय भंडार को खोलने की कुंजी। आत्मा के वैभव को प्राप्त करने के लिए भावभीना आमंत्रण प्रदान करनेवाली पत्रिका के समान है सिद्धान्त। वीतराग वचनामृत के भाव आत्मा समझे तो जन्म-जरा और मरण का रोग अवश्य नष्ट हो जाए। आप जिसे दुःख मानते है, भगवान ने उसे दुःख नहीं कहा है। भगवान फ़रमाते हैं -

जम्म दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ किसन्ति जन्तवो ।।

- उत्त. सू. अ-१९, गा-१६

जन्म दुःख रूप है, जरा दुःख रूप है, रोग और मरण दुःख है । अरे, यह सारा संसार दुःख रूप है । इसमें जीव क्लेश पाते है । जबतक जन्म है तबतक मरण का दुःख है । जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है । परन्तु जिसका मरण हुआ उसकी जन्म हो ही, यह तय नहीं है । जो सिद्ध भगवंत हुए, मोक्ष में गये, उनका मरण हुआ, परन्तु अब वे जन्म नहीं लेंगे । अजन्म-दशा प्राप्त करने के लिए राग-द्वेष को दूर करना पड़ेगा । राग जाये तो द्वेष भी जाये । एक के प्रति राग होने पर दूसरे के प्रति द्वेष होगा ही । द्वेष जीतना फिर भी सरल है, परन्तु राग को जीतना कठिन है । गोंद की टिकट जहाँ रखिए वहीं चिपक जायेगी । नमी वाली हवा लगने से भी चिपक जाती हैं, वैसे ही आज संसार में पड़े जीवों को विषय-विकार की नमी लग गई है, अतः जहाँ जाते है वहीं चिपक जाते है ।

'ज्ञाताजी सूत्र' में कहने वाले पवित्र है और सुनने वाले भी पवित्र हैं । हिमालय से गंगा नदी निकलती है । भगवान की वाणी हिमालय जैसी है । स्वयं भगवान के श्रीमुख से झरने वाली वाणी है -

वीर हिमाचल से निकसी गुरु गौतम के मुख कुंड ढरी है,
मोह महाचल भेद चली, जगु भंग तरंगन से निकली है ।

भगवान रूपी हिमालय से वाणी की पावन धारा बरसी और गौतमस्वामी के हृदय-कमल में उतरी, उन्होंने उसे ग्रहण किया । हिमालय से स्वयं पानी निकलता है, वैसे तीर्थकरों के श्रीमुख से स्वयं वाणी निकलती है । मकान का प्लान बना देने के बाद कारीगर मकान बनाते हैं - भगवान की वाणी रूपी प्लान अपने सामने हैं । सिद्धान्त बार-बार वांचन करेंगे को हर बार उसमें नये-नये भाव मिलेंगे । दही को विलोने (मंथन करने) से मक्खन निकलता है, वैसे ही सिद्धान्तों का मंथन करते जाने से नये-नये भाव रूपी मक्खन निकलेगा ।

द्रौपदी का अधिकार

राग की एक बूँद गिरते ही... : धर्मघोष मुनि के शिष्य धर्मरुचि अणगार महान तपस्वी है । तप के साथ उनमें क्षमा भी भरपूर है । उन्होंने गुरु को आहार दिखाया । गुरु ने विवेक करके कहा - यह आहार खाने योग्य नहीं है बल्कि परठने योग्य है । आहार में इतनी कड़वाहट है कि खाने से शरीर और जीव अलग हो

जायेंगे । अतः कहा, "हे मेरे प्रिय शिष्य ! इस आहार को निर्दोष स्थान पर, प्रति-लेखन करके, किसी जीव की विराधना न हो, इस प्रकार परठ दो । तत्पश्चात् निर्दोष आहार लाकर आप ग्रहण कीजिए ।" कितनी मीठी भाषा में गुरु कहते हैं ! ज्ञानी कहते है कि 'भाषा बोलने में भी उपयोग रखना चाहिए ।' एक व्यक्ति एक शब्द ऐसा बोलता है कि छाती में गोली लगने जैसा आघात होता है, तो दूसरा ऐसे शब्द बोलता है कि लगा हुआ घाव भर जाता है।

शब्द शब्द क्या करो, नहि हाथ नहि पाँव
एक शब्द घा रुझवे, एक शब्द हरे प्राण ।

भाषा सुंदर और मीठी बोलिए । यदि बोलने में उपयोग नहीं होगा तो कर्म बँधेंगे । संज्ञी पंचेन्द्रिय के दस प्राण कहे गये हैं, वे कौन-से हैं, आप जानते हैं ना ? (श्रोताओं में से आवाज : 'पाँच इन्द्रियों के पाँच प्राण, मनबल प्राण, वचनबल प्राण, कायबल प्राण, श्वासाच्छ्वास और आयुष्य') कठोर या मर्मभेदी भाषा बोलेंगे तो श्रोतेन्द्रिय बलप्राण को दुःख होगा । इसे भगवान ने सूक्ष्म हिंसा कहा है। भगवान का श्रावक ऐसा वर्तन नहीं करता कि एक भी सूक्ष्म जीव की हिंसा हो । प्रतिक्रमण में रोज बोलते है । *'मन दंडेणं, वचन दंडेणं, काय दंडेणं'*- इन तीन प्रकार से आत्मा दंडित हुआ हो तो *'तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।'* प्रतिक्रमण करते हुए अंतर में विचार कीजिए कि मैंने अपने मन से किसीका खराब तो नहीं चिंतन किया ना ? किसीको कटुवचन तो नहीं कहे ना ? मेरी काया से किसीको धक्का तो नहीं मारा ना ? पाप धोने के लिए पाप को नजरों के समक्ष रखिए । फिर पश्चात्ताप की भट्‌टी सुलगे तो पाप नष्ट होते है । पश्चात्ताप के दो बूँद से पाप धुल जाते है और अपना चाहा न होने पर आर्तध्यान के कारण जो आँसू गिरते है, उनसे पाप बँधते है । सम्यक्‌दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में इतना ही फर्क है। सम्यक्‌दृष्टि आत्मा पाप का प्राक्षालन करता है, जबकि पाप का प्राक्षालन तो दूर रहा, नये कर्म बाँधता रहता है । एक न्याय द्वारा स्पष्ट करती हूँ ।

जंबुद्वीप के वर्णन में उन्मग्नजला और निमग्नजला नाम की दो नदियों का वर्णन आता है । इन नदियों का स्वभाव कैसा है ? उन्मग्नजला नदी का स्वभाव ऐसा है कि इस नदी में कोई भी वस्तु गिरे तो वह उसे उछालकर बाहर फेंक देती है । वह कोई भी वस्तु अपने अंदर नहीं रहने देती । निमग्नजला नदी का स्वभाव इसके विपरीत है, अर्थात् कुछ भी इस नदी में गिरे तो वह उसे अपने अंदर रख लेती है । हमें इससे क्या प्रतिबोध लेना है ? उन्म[illegible] नदी के समान सम्यक्‌दृष्टि है और निग्मनजला नदी के समान [illegible] दृष्टि आत्मा में जब कभी राग-

द्वेष आदि के विकल्प उठते हैं तो वह उसे बाहर फेंक देता है । जैसे ही कोई विकार उसके अंदर आता है, वह उसे बाहर निकाल फेंकता है । कर्म पुद्‌गलों को भी अंदर आते ही भोगना शुरू करके, बाहर फेंक देता है । वह समझता है कि मेरी आत्मा का स्वभाव विषय-विकारों का संग्रह करने का नहीं है, राग-द्वेष रूपी कचरे को पचाने का नहीं है, बल्कि उसे बाहर निकाल फेंकने का है ।

श्रेणिक राजा सम्यक्‌दृष्टि थे, इसलिए पुत्र ने कैद कराके चाबुक लगवाई, तो भी यह विचार नहीं आया कि यह मेरा शत्रु है । इसने मेरे साथ बुरा किया है । ऐसे विचारों को अंदर नहीं आने देते । कदाचित आ जाये तो उसे बाहर फेंक देते हैं । वे आत्मा के ग्रहण करने योग्य का ही ग्रहण करते हैं । जिसे सम्यक्त्व का स्पर्श हुआ है वह संसार के मायाजाल में मग्न नहीं बनता । कदाचित दीक्षा न ले सके तो भी उसे अविरति खटकती रहती है । देव को अविरति (अव्रत) नहीं खटकती । वासुदेव अविरति सम्यक्‌दृष्टि है, पर उन्हें विरति की चाहना है । जब भगवान नेमनाथ को कृष्ण वासुदेव वंदन करने जाते हैं तब उनके बाल-साधू को देखते हैं, किसीको दीक्षित होते देखते हैं या व्रतधारी श्रावकों को देखते हैं, तो उनकी आँखों से आँसू टपकने लगते, "मैं कितना पापी हूँ । कुछ भी नहीं कर सकता ।" भगवान के वचनों के प्रति दृढ़ आस्था है । स्वयं कर नहीं सकने की पीड़ा अंतर में है । जब बुखार आता है तो वह ताप नहीं बल्कि अंदर का ताप होता है जो बाहर निकलता है । इसी प्रकार आत्मा के अंदर मिथ्यात्व, अविरति (अव्रत) प्रमाद, कषाय और अशुभ योग रूपी जो जहर भरा है, उसे उन्मग्नजला नदी जैसा समकिती आत्मा बाहर फेंक देता है । मिथ्यात्व जाने पर ही सम्यक्त्व आता है । अविरति जाने पर ही विरति आती है । प्रमाद के जाने पर अप्रमाद दशा आती है । अशुभ योग के जाने पर शुभ योग आये और कषाय रूपी कचरा जबतक नहीं जायेगा तबतक कल्याण दूर है । निमग्नजला नदी के समान जो मिथ्यादृष्टि आत्मा है वे अपने रागात्मक एवं द्वेषात्मक विकल्पों को अपने अंदर ही रखते हैं, बाहर नहीं फेंकते ।

उन्मग्नजला नदी के समान जिन्हें सम्यक्त्व प्राप्त हो गया है, ऐसे धर्मरुचि अणगार को गुरु ने निर्दोष स्थान में आहार परठने की आज्ञा दी । फिर कहा कि "परठने के बाद निर्दोष आहार की गवेषणा करके दूसरा आहार लाकर अपना पारणा करना ।" धर्मरुचि जैसे तपस्वी के दर्शन से भी पाप धुल जाये । क्षमामूर्ति धर्मरुचि के मन में ऐसा विचार नहीं आया कि 'मैं मासखमण के पारणे के लिए तीसरे प्रहर की तीव्र धूप में गोचरी लेकर आया । अब परठने के लिए भी मुझे ही भेज रहे है ! इतने शिष्यों

में से किसी अन्य से नहीं कहते !' मुनि के लिए तो गुरुआज्ञा प्राण है । जहाँ गुरु की आज्ञा है वहाँ भगवान की आज्ञा है । इसीलिए उनका कल्याण हुआ । भगवान के सभी संत मोक्ष की माला के समान हैं । धर्मरुचि अणगार में तप तो था ही गुरु की आज्ञा तहत करके स्वीकारने से वैयावच्च भी उत्तम कोटि का था ।

गुरु की आज्ञा से धर्मरुचि अणगार ने कड़वी तुंबी के साग से भरा पात्र उठाया । मन में कोई खेद नहीं । यह विचार तक न आया कि अहो नागेश्री ! तूने मुझे घूरा समझा ? तू जानती थी कि आहार इतना कड़वा है फिर भी मुझे वहराया । ऐसा संकल्प-विकल्प भी मन में नहीं । कैसे क्षमा सागर ! कैसी विस्मयकारी समता ! जब वैरागी संयम लेते है, तब निर्णय कर लेते है कि मेरा सिर जाये तो कुर्बान, परन्तु चारित्र नहीं जाने देंगे । महाव्रत प्रदान करते हुए गुरु बार-बार पूछते हैं, 'तू बराबर पाल सकेगा ?' तब हँसते चेहरे से आनन्दपूर्वक व्रत लिया है । गुरुजी के शब्द सुनकर धर्मरुचि अणगार उन्हें वंदन करके खड़े होते हैं ।

गुरुजीना शब्दों सुणीने मुनि चाल्या तुंबी परठववा,
एकज बिंदु पाड्युं जोवा त्यां कीडियोनी थई हारमाला,
तालकूट विषना प्रतापे, कीड़ियो त्यां प्राण गुमावे, रे... धर्मघोष...

गुरुजी की आज्ञा से मुनि भरा पात्रा लेकर तीसरे प्रहर परठने चले । चेहरा हँसता हुआ, जरा भी उदासीनता नहीं । आत्मा में क्या भाव है ? अहो ! मैं कितना भाग्यवान ! गुरुदेव की मुझ पर कितनी असीम कृपा है ! मुझे कहा, 'यह आहार आप मत लीजिए, इससे देह और आत्मा अलग हो जायेगी । किसी जीव की हिंसा न हो ऐसे स्थान में परठना ।' मोक्षगामी आत्मार्थी जीव है । कड़वी तुंबी का पात्र लेकर गुरु के पास से चले ।

"पडिनिक्खमित्ता सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ अदूरसामंते थंडिलं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता तओ सालइयाओ एगं बिंदुगं गहेइ ।"

सुभूमिभाग उद्यान से बहुत दूर भी नहीं और बहुत नजदीक भी नहीं ऐसे एक स्थान पर भूमि की प्रतिलेखना की । भूमि का प्रतिलेखन करना यानी रजोहरण से पूंजना मात्र नहीं बल्कि आँख से निरीक्षण करना भी है । जहाँ कुम्हार की मिट्टी होती है उस जमीन के आसपास चींटियों के घर नहीं होते । ऐसी जगह परठने से जीवों की हिंसा कम होती है । ज्ञानी कहते हैं कि 'कोई क्या कर रहा है यह मत देखो, बस अपना संभालो ।' आपके घर मेहमान आयें तो आदर-सत्कार करते हैं । प्रेम से मिष्ठान्न खिलायें पर क्या अपनी तिजोरी दिखाते हैं ? (श्रोताओं में से आवाज : 'नहीं बताते') इसी तरह जो उच्चकोटि का चारित्र पालते हैं वह तिजोरी

हैं। उसे बाहर बताने की बात नहीं है । सभीको अपने कल्याण के लिए चारित्र पालन करना है ।

धर्मरुचि अणगार ने सर्वप्रथम परठने की भूमि का प्रतिलेखन किया । तत्पश्चात् उस कड़वे आहार की एक बूँद लेकर उस भूभाग पर डाला, सारे के सारे साग को न उंडेला । साधूपन का कैसा सुंदर भाव ! कितनी पवित्रता ! मन में यह भाव भी नहीं कि झट से परठकर दूसरी बार गोचरी लाऊँ । सूर्यास्त के पश्चात् तो आहार-पानी कल्पता नहीं । साधू रात में खाते-पीते तो नहीं, यदि कभी बीमार पड़ जाये तो विलेपन या इंजेक्शन आदि भी नहीं लेते । क्योंकि वह भी रोम या नस के द्वारा शरीर के अंदर ही जाता है । संयम तो सिर देने की शर्त पर प्राप्त किया माल है । सुगंधित मसालेदार साग की एक बूँद गिरते ही हजारों चींटियों की कतार लग गई । मुनि यत्नपूर्वक देख रहे हैं कि क्या होता है ? उनमें से जो जो चींटी साग खा रहीं थीं; तुरंत वहीं मर रही थीं । अब मुनि विचार करते हैं कि 'इस आहार का क्या करें । अपनी रक्षा करनी है या चींटियों की ? अब क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

राजा हरिषेण प्रीतिमती के साथ लग्न करने के पश्चात् प्रियदर्शन राजा के आग्रह से २७ दिन ठहरे । फिर वहाँ से अपनी नगरी में जाने के लिए विदा हुए । माता-पिता ने लाड़ली पुत्री से अच्छी बातें सीख में कही । राजा रानी के साथ नगर में पधारे । राजा समस्त राजव्यवहार देखते हैं, पर उनका चित्त उसमें रमता नहीं है । प्रीतिमती की भावना का ख्याल रखते हुए आनन्द से रहते हैं । दोनों उदार स्वभाव के हैं । उनके द्वार से कोई खाली हाथ नहीं जाता । जिस दिन कोई संत, अतिथि या याचक माँगने नहीं आता, वह दिन उन्हें बहुत खराब लगता ।

परिणीत जीवन के तीसरे वर्ष में अढ़ाई महीने गये होंगे कि प्रीतिमती रानी के चेहरे पर एक नया तेज चमक उठा, प्रीतिमती के गर्भवती होने का समाचार चारों ओर फैलते है । सभीके हृदय आनंदित हो उठे । उपयुक्त समय पर रानी ने पुत्र रत्न को जन्म दीया । राजा हरिषेण ने बधाई देने वाली दासी को अपने गले से मुक्ता की मूल्यवान माला भेंट की । सभी ओर आनन्द छा गया । दूसरे दिन पुत्रजन्म के मंगल प्रसंग के निमित्त राजा हरिषेण ने दान का प्रवाह मुक्त कर दिया । पुत्र का नाम क्या रखा जायेगा आदि भाव असर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

इन महापुरुष ने क्या विचार किया ? *"तं सेयं खलु ममेयं* सालइयं, *जावगाढं सयमेव आहारेत्तए ।"* 'मुझे यही श्रेष्ठ लग रहा है कि इस शारदिक तिक्त तुंबड़ी को स्वयं ही आहार कर लूँ । मेरा यह शरीर ही निर्दोष है, इसीमें आहार बोसरा दूँ तो क्या बुरा है ?' छ:काय के जीवों को अभयदान देने अपने शरीर में आहार बोसराने के लिए तैयार हो गये । अहा ! कितनी करुणा ! मुनि को ज्ञात था कि यह आहार तालकूट विष जैसा है, इसे खाने से जीव और काया अलग होगी । विवेक और समझ है ! कितने उत्तम विचार हैं । गुरु ने मुझे कहा था कि यह विष है फिर भी मैंने एक बूँद पृथ्वी पर डाला तो इतनी सारी चींटियाँ मर गईं ना ! इसकी जगह मैंने सीधा अपने पेट में डाल दिया होता तो इन जीवों की घात न होती ना ? नागेश्री के प्रति जरा भी द्वेष भाव नहीं । 'अहो ! नागेश्री ! तेरी दुर्गति होगी ।' जीव जब कषाय से जुड़ता है तो अपना भान गँवा बैठता है और यहाँ तक कह बैठता है कि तेरा सत्यानाश हो । धर्मरुचि को ऐसा भाव बिल्कुल नहीं आता । अपने साथ अन्य जीवों की रक्षा करने की भावना है ।

रक्षाबंधन : आज भी रक्षाबंधन अर्थात् रक्षा करने का दिन है । आज बहन भाई के घर जाती हैं और भाई बहन से राखी बँधवाता है । राखी बँधाने में भाई के सिर पर बहन की रक्षा का भार आता है । बंधुओं ! सच्ची रक्षा कौन कर सकता है ? आपकी सच्ची रक्षा करने में समर्थ एकमात्र जिनवाणी है । जिनवाणी रूपी राखी लेकर हम आपको बाँधने आये है । आपके लिए इसका मूल्य है या नहीं ? जिनवाणी रूपी राखी इसी भव में रक्षा नहीं करेगी वरन् भवोभव रक्षा करनेवाली हैं । इस राखी को बाँधने से जन्म-जरा-मरण का फेरा टल जायेगा । राखी के अनेक प्रकार होते हैं । जो सामान्य व्यक्ति होगा वह सामान्य राखी लायेगा । उससे जो सुखी होगा वह जगमगाती मोती टँकी राखी लायेगा और जो उससे विशेष सुखी होगा वह मानो हीरे-सी चमकती राखी लायेगा । उसी प्रकार हम भी भारी और हल्की दोनों प्रकार की राखियाँ लाये है । (श्रोताओं में से आवाज : 'आपकी राखी तो अमूल्य है ।' हमारी सबसे कीमती राखी वह बाँध सकेगा जो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करेगा । विषय-विकार को साफ किये बिना साधना नहीं हो सकती । आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेने से जन्मोजन्म की आती क्रिया थम जाती है । देवभव में, तिर्यंच में इस क्रिया को वोसराया न हो तो इस जन्म में भी यह क्रिया आती रहती है । इसलिए ब्रह्मचर्य लेने के लिए तैयार हो जाइए । ब्रह्मचर्य महान व्रत है ! जो दुष्कर

ब्रह्मचर्य व्रत पालन करता है उसके चरणों में, देव-दानव, यक्ष, राक्षस-किन्नर आदि नमस्कार करते हैं। अन्य व्रतों को नदी की उपमा दी गई है, जबकि ब्रह्मचर्य व्रत को सागर की। अतः हमारी यह राखी बाँधिए तो जन्मोजन्म सुधर जायेंगे। यह जन्म भोग का कीड़ा बनने के लिए नहीं बल्कि अजन्म दशा प्राप्त करने के लिए है। आज अनेक भाइयों ने बहनों को अपने घर बुलाया होगा। कुछ बहनें ऐसी भी होंगी जिनके भाई ही न होंगे और कुछ के भाई होंगे भी तो उन्हें बुलाते न होंगे। ऐसी बहनों की आँखें आँसू बहाती रहती है। उन भाइयों के यहाँ साली आए तो बड़ा स्वागत और बहन आये तो रोती जाए।

साली घरमां लाड़ करे ने बहेनी रड़ती जाय... अरे (२)
तू वीर वीर पोकार, आ छे स्वार्थीओ संसार।

ऐसे निष्ठुर भाई मत बनिएगा वरन् सच्चे भाई बनिए।

रा'नवघण का प्रसंग : जूनागढ़ में राजा रा'नवघण हुआ है। रा' नवघण जूनागढ़ के राजा महियाल का पुत्र था। राजा महिपाल पर दुश्मन चढ़ आया। राजा को जीतने की उम्मीद न रही तो रा'नवघण को एक विश्वस्त दासी के हाथों सौंप केसरिया करके मृत्यु को प्राप्त हुए। दासी राजकुमार को बचाने के लिए एक टोकरी में डाल बचती-बचाती, छिपती हुई, देवायत नामक अहीर के घर पहुँची। उसे सारी हकीकत बताकर कहने लगी कि 'यह राज्य का बीज है, जीवित रहा तो बड़ा होकर राज्य को दुश्मनों के चंगुल से छुड़ायेगा। उसकी माता का देहान्त हो चुका था।' पुण्यवान को कोई पालनकर्ता मिल ही जाता है। दासी ने फूल जैसे बालक को उसे सौंपा और पूरी सावधानी से संभालने की ताकीद की। देवायत आहीर के उगा नामक पुत्र और जाहल नाम की छ महीने की पुत्री थी। जाहल और नवघण समान उम्र के हैं। अहीर सोचता है कि 'यह भविष्य की आशा की मीनार है। यह जीवित रहेगा तो प्रजा की रक्षा करेगा।' जाहल की माता अपनी पुत्री को दुग्धपान न करवाकर नवघण को दूध-पिलाती थी। नवघण का तेजस्वी ललाट सामान्य वेश में भी उसकी विशेषता बताता था। इस तरह पलते हुए नवघण १० वर्ष का हो गया।

एक बार किसी प्रसंग में देवायत की अपने भाई से तकरार हुई और भाई ने मन में वैर की गाँठ बाँध ली। जूनागढ़ के राजा के पास जाकर यह सूचना दे दी कि 'आप यहाँ शान्ति से बैठे है और उधर बोड़ीदार गाँव में देवायत अहीर के घर आपका दुश्मन तैयार हो रहा है।' सुनकर जूनागढ़ के राजा देवायत के घर आये और कहा

व्याख्यान क्रमांक 30

श्रावण कृष्ण २, रविवार | दिनांक : ४-८-७४

अरिहंत का अर्थ

ज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत करुणानिधि भगवंत की प्रार्थना में हम क्या कहते हैं ? -

'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम प्रभु ।
मंगलं स्थूलिभद्राद्या, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम् ।।'

प्रथम मंगल कौन हैं ? अरिहंत प्रभु, जिन्होंने घाती कर्मों को क्षय किया है और अरिहंत पद प्राप्त किया है । प्रभु का नाम कितना मंगलस्वरूप है । अरिहंत नाम के एक-एक अक्षर में कितने भाव भरे हुए हैं ? अरिहंत में चार अक्षर है । प्रथम अक्षर है 'अ' । 'अ' अर्थात् अनंत गुण । जिनमें अनंत गुण है ऐसे अरिहंत भगवान को मैं नमन करता हूँ । 'रि' यानी रिपु । रिपु का अर्थ है शत्रु । जिन्होंने शत्रुओं को पराजित किया है । यहाँ शत्रु कौन हैं ? जो आपका अहित करे, उसे आप शत्रु कहते हैं । ये तो बाह्य शत्रु है, परन्तु अनादिकाल से क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष आदि शत्रु आत्मा का अहित करते हैं, उन शत्रुओं को हराया है । तीसरा अक्षर है 'हं' - हुंकार या अहंभाव । जहाँ अहं है वहाँ आत्मा की हानि है । अहं पिघले तो अरिहंत बनते है और ममत्व गले तो मोक्ष मिलता है । इस जीव से 'मैं' और 'मेरा' छूटता नहीं है । उपाश्रय आने पर भी हृदय से 'मेरा' नहीं जाता । एक तंबाकू की डब्बी खो जाये तो भी कितनी पूछताछ और शोध करते है । पदार्थ के प्रति मूर्छा भाव दुर्गति का दरवाजा खोलता है । अतः अहं और मम को तिलांजलि दीजिए । 'हं' का एक अन्य अर्थ है 'हंस' । जैसे हंस पानी को छोड़कर दूध पीता है वैसे ही अरिहंत भगवंत उपदेश प्रदान कर भव्य जीवों को, उनके कर्म और आत्मा के नीर-क्षीर समान संबंध में, कर्म समूह को नष्ट करवाकर, मोक्ष में पहुँचाते हैं । 'त' सूचक है *'तिन्नाणं' तारयाणं'* का । जो स्वयं संसार रूपी समुद्र से तिरे है और भव्य जीवों को तिरवा कर मोक्ष जाने का मार्ग बताते है । ऐसे अरिहंत प्रभु का जाप एकाग्र चित्त से करते हुए संसार सागर से पार उतरा जा सकता है ।

द्रौपदी का अधिकार

धर्मरुचि अणगार ने साग ग्रहण कर लिया : हमारे नियमित अधिकार में नागेश्री ने धर्मरुचि अणगार को कड़वी तुंबी का साग वहराया । भगवान ने फ़रमाया है कि "दान में साधू को सुपात्र दान देना महान लाभ का कारण है ।" जिस प्रकार स्वाति नक्षत्र का पानी तो वही है लेकिन नीम के पेड़ पर गिरने से उस पानी में कड़वाहट आती है, मिर्च पर पड़े तो तीखापन और सीपी पर गिरे तो सच्चा मोती बनता है। इसी प्रकार साधू को सुपात्र एवं निर्दोष आहार प्रदान करना उनके संयम में वृद्धि का कारण है । नागेश्री नहीं समझती कि ऐसे मासखमण की उग्र तपस्या करनेवाले मुनि का पदार्पण मेरे आँगन में कैसे हो गया ? उसने तो मुनि को घूरा मानकर सारा जहरी साग वहरा दिया । अनिच्छा से दान देने से भी पाप धुलते है तो स्वेच्छा से देना कितने लाभ का कारण बनेगा ? यहाँ तो नागेश्री के परिणाम मलिन हैं ।

धर्मरुचि मुनि ने जैसे ही निरवद्य भूमि देखकर साग का एक बूँद डाला वैसे ही कितनी (अनगिनत) चींटियों के प्राण चले गये । उनका मासखमण का पारणा है फिर भी स्थिरता कितनी है । यह भूमि सही है, मानकर सारा साग एक साथ नहीं उड़ेल देते वरन् परीक्षा करने के लिए बूँद डाला । भगवान के संत कैसे होते हैं ?

ना देह, तणी दरकार करे, अघरा तपने आचरता,
अभ्यास, क्रिया ने भक्तियी, आतमने उन्नत करता ।
आराधनमां आयुष्य नीतावी, उच्चगति वरनारा...
आ छे अणगार अमारा...

ये तो महान आत्मार्थी, मोक्षगामी जीव हैं । चारित्र रक्षा के साथ देह की रक्षा करनी है । परन्तु देह की रक्षा के लिए चारित्र का वलिदान नहीं देना है । एक बूँद साग से इतनी चींटियाँ मर गई । यदि समस्त साग एक साथ उड़ेल दूँ तो छकाय के जीवों की हिंसा हो जायेगी । मक्खियाँ भी आयेंगी और राह से कोई गरीब, व्यक्ति गुजरता हो तो खुशबूदार, स्वादिष्ट साग खाने लगे तो पंचेन्द्रिय जीव की भी विराधना हो जायेगी । यह शरीर तो कभी-न-कभी राख होने ही वाला है ।

'काया ने जाळवी एळे जावानी ज्यां आ चेतना चाली जावानी,
त्यारे पाछळ एनी राख रहेवानी... काया ने...'

काया की चाहे जितनी देखभाल कीजिए, पर इसमें स्थित चैतन्य देव के जाने पर इसकी राख ही होगी । आपको तपस्या करने में यही तो हिचक है कि शरीर सूख जाये तो ? देह की कितनी ममता है ? जबकि आत्मार्थी मुनि को देह की

परवाह ही नहीं । पहले महान पुरुष भी, जबतक शरीर स्वस्थ होता, उसका उपयोग कर लेते थे और जब लगता कि अब उपयोगी नहीं रहा, तो उसका त्याग कर देते थे । धर्मरुचि अणगार भी यही विचार करते हैं कि 'यदि मैं शरीर की रक्षा करूँगा तो अनेक जीवों की विराधना होगी । जानते हुए भी यदि मैं साग परठने जाऊँ तो अनेक जीवों की हिंसा का निमित्त बनूँगा ।' अत: -

"मम चेव एएणं सरीरेणं णिज्जाउत्ति कट्टु एवं संपेहेइ ।"

'मेरा शरीर यदि इस तिक्त, कड़वे आहार से नष्ट हो तो अधिक योग्य है ।' श्रावक रोज सुबह उठकर तीन मनोरथ करते हैं । 'हे भगवान ! मैं आरंभ-परिग्रह कब छोड़ूँगा ? मैं पंच महाव्रतधारी साधू कब बनूँगा ? सर्व पापों की आलोचना, प्रतिक्रमण करके, निंदा करके, नि:शल्य होकर संथारा (संलेखना) कब करूँगा ? सभी तपस्या की अवधि होती है, परन्तु संथारा तप की अवधि नहीं होती । कोई एक मासखमण करे या चौमासी तप करे, पर अवधि पूरी होने पर उसका पारणा तो आयेगा ही । जबकि संथारा में तो काया को ही बोसराना (त्यागना) होता है । फिर काया का जो भी हो, उसके प्रति ममता नहीं होती । जिस प्रकार पुराना कपड़ा छोड़कर नया कपड़ा पहनते हैं तो दृष्टि पुराने कपड़े पर नहीं जाती, उसी तरह काया को बोसरा देने के बाद उस ओर दृष्टि नहीं जाती ।

धर्मरुचि अणगार विचार करते हैं कि 'यह आहार मुझे कहाँ परठना चाहिए ?' उस कड़वी तुंबी के साग को हाथ से मसलकर एकरस बनाकर, उस आहार को अपने शरीर में बोसराने के लिए तैयार हुए । बारंबार विचार से यह दृढ़ फैसला कर लिया कि शरीर का नाश हो, तो स्वीकार है । तत्पश्चात् उन्होंने मुहपत्ति का पड़िलेहन किया *'मुहपत्ति पडिलेहित्ता पडिलेहिज्जं गोच्छगं ।'* मुहपत्ति का पड़िलेहन करने के बाद रजोहरण और फिर अपने अंग पर पहने वस्त्र का पड़िलेहन (प्रतिलेखन) किया । तत्पश्चात् पैर से लेकर मस्तक तक अपने पूरे शरीर की प्रमार्जना की । जिस स्थान पर बैठकर काया को बोसराना है उस भूमि का प्रतिलेखन किया और उस कड़वी तुंबी का मसालेदार, घी तरता साग का आहार ग्रहण कर लिया ।

"बहु नेहावगाढं विलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं सरीर कोट्ठंसि पक्खिवइ । जिस प्रकार सर्प अपनी बांबी (बिल) में प्रवेश करते समय, बांबी के दोनों पार्श्व भाग को स्पर्श किये विना सीधा प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार यह सागरूपी सर्प भी मुखरूपी बांबी के दोनों भागों को स्पर्श विना सीधे गले से पेट तक पहुँच गया ।

हमें बादाम अच्छी और मीठी लगती है, पर यदि एक बादाम कड़वी निकल जाय तो थू थू करके फेंकने लगते हैं । अच्छी बादाम पचा लेते हैं और एक कड़वी बादाम नहीं पचा पाते । यह तो मासखमण का पारणा है । कड़वे जहर में, जिसे तालकूट की उपमा दी गई हैं, ऐसा भयंकर आहार है । स्वयं जानते है, फिर भी यह विचार नहीं करते कि मासखमण के पारणे में इतना सारा साग मैं कैसे खा सकूँगा ? बल्कि विचार करते हैं कि 'यदि आधा साग रह गया तो मेरे साथ अन्य जीवों के प्राण भी जायेंगे । अरे ! पात्रा में जो साग लगा रह जायेगा तो भी जीवों की विराधना होगी ।' इस ख्याल से सारा साग अपने शरीर में ग्रहण करने में जरा भी विलंब नहीं किया । फिर पात्रा साफ करके, पड़िलेहन करके, उसे भी वोसरा दिया, और यावज्जीवन संथरा कर लिया । अन्य जीवों की रक्षा के लिए अपने जीव को दाँव पर लगा दिया । कितना सुंदर अध्यवसाय ! कितना निर्मल और विशुद्ध परिणाम ! उस समय यदि यह विचार आता कि हे नागेश्री ! तूने मुझे ऐसा आहार वहराया, तेरा क्या होगा ? तो अध्यवसाय और परिणाम की धारा मलिन हो जाती । ज्ञानी कहते हैं कि 'अपने अध्यवसाय को खराब न होने दीजिए । संथारा करना सरल है, पर अंतिम समय तक परिणाम की धारा शुद्ध रखना मुश्किल है ।

छेल्ला श्वास सुधी निरंतर रहो, आ संयमी भावना,
अध्यात्म स्थितिमां नहो मुज उरे, कल्याणनी साधना ।
आवे काल भले विपद शीर पड़े, ना दुःख के वासना,
थाजो प्राप्त सुधर्म अंत समये, एके बीजी आश ना ।

जीवन के अंतिम साँस तक यही विशुद्ध भावना रहना, आसान बात नहीं है । उसके लिए अभी से अभ्यास कीजिए । उपवास किसलिए ? यदि उपवास करते होंगे तो अंतिम समय में साधना संभव हो सकेगी । क्षमा गुण का विकास किया होगा तो सुख-दुःख में समान भाव रखा जा सकेगा । धर्मरुचि अणगार इस समय अकेले हैं । कोई उनके साथ नहीं है, अकेले भूमि पर बैठे है, पर मन में जरा भी खेद नहीं है । मन की विचारधारा कैसी है ? 'अहो गुरुदेव ! आपकी असीम कृपा है । आपने मुझे आत्मकल्याण का मार्ग शीघ्र बताया । मेरी देह का नाश तो होना ही है पर आत्मा शाश्वत सुख को प्राप्त करेगा ।' ऐसे कठिन प्रसंग में इतनी क्षमा और समभाव रहना सरल नहीं है । संथारा करने के बाद धर्मरुचि अणगार अरिहंत, सिद्ध तथा धर्मगुरु का स्मरण करके, लिये हुए महाव्रतों को याद करके, पाप की आलोचना करेंगे । फिर क्या घटेगा, आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

राजा हरिषेण ने रानी को जगाया : हरिषेण राजा और प्रीतिमती रानी आनन्द से रहते हैं। समय के साथ प्रीतिमती ने पुत्र को जन्म दिया। राजकुमार का नाम धार रखा गया। धीरे-धीरे राजकुमार बड़ा होता जा रहा है। एक बार राजा शीशे में अपना चेहरा देखते हुए उदास हो गये, तब प्रीतिमती ने पूछा, "महाराज ! आपका खिला हुआ चेहरा फीका क्यों पड़ गया ?" राजा कहते हैं, - "दूत आया है।" रानी ने कहा, "यह क्या कह रहे हैं, नाथ ! इतने पहरों के बीच दूत कैसे आ सकता है ?" सिर से एक सफेद बाल निकाल कर बोले, "देखो, यह दूत आया है। (श्रोताओं में से आवाज : 'हमारे माथे में तो दूत ही दूत भरे हैं।') यह दूत हमें चेतावनी देता है कि अब यह जीवन बहुत टिकने वाला नहीं है।" हरिषेण राजा को उत्तम निमित्त मिल गया। उन्होंने तत्त्व चिंतन में सर्वप्रथम संसार के पदार्थों से अपनी काया तक सबको अनित्य देखा और संसार के प्रति वैराग्य भाव आया।

संसार की अनित्यता, कदम-कदम पर संसार में घटती दुःखद घटनाएँ तथा कर्मजन्य पराधीनता, पाप की अनिवार्यता आदि ऐसे विषय हैं जो यदि मन में घर कर लें तो वैराग्य अवश्यंभावी हो जाये। संसार के सुख भले ही मीठे लगते हों पर जीवन जीते हुए कष्ट, पाप, वस्तु की पराधीनता, संयोग-वियोग और अंत में मृत्यु आदि ऐसी बातें है, जो संसार के प्रति आस्था मिटा देती है। इनके प्रति नफरत का भाव उमड़ता है, उसीका नाम है वैराग्य। राजा हरिषेण के मन में पहले से ही वैराग्य के भाव जागे हुए थे, परन्तु त्याग का साहस और उत्साह नहीं था। इसलिए वैराग्य भरे दिल से संसार चला रहे थे। अब वैराग्य प्रबल बन गया, उत्साह खिल उठा। पुत्र अभी बहुत छोटा है, परन्तु जो वैराग्य और त्याग के वीर्योल्लास से भर उठा है, उसे पुत्र, पत्नी या राज्य का मोह कैसे होगा ? जगत में ऐसे-ऐसे निमित्त हैं कि एक पर भी ध्यान से गौर किया जाए तो जीव के वैराग्य की वृद्धि से, अंदर के उत्साह का साथ पा जीव सारे ममत्व को छोड़कर त्यागी जीवन की ओर प्रयाण करे।

राजा हरिषेण रानी प्रीतिमती से कहते हैं कि "देखो, मेरा जीवन और जीवन का कीमती समय दुःखमय रंगराग और भोग में नष्ट हो रहा है। मानव जीवन की कीमत तप और त्याग में है। इस जीवन का घड़ी-भर का भरोसा नहीं है, क्या जाने कब यह चलती घड़ी बंद हो जायेगी ? यदि ऐसा हुआ तो परभव के लिए कमाई करना छूट जायेगा। इसलिए यह सब माया छोड़कर, तपोवन में जाकर तप करने की कामना है। काया का क्या विश्वास है, पता नहीं कब ढीली पड़ जाये ? या किसी महारोग से घिर जाए ? फिर तप कैसे हो सकेगा ? आज शक्ति है तबतक तपस्या कर लूँ।" रानी कहती है, "हमारा संबंध तो अभी-अभी जुड़ा है और आप एकदम त्याग

व्याख्यान क्रमांक २१

श्रावण कृष्ण ४, मंगलवार | दिनांक : ६-८-७४

गुरु की आज्ञा का सुपरिणाम

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत करुणानिधि त्रिलोकीनाथ ने जगत के जीवों को आधि-व्याधि और उपाधि के दुःखों में डूबा देखकर सच्चे सुख की प्राप्ति का मार्ग बताने के लिए सिद्धान्त रूपी वाणी प्रकाशित की । वीतराग वाणी का एक वचन भी यदि हृदय में सचोट बैठ जाये तो भव पार हुए बिना न रहे । अनिच्छा से श्रवण किये गये तीन शब्दों से रोहिणेय चोर तिर गया । उसकी भव्यता के कारण शब्द सुनाई पड़ गये और उसका भव पार हो गया । वीर प्रभु के वचनों में कितनी शक्ति है ! जैसे हजार पावर का बल्ब लगाकर बटन दबायें तो अंधकार का नाश हो जाता है । वैसे ही भगवान के वचन रूपी बल्ब को अंतर में चढ़ाकर श्रद्धा का पावर उपयोग में लायें तो अज्ञान का अंधकार नष्ट हुए बिना नहीं रहेगा । अज्ञान का तिमिर टले तो केवल ज्योति प्रकटे । केवल ज्योति प्रकटने से मुक्ति प्राप्त होती है । सर्वप्रथम यह निर्णय कर लेना जरूरी है कि मुझे मुक्ति कैसे मिल सकती है । चित्रकार को एक चित्र बनाना हो तो पहले उस चित्र का आलेखन उसके मस्तिष्क में होता है । परमात्म पद प्राप्त करना हो तो वे प्रभु, परमात्मा कैसे हैं, उसका स्मरण अंतर में होना चाहिए ।

हे प्रभु ! तू कैसा और मैं कैसा ? तुझमें और मुझमें कितना अंतर है ! आपने क्रोध-मान, माया, लोभ आदि कषायों को जीत लिया है, जबकि इन कषायों ने मुझे जीत लिया है । आप राग-द्वेष के बँधन तोड़कर वीतरागी बन गये हैं और मैं राग-द्वेष के बँधन मजबूत कर रहा हूँ । आप केवल ज्योति प्रकाशित करके मोक्ष माउण्ट पर आरूढ़ हो गये और मैं अभी तक अज्ञान के अंधकार में भटकता तलहटी तक भी नहीं पहुँचा । इस प्रकार प्रार्थना करते हुए प्रभु की आत्मा के साथ अपनी आत्मा की तुलना कीजिए तथा भगवान बनने की भावना बनाये रखिए । भगवान फ़रमाते हैं कि, "हे चेतन ! तेरा स्वभाव ऊर्ध्वगामी है ।" आत्मा का उत्थान करने की चाह हो तो अपना जीवन उज्ज्वल बनाइए । ऊर्ध्वगमन करने के लिए ज्ञान-दर्शन रूपी पँख और चारित्र

का पुरुषार्थ चाहिए । आत्मा की ओर पुरुषार्थ जगेगा तो कर्म का जंग जलकर साफ हो जायेगा । इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि 'आपको जो अनमोल क्षण प्राप्त हुआ है, उसे निष्फल मत जाने दीजिए ।' जो आत्मा क्षण को समझता है वही सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है । 'आचारांग सूत्र' में भगवान का कथन है- *"खणं जाणाहिं पंडिए ।"* जो क्षण को जानता है वही सच्चा पंडित है ।

द्रौपदी का अधिकार

धर्मरुचि अणगार आलोचना कर रहे हैं : धर्मरुचि अणगार ने क्षण को पहचान लिया । वे विचार करते हैं कि मेरा 'यह क्षण जैसा आया है, इसमें यदि मैंने देह का राग रखा तो, जिस ध्येय से संयम ग्रहण किया था, वह सफल नहीं होगा । इस देह रूपी पिंजरे से आत्मा रूपी तोता उड़ेगा ही, फिर क्यों न स्वयं ही इस्तीफा दे दूँ । काया छोड़नी तो है ही, अनेक जीवों के लाभ में मेरी काया छूटे तो इससे श्रेष्ठ क्या है ? अनेक जीवों की रक्षा के लिए काया छोड़ने को आत्मघात नहीं कहते । परन्तु संसार से परेशान होकर अपना सोचा हुआ न होने पर, मनपसंद सुखों की प्राप्ति न होने से आर्तध्यान, रौद्रध्यान में पड़कर कोई जहर खाये, जल मरे या डूब मरे तो उसे आत्मघात कहा जायेगा । आत्मघात करने से इस भव के साथ परभव भी बिगड़ जाता है और अनेक भवों में भटकना पड़ता है । अतः कभी भी आत्मघात का विचार नहीं करना चाहिए ।

धर्मरुचि अणगार ने देह का राग छोड़ दिया है । वे तो यही विचार करते हैं कि '२२ परिषह में से यह भी एक परिषह है, अतः तुझे अपना आत्मानंद नहीं गँवाना हैं ।' कड़वा आहार गट-गट करके पी गये । आहार एक अन्तर्मूहूर्त में उनके नस-नस में रक्त के परमाणुओं में फैल गया । सारे शरीर में जहर व्याप्त गया और शरीर में भयंकर वेदना होने लगी । साधक दशा में सहायक उत्तम होना आवश्यक है । धर्मघोष मुनि ने कहा था, 'हे देवानुप्रिय ! यह आहार तालकूट जहर जैसा है अतः जहाँ किसीकी हिंसा न हो, ऐसे निर्दोष स्थान में यह आहार परठना । परठने के पश्चात् निर्दोष गोचरी लाकर पारणा करना ।' वे अच्छे सहायक थे ।

न वा लभेज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।
एगो वि पावाई विवज्जयन्तो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥

- उत्त. सू. अ-३२, गा-५

यदि सहायक अच्छा हो तो डूबने वाला पार उतर जाता है । मेघकुमार डूबने की तैयारी में था । वे साधूपन छोड़कर जाने वाले थे । साधूपन छोड़े यानी संसार में

डूबे। परन्तु मेघ मोक्षगामी जीव थे, इसलिए सोचा कि 'भगवान से जो वेश ग्रहण किया था, उनको सौंपकर फिर जाऊँ ।' लिबास सौंपने गये । सहायक कैसे थे ? राजा श्रेणिक का पुत्र है, उसे कैसे कह सकते हैं - ऐसी शर्म सच्चा सहायक नहीं रखता । वरन् जो शास्त्र या वीतराग की आज्ञा के विरुद्ध है, उसका कथन कर देते हैं। सिद्धान्त में जैसा हो वैसा कहना चाहिए, छिपाना नहीं चाहिए । मेघकुमार को परमपिता भगवान महावीर जैसा सच्चा सहायक मिला था तो डूबने के छोर पर भी ऊपर आकर तिर गये । ज्ञानी कहते हैं कि 'यदि आपसे अधिक, विशेष गुणी अथवा आपके समान कुशल, निपुण सहायक न मिले तो समस्त पापों का त्याग कर, कामभोग आदि से अनासक्त होकर अकेले विचरण कीजिए ।'

'उत्तराध्ययन सूत्र' के २७वें अध्ययन में शिष्य का साथ गुरु को कैसा मिला ? गुरु जो कहते शिष्य उससे उल्टा जवाब देते है । गर्गाचार्य के ५०० शिष्य थे, पर सभी अविनीत । शिष्य को सिखाते तो बीच में बोलते, दोष बताते तो कुछ गुरु के विरुद्ध बोलते । गुरु शिष्य से गोचरी के लिए जाने कहें तो शिष्य क्या कहता ? 'यह श्राविका मुझे पहचानती नहीं है, मुझे भिक्षा नहीं देगी । मुझे कोई स्वागत के साथ बुलाता नहीं है या उनके घर रसोई का कोई ठिकाना नहीं होता । 'आज अन्य साधू को भेज दीजिए ।' ऐसे शिष्यों के साथ यदि कषाय भाव न आये और क्षमा भाव रहे तो उनके संग विचरण कीजिए । अन्यथा उन्हें छोड़कर विचरण कीजिए । ऐसे कुसाधू से दुःखी आचार्य सोचते है कि ऐसे शिष्यों के समागम से मेरी आत्मा को भी तकलीफ होती है। ये शिष्य *'तारिसा गलिगदहा ।"* आलसी गधे जैसे हैं । इसलिए ऐसे शिष्यों को छोड़, गंभीर गुरु अपनी आत्मा को चारित्रशील बनाते हुए अकेले विचरने लगे । ज्ञानी कहते हैं कि 'यदि तुझे ऐसे सहायक मिले तो तू उसे छोड़ देना, पर अपना संयम नहीं गँवाना ।' जिस प्रकार सड़े कान वाली कुतिया हर जगह से दुरदुरायी जाती है, उसी प्रकार गुरु की आज्ञा न मानने वाले अविनीत शिष्य को सभी स्थानों से भगा दिया जाता है । जो गुरुआज्ञा को अपना प्राण समझकर रहते हैं, ऐसे *'बुद्धिपुत्त नियागट्ठी न निक्कसिज्जइ कण्हुइ'* विनीत शिष्य का हर जगह सम्मान होता है ।

जिनकी साँस-साँस में गुरुआज्ञा का गुंजार है, ऐसे धर्मरुचि अणगार ने कड़वी तुंबी का आहार कर लिया । शरीर में पहुँचते ही भयंकर वेदना होने लगी । उन्हें प्रतीत हुआ कि इस वेदना से मेरा गात्र ढीला पड़ रहा है, शारीरिक बल घटने लगा

है और शक्ति क्षीण होने लगी है। यदि मैं बेहोश हो जाऊँ तो ? उससे पहले अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। अपने वस्त्र, पात्र आदि एकांत में रखकर संस्तारक भूमि की प्रतिलेखना की '*पडिलेहित्ता दब्भ संथारगं संथारेउ संथारीत्ता दब्भ-संथारगं पुरुदेइ*' प्रतिलेखना के बाद उसपर दर्भ का संस्तारक (बिछौना) किया। पूर्व दिशा की ओर मुख करके पर्यंकासन में उस संस्तारक पर विराजमान हुए। तत्पश्चात् अपने दोनों हाथ जोड़कर अंजलि बनाई और मस्तक पर रखकर अपने मन में कहने लगे - "*नमोत्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं णमोत्थुणं धम्मघोसाणं थेराणं।*"

अरिहंत भगवान को मेरा नमस्कार। अहा ! हे भगवान ! आप कितने महान हैं। आत्मा के अनंत गुणों को प्रकट करने के लिए आपने क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष आदि आत्मा के शत्रुओं का सर्वथा नाश किया है। अहंभाव को सर्वथा नष्टकर आप *तिन्नाणं तारयाणं* बन गये हैं। प्रभु ! आप स्वयं तो तिर गये और भव्य जीवों को तिरने का मार्ग भी बता गये। ऐसे अरिहंत भगवान आपको मेरा नमन हो। जो घाती और अघाती कर्मों को नष्टकर शाश्वत सुख में विचर रहे हैं, ऐसे सिद्ध भगवान को मेरा नमस्कार हो ! मेरे धर्मोपदेशक, धर्माचार्य, तारणहार, संसार रूपी कुएँ में से बाहर निकालने वाले, श्री धर्मघोष स्थविर को मेरा नमस्कार हो ! गुरुदेव को याद करते हुए आँख में आँसू आ गये कि 'अहो, परम उपकारी गुरुदेव ! आप मुझे न मिले होते तो इस पापी का क्या होता ?' शरीर के अंदर नसें टूट रही हैं, असह्य वेदना के साथ आत्मा का वेदन भी शुरू कर दिया।

ऐसे समय में यदि आत्मा उपयोग के घर में न रहे, विवेक भूल जाये तो संवर की राह में आश्रव हो जाए। और भी भान भूले तो गुरु के प्रति भी रोष उत्पन्न हो सकता है। 'गुरुदेव ! आप जानते थे कि यह आहार जीव और देह को अलग करनेवाला है, फिर भी मुझे परठने भेजा। निरवद्य स्थान पर एक बूँद डालने से वह भी सावद्य बन जाता है - यह क्या आपको पता नहीं हो गया था !' परन्तु धर्मरुचि अणगार यह विचार न करके अपने गुरु का महान उपकार मानते हैं। 'गुरुदेव ! आप भले ही मुझसे दूर हैं, परन्तु आपका स्थान तो मेरे अंतर में है।' देव-गुरु और धर्म, तीन तत्त्वों का मंथन करते हुए ऐसे उत्कृष्ट भाव आये कि जहर अमृत समान बन गया। दीक्षा ग्रहण करते समय धर्मघोष स्थविर से समस्त प्राणातिपात, समस्त मृषावाद, समस्त अदत्तादान, समस्त मैथुन और समस्त परिग्रह

का प्रत्याख्यान किया था। 'पहले महाव्रत में छकाय जीवों की हिंसा करूँगा नहीं, नहीं कराऊँगा और न करनेवाले को अनुमोदन दूँगा। दूसरे महाव्रत में सर्वथा असत्य बोलने का प्रत्याख्यान किया है। तीसरे महाव्रत में अदत्तादान लूँगा नहीं, दिलवाऊँगा नहीं और लेने वाले की अनुमोदना नहीं करूँगा। दाँत खोदने की सींक तक मालिक की आज्ञा के बिना साधू ग्रहण नहीं कर सकता। चौथे महाव्रत में सर्वथा अब्रह्म सेवन का प्रत्याख्यान किया है। मेरे ब्रह्मचर्य में कोई दोष नहीं लगाऊँगा। पाँचवें महाव्रत में भगवान की आज्ञा के अनुसार भंडोपगरण रखूँगा और जो रखूँगा उस पर मूर्छाभाव नहीं रखूँगा। ये पाँच महाव्रत और छठा रात्रिभोजन का सर्वथा प्रत्याख्यान किया है। पाँच समिति और तीन गुप्ति का पच्चक्खाण किया है। इन सबका मैंने शुद्ध रीति से पालन किया है। फिर भी यदि उसमें कोई दोष लगा हो, कोई भूल हुई हो, तो हे गुरुदेव ! आप वहाँ विराजित हैं, मैं यहाँ बैठा हूँ। पर आपके समक्ष, समस्त प्राणातिपात से समस्त परिग्रह तक यावज्जीवन प्रत्याख्यान करता हूँ। जीवन की अंतिम साँस तक स्कंधक की तरह शरीर का त्याग करता हूँ। त्रिविध-त्रिविध रूप से इस देह को वोसराता हूँ। मृत कलेवर में दो घड़ी पश्चात् जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। कलेवर को जलाये या गाड़े जाने पर सब जीवों का संहार हो जाता है। अतः जीवन के अंतिम साँस तक मेरी नश्वर काया को त्रिविध रूप में वोसराता हूँ। इस प्रकार संथारा का प्रत्याख्यान ले लिया। स्कंधक की तरह शरीर का त्याग करता हूँ - ऐसा कहा।

जब स्कंधक मुनि की चमड़ी उतारने का प्रसंग आया, तब वे चमड़ी उतारने वालों से कहते हैं, "भाई ! तुम लोग किसलिए घबड़ा रहे हो ? क्यों उदास होते हो ? राजा की आज्ञा के अनुसार तुमलोग अपना काम करो, बस इतना ध्यान रखना कि मेरे निमित्त से तुम्हें कोई हथियार न लग जाये !" कितनी क्षमा ! मारने वाले के प्रति भी कितना करुणाभाव ! मेरे निमित्त से किसी जीव को दुःख न हो। उस समय यदि खंधक मुनि ने कहा होता कि 'जाओ, अपने राजा से जाकर कहो कि यह मुनि आपका साला है। फिर आकर मेरी चमड़ी उतारना।' मुनि तो गाँव में पहली बार आये हैं। गाँव का पानी तक तो पीया नहीं, आहार की क्या बात है ?

शांति भरेलुं हृदय दया छे जेनी मांय,
मुक्तिने काजे देहने त्यागे, मोहने मारे लात,
धन्य धन्य खंधक मुनि, वंदन हजार वार।

बाजार से कोई भी चीज खरीदना हो तो, रुपया देने पर ही मिल सकती है। हमें मोक्ष लेना है तो उसका मूल्य देना चाहिए ना ? धर्मरुचि अणगार ने मोक्ष के लिए काया वोसरा दी । आपको एक फ्लैट लेना हो और उसकी पगड़ी डेढ़ लाख रुपये हो । कदाचित उतने रुपये आपके पास न हों तो किसीसे उधार ले लेंगे। फिर उसे चुकायेंगे भी ना ? यहाँ तो मोक्ष का बँगला लेना है । जिस बंगले में सुख, सुख और सिर्फ सुख है, दुःख का नामोनिशान नहीं । शरीर है तो उसके पीछे पाप करने पड़ते हैं । मुक्ति का माल सिर दाँव पर लगाने से मिलता है ।

खंधकमुनि चांडाल से कहते है कि "आप खुशी से राजाज्ञा का पालन कीजिए । मेरे निमित्त से आपको कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए ।" कितनी अनुकंपा ! वे सोचते है कि 'एक दिन तो देह छूटने वाली ही है ।' मुनि ध्यान में खड़े हैं और पुराने कपड़े जैसे फटते हैं वैसे उनकी चमड़ी चड़-चड़ करके उतार दी । मुनि का यह करुण दृश्य देख सूर्य-चंद्र तक फीके पड़ गये । पेड़ में बैठे पक्षी काँप उठे । अहो ! निर्दोष मुनि पर ऐसा जुल्म ! महान पुरुषों पर बिना कारण उपसर्ग आया तो पक्षी भी सहन नहीं कर सकते । खंधकमुनि तो विचार करते हैं कि 'यह उपसर्ग आया तो आत्मा का कल्याण जल्दी हो जायेगा ।' विशुद्ध परिणाम की धारा में चढ़ते क्षपक श्रेणी से बढ़कर केवल ज्ञान प्राप्तकर मोक्ष में पहुंच गये । धर्मरुचि अणगार भी यही विचार करते है । भयंकर वेदना में जरा भी दुःख नहीं, दुःख में उन्हें सुख का मार्ग नजर आता है ।

कल पंद्रह का धर है । आराधना के मंगल दिवस आये हुए हैं । अपनी आत्मा को जगाइए । कर्म के जाल को जलाने के लिए तप आवश्यक है । अपने यहाँ तप का मंडप बिछा गया है । पाँच बहनों नें तो तपस्या की मंगल शुरूआत कर दी है । संवत्सरी और ये मंगल दिन आत्मा के गुणों को खिलाने वाले हैं, कर्म के भार से हल्का बनाते हैं । अपनी आत्मा में नाद जगाइए । कर्म को चकनाचूर करने के लिए देह को तप रूपी अग्नि से प्रज्ज्वलित करना पड़ेगा । जिनकी शक्ति हो वे तप करें, संभव न हो तो तप करनेवालों की अनुमोदना कीजिए । तप की दलाली कीजिए । धर्मरुचि अणगार गुरुदेव की शरण ग्रहण कर आलोचना कर रहे हैं - आगे क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

राजा-रानी का संसार त्याग : राजा हरिषेण का मन संसार से विरक्त होने लगा था इसलिए उन्होंने वन में तापस रूप में रहने का निश्चय किया । रानी प्रीतिमती

ने बहुत समझाया पर अंत में वह भी उनके साथ चलने को तैयार हो गई । प्रीतिमती के मन में एक भाव था जो उसे असमंजस में डाल रहा था । उसे लग रहा था कि वह गर्भवती है । राजा से यदि कह दें तो उनके कर्त्तव्य मार्ग में बाधा आयेगी और कुछ समय के लिए स्वामी यहीं अटक जायेंगे । यह सोचकर उसने इस बारे में राजा से कुछ न कहा । कभी-कभी मानव के जीवन में वैराग्य का प्रकाश एकाएक चमक उठता है । परंतु यदि यह प्रकाश दुःख के प्रत्याघात के रूप में चमकता है तो दुःख दूर होते ही वैराग्य का भी शमन हो जाता है । राजा हरिषेण के जीवन में कोई दुःख न था । इतने सुख-वैभव के मध्य संसार त्याग की चेतना जागी थी जो अंतर में प्रकटे वैराग्य का प्रतीक थी ।

हरिषेण राजा का वैराग्य देखकर प्रीतिमती भी उनका साथ देने के लिए तैयार हो गई । वह जैनदर्शन की आराधक थी । समझती थी कि राजपाट, सत्ता, संपत्ति और संसार के प्रत्येक सुख नाशवंत है । परन्तु अपने दो माह के गर्भ के कारण चिंतित थी । राजा से कहने पर शुभ कार्य में अंतराय उपस्थित होगा सोचकर बात छुपा रखीं ।

दूसरे दिन राजा हरिषेण ने मंत्रियों के सम्मुख अपनी त्याग भावना के विचार रखे । मंत्रियों ने कहा, "महाराज ! अभी राजकुमार मात्र दो वर्ष के हैं । अतः हमारी विनती है कि राजकुमार को बड़ा होने दीजिए, तत्पश्चात् आप त्याग और तप का मार्ग स्वीकार कीजिए ।" परन्तु राजा अपने निर्णय पर दृढ है, अतः कहते हैं, "मंत्रीश्वर ! आयुष्य का भरोसा नहीं कि यह कब समाप्त हो जायेगा, इसके विश्वास में बैठे रहने में कोई सार नहीं है । यदि यह शीघ्र पूर्ण हो जाय तो इस उच्च अवतार में प्राप्त साधना का अमूल्य अवसर व्यर्थ चला जायेगा । संसार का समागम तो जीव को प्रत्येक जन्म में मिला है । जन्मोजन्म तक यदि इन्हीं संयोगों को संभालते रहेंगे तो फिर आत्मा का हित कब करेंगे ? इसलिए अब तो मैंने दृढ निश्चय कर लिया है कि तपोवन ही मेरा निवास होगा ।" राजकुमार धार का राज्याभिषेक कर देते हैं । "अब आपलोग ही उसके माता-पिता है । आप लोगों पर मुझे पूरा विश्वास है कि आप इसे योग्य शासक बनायेंगे ।"

राजा संसार त्याग कर रहे हैं, यह बात फैलते ही प्रजाजन राजा के दर्शन करने आने लगे । कोई मोहासक्त कहता, "राजकुमार छोटे हैं, उनके बड़े होने पर आप त्याग पथ पर जाइए ।" तो राजा कहते हैं, "काल राजा इस जिंदगी को कब झड़प लेंगे, हमें इसकी कल्पना तक नहीं है । इसलिए मंगलकार्य में विलंब करना जीवन में बहुत बड़ी हानि और भूल है ।" मंत्रियों ने कहा, "रानी साहिबा को तपोवन

में जाने के इतनी जल्दी क्यों है ?" राजा फिर कहते हैं कि "रानी तो सर्पदंश के पश्चात् मृत्यु के मुख से लौटी हैं। उन्हें तो मुझसे जल्दी त्याग लेना चाहिए। क्षण का भी विलंब नहीं करना चाहिए। मृत्यु के मुख से आत्मसाधना करने के लिए ही बची हैं। अतः उन्हें अपना आत्महित साधने दीजिए।"

अंत में मंत्रियों को बात माननी पड़ी। राजा-रानी ने एक सप्ताह में सारी तैयारियाँ करवा कर राजकुमार को सिंहासन पर बैठाया और सारा राज-काज मंत्रियों को सौंप दिया। प्रजाजनों में राजा-रानी के त्याग से करुणा की लहर दौड़ पड़ी। एक शुभ दिन, सर्प की केंचुली के समान संसार के सभी सुखों का त्यागकर दोनों राजमहल से निकल गये। अब क्या घटेगा आदि भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ३२

आषाढ़ कृष्ण ५, बुधवार | दिनांक - ६-८-७४

आत्मा का स्वरूप

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंतज्ञानी शास्त्रकार भगवंत ने जगत के समस्त जीवों को आत्मोन्नति और आत्मकल्याण का सच्चा मार्ग बताया और जीवों को स्याद्वाद शैली द्वारा समझाया कि "हे देवानुप्रियों ! सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चरित्र मोक्ष में जाने के अमूल्य साधन हैं।" घरबार, स्त्री-पुत्र, परिवार और धन में आसक्ति रखना, उसमें रचे पचे रहना आत्मा का स्वभाव नहीं है। जीव नाशवंत सुखों के पीछे दौड़ता रहता है पर ये सुख जीव को भव-भ्रमण कराते हैं। फिर भी जीव इन्हीं सुखों को पाने के लिए दौड़-धूप करता है, पर आत्मा के लिए कोई विचार नहीं करता। *"जिणवयण अणुरत्ता।"* जब जीव जिनेश्वर भगवान के वचनामृतों का अनुरागी बनेगा तब संसार का राग छूटेगा। तब संसार भंगार जैसा लगेगा। आपको तो संसार कंसार (मिष्ठान्न) जैसा मीठा लगता है। संसार के सुख परिणाम में दुःखों को न्योतने वाले हैं। पहले जो महापुरुष हो गये हैं, उनके सुख साधारण नहीं थे। शालिभद्र की बत्तीस और धन्नाजी की आठ देवांगना समान, सोलह शृंगार सजी स्त्रियाँ मौजुद थीं। इ

सबका त्याग किया, क्योंकि उन्हें संसार भंगार जैसा लगा । जिसे जिनेश्वर भगवान के वचन में राग हुआ, उसे संसार विष जैसा ही लगेगा ।

जिसे संसार विष के कटोरे जैसा लगेगा उसकी आत्मा क्या पुकारेगी ? जहाँ सिर्फ विष ही विष है वहाँ मैं क्यों रहूँ ? माता-पिता, पत्नी-पुत्र-परिवार से भी इष्ट और प्रिय शरीर भी मेरा नहीं है । संसार में रहते हुए भी अनित्य भावना से भावित होगा । यह शरीर अनित्य है । रोगों से भरा हुआ है । जीते जी इसके पर्याय परिवर्तित होते रहते हैं- ऐसे शरीर का मोह क्या रखना ? अशुचि से भरा क्लेश का भाजन और दुःख का स्थान है । ऐसे भाव आने पर जिनेश्वर भगवान के वचनामृतों पर राग होता है ।

इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि 'राग करो तो वीतराग वाणी पर करो जो आपको परित संसारी बना सकती है ।'

धर्मरुचि अणगार क्या विचार करते है ? शरीर अनित्य है, अशाश्वत है, पाँच-पच्चीस वर्ष में छूटने वाला ही है ।

श्वास लख्या जे जगमां लेवा, पूरा थाता ना रहेशे देवा,
भवसागर तूं पार करी ले, एकल आव्यो, एकल जावुं ।

आत्मा को जगाने की जरूरत है । चेतना जगाना अपने हाथ में है । चेतन देव से कहिए, 'हे चेतन देव ! परमात्मा बनने वाला तू ही है । परन्तु बाह्य में रहकर अंतरात्मा को भूल गया है । जहाँ तेरा नहीं है वहाँ अपना मानकर बैठ गया है । जहाँ 'मेरा' का भाव है वहाँ 'मार' खाना ही पड़ता है । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के नवमें अध्ययन में नमि राजर्षि ने अभी संयम लिया नहीं है । संसार में है पर नमि राजर्षि कैसे कहलाये ? क्योंकि संसार में रहते थे, पर उनका चेतनदेव जाग गया था ।

जनकराजा और सुखदेव का प्रसंग : वैष्णव धर्म में जनकराजा को जनक विदेही कहते थे । मिथिलानगरी के राजा थे जनक, परन्तु लोग उन्हें जनक विदेही के नाम से जानते थे । एक बार महर्षि व्यास ने अपने पुत्र शुकदेव से कहा, "संसार में रहते हुए विदेही दशा प्राप्त करनी हो, इसका ज्ञान पाना हो तो तू जनक विदेही के पास जा ।" शुकदेव विचार करते हैं कि 'मेरे पिता व्यास ऐसे महान त्यागी और धर्मधुरंधर है, फिर भी मुझे ज्ञान पाने के लिए जनक विदेही के पास क्यों भेजना चाहते हैं ?' शुकदेव, पिता की आज्ञानुसार मिथिलानगरी की ओर चले । पहले के संतान माता-पिता को देव समान '*मातृदेवो भव, पितृदेवो भव*' मानते थे । राजा महाराजाओं की भी अपनी प्रजा पर असीम कृपा होती थी । फिर भी संसार को भंगार मानकर छोड़ देते

पता पर स्वाद नहीं जाता ।' ऐसे ही वीतराग वाणी श्रवण करने के बाद उसका स्वाद नहीं जाना चाहिए । मिथ्यात्व जाने पर ही सम्यक्त्व आयेगा । अरे, अभी सम्यक्त्व प्राप्त हुआ नहीं है उसके पहले की दशा, योग्यता मिल जायेगी, जैसे सूर्योदय के समय एक किरण के आने पर ही प्रकाश फैलने लगता है । अज्ञान अंधकार नष्ट होने लगेगा । सम्यक्दर्शन आने पर सम्यक्ज्ञान तो साथ ही आता है । ज्ञान-दर्शन की ज्योति प्रकटे तो मिथ्यात्व रूपी अंधकार भाग जाता है । मिथ्यात्व जीव को सही, सच्चा समझने नहीं देता । सच्चा ज्ञान लेने के लिए शुकदेव को पिता व्यास ने जनक विदेही के पास भेजा । आपको किसी दिन विचार आता है कि 'मेरे पुत्र को गुरु के पास भेजूँ ताकि उसका भव सुधर जाए ।' यह संसार तो सुलगता दावानल है । आप स्वयं उसमें जल रहे हैं और अपने परिवार को भी जला रहे हैं ।

बंधुओं ! आज प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को अधिक से अधिक उन्नत बनाने की कामना करता है । कोई वैभवशाली बनने में जीवन की सफलता मानता है तो कोई मान-प्रतिष्ठा की प्राप्ति में, तो किसीको अधिक सुख भोग में ही अपने जीवन की सफलता और श्रेष्ठता प्रतीत होती है । ज्ञानी कहते हैं कि 'इन सब पदार्थों की प्राप्ति में जीवन की सफलता नहीं है ।' इन वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले की दृष्टि में शरीर मुख्य होता है और आत्मा गौण । वे आत्मा और शरीर को भिन्न नहीं मानते । ज्ञानियों की दृष्टि आत्मा के शाश्वत कल्याण के लिए विचार करती हैं । वह समझते है कि यह शरीर एक पिंजरा है और आत्मा रूपी हंस उसकी कैद में है ।

हंस का जीवित कारागार अशुचि का है अक्षय भंडार,
विविध व्याधियों का मंदिर, तन रोग शोक का मूल ।

ज्ञानियों ने कितना सुंदर बताया है ! अपवित्रता के अक्षय भंडार रूपी शरीर में शुद्ध स्वरूपी तथा अक्षय सुख और शाश्वत शान्ति प्राप्त करवानेवाला निष्पाप, निष्कलुष आत्मा रूपी हंस कैद है । इस शरीर के कारण आत्मा को शाश्वत सुख प्राप्त नहीं होता क्योंकि यह अनेक व्याधियों तथा विविध प्रकार के विषय-विकार, मोह, शोक का मूल कारण है । इसीके कारण मनुष्य आर्तध्यान, रौद्रध्यान में रत होकर आत्मा के लिए अनंत दुःख उत्पन्न करते हैं । इसीलिए ज्ञानी हमें चेतावनी देते हैं कि 'आप इस शरीर और संसार के प्रति राग का त्यागकर, अपनी आत्मा रूपी हंस के बार-बार नये शरीर का कैदी न बनना पड़े, ऐसी साधना कर लीजिए ।' भगवान महावीर स्वामी अपने पट्ट शिष्य गौतमस्वामी से कहते हैं -

*"बुध्धे परिनिव्वुडे चरे, गाम गए नगरे व संजए ।
सन्ती मग्गं च वहुए, समयं गोयम मा पमायए ।।"*

- उ. सू. अ-१०, गा-३६

"हे गौतम ! गाँव, नगर और जंगल कहीं भी रहा हुआ तू तत्त्वज्ञ शांत और संयत होकर मुनि धर्म का पालन कर । मोक्षमार्ग की ओर बढ़ने में समय मात्र का प्रमाद न कर ।"

भगवान ने कितना सुंदर और जीवों के लिए कल्याणकारी उपदेश दिया है कि 'हे आत्मा ! यदि आपको अपनी आत्मा रूपी हंस को भिन्न-भिन्न शरीरों की कैद से छुड़ाना है अथवा सदा के लिए आत्मा को शरीर से मुक्त बनाना है तो तत्त्वज्ञ बनकर संयममार्ग में विचरण करो । कषाय रूपी अग्नि से आत्मा को बचाने के लिए कषायों को शांत करके, सर्व पापों से दूर रहकर शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए तू प्रयत्न कर ।

शुकदेव पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके मिथिलानगरी के राजा के द्वार पर पहुँच गये । द्वारपाल से राजा से मिलने की मंशा बताकर उसने अपना परिचय दिया कि 'मैं व्यास का पुत्र शुकदेव हूँ । राजा जनक विदेही की आज्ञा हो तो अंदर आने दीजिए ।' राजा ने द्वारपाल से कहा कि 'उन्हें अभी वहीं खड़े रखो ।' एक अहोरात्रि व्यतीत हो गई, पर उन्हें यह ख्याल नहीं आया कि राजा न जाने किस काम में व्यस्त हैं, मुझे दिनभर से खड़े रखा । उन्हें तो एक ही लगन थी कि 'पिता ने ज्ञान प्राप्त करने भेजा है तो ज्ञान लिये बिना क्यों लोटूँ ?' इस प्रकार तीन दिन बीत गये, पर मन में जरा भी खेद नहीं । गुजराती में कहावत है कि 'उतावले आंबा न पाके ।' अर्थात् उतावली करने से आम पक नहीं जाते । शुकदेव भी कोई जल्दबाजी नहीं करते । नदियों का चाहे जितना पानी सागर में चला जाए, परन्तु सागर कभी उछलता नहीं । शुकदेव की गंभीरता भी सागर जैसी है, जिसमें गुण रूपी नदियाँ भरी हुई हैं । शुकदेव तीन दिन तक राजभवन के द्वार पर खड़े रहे, जनक विदेही ने उन्हें अंदर नहीं बुलाया, फिर भी उनके मुख पर क्रोध की कोई रेखा तक नजर नहीं आ रही थी । राजा ने भी शुकदेव की परीक्षा करने के लिए दरवाजे पर तीन दिन तक खड़ा रखा ।

चौथे दिन राजा ने शुकदेव को महल के अंदर बुलवाया । अंदर जाकर शुकदेव ने देखा, राजा स्वर्णजड़ित सिंहासन पर विराजमान हैं । उनकी नवयौवना स्त्रियाँ, कोई पंखा झल रही थी, कोई उनकी सेवा में मग्न थी । कुल मिलाकर राजा के

चारों ओर ऐसोआराम के इतने साधन पड़े हुए थे कि लगता था राजा अनेक भोगों में मस्त हैं । इस भोगी वातावरण को देख शुकदेव के मन में घृणा उत्पन्न हुई और मन में सोचने लगे कि 'पिताजी ने मुझे किस नरक-कुंड में भेज दिया ! मेरे पिता कितने सरल है कि ऐसे विलासी राजा को परम ज्ञानी मानते हैं ! मैं ज्ञान पाने के लिए तीन दिन इसके दरवाजे पर खड़ा रहा, लेकिन यह तो भोग का कीड़ा है । यहाँ से मुझे क्या ज्ञान मिलेगा ?' मस्तिष्क और हृदय दोनों का प्रतिबिम्ब चेहरे पर पड़ता है । राजा शुकदेव के चेहरे से समझ गये कि इनके मुख पर खिन्नता है । राजा उनसे कुछ कहने जा रहे थे कि इतने में बाहर से कर्मचारी दौड़ता हुआ आया और उदास होकर कहने लगा, "महाराज ! मिथिलानगरी में आग फूट पड़ा है और वह राजभवन की ओर तेजी से बढ़ रहा है ।" शुकदेव यह सुनकर विचार करते हैं कि 'मेरा दंड और कमंडल बाहर रख आया हूँ, कहीं जल ना जाए !' यह सोचकर बाहर जाने की तैयारी करते है कि महाराज के शब्द कानों में पड़े । आग लगने का समाचार लाने वाले दूत से वे कह रहे थे -

"अनन्तश्चास्ति में वित्तं, मन्ये नास्ति हि किंचन ।
मिथिलायाँ प्रदग्धायां, न मे दह्यति किंचन ।।"

मेरा आत्म रूपी धन अनंत है, उसका अंत कभी नहीं हो सकता, मिथिलानगरी के जलने से मेरा कुछ नहीं जलता । जैसे नमि राजर्षि ने कहा था कि *"न मे डज्झइ किंचणं ।"* मेरा कुछ नहीं जल रहा है । जनक विदेही तो आराम से बैठे है, पर शुकदेव अपने दंड-कमंडल के लिए परेशान हो रहे हैं । राजा जनक का जवाब सुनकर शुकदेव स्तब्ध रह गये । 'अहो ! मैंने तो बाह्य त्याग किया है, जबकि राजा ने आभ्यंतर त्याग किया है । ओह ! मिथिलानगरी के जलने पर भी राजा का रोआँ तक नहीं फड़कता । कौन त्यागी है ? वे या मैं ? वे संसार में रहते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होते, उनका त्याग अंतर का है ।' यह सम्यक्दृष्टि की लज्जत है । अनंतानुबंधी चौकड़ी, सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय, इन सात प्रकृतियों का क्षय, उपशम या क्षयोपशम करने पर जीव चौथे गुणस्थानक में आता है । एक बार जीव ने चौथे गुणस्थानक का स्पर्श कर लिया तो चौदहवें गुणस्थानक में पहुँचना निश्चित हो जाता है, भले ही कितना समय लगे ।

जनक विदेही ने कह दिया कि 'मिथिलानगरी के जलने से मेरा कुछ जलता नहीं ।' देह में रहते हुए विदेही दशा प्राप्त कर ली थी । राजा जनक के वचन सुन कर शुकदेव को ज्ञान हो गया ।

करना पड़ता।" भरत राम के पीछे दौड़े। राम ने उनसे कहा, "प्रिय भरत ! तू राजगद्दी संभाल। बनवास तुझे नहीं वरन् मुझे मिला है। यदि तू राज्य नहीं संभालेगा तो पितृवचन भंग होगा। अतः तू राज्य की देखभाल कर।" भाई के आग्रह से, पितृभक्ति के वश होकर भरत पीछे फिरा, पर उसे अयोध्या सूनी लगने लगी। इसी प्रकार हरिषेण और प्रीतिमती प्रजा से लौटने की विनती करते हैं। एक कोस चलने पर बहुत आग्रह से प्रजाजनों को लौटाया। राजा और रानी आगे बढ़े। यह मार्ग राज-मार्ग न था, वन-मार्ग था। रास्ते में चलते हुए काँटे चुभते हैं, कहीं घनी झाड़ियाँ हैं। बाघ-सिंह की भयंकर आवाजें आती हैं, फिर भी हँसते चेहरे से चले जा रहे है। दस कोस रास्ता तय करेंगे और क्या होगा आदि भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ३३

श्रावण कृष्ण ६, गुरुवार	दिनांक : ८-८-७४

मानवता की महक

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

द्रौपदी का अधिकार : करुणासागर, शासन सम्राट वीर भगवान ने 'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन में नागेश्री का अधिकार फरमाया है। वीतराग वाणी श्रवण करने की जिज्ञासा जागृत हो तो जीवन में जागृति आये। जैसे चातक पक्षी, कितनी ही कठिन परिस्थिति या कठोर प्रसंग आ जाये, जमीन पर गिरा हुआ पानी नहीं पीता, सिर्फ वर्षा के बरसते जल को ही मुँह में ग्रहण करता है। जब बादल घिरते है, मेघ गर्जते है, तब उसे बहुत आनन्द होता है कि अब मुझे मेरा पानी मिलेगा। उसी प्रकार **'वाणी तो घनेरी भली पण वीतराग तुल्य नहीं कोय।'** दुनिया में वाणी तो बहुत हैं; परन्तु वीतराग वाणी के समान कोई भी नहीं। चातक जैसी आत्माएँ वीतराग कथित वाणी उत्साह से श्रवण करते हैं। वाणी सुनते ही हृदय के भाव उमड़ने लगते हैं। वीतराग वाणी सुनकर, उस पर श्रद्धा, प्रतीति होने से कर्म के जत्थे टूट जाते हैं।

धर्मरुचि अणगार को यथार्थ श्रद्धा हुई है। मुनि ने अघोर तप किया है, परन्तु तप को ताप नहीं बनने दिया। तप करते हुए साधना को नहीं भूले। साधना की सीढ़ी पर दृढता से बढ़े। तप के साथ दिल में लबालब क्षमा भरी हुई है। ज्ञानी कहते हैं कि 'साधना तो वही है जो केवल तन और मन तक नहीं बल्कि उससे आगे जाकर आत्मा तक पहुँचे।' तन और मन तक साधना करनेवाले तो बहुतेरे है। कितने ही लकड़ी के बेर, पत्ते, फल-फूल खाकर जीने वाले हैं। नदी किनारे रहने वाले कुछ शैवाल खाकर जीते है। इस रीति से वे शरीर को सुखाते हैं। परन्तु उनका यह तप अज्ञान के साथ होने के कारण बाल-तप हैं। उनकी साधना तन और मन तक पहुँची है, परन्तु इसे पार करके आत्मा तक नहीं पहुँची। धर्मरुचि अणगार की साधना आत्मा तक पहुँच गई थी। यदि उनकी साधना आत्मा तक नहीं पहुँची होती तो वे कड़वी तुंबी का आहार गट-गट न पीते, अपने पेट में न परठते। बल्कि आहार को परठ देते और यह सोचते कि साधू जीवित रहेगा तो अनेक जीवों को तारेगा और चींटियों के प्रति करुणा भाव मन में न लाते। ज्ञानी कहते हैं कि 'पहले तू अपनी आत्मा को सुधार, फिर अन्य जीवों को सुधारने की बात करना।'

धर्मरुचि अणगार की साधना तन-मन से आत्मा तक पहुँच गई है। धर्म का रंग उनकी रग-रग में रम रहा है, इसलिए अन्य जीवों की रक्षा के लिए अपने प्राण का बलिदान दे दिया। धर्म का तात्पर्य क्या है ? धर्म कहीं बाहर नहीं है, आत्मा के अंदर ही है। '*वत्थु सहावो धम्मो।*' वस्तु का अपना स्वभाव ही धर्म है, जैसे पानी का धर्म ठंडक, अग्नि का उष्णता है, उसी प्रकार मनुष्य का स्वभाव मनुष्यत्व का है। जिसमें मानवता नहीं आई, उनमें मनुष्यत्व नहीं है। जबतक मनुष्यत्व नहीं है तबतक साधना आत्मा तक नहीं पहुँचती। मनुष्य किसे कहते है और मनुष्यत्व किसे कह सकते है ? जो अपने स्वार्थ की बात करता है, वह मनुष्य है। जो जगत के प्रत्येक प्राणी के कल्याण का ध्येय रखता है, अन्य जीवों के लिए अपने प्राण कुर्बान करने तैयार हो जाता है, उसे मनुष्यत्व कहा जाता है। जब-तक मनुष्य अपने स्वभाव में स्थिर नहीं बनेगा तबतक उसका जीवन कल्याणमय और स्वस्थ नहीं बन सकेगा, और जबतक जीवन स्वस्थ नहीं होगा तबतक धर्माराधना करना संभव नहीं। मानवता के बिना मानव का जीवन पशु के समान है। जैसे केंचुआ मिट्टी में जन्म लेता है, मिट्टी खाता है और मिट्टी में मर जाता है, उसी तरह यदि मानव संसार रूपी मिट्टी में जन्मा और मरा, कोई भी परोपकार

का कार्य नहीं किया, आत्मसाधना नहीं साधी, तो उसमें और केंचुएं में क्या अंतर है ?

धर्म यानी क्या है ? अहिंसा, संयम और तप तो धर्म है। जैनदर्शन के अनुसार धर्म का आधार सम्यक्दर्शन है। सम्यक्दर्शन होने पर ही अहिंसा, संयम और तप का पालन संभव हो सकता है। सम्यक्दर्शन के अभाव में अहिंसा, संयम और तप रूपी धर्म नहीं टिक सकता। किसी हरे-भरे फल-फूलों से लदे वृक्ष को देखकर कभी मन में यह विचार किया कि यह सुंदर वृक्ष इतना समृद्ध कैसे दिखाई पड़ता है ? वृक्ष की समृद्धि का प्रमुख कारण उसका ऊपरी भाग नहीं बल्कि जड़ है, जो जमीन में गहरे तक जमी हुई है। यदि वृक्ष का मूल गहरे तक जमा हुआ न हो तो आँधी के झोंकों से गिर पड़ेगा। इसी प्रकार साधना का वृक्ष तभी तक हरा-भरा रहता है, जब तक सम्यक्दर्शन का मूल मजबूत है। जबतक सम्यक्दर्शन का मूल स्थिर और अंतर में है, तबतक अहिंसा, संयम और तप की साधना निरन्तर वृद्धि पायेगी और धीरे-धीरे मोक्ष तक भी उसका विकास हो सकेगा। परन्तु सम्यक्दर्शन के अभाव में साधना का वृक्ष स्थिर नहीं रह सकता। सम्यक्दर्शन के अभाव में विराट साधना तो क्या अल्प साधना भी सफल नहीं हो सकती। जीवन का एक मोर्चा नहीं है, हजार-हजार मोर्चे है। कोई काम के, कोई क्रोध के, कोई लोभ के। इन सभी मोर्चों रूपी युद्ध में आप तभी सफल हो सकेंगे जब आपका संबंध अपने मूल केन्द्र सम्यक्दर्शन से जुड़ा हुआ होगा। सम्यक्दर्शन अपने जीवन के युद्ध का वह मोर्चा है जहाँ सुरक्षित खड़े रहकर हम अपने जीवन की दुर्बलताओं पर घातक प्रहार करते हैं। जीवन के एक-एक दोष को देखकर, जानकर उसका संशोधन, परिमार्जन करना, आत्मा को विजय की ओर ले जाने का सर्वाधिक प्रशस्त मार्ग है। ज्ञानवान होना और चारित्रवान होना उत्तम है, पर उससे पहले सम्यक्दर्शनधारी बनना आवश्यक है। सम्यक्दर्शन की निर्मल ज्योति न हो तो सामान्य ज्ञान क्या, पूर्वों का ज्ञान भी दुर्गति से हमारी रक्षा नहीं कर सकेगा। सम्यक्दर्शन के अभाव में पूर्वधर ज्ञानी भी मरकर नरक में जा सकता है।

बंधुओं ! तप बहुत किया, जाप बहुत किया, पर सम्यक्दर्शन के अभाव में यह सब एक प्रकार के नाटक का खेल बनकर रह गया। क्योंकि जबतक धर्म केवल तन तक सीमित रहता है, उसका प्रवेश आत्मा में नहीं होता, तबतक व्यवहार दृष्टि से वह त्याग नहीं है। इस प्रकार का व्यवहार एक बार, अनेक बार क्या असंख्य बार कर चुके है, पर आत्मा में कोई परिवर्तन आया ? साधक आत्मा को यह विचार

करना चाहिए कि 'साधना किसके लिए कर रहे है ? शरीर के लिए या आत्मा के लिए ?' (श्रोताओं में से आवाज : 'आत्मा के लिए ।') शरीर की साधना की कोई विशेषता नहीं है, विशेषता आत्मसाधना की है । आत्मा का स्वभाव विभाव दशा से मुक्त होकर स्वभाव में स्थिर होने का है । स्वभाव में स्थिर रहकर जो साधना करेंगे वे कर्म की निर्जरा करेंगे । मोक्ष की ओर साधना करते हुए सहज रूप से पुण्य बँध जायें तो हानिकारक नहीं है । ये पुण्य मोक्ष के द्वार तक ले जाने में सहायक बनेंगे । परन्तु पुण्य की इच्छा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि पुण्य का खेल इतना चमकदार होता है कि साधक इस प्रकाश के आगे उस दिव्य प्रकाश को देख नहीं पाता । संसारी आत्मा पाप करते हुए भी पुण्य के फल की इच्छा रखता है, क्योंकि पुण्य के फल भोगने में जीव को मीठे लगते हैं । सुख की अभिलाषा में संसारी जीव इतना मुग्ध बन जाता है कि उसे सुख के सिवाय अन्य कुछ अच्छा नहीं लगता । भले ही इस सुख के पीछे भयंकर दुःख हो । यही आत्मा की अज्ञान दशा है । संसारी आत्मा दुःख को छोड़ना और सुख को पकड़ना चाहता है, जबकि ज्ञानी और तत्त्वदर्शी आत्मा सुख को भी बँधन मानता है । बँधन को बँधन समझना ही सबसे बड़ा सम्यक्‌दर्शन है । सम्यक्‌दर्शन के अभाव में आत्मा अनंतकाल से भटकता रहा है और भटकता रहेगा ।

आपके सामने दो तत्त्व हैं - एक धर्म और दूसरा धन । इन दोनों में से आपको क्या प्रिय है ? सही कहिएगा । (श्रोताओं में से आवाज : 'आज तो जीव को धर्म से अधिक धन प्रिय है ।') संतान जितनी प्रिय है, उतने संत नहीं है और धन जितना प्रिय है, उतना धर्म नहीं । हम भी समझते है कि आपके सांसारिक आचार-व्यवहार में धन की जरूरत होती है । परन्तु आपको तो इतना मिल गया है कि पोता तक आराम से खाये । फिर भी आपकी भूख कम नहीं होती । तृष्णा की आग नहीं बुझती । धर्म की सत्ता होने पर भी वह बाहर से दिखाई नहीं पड़ती । धन भौतिक जीवन की सतह पर दिख जाता है । इसीलिए संसारी जीवों को धर्म की अपेक्षा धन की प्रतीति अधिक होती है । जिस प्रकार वृक्ष का बीज दिखाई नहीं देता, पर वृक्ष के बनने से ज्ञात होता है, उसी प्रकार धर्म भले ही दिखाई न देता हो, पर धर्म का शुभ और शुद्ध परिणाम तो अवश्य मिलता है । धर्म का बीज इतना छोटा है कि उसे देखने के लिए ऊपर की आँख नहीं बल्कि अंतर की आँखें चाहिए । आज के भौतिकवादी युग में मानव धर्म को भूलकर धन की पूजा कर रहा है ।

आज का मानव अहंकार और ममकार में डूब गया है । अहंकार और ममकार का सर्प जबतक मानव मन में कुंडली मारे बैठा है, तबतक जिंदगी के हर मार्ग पर खतरा ही खतरा है । धर्म तत्त्व हमें समझाता है कि 'अहंकार छोड़ो और नम्रता को धारण करो । ममता को छोड़ो और अनासक्ति को ग्रहण करो ।' एक के पास धन का ढेर है और दूसरे के पास खाने के लिए दाना तक नहीं । धनिक को धन का अभिमान है तो गरीब को अपनी गरीबी का दीनभाव । इनसे बचने का मार्ग धर्म ही बता सकता है । धर्म किसका ? शरीर का या मन का ? ज्ञानी पुरुष इसका समाधान करते हुए समझाते हैं कि 'तन की भूख मर्यादित होती है जो आसानी से मिटाई जा सकती है । परन्तु मन की भूख अगाध है ।' तन के भूख की दवा धन हो सकती है, पर मन के भूख की दवा तो धर्म ही है । इसीलिए धन की अपेक्षा धर्म महान है । जबतक आपके मन में धन कीमती रहेगा, तबतक धर्म की महिमा समझ में नहीं आयेगी । धन के प्रति आसक्ति जितनी अधिक होगी आत्मा उतना ही सत्य से दूर रहेगा । आज मानव की कितनी विकट अज्ञान दशा है कि रत्न तो लूट जाने देता है और कौड़ी को संभाल कर रखता है । धन कभी भी जीव की रक्षा नहीं कर सकेगा, धर्म ही जीव की रक्षा करेगा । आत्मा को खोकर यदि संसार का साम्राज्य प्राप्त किया तो क्या पाया ? अतः धर्म की रक्षा के लिए आत्मा को समझने की आवश्यकता है । जीव को ज्ञात नहीं है कि यहाँ से मरकर कहाँ जायेंगे ? फिर भी निश्चिंत होकर बैठा हुआ है । अखबार में रेड पड़ने की खबर पढ़कर आकुल-व्याकुल हो जाते हैं और अपना माल छिपाने के लिए प्रिय-परिचितों के यहाँ रख आते है । कभी यह व्याकुलता होती है कि कालराजा आकर कब मुझे अपना आहार बना लेगा, तो जीवन में कुछ कर लें । ऐसे विचार नहीं सूझते, इसलिए जीव अनंतकाल से भटक रहा है ।

अकबर और बीरबल का प्रसंग : अकबर बादशाह के समय का एक प्रसंग है । बादशाह महल में सो रहे थे । नींद खुलने पर उन्हें लगा कि अभी रात थोड़ी बाकी है । सुबह होने में थोड़ी देर है । उसी समय राजमार्ग से एक लड़की के रोने की आवाज सुनाई पड़ी । राजा सोचने लगे, 'यह लड़की कौन है ? और प्रभात वेला में रो क्यों रही है ?' पूछने पर मालूम हुआ कि लड़की का विवाह हुआ और अब अपने माता-पिता से बिछड़ कर लड़की ससुराल जा रही है । जँवाई उसे लेने आये हैं । इसलिए वह अपने माता-पिता, सगे-स्नेहियों से विदा ले रही है । आज तो रोने का रिवाज खत्म हो गया है (हँसी) । यह दृश्य देख बादशाह सोचने लगे कि 'जँवाई बहुत खराब होते हैं, बेचारी लड़की को इस प्रकार रुलाते हैं ।' अतः

संसार में जितने जँवाई हैं, उन्हें मार डाला जाये तो कभी भी किसी लड़की का अपने माता-पिता से वियोग नहीं होगा और रोने का प्रसंग भी नहीं आयेगा।'

सुबह राजसभा में बादशाह ने बीरबल को बुलाकर कहा, "मेरे राज्य में जितने जँवाई है सबको सूली पर चढ़ा दीजिए।" बादशाह का हुक्म सुनकर सब आश्चर्य-चकित एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। बीरबल ने राजा की आज्ञा सुनकर राज्य के बाहर एक विशाल मैदान में सूली खुदवाने की शुरूआत की। जब कार्य पूर्ण हुआ तो बीरबल ने कहा, "जहांपनाह ! आपकी आज्ञानुसार सब सूली तैयार हो गयी है, आप निरीक्षण करने पधारिए।" बादशाह देखने गये। देखकर चकित हुए कि मनुष्य-मनुष्य में तो अंतर होता है, परन्तु सूली-सूली में भी अंतर है। कितनी ही सूलियाँ सोने की, कितनी चाँदी की और कितनी लोहे की भी थीं। बीरबल की बुद्धि को समझना सरल काम नहीं था। आखिर बादशाह ने पूछा, "सूली सोने, चाँदी और लोहे की किसलिए है ?"

बीरबल ने विनयपूर्वक मीठी भाषा में कहा, "जहांपनाह ! सूली खुदवाते समय, मैंने सोचा कि पद और प्रतिष्ठा का भी ध्यान रखना चाहिए। इसलिए सोने, चाँदी और लोहे की सूलियाँ बनवायी। आप भी किसीके जँवाई हैं, मैं भी किसीका जँवाई हूँ। आपका, अपना और सभाजनों का ध्यान रखकर मैंने आपके तथा अन्य सामंत राजाओं के लिए सोने की, मेरे तथा अन्य मंत्रियों के लिए चाँदी की तथा सामान्य जनता के लिए लोहे की सूलियाँ बनवायी।" देखिए बीरबल की बुद्धि ! बीरबल की बात सुनकर समस्त दरबार हँस पड़ा। बादशाह भी हँसने लगे। परन्तु साथ ही बोले, "बीरबल। यह कैसा तमाशा है ? मौत भी सोना-चाँदी के भेद से ! मौत तो मौत ही है। सूली चाहे सोने की हो या चाँदी की, पर फाँसी तो फाँसी ही है।" बीरबल की बुद्धि ने जँवाइयों को सूली पर चढ़ाने का हुक्म रद्द करवाया। इस दृष्टांत से हमें क्या समझना है ? जिस तरह पाप बँधन है, उसी तरह पुण्य भी बँधन है। पाप लोहे की सूली है तो पुण्य सोने की। दोनों का कार्य एक ही है। फिर भी मोह में मूढ़ बना हुआ जीव पुण्य के बँधन पाकर प्रसन्न होता है और विचार करता है कि मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि मुझे लोहे के बदले सोने की सूली मिली है। जबकि ज्ञानी की दृष्टि में लोहे की सूली जैसे मृत्यु का कारण है वैसे ही सोने की सूली भी मृत्यु का कारण है। इतना ही है कि पुण्य जीव को आत्मसाधना में आगे बढ़ने में सहायक होता है, पर अंत में तो इसे भी छोड़ना ही है। महापुरुषों के यहाँ पुण्योदय से असीम संपत्ति थी, फिर भी वे उसे छोड़कर

निकल पड़े । क्योंकि उन्हें वे बंधन रूप लगते थे । इस बंधन को छोड़ा तो वे जगत में पूजनीय बने और शाश्वत सुख के स्वामी बन गये ।

बुद्धिशाली बीरबल में यदि समझदारी और विवेक न होता तो राजा की आज्ञा से कितने जीवों का घात हो जाता ! कर्म जो करता है उसे ही भोगना पड़ता है । अतः पाप से पीछे हटकर आत्मा की ओर मुड़िए । जब बहिर्भाव छूटेगा और अन्तर्भाव आयेगा तब दुश्मन दुश्मन नहीं दिखेंगे । राम शत्रु के भी हृदय में रहते थे । आप अपने मित्र के हृदय में भी हैं क्या ? जब लंकापति रावण के साथ खूँखार युद्ध हो रहा था तब एकाएक लक्ष्मणजी गिर पड़े और सेना में हाहाकार मच गया । उस समय में सूर्यास्त के पश्चात् युद्ध नहीं होता था । रामचंद्र के आघात का कोई पार न था । उनका प्राणप्रिय लक्ष्मण गिरा पड़ा था, सारे उपाय व्यर्थ हो रहे थे । अंत में विशल्या का स्नानजल उपयोगी हुआ । यह पानी छिड़कते ही लक्ष्मण उठ बैठे । विशल्या का स्नान जल अभी बहुत सा बचा हुआ था, इसलिए रामचंद्रजी ने हुक्म दिया कि 'यह जल रावण की सेना में बेहोश हुए सैनिकों के लिए भिजवा दो ।' ऐसे थे राम ! उनके हृदय में शत्रु रहते थे और शत्रुओं के हृदय में श्रीराम थे । राम तो राम ही थे । भरत को राज्य दिलवाने के लिए, राम को वनवास दिलवाने में निमित्त बनी कैकेयी भी 'बेटा राम' कहकर चीत्कार कर उठती थी । हम मित्र के हृदय में बसते है और राम शत्रु के हृदय में बसते थे । राम के लिए शत्रु और मित्र दोनों समान थे ।

धर्मरुचि अणगार के हृदय में भी जीवों के प्रति मैत्री भाव भरा हुआ है, करुणा की धारा बह रही है । क्षमावंत मुनि ने अन्य जीवों को अभयदान देने के लिए अपनी काया का त्याग कर दिया । पवित्र, क्षमामूर्ति, धर्मरुचि अणगार है, जिनका वास गुरु के अंतर में था, जिन्होंने अपनी काया गुरु को अर्पित कर दी । उन गुरुजी को भी चिंता होने लगी कि मेरा अंतेवासी शिष्य धर्मरुचि अणगार आहार परठने के लिए गया । इतना समय व्यतीत हो गया, अब तक वह लौटा क्यों नहीं ? यह विचार कर वे अन्य साधुओं को बुलायेंगे, वहाँ क्या होगा, आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

राजा हरिषेण और रानी प्रीतिमती संपूर्ण भोग को त्यागकर चल पड़े । पहले के लोग कर्मशूर होने के साथ-साथ धर्म में भी शूर होते थे । अनित्य विषय और स्वजन एकाएक कब जीव को छोड़ देंगे, उसके पहले जीव उनका त्याग कर दे, इसीमें बुद्धिमानी है और शक्ति का सदुपयोग है । दोनों ने चलते हुए दस कोस

का रास्ता पार किया और कुलपति के तपोवन में तापस और तापसी के रूप में दाखिल हो गये। इस वनवास का जीवन अर्थात् महल की समस्त सुविधाजनक अनुकूलताओं से रहित जीवन। इतना गजब परिवर्तन एकाएक कैसे अपनाया जा सकता है? आपलोगों को सुनकर भी लगेगा कि इतना बड़ा त्याग एकदम कैसे किया जा सकता है? परन्तु आज नजर के सामने दिखाई पड़ता है कि हर सुख-सुविधा होने पर भी सब छोड़कर आदमी अचानक मरता है ना? तब क्या उसके लिए परलोक में सब सुख-सुविधाएँ तैयार मिलती हैं? एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय गति तक के अवतार में तो दुःखों का ढेर है। नारकी में दुःखों का पार नहीं। मानव जन्म में भी पहले नौ महीने गर्भ की कैद में रहना पड़ता है। देव भव कदाचित सुखी मानो, तो यह भी कहाँ झट मिल जाता है? मानव जो परलोक के दुःख का विचार करे और उसे नजरों के समक्ष रखे तो राजशाही सुख-सुविधा का त्याग करते समय जरा भी खिन्नता न हो। अरे जब कर्म रूठते हैं, पुण्य में खोट आती है, तब जीवन की सुख-सुविधाओं के जाने पर दरिद्र अवस्था नहीं आ जाती? अतः स्वेच्छा से त्याग करके, मन को विरक्त कर लेने से कोई दुःख नहीं होता।

राजा हरिषेण और रानी प्रीतिमती तपोवन में तप की मौज में, विश्वभूतिमुनि की उपासना करते है। हरिषेण राजा तापसों में रहते हैं और प्रीतिमती को तापसियों के हाथ सौंप दिया। वहाँ तत्त्व श्रवण आदि ज्ञानाभ्यास कर रहे हैं। उसमें एक दुःखद घटना सम्मुख आ गई।

कुछ समयांतर रानी के तन, गर्भ चिह्न दरसाय,
पति पूछे यह अनर्थ कैसा, अब किम लाज रहाय हो... श्रोता...

तपस्या में रत रहते हुए भी रानी प्रीतिमती का पाँच माह का गर्भ दिखने लगा। तपोवन में यह कितना लज्जास्पद है। राजा हरिषेण ने ब्रह्मचर्य भंग किया नहीं और उन्हें विश्वास है कि संसारी जीवन में भी जिस रानी ने सदाचार पालन किया है, वह यहाँ तापस जैसे उच्च जीवन में भली सदाचार का भंग क्या करेगी? अब राजा रानी से ऐसा होने का कारण पूछेंगे और क्या जवाब मिलेगा आदि भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ३४

श्रावण कृष्णा ७, शुक्रवार | दिनांक : ९-८-७४

धर्म का जयघोष

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

द्रौपदी का अधिकार : अनंत करुणासागर, शासन सम्राट, वीर भगवान ने 'ज्ञाताजी सूत्र' के १६वें अध्ययन में भाव समझाया है कि "जिसे आत्मकल्याण की छटपटाहट जागी है उस आत्मा का हृदय वीतराग वाणी सुनते ही खिल उठता है।" धर्मरुचि अणगार की बात चल रही है। ऐसे आत्मार्थी साधक का उदाहरण सदैव दिल में रखने योग्य है। धर्मरुचि अणगार ने जीवों की रक्षा में लाभ देखा, परन्तु देह का राग नहीं रखा। शरीर से ममत्व भाव छोड़ दिया। भगवान फ़रमाते हैं कि "संयम- मार्ग में ऐसा कोई प्रसंग आ जाय तो तू संयम की रक्षा करना। महाव्रत को सुरक्षित रखना।" धर्मरुचि अणगार ने हँसते चेहरे जीवों की रक्षा की खातिर देह का त्याग किया। क्योंकि -

सहननी आवडत होय तो दुःखमां पण राहत छे,
हृदय भोगवी जाणे तो दुःख पण एक दौलत छे।

धर्मरुचि अणगार में सहने की क्षमता थी, इसीलिए कड़वा आहार हँसते हुए ग्रहण कर लिया। यदि सहनशक्ति न होती तो आर्तध्यान होता। अतः जो कदम बढ़ाइए, पूरी सावधानी के साथ बढ़ाइए। जब संत दीक्षा लेने का मन बनाते हैं, तब माता-पिता संयम-मार्ग की कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए उन्हें समझाते हैं कि यह पथ विकट है, इस राह में बाइस प्रकार के परिषह सहन करने पड़ेंगे। बहुत प्रकार से कसौटी करके तब उन्हें आज्ञा देते हुए कहते, 'पुत्र ! शासन को उज्ज्वल बनाना, कभी कलंकित न होने देना।' धर्मरुचि अणगार ने जहर को पचा लिया। असह्य वेदना होने लगी, पर आत्मा से कहते हैं कि 'तू शरीर से भिन्न है। कर्म ने तुझे देह रूपी पिंजरे में कैद कर दिया है। आज कितना मंगल दिन है कि इस पिंजरे से मुक्त होने का समय आ गया।' मरण की वेदना जन्म से अनंत गुना अधिक होती है। अभी तीर्थंकर और अरिहंत परमात्मा नहीं है, परन्तु जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है, वह वीतराग की आज्ञा का पालन करता है। क्योंकि

गुरुआज्ञा में भगवान की आज्ञा का समावेश हो जाता है। गुरु वीतराग वाणी के अनुसार ही आज्ञा देते है। धर्मरुचि अणगार ने गुरुआज्ञा समझकर अपने देह का त्याग किया। आलोचना, प्रतिक्रमण, निंदा, गर्हा करके निःशल्य होकर, आत्मसमाधि में लीन बने और आयुष्य पूर्ण किया।

तएणं ते धम्मघोसा थेरा धम्मरुइ अणगारं चिरगयं जाणित्ता समणे निग्गंथे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी।

धर्मघोष स्थविर ने धर्मरुचि अणगार को बहुत समय से बाहर गया जानकर अन्य श्रमणों को बुलाया। शिष्य गोचरी के लिए, स्थंडिल के लिए या किसी भी कारण से उपाश्रय के बाहर निकले, तो गुरु की आज्ञा के बिना जाने की छूट नहीं है। धर्मघोष स्थविर आत्मार्थी जीव है। भले ही केवली नहीं हैं, परन्तु उनका मतिज्ञान और श्रुतज्ञान बहुत निर्मल है। अपने श्रमणों को बुलाकर कहते हैं, "हे मेरे श्रमण ! हे देवानुप्रियों ! अघोर तपस्वी, मेरे अंतेवासी धर्मरुचि अणगार

"मासखमण पारणगंसि सालइयस्स जावगाढस्स णिसिरणट्ठयाए वहिया निग्गयाए चिरगए तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ?"

मासखमण के पारणा के दिन तिक्त कड़वी तुंबी का साग आहार के लिए लाये थे। यह जहर से भरा साग हलाहल जैसा था। उन्हें मैंने उस साग को निरवद्य स्थान पर परठने की आज्ञा दी थी। परठने के लिए गये तबसे बहुत समय व्यतीत हो गया, पर वे लौटे नहीं है।" इतना बोलते-बोलते उनका दिल भर गया। आपको अपनी पेढ़ी चलाने वाला पुत्र प्यारा है या पामाणिक, धार्मिक पुत्र ? (श्रोताओं में से आवाज : 'पेढ़ी चलाने वाला') भले ही वह अन्याय, अनीति और दुराचार से पैसा कमाता हो, पर वही पुत्र प्रिय लगता है, क्योंकि आपने धन को ग्याहवाँ प्राण मान लिया है। धर्मघोष मुनि कहते हैं, मेरे निर्ग्रंथ मुनियों ! धर्मरुचि अणगार जो आहार लाये थे वह ग्रहण करने योग्य न था। इसलिए मैंने उनसे कहा था कि यह आहार आप न लेना, इसे निरवद्य स्थान में परठकर फिर से गोचरी लाकर पारणा करना। अतः है मुनियों ! आप जरा उनकी तलाश कीजिए। क्योंकि परठकर आने में इतना समय नहीं लगना चाहिए।" शिष्यों ने गुरु के भाव समझे और सुनकर वे भी उदास हो गये। अन्य संतों का उनके प्रति बहुत आदर भाव था। जिस आत्मा का चारित्र उज्ज्वल होता है और संयम-पालन में निपुण होते है, वे अपने साथ अन्यों का भी कल्याण करते है। ऐसे संत भले ही थोड़े होते हों पर उन्हीं से शासन

की शान बढ़ती है । आपके पास बहुत-सा नोट हो, पर वह बनावटी या जाली हो, तो किस काम का ? एक मटकी खरीदते है तो भी जाँचकर लेते है, तो आत्मा के गुणों में ढीलापन नहीं होना चाहिए । आपके देव-गुरु और धर्म कैसे होते है ? जो स्वयं तिरते है, औरों को भी तारते हैं । एक समय ऐसा था कि, गुरु तो महान होते ही हैं, श्रावक श्राविका भी इतने ही महान होते थे ।

राजा श्रेणिक की रानी चेलना अत्यंत बुद्धिमान और ज्ञानवान थी । चेलना की जैन धर्म और धर्मगुरुओं पर दृढ़ श्रद्धा थी । भगवान ने कहा है कि "चेड़ा राजा की सातों पुत्रियाँ सती थीं ।" सुबह उठते ही सतियों के नामस्मरण से अपने पाप धूल जाते हैं । चेलना रानी महल के झरोखे में खड़ी थी । सामने से एक मुनि आते दिखाई दिये । मुनि को देखते ही रानी ने अपनी तीन अंगुलियाँ ऊँची की । मुनि यह संकेत समझ गये । रानी की भक्ति भावना में कोई कमी नहीं थी । 'गुरुदेव ! पधारिए, मेरा आँगन पवित्र कीजिए ।' संत के दर्शन करने से, उनकी स्तुति करने से, कर्म की शृंखलाएँ टूटती हैं । रानी की समस्या समझकर मुनि ने अपनी दो अंगुली ऊँची की और एक नीची रखी तथा वहीं से लौट गये । राजा श्रेणिक विचार करते है कि 'चेलना ने तीन अंगुली ऊँची की और मुनि ने दो । इसका क्या कारण है ?' चेलना से विवाह होने तक राजा श्रेणिक बौद्धधर्मी थे और संतों की मसखरी करते थे । यह दृश्य देख उनके मन में शंका हुई कि चेलना ने संकेत से उन्हें अंदर आने की मनाही की, इसीलिए साधू चले गये, वरना चेलना के चेहरे पर प्रसन्नता तो बहुत थी ।

कुछ समय पश्चात् दूसरे संत राजमहल की ओर आते दिखे । पहले की तरह रानी ने तीन अंगुलियाँ ऊँची की । मुनि ने दो अंगुलियाँ ऊँची की और एक नीचे की । इससे रानी ने उन्हें अंदर आने का निषेध किया और मुनि वहीं से लौट गये ।

अब तीसरा प्रहर समाप्त होने का था । तभी एक संत पधारे । रानी ने आनन्द से नीचे उतरकर मुनि को वंदन किया । पहले की भांति रानी ने तीन अंगुलियाँ ऊँची की तब मुनि एक अंगुली नीचे करके, दो अंगुली ऊपर की । इस संकेत से रानी की ओर से इन्कार मिलने पर वे प्रफुल्लित वदन लौट गये । राजा श्रेणिक यह सब देख रहे है, परन्तु उन्हें समझ नहीं आ रहा कि यह क्या हो रहा है ।

राजा श्रेणिक चेलना से पूछते हैं कि "यह क्या ? तेरे भगवान समान तीन संत गोचरी के लिए पधारे । तेरी वहराने की भावना भी बहुत थी, परन्तु तूने तीन अंगुलियाँ ऊँची की और उन्होंने दो अंगुलियाँ ऊँची रखी । लौटते हुए उनके चेहरे

पर जरा भी दु:ख के भाव न थे ।" राजा को जानने की बहुत उत्सुकता होने लगी, तब रानी चेलना ने कहा कि "यदि आप जानना चाहते ही है तो कृपा करके मेरे गुरुदेव से इस रहस्य को जानिए ।" चेलना बहुत समझदार थी, जानती थी कि मेरे गुरुदेव के पास जायेंगे तो कुछ पाकर ही लौटेंगे । श्रेणिक के मन में इन आश्चर्यपूर्ण क्रियाओं का भेद जानने की उत्कंठा थी, इसलिए वे मुनि के पास जाने के लिए तैयार हो गये । सभी मुनि उपस्थित थे । राजा हाथ जोड़ वंदन करके बैठे । उन्हीं में से पहले गोचरी के लिए पधारे संत को पहचानकर उनसे पूछा, "महात्मा ! आप राजमहल की ओर गोचरी के लिए आये थे, तब रानी ने तीन अंगुलियाँ ऊँची की और आप लौट गये । इसका क्या कारण है ?"

संत ने कहा, "हे मगध देश के अधिपति ! आपकी रानी चेलना महान सती है। यह मोक्षगामी जीव है । उसने तीन अंगुली ऊँची करके मुझे पूछा था, 'हे तारणहार गुरुदेव ! आपको लाखों बार नमस्कार । आपकी मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति सही है ना ? यदि है तो आप खुशी से पधारिए ।' तब मैंने दो अंगुली ऊँची करके एक नीची रखी । इसके द्वारा मैंने कहा कि 'मेरी मनगुप्ति और वचनगुप्ति तो बराबर है, परन्तु कायगुप्ति शुद्ध नहीं है, उसमें मुझे दोष लगा है । ' इसलिए मैं वहाँ से लौट आया ।" यह सुनकर तो श्रेणिक चकित हो गये । अहो ! कितने पवित्र और महान संत हैं ! फिर पूछते हैं कि "हे महान पवित्र संत ! आप कहते हैं कि आपकी मनगुप्ति और वचनगुप्ति शुद्ध है, पर कायगुप्ति बराबर नहीं है । पर मन को नियंत्रित रखना कठिन है, वचनगुप्ति रखना भी थोड़ा मुश्किल है पर कायगुप्ति की अशुद्धता मुझे समझ में नहीं आई । आप कृपा करके मुझे समझाइए कि कायगुप्ति में आपको क्या दोष लगा है ।"

मुनि कहते हैं, "मैं एक जंगल में साधना कर रहा था । रात्रि का समय, भयंकर अंधकार था । उस समय एक राही उधर से गुजरा । उसने मुझे पत्थर समझकर, मेरे दो पैरों के मध्य अग्नि सुलगाई । अग्नि सुलगाकर पतीली रखने गया तो उसे दिखा कि यह पत्थर नहीं बल्कि मानव है तो, उसने अग्नि बुझा दी । परन्तु जब वह राही पतीली रखने गया तब मेरे हाथ-पैर हिल गये, जिससे अग्निकाय के जीवों की हिंसा हुई । मुझे स्थिर रहने की आवश्यकता थी । जरा हिला तो अग्निकाय के जीवों के साथ वायुकाय के जीवों की भी हिंसा हुई । मुझे हिंसा का पाप लगा । अतः मेरी कायगुप्ति शुद्ध नहीं है ।" यह सुनकर श्रेणिक का सिर झुक गया । अग्नि सुलगाने वाले के प्रति कोई द्वेष नहीं ऊपर से अग्निकाय के जीवों की हिंसा का दोष इन्हें

खटका ? अहा ! ये चेलना के गुरु हैं, ये ही सच्चे भगवान हैं । सोचने लगे कि ये महात्मा अपनी शरीररक्षा के लिए जरा हिले तो उसमें जीवों की हिंसा मानते हैं और अपने दोष को स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर देते है । धन्य है ऐसे गुरु !

अब श्रेणिक दूसरे संत के पास गये, क्योंकि अब तो तीव्र जिज्ञासा जाग उठी है । विनयपूर्वक मुनि से पूछते हैं कि "आपने दो अंगुली ऊँची की और एक नीची की, इसका क्या कारण है ?" मुनि ने कहा, "मेरी मनगुप्ति और कायगुप्ति शुद्ध है, परन्तु वचनगुप्ति में दोष लग गया है ।" श्रेणिक ने पूछा, "क्या दोष लगा है ?" तब मुनि ने कहा, "मैं गोचरी के लिए जा रहा था । रास्ते में एक ओर लड़के खेल रहे थे, दूसरी ओर सेना की टुकड़ी के साथ राजा जा रहे थे । खेलते हुए बालकों में से एक लड़का हारकर निराश बैठा था । उसे देख मेरे मुँह से निकल गया कि 'घबराओ नहीं, आगे कूच कर, तेरी जीत होगी ।' ये शब्द राजा ने भी सुने । उन्हें लगा कि मुनि तो यों ही नहीं बोलते, यदि कहा है तो वह निष्फल नहीं होगा । ऐसा सोच राजा दुश्मन राजा पर चढ़ाई करके, विजयी होकर मेरे पास आये । आकर बोले, 'महाराज ! आपकी कृपा से दुश्मन को पराजित कर, विजयी हुआ हूँ ।' मैंने तो आश्चर्य से पूछा, 'यह आप क्या कह रहे है ?' राजा कहते है कि 'आपने ही कहा था कि डरना नहीं, जीत तुम्हारी होगी ।' 'हे राजन् ! मुझे तो यह कल्पना तक न थी । मैंने तो सहज भाव से लड़के से कहा था ।' राजा ने उनको इस प्रकार ग्रहण कर लिया और संग्राम में सैंकड़ों व्यक्तियों की मृत्यु हुई । यह सब मेरी असावधानी का प्रभाव था, यदि मैंने लड़के से ये शब्द न कहे होते तो ये दोष नहीं लगते । अतः वचनगुप्ति का दोष लगा है । राजा श्रेणिक की आँखें खुल गयीं । अहो ! चेलना के गुरु ऐसे पवित्र !

राजा श्रेणिक तीसरे संत के पास आये और उनसे भी पूछा कि "आपके तीन योग में कहाँ दोष लगा है ?" संत ने कहा, "मेरी वचनगुप्ति और कायगुप्ति तो शुद्ध है, परन्तु मनगुप्ति में दोष लगा है ।" "गुरुदेव ! क्या दोष लगा है ?" अंतर के पाप प्रकट करना सरल नहीं है । इतना दान किया, पुण्य किया, तप किया, सभी प्रकट करते है । परन्तु कोई पाप प्रकट करता है क्या ? मान छूटे तभी पाप जाहिर किया जा सकता है । संत कहते है, "राजन् ! मैं गोचरी के लिए गया था । एक घर में अत्यन्त रूपवान नवयुवा स्त्री मुझे गोचरी वहरा रही थी । स्त्री की दृष्टि नीची थी, मेरी दृष्टि भी नीची थी, परन्तु आहार लेते समय मेरी दृष्टि उस बहन के पाँव पर पड़ी और मन में विचार आया कि 'मैं संसार में जिस स्त्री को छोड़ आया हूँ,

उसके पैर भी ऐसे ही सुंदर थे ।' ऐसा विचार आया, इसलिए कहता हूँ कि मेरी मनगुप्ति शुद्ध नहीं हैं ।" अहो ! कितने पवित्र संत ! श्रेणिक राजा का सिर झुक गया। कितना उच्च जीवन है इन संतों का ! अपने छोटे से दोष को भी दोष मानते है। वास्तव में ये ही सच्चे साधू हैं । एक श्लोक में कहा गया है कि -

"स्वस्तुते: परनिंदाया: कर्ता लोके पदे पदे ।
परस्तुते: स्वनिंदाया: कर्ता कोऽपि न विद्यते ।।"

अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा करनेवाले तो कदम कदम पर मिल जायेंगे। परन्तु अपनी निंदा और अन्य की प्रशंसा करनेवाले महापुरुष बहुत अल्प मिलेंगे। श्रेणिक ने कहा, "चेलना ! तेरे गुरु तो महान हैं ।" अंत में जैन धर्म के प्रति श्रद्धा हो गई । श्रेणिक के हृदय-पट खुल गये । अरे, जिनका कोई दोष न था, फिर भी दोष मान लिया, हम तो दोषों से भरे हुए है। कहाँ ये महान, पवित्र संत और कहाँ मैं पापी ! साक्षात् भगवान के समान सौम्यमूर्ति संत हैं ये । जैसे बटन दबाते ही अंधकार नष्ट हो जाता है और प्रकाश फैल जाता है, वैसे सम्यक्त्व का दीपक प्रकाशित होते ही मिथ्याधर्म का नाश हो जाता है और सत्य धर्म की स्थापना हो जाती है । यही श्रेणिक राजा भगवान महावीर के परम भक्त बन गये और तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित किया । भगवान के संत पाँच समिति और तीन गुप्ति । आठ प्रवचन माता के पालने वाले होते है ।

धर्मरुचि अणगार अष्ट प्रवचन माता का उपयुक्त पालन करनेवाले थे । उन्हें परठने गये बहुत समय हो गया, अब तक मुनि लौटे नहीं तो धर्मघोष मुनि का हृदय द्रवित हो उठा और अपने मुनियों को बुलाकर कहा, "आपलोग धर्मरुचि अणगार की तलाश में जाइए ।" मुनिगण गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर उनकी शोध में निकलेंगे, फिर आगे क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

रानी प्रीतिमती तप करती हैं, पर पाँच महीने के गर्भ होने के लक्षण स्पष्ट होते देख राजा हरिषेण को आश्चर्य होता है । वे पत्नी से पूछते है, "हे भाग्यवती ! सदाचार में दृढ़ रहने वाली हो तुम, फिर यह गर्भ कैसा ?" प्रीतिमती कहती हैं, "स्वामी ! माफ कीजिए -

योगारंभ का गर्भ नहीं यह गृहस्थाश्रम का जान,
भोलपन में नहीं जणाई, गुप्त रख्यो आधान । हो... श्रोता...

तपोवन के लिए निकलते समय ही मैं गर्भवती थी । संसार वास का ही गर्भ है । परंतु संसारत्याग के समय यदि मैं गर्भ की बात कहूँ तो मुझे तप-संयम का जीवन नहीं मिलेगा - इस अंतराय के भय से मैंने आपसे यह बात नहीं कही ।"

बड़ी महारानी हैं, संसारत्याग के लिए कोई दवाव भी नहीं या उपदेश भी नहीं । तब भी संसार छोड़ तपोवन में तप करने की कितनी उमंग है ! संसार न छोड़ना हो तो गर्भ का सच्चा बहाना हाजिर था, लेकिन इस निमित्त से भी वे संसार में रहना नहीं चाहती । तप संयम की साधना गँवाना उन्हें स्वीकार नहीं । बंधुओं ! मानव जीवन का उच्च उद्देश्य क्या है, समझ में आ गया ना ? ऊँची साधना के बाद यह जन्म मिला है । क्या खान-पान के लिए, पैसा कमाने या व्यापार के लिए मिला है ? क्या परिवार के मोह में फँसने या दूसरों पर रोब जमाने के लिए ? यह सब कुछ करके अंत में क्या आत्मा की सिद्धि होने वाली है ? जिन्हें जीतेजी खान-पान, व्यापार, परिवार आदि में अपने चित्त को समाधि में या स्वस्थ रखना संभव नहीं हो पाता, वे मरण के समय कैसे स्वस्थ रह सकेंगे ? सिर्फ द्वेष के आतंक में ही नहीं, राग की आग में भी समाधि नहीं टिकती । जिसने सारी जिंदगी राग-द्वेष करके चित्त को असमाधि का अभ्यास करवाया है, वह अंतिम समय में समाधि कैसे ला सकता है ? प्रीतिमती रानी को जीवन का उच्च उद्देश्य समझ में आ गया कि मानव जीवन में समाधि का बहुत अभ्यास करके, अंतिम समाधि सिद्ध बनने के लिए है । रानी ने इसी लगन में सगर्भा होने की बात छिपा रखी ताकि राजा उन्हें तपोवन में ले जाने से इन्कार न कर दें । परन्तु अब पाँच महीने का गर्भ प्रकट होने पर क्या करें ? राजा हरिषेण को रानी का खुलासा सुनकर संतोष हुआ । परन्तु अन्य तापसों को कैसे सफाई दी जायेगी कि यह संसारी जीवन का परिणाम है और तपोवन के जीवन में कोई आचारभंग नहीं हुआ है । मन में यह अंदेशा भी है कि तापसों के मन में हमारे आचारभंग की शंका हो तो उनके सामने मुँह कैसे दिखायें ?

बंधुओं ! जीवन में कभी ऐसी समस्या भी सम्मुख उपस्थित हो जाती है कि सच्चे और अच्छे होने के बावजूद दूसरों के मन में उनके लिए हल्की कल्पना होने लगती है । सच्ची बात का खुलासा करना कठिन हो, तब मन में आकुलता बढ़ती है कि मन की समाधि किस प्रकार बनाये रखें ? ऐसे समय में यह सोचना चाहिए कि अपने अशुभ कर्मों के बिना शिष्टजनों में अपनी अपमानजनक स्थिति नहीं हो सकती । अच्छे

और सच्चे होने पर भी अपमानित कौन करवाता है ? अशुभ कर्म का उदय । राजा के हृदय में प्रभुभक्ति है, दिल विशाल है, इसलिए पत्नी से कहते है, "रानी ! जो हुआ, सो हुआ, परन्तु अब हमारा इन निर्मल जीवन जीने वाले तापसों के साथ रहना उचित नहीं है। अतः हमें कहीं एकांत में चलकर रहना चाहिए ।" अब राजा-रानी कहाँ जायेंगे और फिर क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

श्रावण कृष्ण ८, शनिवार | दिनांक : १०-८-७४

आत्मा का राज्य

ज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

राग-द्वेष के विजेता, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी महापुरुषों ने अपने ज्ञान द्वारा जाना और कवलदर्शन द्वारा देखा । इन महापुरुषों ने हमें जागृत करने के लिए झंकार किया क "हे जीवों ! अब जागृत बनो । अनंतकाल से मोह निद्रा में सोये हो, अब तो गगो ।" चौरासी लाख जीवायोनि में चौदह लाख मनुष्य की मानवयोनि श्रेष्ठ कहलाती है । क्योंकि यह मानवदेह बार-बार नहीं मिलता । विविध योनियों में टकते-भटकते महान पुण्योदय से यह मानव भव प्राप्त हुआ है । एक कवि ने कहा है कि -

> "है इस लोकाकाश के संख्यातीत प्रदेश,
> जन्म मरण कर जीव ने, छूआ न कौन प्रदेश ?
> एक जगह पर जीव है, जन्मा बार अनंत,
> मरा अनंती बार है, कहते ज्ञानी संत ।"

इस लोकाकाश का एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है जहाँ जीव न गया हो । एक जगह र अनंती बार जन्मा है और अनंत बार मरा है ।

ज्ञानी पुरुषों ने मानव जीवन को जंक्शन की उपमा दी है । आपको लगेगा कि नव जीवन भला जंक्शन किस प्रकार हो सकता है ? आप रेल में सफर करते हुए हुत से स्टेशनों से गुजरते हैं, उनमें जंक्शन भी आते हैं । आप जंक्शन किसे कहते

तपोवन के लिए निकलते समय ही मैं गर्भवती थी । संसार वास का ही गर्भ है । परंतु संसारत्याग के समय यदि मैं गर्भ की बात कहूँ तो मुझे तप-संयम का जीवन नहीं मिलेगा - इस अंतराय के भय से मैंने आपसे यह बात नहीं कही ।"

बड़ी महारानी हैं, संसारत्याग के लिए कोई दबाव भी नहीं या उपदेश भी नहीं । तब भी संसार छोड़ तपोवन में तप करने की कितनी उमंग है ! संसार न छोड़ना हो तो गर्भ का सच्चा बहाना हाजिर था, लेकिन इस निमित्त से भी वे संसार में रहना नहीं चाहती । तप संयम की साधना गँवाना उन्हें स्वीकार नहीं । बंधुओं ! मानव जीवन का उच्च उद्देश्य क्या है, समझ में आ गया ना ? ऊँची साधना के बाद यह जन्म मिला है । क्या खान-पान के लिए, पैसा कमाने या व्यापार के लिए मिला है ? क्या परिवार के मोह में फँसने या दूसरों पर रौब जमाने के लिए ? यह सब कुछ करके अंत में क्या आत्मा की सिद्धि होने वाली है ? जिन्हें जीतेजी खान-पान, व्यापार, परिवार आदि में अपने चित्त को समाधि में या स्वस्थ रखना संभव नहीं हो पाता, वे मरण के समय कैसे स्वस्थ रह सकेंगे ? सिर्फ द्वेष के आतंक में ही नहीं, राग की आग में भी समाधि नहीं टिकती । जिसने सारी जिंदगी राग-द्वेष करके चित्त को असमाधि का अभ्यास करवाया है, वह अंतिम समय में समाधि कैसे ला सकता है ? प्रीतिमती रानी को जीवन का उच्च उद्देश्य समझ में आ गया कि मानव जीवन में समाधि का बहुत अभ्यास करके, अंतिम समाधि सिद्ध बनने के लिए है । रानी ने इसी लगन में सगर्भा होने की बात छिपा रखी ताकि राजा उन्हें तपोवन में ले जाने से इन्कार न कर दें । परन्तु अब पाँच महीने का गर्भ प्रकट होने पर क्या करें ? राजा हरिषेण को रानी का खुलासा सुनकर संतोष हुआ । परन्तु अन्य तापसों को कैसे सफाई दी जायेगी कि यह संसारी जीवन का परिणाम है और तपोवन के जीवन में कोई आचारभंग नहीं हुआ है । मन में यह अंदेशा भी है कि तापसों के मन में हमारे आचारभंग की शंका हो तो उनके सामने मुँह कैसे दिखायें ?

बंधुओं ! जीवन में कभी ऐसी समस्या भी सम्मुख उपस्थित हो जाती है कि सच्चे और अच्छे होने के बावजूद दूसरों के मन में उनके लिए हल्की कल्पना होने लगती है । सच्ची बात का खुलासा करना कठिन हो, तब मन में आकुलता बढ़ती है कि मन की समाधि किस प्रकार बनाये रखें ? ऐसे समय में यह सोचना चाहिए कि अपने अशुभ कर्मों के बिना शिष्टजनों में अपनी अपमानजनक स्थिति नहीं हो सकती । अच्छे

और सच्चे होने पर भी अपमानित कौन करवाता है ? अशुभ कर्म का उदय । राजा के हृदय में प्रभुभक्ति है, दिल विशाल है, इसलिए पत्नी से कहते है, "रानी ! जो हुआ, सो हुआ, परन्तु अब हमारा इन निर्मल जीवन जीने वाले तापसों के साथ रहना उचित नहीं है। अत: हमें कहीं एकांत में चलकर रहना चाहिए ।" अब राजा-रानी कहाँ जायेंगे और फिर क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ३५

श्रावण कृष्ण ८, शनिवार — दिनांक : १०-८-७४

आत्मा का राज्य

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

राग-द्वेष के विजेता, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी महापुरुषों ने अपने ज्ञान द्वारा जाना और केवलदर्शन द्वारा देखा । इन महापुरुषों ने हमें जागृत करने के लिए झंकार किया कि "हे जीवों ! अब जागृत बनो । अनंतकाल से मोह निद्रा में सोये हो, अब तो जागो ।" चौरासी लाख जीवायोनि में चौदह लाख मनुष्य की मानवयोनि श्रेष्ठ कहलाती है । क्योंकि यह मानवदेह बार-बार नहीं मिलता । विविध योनियों में भटकते-भटकते महान पुण्योदय से यह मानव भव प्राप्त हुआ है । एक कवि ने कहा है कि -

"हैं इस लोकाकाश के संख्यातीत प्रदेश,
जन्म मरण कर जीव ने, छूआ न कौन प्रदेश ?
एक जगह पर जीव है, जन्मा बार अनंत,
मरा अनंती बार है, कहते ज्ञानी संत ।"

इस लोकाकाश का एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है जहाँ जीव न गया हो । एक जगह पर अनंती बार जन्मा है और अनंत बार मरा है ।

ज्ञानी पुरुषों ने मानव जीवन को जंक्शन की उपमा दी है । आपको लगेगा कि मानव जीवन भला जंक्शन किस प्रकार हो सकता है ? आप रेल में सफर करते हुए बहुत से स्टेशनों से गुजरते हैं, उनमें जंक्शन भी आते हैं । आप जंक्शन किसे कहते

हैं ? जैसे ट्रेन में चढ़ने-उतरने और टिकट लेने के स्थान को स्टेशन कहते हैं, वैसे जिस विशिष्ट स्थान से ट्रेन अलग-अलग दिशाओं में जाती है, उसे जंक्शन कहते हैं । जीव के लिए जो चौरासी लाख जीवायोनि है, वे उसके जन्म-मरण के स्टेशन हैं । इस संसार में बनाये स्टेशेनों में मनुष्य एक गाड़ी से उतरकर दूसरी गाड़ी में चढ़ता है, उसी तरह जीव भिन्न-भिन्न योनि रूपी स्टेशनों पर मरता और फिर से जन्म लेता है । गति पाँच है । चौरासी लाख जीवायोनि में सिद्ध गति के अतिरिक्त चारों गति का समावेश हो जाता है । इस चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करते हुए जीव ने कितनी उच्चकोटि की साधना की होगी, तब यहाँ तक पहुँचा ।

मानव भव एक जंक्शन है । इस जंक्शन से पाँच गति में से किसी भी गति की टिकट मिल सकती है । आप किसी भी स्थान पर जाना चाहते हैं तो उसकी टिकट तो पहले लेनी पड़ती है । इसी तरह मानवजन्म रूपी जंक्शन से आप जहाँ जाना चाहें जा सकते है, परन्तु टिकट लेने की आवश्यकता तो है ही । बंधुओं ! ध्यान रखिए । इस जंक्शन से आपको नरक गति की, तिर्यच गति की, मनुष्य गति की, देव गति की और पाँचवीं मोक्ष गति की टिकट भी मिल सकती है। यहाँ से जीव किसी भी गति में जा सकता है । यहाँ बैठे हुए लोगों में कोई भी व्यक्ति नरक और तिर्यंच गति में जाने का तो विचार भी नहीं करते होंगे, क्योंकि ये गतियाँ दुःखमय है । बाकी तीन गतियों में मोक्ष गति सर्वश्रेष्ठ है । मोक्ष गति में जाने के लिए भी टिकट लेना पड़ेगा और यह टिकट धन से नहीं मिलता । इसके लिए तो जोरदार पुरुषार्थ और त्याग करना पड़ता है । मोक्ष गति की टिकट प्राप्त करने की योग्यता किसमें है । जिस आत्मा ने सोलह कषाय और नौ नोकषाय, चारित्र मोहनीय की ये पच्चीस प्रकृति तथा तीन दर्शन मोहनीय की, कुल २८ (अट्ठाइस) प्रकृति को संपूर्ण रूप से जीत लिया है और मोह का जड़-मूल से उच्छेद कर दिया है, वह आत्मा मोक्ष गति प्राप्त करने योग्य है । भगवान ने कितनी सुंदर बात बतायी है ! उच्चगति की टिकट पाना आसान नहीं है । आज हम जंक्शन पर पहुँच चुके है अर्थात् मनुष्य पर्याय प्राप्त हो चुका है -

"पल-पल में थारी उंमर जावे, मौत पगथी आवे जीवड़ा
मोहनींद रे वश में सूग्यो, भूल आपणो पथ जीवड़ा
आज थारी गाढ़ी हंफला में,
मुनियाँ रो उपदेश न मान्यो, धर्म स्थान नहीं आयो जीवड़ा
बीती सो बीत अब थने चेतायो जीवड़ा..."

इस कड़ी में ज्ञानी कहते 'है कि हे भव्य आत्मा ! अब तो जाग जा ! क्योंकि तेरी गाड़ी जंक्शन छोड़ने की तैयारी में है । अभी नहीं जागे तो टिकट पाने का पुरुषार्थ कब करोगे ? तुम्हारा आयुष्य दिन-प्रतिदिन कम होता जा रहा है और मृत्यु नजदीक आती जा रही है । फिर भी तू मोहनिद्रा में डूबा हुआ है । अतः जाग जा । उपाश्रय में आकर वीतराग वाणी सुनकर भी उसे जीवन में नहीं अपनाता । जो समय गया सो बीत गया, पर जो समय हाथ में है उसमें तो चेत जा । तथा सम्यक्त्व की टिकट प्राप्त करने का प्रयत्न कर और मोक्ष की साधना कर ले ।'

पुण्य तो खिला हुआ बगीचा है, उसमें अनुरक्त मत हो । पुण्य उधार लिए हुए दागीने (गहने) है । घर-परिवार में कोई प्रसंग आने पर अपनी इज्जत-आबरू का दिखावा करने के लिए, अपने सगे-स्नेहियों से वस्त्र-आभूषण आदि ले आते है, इस शर्त के साथ कि दो दिन में लौटा देंगे । परन्तु सगे-संबंधियों से मिलने-जुलने और अन्य कार्यों में दो दिन बीत जाते हैं । समय पूरा हो गया । उस समय यदि भरी सभा में वह व्यक्ति आकर आपसे कहे कि 'मेरे गहने लौटाओ ।' जरा सोचकर बताइए कि तब आपको उन गहनों का सुख महसूस होता है या दुःख ? यही लगेगा ना कि 'अच्छा होता कि गहने पहने ही न होते । कम से कम आबरू तो न जाती !' पुण्य भी ऐसा ही उधार का गहना है । पुण्य की शय्या में पड़े हैं तब-तक संतों की वाणी पर ध्यान नहीं देते । जबतक पुण्य का उदय है, तबतक आपकी संतान 'पापा, पापा' कहती हैं और आप प्रसन्न होते हैं । जब पुण्य घटेगा तो यही संतान पैसे के लिए आपकी छाती पर चढ़ बैठेगी । तब आप रोयेंगे, लेकिन कोई आपकी रक्षा नहीं कर सकेगा । अतः जबतक 'पापा' कह रहे हैं तभी तक में त्याग दीजिए । वर्तमान में प्राप्त ऐश्वर्य में डूब मत जाइए । संभव है कल भी ऐसा ही वैभव था और पुण्य के घटते ही भविष्य में न रहे । इसमें क्या नयी बात है ? धन से भरी तिजोरी खोलते ही हीरे जगमगाते दिखते हैं, परन्तु पुण्य का सितारा अस्त होते ही आज की संपत्ति कल समाप्त हो जाती है । **"विद्युत लक्ष्मी, प्रभुता पतंग, आयुष्य ते तो जलना तरंग ।"** यह लक्ष्मी बिजली की चमक जैसी चंचल है । आयुष्य पानी की तरंग जैसा है तो ऐसे में निश्चिंत होकर कैसे रहा जा सकता है ? यह सब पुण्य-पाप का खेल है । आज का वफादार किसी भी पल बेवफा बन सकता है । कहीं भी विश्वास रखना उचित नहीं है । दूसरों पर विश्वास न रखिए । जो ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है उसे आत्मलक्षी कार्यों में लगा दीजिए । जीवन में समझने योग्य और करने योग्य क्या है ? जीवन बहती नदी के प्रवाह जैसा

है । ऐसे जीवन में कुछ आत्मिक संपत्ति प्राप्त कर लीजिए । मान लीजिए कि किसीको कोई आपत्ति नहीं आई, मृत्यु-शय्या पर ले जाने वाली भयंकर बीमारी नहीं आई, तो माता के गर्भ से, मौत की सूली से बचकर आया है । बचने के बाद करना क्या है ? वह कर लीजिए कि फिर से ऐसी जीवायोनि में न जाना पड़े, जहाँ जन्मने या मरने का कोई आनन्द या शोक न हो । नरक और तिर्यंच में अनेक कष्ट भोगने पर भी कोई अपनी खबर लेने वाला नहीं । मरने पर कोई रोने वाला नहीं । अब तो करने योग्य इतना ही है कि चार गति के चक्र को छोड़कर पाँचवीं सिद्धगति में पहुँचे । अतः इस मानव भव रूपी जंक्शन में जितनी संभव हो सके, साधना कर लीजिए । दर्द से बहुत परेशान मरीज डॉक्टर से क्या कहता है ? 'चाहे कुछ कीजिए, पर मेरा रोग मिटाइए, मुझसे दर्द सहन नहीं होता ।' इसी तरह आप भी कभी गुरु के पास आकर कहते हैं कि 'जन्म-मरण के त्रास से बचने का कोई उपाय बताइए ।' (श्रोताओं में से आवाज : 'दीक्षा लेने के लिए कहे तो ?') ले लीजिए दीक्षा । कितना भटके, कितना बहके, अभी तक थकान महसूस नहीं होती । अतः जागिए और पाप से पीछे हटिए । समझदार को एक इशारा काफी है ।

राजा जनक और ब्राह्मण का प्रसंग : मिथिलानरेश महाराज जनक के राज्य में एक ब्राह्मण रहता था । एक बार उससे कोई बड़ा अपराध हो गया । ब्राह्मण ने कहा, "मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझसे अपराध हुआ है, परन्तु मुझे मौत के अतिरिक्त आप कोई भी सजा दीजिए ।" राजा ने कहा, "मेरे राज्य की सीमा से बाहर चले जाओ ।" ब्राह्मण ने राजा की आज्ञा शिरोधार्य करके हाथ जोड़कर पूछा, "हे महाराज ! मैं आपके राज्य की सीमा से बाहर चला जाऊँगा, परन्तु आप मुझे यह बताने की कृपा कीजिए कि आपके राज्य की सीमा कहाँ तक है ?" ब्राह्मण के प्रश्न से आत्मज्ञानी जनक गहरे विचार में पड़ गये । सोचने लगे कि 'पृथ्वी पर तो अनेक शक्तिशाली राजा राज्य करते है । मेरा राज्य तो मिथिलानगरी तक ही है ।' फिर विचार आया, 'यह राज्य मेरा कैसे है । क्या इस राज्य पर मेरा स्वामित्व है ? क्या यह मेरे साथ-साथ आयेगा ? मेरे पूर्वज इसे छोड़कर गये, मुझे भी एक दिन छोड़कर जाना है ।' राजा जनक की विचारधारा आगे बढ़ती गयी और उन्हें लगने लगा कि 'इस प्रजा पर, सेवकों पर, अन्तःपुर पर मेरा अधिकार कहाँ से आया ? यह सब नाशवंत है । मेरा अधिकार मात्र मेरी आत्मा पर है ।' यह विचार करके राजा बोले, "हे भाई ! मेरे राज्य की सीमा कहीं नहीं है । संसार की किसी

वस्तु पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, इसलिए तुझे जहाँ रहना हो, खुशी से रह। जहाँ राज्य ही मेरा नहीं है तो उसकी सीमा क्या होगी ?" राजा जनक को एक चिंगारी मिली और वे जाग गये। हम आप सबसे लाखों बार कहते हैं, पर कोई जागता नहीं। जरा विचार कीजिए कि आपका क्या है। इस संसार का राग आपको रुलायेगा। परन्तु जबतक हृदय शुद्ध नहीं होता तबतक असर भी नहीं होगा। इस जीव ने बाह्य शुद्धि तो बहुत की, अब बाह्य शुद्धि के साथ अंतरशुद्धि भी कीजिए।

भगवान महावीर के श्रावक आईना जैसे होते हैं। बाहर से उजले और अंदर से भी उजले। भगवान महावीर विश्वधर्म के प्रचारक थे। तीर्थंकर बनने से पहले तीसरे भव में उनकी उत्कंठा रहती है **'सर्व जीवों को करूँ शासन रसी'**। उनमें मेरा-तेरा का भेद न था। कहाँ उन महापुरुष की भावना और कहाँ अपनी भावना। भगवान ने फ़रमाया है कि "जहाँ अहिंसा है, वहाँ धर्म है और जहाँ हिंसा है वहाँ अधर्म।" यदि आत्मा के सच्चे हितैषी बनना चाहते हैं, तो सच्चा धर्म समझिए। सच्ची समझ के अभाव में जीव भ्रमता रहता है, जबकि सच्चा धर्म आत्मा के लिए श्रेयस्कर होता है।

द्रौपदी का अधिकार

शिष्यों ने धर्मरुचि अणगार का मृतदेह देखा : धर्मघोष मुनि को पता नहीं है कि कड़वी तुंबी की एक बूँद से हजारों चींटियों के प्राण जाते देख चींटियों तथा अन्य जीवों की रक्षा के लिए धर्मरुचि अणगार ने वह जहरीला आहार अपने पेट में परठ दिया है। गुरु अपने शिष्यों को बुलाकर कहते है, "तपस्वी मुनि अब तक क्यों नहीं आये ? आपलोग जाकर चारों ओर उनकी गवेषणा कीजिए।" धर्मरुचि अणगार किस दिशा में गये है यह तो किसीको मालूम न था।

'तएणं ते समणा निग्गंथा जाव पडिसुणेन्ति, पडिसुणित्ता धम्मघोसाणं थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति।' अर्थात् उन निर्ग्रंथ श्रमणों ने अपने धर्माचार्य की आज्ञा स्वीकारी और धर्मघोष स्थविर के पास से निकलकर, धर्मरुचि अणगार की चारों ओर गवेषणा करने लगे।

विनीत शिष्य गुरु की आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य करते हैं। उनके लिए तो *'आणाए धम्मो आणाए तवो।'* गुरु की आज्ञा ही धर्म है और यही तप है। इन मुनियों ने यह न कहा कि 'गुरुदेव ! थोड़ी देर और प्रतीक्षा करते हैं। संभव है आ

है । ऐसे जीवन में कुछ आत्मिक संपत्ति प्राप्त कर लीजिए । मान लीजिए कि किसीको कोई आपत्ति नहीं आई, मृत्यु-शय्या पर ले जाने वाली भयंकर बीमारी नहीं आई, तो माता के गर्भ से, मौत की सूली से बचकर आया है । बचने के बाद करना क्या है ? वह कर लीजिए कि फिर से ऐसी जीवायोनि में न जाना पड़े, जहाँ जन्मने या मरने का कोई आनन्द या शोक न हो । नरक और तिर्यंच में अनेक कष्ट भोगने पर भी कोई अपनी खबर लेने वाला नहीं । मरने पर कोई रोने वाला नहीं । अब तो करने योग्य इतना ही है कि चार गति के चक्र को छोड़कर पाँचवीं सिद्धगति में पहुँचे । अतः इस मानव भव रूपी जंक्शन में जितनी संभव हो सके, साधना कर लीजिए । दर्द से बहुत परेशान मरीज डोक्टर से क्या कहता है ? 'चाहे कुछ कीजिए, पर मेरा रोग मिटाइए, मुझसे दर्द सहन नहीं होता ।' इसी तरह आप भी कभी गुरु के पास आकर कहते हैं कि 'जन्म-मरण के त्रास से बचने का कोई उपाय बताइए ।' (श्रोताओं में से आवाज : 'दीक्षा लेने के लिए कहे तो ?') ले लीजिए दीक्षा । कितना भटके, कितना बहके, अभी तक थकान महसूस नहीं होती । अतः जागिए और पाप से पीछे हटिए । समझदार को एक इशारा काफी है ।

राजा जनक और ब्राह्मण का प्रसंग : मिथिलानरेश महाराज जनक के राज्य में एक ब्राह्मण रहता था । एक बार उससे कोई बड़ा अपराध हो गया । ब्राह्मण ने कहा, "मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझसे अपराध हुआ है, परन्तु मुझे मौत के अतिरिक्त आप कोई भी सजा दीजिए ।" राजा ने कहा, "मेरे राज्य की सीमा से बाहर चले जाओ ।" ब्राह्मण ने राजा की आज्ञा शिरोधार्य करके हाथ जोड़कर पूछा, "हे महाराज ! मैं आपके राज्य की सीमा से बाहर चला जाऊँगा, परन्तु आप मुझे यह बताने की कृपा कीजिए कि आपके राज्य की सीमा कहाँ तक है ?" ब्राह्मण के प्रश्न से आत्मज्ञानी जनक गहरे विचार में पड़ गये । सोचने लगे कि 'पृथ्वी पर तो अनेक शक्तिशाली राजा राज्य करते है । मेरा राज्य तो मिथिलानगरी तक ही है ।' फिर विचार आया, 'यह राज्य मेरा कैसे है । क्या इस राज्य पर मेरा स्वामित्व है ? क्या यह मेरे साथ-साथ आयेगा ? मेरे पूर्वज इसे छोड़कर गये, मुझे भी एक दिन छोड़कर जाना है ।' राजा जनक की विचारधारा आगे बढ़ती गयी और उन्हें लगने लगा कि 'इस प्रजा पर, सेवकों पर, अन्तःपुर पर मेरा अधिकार कहाँ से आया ? यह सब नाशवंत है । मेरा अधिकार मात्र मेरी आत्मा पर है ।' यह विचार करके राजा बोले, "हे भाई ! मेरे राज्य की सीमा कहीं नहीं है । संसार की किसी

वस्तु पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, इसलिए तुझे जहाँ रहना हो, खुशी से रह। जहाँ राज्य ही मेरा नहीं है तो उसकी सीमा क्या होगी ?" राजा जनक को एक चिंगारी मिली और वे जाग गये। हम आप सबसे लाखों बार कहते हैं, पर कोई जागता नहीं। जरा विचार कीजिए कि आपका क्या है। इस संसार का राग आपको रुलायेगा। परन्तु जबतक हृदय शुद्ध नहीं होता तबतक असर भी नहीं होगा। इस जीव ने बाह्य शुद्धि तो बहुत की, अब बाह्य शुद्धि के साथ अंतरशुद्धि भी कीजिए।

भगवान महावीर के श्रावक आईना जैसे होते हैं। बाहर से उजले और अंदर से भी उजले। भगवान महावीर विश्वधर्म के प्रचारक थे। तीर्थंकर बनने से पहले तीसरे भव में उनकी उत्कंठा रहती है **'सर्व जीवों को करूँ शासन रसी'**। उनमें मेरा-तेरा का भेद न था। कहाँ उन महापुरुष की भावना और कहाँ अपनी भावना। भगवान ने फ़रमाया है कि "जहाँ अहिंसा है, वहाँ धर्म है और जहाँ हिंसा है वहाँ अधर्म।" यदि आत्मा के सच्चे हितैषी बनना चाहते हैं, तो सच्चा धर्म समझिए। सच्ची समझ के अभाव में जीव भ्रमता रहता है, जबकि सच्चा धर्म आत्मा के लिए श्रेयस्कर होता है।

द्रौपदी का अधिकार

शिष्यों ने धर्मरुचि अणगार का मृतदेह देखा : धर्मघोष मुनि को पता नहीं है कि कड़वी तुंबी की एक बूँद से हजारों चींटियों के प्राण जाते देख चींटियों तथा अन्य जीवों की रक्षा के लिए धर्मरुचि अणगार ने वह जहरीला आहार अपने पेट में परठ दिया है। गुरु अपने शिष्यों को बुलाकर कहते है, "तपस्वी मुनि अब तक क्यों नहीं आये ? आपलोग जाकर चारों ओर उनकी गवेषणा कीजिए।" धर्मरुचि अणगार किस दिशा में गये है यह तो किसीको मालूम न था।

'तएणं ते समणा निग्गंथा जाव पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता धम्मघोसाणं थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति।' अर्थात् उन निर्ग्रंथ श्रमणों ने अपने धर्माचार्य की आज्ञा स्वीकारी और धर्मघोष स्थविर के पास से निकलकर, धर्मरुचि अणगार की चारों ओर गवेषणा करने लगे।

विनीत शिष्य गुरु की आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य करते हैं। उनके लिए तो *'आणाए धम्मो आणाए तवो।'* गुरु की आज्ञा ही धर्म है और यही तप है। इन मुनियों ने यह न कहा कि 'गुरुदेव ! थोड़ी देर और प्रतीक्षा करते हैं। संभव है आ

जाएँ ।' जिनके लिए गुरु की आज्ञा प्राण समान है, वे मुनि चारों दिशा में अलग-अलग तलाश करने लगे । धर्मरुचि अणगार के लिए पूरे मुनि परिवार में आदर का भाव था । तलाश करते हुए वे उस निर्जीव स्थान पर पहुँचे जो धर्मरुचि अणगार का मृत्युस्थान था । वहाँ धर्मरुचि अणगार का निष्प्राण, निर्जीव और निश्चेष्ट शरीर देखा । भंडोपगरण और पात्र एक ओर रखे हुए हैं । संयम के साधनों को भी त्याग दिया है । जबकि आपके साधन तो संसार में डुबाने वाले है फिर भी छूटते नहीं । यदि मरते समय सब कुछ बोसराया (त्यागा) न जाय तो पाप आते रहेंगे । अंतिम समय में शरीर को भी बोसराना पड़ता है । शरीर है तो उपाधि है, इसके लिए कितने पाप और दाँव-पेच करने पड़ते है ! जिसे छोड़कर जाना है उसके लिए इतनी ममता और जो साथ आयेगा उसकी कोई परवाह ही नहीं । अतः आत्मा को पहचान करके साधना कीजिए ।

पाकिस्तान से एक भाई आये, वे अपनी हालत बताकर रोने लगे कि 'मैंने कायम आमदनी के जरिये के तौर पर ऊँची बिल्डिंग बनाई ताकि भाड़ा मिलता रहे । परन्तु मुझे क्या पता था कि यह सरकार हमें भगा देगी ! अब मकान तो वहीं रह गया, यदि जवाहरात या नकद होते तो साथ ला सकते थे ।' अब बिल्डिंग किस काम की ? यदि पहले मालूम होता कि यहाँ से पहने कपड़ों में ही भागना पड़ेगा, तब भी असार नहीं लगता, क्योंकि तब सोचते कि बिल्डिंग बेचकर नकद या सोने-चाँदी बना लें । जवाहरात भी यदि साथ न ले जा सकते हों तो उसमें भी क्या सार है ? जो साथ ले जा सके वही सारभूत है । इसी प्रकार जीवन के बारे में सोचिए । आपको पता है कि यहाँ से मरकर भागते समय यह वैभव, परिवार, बँगला सब छोड़कर जाना पड़ेगा, फिर ये सब सारभूत लगते हैं या असारभूत ? मरने के बाद तो क्या, कितनों को जीते जी छोड़ना पड़ता है । दुनिया में वैभव और परिवार का यह वियोग और विनाश ढेर का ढेर दिखाई देता है । जैसे पाकिस्तान से भागकर आने वाले के पास नकद या गहने न होने से रोने की स्थिति आ गई । वैसे ही इस जीवात्मा को मरकर भागना पड़ेगा तब यदि शुभ कर्म साथ न हों तो परलोक में रोना ही पड़ेगा । अतः जबतक दीपक जल रहा है, अपना श्रेय कर लो ।

श्रमण निर्ग्रंथ धर्मरुचि अणगार की तलाश करते हुए वहाँ आ पहुँचे जहाँ उनका मृत कलेवर पड़ा था । यह दृश्य देखते ही उनके मुँह से निकल पड़ा –

"हा हा अकज्जमिति कटु धम्मरुइस्स अणगारस्स परिनिव्वाण वतियं काउस्सग्गं करेति ।"

हाय, हाय जैसे खेदसूचक शब्द निकले और वे कहने लगे : "यह बहुत बुरा हुआ। धर्मरुचि अणगार का देहावसान हो गया है । गुरुभाई के प्रति स्नेह-भक्ति भाव से उनकी आँखों से आँसू बह निकले - यह बड़ा अकार्य हुआ । संत की अशातना करनेवाले को भगवान ने महापापी कहा है। 'दशवैकालिक सूत्र' में भी भगवान ने फ़रमाया है कि "शिष्य ज्ञान में बड़ा हो और गुरु छोटे हों तो शिष्य को ऐसा विचार नहीं करना चाहिए मैं बड़ा हूँ।" बल्कि वह तो यही विचार करता है कि ऐसे तारणहार गुरु मुझे न मिले होते तो मैं कैसे कुछ पा सकता था । आज जो कुछ मैंने पाया है वह उन्हीं गुरु की असीम कृपा है । इस प्रकार गुरु की आशातना कभी नहीं करनी चाहिए । अग्नि शिखा से, हलाहल विष से या विफरे हुए सिंह से आप कदाचित बच सकेंगे, परन्तु गुरु की अशातना करने से कर्मों से नहीं बच सकेंगे ।

गुरु-शिष्य का प्रसंग : गुरु और शिष्य थे । शिष्य बहुत विनयी और गुरु भी बड़े भद्रिक । जैसे अंदर वैसे ही बाहर से कोमल । परन्तु ज्ञान तो क्षयोपशम के अनुसार ही मिलता है । उन गुरु का क्षयोपशम कम होने के कारण ज्ञान थोड़ा कम था। शिष्य का क्षयोपशम अधिक और बुद्धि तीव्र, इसलिए उसके व्याख्यान भी लोगों को प्रभावित करते थे । हर दिन शिष्य ही व्याख्यान, प्रवचन करते तो लोगों को लगा कि हमें गुरुजी का तो लाभ ही नहीं मिलता । चर्चा-विचारना के प्रसंग में भी विनीत शिष्य पास आकर बैठ जाते तो गुरु को बोलने की जरूरत ही नहीं होती। कुछ लोग विचार करते हैं कि 'हमें गुरु का लाभ लेना चाहिए' और युक्ति करते हैं कि जिस समय शिष्य गोचरी के लिए गये तभी सब एकत्रित होकर गुरु से ज्ञान लेने पहुँचे । गुरु को वंदन करके, साता पूछकर बैठे । उधर गोचरी के लिए गये शिष्य को ज्ञात हुआ तो वे तुरंत लौट आये । आकर गुरुवंदन किया और नजदीक में बैठ गये । लोगों ने पूछा, "आप तो गोचरी लेने गये थे ना ?" तो कहते हैं, "मेरी गोचरी पर्याप्त आ गयी तो मैं लौट आया । आपलोगों को गुरुजी के ज्ञान का लाभ लेना है और मुझे गुरुदेव से ही ज्ञान मिला है । गुरुदेव की असीम कृपा से मैं थोड़ा-बहुत सीख सका हूँ । अतः जहाँ तक मैं समाधान दे सकूँ वहाँ गुरुदेव को क्यों किलामणा (तकलीफ) दी जाये । मेरा विकास इन्हीं से हुआ

है । हिमालय से बहती गंगा का पानी मुझ में भी आया है । समस्त प्रताप मेरे गुरुदेव का है ।" इसे कहते है विनीत शिष्य । इसका नाम है गुरुभक्ति । भले ही गुरु शास्त्र का ज्ञान मुझे कम दे पाये, परन्तु संसार रूपी कुँए से बाहर निकाला और पाँच महाव्रत रूपी पाँच रत्न प्रदान किये है । उनके अंतर का आशीर्वाद भी मुझे प्राप्त हुआ है । शिष्य में सरलता है और ज्ञान का गर्व नहीं ।

धर्मरुचि अणगार भद्रिक प्रकृति के उग्र तपस्वी थे । उनका मृत कलेवर देख साधुओं के मुँह से हाय ! हाय ! निकल गया । साधू के नियम क्या होते है, मुनि अब क्या करेंगे आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ३६

श्रावण कृष्ण ९, रविवार	दिनांक : ११-८-७४

द्रौपदी का अधिकार

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शासन सम्राट, वीर भगवान ने उग्र साधना करके, कर्मो से जूझते हुए घाती कर्मो को नष्ट करके, केवल ज्ञान और केवल दर्शन की ज्योति प्रकाशित करने के पश्चात् वाणी की प्ररूपणा की है । 'ज्ञाताजी सूत्र' में धर्मरुचि अणगार नागेश्री के घर से गोचरी लेकर आये । 'भगवती सूत्र' में यह पृच्छा हुई है कि 'दान में श्रेष्ठ दान कौन-सा है ?' भगवान का उत्तर है कि "सुपात्र दान श्रेष्ठ है ।" द्राक्ष धोया हुआ पानी दो घड़ी पश्चात् अचेत हो जाता है । दाल या चावल धोया हुआ पानी, जिसे आप फेंक देते है, जो आपके लिए तुच्छ होता है । यह द्राक्ष का पानी या रस नहीं द्राक्ष धोया हुआ जल है । अचानक संत का आगमन हुआ । दो घड़ी हो जाने के कारण द्राक्ष धोया हुआ जल सूझता रखा था । जिस जल की कोई कीमत नहीं, पीने के उपयोग का भी नहीं, वैसा जल उत्कृष्ट भाव से मुनि को बहराने से तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन कर लेते है । न मेवा, न मिठाई सिर्फ धोया हुआ पानी, फिर भी कितना महान लाभ ! सुपात्र दान देने से कर्म की शृँखला टूट जाती है । परन्तु अनहोनी हो गई, दान देने पर भी नागेश्री नरक में गई । सिद्धान्त में एक ही नाम

आता है कि दान देने पर भी नागेश्री नरक में गई । क्योंकि नागेश्री ने महान तपस्वी मुनि को घूरा मानकर सारा कड़वा साग बहरा दिया । उसे तो लगा, 'चलो अपना काम बन गया ।' जीव कैसे स्वार्थ में डूब गया है ! अपना काम बन जाये बस इतना ही देखता है - दूसरे की कैसी अवस्था होगी यह नहीं सोचता ।

धर्मरुचि अणगार का देहान्त हो गया । गुरु को यह ज्ञान नहीं था, इसलिए मुनियों को उनकी तलाश में भेजा । आपका पुत्र बाहर गया है । आने में घँटा-दो घँटा विलंब हो जाये तो आपका ध्यान जाता है ना, कि अभी तक क्यों नहीं आया ? गुरु के लिए भी शिष्य पुत्र के समान होता है और उन्हें शिष्य पुत्र जैसे ही प्रिय होते हैं । गुरु की आज्ञा से ढुँढने निकले शिष्यों ने मुनि का शव देखा तो मुँह से 'हाय ! हाय !' निकल पड़ा । आप संसार में कोई आश्चर्यजनक या अनहोनी होते देखते हैं तो चौंककर कह उठते है ना, कि 'हाय ! यह क्या हो गया ?' यह तो संसार की बात हुई, पर यहाँ तो आत्मार्थी जीव, महान संत को एकाएक मृत देखकर सभी संत द्रवित हो उठे । ज्ञानी कहते हैं कि 'आपसे बने तो संत की सेवा कीजिए पर कभी संत को संताप न दीजिए । संत को संताप देने का परिणाम बहुत बुरा होता है ।

जन्माष्टमी

आज गोकुल अष्टमी का दिन है । भारत भर में वैष्णव जन्माष्टमी का उत्सव मनाते हैं । महान पुरुषों की जन्म-जयंती तथा अन्य धार्मिक त्यौहार किसलिए मनाय जाते है ? जिस प्रकार अंगारे पर राख जम गई हो तो उसे फूँकनी से फूँककर राख उड़ाई जाती है, उसी प्रकार हमारी आत्मा पर कर्मो की राख जम गई है, उसे उड़ाने के लिए ये दिन मनाये जाते हैं । वासुदेव कृष्ण की जन्म-जयंती का आज पवित्र दिन है । कृष्ण ने धर्म की खूब दलाली की । दया बहुत पाली । जो आत्माएँ संसार त्यागकर भगवान नेमनाथ के चरणों में जाना चाहते थे, उनका तन-मन-धन से बहुत साथ दिया । कृष्ण आगामी चौबीसी के भावी तीर्थकर है, इसलिए हम उनका गुणगान-बहुमान सम्मान करते हैं ।

भगवान ने तीन प्रकार के पुरुष कहे है - (१) धर्मपुरुष (२) भोगपुरुष (३) कर्मपुरुष । धर्मपुरुष किसे कहते हैं ? धर्मपुरुष अर्थात् तीर्थंकर भगवंत । प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते हैं । तीर्थंकर भगवंत माता के गर्भ में आते है, तभी से उनका प्रभाव दिखने लगता है । अशांति के वातावरण में शांति स्थापित हो जाती है । शांतिनाथ भगवान जब माता के गर्भ

में आये तब हस्तिनापुर में महामारी फैली हुई थी । अचला माता चिंतित हुई कि मेरी प्रजा महामारी की भयंकर पीड़ा से ग्रस्त हो रही है । चिंता करते हुए वे महल के ऊपरी खंड में जाकर चारों ओर आँखें फिराकर देखती हैं, तभी महामारी शांत हो गई । यह किसका प्रभाव था ? गर्भ में विराजित तीर्थंकर प्रभु का प्रभाव था । तीर्थंकर भगवंत जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक होते हैं और दीक्षा लेते ही उन्हें चौथा मनःपर्यव ज्ञान प्राप्त हो जाता है । फिर कालान्तर में कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त करते है तथा अन्य जीवों को केवल ज्ञान प्राप्ति का मार्ग बताते हैं । अज्ञान रूपी अटवी में भटकते जीवों को ज्ञानचक्षु देते हैं । सच्चा मार्ग बताने वाले हैं । अभयदान देने वाले हैं । ऐसे करुणासागर तीर्थंकर भगवंत धर्मपुरुष कहलाते हैं ।

भोगपुरुष चक्रवर्ती होते हैं जो छः खंड का वैभव भोगते हैं । जिनके यहाँ सांसारिक सुख की कमी नहीं होती । ६४,००० तो उनके स्त्रियाँ होती हैं । देव जिनकी सेवा में हाजिर रहते हैं । चौदह रत्नों और नौ निधानों के वे स्वामी होते हैं । स्त्रीरत्न तो सदैव खिला रहता है । उनके पास ऐसे रत्न होते हैं जो हथौड़े के आघात से भी नहीं टूटते । पर ऐसे रत्नों को चक्रवर्ती की स्त्रीरत्न अपनी चुटकी से मसलकर चूर्ण बना देती है और इसी चूर्ण से चक्रवर्ती के ललाट पर तिलक करती है । ऐसी असीम संपत्ति और सुख होने पर भी चक्रवर्ती भोग में गृद्ध न बनकर त्याग के मार्ग पर चले । बारह चक्रवर्तियों में से दस चक्रवर्ती संसार छोड़कर संयमी बन गये । जो संसार न छोड़ सके वे नरक में गये । प्रत्येक उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी काल में जैसे चौबीस तीर्थंकर होते हैं, वैसे ही बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव और नौ बलदेव । इस प्रकार त्रेसठ शलाका पुरुष होते हैं ।

कर्मपुरुष यानी वासुदेव । इसी कर्मपुरुष की आज जयंती है । वासुदेव का शासन तीन खंड पर होता है । वासुदेव की ऋद्धि चक्रवर्ती की ऋद्धि से आधी होती है । इसलिए उन्हें अर्धचक्री भी कहा जाता है । वे चौथे गुणस्थानक से आगे नहीं जा सकते । समकित प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु अविरति सम्यक्दृष्टि होते हैं । कर्मयोग से वासुदेव बनते हैं । वासुदेव संसार नहीं छोड़ सकते । पूर्वभाव में निदान (नियाणा) करके आये होते हैं, इसलिए उनका नरक में जाना निश्चित रहता है । वैष्णव लोग कृष्ण की लीला को याद करते हैं । जैनदर्शन में कृष्ण वासुदेव संसार में रहते थे पर नेमनाथ भगवान के आगमन के समाचार सुनकर उनका रोम-रोम

पुलकित हो जाता था और समाचार लाने वाले को बधाई में निहाल कर देते थे। उसकी दरिद्रता दूर कर देते थे । आप बहुत प्रसन्न होते हैं तो क्या करते हैं ? 'आज महासतीजी ने बहुत अच्छी बात कही ।' हमारे अच्छे की तारीफ करने के बजाय अच्छा बनने का निर्णय कीजिए । प्रभु के पधारने के समाचार मिलते ही तुरंत सिंहासन से उठ जाते । अहो ! मेरे तारणहार प्रभु पधारे है । सिंहासन से उतरकर प्रभु के पास जाने से पहले वहीं से प्रभु को भाववंदन कर लेते । बंधुओं ! आपके यहाँ कोई बड़ा व्यापारी आया हो, आप उसके स्वागत-सत्कार में लगे हुए हों, उसी समय कोई संत पधारें तो आप क्या करेंगे ? आप उठेंगे और घरवालों से कह देंगे कि 'महाराज को गोचरी बहराइए ।' उस समय यदि आप उत्साहपूर्वक खड़े होकर मुनि को वंदन करते हुए गोचरी के आग्रह के साथ बहरायेंगे तो आये हुए व्यापारी पर कैसा प्रभाव पड़ेगा ?

कृष्ण महाराजा वासुदेव के पुत्र थे । वैष्णव जन आज कृष्ण की भक्ति में लीन बन जायेंगे । जैनदर्शन में त्याग बहुत है और तप भी बहुत उग्र है, परन्तु वैष्णवों की भाँति भक्ति में लीनता नहीं है । यदि प्रभुभक्ति में ऐसी लीनता आये तो काम बन जाये । कृष्ण वासुदेव की माता देवकी कंस की बहन थी । कंस का विवाह जरासंध की पुत्री जीवयशा से हुआ था । कंस महान पापी था और जीवयशा भी अभिमानी थी । कंस प्रजा पर बहुत अत्याचार करता था । कंस के छोटे भाई से यह अत्याचार देखा नहीं जाता था । इसलिए उसने दीक्षा ले ली । मुनि बनकर उग्र साधना करने लगे । एक बार मुनि विचरते हुए उसी नगर में पधारे । देवकीजी उस समय कुंवारी थीं । जीवयशा देवकीजी के केश सँवार रही थी । तभी मुनि गोचरी के लिए पधारते हैं । जीवयशा मुनि को पहचान गई कि ये मेरे देवर हैं । अभिमान के मंडप पर चढ़ी जीवयशा कहती है, "हे देवरिया ! घर-घर टुकड़ा माँगने निकल पड़े हो, इससे अच्छा है कि घर आ जाओ । यह सब छोड़कर आओ, देवरजी हम खेल खेलेंगे । जिसका भाई इतना बड़ा राजा हो उसे भिखारी की तरह घर-घर भीख माँगकर खाना-हमारे कुल के लिए लांछन है ।" मुनि कहते है कि "हे ! जीवयशा ! मैं कोई भिखारी नहीं । मै कौन हूँ ?

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥

- उत्त. सू. अ-१, गा-१

मैं बाह्य और आभ्यंतर संयोगों से मुक्त साधू हूँ । मैं भिखारी की भांति टुकड़ा नहीं माँगता बल्कि अपने लिए सूझते आहार की घर-घर गवेषणा करता हूँ। अपने संयमी जीवन में मैं बहुत शक्तिशाली हूँ । परन्तु हे जीवयशा ! अपने अभिमान का पारा तू नीचे उतार ! तू जिसके बाल संवार रही है, इस तेरी ननद देवकी का सातवाँ पुत्र तेरे पति का और तेरे कुल का उच्छेद करेगा ।" संत इतना कहकर चले गये । जीवयशा अभिमान में भरी थी पर उसे इतनी श्रद्धा तो थी कि संत के बोल व्यर्थ नहीं होते । अतः उसका आनन्द विदा हो गया, वह उदास हो गयी । कंस ने उसे उदास देखकर पूछा, "क्या बात है ?" तो उसने कहा, "तुम्हारे भाई, जो साधू बन गये है, आये और इस प्रकार कहकर गये हैं, अतः मुझे चिंता हो रही है ।" सारी बातें सुनकर क्षण-भर के लिए तो कंस का चेहरा निस्तेज हो गया । पर विचार करके कहने लगा, "तुम घबड़ाओ नहीं । भले ही मुनि ने कहा हो, लेकिन अभी बाजी हमारे हाथ में है । देवकी अभी कुंआरी है । उसके विवाह के समय सब व्यवस्था कर दूँगा ।" समय बीतने पर मथुरा में रहने वाले उग्रसेन के पुत्र वसुदेव के साथ देवकी का विवाह हुआ । विवाह के पश्चात् कंस ने अपना मायाजाल फैलाया और वसुदेव को जुआ खेलने के लिए आमंत्रित किया । परन्तु वसुदेव ने यह निमंत्रण स्वीकार नहीं किया । क्योंकि जुआ सात व्यसनों में पहला व्यसन है ।

द्युतं च मांसं च सुरां च वेश्या, पापोद्धि चोरी परदार सेवा ।
एतानि सप्तानि व्यसनानी लोके, घोराति घोरे नरके पतन्ति ॥

द्युत अर्थात् जुआ । बंधुओं ! आप जानते है ना कि जुए में व्यक्ति बर्बाद हो जाता है । आज गोकुल अष्टमी का पवित्र दिवस है । इस धर्म के दिन को आपलोगों ने पाप का दिन बना दिया है । सप्तमी और अष्टमी के दिन लोग खूब जुआ खेलते हैं । ये सभी व्यसन जीव को दुर्गति में ले जाने वाले है । धर्मराज जैसे सत्यनिष्ट पुरुष ने जुआ खेला तो कैसा अनर्थ हुआ ! जबकि धर्मराज जुआ खेलने की कामना से नहीं खेल रहे थे । कौरवों ने कपट से उन्हें जुआ खेलने बुलाया और खेला । खेले और ऐसे खेले कि द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया । भरी सभा में द्रौपदी का चीर खींचा गया । उसके सतीत्व के प्रभाव से और शासन देव की सहायता से द्रौपदी का चीर बढ़ता गया, अंत में दुर्योधन थक गया । सती के प्रभाव से भयभीत होकर उसके चरणों में गिरकर माफी माँगने लगा । तब द्रौपदी ने कहा, "यदि तुम माफी चाहते हो तो पांडवों को चौदह वर्ष का वनवास वापस लो ।"

कौरवों ने यह शर्त स्वीकार कर ली और पांडवों का वनवास रद्द हो गया। लेकिन धर्मराज को उचित नहीं लगा। कौरवों ने दूसरी बार पांडवों को जुआ खेलने का आमंत्रण दिया। दुर्योधन के मामा शकुनि ने जुए में कपट किया और धर्मराज हार गये। परिणामस्वरूप पाँचों पांडवो द्रौपदी सहित वन गये। इन बातों की सूचना कृष्ण को मिली।

अपनी बुआ तथा भइयों से मिलने कृष्ण वन में गये। कृष्ण का सत्कार करने के लिए पांडवों के पास कुछ न था। बिछाने के लिए भी कुछ न था, इसलिए द्रौपदी ने अपना फटा कपड़ा बिछाकर कृष्ण को आसन दिया। पांडव तो लज्जा से नीचे देखते बैठे रहे, परन्तु द्रौपदी आँसू बहाती बोली, "वीरा! तुम कहाँ गये थे? धर्मराज जुआ में हारे और भरी सभा में मेरा चीरहरण हुआ। हमें वन में आना पड़ा, इसका मुझे जरा भी दुःख नहीं है, परन्तु भरी सभा में दुर्योधन ने मुझसे कहा, 'हे द्रौपदी! आओ, मेरी जाँघ पर बैठ जाओ।' उसके ये शब्द सुनकर धर्मराज और भीष्म पितामह जैसे भी कुछ न बोले। इस बात का मुझे अपार दुःख है। वीरा! यदि तुम वहाँ होते तो मेरी यह दशा न होती।" कृष्ण बोले, "मैं उस समय हाजिर नहीं था यह अच्छा ही हुआ। मैं होता तो भी मैं कुछ नहीं कह पाता। यदि दुर्योधन को रोका गया होता तो तुम्हारे सतीत्व की परीक्षा कैसे होती?" द्रौपदी ने कहा, "मैं तुम्हारी साक्षी में धर्मराजा से एक बात पूछती हूँ कि एक बार तो दुर्योधन ने मुझसे माफी माँगी और मैंने पांडवों का वनवास रद्द करवा दिया। फिर दोबारा धर्मराज जुआ खेलने क्यों गये?"

धर्मराज ने कहा, "पहली बार जुआ खेलने की मेरी इच्छा न थी। अनजाने में खेला और हार गया और तुम्हारे प्रभाव से सजा रद्द हो गयी। तब मुझे लगा कि इस प्रकार से छूट जाऊँ तो मैं अपने किये अपराध की सजा कब भोगूँगा? इसलिए दोबारा इरादापूर्वक जुआ खेलने गया और अपने गुनाह की सजा भोगने वन में आया। मेरे इस दृष्टांत से सबक लेकर भविष्य में कोई मेरी जैसी गल्ती न करे तथा उन्हें ख्याल रहे कि जुआ खेलने से कैसी बुरी अवस्था होती है।" बंधुओं! जुआ बहुत खतरनाक है। इसलिए आज से आप सब जुए का त्याग कीजिए। सातों व्यसन त्यागने योग्य हैं। जब जीवन में सच्ची समझ आती है, तब मानव महामानव बन सकता है।

आज जन्माष्टमी का पवित्र दिन है। यों तो संसार में अनेकानेक प्राणी जन्म लेते हैं और मरते हैं, परन्तु उनकी जन्मतिथि या पुण्यतिथि को कोई याद नहीं

करता । जिन तिथियों में कोई महापुरुष, महामानव अथवा तीर्थंकर पुरुष जन्म लेते है अथवा जन्म-मरण से मुक्त होते है, उन तिथियों को जगत याद करता है। आज के दिन पुरुषोत्तम श्री कृष्ण का जन्म हुआ था। अष्टमी का दिन एक वर्ष में चौबीस बार आता है लेकिन तेइस बार आने वाली अष्टमी का महत्त्व कोई नहीं मानता और आज की अष्टमी को हर कोई परम आनन्द और श्रद्धापूर्वक मानते हैं। संसार में अनंत पुरुष होते हैं और होंगे पर सभी को लोग पुरुषोत्तम नहीं कहते । पुरुषोत्तम पुरुष किसे कहते हैं ? कामदेव के समान शारीरिक सौंदर्य प्राप्त करनेवाले या कुबेर के समान महान ऐश्वर्यशाली बनने वाले को पुरुषोत्तम कहेंगे ? (श्रोताओं में से आवाज : 'नहीं') पुरुषोत्तम पुरुष तो वही कहलायेगा जो इस पृथ्वी पर जन्म लेकर धर्म की रक्षा करते है, अनीति का नाश करते हैं और संसार में भटकते लोगों को सत्य मार्ग बताते हैं । ऐसे पुरुषोत्तम राम थे, कृष्ण थे, सभी तीर्थंकर थे।

बंधुओं ! कृष्ण वासुदेव की बात चल रही है। कंस ने वसुदेव से बहुत आग्रह करके वचन ले लिया कि यदि वे जुए में हारे तो बहन देवकी की हर प्रसूति मेरे घर में होगी और यदि मैं हारा तो सारा राज्य आपका । इस तरह निर्णय करके जुआ खेलने लगे । वसुदेव हार गये । अतः समय बीतने पर देवकी गर्भवती होते ही प्रसूति के लिए कंस के घर जातीं । इस प्रकार छः बार उन्होंने पुत्र को जन्म दिया जिनकी रक्षा हरणगमेषी देवों द्वारा हुई । परन्तु कंस को इसका पता न था । सातवीं बार कृष्ण के जन्म के समय कंस ने कड़े पहरे की व्यवस्था की थी । वसुदेव को कैद में डाल दिया । परन्तु महान पुरुष के जन्म के प्रभाव से चौकीदार ऊँघने लगे, वसुदेव की बेड़ियाँ टूट गईं । रातोरात वासुदेव कृष्ण को लेकर गोकुल पहुँच गये । गोकुल में यशोदा ने मृतपुत्री को जन्म दिया था, उसे लाकर देवकी के पास लिटा दिया । कृष्ण के प्रबल पुण्य के कारण कंस को यह सब ज्ञात न हो सका । यह है महापुरुष के जन्म का प्रभाव ।

कृष्ण गोकुल में पलते हैं । बड़े होने के बाद कृष्ण ने छः शत्रुओं का नाश किया- (१) कालीय नाग (२) कालयवन (३) कंस (४) जरासंध (५) नरकासुर (६) कंस का बैल। कृष्ण ने जैसे छः शत्रुओं का नाश किया वैसे ही जीव को भी अंतर शत्रुओं का नाश करना है । कृष्ण के जीवन में अनेक गुण थे । महाभारत युद्ध होने के पहले पांडव पक्ष की ओर से कृष्ण कौरवों को समझाने गये ताकि युद्ध न हो, मानव की घोर हिंसा न हो । राजा होने के बावजूद वे दूत का कार्य

करने के लिए तैयार हो गये और शांति से मधुर शब्दों में कहा, "हे दुर्योधन ! आप सारा राज्य भले ही अपने पास रखिए, परंतु पांडवों को पाँच गाँव दे दीजिए, वे उसीसे निर्वाह कर लेंगे ।" श्री कृष्ण, भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण आदि सभी ने दुर्योधन को बहुत समझाया, परन्तु दुर्योधन टस-से-मस न हुआ । उल्टे अभिमान से कृष्ण का तिरस्कार करते हुए कहा, "सुई की नोंक बराबर जमीन भी मैं किसी को नहीं दूँगा ।" दुर्योधन का जवाब सुनकर पांडवों की सारी जिम्मेदारी कृष्ण ने ले ली । कृष्ण की सहायता से पांडवों ने महाभारत युद्ध में विजय प्राप्त की । ऐसे कृष्ण वासुदेव ने धर्म-दलाली बहुत की, जिससे तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन किया । आगामी चौबीसी में वे तीर्थकर होंगे ।

धर्मरुचि अणगार का मृत कलेवर देख मुनियों के मुँह से 'हाय ! हाय !' शब्द निकल पड़े । 'धर्मरुचि अणगार का देहावसान हो गया है ।' कहकर मृतशरीर को वोसराने के लिए कार्योत्सर्ग किया । धर्मरुचि मुनि के भंडोपगरण आदि वहीं पड़े हैं, उन्हें लेकर मुनि धर्मघोषमुनि के पास जायेंगे । आगे क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ३७

श्रावण कृष्ण १०, सोमवार	दिनांक : १२-८७४

सच्चा धर्मः दया

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

धर्मरुचि अणगार ने कड़वे जहर जैसा आहार पचा लिया । आज दुनिया में अमृत पचाने वाले अनेक मिल जायेंगे, परन्तु जहर पचाने वाले बहुत अल्प होंगे । जहर पचाने जैसी विषम स्थिति में समभाव रखना और आत्मा का आनन्द बिखरने न देना, कोई आसान काम नहीं है । जीवन में कसौटी एक बार होती है, लेकिन उस कसौटी से पार उतर जाना और आत्मा का अमृत प्राप्त कर लेना, जहर पचाते हुए कषाय का एक कण भी न आने देना, सरल नहीं है, बहुत मुश्किल काम है । धर्मरुचि अणगार सिर्फ गुरु को प्रिय थे ऐसा नहीं है वरन् समस्त साधू-वृंद के प्रिय थे । सच्चा साधक तो वही है जो स्वयं तिरे तथा और को भी तारे । साधू

को लकड़ी की नौका की उपमा दी गई है । लकड़ी की नाव भले ही सजी-धजी न हो पर यह नौका स्वयं तो पार पहुँचती है, इसमें बैठने वालों को भी पार पहुँचाती है । निर्ग्रंथ मुनियों ने भी संयम लेते समय यह व्रत लिया है कि देह को ... ही कुछ हो जाए, परन्तु संयम छोड़कर देह की रक्षा नहीं करेंगे । देहरक्षा के लिए आहार आवश्यक है । पर यह आहार ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे संयम में दो लगे । भगवान ने फ़रमाया है, "हे साधक ! तू बयालीस दोष टाल कर निर्दोष आहार की गवेषणा करना । कभी भी दूषित आहार की इच्छा न करना ।"

तलाश में निकले मुनियों ने धर्मरुचि अणगार का निर्जीव कलेवर पड़ा हुआ देखा । जबतक देह के अंदर आत्मा है, तबतक वह शरीर आत्मा के साथ के कारण वंदनीय, पूजनीय बन जाता है । क्योंकि वह शरीर आत्मा की साधना में सहायक बना है । चेतन के चले जाने के पश्चात् तो जड़ बन गया है । पूजा चेतन की की जाती है, जड़ की नहीं । धर्मरुचि अणगार का आत्मा चला गया, इसलिए मुनियों ने उनके शरीर को बोसरा दिया । यों तो देह से जीव के जाते ही शरीर को बोसरा देना चाहिए । क्योंकि मृत कलेवर में दो घड़ी पश्चात् ही जीवों की उत्पत्ति हो जाती है । परन्तु यहाँ धर्मरुचि अणगार की मृत्यु के समय वहाँ कोई हाजिर न था । अतः जैसे ही मुनि पहुँचे उन्होंने उनके शरीर को बोसरा दिया । धर्मरुचि तो स्वयं ही अपनी देह को बोसरा (त्याग) कर गये थे । जैसे फटा-पुराना कपड़ा फेंक देने में जरा भी बुरा नहीं लगता, वैसे हँसते चेहरे से धर्मरुचि ने देह को त्यागा था । शरीर है तो बँधन है । बँधन से मुक्त होंगे तो मुक्ति प्राप्त होगी । शरीर तो जीव ने अनंत बार पाया और अनंत बार छोड़ा । आज शरीर को यह तकलीफ है, तो कल कोई दूसरी तकलीफ । शरीर की कितनी संभाल रखते हैं, उस पर कितना ममत्व भाव ! कितना मूर्छाभाव । आसक्ति छुटेगी तब जीव स्व में स्थिर होगा । मूर्छा जहर है, इस जहर को निकालना जरूरी है ।

संत-जन निर्दोष आहार की गवेषणा करते हैं । आहार शुद्ध होगा तो बुद्धि निर्मल बनेगी और बुद्धि निर्मल होने से आचरण भी सुंदर संभव हो सकेगा । पवित्र-निर्दोष आहार ग्रहण करने से मन की वृत्तियाँ निर्मल रहती हैं ।

गुरु नानक का प्रसंग : एक बार गुरु नानक विचरते हुए एक गाँव में पहुँचे । गुरु नानक के आगमन से सबके हृदय में आनन्द छा गया । इन संतों में भिक्षा दो प्रकार की होती हैं । एक तो स्वयं जाकर भिक्षा लाते है और उदर पोषण करते हैं और दूसरा प्रकार । भक्तों द्वारा लाकर दिया गया आहार ग्रहण करना । गुरु नानक के

ाने की खबर सुनकर लोग अपने-अपने घर से विविध प्रकार की उत्तम वस्तुएँ लेकर लाये। उस गाँव में एक श्रेष्ठी रहता था। वह अत्यन्त स्वादिष्ट और मधुर मिठाई बनवाकर लाया था। गुरु नानक ने किसीकी भी कोई वस्तु स्वीकार न करके एक गरीब लुहारिन की सूखी रोटी ग्रहण की। यह देखकर श्रेष्ठी को क्रोध आया कि 'मैं कितने प्रेम से मिष्ठान्न लाया, उसे अस्वीकार करके इन्होंने लुहारिन की सूखी रोटी ली।' आज भी कुछ जीवों में ऐसे परिणाम आ जाते हैं, पर संतों के लिए तो सभी समान हैं।

गुरु नानक ने कहा, "सेठ ! क्यों नाराज होते है ? जिसमें मुझे अपने संयम की रक्षा नजर आती है मैं उसीको स्वीकार करता हूँ। आपका मेवा, मिष्ठान्न अन्याय-अनीति से एकत्रित किये गये पैसे से बना है, जबकि इस लुहारिन का अन्न सच्चे श्रम का है।" गुरु नानक ने अंत में सेठ को समझाने के लिए सूखी रोटी सामने लाकर कहा, "देखो, इस आहार में कितनी पवित्रता है ! और खून-चूसे हुए पैसे में कैसी अधमता है !" गुरु नानक की बात सुनकर धनिक शर्मिंदा हो गया और अपनी भूलों के लिए माफी माँगने लगा। हमें इस दृष्टांत से यही समझना है कि साधू को शुद्ध आहार लेना चाहिए। नहीं तो आहार की गवेषणा करते हुए पाप का कारण भी बन सकता है।

मुनियों ने धर्मरुचि अणगार की देह को बोसराने के पश्चात् काउस्सग्ग किया। धर्मरुचि अणगार का तो समाधि मरण हुआ था। कायोत्सर्ग करके मुनियों ने धर्मरुचि अणगार के वस्त्र-पात्र आदि, जो बोसराये थे, ले लिये। किसी कार्य के लिए निकलने पर यदि सफलता हाथ लगे तो व्यक्ति का चेहरा अलग होता है और यदि असफल लौटें तो कुछ और चेहरा होता है। संयमी मुनि धर्म के सारथी हैं। जिस प्रकार कृष्ण अर्जुन के रथ के सारथी बने तो उसने विजय प्राप्त किया, उसी प्रकार अपने जीवन का सारथी गुरु को बनाने से आत्म विजय मिलती है। धर्मरुचि अणगार के वस्त्र-पात्र-आचार आदि लेकर धर्मघोष स्थविर के पास आये और उन्हें अर्पण किया। शिष्यों का चेहरा, रजोहरण और पात्रा देखकर गुरु समझ गये कि मेरा शिष्य संभवतः काल कर गया है। भंडोपगरण आदि रखकर, आने-जाने में लगे दोषों का प्राक्षालन करने के लिए मुनियों ने इरियावही की। फिर बोले, "गुरुदेव ! धर्मरुचि अणगार की शोध करने की आपने आज्ञा दी थी अतः

'एवं खलु अम्हे तुब्भ अंतियाओ पडिनिक्खमामो (२) सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स परिपेरंतेणं धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्व जाव करेमाणे जेणेव थंडिल्ले तेणेव उवागच्छइ।'

हम यहाँ से चलकर सुभूमिभाग उद्यान के पास चारों ओर ध्यान से धर्मरुचि अणगार की गवेषणा करने लगे । इसी तरह मार्ग में शोध करते-करते हम वहाँ पहुँचे जहाँ धर्मरुचि अणगार ने शरीर त्यागा था । हे भदंत ! धर्मरुचि अणगार तो इस नश्वर देह को छोड़ गये और आत्मसमाधि में लीन हो गये ।"

गुरु कहते हैं, "धर्मरुचि अणगार आहार लेकर आये । मैंने वह आहार देखा और कहा कि 'यह तो कालकूट विष के समान आहार है, इसे निर्दोष स्थान में परठ देना ।' मेरी आज्ञा से वे आहार परठने गये थे । धर्मरुचि अणगार ने यह विचार किया होगा कि मेरे गुरु की आज्ञा है कि यह आहार जीव और जान को जुदा करनेवाला है, इसलिए इसे ऐसे निर्दोष स्थान में परठना चाहिए जहाँ किसी जीव की विराधना न हो । इसी उद्देश्य से परठने के पहले उन्होंने एक बूँद जमीन पर डाला होगा, वहाँ जीवों की हानि देखी होगी, इसीलिए वह आहार स्वयं उदरस्थ कर लिया होगा ।" देवानुप्रियों ! धर्मरुचि अणगार ने आहार आरोगने (ग्रहण करने) में पाँच महाव्रत तथा छःकाय जीव की दया का पूर्णःत पालन किया है ।" वे अत्यंत उच्चकोटि के आत्मा थे और अपने संयम के प्रति पूर्णतः वफादार थे । अतः उन्होंने आहार को उदरस्थ करते समय ऐसे उच्च विचार किये होंगे कि यदि मैं यह आहार परठ दूँ तो सैंकड़ों जीवों के प्राण चले जायेंगे और मेरे पहले महाव्रत का खंडन होगा । संयम लेते समय मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि छःकाय के जीवों की हिंसा करूँगा नहीं, करवाऊँगा नहीं और करनेवालों की अनुमोदना भी नहीं करूँगा । इस प्रकार तीन करण और तीन योग से, नौ कोटि से, छःकाय जीवों की हिंसा नहीं करने का प्रत्याख्यान किया है । अतः यदि सारा आहार परठ दूँ तो छकाय जीवों की हिंसा से मेरे पहले व्रत का भंग होगा । गुरुजी ने कहा था कि यह आहार निरवद्य स्थान में परठना, जिससे जीवों की हिंसा न हो । यदि मैं यहाँ आहार परठकर जाऊँ और गुरुजी पूछेंगे कि आहार निर्दोष स्थान देखकर परठा ना ? किसी जीव की हिंसा तो नहीं हुई ना ? तो यदि मैं गुरुजी से हाँ कह दूँ तो मेरा दूसरा महाव्रत भंग होगा । गुरुजी ने कहा है कि किसी जीव की हिंसा न हो, ऐसे परठना और आहार परठने से तो सैंकडों की हिंसा होगी और मैं गुरुआज्ञा का चोर बन जाऊँगा तथा तीसरा महाव्रत भी भंग होगा । अपने शरीर के प्रति आसक्ति, अपनी काया के प्रति रागभाव रखकर यदि आहार परठ दूँ तो काया के प्रति मूर्छा भाव रहने से चौथा और पाँचवा महाव्रत भी भंग होगा । इसलिए भले ही प्राण देना पड़े पर महाव्रत रूपी रत्नों को सुरक्षित रखना है । बंधुओं ! मरना तो सभी को है पर मरने की कला

आनी चाहिए । धर्मरुचि अणगार के कर्म का उदय तो ही नहीं, तो नागेश्री को ऐसा साग बहराने का मन में ही क्यों आता ? लेकिन असातावेदनीय के जबरदस्त उदय होना है, इसलिए नागेश्री के मन में यह बात आई, इसमें उसका दोष नहीं है। मैं अपने किये कर्म ही भोग रहा हूँ, यह ज्ञान होते ही सम्यक्‌दृष्टि आयी । सम्यक्‌दृष्टि आत्मा अपना दोष देखता है, दूसरों के नहीं ।

श्रमण निग्रंथ कहते है, "गुरुदेव ! हमारे धर्मरुचि अणगार काल-धर्म प्राप्त कर चुके है। उनके ये आचार, भंडोपगरण पात्र-वस्त्र आदि है । गुरुदेव ! आपके लाड़ले अंतेवासी और हमारे पूजनीय, महान तपस्वी, कर्म के सम्मुख जूझने वाले मुनि को ऐसा जहरीला आहार बहराने वाला कौन मिला, जिसने हमारे गुरुभाई के प्राण ले लिए ?" सुनकर गुरु का चेहरा गमगीन हो गया । ज्ञान पाँच है । मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवल ज्ञान । धर्मघोष मुनि का मतिज्ञान और श्रुतज्ञान निर्मल है । उन्होंने दृष्टिवाद के अन्तर्गत श्रुताधिकार विशेष में अपना उपयोग लगाया और जान लिया कि आहार लेने के लिए धर्मरुचि नगर के किस घर में गये थे और उन्हें आहार किसने दिया था ! यों तो साधू-साध्वी गोचरी लाकर गुरु के समक्ष सारी बात स्पष्ट करते है कि किसके घर गये थे और कहाँ से क्या आहार लिया है ? परन्तु धर्मरुचि अणगार को यह सब बताने का अवसर ही नहीं मिला । आहार देखकर उसमें से आती कड़वी गंध के कारण गुरु ने एक बूँद चखा और कह दिया कि यह आहार ग्रहण करने योग्य नहीं है । इसे किसी निरवद्य स्थान में परठ आओ । अत: अब धर्मघोष मुनि ने उपयोग द्वारा जानकर निर्ग्रंथ श्रमण और श्रमणियों को अपने पास बुलाया और इस प्रकार कहा -

"एवं खलु अज्जो मम अंतेवासी धम्मरुइ णाम अणगारे पगइभद्दए जाव विणीई ।" हे आर्यो ! सुनिए । महान तपस्वी मेरे अंतेवासी शिष्य धर्मरुचि अणगार स्वभाव से भद्र परिणामी और विनीत थे । जो आत्मा मायावी होता है वह सद्‌गति । प्राप्त नहीं कर सकता । भगवान ने भी कहा है, *"सोही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ ।"* अर्थात् जो आत्मा सरल होता है उसीके हृदय में धर्म टिक सकता है ।

आनंदघनजी का प्रसंग : आज तो कहना कुछ और करना कुछ का चलन है। ऐसे संसार में रहना क्या योग्य है ? इसीलिए आनंदघनजी शहर छोड़कर जंगल में जा बसे । लोग वहाँ भी पहुँच गये । संसार की वृत्ति वाले साधू को सुख से रहने नहीं देते । जो इसमें भूले वे डूबे । एक बार उनके पास मेड़ता की रानी

आयीं । ये राजा-रानी निःसंतान थे । अतः राज्य को वारिस मिले, ऐसी कृपा करने, तावीज देने की विनती की । आनंदघनजी तो सच्चे आनंदघन थे । वे मंत्र-तंत्र कुछ न जानते थे । रानी ने बहुत जिद की तो आखिर उन्होंने कुछ लिखकर कागज को तावीज में डालकर दे दिया । भाग्य के योग से रानी सगर्भा हुई । रानी ने सोचा कि 'महापुरुष के तावीज का ही यह प्रताप है ।' समय पूर्ण होने पर रानी ने पुत्र को जन्म दिया । एक वार रानी के मन में आया कि जरा देखूँ तो सही तावीज में क्या लिखकर रखा हुआ है ? चिट में लिखा था **"राजा-रानी को लड़का हो तो भी आनंदघन को क्या ?"** राजा-रानी यह पढ़कर स्तब्ध रह गये, ओह ! संत ने आशीर्वाद नहीं दिया । जो त्याग की मस्ती में झूल रहे हों वे भला संसार के प्रपंच में पड़ते ? वे तो सच्चे त्यागी थे । आज कहाँ है ऐसे आंनदघन ? आज के विषम काल में तो हर घर में एक-एक आनंदघन की जरूरत है । जबकि एक भी आनंदघन नजर नहीं आता ।

आज आप किन बातों में खोये है ? प्रेसिडेन्ट एडवर्ड कैनेडी, इन्डिकेट, सिन्डिकेट, कांग्रेस, जनसंघ, जहाँ देखिए यही बातें चल रही हैं । इन व्यर्थ की बातों का बोझ लेकर आज का मानव घूमता रहता है । परन्तु मैं आपसे पूछती हूँ कि इन्डिकेट-सिन्डिकेट की चिंता करने से क्या आपके घर में अनाज-तेल आदि जमा हो जाएगा ? आपके नन्हे, सुकोमल बालकों को एक घूँट दूध भी ज्यादा मिल पायेगा क्या ? ऐसा कुछ नहीं होगा तो फिर बेबात चिंता करके अपना समय व्यर्थ क्यों गँवा रहे हैं ? जब राष्ट्रपति के चुनाव का नतीजा निकले और आपसे कोई पूछे कि "कौन जीता ? इंदिरा या गिरि ?" तब क्या आप यह कहते हैं कि **"इंदिरा को राज्य मिले या गिरि को मिले, इस आनंदघन को क्या ? और न मिले तो भी क्या ?"** बंधुओं ! सुखी होना हो तो आनंदघन बनिए और सारे प्रपंचों से अलिप्त रहिए ।

संसार आश्रव का घर है । संपत्ति तो ज्वार-भाटा की भांति आयेगी और जायेगी । कर्म करनेवाले को भोगना पड़ेगा, अतः शूरवीर बनकर पुरुषार्थ करो । एक सिंह शावक वन में खेल रहा था । तभी भेरी बजी, ढोल की तेज आवाज आने लगी । वह घबराकर माता की गोद में छिप गया । सिंहनी ने उसे समझाया, "बेटा ! तू किसलिए डर रहा है ?" घबराया हुआ शावक बोला, "माँ ! एक-दो नहीं हजारों मनुष्यों का झुंड आ रहा है ।" सिंहनी बोली, "यदि तू डरकर छिपेगा

तो मेरी जाति लज्जित होगी । तू सिंहनी का पूत है, तेरी एक दहाड़ सुनकर सारे भाग जायेंगे । वे हमें मारने नहीं आ रहे है बल्कि अपने ही जातिभाई को मारने जा रहे हैं ।" "क्या उनका वेश-भाषा व परिस्थिति भिन्न है इसलिए उन्हें मारने जा रहे है ?" "नहीं रे, ये तो दूसरे राजा पर आक्रमण करने जा रहे है ।" "क्या मानव मानव को मारता है ?" "हाँ ।" अंत में शावक गर्जदार आवाज में दहाड़ा और सभी डर से भाग गये । हमें क्या समझना है ? जब कर्म दिखेंगे, कर्मो के फल समझ में आयेंगे, चार गति का फेरा खटकेगा, तब आत्मा को कुछ भी कठिन नहीं लगेगा । हमारी आत्मा भी सिंह के समान है । आत्मलक्षी बनकर जब वह गर्जना करे तो कर्मशत्रुओं की ताकत है जो सामने खड़े रहें ? लेकिन यह सिंह सुप्तावस्था में प्रमाद में पड़ा हुआ है । उसे जगाने की जरूरत है । धर्मघोष मुनि अपने सभी साधू-साध्वियों को बुलाकर कुछ कहना चाहते है । वे क्या कहेंगे आदि भाव अवसर पर ।

द्रौपदी का अधिकार

हरिषेण और प्रीतिमती दारुणक अरण्य में : हरियेण राजा प्रीतिमती रानी से कहते है, "जो होना था, हो गया । परन्तु अब निर्मल जीवन जीने वाले इन तापसों के साथ रहना उचित नहीं है । हमें कहीं एकान्त में जाकर रहना चाहिए ।" रानी ने राजा की बात स्वीकार की और दोनों प्राणी तड़के उठकर जंगल की ओर निकल गये और एक गुप्त स्थान में ठहर गये । दोनों के चले जाने के पश्चात् तपोवन सूना लगने लगा । तापसों ने देखा कि राजा हरिषेण और रानी प्रीतिमती कहीं नजर नहीं आते ? अचानक दोनों कहाँ चले गये ? तापस चारों ओर उनकी तलाश करते है। किसलिए ? गुनाहगार समझकर नहीं, बल्कि सहधर्मी के रूप में उनपर सबका स्नेह-भाव है इसलिए तलाश करते हैं । कहीं उनके मन में कोई बात बुरी लगी हो तो उन्हें ढूँढकर उनका दुःख दूर कर उन्हें फिर से तपोवन में ले आयें । धर्म में दिल लगने के बाद यदि उदार भावना न विकसित हो तो कैसे कहा जा सकता है कि धर्म में मन लगा है ? धर्मी यदि उदार हृदय न रखे तो उदारता की आशा किससे की जाय ? पापी से या धर्मी से ? अतः जीव के प्रति करुणा और उदारता का भाव रखना चाहिए ।

उदार दिल के तापस राजा-रानी को ढूँढने निकले । एक वृद्ध तापस को घने जंगल के बीच राजा हरिषेण जाते हुए दिखे, तुरंत उनके पास जाकर बोले, "हे

महानुभाव ! यह आपने क्या किया ? ऐसे एकाएक क्यों चले आये ?" तब हरिषेण ने उनसे कहा कि "तपोवन में आने से पहले रानी गर्भवती थीं, लेकिन संयमी जीवन में अंतराय न आने देने के लिए उन्होंने यह बात छिपा रखी थी । परन्तु इस तथ्य से अनजान लोग, रानी को गर्भवती देख तपोवन के जीवन पर शंका न करें, इस भय से हमें गुप्तवास में आना पड़ा ।" वृद्ध तापस ने कहा, "अहो ! इसमें तुम्हें शर्मिन्दा होने जैसा क्या है ? तापस बड़े दिल वाले होते है, वे तुम्हें अपराधी नहीं मानेंगे । अतः बिना संकोच के तपोवन वापस चलिए ।" बहुत आग्रह करके दोनों को तपोवन में ले आए और कुलपति से उनकी समस्या बतायी ।

गुरुदेव ने मुनि हरिषेण से कहा, "मैं जो कहता हूँ आप सुनिए ।" मुनि हरिषेण ने कहा, "गुरुदेव ! मैं आपकी आज्ञानुसार वर्तन करने को तैयार हूँ । बस मैंने जो प्राप्त किया है वह चला न जाए ।" गुरुदेव ने कहा, "हे हरिषेण ! प्राप्त किया हुआ ज्ञान कभी नहीं जाता । तुझे तो अभी बहुत ज्ञान प्राप्त करना है । तथा यह प्राप्त करने का मार्ग निर्मल रहे यही विचार करना है । तू साध्वी प्रीतिमती को लेकर दारुणक नामक अरण्य में जा । वहाँ हमारा एक आश्रम है । साध्वी को कोई तकलीफ नहीं होगी । तेरे साथ एक तापस भी जायेगा । दारुणक अरण्य अति भयंकर और बहुत दूर है । वहाँ तो मुश्किल से कोई मानव पहुँचता है । वहाँ जाने से अपने धर्म की लाज रह जायेगी । वहाँ पहुँचने में एक महीना लगता है ।" हरिषेण राजा विचार करते है कि 'सगर्भा साध्वी प्रीतिमती इतनी दूर कैसे चल पायेगी ?' गुरु हरिषेण के मन के भाव समझ गये और हँसते हुए बोले, "वत्स ! तू चिंता मत कर । मैं तुझे आकाशगामिनी विद्या प्रदान करता हूँ, जिससे आज ही दो घड़ी में वहाँ पहुँच जाओगे ।" उसी दिन मध्याह्न के पश्चात्, एक तापस के साथ मुनि हरिषेण और साध्वी प्रीतिमती गुरुदेव प्रदत्त आकाशगामिनी विद्या के बल से दो घड़ी में दारुणक अरण्य पहुँच गये, जहाँ पहुँचने में महीनों लगते । दारुणक अरण्य में तापस मुनियों का सुंदर आश्रम था । आश्रम में मुनियों और आर्याओं के निवासस्थान अलग-अलग थे । साध्वी प्रीतिमती आर्याओं के पास गयीं और गुरुदेव का संदेश दिया । मुनि हरिषेण तापसों के साथ मिल गये । ज्ञान की आराधना के साथ तप द्वारा काया का तेज मारकर आत्मा का तेज प्रकाशित करने का कार्य प्रारंभ हुआ ।

यह वन विश्व से निराला और मुक्त प्रतीत होता था । क्योंकि इस स्थल पर कोई संसारी प्रवासी कभी भूल से ही पहुँचता था । दारुणक अरण्य के आसपास लगभग

चालीस गाउ तक कोई नगर न था । पर्वत, नदियाँ, सरोवरों और घने वन से ढका हुआ यह प्रदेश अनेक प्रकार के हिंसक प्राणियों से भरा हुआ था । सिंह, वाघ, रीछ आदि अनेक जाति के प्राणि वन में वसते थे । भयंकर साँप और विराट अजगर इस तरह चारों ओर विचरते थे, मानों वे यहाँ के स्वामी हैं । ऐसे भयंकर वन में तापस मुनि तप और ज्ञान की आराधना में शांत भाव से लीन रहते थे । मुनि हरिषेण भी जैनदर्शन के अगाध तत्त्वज्ञान रूपी सागर में मुक्ति रूपी मोती प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करने लगे । अब वहाँ किस प्रकार रहते हैं, आगे क्या होता है आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ३८

श्रावण कृष्णा ११, मंगलवार — दिनांक : १३-८-७४

क्षण को पकड़ो

बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

ज्ञानी पुरुषों ने मनुष्य भव को दुर्लभ कहा है । इतना ही नहीं, मनुष्य भव के प्रत्येक क्षण को दुर्लभ कहा है । हीरा-माणिक आदि रत्नों से धन-वैभव अवश्य प्राप्त किया जा सकता है । जबकि महापुरुषों ने कहा है कि -

"दुर्लभो रत्न कोट्याऽपि क्षणोपि मनुजायुषः ।"

अर्थात् करोड़ों रत्नों के बदले भी मनुष्य भव के एक क्षण का आयुष्य नहीं मिल सकता । मनुष्यजीवन के एक क्षण का आयुष्य करोड़ों रत्नों से अधिक मूल्यवान है । मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ धनवान जीने की आशा में अपना सर्वस्व देने को तैयार हो जाता है, फिर भी एक क्षण की आयु नहीं बढ़ा सकता । स्वयं भगवान महावीर के निर्वाण के समय इन्द्र ने दो घड़ी आयुष्य बढ़ाने की विनती की थी तब भगवान ने कहा था कि "हे इन्द्र ! *'न भूतो न भविष्यति ।'* न भूतकाल में हूआ, न वर्तमान में संभव है और न भविष्य में होगा ।" मनुष्य भव के अपूर्व क्षण हमें मिले हैं । करोड़ों भवों में दुर्लभ मानव भव प्राप्त करके भी जीव कितना प्रमादी है । बीता हुआ पल तो इन्द्र जैसों को भी वापस नहीं मिलता । दुनिया में कंचन,

कामिनी, धन-वैभव सब कुछ वापस प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु बीता हुआ क्षण फिर से नहीं मिलता । 'आचारांग सूत्र' में प्रभु की वाणी है *"खणं जाणाहिं पंडिए !"* जो क्षण को जानता है वही पंडित है । अतः मिले हुए अपूर्व अवसर को पहचान लीजिए । धर्मानुष्ठान के लिए जो अवसर होता है उसे अपूर्व क्षण कहा जाता है । क्षण के चार विभाग है : द्रव्यक्षण, क्षेत्रक्षण, कालक्षण और भावक्षण । **द्रव्यक्षण क्या है ?** अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण करते जीव को महान पुण्योदय से दुर्लभ मनुष्य भव मिल गया । मनुष्य भव में पाँचों इन्द्रियों की परिपूर्णता मिले । एक इन्द्रिय की भी कमी हो तो सोचा हुआ कार्य संभव नहीं होता । मनुष्यभव, पाँचों इन्द्रियों की परिपूर्णता मिली, फिर श्रेष्ठ कुल मिले, रूप-सौन्दर्य मिले, जैन धर्म वीतराग का अनुपम शासन, दीर्घायुष्य और सुंदर आरोग्य आदि की प्राप्ति होने को द्रव्य क्षण कहा जाता है । मनुष्य भव तो मिल जाता है, परन्तु उपरोक्त सामग्री सहित मनुष्य भव मिलना अति दुर्लभ है । रोटी बनाने में बड़ी होशियार बहन को आटा, पानी, चकला-बेलन, अग्नि आदि साधनों की आवश्यकता होती है । यदि ये साधन न हों तो मात्र बहन की होशियारी रोटी नहीं बना सकती । आप सब यहाँ बैठे हुए बहुत भाग्यशाली है कि द्रव्यक्षण की आपको संपूर्ण अनुकूलता प्राप्त हुई है । आप यदि चाहें तो अपने पुरुषार्थ द्वारा सर्वविरति चारित्र की भूमिका तक पहुँच सकते है । सर्वविरति प्राप्त करने का अधिकारी एकमात्र मानव ही है । देवता और नारकी सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते है । इससे आगे बढ़कर तिर्यच में कुछ जीव देशविरति प्राप्त कर सकते है, परन्तु सर्वविरति चारित्र तो मनुष्य ही अंगीकार कर सकता है । इसी सर्वविरति चारित्र के आधार पर ही मनुष्य भव को दुर्लभता बतायी गयी है । धन-वैभव के सुख की दृष्टि से ज्ञानियों ने मनुष्य भव को दुर्लभ नहीं कहा है । अतः जो मानव धन-वैभव के पौद्‌गलिक सुख के पीछे पड़ा रहेगा तो यह महामूल्यवान द्रव्यक्षण व्यर्थ चला जायेगा ।

- **दूसरा :- क्षेत्रक्षण :** यदि क्षेत्रक्षण न मिला होता तो जीवन कहीं बिखर गया होता ! जिस क्षेत्र में चारित्र उदय में आये, संयम ग्रहण किया जा सके, ऐसे आर्य देश में मनुष्य भव की प्राप्ति हो, तो उसे क्षेत्रक्षण कहा जाता है । भरत क्षेत्र में ३२००० देश हैं । उनमें से सिर्फ साढ़े पच्चीस आर्यदेश कहे जाते हैं । बत्तीस हजार की अपेक्षा से साड़े पच्चीस बिंदु जितने लगते हैं । ऐसे आर्यदेश में मनुष्य भव मिलना अति दुर्लभ है । आर्यदेश में जन्म लेकर भी कुछ मानव अनार्य जैसे होते हैं । जहाँ जीवदया, अहिंसा

का संस्कार न हो, धर्म शब्द भी जहाँ सुनाई न पड़ता हो, उस देश को अनार्य देश कहा जाता है। अथवा जिस देश में जन्मे लोग धर्मभावना से बहुत दूर हों। धर्म किसे कहते हैं? धर्म क्या वस्तु है? यह भी ज्ञात न हो उसे भी अनार्य देश कहते हैं। आज भी आर्यदेश में जन्म पाकर भी कितने ही जीवों को धर्म रुचता नहीं। जब वे धर्म से दूर-दूर होते जाते हैं, तो वे आर्यदेश में जन्म लेकर भी अनार्य कहलाते हैं। ऐसे अनेक अज्ञानी जीव है, जिन्हें ज्ञात नहीं कि आज वे जीवों का वध कर रहे है, उसका कैसा फल भुगतना पड़ेगा?

आपको तो विरासत में यह संस्कार मिला है कि किसीको मारेंगे तो मरना पड़ेगा, छेदेंगे तो छिदना पड़ेगा। यह कुल का, क्षेत्र का प्रभाव है! आर्यदेश में भी ऐसे कई गाँव होते है, जहाँ साधू-संत के चरण तक नहीं पड़ते। ये गाँव आर्य होते हुए भी अनार्य जैसे ही हैं। आज के विषमकाल में चारों ओर हिंसा, शिकार, जुआ, विश्वासघात, चोरी, लूटमार आदि पाप इतने बढ़ गये है मानो आर्यदेश में अनार्यता प्रवेश कर चूकी हो। कितने ही लोग अनार्य क्षेत्र में जन्मने के बावजूद आर्यता की ओर मुड़ रहे हैं। धर्म क्या है? ईश्वर क्या चीज है? कर्म किसे कहते हैं? आदि तत्त्वज्ञान की गहरी जिज्ञासा और उत्कंठा उनमें जाग रही है। अनार्य देश में जन्में जीव सत्संग के प्रभाव से अथवा अपने हल्के कर्म के प्रभाव से आर्य नहीं बन सकते या धर्म नहीं पा सकते, ऐसी एकान्त स्थिति नहीं है। सिद्धान्त में आर्द्र-कुमार का दृष्टांत मौजूद है। उनका जन्म अनार्य देश में हुआ, परन्तु अभयकुमार जैसे मित्र के सत्संग के प्रभाव से आर्द्रकुमार न सिर्फ आर्य बने बल्कि अंत में दीक्षा लेकर, केवल ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में गये। आप सब तो कितने भाग्यशाली हैं कि आपको संतों का विरह नहीं होता। एक के बाद एक संतों का आवागमन जारी रहता है। जहाँ गंगा नदी बहती हो, वहाँ भला कचरा जमा रहेगा? इसका नाम है क्षेत्रक्षण।

तीसरा-कालक्षण : धर्म करने का समय कहलाता है, कालक्षण। एक उत्सर्पिणी और एक अवसर्पिणी दोनों मिलाकर एक कालचक्र होता है। दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम का अवसर्पिणी काल और दस क्रोड़ाक्रोडी सागरोपम का उत्सर्पिणी काल, दोनों मिलाकर बीस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम होने पर एक काल चक्र होता है। दस क्रोड़ाक्रोडी कहिए या बीस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम काल कहिए, इसमें धर्म करने का काल कितना है? अवसर्पिणी काल में एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम से

कुछ अधिक काल, धर्म का होता है। कहाँ दस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम और कहाँ एक क्रोड़ाक्रोड़ी ? अवसर्पिणी काल में पहला, दूसरा और तीसरे आरे का प्रथम काल युगलिया का है। तीसरे आरे के अंतिम भाग से धर्म-शासन की शुरुआत होती है। चौथा आरा पूर्णतः धर्मशासन का होता है, पाँचवें आरे में भी धर्मशासन रहता हैं, इसी प्रकार उत्सर्पिणी में भी तीसरे और चौथे आरे में धर्म-शासन रहता है। बीस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम में धर्म का काल फक्त दो क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम और कुछ अधिक समय में अधिकांश युगलिक काल होता है। अवसर्पिणी काल की अपेक्षा से छठा आरा का समय और उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा से पहले-दूसरे आरे का समय धर्म के अनुकूल नहीं होता। इसलिए बीस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम के काल में दो क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम का काल, धर्म के लिए अनुकूल कहलाता है, इसे ही कालक्षण कहा जा सकता है। महाविदेह क्षेत्र में तो सदा ही चौथे आरे का काल है, इसलिए वहाँ तो धर्म के लिए कालक्षण की बहुत अनुकूलता होती है। इस काल में जन्म हुआ, यह कोई साधारण बात नहीं है। फिर भी जीव की दशा ऐसी क्यों ?

जीव चरमावर्त काल में नहीं आया। जबतक जीव चरमावर्त काल में नहीं आता, तबतक अंतरंग धर्म में रुचि नहीं होती। जब चरमावर्त काल में आता है तब उसे अहिंसा, सत्य, अदत्तादान, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि उत्तम प्रतीत होते हैं, उन पर प्रेम उपजता है। उसे मोक्ष प्राप्त करने योग्य लगता है और संसार के काम भोग छोड़ने योग्य लगते है। सांसारिक सुख विष के कटोरे जैसे लगते हैं। जब मृगापुत्र संयम-मार्ग पर प्रयाण करने के लिए तैयार हुए तब माता से कहते हैं, "हे माता ! आप मुझे संसार में रखना चाहकर विषय-भोगों को आमंत्रित कर रही हैं। परन्तु, माता ! मैं इसमें कैसे आनन्द मानूँ ? जहाँ विष ही विष भरा है वैसे सुख में क्या आनन्द मिलेगा ?" जब आपको संसार विष जैसा लगेगा तब आप उसे छोड़कर अलग हो जायेंगे। आप सुंदर स्वादिष्ट मैसूर-पाक खाने बैठे और कोई आकर कहे, 'भाई ! इसमें जहर है, इसे मत खाइए।' तो उस 'कोई' के वचन पर श्रद्धा रखते हैं और मैसूर-पाक नहीं खाते हैं। इतनी श्रद्धा ज्ञानी के वचनों पर जागेगी कि 'संसार विष, विष और विष ही है, आश्रव का घर है। इसमें रमना उचित नहीं !' विषय के प्रति विराग, कषाय का त्याग, गुणानुराग और शुद्ध क्रिया की रुचि आदि वस्तुएँ चरमावर्त काल के सिवाय कभी प्राप्त नहीं होतीं।

अचरमावर्त काल में जीव धर्म करता है, दीक्षा लेता है, पाँच महाव्रत पालता है, उपवास आदि क्रियाएँ करता है, परन्तु उसकी दृष्टि मोक्ष की ओर नहीं होती। मोह से उसके अन्तर्चक्षु ढँके हुए होते हैं। मोह को घोर अंधापन होता है ऐसे दुर्भवी जीव अभवी जैसे होते हैं। अभवी (अभव्य) का कभी भी मोक्ष नहीं होगा, वह किसी काल में भवी (भव्य) नहीं होगा। ऐसे भवी जीव भी पड़े हैं जो कहलाते तो भवी हैं, परन्तु परिणाम में दुर्भवी होने पर भी अभवी जैसे ही हैं। वे अचरमावर्त में रहते हैं। वे दीक्षा लेते है, त्याग करते है। उपदेश भी देते हैं कि ये विषय छोड़ने योग्य हैं। काम-भोग के कीड़े बनकर कब-तक संसार में भटकते रहेंगे ? जैसे नमक से भरा हुआ मिट्टी का मटका अधिक समय तक रखने से छिद्रों से भर जाता है, वैसे ही यदि आप भोग को नहीं छोड़ेंगे, त्याग के संग नहीं जुड़ेंगे, तो आत्मा के गुण नष्ट हो जाते हैं। जैसे छेद वाला मटका कचरापेटी में डाल दिया जाता है, वैसे ही आपका गुण नष्ट हुआ। आत्मा नरक गति रूपी कचरापेटी में फिंक जायेगा। विषय विष तुल्य है, सिर्फ मोक्ष ही सार रूप है। इतना जोरदार प्रभावशाली उपदेश देते हैं, पर उनके अंतर में कुछ नहीं होता। उनका हृदय तो कोरा का कोरा रहता है। मुंगशेलिया पत्थर पर पुष्करावर्त मेघ बरसे तो भी पत्थर कोरा ही रहता है, उसी प्रकार अचरमावर्त वाला जीव आश्रव का वर्णन करता है, पर स्वयं आश्रव से दूर रहने की बात नहीं सोचता। संवर-मोक्ष की बात करता और कहता है कि सच्चा सुख मोक्ष में है। पर अपनी श्रद्धा इस पर नहीं होती, प्रश्न उपस्थित होता है कि फिर ये जीव संसार छोड़कर दीक्षा क्यों लेते हैं ?

अन्य साधुओं, महान आचार्यों का सत्कार-सम्मान होते देखकर, अचरमावर्ती दुर्भव्य जीव सोचते है कि संसार छोड़कर इनके जैसे सत्कार-सम्मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करूँ। कभी व्याख्यान में सुना हो कि जैन धर्म की दीक्षा का पालन करने से देवलोक में रत्नों के विमान और देवियों की प्राप्ति होती हैं, अतः संयम लेने की [illegible] है। आपका यहाँ चाहे जितना बड़ा आलिशान भवन हो, परदेश से [illegible] हो, मलमल की, रेशम की कोमल शय्या हो फिर भी [illegible] तो यह एक झोंपड़ी के समान ही है। ये अचरमावर्ती [illegible] हैं कि यहाँ एक झोंपड़ी छोड़ेंगे तो मुझे देवलोक में [illegible]। अशुचि से भरी एक स्त्री का त्याग करेंगे तो देवियाँ भोगने के लिए मिलेंगी। मनुष्य का तुच्छ

वैभव छोड़ने से स्वर्ग में अत्यधिक और दीर्घकालीन वैभव प्राप्त होगा। अधिक प्रिय वस्तु के लिए कम प्रिय वस्तु छोड़ दी जाती है। जैसे रास्ते में चलते हुए गुंडे से सामना हो जाय तो आदमी स्वेच्छा से अपने रुपये-पैसे उसके हाथों में सौंपकर, अपनी जान बचाने भाग निकलता है। वैसे ही अधिक लालच से अचरमावर्ती जीव संसार का त्याग करके साधू जीवन की शुद्ध क्रियाएँ करता है, तप करता है, गुरु सेवा करता है, विनय करता है, लोच करता है, लोगों को शास्त्रीय उपदेश देता है, परन्तु यह सब मोक्ष के लिए नहीं, जन्म-मरण से छूटने के लिए नहीं, बल्कि और अधिक, सुंदर भौतिक सुख और वैभव पाने के लिए। देवलोक के सुख पौद्गलिक सुख हैं। हम तो मोक्ष के अनंतसुख की जिज्ञासा वाले है। फिर इसे पाने के लिए हमें जीवन में कितना त्याग और संयम आवश्यक होगा? तुच्छ-अनित्य भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए अचरमावर्ती दुर्भव्य और अभव्य इतने तप और संयम का कष्ट सहन करते है तो मोक्ष के शाश्वत सुख के अभिलाषी हमें कितना पुरुषार्थ और कष्ट सहन करना पड़ेगा? धर्म फुरसत में करनेवाली वस्तु नहीं है, बल्कि धर्म तो फुरसत निकाल कर की जाने वाली सर्वोत्तम वस्तु है। धर्म के कार्यों में चुस्ती रखिए और पाप के कार्यो में ढ़ील दीजिए।

बंधुओं! धर्म का अवसर बार-बार नहीं मिलता। पाप करने के अवसर तो जीव को हल्के जन्मों में बार-बार सुलभ होते रहते हैं। मानव भव धर्मकमाई का बाजार है। इस बाजार में आने के बाद धर्मकरणी भूलकर धूल जैसी कमाई में अवसर न खो देना। धर्म की कमाई के साथ अर्थ-काम तो स्वत ही आ जाते हैं, परन्तु अर्थ-काम की खातिर धर्मकमाई नहीं करनी चाहिए। धर्मकमाई तो मोक्ष प्राप्ति के लिए करना है। धर्म की खेती मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए करना है। संसार के सुख तो अपने आप मिल जायेंगे, आपको इन्हें बुलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। जिस धर्म में मोक्ष के अनंत सुख प्रदान करने की शक्ति है, क्या वह धर्म आपको स्वर्ग और मनुष्य लोक के सुख नहीं प्रदान करेगा? अतः धर्म शुद्ध आशय के साथ कीजिए, तो आत्मा सुधरेगी, मन सुधरेगा, जीवन सुधरेगा, दोष विदा होने लगेंगे और गुण दौड़े चले आयेंगे। राग के बदले विराग आयेगा, कषायों के स्थान पर क्षमा होगी। पैसा, पत्नी, परिवार से अधिक प्रिय देव-गुरु-धर्म हो जायेंगे। संसार जेल जैसा प्रतीत होगा और संयम महल जैसा। विरति और वैराग्य आपके जीवन के साथी बन जायेंगे। हमें इस पंचमकाल में भी जिनशासन जैसा शासन

प्राप्त हुआ है तो हम सौभाग्यशाली हैं ही । दुष्काल में घेवर का भोजन मिले तो कितना भाग्योदय कहा जायेगा ? वैसे ही ऐसे क्षीण होते काल में जिनशासन रूपी अमृत का अवसर प्राप्त होना भी महान भाग्योदय ही कहा जायेगा । जहाँ नीम की छाया भी दुर्लभ हो ऐसी मरुभूमि में कल्पतरु की छाया मिल जाये, तो यह महान भाग्य से ही संभव है । आज के इस विषम पंचमकाल में जिनशासन रूपी कल्पतरु की छाया मिली है - यह कोई सामान्य पुण्योदय नहीं है । अतः जितना संभव हो धर्माराधना करके प्राप्त कालक्षण को सफल करना चाहिए ।

जिन्होंने कालक्षण को पहचाना है, ऐसे धर्मरुचि अणगार के मन में यह विकल्प तक न आया कि इस उपसर्ग को सहन करने पर देवलोक के सुख मिलें । उन्होंने तो यही सोचा, मैं यह कड़वा आहार उदरस्थ कर लूँ तो कोई विशेष बात नहीं है, क्योंकि छःकाय के जीवों की रक्षा के लिए, संयम में दोष न लगाने का इससे उचित मार्ग अभी कोई नहीं है । संयम के प्रति वफादार अर्थात् गुरुआज्ञा के प्रति वफादार रहूँगा । जो श्रमण धर्मरुचि अणगार की तलाश में निकले थे, उन्होंने लौटकर गुरु से सारी बात बताई । गुरुदेव ! यह अकार्य हो गया । कभी राजा का कोप हो तो मुनि को वध परिषह उपस्थित हो जाता है, परन्तु गोचरी के आहार से मुनि के प्राण गये ऐसा कभी नहीं हुआ । यह तो धर्मरुचि अणगार की बात चल रही है, पर इस पंचमआरा में भी ऐसा प्रसंग हुआ है ।

लवजी स्वामी का प्रसंग : खंभात संप्रदाय के संस्थापक लवजी स्वामी को दशवैकालिक आदि सूत्रों का वांचन करते हुए भगवान के सिद्धान्त का यथार्थ ज्ञान हो गया । उन्होंने जान लिया कि यतिगण उसके विपरीत वर्तन करते हैं । अतः स्वयं दीक्षा लेकर, भगवान महावीर का सत्य धर्म क्या है, इसका प्रचार करते हुए विचरने लगे । इससे यतियों के मन में भय उपजा कि ये लवजीमुनि तो हमारी पोल खोलते जा रहे हैं । उनके प्रति ईर्ष्या भाव से यतियों के आदमी ने लवजी-मुनि को गोचरी में जहरीले लड्डू बहराये । लवजीमुनि को पता चल गया कि इन लड्डुओं में तीक्ष्ण जहर भरा हुआ है फिर भी बहराने वाले के प्रति जरा भी द्वेषभाव या ईर्ष्या नहीं, मन में खेद नहीं । जैसे धर्मरुचि अणगार ने गोचरी में प्राप्त कड़वी तुंबी का आहार चींटियों की रक्षा के लिए हँसते हुए खा लिया । वैसे ही लवजी स्वामी ने लड्डुओं में जहर होने को जानकर जरा भी कषाय लाये बिना, स्वयं खा लिया । उन्होंने यही विचार किया कि आज परीक्षा की घड़ी है । अपनी आत्मसमाधि

में मग्न हो गये और सत्य धर्म की रक्षा की खातिर अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। अंत में संथारा करके आत्मसमाधि साध ली। इस पाँचवें आरे में भी ऐसे महापुरुष हो गये है जो जहर को जहर जानकर भी अमृत मानकर उदरस्थ कर गये। ऐसे प्रसंगों में क्षमा बनाये रखना बहुत मुश्किल है। धन्य है ऐसे महान पुरुषों को !

द्रौपदी का अधिकार

धर्मघोषमुनि ने शिष्यों से बताया... : धर्मघोषमुनि के शिष्यों ने आकर सारी बात बताई, तब धर्मघोषमुनि ने पूर्वगत उपयोग लगाकर जान लिया कि नगर में किसके घर से किसने आहार बहराया था। फिर अपने संत-सतियों को बुलाकर उन्होंने कहा, "हे आर्यों ! मेरे अंतेवासी शिष्य धर्मरुचि अणगार स्वभाव से भद्रपरिणामी तथा विनीत थे। *शिष्य यदि सुविनीत हो तो - उसके प्रभाव से गुरु का भी कल्याण हो जाता है।*

इंद्रदत्त और चंद्रयशमुनि का प्रसंग : इंद्रदत्त नामक एक आचार्य थे। वे बहुत क्रोधी स्वभाव के थे। उनके क्रोधी स्वभाव और कठोर व्यवहार से उनका परिवार उनसे दूर हो गया था और वे अकेले रह गये थे। इंद्रदत्त वृद्ध हो चले थे, एक गाँव में रहते थे। एक दिन साला-बहनोई घूमने निकले थे, रास्ते में उपाश्रय में मुनि नजर आये। साला नगरसेठ का लड़का था, उसने बहनोई से कहा, "हमलोग मुनि के दर्शन करके जायेंगे।" बहनोई ने कहा, "ठीक है, चलो।" साला का नाम चंद्रयश कुमार था, वह बहुत गुणी और गंभीर था। गुरु के दर्शन करते हुए उसका हृदय हर्ष से नाच उठा। साला-बहनोई के रिश्ते में मजाक चलता है। चंद्रयश कुमार वंदन करके गुरु की चरण-रज लेने झुके कि बहनोई ने मजाक में कहा, "गुरुदेव ! आप अकेले हैं तो हमारा यह साला चंद्रयश कुमार आपका शिष्य बनने योग्य है।" बहनोई ने तो मजाक किया पर गुरु के क्रोधी स्वभाव ने उन्हें जकड़ लिया और नीचे झुके हुए चंद्रयश कुमार के केश, वहाँ पड़ी राख लेकर, लुंचित कर दिया। गुरु का स्वभाव आग जैसा था और चंद्रयश का स्वभाव पानी जैसा शीतल था। उनकी दृष्टि कितनी सरल और सीधी। वे कहते हैं, "गुरुदेव ! आपकी असीम कृपा है कि आपका कर कमल मेरे मस्तक पर पड़ा।" इस घटना को चंद्रयश कुमार ने हृदय से स्वीकार लिया। उसी समय मुनिवेश धारण कर साधू बन गये। बहनोई को चिंता हुई कि मैंने तो मजाक किया था, जो सत्य बन गया। अब मैं इनके पिता को क्या उत्तर दूँगा ? मजाक में मुंडन हो गया। चंद्रयश ने कहा, "अब मैं घर नहीं लौटूँगा। जो वेश धारण किया है उसे जीवन में कभी नहीं

चंद्रयशमुनि के मन में विकट प्रश्न उपस्थित हुआ कि 'मैं अचानक साधू बन गया हूँ, अब मेरे माता-पिता और कुटुंबियों को खबर होते ही वे यहाँ आकर गुरु को परेशान करेंगे । उन्हें बुरा-भला कहेंगे । इससे अच्छा है कि इस समय यहाँ से कहीं और चले जायें । ऐसा सोचकर बहुत विनयपूर्वक गुरुदेव से कहते है, "गुरुदेव ! सूर्यास्त के पश्चात् साधू के लिए एक कदम भी चलना उचित नहीं, परन्तु आपने मुझे संयम अंगीकार करवाया है, मेरे माता-पिता जानेंगे तो यहाँ आकर आपको कटु शब्द कहेंगे । अतः मेरे संयम की रक्षा के लिए हम अभी यहाँ से विहार कर लें ।" सूर्यास्त के पश्चात् विहार के लिए संत को मनाही है पर वहाँ रहते हुए यदि संयम लुटता हो, संयम की रक्षा के लिए रात्रि में विहार करना पड़े तो छूट है । क्रोधी गुरु कहते हैं, "तुझे दिखता नहीं, मैं चल नहीं सकता, इसीलिए तो एक गाँव में रहता हूँ ।" तब उस सुविनित शिष्य ने कहा, "गुरुदेव ! मैं आपको अपने कंधों पर बैठाकर ले चलूँगा ।" अपने कंधे पर गुरु को बैठाकर चंद्रयशमुनि रात के अंधेरे में विहार करने लगे । घोर अंधेरा होने से रास्ता दिखाई नहीं पड़ता था, जिससे कभी गड्ढे से या पत्थर से ठोकर लग जाती थी । गुरु के शरीर को भी इससे धक्का लगता और वे उन पर गुस्सा करते, नवदीक्षित मुनि को मारते और कटु वचनों के प्रहार करते । भगवान ने तो नवदीक्षित मुनि की छः महीने तक वैयावच्च (सेवा) करने की बात कही है । उसके स्थान पर यहाँ विपरीत ही हुआ ।

चंद्रयशमुनि बहुत गंभीर और क्षमावान हैं । धन्य है उन चंद्रयशमुनि को जिन पर गुरु के वचनों और हाथ-पैर के प्रहार होने पर भी उसकी चिंता न करके यही विचार करते हैं कि 'मैं कितना पापी हूँ कि मेरे कारण मेरे गुरु को इतनी तकलीफ सहनी पड़ रही है । मैं गुरु की कितनी अशातना कर रहा हूँ । अशातना करके मरकर में कहाँ जाऊँगा । कितने पवित्र संत ! एक तो गुरु की अशातना हो रही है, दूसरे अंधेरी रात में रास्ता सही न दिखने से कितने ही जीवों की विराधना हो रही है ।' इस प्रकार शुद्ध परिणाम की धारा बढ़ते-बढ़ते प्रमत्त दशा छूटी और अप्रमत्त दशा आयी । बढ़ते हुए आत्मा ने आठवें गुणस्थानक में जाकर क्षपक श्रेणी में दसवें-बारहवें होकर तेरहवें पहुँचते ही केवल ज्ञान पा लिया । केवल ज्ञान होने के पश्चात् आँख की कोई उपयोगिता नहीं रहती । इसीलिए केवली को अनिन्द्रिय भी कहा जाता है । अब केवल ज्ञान की ज्योति प्रकट होने से सीधे-सीधे चलने लगे । ज्ञानचक्षु खुल जाने से चंद्रयशमुनि की ठोकरें अब गुरु को नहीं लग रही थी और जो तकलीफ हो रही

थी, वह रुक गई। गुरु क्या सोचते है ? मैंने इसे सही मारा, अब कैसा बराबर चलने लगा ! शिष्य को केवल ज्ञान होने के कारण पैर जरा भी आगे-पीछे नहीं होता। अब गुरुदेव सोचने लगे-ऐसी घनघोर रात्रि में, मैं इसका चेहरा नहीं देख पा रहा, तो ऐसे रास्ते में इतनी सावधानी से कैसे चल रहा होगा ?' यह सोच शिष्य से पूछा, 'शिष्य अत्यन्त विनयपूर्वक कहता है, "गुरुदेव ! आपकी असीम कृपा का फल है।" "क्या तुझे केवल ज्ञान हो गया है ?" "गुरुदेव ! आपका प्रताप है। गुरु ने जैसे ही समझा कि शिष्य को केवल ज्ञान हो गया है वैसे ही उनके कंधे से उतरे और चरणों में गिर पड़े। उनके हृदय में पश्चात्ताप की भट्टी सुलग उठी। अहो ! भोग में पड़ा संसार में डूबे इस आत्मा ने सांझ समय दीक्षा ली। अभी एक रात भी नहीं बीती और केवल ज्ञान की ज्योति प्रकट कर ली। मैं कैसा पापी कि केवली होने वाले शिष्य के कंधे पर बैठा, हाथ-पैर से मारा, वचनों के प्रहार किये। धिक्कार है मुझे ! मैंने ऐसे केवली की अशातना की ? मैं इतने वर्षों से चारित्र पालन करता हूँ, पर मैं जो न पा सका इस शिष्य ने एक रात में पा लिया।' इंद्रदत्त आचार्य के हृदय में परिणामों की इतनी उच्चता आयी और पश्चात्ताप की भट्टी सुलगी कि उन्हें भी केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। विनीत और पवित्र शिष्य के प्रताप से गुरु भी केवली बन गये। हमने द्रव्यक्षण, क्षेत्रक्षण, कालक्षण की बात की। चौथा है **भावक्षण**। जो कर्मो के उपशम, क्षयोपशम और क्षयरूप होते है। जैसे-जैसे कर्मो का उपशम, क्षयोपशम या क्षय होता है, वैसे-वैसे आत्मिक गुण खिलते व प्रकट होते हैं। सम्यक्त्व गुण भी, मोहनीय आदि सात कर्मो की स्थिति जब बहुत-सी अपने आप, बिना किसी विशेष पुरुषार्थ के भी, टूट जाती है तब खिलता है। एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की स्थिति में से भी जब पल्योपम के असंख्यातवां भाग जितनी स्थिति न्यून हो जाती है, तब जीव ग्रंथीदेश में आता है। ग्रंथीदेश में आये जीवों में से विरले जीव ही अपूर्वकरण परिणाम द्वारा राग-द्वेष की निविड़ गाँठ को भेदकर सम्यक्त्व के परिणाम को प्राप्त करते हैं। ग्रंथीभेद द्वारा सम्यक्त्व परिणाम प्राप्त करने के पश्चात् ही जीवों का वास्तविक विकास क्रम प्रारंभ होता है। पहले कर्मों का जोर रहता है पर ग्रंथीभेद होने के बाद जीव के पुरुषार्थ का जोर बढ़ता जाता है। फिर कर्मक्षय करते-करते जीव अंत में अपने क्षायिक भाव तक पहुँच जाता है। यह है भावक्षण।

क्षण को पहचानने वाले सुविनीत और पवित्र धर्मरुचि अणगार कालवश हो गये। धर्मघोष मुनि ने अपने संत-सतियों को बुलाकर कहा, "मेरे अंतेवासी शिष्य

धर्मरुचि अणगार प्रवृत्ति के भद्रिक और विनीत थे -

"मासं मासेणं अणिक्खित्तेणं तवो कम्मेणं जाव नागसिरीए माहणीए गिहे अणुपविट्ठ तए णं सा नागसिरी माहणी जाव निसीरइ ।"

वे निरंतर मासखमण के पारणे मासखमण तप करते थे । आज उनके मासखमण के पारणे का दिन था । वे आहार के लिए भ्रमण करते हुए नागेश्री के घर गये थे। साधू को ऊँच-नीच का भेद नहीं होता । वे तो निर्दोष आहार की गवेषणा में नागेश्री के घर पहुँच गये । वहाँ क्या हुआ आदि बात गुरु शिष्यों से कहेंगे । आगे क्या होगा आदि भाव अवसर पर कहा जायेगा ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक - ३१

श्रावण कृष्ण १३, बुधवार | दिनांक : १४-८-७४

अट्ठाई धर

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी, सर्व जीवों को शांति का मार्ग बताने वाले, शास्त्रकार भगवंत ने जगत के जीवों के लिए सिद्धान्त रूपी वाणी की प्ररूपणा की । यह वाणी जो अंतर में उतारता है, वह भवसागर पार कर जाता है ।

जिस दिन की हम बहुत समय से राह देख रहे थे, जिसके लिए हम बहुत उत्सुक थे, जिसे याद करके हमारा हृदय हर्ष से नाच उठता था, उस मंगलकारी पवित्र पर्यूषण पर्व का आज प्रथम दिन है । आज के दिन को हम 'अट्ठाईधर' के नाम से जानते है । पाँच धर है । महीना का धर (मासखमण धर), पंद्रह का धर, अट्ठाईधर, कल्पधर और तेलाधर । एक माह पहले से संवत्सरी पर्व की चेतावनी देने के लिए मासखमण धर आता है । उस दिन अगर आप न चेते तो पंद्रह के धर तो चेत जाइए । उस दिन भी न जागे तो आज तो अवश्य जाग जाना है । आज प्रत्येक के दिल में आनन्द है ।' आज रविवार का दिन नहीं है फिर भी इतनी मानवमेदिनी यहाँ एकत्रित होने का क्या कारण है ? क्योंकि आज का पवित्र दिन अध्यात्मवाद की मधुर वीणा बजाने वाले पर्वाधिराज का प्रथम दिन है । आज के

दिन का पवित्र वातावरण सभी को त्याग और तप का संदेश प्रदान कर रहा है। आज के दिन भोगों को छोड़कर त्याग की ओर कदम बढ़ाइए। अंधकार से निकलकर प्रकाश की ओर जाकर आत्मा के दर्शन करने हैं।

आज आप सब यहाँ क्यों एकत्रित हुए हैं ? इस पर विचार करने की जरूरत है। आदमी कोई भी काम बिना प्रयोजन के नहीं करता। आपको कुछ खरीदने की इच्छा होती है तभी बाजार में जाते है। बाजार में बहुत-सी चीजें मिलती हैं। देखने पर लेने का लालच भी होता है। परन्तु यदि आपके पास पैसे न हों, वस्तु कैसे खरीद सकेंगे ? आज तो जिधर देखिए पैसे का बोलबाला है। एक सामान्य-सी वस्तु भी पैसे के बगैर नहीं मिल सकती। और आपको तो ऊँचे स्थान पर जाना है। मोक्ष का मोती पाने के लिए ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप रूपी पैसे आवश्यक हैं।

इन पवित्र दिनों में तप करने की इच्छा होती है। आज छोटे-छोटे बालकों ने भी उपवास किया है। अपनी शक्ति के अनुसार हर किसीको तपस्या करनी चाहिए। क्योंकि तप द्वारा कर्मो की निर्जरा होती है। *'तवसा निर्जरा च'* तप द्वारा कर्मो को क्षय कर महानपुरुषों ने मोक्ष प्राप्त किया है। भगवान महावीर ने कर्मो को क्षय करने के लिए कितनी उग्र तपस्या की थी ? मैले कपड़े को साफ करने के लिए साबुन और पानी की जरूरत होती है। सोने के गहने साफ करके चमकाने के लिए तेजाब की जरूरत होती है। मशीन साफ करने के लिए पेट्रोल की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार आत्मा को विशुद्ध बनाने के लिए ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की जरूरत है। शारीरिक दर्द या तकलीफ होने पर आप डोक्टर के पास जाते है। डोक्टर जाँच-पड़ताल के बाद निदान करके दवा देता है, लेकिन आप यदि दवा न लें तो रोग कैसे मिटेगा ? औषधि का पान किये बिना शारीरिक रोग नहीं जाता, आत्मा तो अनादिकाल से आठ कर्मो से पीड़ित है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप रूपी औषधि के सेवन बिना भला रोग कैसे दूर होगा ? आठ कर्मों में चार घाती और चार अघाती कर्म है। घाती कर्म पर प्रहार करने के लिए ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप तीक्ष्ण अस्त्र के समान है। इन अस्त्रों द्वारा हमें कर्मो पर विजय प्राप्त करना है। अन्य प्रकार से भगवंत ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूपी पंचशील धर्म बताया है। इनमें प्रथम स्थान अहिंसा का है।

'आचारांग सूत्र' में प्रथम अध्ययन में ही भगवान ने हिंसा के त्याग का उपदेश दिया है। अहिंसा की भावना उत्थान का मार्ग है और हिंसा की भावना में पतन है। अहिंसा सुख का राजमार्ग है और हिंसा दुःख और अशांति का मार्ग है। अहिंसा ऐसी संजीवनी है जो दुःख से बेहोश बने प्राणियों को नवजीवन प्रदान करती है। अहिंसा रामबाण औषधि है, जिसके सेवन से अशांति रूपी व्याधि दूर हो जाती है। अहिंसा अमृत है और हिंसा विष। समस्त शास्त्रों का सार है **'अहिंसा परमो धर्मः।'** अहिंसा और संयम मोक्ष का साधन है। आज तो जिधर देखिए हिंसा का साम्राज्य छाया हुआ है। आज की सरकार भी हिंसक शस्त्रों के सर्जन को प्रोत्साहित कर रही हैं। वैज्ञानिक शोध भी उस ओर वायु वेग से बढ़ रही है। दिन-प्रतिदिन नये-नये शोध सामने आ रहे हैं। यहाँ बैठे-बैठे हजारों मील दूर घटने वाली घटनाओं और खबरों को आप जान सकते हैं। कुछ घँटों में सैंकड़ों मील का सफर तय कर सकते हैं। ऐसे बढ़ते साधनों को देख आप सोचते होंगे कि हम बहुत कुछ कर रहे हैं। परन्तु विचार करने पर पायेंगे कि जिस अनुपात में वैज्ञानिक शोधों में वृद्धि हुई उस अनुपात में विकास तो नहीं पर विनाश ही बढ़ा है। मौज-शौक के साधन बढ़ने से आदमी कमजोर, कंकाल जैसा बन गया है और अणुबम, एटम (परमाणु) बम का आविष्कार होते ही मनुष्य भयभीत बन गया है।

भारत में चारों ओर पश्चिमी हवा फैल रही है। परिणामस्वरूप आर्य होते हुए भी मनुष्य अनार्य बन गया है। तथा अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ गंवाता है। हमारे सर्वज्ञ भगवंत हजारों वर्ष पहले जो समझा गये थे, वही बातें आज वैज्ञानिकों द्वारा प्रमाणिक की जा रही हैं। देव विमानों की चर्चा शास्त्रों में सुनकर लोग कहते थे कि 'यह सब गप है।' परन्तु आज तो आपको प्रत्यक्ष दिखाई देता है ना ? समझ भी रहे है कि भगवान ने जो कुछ कहा था बिल्कुल सत्य है। यह सब देख-सुनकर शास्त्रों के प्रति आपकी श्रद्धा दृढ़ होनी चाहिए। इसके बदले हर दिन श्रद्धा के कदम डगमगाते नजर आते हैं। यह अफसोस की बात है। बंधुओं ! कुछ समझिए। विज्ञान चाहे जितना बढ़ा हो, पर वह अपूर्ण है। जबकि अपने भगवंत पूर्ण हैं। विज्ञानवादियों को समय-समय पर अपने सिद्धान्तों में परिवर्तन करना पड़ता है - इसीसे प्रमाणित हो जाता है कि वे अधूरे है। सर्वज्ञ भगवंतों के सिद्धान्त तीनों काल में कभी नहीं बदलते। अतः समझिए कि सर्वज्ञ पूर्ण है और वैज्ञानिक अपूर्ण।

भगवंतों ने जिस जगत को अपने ज्ञान में देखा है, उसका थोड़ा-भाग भी वैज्ञानिक नहीं ढूँढ सके है। पृथ्वी गोल है। पृथ्वी का नक्शा इस प्रकार का

है । भूगोल शास्त्र में जितने देश और जितनी दुनिया की तलाश इन अपूर्ण वैज्ञानिकों ने की है वह जैन शास्त्रों की दृष्टि से सिंधु में बिंदु के समान है । पहले के जमाने में जो लोग युद्ध में जाते थे, उन्हींकी वैसी मृत्यु होती थी जैसी बम के आविष्कार के बाद अब गाँव के गाँव साफ हो जाते है । यह सब होने का मुख्य कारण जीव का अज्ञान है । इतने आविष्कारों के पश्चात् भी संसार में कहीं सुख-शांति का लेश तक दिखाई नहीं देता । जहाँ देखिए दुःख, दुःख और दुःख ही है । यदि आपको सुख और शांति की कामना है, तो विज्ञानवाद को छोड़कर भगवान महावीर द्वारा बतायी अहिंसा को अपने जीवन में अपनाइए । *'आत्मवत् सर्व भूतेषु ।'* हर आत्मा हमारी आत्मा के समान ही है, ऐसी भावना रखिए । जैसे आपको सुख प्रिय है, वैसे ही संसार के प्रत्येक जीव को सुख प्रिय है । 'आचारांग सूत्र' में भगवान ने कहा है कि *"सव्वेसिं जीवियं पियं ।"* सभीको जीवन प्रिय है । दूसरों को दुःख देने से दुःख मिलता है और सुख देने से सुख । आज किसीके दुःख में सहभागी बनेंगे तो कोई आपके दुःख में भी सहभागी बनेगा । दूसरों का दुःख देख आपका हृदय द्रवित होना चाहिए । सच्चा श्रावक दूसरों का दुःख नहीं देःख सकता । जिसके जीवन में अनुकंपा होती है, वही अहिंसा व्रत का पालन कर सकता है ।

जगत के जीवों को भयंकर दुःख में पीड़ित देखकर करुणासागर भगवंत ने अपार करुणा के साथ कहा, "हे भव्य जीवों ! अनंतकाल से मोह, मिथ्यात्व और माया के जाल में फँसकर अनंतकाल तक भटके । अब तो जागो, समझो और देखो ।" आपके जीवन का एक-एक स्वर्णिम अनमोल क्षण व्यर्थ जा रहा है । जिसे फिर से पाना मुश्किल है । फिर भी जीव जागते नहीं । उन्हें सावधान करते हुए ज्ञानी फिर भी कहते है कि 'हे जीव ! इस बेहोश दशा से निकलकर होश में आओ ।'

बंधुओं ! हम सोचें तो यह जीव वास्तव में एक राजकुमार है । अनंत कर्म की वर्गणाएँ उसकी काया है । राग-द्वेष-मोह, बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह आदि उसके परिवार है । इस परिवार का सबसे बड़ा और लाड़ला लड़का है मोह । वह समस्त संसार को प्रिय है । इस लाड़ले को सभी लाड़ करते है । परन्तु यदि जीव में जरा समझ हो तो वह जान लेगा कि उसने वैरी को गले-लगाया है । जो वैरी को गले लगाता है उसके घर में आग लगती है । यदि घर को सहीसलामत रखना हो तो अपने घर की ओर ध्यान दीजिए । कबतक पर घर में भटकते रहेंगे ? भटकता है कौन ? जिसका कोई ठिकाना न हो । जो खानदानी है, इज्जतदार है, वह इधर-

उधर नहीं भटकता । आत्मा मोहदशा में पागल बनकर अपना होश गँवाकर परिभ्रमण बढ़ा लेता है और मोह के मृदु साधनों में लीन बनता जाता है । कभी विचार किया है कि इसका परिणाम क्या होगा । मोहनीय कर्म की अट्ठाइस प्रकृति है। उसमें पच्चीस चारित्र मोहनीय की और तीन दर्शन मोहनीय कर्म की है । दर्शन मोह ने जीव को ऐसा भर्माया है कि उसे सत्य मार्ग सूझता नहीं ।

दर्शन मोहे तारी मति मुंझाणी, चारित्र चूक्यो एनी श्रद्धा न आणी.
समझीने कर श्रद्धा तो थाए बेड़ो पार -
दीपक प्रगटे दिलमां जिनवाणी जयजयकार... शास्त्रों ना अजवाले...

मोह में मूर्छित जीव उसीमें डूबा रहता है । जिसने नीले रंग का चश्मा पहन रखा है, उसे सफेद रंग कैसे दिखेगा ? वस्तु सफेद रंग की होने पर भी नीले रंग के चश्मे के प्रभाव से उसे सबकुछ नीला ही दिखाई पड़ता है । संसार का राग दुःखदायी होने पर भी जीवों को सुखदायी प्रतीत होता है । उदाहरणस्वरूप, एक बाग में चिडियाँ आनन्द-किल्लोल कर रहीं हों, तभी किसीने आकर वहाँ ज्वार के दाने बिखेरे । चिड़ियाँ प्रसन्न हो जाती है कि, 'अहो ! कितना अच्छा भोजन मिल गया ।' आनन्दपूर्वक दाना चुगने लगती हैं । परन्तु उन्हें यह पता नहीं कि इस आनन्द के क्षण के पीछे मौत का आमंत्रण है । यह तो शिकार फँसाने के लिए डाला गया चारा है । शिकारी आया और चिड़ियाँ जाल में फँसाकर ले गया, अब तो मौत ही है ना ? इसी प्रकार हे बंधुओं ! इस संसार में पुत्र-पत्नी-परिवार और धन-वैभव में आपको सुख दिखता है, परन्तु समझ लीजिए कि यह तो जाल में फँसाने के लिए चारा फेंका गया है । मोहदशा में आपको यह ज्ञात नहीं होता कि इस क्षणिक सुख के पीछे दुःख के मेरु समान पर्वत खड़े होंगे । जिस वस्तु को भोगने पर आनन्द प्रतीत हो, उसके बारे में सोचना चाहिए कि इसका गुण क्या है ? इसका परिणाम क्या होगा ? इतना विचार करते ही समझ में आ जायेगा कि मैं जिसके पीछे पागल बन रहा हूँ, उसमें खोना उचित नहीं है । जो संसार में रचे-पचे है, वे भवसागर में भटके है । ज्ञानी कहते है कि 'काल के पहिए नहीं होते, परन्तु वह अविरत रूप से गति करता रहता है और तेरे जीवन के अनमोल स्वर्णिम क्षण लेता जाता है ।' अतः तू अपना काम कर ले । हे जीव ! अन्तर्चक्षु खोल और अपना जीवनपथ निहार ले !

"उघड़े अंतरना कमाड, तो मिटे मोहनी मनवार,
टले रागनी रंजाड, सुख वृष्टि शतधार ।"

देवानुप्रियों ! आपकी तिजोरी में धन-माल-रत्न आदि भरे हुए है । जब आपको पैसों की जरूरत हो तब तिजोरी के पास जाकर खड़े हो जाएँ और घंटे भर तक जाप करें कि 'हे तिजोरी ! मुझे रुपया दो ।' तो क्या रुपये मिल जाएँगे ? चाबी लगाकर दरवाजा खोलेंगे तो पैसे मिलेंगे । एक द्रव्य लक्ष्मी पाने के लिए इतना पुरुषार्थ करना पड़ता है, तो शाश्वत आत्मिक लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए कितना पुरुषार्थ आवश्यक होगा ? एक बार आँखें बंद करके विचार कीजिए :

"मैं हूँ कौन, कहाँ से आया, मुझे कहाँ पर जाना है, ।
कौन जगत में मेरा है, इस जग में कहाँ ठिकाना है ॥"

इतना चिंतन करेंगे, तो अंतर के द्वार खुलेंगे । अंतर के द्वार खुलने से चेतनदेव जागृत हुआ और फिर मिथ्यात्व, मोह, राग आदि की क्या बिसात है कि वे टिक सकें ? चेतनदेव सुषुप्त अवस्था में है, इसलिए इन सब ने यहाँ अड्डा जमाया है । जिस घर में स्त्री अकुशल होती है, उस घर में पंछी अपने घोंसले बना लेते हैं, चूहे अपने बिल बना लेते हैं, परन्तु जिस घर में सुघड़ स्त्री होती है, वहाँ चिड़िया के घोंसले या चूहे के बिल नहीं होते । आप एक कहावत का प्रयोग करते हैं ना कि **'जिसका राजा अंधा, उसकी सेना कूएँ में'** और जिसका मालिक जागता हो उसकी सेना को कोई आँच नहीं आती । अपना नायक चेतन है । यदि चेतन जड़ का पुजारी बनकर चमड़े में ही रम जाये, राग-रंग का रागी बन जाये, तो चतुर्गति के बड़े कूएँ में गिर गया ही समझिए ।

द्रौपदी का अधिकार

गुरु शिष्यों के सामने नागेश्री का नाम जाहिर करते है : बंधुओं ! पुद्गल का राग ही जीव का नुकसान करता है । यदि राग की यह शरारत टल जाये तो निःशंक रूप से शाश्वत सुख की प्राप्ति हो जाये । जिन्हें काया का सम्पूर्ण राग छूट गया था, ऐसे धर्मरुचि अणगार ने संयम की रक्षा के लिए कड़वी तुंबी का आहार अपने उदर में पचा लिया । भगवान ने 'आचारांग सूत्र' में कहा है :-

"जे असत्ता पावेहिं कम्मेहिं उदाहु ते आयंका फुसन्ति इति उयाहु धीरे ते फासे पुट्ठो अहियासइ से पुव्विपेयं पच्छापेयं भेउर धम्मं विध्वंसणधम्मं अधुवं अणिइयं असासयं चयावचइयं विप्परिणाम धम्मं पासह एयं रुवसंधि समुप्पेहमाणस्स इयकायणरयस्स इह विप्पमुक्कस्स नत्थि मग्गे विरयस्स त्तिबेमि ।"

जो साधक पाप कर्म में रत नहीं है, बल्कि संयम में लीन है, पूर्व कर्मों के उदय से कदाचित उसे कोई व्याधि या उपाधि आ जाये तो शांति से सहन करना चाहिए- ऐसा तीर्थंकर देव का फरमान है । साथ ही यह विचार करना चाहिए कि यह मेरे कर्मों का उदय है, आगे या पीछे यह दुःख सहन तो करना ही है । औदारिक शरीर है, कभी तो छिन्न-भिन्न होना ही है । इसका स्वभाव ही नष्ट होना है, अध्रुव, अनित्य अशाश्वत, नश्वर और घटने-बढ़ने वाला है । अतः हे साधक ! इस शरीर के स्वरूप तथा प्राप्त अवसर का विचार कर ले । जो साधक देह के स्वरूप के द्रष्टा और अवसर के विचारक हैं, आत्मा के गुणों में रमण करनेवाले है, शरीर आदि के प्रति निरासक्त और त्यागी हैं, उन्हें संसार में भटकना नहीं पड़ता । धर्मरुचि अणगार ने भी यही विचार किया कि यह शरीर सड़न-गलन स्वभाव वाला और नश्वर है, इसे कभी न कभी तो छोड़ना ही है, तो जीवों की रक्षा के लिए देह का बलिदान देना सर्वश्रेष्ठ है ।

धर्मघोषमुनि अपने श्रमण-श्रमणियों को बुलाकर कह रहे है कि मेरे अंतेवासी, मासखमण के तपस्वी धर्मरुचि अणगार गोचरी के लिए घूमते हुए नागेश्री के घर पहुँचे । उस नागेश्री ने क्या दिया ? ऐसे सुविनीत शिष्य की मृत्यु के बारे में कहते हुए गुरु का हृदय द्रवित हो गया । उस नागेश्री ब्राह्मणी ने कड़वी तुंबी का साग उनके पात्रा में बहराया ।

"तए णं से धम्मरुई अणगारे अहपज्ज मित्ति कट्टु जाव कालं अणवकंखेमाणे विहरइ ।" धर्मरुचि अणगार ने उसे क्षुधा निवृत्ति के लिए पर्याप्त जानकर स्वीकार किया । अहो ! अपने आँगन में कल्पवृक्ष फला, मासखमण के तपस्वी संत पधारे है ऐसा शुद्ध अध्यवसाय नहीं आया । उल्टे मुनि को घूरा मानकर कड़वी तुंबी का साग वहाँ उलट दिया । जीव मान-कषाय का पोषण करने के लिए अन्य जीवों का अहित करने के लिए तैयार हो जाता है । कर्म बाँधते समय जीव को यह ख्याल नहीं आता कि इन कर्मों के उदय के समय रो-रोकर भोगने पर भी वे खत्म नहीं होंगे । उस समय कोई बचा नहीं सकेगा । माल खाने के लिए सब तैयार रहते है, परन्तु मार खाने के लिए कोई भी नहीं आता । यह संसार स्वार्थ से भरा हुआ है । जबतक आपके पास धन-संपत्ति है, तबतक सभी सगे बनकर आयेंगे और पैसा न रहने पर कोई सगा भी नहीं होता । माता कितने कष्ट सहकर, ऊँची आशाएँ लेकर पुत्र का पालन-पोषण करती है । बड़े और कुशल हो जाने पर कुछ ही पुत्र होंगे जो माता का ख्याल रखते हों । माता की आशाओं की मीनारें टूटकर चकनाचूर हो जाती हैं ।

माँ-बेटे का प्रसंग : एक माँ-बेटे थे । माँ विधवा थी । विधवा होना यों ही दुःख का कारण है पर पति यदि धन-वैभव छोड़ गये हों तो दुःखी बहन को कुछ तो राहत होती है, परन्तु जिसके धनी के साथ-साथ धन भी चला गया हो, उसकी क्या हालत होती है ? यह तो भुक्तभोगी ही जान सकता है । इस माँ के पास तो धन भी न था । चक्की के पहिये चलाकर अपना जीवननिर्वाह कर रही है । पुत्र को भी संस्कारी बना रही है । आज विज्ञान की प्रगति से विधवा बहनों के उद्योग को काफी धक्का लगा है । माता विचार करती है कि 'मैं कड़ी मेहनत करूँगी, परन्तु बच्चे को शिक्षित बनाऊँगी ।' माता को आशा है कि 'पढ़-लिखकर बेटा होशियार और सुखी होगा तथा मेरी वृद्धावस्था भी ठीक से गुजरेगी ।' पुत्र भी बहुत गुणी और विनयी है । पुत्र को पढ़ने के लिए परदेश भेजा । पढ़ाई पूरी कर काम पर लगा, विवाह हुआ । माता ने इच्छा जाहिर की कि 'मैं अकेली गाँव में रहकर क्या करूँ ? यदि तू कहे तो मैं भी तेरे साथ रहने चली आऊँ ।' पुत्र ने बड़े स्नेह और आदर से माँ की भावना का स्वागत किया । माता के आने से पुत्र प्रसन्न हो गया, परन्तु बहू का मुँह बिगड़ गया । उसे माँजी बँधनरूप लगने लगी । लड़का बीच में घिर गया कि किसका साथ दे, किसकी माने ? माता ने कितने कष्ट सहकर मुझे पाला, इस योग्य बनाया, उनका उपकार कैसे भूला जा सकता है ? पत्नी को मैं ब्याहकर लाया हूँ । अब किसका कहा मानूँ ? कहावत है ना, **'दाहिना हाथ मुँह की ओर ही बढ़ता है'** ।

एक दिन बेटा-बहू की बात माता के कानों में पड़ गयी । बहू रो-रोकर कह रही थी कि "आप या तो मुझे इजाजत दीजिए या माता को विदा कीजिए । जहाँ माँ है वहाँ मैं नहीं रह सकती ।" सुनकर माँ ने सोचा कि 'मेरे कारण इनके जीवन में कड़वाहट घुल रही है, तो मुझे इस घर में नहीं रहना चाहिए ।' दूसरे ही दिन माता ने बेटे से कहा कि 'मेरी जैसी वृद्धाएँ यात्रा करने जा रही है, मैं भी उनके साथ जाना चाहती हूँ ।' लड़के ने यह भी नहीं पूछा कि 'किस स्थान की यात्रा पर जा रही हैं, किस गाड़ी से जाना है ? तुम्हारे पास रुपये न होंगे, तो कितने रुपये दूँ ? बस, लड़के के मन में तो यह आया कि यदि माता चली जाती है तो घर से कलह विदा हो जायेगा । इस तरह वृद्धा माँ यात्रा का बहाना करके घर से निकल आई । उसी गाँव में उसके बेटे का मित्र रहता था, उसके घर पहुँची । मित्र ने माँजी को देख बहुत स्वागत किया, पर सोचा अभी तो इनकी उम्र पचास की भी न होगी और इतनी वृद्ध दिखाई देने लगी है । माँजी ने कारण बताया कि 'यात्रा करके

लौट रही थी तो सोचा तुम सबसे भी मुलाकात करती चलूँ ।' माता वहीं रहने लगीं। घर के काम-काज और अपने व्यवहार से सबकी प्रिय बन गयीं । धीरे-धीरे उन्हें वहाँ रहते दो महीने बीत गये, पर वे जाने का नाम नहीं लेती । मित्र के मन में आया जरूर कोई बात है । मेरे मित्र को महीने के पाँच सौ रुपये मिलते है और वह उनका एकमात्र पुत्र है फिर अपना घर छोड़कर यहाँ क्यों रह रही है ? बात-बात में वह माताजी से पूछता है, पर उनका जवाब है कि जैसा मेरा घर वैसा ही यह घर है, यही मानकर रहती हूँ और कोई बात नहीं है । माता ने सोचा इसके मन में भी शंका आ गयी है, अब इससे अधिक छिपाना संभव नहीं होगा । अतः यहाँ से चल देने में ही भलाई है । वहाँ से निकलकर जगह-जगह काम करते हुए वह अपने बेटे के घर पहुँची । पंद्रह-साल व्यतीत हो चुके थे । गरीबी और मेहनत की मार ने उनकी हुलिया ही बदल दी थी । इसलिए बेटा-बहू पहचान न पाये । तब माता ने सोचा, जब ये पहचानते ही नहीं तो उनके घर माँ बनकर नहीं रहना । काम की तलाश में पहुँची एक वृद्धा के रूप में, उन्होंने पूछा कि कोई काम करनेवाली की जरूरत है ? बहू ने पूछा, "माँजी ! तुम क्या तनख्वाह लोगी ?" तो बोली, "खाना-कपड़ा और रहने को जगह, बस ।"

शाम को लड़का लौटा तो बहू ने नौकरानी की बात बतायी । लड़के ने कोई उत्सुकता नहीं दिखाई । घर की व्यवस्था तुम्हारे जिम्मे है, जो तुम्हें ठीक लगे करो । समय बीतने लगा ।

एक बार ऐसा हुआ कि बहू का अढ़ाई वर्ष का लड़का बाहर खेलने गया था और खेलते-खेलते न जाने किधर निकल गया । बहू घबरा गई, बहुत ढूँढा । पति को खबर दी और खूब रोने लगी । वृद्धा माता उससे कहती है, "शांत हो जाओ । अभी मिल जायेगा । तुम्हारा तो अढ़ाई वर्ष का बालक खोया है । तुमने किसीके अठारह वर्ष के बच्चे को उसकी माँ से दूर किया होगा । क्या ऐसा किया है ? घबरा मत । जीव जैसा कर्म करता है उसे वैसे ही फल भोगने पड़ते हैं ।" घर से बाहर निकल वृद्ध माँ बालक को ढूँढने लगीं । कुछ ही दूर गली की झोंपड़ी में एक आदमी रोते हुए बच्चे को चुप कराने की कोशिश कर रहा था । माँजी पहचान गयी और बच्चे को सीने से लगा लिया । उस व्यक्ति को बहुत धन्यवाद और आशीष देकर, लगभग भागती हुई घर आयीं । बहू-बेटा बच्चे को देखकर हर्षित हो गये । परंतु माँजी की आँखों में आँसू आ गये । दोनों पूछते हैं कि "तेरी आँखों में आँसू क्यों ?" माँ कहती है कि "पुत्र माता को कितना प्यारा होता है, तेरा अढ़ाई वर्ष का बालक बिछड़ा तो कितना रुदन

कर रही थी, मेरा तो पंद्रह वर्ष से पुत्र बिछड़ा हुआ है ।" "माँजी तुम्हारा बेटा कैसे बिछड़ा ?" याद आते ही माँ की आँखें बरसने लगीं, पर पुत्र यह भेद न समझ सका । इसी तरह संसार चलता रहा ।

एक बार वहू चार दिनों के लिए पीहर गयी थी, अचानक पुत्र की तबियत बिगड़ी । सिर-दर्द से फटने लगा । माता ने बाम लेकर सिर पर लगाया और दबाने लगी । एकाएक बेटे को याद आया कि मेरी माँ भी ऐसे ही दबाती थी । बार-बार माँजी की ओर गौर से देखने लगा । उसे नक्की हो गया कि यह मेरी माँ ही है । एकदम उठकर माँ के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा, "माँ ! यात्रा के बहाने तू चली गयी थी, वही अब लौटी है । माता, तू सच कह, तू ही मेरी माँ है ना ? अब माँ - बेटे का भेद खुल गया । पुत्र माफी माँगने लगा । माता ने कहा, "पुत्र ! इसमें तेरा दोष नहीं है, यह तो मेरे कर्मो का दोष है ।" लौटकर जब वहू को ज्ञात हुआ कि यह मेरी सासुजी हैं, तो उसे भी पछतावा हुआ और उसने क्षमा मांगी । यह संसार ऐसा ही है ।

धर्मघोष मुनि अपने संत-सतियों से कह रहे है कि "नागेश्री ब्राह्मणी ने अपने तपस्वी धर्मरुचि अणगार को कड़वी तुंबी का आहार वहराया । उस जहरीले आहार को धर्मरुचि ने अपने पेट में पचा लिया । धर्मरुचि अणगार ने बहुत वर्षो तक श्रामव्य पर्याय का पालन किया है और पालन करके, आलोचना करके, प्रतिक्रमण, निंदा करके निःशल्य होकर समाधि में लीन हो गये । मृत्यु के समय काल करके वे सौधर्म आदि बारह देवलोक से ऊपर नौ ग्रैवेयक से भी आगे सर्वार्थसिद्ध विमान में जहाँ तैंतीस सागर की स्थिति वाले सभी देव होते हैं, वहाँ तैंतीस सागर की स्थिति वाले देव बने हैं । वहाँ से च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेंगे । नागेश्री ब्राह्मणी ने हमारे तपस्वी अणगार को जहरीला आहार वहराया जिससे उनके प्राण चले गये, सुनकर सभी संत-सतियों में हलचल मच गयी । अब क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

आज अट्ठाई का पवित्र दिन है । आप सभी आराधना में जुड़ने के लिए तैयार हो जाइए । तप और ब्रह्मचर्य का मंडप सजाइए । आप अपने मेहमान का स्वागत बहुत अच्छी तरह से करते है ना ? पर्वाधिराज भी हमारे आँगन में आये है तो उनके स्वागत के लिए दान-शील-तप-भाव के मंडप सजाइए । हर कोई यथाशक्ति तप-त्याग, ब्रह्मचर्य आदि शुभभावों में जुड़ते जाइए । अधिक भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

श्रावण कृष्णा १४, गुरुवार	दिनांक : १५-८-७४

स्वतंत्रता-दिवस

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

आज परम पावन पर्यूषण पर्व का दूसरा दिन है । हमारी आत्मा में परभाव के जो दुर्गुण भरे हुए हैं उनका विसर्जन करने की पवित्र प्रेरणा लेकर यह पर्व आया है । देवानुप्रियों ! पर्यूषण पर्व आत्मा की उपासना का पर्व है । इन दिनों में आत्मनिरीक्षण करना है कि मन में कहीं क्रोध की भट्टी तो नहीं सुलग रही है । मान के सर्प अपने जहरीले दंश तो नहीं दे रहे है ना । तृष्णा का सागर उन्मादी तो नहीं बन गया है ! वासना के कीड़े तो नहीं कुलबुला रहे ? विकारों की आँधी तो नहीं उठ रही ? कदाचित यह स्थिति हो तो उसे दूर करने के लिए पर्वाधिराज पर्यूषण आया है । पर्यूषण पर्व आपको यह संदेश देता है कि आत्मा में जो विकारों का अंधकार भर गया है उनका नाश करने के लिए सद्‌गुणों का दीप आत्मा में जलाइए । अंधकार से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की ओर और राग से त्याग की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है यह पर्व । हृदय को मांजकर मन की वृत्तियों को स्वच्छ बनाना है । यह सब करने के लिए सर्वप्रथम ज्ञान का दीपक जलाना होगा । अज्ञान अंधकार है और ज्ञान प्रकाश । ज्ञान का प्रकाश तो ऐसा है कि उसे तेल-बाती की भी जरूरत नहीं । ज्ञान स्वयं प्रकाशमान है । अतः उसे किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं । ज्ञान के अभाव के कारण आत्मा अनंत काल से भव-भ्रमण कर रहा है । भारत में लाखों जैन इस पर्व में पवित्रतम मंथन क्रिया-अनुष्ठानादि करके जीवन मंगलमय बनाते है ।

वस्तुतः ऐसे महान पर्व संसारी आत्माओं की भवसागर में डगमग करती जीवन-नैया को पार पहुँचाने के लिए प्रकाश स्तंभ के समान है । अज्ञान और प्रमाद की घोर निद्रा में सुप्त आत्माओं को जगाते है और कर्तव्यनिष्ठा का भान करवाते है । किसी आत्मा के साथ वैर-विरोध हुआ हो तो उसके साथ सच्चे हृदय से हार्दिक क्षमापना करने का आह्वान करते है । आलस्य और प्रमाद को झंझोड़ डालते

कर रही थी, मेरा तो पंद्रह वर्ष से पुत्र बिछड़ा हुआ है ।" "माँजी तुम्हारा बेटा कैसे बिछड़ा ?" याद आते ही माँ की आँखें बरसने लगीं, पर पुत्र यह भेद न समझ सका । इसी तरह संसार चलता रहा ।

एक बार बहू चार दिनों के लिए पीहर गयी थी, अचानक पुत्र की तबियत बिगड़ी । सिर-दर्द से फटने लगा । माता ने बाम लेकर सिर पर लगाया और दबाने लगी । एकाएक बेटे को याद आया कि मेरी माँ भी ऐसे ही दबाती थी । बार-बार माँजी की ओर गौर से देखने लगा । उसे नक्की हो गया कि यह मेरी माँ ही है । एकदम उठकर माँ के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा, "माँ ! यात्रा के बहाने तू चली गयी थी, वही अब लौटी है । माता, तू सच कह, तू ही मेरी माँ है ना ? अब माँ - बेटे का भेद खुल गया । पुत्र माफी माँगने लगा । माता ने कहा, "पुत्र ! इसमें तेरा दोष नहीं है, यह तो मेरे कर्मों का दोष है ।" लौटकर जब बहू को ज्ञात हुआ कि यह मेरी सासुजी हैं, तो उसे भी पछतावा हुआ और उसने क्षमा मांगी । यह संसार ऐसा ही है ।

धर्मघोष मुनि अपने संत-सतियों से कह रहे है कि "नागेश्री ब्राह्मणी ने अपने तपस्वी धर्मरुचि अणगार को कड़वी तुंबी का आहार वहराया । उस जहरीले आहार को धर्मरुचि ने अपने पेट में पचा लिया । धर्मरुचि अणगार ने बहुत वर्षो तक श्रामव्य पर्याय का पालन किया है और पालन करके, आलोचना करके, प्रतिक्रमण, निंदा करके निःशल्य होकर समाधि में लीन हो गये । मृत्यु के समय काल करके वे सौधर्म आदि बारह देवलोक से ऊपर नौ ग्रैवेयक से भी आगे सर्वार्थसिद्ध विमान में जहाँ तैंतीस सागर की स्थिति वाले सभी देव होते हैं, वहाँ तैंतीस सागर की स्थिति वाले देव बने हैं । वहाँ से च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेंगे । नागेश्री ब्राह्मणी ने हमारे तपस्वी अणगार को जहरीला आहार वहराया जिससे उनके प्राण चले गये, सुनकर सभी संत-सतियों में हलचल मच गयी । अब क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

आज अट्ठाई का पवित्र दिन है । आप सभी आराधना में जुड़ने के लिए तैयार हो जाइए । तप और ब्रह्मचर्य का मंडप सजाइए । आप अपने मेहमान का स्वागत बहुत अच्छी तरह से करते है ना ? पर्वाधिराज भी हमारे आँगन में आये है तो उनके स्वागत के लिए दान-शील-तप-भाव के मंडप सजाइए । हर कोई यथाशक्ति तप-त्याग, ब्रह्मचर्य आदि शुभभावों में जुड़ते जाइए । अधिक भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ४०

श्रावण कृष्णा १४, गुरुवार | दिनाक : १५-८-७४

स्वतंत्रता-दिवस

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

आज परम पावन पर्यूषण् पर्व का दूसरा दिन है । हमारी आत्मा में परभाव के जो दुर्गुण भरे हुए हैं उनका विसर्जन करने की पवित्र प्रेरणा लेकर यह पर्व आया है। देवानुप्रियों ! पर्यूषण पर्व आत्मा की उपासना का पर्व है । इन दिनों में आत्मनिरीक्षण करना है कि मन में कहीं क्रोध की भट्टी तो नहीं सुलग रही है । मान के सर्प अपने जहरीले दंश तो नहीं दे रहे है ना । तृष्णा का सागर उन्मादी तो नहीं बन गया है ! वासना के कीड़े तो नहीं कुलबुला रहे ? विकारों की आँधी तो नहीं उठ रही ? कदाचित यह स्थिति हो तो उसे दूर करने के लिए पर्वाधिराज पर्यूषण आया है । पर्यूषण पर्व आपको यह संदेश देता है कि आत्मा में जो विकारों का अंधकार भर गया है उनका नाश करने के लिए सद्गुणों का दीप आत्मा में जलाइए । अंधकार से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की ओर और राग से त्याग की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है यह पर्व । हृदय को मांजकर मन की वृत्तियों को स्वच्छ बनाना है । यह सब करने के लिए सर्वप्रथम ज्ञान का दीपक जलाना होगा । अज्ञान अंधकार है और ज्ञान प्रकाश । ज्ञान का प्रकाश तो ऐसा है कि उसे तेल-वाती की भी जरूरत नहीं । ज्ञान स्वयं प्रकाशमान है । अतः उसे किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं । ज्ञान के अभाव के कारण आत्मा अनंत काल से भव-भ्रमण कर रहा है । भारत में लाखों जैन इस पर्व में पवित्रतम मंथन क्रिया-अनुष्ठानादि करके जीवन मंगलमय बनाते है ।

वस्तुतः ऐसे महान पर्व संसारी आत्माओं की भवसागर में डगमग करती जीवन-नैया को पार पहुँचाने के लिए प्रकाश स्तंभ के समान है । अज्ञान और प्रमाद की घोर निद्रा में सुप्त आत्माओं को जगाते है और कर्त्तव्यनिष्ठा का भान करवाते हैं । किसी आत्मा के साथ वैर-विरोध हुआ हो तो उसके साथ सच्चे हृदय से हार्दिक क्षमापना करने का आह्वान करते है । आलस्य और प्रमाद को झंझोड़ डालते

है । आनन्द और उत्साह की लहरें चारों ओर छा जाती हैं - यह है पर्यूषण पर्व का रहस्य । हम भी इस पर्व का अभिनंदन करते हैं ।

चंपा श्राविका का प्रसंग : पर्यूषण पर्व के दिनों में चंपा श्राविका का नाम याद करते है । चंपा श्राविका ने छः महीने के उपवास की उग्र तपस्या की आराधना की थी । इस निमित्त से एक भव्य जुलूस निकला । वाद्यों की मधुर ध्वनि दिल्ली के बादशाह सम्राट अकबर के कानों तक पहुँची और बादशाह ने सेवकों से पूछा, "यह जुलूस किसका है ?" सेवकों ने उत्तर दिया, "जहाँपनाह ! चंपा श्राविका ने छः महीने का उपवास आदरा है, उसीके बहुमान में यह भव्य जुलूस निकाला गया है ।

छः महीने के उपवास की बात सुनकर बादशाह चकित हो गये । क्या यह संभव है ? बादशाह को यह बात सच नहीं लगती । क्या छः महीने तक भूखे रहा जा सकता है ? मैं तो एक दिन भी भूखा नहीं रह सकता । "वह यदि यहाँ रहकर इतने उपवास करके दिखाये तो मैं मानूँ ।" चंपा श्राविका को बादशाह के महल में लाया गया । उसे पहरे में रखा गया । स्वयं बादशाह भी उसकी खबर रखते । इस प्रकार छः महीने का उपवास पूर्ण हुआ । यह देखकर बादशाह का सिर उसके चरणों में झुक गया । "माँ तू तो साक्षात् देवी है । माँग जो चाहिए ।" चंपा श्राविका कहती है, "मुझे तो कुछ नहीं चाहिए, परन्तु आप यदि मुझे देना ही चाहते है तो मेरी भावना है कि जबतक आपका शासन रहे तबतक अहिंसा धर्म की दुन्दुभी बजे ।" चंपा श्राविका के तप के प्रभाव से बादशाह धर्म की महिमा समझ गये और जबतक उनका राज्य रहा तबतक अहिंसा धर्म का पालन होता रहा । यह है तप का अपूर्व प्रभाव । मुसलमान बादशाह ने भी ऐसी सुंदर जीवदया का पालन किया ।

भगवान नेमनाथ का प्रसंग : बंधुओं ! नेमनाथ भगवान के जीवन का प्रसंग तो आपने बहुत बार सुना है । नेमनाथ, राजुल से परिणय के लिए बारात लेकर आ रहे थे । रास्ते में पशुओं की करुण चीखें और क्रंदन सुनी । सारथी से पूछने पर मालूम हुआ कि इस परिणय में बारात के स्वागत-सत्कार के लिए इन पशुओं का वध किया जायेगा । ओह ! मेरे विवाह के लिए इतने सारे निर्दोष प्राणियों की हत्या ! नेमनाथ कहते है, "मुझे ऐसा विवाह नहीं करना है ।" नेमनाथ तो इन जीवों के प्रति करुणा भाव से द्रवित हो उन्हें छुड़ाना चाहते थे । जो प्राणी मृत्यु के भय

जो चीख रहे थे, उन छोटे बच्चों से उनकी माताओं ने कहा, "हे प्राणियों ! घबराओ नहीं, रोओ नहीं । राजुल से विवाह करनेवाला इतना दयालु और अहिंसा का पैगम्बर है कि वह हममें से एक की भी हिंसा नहीं होने देगा, किसीको मरने नहीं देगा । सभी को अभयदान देगा । अतः रोना-कलपना छोड़कर निर्भय रहो ।" पशुओं में भी नेमनाथ के प्रति इतनी श्रद्धा थी । जीवों की रक्षा के लिए नेमनाथ द्वार तक आकर भी लौट गये । फिर आत्मसाधना के पंथ पर प्रयाण करके सिद्ध गति में पहुँचे । कहने का आशय यह है कि जीवदया की खातिर कितना त्याग किया ।

आज तो हमारी आजादी का दिन है । उस मुसलमान बादशाह ने राज्य में सुंदर जीवदया पालने का आदेश दिया था और आज अपने स्वतंत्र देश में तो मानों अहिंसा को देशनिकाला दे दिया गया है । भयंकर कत्लखाने खुलते जा रहे हैं । वानर सप्ताह, मक्खीमार सप्ताह, मत्स्य उद्योग आदि योजनाओं का बोलबाला है। अहिंसा प्रधान भारत देश के लिए क्या यह शोभा देता है ? *'अहिंसा परमो धर्मः।' 'आत्मवत् सर्व भूतेषु'* जैसे सुंदर वाक्य हमारे नेताओं के कर्णपटों तक कब पहुँचेंगे ? तथा जीवन में उनका आचरण कब होगा ? ज्ञानी पुरुषों ने शांति की राह बताते हुए कहा है कि -

"जावन्त ऽ विज्जा पुरिसा सव्वे ते दुक्ख संभवा ।"

संसार में जितने अज्ञानी मनुष्य है वे सब दुःख उत्पन्न करनेवाले है । कीमती घोड़ा बहुत वेगवान हो सकता है, परन्तु उस पर सवारी करनेवाला यदि अंधा हो तो गंतव्य तक नहीं पहुँच सकता । इसी प्रकार क्रिया चाहे जितनी सुंदर हो, पर यदि साधक के हृदय में ज्ञान का प्रदीप ज्वलित नहीं है, तो सत्य का दर्शन नहीं कर सकता । आध्यात्मिक पंथ में उसका प्रयाण संभव नहीं होता । इसीलिए सर्वप्रथम ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है । भगवंत ने कहा है, *"पढमं नाणं तओ दया ।"* साधना के क्षेत्र में क्रिया के साथ ज्ञान का स्थान विशेष महत्त्व रखता है । आज मनुष्य को दुःख किस कारण से है ? अज्ञानता के कारण ।

अज्ञान पाप को जन्म देता है । अफ्रिका की एक जंगली जाति में यह मान्यता है कि 'मृत्यु के पश्चात् आदमी के साथ कब्र में जो वस्तुएँ रखी जायेंगी, वे अगले जन्म में उन्हें प्राप्त होंगी ।' कैसा भयंकर अज्ञान है । यह अज्ञान इतना बढ़ा कि किसी राजा या सरदार की मृत्यु के बाद उसकी स्त्रियों, गुलामों और नौकरों को

मारकर उसके साथ कब्र में गाड़ दिया जाता, जिससे परभव में राजा को नौकर-चाकर की कमी न हो । यह सब पाप अज्ञानता के कारण ही होता है ना ? इस अज्ञान ने कितने पाप करवाये है, सुनने से भी कलेजा काँप उठता हैं । डहोभी जाति में हर वर्ष कुछ नौकरों को मार डाला जाता है, सिर्फ इसलिए कि मरे हुए राजा या बादशाह को नये-नये अनुचर मिलते रहें । ये लोग मानव की खोपड़ी से अपने घर सजाते है और यदि कोई यह सजावट का सामान चोरी कर ले तो युद्ध तक हो जाते हैं ।

जैनदर्शन की मान्यता के अनुसार जीव का इस संसार में भटकते रहने का मुख्य कारण अज्ञान और कर्म है । कर्म आत्मा का रोग है । जबतक कर्म रूपी रोग नष्ट नहीं होता तबतक आत्मा को भवभ्रमण से मुक्ति नहीं है । धर्मरुचि मुनि ने गोचरी में प्राप्त जहरीले तुंबी के साग को भी हँसते हुए पीकर पचा लिया । जहर पचा लेना ही सच्ची साधुता है । ऐसे कठिन समय में, ऐसे कठोर प्रसंगों में क्षमा रखना, कषाय का कण भी मन में न आने देना ही संयमी जीवन का सच्चा गौरव है । स्वर्ण की परीक्षा के लिए उसे अग्नि में डाला जाता है । हीरे को खराद पर चढ़ाया जाता है, तभी सच्ची परख होती है । ऐसे ही साधक दशा में उपसर्ग आने पर ही ज्ञात होता है कि मैं हीरा हूँ या कंकड़ ? धर्मरुचि अणगार काल पूर्ण कर सर्वार्थसिद्ध विमान में गये ।

आज स्वतंत्रता-दिवस है । परन्तु आजकल तो स्वतंत्रता के स्थान पर स्वच्छन्दता फैली हुई है । आज पंद्रह अगस्त का दिन, जब अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हुए और आप मानते भी हैं कि हम स्वतंत्र हो गये । लेकिन अभी तक आप सही अर्थो में स्वतंत्र नहीं हुए हैं । स्वतंत्रता का अर्थ नहीं समझे हैं । आप मोह-माया-ममता और परिग्रह के बँधन से बँधे हुए है । परिग्रह की कितनी ममता है । धन का मोह छूटे तब तो धर्म किया जाये । परन्तु धन से धर्म की विजय नहीं हो सकती । देवानुप्रियों ! आज तो आप धर्म और धन को एक ही खाते में चढ़ा देते हैं परन्तु धन से कभी धर्म खरीदा नहीं जा सकता । धन और धर्म दोनों दो भिन्न वस्तु है । आप कहेंगे धन के बिना एक छोटी-सी चीज भी नहीं मिलती, एक दातुन तक नहीं मिलती । आपकी बात [illegible] है । फिर [illegible] सी महत्त्वपूर्ण चीजें होती है, जो पैसे से खरीदी न[illegible] वह तो [illegible] प्राप्त होती है । पैसों से बाटा के बूट ले सकते है, [illegible] मि[illegible] उत्तम प्रकार की

मखमली, रेशमी गद्दी मिल जायेगी, पर क्या नींद भी मिलेगी ? पैसा चश्मा दिला देगा, पर आँख दिला पायेगा ? मनचाहा स्वादिष्ट भोजन पैसे से प्राप्त होगा, पर क्या भूख भी ? जिस पैसे से भोजन मिले, गद्दी मिले, परन्तु भूख और नींद न मिले, ऐसी संपत्ति किस काम की ? भूख के लिए, नींद के लिए गोलियाँ खानी पड़े, ऐसी संपत्ति की कोई कीमत नहीं । आपने जब जन्म लिया, उसीके साथ आपको हाथ-पैर-कान-नाक-आँख आदि सुंदर शरीर प्राप्त हुआ है । यह कहाँ से मिला ? धर्म से ही यह शरीर और अंगोपांग प्राप्त हुए हैं ।

आज से सत्ताइस वर्ष पहले आज के दिन आप गुलामी से मुक्त हुए थे । परन्तु यह गुलामी अब तक आपके ऊपर सवार है । आज मैनेजर बदलते है पर मालिक नहीं बदलते । हमें आपकी इस स्वतंत्रता से आनन्द प्राप्त नहीं होता । हम ऐसी स्वतंत्रता को स्वतंत्रता नहीं मानते । गुलामी दो प्रकार की होती है- एक बाह्य और दूसरी आभ्यंतर । भारत स्वतंत्र हुआ, पर देश में कितनी आफतें आ रही हैं ? दिनों-दिन तरह-तरह के आक्रमण बढ़ते जा रहे हैं और प्रजा मुसीबत में घिरती जा रही । अतः इस राजनीतिक गुलामी से भी ठीक से मुक्त नहीं हुए और कर्म की आभ्यंतर गुलामी तो अभी बनी हुई ही है ।

कर्म कैसे हैं ? आपकी आशाओं की मीनार जिस पर खड़ी है वह पुत्र अकाल मरण पाये तो दुःख होता है ना ? यदि कैंसर जैसा भयंकर रोग हो जाये तो सीधा टाटा (अस्पताल) में दाखिल करवा कर, रोग-मुक्त करने के हर संभव प्रयत्न करते हैं । परन्तु क्या ये वैज्ञानिक शोध तुरंत दर्द दूर कर सकते है ? वेदनीय कर्म शांत हों तो दर्द में शांति मिलती है और सातावेदनीय का उदय हो तो दर्द मिट जाता है । यह सब कर्म के अधीन है । पुण्य के उदय से भव्य-बँगला मिल जाये, हर कमरे में फोन हो, आँगन में चार मोटर खड़ी हो, करोड़ों-अब्जों की संपत्ति के स्वामी हों और अपनी इच्छानुसार इच्छित सुख-भोग रहे हों, फिर भी कर्मराजा की कैद में फँसे हुए है । भयंकर परदेशी आक्रमण और स्वदेशी अंधाधुंधी से भले ही आप मुक्त हो गये, परन्तु कर्म के तो कैदी ही है, अर्थात् गुलाम हैं । आपको यह गुलामी गुलामी नहीं लगती, यही अज्ञानता है । हमें आपकी आँखें खोलनी हैं । लेकिन आप तो आँख बंद कर देते है । आज रूस, अमरिका, कनाडा आदि देश भारत को बहुत कुछ प्रदान करते है, पर किन शर्तो के साथ ! उनकी सारी शर्तें स्वीकार करते है, परन्तु कर्म की गुलामी से मुक्त होने के लिए भगवान ने जो शर्तें

रखी है, उन्हें स्वीकार करने को मन तैयार नहीं होता । क्योंकि पाँच इन्द्रियों और मन का गुलाम बन गया है यह जीव । इंद्रियों तथा मन का कहा करने के लिए स्वयं को गिरवी रखने के लिए भी तैयार हो जाता है । आज विद्यार्थी कहते हैं, 'हमें शिक्षक की गुलामी नहीं चाहिए,' पत्नी कहती है, 'पति की,' नौकर कहता है, 'मालिक की गुलामी हम नहीं चाहते ।' इन सब स्थलों में गुलामी का, परतंत्रता का आभास होता है, परन्तु कर्म की परतंत्रता नहीं खलती । कर्म के अधीन और इन्द्रियों का वशवर्ती आत्मा ही वास्तविक गुलाम है । पाँच इन्द्रियों और छठा मन, ये तो आत्मा के नौकर हैं, लेकिन आज तो आत्मा ही नौकर बन गया है । आज नौकरों का साम्राज्य व्याप्त है । मन रूपी नौकर कहेगा, चलो कोका कोला पीना है तो तैयार । यह गुलामी ही तो है । पुत्र पिता की आज्ञा मानने कि लिए तैयार नहीं । आप अपने पुत्र पर भी हुकुम नहीं चला सकते । यह स्वतंत्रता है या पराधीनता ?

अंग्रेज सरकार ने भारतभूमि पर कितने वर्ष शासन किया ? सिर्फ डेढ़ सौ वर्ष । भारत पर उसने मात्र डेढ़सौ वर्ष तक अपनी सत्ता जमायी और भारत को यह परतंत्रता महसूस हुई । फिर ब्रिटिश की गुलामी से मुक्त होने के लिए भारत की जनता ने कितना पुरुषार्थ किया ? कितने ही जवानों ने अपना रक्त दिया, कितनों को काल-कोठरी की कैद मिली, कितनों ने लाठी का वार झेला । डेढ़ सौ वर्ष की अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होने और स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए कितना कुछ सहना पड़ा, फिर भी क्या रामराज्य जैसी स्वतंत्रता मिल पायी ? स्वतंत्रता के बदले स्वच्छंदता बढ़ रही है । अंग्रेजों से भी अधिक कष्ट देने वाले दुश्मन है हमारे कर्म । मोहनीय कर्म ने डेढ़ सौ, दो सौ या पाँच सौ वर्षों से नहीं, अनंत काल से हम पर अपना साम्राज्य जमाया हुआ है । अंग्रेजी राज्य में जो कष्ट सहन किये उनसे अनंतगुणा अधिक कष्ट जीव कर्मों के राज्य में सहन कर रहा है । इससे कैसे छुटकारा मिले, यही विचार करना चाहिए । यह आजादी तो बहुत बार पायी और भोगी, परन्तु दुःख दूर नहीं हुआ । तमाम दुःखों का मूल कारण मोह है । आज जीव दुःख की खाई में तड़प रहा है । इसमें मोहनीय कर्म के साम्राज्य की प्रबलता है । अतः समझ-बूझकर मोह रूपी अंग्रेज को पराजित करके, उससे मुक्त होकर आत्मस्वरूप को प्राप्त करना ही सच्ची स्वाधीनता है ।

महापुरुषों ने कर्मों से युद्ध करके सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त की । अनंतज्ञानी, त्रिकालदर्शी, देवाधिदेव ने वही स्वतंत्रता प्राप्त करने का उपाय हमें बताया है । यदि वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त करनी हो तो तीर्थंकर प्रभु ने जो साधन बताये हैं उन्हें प्राप्त करना चाहिए तथा जो उपाय बताये है उसीके अनुरूप आचरण करना चाहिए । जबतक मोह को मारने का मन नहीं होता, तबतक स्वतंत्रता की समझ नहीं आती । सच्ची स्वतंत्रता अर्थात् आत्मा का साम्राज्य । मोह के साम्राज्य से दूर रहना ही है सही स्वतंत्रता । आज तक अनंत दुःख सहे पर अब तक जन्म-मरण, आधि-व्याधि- उपाधि, रोग-शोक आदि सहन करना जारी है - इसका क्या कारण है ? हम पर मोहनीय का साम्राज्य है । जगत में जन्मा जीव जैसे काल से नहीं बच सका, वैसे ही मोह से भी नहीं बच सका । मोह ने आत्मा को इतना दबाया है कि उसके तमाम गुण ढँक जाते हैं, लूट जाते है । बाहर की सरकार के लिए कहा जाता है कि वे हिंद को लूटती है वैसे ही मोह आत्मधन को लूटता है । यह अनमोल मानव जीवन प्राप्त करने के पश्चात् मोह पर विजय पाने की न सूझे तो परतंत्रता कैसे दूर होगी ? इस क्रूर मोह के प्रति अप्रीति न उपजे, दूर रहने की इच्छा न हो, तो समझ लीजिए कि अभी तक आप स्वतंत्रता को नहीं समझे हैं ।

सिद्ध दशा यानी सच्ची स्वतंत्रता । जबतक जीव संसार में भटक रहा है, तब-तक वह परतंत्र है । आपको तो संसार में रहना है और स्वतंत्र भी बनना है । अग्नि में रहना है और जलना नहीं । चूल्हे में हाथ डालना है और शीतलता चाहिए । यह भला कैसे संभव है ? संसार और स्वतंत्रता इन दो शब्दों का कभी मेल नहीं होता । इस दुनिया में तमाम प्राणियों को परतंत्रता में जकड़ने वाली और स्वतंत्रता रोकनेवाली चार बाधाएँ है । स्वतंत्रता अर्थात् जहाँ किसी प्रकार का अवरोध न हो । जबतक जीव स्वतंत्रता का आनन्द प्राप्त नहीं करता, तबतक वह बँधा हुआ रहता है । कर्म की बाधाएँ हटें तो सच्ची स्वतंत्रता आये । कर्म आठ हैं, जिनमें चार घाती है और चार अघाती । इनमें सर्वप्रथम ज्ञानावरणीय कर्म है, जिसने अनंत गुणों को ढाँक रखा है । ज्ञानावरणीय का दूसरा भाई दर्शनावरणीय है - यह जीव को सत्य वस्तु का भान नहीं होने देता । इस कर्म ने अनंत दर्शन के गुण को आवृत कर रखा है । मोहनीय कर्म जीव को मूर्छा में डालता है और अंतराय कर्म, अनंत दान, अनंत लाभ, अनंत भोग और अनंत वीर्य में अवरोध उत्पन्न करता है । करोड़ों रुपये आपके पास हों, पर दान कब दिया जा सकता है ? अंतराय कर्म

की सत्ता टूटने पर ही ना ? ज्ञानावरणीय आदि चार घाती कर्मों के संपूर्ण क्षय होने पर केवल ज्ञान प्राप्त होता है । ये चार घाती कर्म क्षय हुए अर्थात् सच्ची स्वतंत्रता आयी । नाम कर्म और आयुष्य कर्म से भला क्या नुकसान है ? उल्टे ऐसी दशा में जो दीर्घ आयुष्य हो तो लाखों जीवों का कल्याण ही होगा । श्री ऋषभदेव भगवान जो कर सके, वह भगवान महावीर न कर सके, क्योंकि उनका आयुष्य कम था । मात्र साढ़े उनतीस वर्ष था, उनकी साधना का काल, जबकि ऋषभदेव भगवान की साधना का समय एक लाख पूर्व का था । अतः उनके आयुष्य से करोड़ों जीवों को लाभ हुआ । मेरे कहने का आशय इतना ही है कि अघाती कर्म जीव का नुकसान नहीं करते । आत्मा का अहित करनेवाले तो चार घाती कर्म ही हैं । चार घाती कर्म के क्षय होते ही जीव तेरहवें गुणस्थानक में जाकर केवलदर्शन-केवल ज्ञान प्राप्त करके सच्ची स्वतंत्रता पाता है । परन्तु सही ज्ञान बिना चाहे जितना पुरुषार्थ कीजिए, सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी । सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करनेवाले और प्रदान करवानेवाले सर्वज्ञ प्रभु महावीरस्वामी कहते हैं कि "आप सत्य वस्तु को समझिए और समझने के पश्चात् उसे प्राप्त करने की शक्ति विकसित करके आगे बढ़िए ।

ज्ञानावरणीय की बेड़ी तोड़ने के लिए श्रुत का अध्ययन कीजिए । दर्शन मोहनीय की जंजीरें तोड़कर समकित को सुदृढ़ कीजिए । अविरति की बेड़ी तोड़कर विरति का वरण कीजिए । चौथे से पाँचवे गुणस्थानक में आइए । उससे भी आगे बढ़कर सर्व विरति बनिए । यहाँ से आगे बढ़ते हुए सातवें में प्रमत्त अवस्था की बेड़ी तोड़कर अप्रमत्त बनिए । इस तरह उच्च कक्षाओं की ओर प्रयाण करते हुए तेरहवें गुणस्थानक में पहुँचकर आत्मा की सच्ची आजादी प्राप्त कीजिए । तब कहिए कि मैं स्वतंत्र बन गया हूँ । दुनिया के अज्ञानी जीवों को सच्ची स्वतंत्रता का भान तक नहीं है, इसलिए जहाँ-तहाँ भटकते है । तेरहवें से चौदहवें में जाने पर तो योगों का बँधन भी टूट जाता है अर्थात् शाश्वत स्वतंत्रता होती है । फिर जन्म-मरण नहीं होता । यह समझकर कर्म की परतंत्रता को जड़ से नष्ट कीजिए ।

महात्मा गाँधीजी को आज आप याद करते हैं, परन्तु उनके आदर्शों को जीवन में अपनाया है क्या ? उन्होंने कोई सिला हुआ कपड़ा नहीं पहना । फर्स्ट क्लास में यात्रा नहीं की । स्वादिष्ट भोजन नहीं खाया । उनका जीवन सादा और स्वावलंबी था । आपके तो पैसा बढ़ा कि बस ठाठ-बाट शुरू । थर्ड क्लास में बैठ नहीं

सकते । कपड़े तो वॉशिंग कंपनी में धुले हुए, स्वादिष्ट व्यंजनों का भोजन, नौकर-चाकर बिना काम नहीं चलता । यह सब स्वच्छंदता नहीं तो और क्या है ? आज की सरकार भी चारों ओर मत्स्य उद्योग और कत्लखाने खोलने के लिए पुरजोर प्रचार कर रही है । ओह ! इस स्वतंत्रता ने तो पाप के ढेर खड़े किये हैं । बंधुओं ! सच्ची स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए ये तप के दिवस आये है । मासखमण और सोलह के मंडप सज चुके है, जिसे बैठना हो इस मंडप में बैठ सकता है । अपने परम पिता प्रभु महावीर ने दो माह के, छः माह के आदि अघोर तप करके आत्मा की आजादी पायी । हमें भी ऐसी आजादी प्राप्त करनी है । मोहनीय कर्म रूपी ब्रिटिश सरकार के पंजे से छूटने के लिए इन मंगल दिवसों में पुरुषार्थ करके आत्म-साधना में लग जाइए ।

द्रौपदी का अधिकार

धर्मघोषमुनि अपने शिष्य परिवार से कह रहे हैं कि "नागेश्री ब्राह्मणी ने कड़वी तुंबी का साग गोचरी में देकर हमारे महान तपस्वी मुनि के प्राण लिए ।" उनके ये शब्द सुनकर सभी संत-सतियों में खलबली मच गई । 'अररर ! नागेश्री ने ऐसा किया ?' भगवान के संत जल्दी किसीका नाम नहीं लेते, किसीका भेद नहीं खोलते । पर गुरु के मुख से सुनकर सबके हृदय व्याकुल हो गये । जिस समय गुरु ने यह बात कही, वहाँ उनके शिष्य मंडली के अतिरिक्त कोई न था । मुनि के प्रति प्रेम तथा ऐसे आत्मार्थी तपस्वी संत के साथ ऐसा किया, इसलिए संतों के हृदय व्याकुल हो गये । अब वहाँ क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

मंगलकारी तप की आराधना के दिन चल रहे है । जो दिन चले जा रहे है वे फिर आने वाले नहीं । मोहनीय कर्म रूपी ब्रिटिश सरकार को हटाने के लिए तप की जरूरत है । तप से महान लब्धियाँ प्राप्त होती हैं, परंतु संत उनका उपयोग नहीं करते है । तप की शक्ति अलौकिक है ।

राजा-मंत्री का प्रसंग : एक राजा बहुत प्रमादी था । सदैव विषयभोग में रत रहता था । राज-काज की ओर ध्यान नहीं देता था । सारा कार्य मंत्री को देखना पड़ता था । प्रधान सोचता कि 'वर्षों से मैंने राजा का अन्न खाया है तो मेरा फर्ज है कि राजा के उपकार का बदला चुकाऊँ ।' मंत्री रात-दिन राज-काज संभालने में लगा रहता । कभी किसी आवश्यक कार्य के लिए राजा से मिलने जाता तो राजा दो-तीन घँटे बाहर प्रतीक्षा करवाता । प्रधान के मन में था कि राजा विषय-

ंपट बन गया है तो किसी तरह उसे सही राह पर लाना चाहिए। कई बार कोशिश की, परन्तु राजा मिलने से पहले हमेशा तीन-चार घँटे बाहर रोके रखता। इससे धान के मन में संसार के प्रति नफरत उत्पन्न हुई। उसके पास धन-वैभव का ढेर ा। एक दिन प्रधान ने अपने पुत्र को बुलाकर कहा, "तुझे जितना धन चाहिए, े ले और किसी अन्य राज्य में जाकर निवास कर।" पिता की आज्ञा से पुत्र इच्छित न-संपत्ति लेकर दूसरे राज्य में चला गया। बाकी बची संपत्ति प्रधान ने गरीबों ं बाँट दी और स्वयं जंगल में जाकर घास की छोटी झोंपड़ी बनाकर उसमें रहकर प करने लगे। प्रधान के चले जाने से राज्य में अव्यवस्था छा गई। राजा सोचने गा, 'आजकल प्रधान क्यों नहीं आते ?' मालूम करने पर ज्ञात हुआ कि 'वे तो ंगल में जाकर तप कर रहे है, साधू बन गये हैं।' राजा प्रधान को ढूँढते हुए उनके ास पहुँचे और बोले, "आपके पास इतना धन था फिर आप सन्यासी क्यों बन ये ?"

मंत्री ने उत्तर दिया, "महाराजा ! सन्यासी बनकर तप करने में मुझे पहला लाभ ो यह हुआ कि आप स्वयं चलकर मेरे पास आये, जबकि पहले मैं घँटों आपके ार पर प्रतीक्षा करता रहता था, पर आपके दर्शन नहीं होते थे। दो-चार दिन के प का यह फल है कि आज आप मेरे पास आये। धन-वैभव में जो शांति न थी, वषय-भोग के त्याग में वह शांति दिखाई दे रही है।" मंत्री की बात सुनकर राजा ी आँखें खुल गई। वे भी पुत्र को राज्य सौंपकर साधू बन गये। यह किसका ताप है ? तप का।

अतः तप अति आवश्यक है। पूर्व कृत कर्मों को नष्ट करने के लिए तप की जरूरत । तथा आने वाले कर्मों को रोकने के लिए संयम की जरूरत है। इसलिए आप भी बड़ी संख्या में तप की आराधना से जुड़िए। अधिक भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ४९

श्रावण कृष्ण १५, शुक्रवार	दिनांक : १६-८-७४

उपयोग में धर्म है

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंतज्ञानी, शास्त्रकार भगवंत ने असीम कृपा करके जगत के जीवों के कल्याण के लिए शास्त्र रूपी वाणी की फुहार बरसायी । मानव-जीवन के स्वरूप की विशेषता बताते हुए कहा है कि हे भव्य जीवों ! मानवदेह की विशेषता कब है ? अथाह पुण्य रूपी धन देकर मानवदेह की नौका खरीदी है । इस नौका द्वारा इस संसार-समुद्र से पार होने में ही इसकी विशेषता है । क्योंकि अनंतकाल से यह जीव संसार में भटक रहा है । यह भटकन किस कारण से है ? मिथ्यात्व के कारण । ज्ञानी कहते हैं कि 'मिथ्यात्व के समान कोई बड़ा रोग नहीं ।' देह का दर्द देह के साथ जुड़ा हुआ है । देह के छुटने पर वह दर्द भी दूर हो जाता है । शरीर का रोग शरीर के साथ छूटने पर वह दर्द भी दूर हो जाता है । जबकि मिथ्यात्व रोग आत्मा के साथ जुड़ा हुआ है । शरीर का रोग शरीर के साथ छूट जाता है, परन्तु मिथ्यात्व रूपी महारोग आत्मा के साथ-साथ जाता है । यह मिथ्यात्व रोग देह के प्रति राग करवाता है । शरीर को कुछ तकलीफ हो तो उसके प्रति राग के कारण दुःख दिलाता है । शरीर को सुखी रखने के उपाय करवाता है । भगवान ने 'आचारांग सूत्र' में सोलह महारोग बताये हैं -

"गंडी अहवा कोढी, रायंसि अवभारियं ।
काणियं झिमियं चेव, कुणिय खुज्जियं तहा ।।
उयरिं च पास भूयं च, सूणियं च गिलासणि ।
वेवइ पीढसप्पिं च, सिलिवयं महुमेहुणि ।।"

कंठमाल, कोढ़, क्षय, अपस्मार, मूर्छा । आँख का रोग, शरीर की जड़ता का रोग, लूलापन, लंगड़ापन, कूबड का रोग, अति क्षुधा रोग, कंप रोग, पीठ मुड़ने का रोग, हाथ-पैर की कठोरता का रोग, मधुमेह आदि महा रोग राजरोग कहलाते हैं । इन महा-रोगों से भी अधिक भयंकर, ऐसा रोग जीव ने पाल लिया है, जिसके कारण वह संसार में दुःख पाता है । '*जम्म दुक्खं जरा दुक्खं रोगाणि मरणाणि य ।*' जन्म,

जरा और मृत्यु का ऐसा रोग लगा बैठा है कि बड़े-बड़े वैद्य, हकीम और डोक्टर भी जिसे दूर करने में समर्थ नहीं हैं। जिसकी कोई जड़ी-बूटी नहीं है। देह का दर्द तो सातावेदनीय के उदय होने पर डोक्टर के निमित्त से दूर हो जायेगा। जन्म-जरा और मरण का रोग जो शरीर के महारोगों से भी भयंकर है, परन्तु जीव उन्हें मिटाने के लिए कोई पुरुषार्थ नहीं करता। इस रोग को दूर करने के लिए आत्मार्थी महापुरुषों की शरण में जाकर, वीतराग वाणी रूपी दवा का सेवन करना ही उपाय है। जिसका जन्म रोग गया उसके सभी रोग समाप्त हो गये, क्योंकि उसका अवतार ही बंद हो गया। इसलिए ज्ञानी सदैव उत्सुक रहते हैं कि हमारा जन्म कैसे रुके। जबकि अज्ञानी चाहते हैं कि मरण कैसे टले।

मनुष्य जन्म रूपी पूँजी हमें प्राप्त हो गयी है। अब दान-शील-तप-भाव और ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप में इसका उपयोग करना है। जिन आत्माओं ने मनुष्य जन्म रूप पूँजी का इस प्रकार सदुपयोग किया है, वे हँसते-हँसते दुनिया से विदा होते हैं। उन्हें मृत्यु का भय नहीं रहता। महान् आत्मार्थी साधक कठिन से कठिन प्रसंग में भी अपने महाव्रतों पर आँच नहीं आने देते। वे समझते हैं कि यह गुरु से प्राप्त पाँच रत्न समान महाव्रत हैं, उन्हें कंकड़ की भांति छोड़ा नहीं जा सकता। इस प्रकार समझपूर्वक साधना करने से कर्मों की निर्जरा होती है। महान पुरुषों ने असीम संपत्ति, ऋधि-सिद्धि को छोड़कर दीक्षा अंगीकार की है। सच्चा साधक किसे कहते हैं?

'जे य कंते पिए भोए लद्धे वि पिट्ठी कुव्वइ।
साहीणे चयइ भोए से हु चाइत्ति वुच्चइ॥'

- दशा. सू. अ-२, गा-३

जिनके पास समस्त इच्छित सुख-साधन हैं। सांसारिक सुख की अपेक्षा से कोई कमी नहीं है। जिनकी युवावस्था अभी समाप्त नहीं हुई है, जिन्हें मनोहर काम-भोगों की प्राप्ति हुई है, जिन पर अभी शारीरिक रोगों का उपद्रव नहीं हुआ है। इन सभी सुख-सुविधाओं के होने पर भी जो स्वेच्छा से इन सबका त्याग करता है, उसे सच्चा साधू कहते हैं। तो सच्चा श्रावक किसे कहते हैं? जो यह समझता है कि जीवन क्षणिक है। कच्चे धागे से बँधी काल की तलवार हमारे सिर पर लटक रही है, न जाने कब हम पर गिर पड़ेगी। अतः इस क्षणिक जीवन में मुझे आत्मसाधना कर लेनी चाहिए। श्रावक सुबह कब उठते हैं? चार घड़ी रात बाकी रहे तब। उठते ही सबसे पहले क्या याद करते हैं? पुत्र-पुत्री को? व्यापार-धंधे को या

अखबार वाले को ? आज अधिकांश श्रावक यही सब याद करते हैं । कहिए, सच है ना ? इस मोहमयी अलबेली मुंबई नगरी के वासी, सूर्यमुखी श्रावक सुबह देर से उठकर क्या याद करते हैं ? मैंने ऊपर कही वे ही बातें ना ? परन्तु भगवान का सच्चा श्रावक तो आँख खुलते ही नवकार मंत्र का स्मरण करता है । फिर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार करता है । बंधुओं ! आप कहेंगे कि द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव का विचार करना यानी क्या करना ? चलिए आपको समझाती हूँ ।

द्रव्य का उपयोग लगाना यानी हृदय में यह मंथन करना कि मैं कौन हूँ ? मेरा कुल कौन-सा है ? मेरे देव, गुरु और धर्म कौन हैं ? मैं अपनी शक्ति के अनुरूप धार्मिक कर्त्तव्य कर रहा हूँ या अपनी शक्ति छिपा रहा हूँ ? मुझमें क्या-क्या गुण-दोष भरे हैं ? वीतराग शासन प्राप्त करके मैं अपना कर्त्तव्य उचित रूप से निर्वाह कर रहा हूँ या नहीं ? आदि बाबतों पर विचार करना द्रव्य का उपयोग रखना कहलाता है ।

क्षेत्र का उपयोग रखने का अर्थ है यह विचार करना कि मैं अभी किस स्थान पर हूँ ? आर्यभूमि में या अनार्य भूमि में ? घर के अंदर सोया हुआ हूँ या बाहर छत में ? यदि इस उपयोग में चूक हो जाये तो बहुत बार नींद में ही बाहर जाने लगते हैं । इसलिए सजगता से समझकर ही आगे कदम बढ़ाना चाहिए । ज्ञानी पुरुषों ने हमारे शरीर के बारे में भी चिंतन किया है । उपयोगपूर्वक शारीरिक क्रिया करने से स्वयं नुकसान से बच सकते हैं और जीवों की भी यतना होती है ।

काल के उपयोग से तात्पर्य यह जानना है कि रात्रि का कितना समय बीत गया और कितना समय बाकी है ? कई बार पूनम की उजियारी में रात के बारह बजे भी ऐसा आभास होता है कि पौ फटने का समय हो गया है । यदि ऐसा सोचकर बाहर निकल गये और किसीकी नजर पड़ी तो उसके मन में यह आ सकता है कि आधी रात के समय यह किधर जा रहे हैं ? मानव निर्मल हो फिर भी उस पर दुराचार की शंका आती है अथवा मध्यरात्रि में किसी चोर-गुंडे के हाथों में भी पड़ सकते हैं । अतः श्रावक काल का सही उपयोग रखते हैं ।

भाव से उपयोग रखने का मतलब है - यह विचार करना कि अभी मुझे स्वाध्याय आदि तथा प्रतिक्रमण करने बैठना चाहिए । परन्तु इसमें लीन होने के बाद शारीरिक कारणों से बीच में उठना तो नहीं पड़ेगा ? ऐसा विचार करके, निवृत्त होकर प्रतिक्रमण के लिए सज्ज हो । श्रावक-श्राविका के लिए सुबह उठकर प्रतिक्रमण करना कहा गया है ना ? आप भी यही करते हैं ना ? कहिए तो

ज्ञानियों ने इस संसार को भूकंप की भूमि कहा है। क्योंकि इस संसार में अनंतबार मृत्यु रूपी भूकंप के भयंकर झटके में जीव सर्वस्व गंवाकर, भिखारी से भी दयनीय दशा में पहुँचा है। फिर भी वहीं पर, लाखों रुपये खर्च करके बड़े शौक और उत्साह से बँगला बनाता है। यह जीव की मूर्खता नहीं तो क्या है? ज्ञानी, इसीलिए कहते हैं कि; 'हे मानव! मृत्यु रूपी भूकंप के जोरदार झटके आने के पहले धर्म-आराधना कर ले। कब और किन परिस्थितियों में मृत्यु रूपी भूकंप का धक्का लगेगा - यह ज्ञात नहीं है।' धर्मकार्य में वायदा करने से फायदा नहीं होता। वायदा पापकार्य में कीजिए। मनुष्य भव के सुवर्ण अवसर को भोगविलास के पीछे बर्बाद न कीजिए, वरन् आत्मसाधना करके भविष्य के अनंतकाल को प्रकाशमान बना लीजिए। आपके विषयजन्य सुख बिंदु जितना है और विषयत्याग का सुख समुद्र जितना। अतः बिंदु जितने सुख की खातिर सुख के सागर की उपेक्षा मत कीजिए। विषयभोग का आनन्द क्षणिक है और विषयत्याग का आनन्द चिरंजीव है। जब देव, गुरु, धर्म से अधिक प्रिय लगे पैसा, पत्नी और परिवार, तब समझ लीजिए कि आत्मकल्याण की सच्ची राह नहीं समझे हैं। ऐसा नहीं है कि धर्म अमीर ही कर सकते हैं, गरीब नहीं। जिसे देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा हो, वैसा कोई भी मनुष्य धर्म कर सकता है। धर्म के क्षेत्र में गरीब या अमीर का कोई भेद नहीं होता। आज जगत में कुछ लोग भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए धर्म करते हैं, परन्तु इस प्रकार किया हुआ धर्म आत्मा की उन्नति नहीं कर सकता। धर्म मोक्ष महल पर चढ़ने की सीढ़ी है - इस भावना से धर्म किया जाये तो वह मोक्ष साधक बने। भौतिक सुख का राग छूटने पर धन से अधिक धर्म प्रिय लगता है। वित्त से अधिक वैराग्य और पैसे से अधिक परमेश्वर प्रिय लगता है।

एक सेठ का प्रसंग : एक नगरी में एक धनाढ्य, सुखी सेठ रहते थे। उनके यहाँ धन-संपत्ति का खजाना होने के साथ धर्म आत्मा के अंदर ताने-बाने की तरह बुना हुआ था। धन से अधिक महत्त्व वहाँ धर्म का था। वे समझते थे कि धन तो क्षणिक है, पुण्योदय तक रहेगा और पाप का उदय होते ही चला जायेगा। अतः इसमें लुब्ध बनने का कोई फायदा नहीं। यह शरीर भी एक पिंजरा है। इस पिंजरे से आत्मा रूपी तोता कब उड़ जायगा - यह ज्ञात नहीं है। अतः जबतक सारे संयोग उपस्थित हैं, तबतक साधना कर ले। पुण्यानुबंधी पुण्य के उदय से प्राप्त लक्ष्मी है, इसीलिए इतने धन-वैभव में अभिमान का लेश नहीं है और धर्म का- पुण्य का कार्य करने की इच्छा होती है।

एक बार सेठ शयनगृह में निद्रामग्न हैं । रात्रि के तीन बजे अचानक कमरा प्रकाश से भर गया । सेठ विचारते हैं कि इतना प्रकाश कैसे हो गया ? सेठानी तो सेठ की सेवा करके अपने कमरे में जा चुकी हैं । तभी सेठ ने देखा, अहो ! सोलह शृंगार सजी, अप्सरा जैसी सुंदर नवयुवती यहाँ कैसे ? इस समय यहाँ क्यों आयी हैं ? हिम्मत करके सेठ ने पूछा, "कौन हो और इस समय यहाँ क्यों आई हो ?" उत्तर मिला, "मैं लक्ष्मी देवी हूँ और आपको एक संदेश देने आई हूँ ।" सेठ कहते हैं, "जो कहना है शीघ्र कहो और यहाँ से जाओ ।"

बंधुओं ! सेठ के ऐसा कहने का रहस्य आपकी समझ में आया ? लक्ष्मीदेवी अपनेआप पधारी हैं, फिर उन्हे जल्दी जाने क्यों कहते हैं ? क्योंकि सेठ शीलप्रिय हैं । अपने ब्रह्मचर्य व्रत में पूर्णतः दृढ हैं । अत्यन्त रूपवान यह देवी समक्ष उपस्थित है, जो है तो स्त्री ही । साथ ही युवती, रात्रि का समय और एकांत, इसलिए सेठ को अपने शीलधर्म पर वह भयरूप दिखाई पड़ती है । नगरसेठ को लक्ष्मीदेवी के पधारने का आनन्द नहीं है, उल्टे अपने शीलधर्म के लिए खतरे की घंटी लगती है । देवी ने सेठ से कहा कि "तुम्हारा पुण्य समाप्त हो रहा है, अतः सातवें दिन इस घरसे मैं विदाई लूँगी- यही संदेशा देने आयी हूँ ।" इतना कहकर देवी अदृश्य हो गई । सेठ कितने शीलवान हैं कि उन्होंने, एकांत स्थान होने से, लक्ष्मी को भी शीघ्र चले जाने को कहा । भगवान ने 'दशवैकालिक सूत्र' में फरमाया है कि "नब्बे वर्ष की वृद्धा हो, उसके हाथ-पैर कटे हों, नाक-कान छेदे हुए हों, पूर्णतः कदरूप हो, तो भी ब्रह्मचारी को एकांत में स्त्री के साथ नहीं बैठना चाहिए ।"

एक बार समकित्ती देव मिथ्यात्वी देव से बोले कि 'हमारे जैन साधू-साध्वी व्याख्यान या शास्त्र-वांचन के अतिरिक्त एक दूसरे के उपाश्रय में नहीं जाते हैं और न ही एकान्त में मिलते हैं ।' मिथ्यात्वी देव ने अविश्वास जताते हुए कहा, 'यह संभव नहीं है ।' तथा परीक्षा करने के लिए जैन साध्वी का रूप धारण करके, दोपहर में अकेले साधू के उपाश्रय में अध्ययन के बहाने से पहुँचे । दरवाजे से ही उन्हें अकेले आते देखकर शिष्य कहने लगे, "साध्वीजी ! साधू के उपाश्रय में अकेले नहीं आया जाता, इसलिए आप चले जाइए ।" यह सुनकर साध्वी बने देव के मन में आया कि जिनके शिष्य इतने दृढ़ और नियम के पक्के हैं तो उनके गुरु कितने सद्‌गुणी और संयम के अनुरागी होंगे ! फिर भी उसने सोचा, 'जब यहाँ तक आये हैं, तो उनकी परीक्षा कर ही लें ।' शिष्यों से बोली, "मुझे आपके गुरु से मिलना है, उनसे पाठ लेना है ।" शिष्यों ने कहा, "स्वाध्याय करने से अनंत कर्मों की निर्जरा

होती है, परन्तु भगवान की आज्ञा है कि साध्वीजी को एकांत में साधू के उपाश्रय नहीं आना चाहिए। अतः भगवान की आज्ञा के विरुद्ध काम यहाँ संभव नहीं, आप लौट जाइए।" शिष्यों के बार-बार कहने पर भी साध्वीजी न मानी और गुरु के पास गयीं। परन्तु गुरु के सामने उनकी एक न चली। अंत में मिथ्यात्वी देव को स्वीकार करना पड़ा कि जैनमुनि के त्याग की बराबरी कोई नहीं कर सकता। जीवन की कीमत चारित्र से है। जैसे अंगूठी में हीरा या कीमती रत्न जड़ा हुआ हो और वह हीरा या रत्न अंगूठी से गिर पड़े तो अंगूठी की क्या शोभा रहती है! वैसे ही चारित्र के बिना जीवन शोभायमान नहीं होता।

देवी सेठ को समाचार देकर अदृश्य हो गयीं। धन चला जायेगा, यह खबर सुनकर भी सेठ के हृदय में जरा घबराहट नहीं है। आपको कोई ज्योतिषी कह दे कि इस महीने आपको व्यापार में बहुत नुकसान उठाना पड़ेगा, तो आपकी क्या दशा हो? (श्रोताओं में से आवाज : 'धक्का लगेगा, खाना-पीना भी अच्छा नहीं लगे!) सेठ के दिल में कोई असर नहीं हुआ, क्योंकि वीतराग वाणी का पान करके वे लक्ष्मी की अनित्यता को समझ चुके हैं। लक्ष्मी का स्वभाव अस्थिर, चंचल है।

लक्ष्मी तणी तो प्रीत ठगारी, आज पधारी ने काले सिधावी,
फूलदानी फोरम बे घड़ी प्यारी, अंते नधुं नाश थवानी।

लक्ष्मी की प्रीति धोखा देने वाली है। आज या कल जल्दी या देर से, पर जाना तो इसका स्वभाव है। लक्ष्मी न सदा किसीकी हुई है, न होगी। सेठ के हृदय में जैन धर्म का रंग भरा हुआ था, इसलिए सर्वस्व नाश की खबर में भी समभाव से रह सके। सुबह शीघ्र उठकर प्रतिक्रमण किया। उपाश्रय में गुरुवंदन और व्याख्यान श्रवण करने गये। लौटकर भोजन आदि के पश्चात् अपने प्रिय पुत्रों को बुलवाया। कहा, "हे लाड़ले पुत्रों! आज रात्रि में मेरे कमरे में लक्ष्मी देवी पधारी थीं। उन्होंने सूचना दी कि अब हमारे पुण्य का सितारा अस्त हो रहा है, इसलिए आज से सातवें दिन हमारे घर से वे विदाई लेंगी।" पुत्रों के पश्चात् पत्नी तथा पुत्रवधूओं को भी इस बात की सूचना दी। फिर सबसे पूछा कि "अब हमें क्या करना है? लक्ष्मी का जाना तो निश्चित है। अतः वह हमें छोड़कर जाये उससे पहले हमीं उसे क्यों न छोड़ दें?" पुत्र बात का रहस्य नहीं समझे और पूछा, "आपके कहने का भाव क्या है?" सेठ ने समझाया, "लक्ष्मी जाने वाली तो है। इसके जाने से पहले इसका सद्व्यय कर लें, दान-पुण्य में उपयोग कर लें। गरीबों, अनाथों, अपंगों आदि को यह लक्ष्मी दान में देकर पुण्य उपार्जन क्यों न कर लें? अस्थिर लक्ष्मी से ऐसे धर्म की स्थिर कमाई क्यों न कर लें?"

बड़े बेटे ने कहा, "बापूजी ! अभी छः दिन लक्ष्मी है, तबतक उसका सदुपयोग करके जीवन का लाभ ले लेंगे, फिर क्या करेंगे ?" सेठ बोले, "मानव जीवन में आकर स्वीकार करने जैसा सिर्फ चारित्र है । हम चारित्र मार्ग ग्रहण कर सकते हैं । संसार की माया रूपी मृग मरीचिका के पीछे भागते रहने से कुछ हाथ नहीं आयेगा । अतः इस मायाजाल को छोड़कर आत्मकल्याणकारी, मोक्ष के सुख प्रदान करनेवाले संयम-मार्ग को अंगीकार करें । कहो, तुम सबको यह बात सही लगती है ?" सारा परिवार एक स्वर में बोल उठा, "हां, आपकी बात बिल्कुल सही है ।" देवानुप्रियों ! आपका कुटुंब ऐसा है ? (श्रोताओं में से आवाज : 'नहीं') पुण्यशाली को कुटुंब भी अपने जैसे आचार-विचार वाला मिलता है । नगरसेठ के इस भव्य और आदर्श तत्त्व विचार से हमें क्या समझना है ? लक्ष्मी के समान, अचानक ही, यह संसार और संसार के सारे सुख छोड़कर चले जाना है । यह संसार और संसार के पदार्थ आपको छोड़े उससे पहले आप ही इसे त्यागपत्र पकड़ाकर उत्साहपूर्वक संयम में आ जायें तो कितने शोभित होंगे !

"ऊभा ऊभा आवो अम महेलमां रे, नहींतर आडा काढ़से बाहर,
जिंदगी जेल नथी पण महेल छे रे"

जब मृत्यु होगी तो आड़े पड़े पैरों से बाहर निकलना पड़ेगा, उससे अच्छा है जीते जी संसार को त्यागकर खड़े-खड़े स्वेच्छा से संयम-मार्ग पर चलना ।

पूरा परिवार चारित्र ग्रहण करने के लिए एकमत हो गया । आपसे कहते हैं, देवानुप्रियों ! दिन भर में दो घड़ी तो उपाश्रय में आकर वीरवाणी का अमृत-पान कीजिए, तो कहेंगे कि हमारे पास टाईम नहीं है । अच्छा हुआ कि सरकार ने रविवार की छुट्टी रखी है, कम से कम रविवार को तो आप यहाँ आकर बैठ सकते हैं ।

हुं तने भजुं छुं रविवारे, बाकी क्यां छे समय प्रभु मारे !
आम तो हमेंशा स्थानके आवुं, आवुं तेवो पाछो सिधावुं ।
बे घड़ी बेसुं छुं रविवारे, बाकी क्यां छे समय प्रभु मारे ।

बंधुओं ! यहाँ आकर बैठेंगे और जितना साथ ले जायेंगे उतना आपका है । संसार व्यवहार में तो बहुत कुशलता हासिल की, परन्तु आत्मा के गुण प्राप्त करने में दिवालिया रहे ।

नगरसेठ ने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि नगरसेठ मुक्तहस्त से दान दे रहे हैं, अतः जिसे जरूरत हो आकर खुशी से ले जाओ । आप दान ले जाइए और मुझे परिग्रह के भार से मुक्त कीजिए । जब प्लेन में यात्रा करनी हो तो ट्रेन में ले जाने जितना भार नहीं ले जा सकते । क्योंकि ऊँचाई में चढ़ना है । दान लेने के लिए

गरीबों का झूंड सेठ की हवेली में जमने लगा। छः दिन में तो करोड़ों का दान सेठ ने उल्लासपूर्वक दे डाला। सिर्फ एक वक्त के लायक खाना और सुबह पहनने के लिए कपड़े रखकर सारा दान में दे दिया। नगर में समाचार फैल गया कि 'कल सुबह सेठ का पूरा परिवार संसार का त्याग कर दीक्षा ग्रहण करेगा।'

कल सुबह दीक्षा लेने की भावना से सेठ सोये। रात में फिर लक्ष्मीदेवी पधारी। सेठ जाग गये और पूछने लगे, "आप तो मुझे संदेशा दे गयी थीं; अब फिर किसलिए आयी हैं?" कहाँ सेठ की तीव्र त्याग भावना और कहाँ आप लक्ष्मी के गुलाम! लक्ष्मीदेवी ने कहा, "सेठजी! आपने शुद्ध भावना से जो दान दिया है उससे आपका पाप पूरा हो गया और पुण्य का ढेर बढ़ गया है। इसलिए अब मैं आपके यहाँ से नहीं जाऊँगी।" सेठ कहते हैं, "अब हमें आपकी आवश्यकता नहीं है, आप चले जाइए।" लक्ष्मी कहती है, "सेठ! बीस दिन पहले आपको माल से भरे जहाज डूबने के जो समाचार मिले थे, वे जहाज सही-सलामत बंदरगाह पर आ पहुँचे हैं, जिनमें सात करोड़ की मिल्कियत है।" सेठ ने कहा, "अब मुझे उसकी भी जरूरत नहीं है। मेरा सारा परिवार कल सुबह दीक्षा अंगीकार करके, आत्मकल्याण के मार्ग पर चलेगा। हमारे इस दृढ निश्चय में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता।" बंधुओं! इस सेठ के स्थान पर आप होते, तो क्या करते? दीक्षा लेते या दीक्षा का विचार स्थगित कर देते? (श्रोताओं में से आवाज: 'अरे हमारी खुशी का तो ठिकाना न होता, दीक्षा की तो बात ही न करते।') परन्तु वे सेठ आपके जैसे नहीं थे कि जबान से फिर जायें।

लक्ष्मीदेवी बोली, "आपको सबेरे जो करना हो कीजिए, पर बंदरगाह से माल तो छुड़वा लीजिए?" सेठ बंदरगाह से माल छुड़वा लाये और उसे बेचकर, वर्षीदान के लिए कुछ रखकर सारा धन तीन घंटे में लूटा आये। छोड़ना है तो बस छोड़ना है। उनका स्मशान वैराग्य नहीं था, ज्ञानगर्भित वैराग्य था। उन दस व्यक्तियों के परिवार ने सुबह वर्षीदान देकर दीक्षा ग्रहण की। सेठ के हृदय में जागृत विरति के दीपक ने सेठ के समस्त परिवार की आत्मा में धर्म का प्रकाश फैलाकर उनका जीवन उज्ज्वल बना दिया। ज्ञानी पुरुष समझाते हैं कि 'लक्ष्मी के गुलाम मत बनिए।' आपको पता है कि इस मकान में मैं कायम नहीं रह सकता, कभी न कभी छोड़कर जाना है। फिर भी जीव का मूर्छा भाव कितना है!

बादशाह-नौकर का प्रसंग : एक बार बादशाह के पलंग में सेवक निद्राधीन हो गया। बादशाह ने उसे सोते देखा तो पूछा, "तू यहाँ क्यों सो गया?" सेवक ने कहा, "यह तो धर्मशाला है और यहाँ हर किसीको समान हक है। मैं क्यों नहीं सो सकता?" बादशाह बोले, "यह महल है या धर्मशाला?" व्यक्ति बोला, "यह

धर्मशाला है, महल नहीं !" "तू इसे धर्मशाला किसलिए कह रहा है ?" आपके बाप-दादा, पूर्वज इसमें रहते थे और छोड़कर गये, आपको भी एक दिन यह छोड़कर जाना पड़ेगा । धर्मशाला में बहुत आते हैं और जाते हैं, वैसे ही इस महल में भी कितने ही आये और गये ।" बादशाह उसकी बात समझ गये ।

धर्मघोषमुनि अपने संत-सतियों को बुलाकर कहते हैं -

द्रौपदी का अधिकार

"तं धिरत्थुणं अज्जो नागसिरीए माहणीए अधन्नाए, अपुन्नाए जाव णिंबोलियाए ।"

हे आर्यो ! नागेश्री ब्राह्मणी अधन्य है, पुण्यहीन है और निंबोलियों जैसी अनादरणीय है । उसे धिक्कार है कि ऐसा कड़वा आहार वहराकर उसने हमारे प्रिय शिष्य के प्राण ले लिए । यह सुनकर शिष्यों में खलबली मच गई । छद्मस्थ की लहर में वे बोल गये । "अहो नागेश्री ! तूने हमारे धर्मरुचिमुनि को क्या उकरडा समझा ? उनके प्राण लेकर तुझे क्या लाभ हुआ ? नागेश्री तेरी क्या दशा होगी ?" सबके दिल में आघात और आँखों में आँसू थे । आगे क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ४२

भाद्रपद शुक्ल १, शनिवार | दिनांक : १७-८-७४

तप मार्ग का आदर्श

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

त्रिलोकीनाथ, जगत उद्धारक, मोक्षमार्ग के पथिक प्रभु ने घाती कर्मो का क्षय करके केवल ज्ञान की ज्योति प्रकाशित करने के पश्चात् सिद्धान्त की प्ररूपणा की । सिद्धान्त की प्ररूपणा करना किसी साधारण के वश की बात नहीं । केवल ज्ञान की ज्योति प्रगट करने और घाती कर्मों पर आघात करने के लिए उन्होंने अघोर तप किया । तप के साथ आराधना भी कैसी ? एक दिन भी लेटकर निद्रा नहीं ली । भगवान महावीरस्वामी ने साढ़े बारह वर्ष और पंद्रह दिन तक उग्र तपश्चर्या

तब केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई । भगवान ऋषभदेवजी ने एक हजार वर्ष तक
ार तप किया, उस तप में भी प्रमाद से कभी न बैठे, न लंबे होकर सोये । ये
न पुरुष समझते थे कि हमारे सिर पर कर्म का कर्ज चुकाना बाकी है, तो नींद
ले सकते हैं ? आपके सांसारिक व्यवहार में यदि आप पर कर्ज हो और आपमें
ादानी संस्कार हैं तो क्या आपकी नींद नहीं उड़ जाती ? मन में एक ही विचार
। है कि 'जैसे लिया है वैसे ही लौटा दूँ ।' अरे, इससे भी आगे बढ़कर क्या
, आपका खाना-पीना, रहना सब सूना लगेगा, क्योंकि सिर पर कर्ज है । जब
ं मुक्त होंगे तो सूखी रोटी भी खुशी से खायेंगे । धरती खोदते हुए किसीको
रों भरा कलश मिल जाने पर जो आनन्द होगा, उससे कहीं अधिक आनन्द
ादानी आदमी को कर्ज से मुक्त होने पर होता है । जीव के सिर पर ऐसे ही कर्मो
कर्ज है । महान पुरुषों की यह सज्जनता थी कि मेरे सिर पर पड़े कर्म का कर्ज
ाये बिना आराम कैसे कर सकते हैं ? कर्म के कर्ज से मुक्त होने की जबरदस्त
ा थी । राजा हरिश्चंद्र तो कर्जदार भी नहीं थे, पर एक सत्य वचन की खातिर
ना संपूर्ण राज्य अर्पित करने में न हिचके । तथा विश्वामित्र ऋषि की दक्षिणा
ाने के लिए पति-पत्नी दोनों बिक गये । उन पर किसीका कर्ज नहीं था, पर
की कसौटी से पार उतरने के लिए दोनों अलग-अलग जगहों में बिक
। जबकि इस जीव के सिर पर तो कर्म के कर्ज का ढेर पड़ा हुआ है । उसी
में तीर्थंकर बनने वाले, चरमशरीरी, मोक्षगामी जीव होने पर भी सुख से सोये
और उपवास की तपस्या में लग गये । केवल ज्ञान प्राप्त करने तक पुरुषार्थ
का । अतः कर्मो को क्षय करने के लिए तप आवश्यक है । जीव कर्म बाँधते
य उग्र बनकर बाँधता है, तो उसे तोड़ने के लिए भी उग्र तप करना पड़ेगा ।
ं सर्वप्रथम विनय की जरूरत है ।

वकार मंत्र बोलते हुए सर्वप्रथम क्या बोलते हैं ? *'नमो अरिहंताणं'* सबसे
ो नमो शब्द है, वह क्या सूचित करता है ? जबतक जीवन में नम्रता नहीं, विनय
है, तबतक अरिहंत की उपासना नहीं कर सकते । 'नमो' अर्थात् तू नम
। जीवन में अर्पण भाव न आये, अहंकार न जाये, तबतक हम मोक्षमार्ग से
ं । दो बच्चे गेंद से खेल रहे हैं, एक-दूसरे की ओर गेंद उछालते हैं और फेंकते
गेंद इधर-उधर टकराती है कि उसे भान होता है कि जबतक मेरे पेट में अभिमान
हवा भरी हुई है तबतक मैं उछाली और फेंकी जाऊँगी । जैसे गेंद में हवा है
उसे इधर-उधर फिंकना पड़ता है, वैसे ही जीवन में क्रोध-मान-माया और लोभ

की हवा जबतक भरी है तबतक जीव चार गति में फेंका जाता रहेगा। एक गति से दूसरी गति में और दूसरी से तीसरी गति में भटकता रहेगा।

हमारी बात चल रही है विनय की। विनय धर्म का मूल है। विनय के पात्र में ही सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रय रह सकता है। आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए पहले विनय सीखना पड़ेगा। जहाँ काली मिट्टी की भूमि होती है वहाँ थोड़ा पानी पड़ने पर भी पानी दिखता है और ऐसी भूमि में बीज बोया जा सकता है। भगवान की वाणी रूपी बीज को बोने के लिए हृदय को काली मिट्टी जैसा कोमल बनाना पड़ेगा। भगवान महावीर के पट्ट शिष्य गौतमस्वामी में कितना विनय था! उन्होंने 'भगवती सूत्र' में भगवान से छत्तीस हजार प्रश्न पूछे हैं। गौतमस्वामी स्वयं चार ज्ञान के धारक थे, चाहते तो उन प्रश्नों के उत्तर स्वयं दे सकते थे, परन्तु उन्होंने कभी ऐसा उपयोग नहीं लगाया। जब जगमगाता पावर हाउस सामने हो, एक में से अनेक भाव समझने मिलता हो, तब स्वयं उपयोग लगाकर जानने की क्या जरूरत? भगवान के समक्ष प्रश्न पूछने जाने में जीवन में विनय आता है, नम्रता आती है और आत्मा सद्‌गुणी बनता है। बादल समुद्र से खारे जल को ग्रहण करते हैं और उसे मीठा बनाकर बरसाते हैं। वह मीठा पानी सागर में गिरने पर फिर खारा बन जाता है। हमें किसके जैसा बनना है? बादल जैसा या सागर जैसा? (श्रोताओं में से आवाज : 'बादल जैसा') *'नमो अरिहंताणं'* श्रद्धापूर्वक बोलने से क्रोड़ों कर्म क्षय हो जाते हैं। इसमें गूढ़ रहस्य भरा हुआ है। *'नमो अरिहंताणं'* शुद्ध भाव से बोलते हुए कितने ही जीवों ने केवल ज्ञान प्राप्त किया है। ऐसे दृष्टांत सिद्धान्त में मौजूद हैं।

गौतमस्वामी का नाम सिद्धान्त के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है। वे भगवान के अर्पित हो गये थे। प्रमाद दशा की एक भूल के लिए भगवान ने गौतम स्वामी को एक-दो बार नहीं छत्तीस बार टोका - *'समयं गोयम मा पमायए!'* हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद न कर। इतनी बार भगवान ने टोका पर उनके मन में अपूर्व आनन्द है कि 'अहो! भगवान को मेरे प्रति कितना स्नेह भाव है। किनारे आयी हुई नौका डूब न जाये इसलिए मुझे भगवान बार-बार सावधान करते हैं।' जो विनयी होता है, वह ज्ञान का अकूत खजाना प्राप्त कर सकता है। आज तो सासु बहू को, सेठ नौकर को, पिता पुत्र को, गुरु शिष्य को दो-तीन बार कुछ कह दे तो जवाब मिलेगा, 'कितनी बार कहते जायेंगे?' विनय समाप्त हो गया है। मोती है, धागा है, पिरोने वाला भी है, पर मोती कहता

मुझे धागे में प्रवेश नहीं करना है तो बहनों के गले की शोभा कैसे बढ़ेगी ? द मोती डोर में दाखिल हो जाय तो मोतियों की माला बन जायेगी और बहनों कंठ माला से सुशोभित हो उठेगा । इसी प्रकार जब जीवन में विनय की डोर ोयी जायेगी तो वह जगत में पूज्य बन जायेगा । गौतमस्वामी गणधर पदवी विराजमान थे । चरमशरीरी जीव थे, फिर भी भगवान ने उन्हें इतनी सावधानी ने की बात कही । उनके जीवन में विनय की डोर गुंथी हुई थी, इसीलिए उनका र आज बारंबार स्मरण किया जाता है ।

आज नामधारी भगवान कितने उभरे हैं ! ज्ञानी कहते हैं कि 'जो नहीं है उसको की उपमा देना मिथ्यात्व है ।' हाथी की आत्मा और चींटी की आत्मा दोनों आत्मा समान है । शरीर के प्रमाण से संकोच और विस्तार का स्वभाव उसमें फिर भी यदि कोई कहे कि आत्मा मात्र तांदुल जितना है या मात्र मूसल जितना तो यह मिथ्यात्व है । मोक्षगामी जीव होने पर भी केवल ज्ञान प्राप्त न होने तक ावान नहीं कहलाते । सुधर्मास्वामी गणधर थे, परन्तु जबतक केवल ज्ञान न हुआ तक **'जिन नहीं पर जिन सरीखे एवा सुधर्मास्वामी जाणिए ।'** जिन नहीं पर न सरीखे कहलाये । भगवान महावीर ने केवल ज्ञान पाने के बाद जगत के जीवों हित साधन के लिए आगम की प्ररूपणा की । छोटे सूत्रों में भी गूढ रहस्य जैसे फिरकी, लट्टू में लपेटे हुए डोरे को खींचने पर लंबा डोरा सामने आता वैसे ही शास्त्र के भावों का अनुसरण करने पर आत्मा अलौकिक भाव प्राप्त ता है । वीतराग वाणी के एक शब्द पर यदि जीव अटूट श्रद्धा रखे तो सम्यक्त्व जायेगा और सम्यक्त्व प्राप्त आत्मा एक दिन अवश्य मोक्ष में जायेगा ।

आप धन कमाने मुंबई में आये । यहाँ आने के पश्चात् आपकी कमाई में तेजी वृद्धि हुई । साथ में यह भी विचार कीजिए कि यहाँ संत-सतियों का योग बार- र प्राप्त होता है, तो धन के साथ आत्मा की कमाई भी कर लें । इस मोहनीय री में ऐसी साधना कर लूँ की मोक्षनगरी में पहुँच जाऊँ । आज तक जड़ की ा की, अब चेतन देव का पुजारी बनूँ । चौरासी लाख जीवायोनि में तू मनुष्य ने में आया है । अनंतज्ञानी कहते हैं, अब तो तू जाग जा । *"संबुज्झह किं बुज्झइ ।"* समझो और बोध प्राप्त करो । भगवान ने चंडकौशिक से इतना कहा, "हे चंडकौशिक ! कुछ समझ । वैर से वैर बढ़ता है प्रेम नहीं । तू कैसा ? उस बादल जैसा बन जो दरिया का खारा पानी लेकर जगत को मीठा पानी न करता है ।" जहर के सामने जहर बरसाने की कोई महत्ता नहीं है वरन् जहर समक्ष अमृत बरसाने की महत्ता है । आप सोचते होंगे कि खारे समुद्र के पास हैं तो क्या करें ? खारे में रहते हुए मिठास का अनुभव करना मानव का कर्तव्य

है। शृंगार नामक मछली खारे पानी में रहते हुए भी मीठा पानी ही पीती है। उसे जब मीठा पानी का मन होता है तब समुद्र के उस स्थान पर पहुँच जाती है जहाँ नदियाँ सागर से मिलती हैं, और मीठा पानी पी लेती हैं। इसी प्रकार आप भले ही खारे समुद्र में बसते हैं, परन्तु जहाँ संत-समागम रूपी सरिता मिल जाय वहाँ से मीठा पानी पी लेना सीख लीजिए।

इस जीव ने संसार में अनंतकाल व्यतीत किया, पर अभी तक यह समझ नहीं पाया कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाने वाला हूँ ? मेरा स्वरूप कैसा है ? भगवान 'आचारांग सूत्र' में कहते हैं कि -

"इह मेगेसिं णो सण्णा भवइ। तंजहा पुरत्थिमाओ वा *दिसाओ आगओ अहमंसि, दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि, अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ या आगओ अहमंसि।"*

- आचारांग सूत्र अ-१, उ.-१

इस संसार में कुछ जीवों को यह ज्ञान नहीं होता कि मैं पूर्व दिशा से आया हूँ या पश्चिम दिशा से या उत्तर या दक्षिण दिशा से आया हूँ ? मैं ऊर्ध्वदिशा से आया हूँ अथवा अधोदिशा से या किसी एक दिशा से या विदिशाओं में से ?

यह तो निश्चित है कि जीव किसी दिशा से आया है और किसी दिशा में जाने वाला है। पर जब यहाँ से जाना पड़ेगा तब साथ कुछ नहीं आयेगा। इसलिए समझपूर्वक धर्म की आराधना कीजिए। ये आराधना के दिन हैं। इस अवसर को चूकना नहीं। कर्म को जलाने के लिए तप आवश्यक है। भगवान ने तप के बारह भेद बताये हैं। छः बाह्य और छः आभ्यंतर।

अण सणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।
काय किलेसो संलीणया, य बज्झो तवो होइ॥

- उत्त. सू. अ-३०, गा.-८

अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रस परित्याग, कायक्लेश और प्रतिसंलीनता बाह्य तप के छः भेद हैं।

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं च विउस्सग्गो, एसो अब्भिन्तरो तवो॥

- उत्त. सू. अ.-३०, गा.-३०

प्रायश्चित, विनय, वैयावच्च, स्वाध्याय, ध्यान तथा कायोत्सर्ग - आभ्यंतर तप के छः भेद हैं। जो बाह्य तप न कर सके वह आभ्यंतर तप कर सकते हैं। ज्ञानियों ने कहा है कि *"तवेसु वा उत्तम बंभचेरं"* तप में ब्रह्मचर्य उत्तम तप है। यह तप खाते-पीते किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य को उत्तम तप क्यों कहा गया है ? एक अहोरात्रि मन, वचन, काया से शुद्ध ब्रह्मचर्य पालन करने से एक सौ अस्सी उपवास का लाभ होता है। एक बार के संयोग से नौ लाख संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों का घात होता है। जीवात्मा देवलोक में गया तो वहाँ भी पहले-दूसरे देवलोक तक मनुष्य जैसे ही काम-भोगों का सेवन करके आया है। तिर्यंच में भी मैथुन संज्ञा है। फिर भी अब तक तृप्ति नहीं हुई। अतः विषय भोग पर ब्रेक लगा दीजिए तथा ब्रह्मचर्य के घर में आ जाइए। यह तो स्याद्वाद दर्शन है। आपकी जितनी शक्ति हो उसीके अनुसार व्रत में आ जाइए। तप कर सकें तो तप करें। तप करने की शक्ति न हो तो ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कीजिए।

मोक्षनगर में प्रवेश करना हो तो किसी भी दरवाजे से दाखिल तो होना पड़ेगा। ब्रह्मचर्य की शक्ति अलौकिक है। उसका प्रभाव अपूर्व है। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से तो विद्याधर का विमान भी अटक जाता है। पहाड़ के नीचे एक मुनि ध्यान कर रहे थे। विद्याधर का विमान उधर से गुजरा तो वहाँ अटक गया, थम गया। विद्याधर सोचने लगा, मेरा विमान क्यों अटक गया ? आगे बढ़ाने के सारे प्रयास के बावजूद वह आगे नहीं बढ़ा, उल्टे नीचे उतर गया। देखा, तो सामने त्यागी, पवित्र संत बैठे हैं। मुनि का इस विद्याधर से पूर्वजन्म का वैर है, इसलिए मुनि को देखते ही विद्याधर क्रोधित हो उठा और उन पर प्रहार करने के लिए तैयार हुआ। प्रहार करने के लिए हाथ उठाया तो उठा हाथ उठा हुआ ही रह गया। मुनि तो ध्यान में थे, उन्हें इस बात का कुछ पता न था। परन्तु विद्याधर ने सोचा ये कोई प्रतापी मुनि हैं। मैंने इनकी असातना की है। अंत में मुनि से माफी माँगकर आगे गया। मुनि तो कहते हैं, सर्व जीवों का कल्याण हो। जिसे दुश्मन के प्रति भी मैत्रीभाव है, वही सच्चा साधक कहलाता है। क्रोध का कण आ जाये तो उस पर ब्रेक लगाना सीखिए। एक लाख रुपये की मोटर आपको कोई एक हजार रुपये में दे तो आप लेंगे, परन्तु यदि कहे कि मोटर में ब्रेक नहीं है तो क्या बिना ब्रेक की गाड़ी लेंगे ? बिना ब्रेक की गाड़ी का कोई उपयोग नहीं है क्योंकि यह हमें भी पछाड़ेगी और दूसरों को भी। जीवन में भी ब्रेक की जरूरत है। कषायों पर, इन्द्रियों के विषयों पर ब्रेक नहीं हो तो दुर्गति की खाई में फेंक दिये

के पास जाकर अनुरोध करता है कि "तुम्हारी जान-पहचान बहुत है। अमुक मिल में मेरे लिए एक सिफारिशी-पत्र दे दो तो मेरा काम बन जायेगा।" अरुण कहता है, "चार-पाँच दिन बाद आना।" यह जवाब सुनकर उसके पैर ढीले हो गये, लेकिन क्या करता ? फिर चार-पाँच दिन बाद उसके पास गया, तब उसने मिल मालिक के नाम एक पत्र लिख दिया। उस पत्र के आधार पर उसे मिल में काम मिल गया और तीन सौ रुपया तनख्वाह तय हुई।

बिपीन अब आनन्द से रहने लगा। जहाँ नौकरी के लिए भटक रहा था वहाँ तीन सौ रुपये मिलने लगे। सुबह से रात तक कठिन परिश्रम में जुट गया। इसलिए अरुण से मिलने भी नहीं जा सका। अरुण स्वयं अच्छा था, पर उसकी पत्नी का स्वभाव कुछ अलग था। वह उससे कहने लगी, "देखो ! अपना स्वार्थ था तब रोज-रोज आता था। अब नौकरी मिल गयी तो मिलने भी नहीं आता।" इस तरह कान भरती रही। अरुण अब दूसरे मित्रों से घिरा रहने लगा। ऐश करने में पैसे का दुरुपयोग करता रहा। धीरे-धीरे धन खत्म होने लगा। अरुण के पिताजी गुजर चुके थे। वह तो पेढ़ी में जाता नहीं था। मुनीमजी ही सारा कारबार संभालते थे। मुनीमजी बहुत प्रामाणिक व्यक्ति थे, सेठ द्वारा सौंपी गई जवाबदारी को वे व्यवस्थित तरीके से निवाह रहे थे।

जब मुनीमजी ने देखा कि अरुण तो मौज-मजा और ऐश में पैसे लुटा रहा है। अब तिजोरी भी खाली होने लगी है, तो एक दिन घर जाकर अरुण को समझाते हुए कहते हैं कि, "बेटे ! अब तुम अपना खर्च कम करो। इसी तरह खर्च करते रहोगे तो छः महीने में पूँजी खत्म हो जायेगी और गरीबी का सामना करना पड़ेगा।" मुनीमजी के शब्दों को सुनकर अरुण की पत्नी तो भड़क उठी। "आप हमें कहने वाले कौन हैं ? आप हमारे नौकर हैं, क्या हम अब आपके नौकर बनकर रहेंगे ? आपकी बात यदि आप चलाना चाहते हैं तो यह संभव नहीं। चाबी रखिए और चलते बनिए।" सेठ के उपकार का ख्याल कर मुनीमजी सारा हिसाब समझाकर, सेठ ने कितना छोड़ा था और तुमने कितना उड़ाया, वहाँ से चल दिये। सारे कार्य विधिवत् किये जाँय तो मनुष्य उसमें सफलता प्राप्त करता है, परन्तु अविधि से कार्य करने पर मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।

मुनीमजी को सेठ पुत्रवत् स्नेह देते थे। इसलिए अरुण के व्यवहार से उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सोचा कुछ ही महीनों में उसकी पूँजी समाप्त हो जायेगी और उसकी दरिद्र अवस्था मुझसे देखी नहीं जायेगी, अतः दूसरे गाँव में चले जाना ही ठीक है।

अरुण ने मुनीमजी की सीख पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसके ऐश-विलास में कुछ ही महीनों में पूँजी साफ हो गयी। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि बँगला बिक गया, गहने बिक गये और एक छोटी झोंपड़ी में रहना पड़ा। इस स्वार्थी संसार में सभी धन के सगे हैं, धन गया तो सगाई भी गई। अरुण के मित्रों की टोली अब दिखाई नहीं देती, क्योंकि अब वहाँ से कुछ मिलने वाला नहीं है। ऐसे स्वार्थी संसार में रहना आपको कैसे अच्छा लगता है ?

अरुण की पत्नी कहती है, "अब तुम्हारे कोई मित्र दिखाई नहीं देते ?" अरुण कहता, "अरे ! दिखाई देने की बात कहती हो, बुलाने जाऊँ तो दरवाजा बंद कर देते हैं। कोई दो रुपये दे तो हम जहर खाकर सो जाएँ। यदि मुनीमजी की सीख मान ली होती तो क्या यह दशा होती ?" धीरे-धीरे उनकी दशा की खबर विपीन तक भी पहुँची। जो संकट की घड़ी में आकर मदद का हाथ बढ़ाये, वही सच्चा मित्र है। जब मानव सुखी रहता है, तब तो पत्र लिखते हैं, लिखकर पूछते हैं कि किसी चीज की जरूरत हो तो मंगवाइए। परन्तु जब ज्ञात होता है कि उनके दुःख के दिन आये हैं; आर्थिक स्थिति ढीली पड़ गई है, तब पत्र लिखना भी बंद कर देते हैं। अरे, कई श्रावक तो संतों को पत्र लिखते हैं कि आप किसी बात की चिंता न करें। कोई काम हो तो आपका श्रावक तैयार है, कुछ जरूरत हो तो मंगवा लीजिए। कभी कोई साधू ऐसा भी मिल जाये जो विचार करे मेरे श्रावक मदद करना चाहते हैं तो उसका बराबर उपयोग कर लेना चाहिए। यह सोचकर साधू श्रावक को पत्र लिखवा दे कि भाई ! आपकी मोटरगाड़ी, बँगला या धन तो हमें कल्पता नहीं। पर आपकी उदारता देखकर लिखवा रहा हूँ कि आज के युग में वितंडावाद फैल रहा है, पाखंडी धर्म का खूब प्रचार हो रहा है। तो जैनशासन को सुरक्षित रखने और जैन धर्म का ध्वज फहराने शासन में जितने संत अधिक हों उतना धर्म प्रचार अधिक होगा, अतः आपके चार पुत्रों में से द्वितीय पुत्र बहुत होशियार है, शासन की शोभा बढ़ाने वाला है, तो आप उसे यहाँ भेज दीजिए। फिर यह पत्र उसे मिल जायगा क्या ? (हँसी) (श्रोताओं में से आवाज : 'जवाब ही न देगा') यह आपकी उदारता कहलायेगी या ठगाई ? गुरु को भी धोखा दे देंगे। इससे कल्याण नहीं होगा। ज्ञानी कहते हैं कि 'उपाश्रय आओ तो संसार को छोड़कर आओ तभी वीतराग वाणी आपके अंतर में प्रविष्ट हो सकेगी। लेकिन यहाँ भी विषय-कषाय का कचरा साथ लिये आते हैं, तो वीर के वचनामृत कैसे प्रवेश करेंगे ? भगवान ने सर्प चंडकौशिक को दो शब्द कहे और वह सर्प से देव बन

गया, तो हमलोग चंडकौशिक जैसे तो नहीं हैं ना ? फिर नर से नारायण क्यों नहीं बन सकते ! पर वीरवाणी को अंतर में प्रवेश करने ही नहीं दिया है ।

ज्ञानी पुरुषों ने संसार के विषय भोग को विषम जहर की उपमा प्रदान की है । जैनदर्शन ब्रह्मचर्य को उत्तम स्वीकार करता है । जैनेतर भी कहते हैं कि 'ब्रह्मचर्य के समान कोई व्रत नहीं ।' आज स्वामी विवेकानन्द का गुणगान होता है । वे जगत में पूजनीय बने हैं, ब्रह्मचर्य के प्रताप से । वे एकबार परदेश गये, उन्हें भाषण के लिए अढ़ाई मिनट का समय मुश्किल से दिया गया । विवेकानन्द भाषण के लिए उठे और पहला ही शब्द बोले, 'मेरी प्यारी माताओं, भावशील भगिनियों, प्रेमल पिताओं और उत्साही युवकों !' इस मधुर संबोधन को सुनकर सभा चकित और हर्षित हो गयी । स्वामी विवेकानन्द का रूप, सौंदर्य और आकर्षक वाणी ने एक जादू-सा कर दिया । अढ़ाई मिनट के स्थान पर विवेकानन्द अढ़ाई घंटे तक बोले, फिर भी सभा का जी नहीं भरा था, वे चाहते थे कि स्वामीजी बोलते ही रहें । उनकी वाणी ब्रह्मचर्यमय थी । लोग उनके गुणगान करने लगे । धन्य है उस माता को जिसने ऐसे कुलदीपक को जन्म दिया । भारत की संतान ने परदेश में भारत की ख्याति बढ़ाई । आप भी अपनी माता के कुलदीपक बनिए, जिससे आपकी माता का भी गुणगान हो कि धन्य है इसकी जनेता को ।

"जननी जन तो ऐसा जन, कां भक्त कां शूर
नहींतर रहेजे वांझणी, मत गुमावीश नूर ।"

भगवान महावीर जगत के कोने-कोने में विचरे, कितने भयंकर उपसर्ग सहे । लोग क्या कहते ? धन्य है इनकी माता त्रिशला को । दुःख सहे पुत्र ने और नाम मिला माता को । आप भी ऐसे बनना । कुल को कलंकित न करना । कुलदीपक बनेंगे तो माता का निधन हो गया होगा, तो भी उसकी अमरता रहेगी ।

समरादित्य कुमार का प्रसंग : समरादित्य कुमार बचपन से ही गंभीर प्रकृति के थे । उन्हें घूमना-फिरना या खेलना उतना पसंद नहीं था । सदैव आत्मचिंतन में मस्त बने रहते । संसार से अलिप्त भाव से रहते थे । विवाह करने की बिल्कुल इच्छा नहीं थी, पर पिता ने जबरदस्ती शादी करवा दी । समरादित्य राजकुमार की परिणीता दो राजकन्याएँ सखी के साथ उनसे मिलने आती हैं । सखी कुमार को पान का बीड़ा देते हुए कहती है, "लीजिए कुमार साहब ! मेरी सखियों ने आपके प्रति असीम प्रेम से बनाया है, यह पान का बीड़ा । उसे स्वीकार करके इन्हें धन्य बनाइए ।" कुमार अवसर जानकर पूछते हैं, "क्या आपकी सखियों का वास्तव में

मुझ पर प्रेम है।" सखी बोली, "अरे कुमार साहब ! प्रेम की क्या पूछते हैं ? जबसे आपके अद्‌भुत गुणों का वर्णन सुना है वे आप ही के लिए व्याकुल हैं।" कुमार कहते हैं, "अपनी सखियों से इतना पूछ लीजिए कि जिस व्यक्ति पर प्रेम हो, जो सर्वाधिक प्रिय हो, ऐसे व्यक्ति से क्या करवाना चाहिए, जिससे उसका सुफल निकले ?" कुमार के कहने का रहस्य समझ में आया। कुमार सखियों से कह रहा है कि 'तेरी सखियों का कुमार पर प्रेम है तो वे कुमार से क्या करवाने आई हैं ? कुछ ऐसा तो नहीं कि कुमार को भव में भटकना पड़े ? कुमार का अहित तो नहीं होगा ना ?

राजकुमार की पत्नियाँ चतुर, शिक्षित, राजकुमारियाँ हैं। वे प्रश्न का गूढ़ार्थ समझ गईं। उन्हें लगा, बिल्कुल सच है कि हम पति कुमार के पास संसार-सुख के राग-रंग पाने ही आई हैं और इससे उनका भवभ्रमण रुकने वाला नहीं ! तो फिर कैसे कहें कि हम उन पर सच्चा प्रेम करते हैं ? दोनों पत्नियाँ आकर कुमार के चरणों में गिरकर बोली, "स्वामी ! क्षण-भर हम भ्रम में पड़ गये। प्रेमी का नाम धारण करके आपके पास ऐसी आशा से आये कि जिससे आपका कोई भला नहीं होगा। परन्तु अब हमें आप बताइए कि सच्चे प्रेम के लिए क्या करें कि जिससे आपका भला हो ?"

समरादित्य राजकुमार ने कहा, "सर्वप्रथम तो हमें आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करना चाहिए, जिससे मेरा और तुमलोगों का कल्याण होगा।" दोनों कुमारियाँ समझ गईं कि स्वामी ने अपनी जीवन राह पहले से निश्चित कर रखी है। इसीलिए हमें भी इस उत्तम मार्ग का अनुसरण करने कहते हैं। तुरंत उल्लास से स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा, "आपने हम पर बड़ा उपकार किया है। हमें लगता है आप जैसा सौभागी पति कभी अनंतकाल में हमें नहीं मिला, नहीं तो आज तक हमारी भटकन क्यों होती। कुमार को पति रूप में स्वीकारा है तो उनका आदर्श भी अपना आदर्श बनाना चाहिए। ऐसे सुसंतानों से माता-पिता का नाम उज्ज्वल होता है।

अरुण की स्थिति तो अत्यन्त दयनीय हो गई थी। विपीन को पता चलते ही वह गाड़ी लेकर अरुण के घर पहुँचा। विपीन को गाड़ी कहाँ से मिली ? वह तो तीन सौ रुपयों की नौकरी कर रहा था। इस बीच काफी समय व्यतीत हो गया। विपीन की प्रामाणिकता और मेहनत देखकर मालिक ने एक दिन उसे मिल का सारा कारोबार सौंप दिया। पूर्वजन्म का कोई संबंध उभरा कि वह सेठ को बेटे जैसा प्रिय बन गया। मिल का ट्रस्ट बनाकर उसकी व्यवस्था विपीन को सुपुर्द कर दी। अरुण और उसकी पत्नी झोंपड़ी में थे, विपीन को देखकर चौंके।

उसकी भक्ति का रंग फैलता है। भाव भक्ति वाला आत्मा सदैव नम्र बनकर वीरवाणी में मस्त रहता है और समभावपूर्वक आत्मस्वभाव में लीन होता है।

आज का दिन मंगलमय है। आज माटुंगा संघ के आँगन में पाँच दंपती आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत करेंगे। आज जो व्रत ले रहे हैं और जो लेने को इच्छुक हैं उन्हें ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखने के लिए नियमों का पालन करना होगा। सबसे पहले यह बात ध्यान में रखिए कि रास्ते में आते-जाते नीची नजर रखें तो कितने ही पापों से बच सकते हैं। रास्ते में देखने के लिए क्या है? जगत की रूप-रानियाँ आपके घर नहीं आने वाली, वे तो आपका हृदय बींधकर चली जायेंगी और आपको अशांत बना जायेंगी। फिर भले ही आप पापी विचार करते रहें। मन का पाप भी जीव को नरक में ले जाता है। जो संपूर्ण ब्रह्मचर्य न पालनकर सके उसे मर्यादा में रहकर चारित्र पालन करना चाहिए। आज का संसार कैसा है?

अमरिका का एक प्रसंग है। एक बार पत्नी ने पति से कहा, "मेरे लिए बिस्किट लाना।" पति लाना भूल गया। बस, पत्नी का मिजाज बिगड़ गया, ऐसा पति नहीं चाहिए। ले लिया तलाक। आज की सरकार भी यही चाहती है कि प्रजा के सुख के लिए उसे हर प्रकार की स्वतंत्रता होनी चाहिए। किसी नियम की आवश्यकता नहीं है। आज तो देश स्वतंत्र है, जो सत्ता भोग रहे हैं, उनमें कोई सदाचारी, प्रामाणिक या पवित्र दिखाई पड़ता है? सरकार नयी-नयी योजनाएँ बनाती हैं, परन्तु उसकी एक भी योजना ऐसी है जो मन को, आत्मा को शुद्ध बनाये? इसके विपरीत मन की अपवित्रता बढ़ती जाती है। अंत में आत्मा मलिन बन जाता है। देश के स्वतंत्र होने पर भी जीवन में स्वच्छंदता बढ़ी है, नीति-न्याय नष्ट होते दीखते हैं। शील और सदाचार की भावना में कमी आती जा रही है।

शील और सदाचार की भावना बहुत कोमल है। इस भावना को हल्का-सा धक्का भी लगे तो यह चकनाचूर हो जाती है। इस भावना को सलामत रखने के लिए सिनेमा, नाटक, तमाशा आदि मन को बिगाड़ने वाले मनोरंजन के साधनों का त्याग करना पड़ेगा। जीवन में मर्यादाओं का पालन करना होगा। राम-लक्ष्मण का नाम सुनते ही हृदय हर्ष से नाच उठता है [illegible] आदर से [illegible] जाता है। कभी विचार किया है कि उनमें कैसे [illegible] प्र[illegible] का हरण करके ले जा रहा था तब सीता ने [illegible] कर [illegible] फेंके थे। [illegible] सीता के [illegible]

लक्ष्मण, दोनों भाई सीता की तलाश में निकल पड़े थे । रास्ते में सीताजी के कुंडल आदि गहने गिरे हुए मिलते हैं । रामचंद्रजी उन्हें उठाकर लक्ष्मण से पूछते हैं कि "भाई ! ये तेरी भाभी के कुंडल हैं ? ये कंगन तेरी भाभी का है ?" तब लक्ष्मणजी क्या उत्तर देते हैं -

"कुण्डले नैव जानामि, नैवं जानामि कंकणे: ।
नूपूरे: चेव जानामि, नित्यंपादाब्जवन्दनात् ।।"

लक्ष्मणजी कहते हैं कि "मुझे ज्ञात नहीं है कि मेरी भाभी के कुंडल या कंगन कैसे थे ! मैं तो भाभी के पैरों के नुपूर ही पहचानता हूँ ।" लक्ष्मणजी रामचंद्रजी को नमस्कार करते थे, वैसे ही सीताजी को भी नमस्कार करते थे । नमस्कार करते समय उनकी नजर स्वाभाविक रूप से चरणों की ओर होती थी, और कहीं दृष्टि नहीं जाती थी । बड़ी भाभी माता के समान होती है । बंधुओं ! विचार कीजिए । जंगल में राम-लक्ष्मण और सीताजी तीन ही जन थे, सीताजी का लक्ष्मण के प्रति स्नेह भी कम न था । राम अक्सर सीताजी की रक्षा का दायित्व लक्ष्मण को सौंपकर चले जाते थे । तब लक्ष्मण और सीताजी अकेले ही रहते थे । पर लक्ष्मण ने कभी ऐसा विचार नहीं किया कि जरा भाभी का रूप देख लूँ । उनका रूप कितना सुंदर है । कुछ मीठी बातें कर लूँ । परन्तु सीता के प्रति लक्ष्मण का पूज्यभाव था और सीताजी का लक्ष्मण के प्रति अगाध वात्सल्यभाव था । दोनों की दृष्टि पवित्र और निर्मल थी । आज आप लक्ष्मणजी के गुण क्यों गाते हैं ? उनमें क्या गुण थे जान लिया ! सिर्फ गुण गाने से काम नहीं चलेगा, थोड़ा अनुकरण भी करना चाहिए । आज अच्छे का अनुकरण जगत में बहुत कम हो रहा है, पर अंधानुकरण में लगातार वृद्धि है । किसीका सुंदर बँगला देखकर मन में यही विचार करते हैं कि मुझे भी ऐसा ही बँगला बनवाना है । डेढ़ लाख का बँगला हो तो उसमें पचास हजार का फर्निचर होता है । यदि फर्निचर न हो तो आपको लगता है कि बँगले की शोभा नहीं बढ़ती । परन्तु यह देह रूपी बँगला धर्म, नीति-न्याय रूपी फर्निचर के बिना सुशोभित नहीं होता इसकी जरा भी परवाह हैं ! कैसी नकल चल रही है ! एक दृष्टांत दूं ।

मैनेजर का प्रसंग : लंडन का एक मैनेजर अपनी गाड़ी से दफ्तर जा रहा था । गाड़ी से उतरते समय दरवाजा खोलने में उसके पत्तर से खोंच लगी और पैंट फट गया । अब यदि ऐसा फटा पैंट पहनकर दफ्तर जाये तो सब हँसेंगे और लौटकर, पैंट बदलने घर जाये तो दफ्तर में लेट हो जाये (श्रोताओं में से आवाज : 'वहाँ टाईम की कीमत है ।') आपसे कहूँ कि देवानुप्रियों ! चौबीस घँटे में दो घड़ी तो

उपाश्रय में आइए तो कहेंगे महासतीजी ! टाइम नहीं ।' वहाँ (Time is money) समय ही धन है । संसार के प्रत्येक कार्य में समय को धन माना है, परन्तु यह समय आपके जीवन को सार्थक नहीं बनायेगा । धर्मकार्य में जितना समय बीतेगा उतना सार्थक है । उस मैनेजर की पैंट फटी, घर जाने का समय न था । तभी वहाँ एक दर्जी की दुकान दिखी । दर्जी के पास जाकर उससे पैंट रफू करने के लिए कहा, "रफू ऐसे करो कि वह गुलाब का फूल लगे ।" मैनेजर की पैंट दर्जी ने ऐसी सुंदर रफू की कि फटा हुआ तो नहीं दिखे उल्टे सुंदर फूल दिखाई दे रहा था । तत्पश्चात् मैनेजर ओफिस चला गया । दूसरे दिन देखा कि क्लर्क आदि सबने पैंट में फूल बनवाया है । मैनेजर ने सोचा, 'मेरी तो पैंट फटने के कारण मैंने रफू करवाया, इन सबने किसलिए ऐसा किया ?' इसीका नाम है अंधानुकरण । आज परदेश का अनुकरण किया जा रहा है लेकिन वहाँ जो नीति-न्याय है उसकी नकल नहीं करते । अनुकरण करें तो अच्छे का कीजिए ।

लक्ष्मणजी जैसे का अनुकरण कीजिए तो आपका जीवन भी उनके जैसा आदर्श और चारित्रवान बनेगा । रास्ते में आते-जाते क्या देखा करते हैं ? जो जिंदगी में मिलेगा नहीं उसीको ना ? अपने शांत और अविकारी मन को क्यों अशांत और विकारी बनाना चाहते हैं ! ऐसे दृश्य देखना और ऐसी बातें सुनना बंद कीजिए । क्योंकि यह जिंदगी के लिए भयंकर आफत है । आज के युग में जितना संयम रखेंगे उतना मन शांत और स्वस्थ रहेगा । मैथुनसंज्ञा को तोड़ने के लिए ब्रह्मचर्य अमूल्य औषधि है । आहारसंज्ञा तोड़ने के लिए तप की आवश्यकता है । भयसंज्ञा नष्ट करने के लिए शुद्ध भाव की जरूरत है और परिग्रहसंज्ञा के लिए दान सर्वाधिक महात्त्वपूर्ण है ।

परिग्रह की तृष्णा को जड़ से उखाड़ने के लिए सर्वश्रेष्ठ उपाय है, दान की भावना । परिग्रह के भार से हल्का बनने के लिए हृदय में दान देने की भावना प्रगट होनी चाहिए । जबतक यह भावना नहीं जागती तबतक परिग्रह संज्ञा नहीं होती, अत: कोई उपाय तो करना चाहिए ।

धन के प्रति मूर्छाभाव न उतरने तक कोई अच्छे कार्य के लिए कुछ चंदा माँगने आये तो आप उसे उल्टे पैरों लौटा देगें । बंधुओं ! परिग्रह से हल्के बनने का अमूल्य अवसर है यह मनुष्य भव । कितनी ही वस्तुओं पर आपने अपने नाम का लेबल लगा रखा है, पर कहिए तो यह लेबल कब तक रहेगा ? 'यह मेरा है' का लेबल शाश्वत है या अशाश्वत ? (श्रोताओं में से आवाज : 'अशाश्वत') जबतक आपकी

आँखें खुली हुई हैं तभी तक वह लेवल है। जैसे ही आँखे बंद हुई आपका लेवल निकाल कर फेंक दिया जायेगा। अब आपके स्थान पर पुत्र का लेवल लगेगा। अंत में धन तो पराया ही है। तो पराये धन के प्रति इतनी आसक्ति क्यों? जीव को दान देने की भावना क्यों नहीं जागती? मन में ऐसा विचार करते होंगे कि पुत्रों के लिए कुछ रखना चाहिए, क्यों है ना?

बंधुओं! कुछ तो सोचिए। पुत्र का पुण्योदय होगा तो आपके कुछ न छोड़ने पर भी अकूत संपत्ति प्राप्त कर लेगा। यदि पाप का उदय होगा तो आपकी छोड़ी लाखों की संपत्ति भी चली जायेगी। पुत्र कपूत निकला तो धन की क्या बात, आपकी इज्जत और नाम को कलंक ही लगायेगा। पर जो सपूत होगा तो, एक पैसा न छोड़ा होगा, फिर भी आपसे अधिक धन कमा लेगा तथा सदुपयोग से आपका नाम भी रोशन करेगा। परिग्रह की वासना बहुत खराब है। उसमें आदमी रौद्रध्यान तक पहुँच जाता है। रौद्रध्यान किसे कहते हैं? निरंतर हिंसा, असत्य और चोरी का तीव्र विचार करना, अज्ञानता के कारण कुशास्त्रों के प्रभाव में आकर धर्म के नाम पर हिंसा आदि पाप करना रौद्रध्यान है। इसका फल क्या मिलता है? नरकगति। मन में परिग्रह के पाप से रौद्रध्यान का प्रवाह बहता रहता है। मान लीजिए आपने किसीको लाख रुपये उधार दिये। रुपया दो नंबर का है, इसलिए आप चौपड़े में लिख नहीं सकते। आपको उस पैसे की आवश्यकता पड़ी और आपने अपने पैसे उस व्यक्ति से माँगे। उसने स्पष्ट इनकार कर दिया, क्योंकि वह जानता है कि रुपया ब्लैक का है, कोई लिखा-पढ़ी या साक्षी नहीं है। कोर्ट में केस भी नहीं कर सकते हैं। तब आप क्या करेंगे? चुपचाप बैठना पड़ेगा ना? उस समय रौद्रध्यान की कोई सीमा रहेगी? मन ही मन में उस पैसे ले जाने वाले के प्रति अशुभ भाव आते रहेंगे ना?

देवानुप्रियों! ऐसे समय में यदि दिल दुःखी न हो तो समझिए कि आप अपरिग्रही हैं। धन के प्रति ममत्व भाव नहीं है। उस समय यह विचार आयेगा कि जब उसके पास होगा तब लौटा देगा। हम कहाँ उसी पैसे के सहारे हैं। पापी पैसे के लिए उसे मारना नहीं है। मन से भी खराब चिंतन नहीं करना है। लेकिन ऐसे समय में ऐसी उत्तम भावना कोई भाग्यवान आत्मा को ही होती है। बाकी तो अधिकांश के मन में उसे मरवाने का विचार भी आ जाता है। आप चाहें तो अहिंसा, सत्यव्रत का पालन करते हुए न्याय-नीति से व्यवसाय चला सकते हैं। लेकिन आज दुनिया उल्टे रास्ते पर भागी जा रही है। पाप तो करते हैं उपर से होशियारी दिखाते हैं। इसका परिणाम

क्या होगा, पता है ? यह पाप ऐसा मजबूत बँधेगा जिसे भोगकर ही छुड़ाना पड़ेगा। जब पाप उदय में आयेगा तो आँखों से आँसुओं की धार बहेगी, परन्तु भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलेगा। इन्कमटैक्स, सेलटैक्स अफसरों को असत्य कहकर बहला-समझा लिया तो खुश होकर अपने मित्र से कहेंगे कि मैंने कैसी चालाकी की ? उसे कैसा बनाया ? धन के लोभ में असत्य का सहारा लिया, छल-कपट किया फिर भी मन में अफसोस नहीं, उल्टे हेकड़ी दिखाते हैं। पुण्य का उदय है तबतक ठीक चल रहा है, जब पुण्य घटेगा और पाप के जाल में फँसेंगे तब आँखें खुलेंगी। नरक के भयंकर दुःख भोगने पड़ेंगे तब ख्याल आयेगा। पाप करके उसका प्रायश्चित्त न करने से क्या परिणाम होगा ? बंधुओं ! जरा सोचिए, पैसे के लिए हिंसा, झूठ, चोरी, अन्याय आदि क्या पाप नहीं किया ? लेकिन अंत में पैसा यहीं रह जायेगा और किये हुए कर्म साथ आयेंगे।

"लाखो अहीं चाल्या गया, लाखो नीजे चाल्या जशे,
माटी तणी जिंदगी, माटी महीं मळी जशे ।"

अनेक पाप करके प्राप्त किये धन को छोड़कर लाखों करोड़ों मनुष्य इस दुनिया से चले गये हैं और भी चले जायेंगे। शरीर अंत में राख होगा, मिट्टी में मिट्टी मिल जायेगी। परन्तु सुभाशुभ कर्म जीव के साथ जायेंगे। अतः अब निर्णय कीजिए कि जो पाप हो गया सो हो गया, अब पाप नहीं करना है। वस्तुपाल, तेजपाल, झगडुशाह आदि महान पुरुषों को हम पुण्यशाली कहते हैं; किसलिए ? करोड़ों-अब्जों की संपत्ति थी, इसलिए ? नहीं, उन्होंने अपनी संपत्ति का अच्छे कार्य में सदुपयोग किया था।

बंधुओं ! ये दिन चारों संज्ञाओं पर विजय प्राप्त करने के दिन हैं। अनादिकाल से अशुभ वृत्तियों ने हमारी आत्मा पर प्रभाव जमाया हुआ है। उनसे युद्ध करके अशुभ वृत्तियों को पराजित करना है। इन पर्व के उत्तम दिनों में हमारा क्या कर्त्तव्य है, जरा विचार कीजिए। हमारा आत्मा कर्मशत्रुओं के पाले पड़ गया है, इसलिए त्याग-वैराग्य की बात आते ही पीछे हट जाता है। रणसंग्राम में गया हुआ राजपुत कभी पीछे नहीं हटता। या तो सिर देकर आता है या सिर लेकर आता है। पहले समय में मनुष्य अपना कर्त्तव्य अदा करने के लिए अपनी देह तक बलिदान कर देने में नहीं हिचकते थे। राणाप्रताप ने अपने धर्म की रक्षा के लिए पुत्री यवन को नहीं दी और मुकाबले में लगे रहे। राज-पाट छूट गया तो जंगल में जाकर तैयारी करते रहे। धर्म का कैसा जनून !

क्षत्रिय-क्षत्रियाणी का प्रसंग : मेवाड़ के प्राचीन इतिहास का एक प्रसंग है। राजपूतों के समय की बात है। अठारह वर्ष की उम्र का राजपूत युवक सेनापति था। एक राजपूत कन्या के साथ उसका विवाह हुआ। विवाह करके बारात अभी लौटी ही थी कि नगर में युद्ध की भेरी बज उठी। युद्ध के भेरी सुनकर कोई राजपूत बैठा नहीं रह सकता। युद्ध तो उनका जीवन है। सेनापति नववधू लेकर आया है पर तुरंत अपने कक्ष में पहुँचा। कवच आदि सेनापति का वेश धारण करके पत्नी के सामने गया। पत्नी भी कैसी ? मानो देवलोक की अप्सरा हो। पत्नी का मुख देख सेनापति का कवच और कटारी तक में कंपन होने लगी। अभी तो मैं इस बाला को ब्याह कर लाया हूँ और अभी मौत का मुकाबला करने जाने का समय आ गया। पत्नी पति के मनोभाव समझ गयी। "सभी राजपूत युद्ध पर जा रहे हैं, आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, आप किसलिए देर कर रहे हैं ? जल्दी जाइए और शत्रु का नाश करके विजय प्राप्त कर लौटिए।" ये शब्द कौन बोल रहा है ? वह पत्नी, जिसने श्वसुर गृह में पहला कदम रखा है। सेनापति बोले, "परंतु..." पत्नी कहती है, "कुछ परन्तु नहीं। राजपूत का जीवन संग्राम है अतः शीघ्र जाइए। एक क्षण का भी विलंब न कीजिए।"

सेनापति भी सच्चा क्षत्रिय था। पत्नी की बात सुनकर शूरता आ गई। तेजी से नीचे उतरा। परन्तु जाते-जाते झरोखे की ओर मुड़-मुड़कर देखता जाये। दो-चार कदम आगे बढ़ा फिर दो कदम पीछे चला। अपने पति को इस तरह दो-तीन बार आगे-पीछे होते देखकर पत्नी ने विचार किया कि 'मेरे पति को मेरे मुख का मोह हो रहा है। मेरा सौंदर्य उनके हृदय को शून्य बना रहा है। यदि इस शून्य हृदय से युद्ध में जायेंगे तो विजय कदापि प्राप्त न होगी। राजपूत होकर भी कायरों जैसा काम कर रहे हैं। मेरी खातिर एक राजपूत वीर अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाये तो एक क्षत्रियबाला के लिए बड़ा कलंक है।'

उस बाला ने शीघ्रता से दासी से कटारी मंगवाई। जिस हाथ पर सौभाग्य का कंगन पहना है उसी हाथ से अपना सिर धड़ से अलग कर दिया। दासी से कहा, "मैं जो दूँगी, वह युद्ध के मैदान में मेरे पति को जाकर देना और कहना कि मेरे मुख पर उनका बहुत राग है इसीलिए आपके लिए भेजा है।" दासी सिर लेकर घोड़े पर बैठकर सेनापति के पास पहुँची और उन्हें सौगात दी। तब राजपूत समझ गया कि 'मुझमें कचाई थी इसीलिए पत्नी को ऐसा करना पड़ा।' **कर्त्तव्य के** लिए

कैसी कुर्बानी ! मेरे कारण मेरा पति युद्ध में न जाये या जाय तो विजयी न बन सके, ऐसा कलंक राजपूतों के इतिहास में मैं नहीं लगने दूँगी। पति ने पत्नी का माथा हाथ में लिया और युद्ध करके विजयी हुआ। हमें तो यह समझना है कि वीरांगना, नवपरिणीता का कितना बड़ा त्याग ! किसके लिए ? एक कर्त्तव्य-पालन के लिए।

रणभेरी बजे तो राजपूत नहीं रुके, वैसे ही वीतराग वाणी की भेरी बजे तो महावीर का श्रावक बैठा न रहे। वीतराग वाणी की प्ररूपणा करनेवाले भगवान महावीर को हम तीनों समय याद करते हैं। जैसे घोर अंधकार में सूर्य की किरणों के आने से अंधकार नष्ट हो जाता है वैसे ही अज्ञान रूपी अंधकार की आँधी में भटके मानवों को भगवान ने उपदेश रूपी ज्ञान की किरणों द्वारा मार्गदर्शन करवाया। भगवान महावीर कब और कैसे बने, उनके भव की गिनती कहाँ से शुरू हुई, यह आज संक्षेप में बताती हूँ।

प्रभु श्री महावीरस्वामी अथवा तीर्थंकर भगवान की आत्मा भवचक्र में परिभ्रमण करते-करते किस प्रकार आत्म-दर्शन करती है और अंत में तीर्थंकर होकर किस प्रकार द्वादशांगी के भावों को धर्मदेशना द्वारा स्पष्ट करते हैं, आज इस पर विचार करेंगे। श्री महावीर देव अथवा कोई भी तीर्थंकर भगवंत के भव की गिनती सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् से प्रारंभ होती है। यद्यपि आत्मा अनादि है और अनादि कर्म संयोग से अनंतकाल से संसार में परिभ्रमण करते हुए इस जीव ने अनंत जन्म-मरण किये हैं। फिर भी जबतक आत्मा को सम्यक्दर्शन की प्राप्ति न हो और इस गुण की प्राप्ति द्वारा आत्मस्वरूप का भान न आये तबतक आत्मा का कोई भी पुरुषार्थ मोक्ष की अनुकूलता के लिए नहीं हो सकता। इसीलिए वैसे पुरुषार्थ वाले भव की गिनती सफल भव के रूप में नहीं होती। श्री महावीर प्रभु को नयसार के भव में मुनिवर को प्रदत्त पवित्र दान से और मुनिवर के सदुपदेश से अनादि के राग-द्वेष की निविड़ कर्मग्रंथि को भेदने का अवसर मिला। अंतर का द्वार उघड़ा और स्व-पर का विवेक रूपी दीपक प्रगट हुआ। साथ-साथ आत्मस्वरूप का भान होने का प्रसंग मिला तथा सम्यक्दर्शन गुण प्राप्त हुआ।

नयसार के भव से महावीर देव के भव तक की गिनती सत्ताइस भव की है। जिसमें कितने ही भव आराधक रूप के हैं, तो कितने ही भवों में कर्मसत्ता की प्रबलता और पुरुषार्थ की हीनता के कारण परम तारक प्रभु का आत्मा विराधक भी बना है। भगवान की आत्मा सत्ताइस भवों के दरम्यान पुण्योदय से देवलोक

में, मनुष्य जीवन में उच्चकोटि के माने जाने वाले चक्रवर्ती वासुदेव और राजा-महाराजा के ऐश्वर्य को भोगने वाला बना है । तीव्र पापोदय से सातवें नरक में भी जन्मा है । जहाँ अनंतकाल से एक समान विराधक भाव हो, जिसके कारण आत्मिक संपत्ति का केवल घात जारी रहता हो, इन संयोगों में से आत्मा की भव्यत्व दशा का परिपाक तथा सदगुरु, सतशास्त्र श्रवण, वांचन आदि निमित्त मिलने पर भव्य आत्मा को सम्यक्दर्शन की प्राप्ति तो हो जाती है । परन्तु यह प्राप्त सम्यक्दर्शन मोक्षप्राप्ति तक कायम रहे तथा उत्तरोत्तर प्रगति हो - ऐसा एकांत नियम नहीं है । प्राप्त सम्यक्दर्शन औपशमिक अथवा क्षयोपशम भाव का होने पर, उस प्रकार के अशुभ निमित्त मिलने पर अनंतकाल की विषय-कषाय की वासना से आकर्षित होकर यदि अपना भान भूल जाये तो फिर से मिथ्यादृष्टि बन जाता है । लेकिन एक बार भी जिसने सम्यक्दर्शन की प्राप्ति द्वारा आत्मस्वरूप के दर्शन किये हैं, वह आत्मा अधिक से अधिक अर्धपुद्गल परावर्तन जितने समय में अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है । इस बारे में कोई शंका संभव नहीं । पर जबतक ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुणों की क्षायिक भाव से प्राप्ति नहीं होती तबतक ये गुण एक बार प्राप्त होने पर भी कभी-कभी आवरणों से दब जाते हैं ।

भगवान महावीर के साथ भी सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् अमुक भवों तक ऐसा ही हुआ । भगवान महावीर के सत्ताइस भव में सात भव त्रिदंडी का और सात भव देव का था, फिर सोलहवें भव में जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की । वहाँ नियाणा कर लिया कि मेरे तप, संयम का फल हो तो महान शक्ति का स्वामी बनूँ । संयम के प्रभाव के कारण यहाँ से देवलोक गये और अठारहवें भव में त्रिपृष्ट वासुदेव बने । वहाँ से मरकर सातवीं नरक में गये । बीसवें भव में सिंह हुए । इक्कीसवें भव में नरक गये । वहाँ से तिर्यचादि के छोटे भव करके बाईसवें भव में मनुष्य हुए । तेइसवें भव में चक्रवर्ती बने । छः खंड का ऐश्वर्य मिलने पर भी वह आत्मा घास के तिनके की भांति बाह्य ऐश्वर्य का त्याग कर चारित्र की आराधना में मस्त बना । वहाँ एक क्रोड़पूर्व वर्ष तक चारित्र पालन कर देवलोक में गये । प्रभु महावीर के सत्ताइस भवों में तेइसवें प्रियमित्र चक्रवर्ती के भव और उससे भी अधिक पच्चीसवें नंदनमुनि के भव से प्रभु के जीवन में आत्मिक प्रगति की निरन्तरता दिखाई पड़ती है । पच्चीसवें भव में एक समृद्धिशाली राजा के यहाँ राजकुमार के

रूप में जन्म लेने के बावजूद बाह्य राज्य की अपेक्षा अंतरंग आत्मिक राज्य प्राप्ति के लिए तैयार हुए । नंदन राजकुमार ने परमकृपालु गुरुदेव के समक्ष चारित्र ग्रहण किया । तथा एक लाख वर्ष पर्यंत निरतिचार चारित्र का पालन किया । चारित्र के प्रारंभ से आयुष्य की समाप्ति तक मासखमण की तपस्या की । ग्यारह लाख और इक्यासी हजार मासखमण किया । एक तरफ निर्मल सम्यक्‌दर्शन के कारण आत्मस्वरूप की यथार्थ चेतना, दूसरी तरफ आत्मस्वरूप प्रकट करने के लिए अद्‌भुत संयम और घोर तपश्चर्या का पुरुषार्थ और गुरु से विनयपूर्वक प्राप्त ग्यारह अंगों का ज्ञान, इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र की त्रिवेणी संगम के पुनीत जल के कारण नंदन मुनिवर को अनादिकाल से आत्मा में घर बनाये बैठे कर्मों के मल को दूर करने के साथ, समस्त आत्माओं के उद्धार तथा त्रिविध ताप से मुक्त करके अविनाशी सुख का भोक्ता बनाने की उत्कंठा जागी । मुझमें ऐसा उत्तमोत्तम वीर्योल्लास कब प्रगटे कि मेरी आत्मा सर्व जीवों को मुक्ति पंथ का मार्ग दिखाये । सर्व जीव शासन रसी बने - यह भावना रही । इस प्रकार उग्र तपस्या के साथ अरिहंतादि बीस स्थानकों की आराधना करने से नंदनमुनि के भव में तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया । वहाँ से छब्वीसवें भव में दसवें देवलोक में जन्मे ।

दसवें देवलोक से च्यवकर भगवान महावीर देव आषाढ़ शुक्ल षष्ठी की मध्यरात्रि को, नीच गोत्र के उदय से, देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भ के रूप में आये । देवानंदा ने चौदह स्वप्न देखे । साढ़े बयासी दिन के बाद, नीच गोत्र कर्म संपूर्ण क्षीण होने पर हरणगमेषी देव द्वारा देवानंदा माता की कुक्षि से त्रिशलामाता की कुक्षि में संक्रमण हुआ । उसी रात्रि में त्रिशलामाता को गज-वृषभ आदि चौदह स्वप्न आये । अनुक्रम से नौ मास और साढ़े सात दिन बाद, चैत्र शुक्ल तेरस के मंगलमय दिवस जगत उद्धारक प्रभु को जन्म दिया । छप्पन दिशाकुमारी और चौंसठ इन्द्रों ने जन्म महोत्सव मनाया, तत्पश्चात् राजा सिद्धार्थ ने दस दिन तक प्रभु का जन्म महोत्सव आयोजित किया और वर्द्धमानकुमार जैसा, गुणसंपन्न नामकरण किया । भगवान ने तीस वर्ष संसार में रहकर दीक्षा ली । अघोर तपस्या की । साढ़े बारह वर्ष और पंद्रह दिन की तपस्या में उनका पारणा मात्र तीन सौ उनचास दिन का रहा । देव, मनुष्य, तिर्यचों के भयंकर उपसर्ग सहन किये । भगवान दीक्षा लेने के पश्चात् केवल ज्ञान की प्राप्ति तक कभी जमीन पर पालथी मारकर आराम से बैठे तक नहीं । अधिकांश समय खड़े-खड़े कायोत्सर्ग ध्यान में

ि ाया । कभी जमीन पर बैठे भी तो उकडूँ (गोदोहासन में) बैठे हैं । भगवान ने ाढ़े बारह वर्ष में शांति से एक घँटा नींद तक नहीं ली । कभी कायोत्सर्ग ध्यान में ड़े-खड़े अथवा किसी परिग्रह या उपसर्ग के प्रसंग में आधी मिनट-आधी सेकं, अलग-अलग मिलकर निद्रा आ गयी हो, तो भी सिर्फ दो घड़ी की । ऐसी उग्र साधना करते हुए साढ़े बारह वर्ष और पंद्रह दिन में केवल ज्ञान प्राप्त किया और फिर द्वादशांगी की रचना की । केवल ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् प्रभु तीस वर्ष में निर्वाण पधारे ।

अ.. पाँच दंपती आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकारेंगे । भगवान ने अन्य व्रतों को नदी की उपमा प्रदान की है और चौथे व्रत को सागर की उपमा दी है । ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से आत्मा उज्ज्वल बनता है । आपका शृंगार तो कभी न कभी लूट जायेगा लेकिन शील (शियल) रूपी शृंगार कभी भी कोई नहीं लूट सकता । आपकी चुनरी फट जायेगी, परन्तु जिसने शियल की चुनरी पहनी है, वह तो सदा अमर रहने वाली है । इस चुनरी को पहनने वाले लोक में पूजनीय बनते हैं । अब आलोचना करवा कर उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत का प्रत्याख्यान दिया जायेगा । आप सब शांति से विराजिए ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ४४

भाद्रपद शुक्ल ३, सोमवार | दिनांक : १९-८-७४

संवत्सरी के स्वागत में हृदय आँगन शुद्ध बनाओ

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

पर्यूषण पर्व के दिवस अपनी जिन्दगी में से गुजरते जा रहे हैं । हर वर्ष के समान इस वर्ष भी पर्यूषण पर्व का आगमन हमारे आँगन में हुआ है । पर्यूषण पर्व विश्व शांति का संदेश लेकर, जीवन में प्रेरक बनकर आता है । मनुष्यजीवन चिंतामणि के समान अनमोल है । इस जिन्दगी में मनुष्य को क्या प्राप्त करने योग्य है ? क्या छोड़ने योग्य है ? इसकी प्रेरणा देता है । इन पर्व के पावन दिवसों में मनुष्य दरिद्र से श्रीमंत कैसे बने ? आध्यात्मिक दृष्टि से मनुष्य दरिद्र, अशांत है । कंगाली स्थिति को दूर करके आत्मशांति का अद्भुत खजाना प्राप्त करवाने के लिए पर्यूषण पर्व में संत महान पुरुषों

के जीवन के माध्यम से उपाय बताते हैं । सच्चा जीवन जीना कब होता है ? आध्यात्मिक दरिद्रता, अशांतता दूर हो तथा आत्मशांति मिले तब । इस दुनिया में एकत्रित किया गया धन, जीवन-दीपक बुझने पर यहीं का यहीं रह जाता है । परन्तु एक संपत्ति धन ऐसा भी है जिसे भौतिक देह त्यागने पर भी जीव साथ ले जाता है । यह कौन-सी संपत्ति है ? बंधुओं ! आपको यह लक्ष्मी पाने की जिज्ञासा जगी है ? इस लक्ष्मी को पाने की कभी इच्छा की है ? मानव जब अपनी लक्ष्मी, आधि, व्याधि, उपाधि की लक्ष्मी को अपने दुःख के हल करने में अक्षम पाता है तब लगता है कि इस संपत्ति के लिए अंधों की तरह भागता रहा पर शांति नहीं मिली । तो जिन्होंने वास्तविक शांति प्राप्त की है उनकी शरण जाकर इस अमूल्य मानव जीवन में आध्यात्मिक संपत्ति प्राप्त करके अपना जीवन शांत और समृद्ध बना सकूँ । जब मनुष्य को आध्यात्मिक शांति प्राप्त होती है तब उसके पास लक्ष्मी-धन न होने पर भी वह सम्राट बन जाता है ।

आध्यात्मिक शांति पाने का अमूल्य अवसर है यह मानव भव । मानव जीवन रूपी सीपी में आत्मा रूपी मोती को पकाकर उसे परमात्म रूपी अमूल्य मोती बनाना है । स्वाति नक्षत्र का जल सीप पर गिरने से सच्चा मोती बन जाता है । इसी प्रकार स्वाति नक्षत्र समान गुरुदेवों के मुखारविंद से वीतराग वाणी रूपी बरसात का एक बूँद जो अंतर में पहुँचकर विकसित हो जाये, तो परमात्मा रूपी मोती बन जाए । संतों से आपने बहुत बार सुना है कि संसार स्वार्थ की सिगड़ी है । पैसा और धन कोयले के समान हैं जो मानव के आचार-विचार को काला बनाते हैं । अरे, धन के लिए अमर कुमार की माता पुत्र अमर को बेचने के लिए तैयार हो गई । इस पैसे ने तो मातृप्रेम भी भुला दिया । जीवन से इस कालिमा को मिटाकर, उज्ज्वल बनाने के लिए धर्म के मार्ग में आगे बढ़िए तो आत्मा की उज्ज्वलता प्राप्त कर सकेंगे ।

आत्मा अमर है । इसका कभी भी नाश नहीं होगा । कर्म के संग से यह विविध दशाएँ प्राप्त करता है । नाश नाशवंत का होता है, आत्मा का नहीं । आत्मा अमर है । अमरता का अमृत प्राप्त करने के लिए आत्मा जबतक शक्ति जगाता नहीं तब तक जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है । हमारी आत्मा और परमात्मा की आत्मा दोनों समान है । 'आचारांग सूत्र' में भगवान का कथन है -

"जहित्थ मए संधी झोसिए एवमन्नत्थ संधी दुज्झोसए भवई, तम्हावेमि नो निहणिज्ज वीरियं ।" - आचारांग सूत्र, अ-५, उ-३

जिस प्रकार मैंने, यहाँ कर्मो को क्षीण किया, उस प्रकार से अन्य मार्गो में कर्मक्षय करना कठिन है। इसलिए मैं कहता हूँ कि "अपनी शक्ति को छिपाना नहीं चाहिए।" कहने का आशय यह है कि तीर्थंकर देव अन्य मुमुक्षों को यह उपदेश देते हैं कि जिस मार्ग पर चलकर मैंने कर्मो का क्षय किया है, उस मार्ग पर चलकर आप भी अपने कर्म क्षय कर सकते हैं। मैंने समभाव की साधना द्वारा कर्मो का क्षय किया है। इस समता द्वारा आप भी कर्मों को तोड़ सकते हैं। समता का मार्ग ही आपको शीघ्र और सरलता से आपके साध्य तक पहुँचायेगा। मेरा उदाहरण अपने सामने रखकर आप अपने मार्ग पर प्रयाण कीजिए। मेरा दृष्टांत आपको आलंबन रूप हो सकता है, परन्तु चलने का पुरुषार्थ तो स्वयं आपको करना होगा। इसलिए अपना बल-वीर्य छिपाना नहीं चाहिए।

हमारा और परमात्मा का आत्मा समान होने पर भी परमात्मा ने कठिन साधना, उग्र तपस्या आदि सत्पुरुषार्थ से अपनी आत्मा को परमात्मा बनाया है। हम भी अपनी शक्ति का सदुपयोग करें तो एक समय जरूर परमात्म-पद प्राप्त कर सकेंगे। परन्तु अभी हमारी आत्मा ने इस ओर योग्य पुरुषार्थ नहीं किया है। जबतक ममत्व की ओर झुकते वातावरण से आत्मा दबाया हुआ है, तबतक वह रंक है। स्वार्थ से भरे इस संसार में दुःख की दुर्गंध भरी है। तृष्णा और परिग्रह की हलचल में पारमार्थिक दृष्टि भूल जाते हैं। अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए दूसरों के जीव का कोई विचार नहीं करने की बुद्धि अज्ञान के आवरण से आ जाती है। तथा सच्चा तत्त्व समझ में नहीं आता। स्वार्थ दृष्टि मानव को संकुचित बना देती है। तब यह घर, माल-मिल्कियत, गहने, पुत्र सब में ममत्व भाव आ जाता है। किसी दूसरे दुःखी को व्यक्ति या अन्य का कोई नुकसान देखकर क्या ऐसा लगता है कि यह मेरा है? (श्रोताओं में से आवाज : 'जरा भी नहीं।') जबतक आत्मा की सच्ची दृष्टि नहीं प्रगटी है तबतक उसकी जीवन-सृष्टि हरियाली नहीं होती। कसौटी में चढ़े बिना सोना सच्चे सोने के रूप में स्वीकृत नहीं होता। पीतल को भला कोई खरा सोना मानेगा? कोई ठग पीतल पर सोने की पोलिश करके आपको सोने के कंगन कहकर बेचे, तो क्या आप उसे सोने का भाव दे देंगे या पहले परख कर देखेंगे? (श्रोताओं में से आवाज : 'अरे कसौटी में घिसे बिना लेंगे क्या भला?') कहीं ऐसा ही घट जाये तो [illegible] क्या [illegible] ोगी? सदा

नहीं जायगा । किसीसे कह नहीं पायेंगे और चेहरा गमगीन हो जायेगा । कंगन लेने का आनन्द नष्ट हो जायेगा । आप संसार के कार्यों में तो इतने होशियार हैं कि ऐसी भूल कभी करेंगे ही नहीं ।

ज्ञानी पुरुष हमें समझाते हैं कि 'क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि ठग आत्मा को ठगने के लिए तैयार खड़े हैं ।' ऐसे में यदि आत्मा को जागृत नहीं रखते हैं तो समझ लीजिए कि ठग लिए गये हैं । तथा मानव जीवन रूपी स्वर्ण लूट गया है । आत्मा को सच्चे स्वर्ण जैसी दशा प्राप्त करनी हो तो ताप, ताड़न, छेदन, आधि, व्याधि और उपाधि रूपी परीक्षा से सुरक्षित और शुद्ध बनकर बाहर आना पड़ेगा । सच्चा सोना परीक्षा से गुजर जाता है, नहीं तो अग्नि में जलकर भस्म हो जाता है । आत्मा को यदि शुद्ध स्वर्ण जैसा बनाना हो तो राग-द्वेष आदि को दूर करके वैराग्य भाव आना आवश्यक है । आपका वैराग्य कैसा ? स्मशान वैराग्य । आप स्मशान में तो बहुत बार गये होंगे । वहाँ मुर्दे को जलते हुए देखकर कभी विचार आया है कि एक दिन मुझे भी यहीं आना है । तो अब घर पहुँचकर धर्म की आराधना कर लूँ । उत्तम कार्य करके परभव के लिए उपार्जन कर लूँ । अब जीवन में प्रभु को कभी नहीं भूलूँ । कदाचित ऐसे विचार आते रहे हैं, परन्तु घर पहुँचे, पत्नी-परिवार से मिले कि प्रभु को भूले । धन को देखकर धर्म भूले । इसी तरह उपाश्रय में आते हैं और वीरवाणी श्रवण करते हैं, तब घड़ीभर के लिए सब भूल जाते हैं । अरे, कभी ऐसा भी लगता है कि संसार झूठा और संयम ही सच्चा है । लेकिन घर गये और राग के रंग में रंग गये । फिर 'जैसे थे' कि स्थिति लौट आई । स्मशान जैसे वैराग्य से आत्मा कभी तिरने वाला नहीं ।

आत्मा की अमरता पाने के लिए, ऐसे प्रमादी बने रहने से नहीं चलता । प्रमाद को छोड़ना पड़ेगा । पत्थर में से शिल्पी अपने शिल्पकला के कारण, मूर्ति बना सकता है । निर्जीव होने पर भी ऐसा आकार-प्रकार बनाता है, मानो सजीव ही हो । वही पत्थर धोबीघाट में जाये तो कपड़े पीटकर धोने के काम आता है । अपनी आत्मा को हमें कैसा बनाना है, उसका शिल्पी स्वयं मानव को ही बनना है । आत्मा को अमरता प्राप्त करवाने की गढ़न देनी है या फिर नरक-तिर्यंच के दुःख भोगने जाना पड़े - ऐसा स्वरूप देना है ?

बंधुओं ! विचारों को आप जैसी धार देंगे, वह वैसे ही चढ़ेगा । विचार बिगड़ने से उच्चारण बिगड़ता है और फिर आचरण बिगड़ता है । आचरण बिगड़ने से संसार

बिगड़ जाता है। संसार बिगड़ा तो भव-भव बिगड़ जाते हैं। आत्मा को अमर बनाने कि लिए भगवान मोक्षमार्ग के अध्ययन में कहते हैं :

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गो त्ति पन्नतो, जिणेहिं वरदंसीहिं ।।

- उत्त. सू. अ-२८, गा. २

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जिनेश्वर भगवान ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्ष का मार्ग कहा है। 'तत्त्वार्थ सूत्र' में भी कहा है कि, "*सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्ग:*" सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष का महान मार्ग है। जो मानव सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के खजाने से कर्म के जत्थों को जलाकर साफ कर डालता है, वह सच्ची रीति से अमर हो सकता है।

बँगला-बगीचा बनाकर उसपर नाम लिखवा देने से आप मानते हैं कि नाम अमर रहेगा। परन्तु इस तरह से जगत्त में किसीका नाम अमर नहीं रहा और न रहेगा। फिर भी क्षणिक आनन्द में मस्त बनकर जीवन को किस मार्ग पर धकेल रहे हैं - इसका जरा भी ख्याल नहीं करते। आत्मा का सच्चा सुख धर्म से प्राप्त होता है। आत्मा अपने दबाये हुए खजाने को धर्म के द्वारा ही प्रगट कर सकता है। धर्म से सच्ची शांति और आजादी प्राप्त होती है। धर्म की शक्ति अजोड़ है और प्रभाव अद्‌भुत है। जगत में धर्म का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। जीवन में जो कुछ अच्छा प्राप्त होता है उसका मूल और मुख्य कारण धर्म है। धर्म का स्थान जगत में श्रेष्ठ है पर क्या हृदय में भी धर्म का स्थान सर्वोपरि है ? आपके लिए धर्म का कितना महत्त्व है ? सांसारिक पदार्थों की अपेक्षा धर्म के प्रति जो अधिक प्रेम हो तो धर्म के लिए मनुष्य सर्वस्व समर्पण करने के लिए तैयार हो जाता है। परन्तु आज धन, पत्नी, पुत्र, परिवार और संसार के भौतिक पदार्थों को जितना महत्त्व देते हैं उतना धर्म को नहीं। इसका मुख्य कारण यह है कि आपके हृदय में यह बात जमी नहीं है कि धर्म सर्वश्रेष्ठ है। हृदय में रुचि नहीं है।

द्रौपदी का अधिकार

तीन ब्राह्मणों ने बात सुनी : धर्म का स्थान जैसे दुनिया में सर्वश्रेष्ठ है, वैसे हमारे हृदय और जीवन में भी सर्वोपरि रहना चाहिए। समभाव हमारा स्वभाव है। चाहे जैसी परिस्थिति हो, हर्ष या शोक न करना। चाहे जितनी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति आये तो भी राग या रोष नहीं करना। कोई निंदा करे या प्रशंसा पर

समभाव रखना । धर्मरुचि अणगार को मरणांतिक उपसर्ग आया, पर मुख पर जरा भी खेद नहीं उभरा । हँसते चेहरे से वीतराग की आज्ञा के प्रति वफादारी निभायी ।
धर्मरुचि अणगार तो एकावतारी बन गये । परन्तु धर्मघोष स्थविर के परिवार में चर्चा चढ़ गई । छद्मस्थ की लहर में मुनियों से बात निकल गयी और नगर भर में फैल गयी कि 'नागेश्री ब्राह्मणी ने जहर जैसी कड़वी तुंबी का आहार वहराया और मुनिराज के प्राण ले लिये ।' भगवान की मनाई है कि कभी ऐसी कोई घटना घटे, कोई उपसर्ग आये तो भी संत किसीका नाम न बोलें । परन्तु छद्मस्थ संत भी कभी भूल के पात्र बन जाते हैं । किसी सामान्य आदमी की ऐसे मृत्यु हो जाये तो ऊहापोह मच जाता है, फिर यहाँ तो मुनि की घात हुई थी । बात फैलते-फैलते उन ब्राह्मणों, अर्थात् सोम, सोमदत्त और सोमभूति, तक पहुँची । सोम ने सोचा, 'अरे ! यह तो मेरी पत्नी की ही बात हो रही है !' बंधुओ ! रुई से लपेटी आग कब तक छिपी रह सकती है !

नागेश्री ने अपना मान बनाये रखने के लिए, कि मेरी देवरानी, मेरी भूल न जान जाये, फिर से सब्जी बनायी और कड़वी सब्जी मुनि के पात्र में उड़ेल दिया । जैसे घूरे में चाहे जैसी वस्तु डालिए वह किसीसे कुछ नहीं कहता, वैसे ही मुनि के पात्र में जो दे दिया जायेगा - 'मुनि किसीसे कहेंगे नहीं' - यह सोचकर नागेश्री ने यह कार्य किया ।' अपने मान की रक्षा के लिए यह घृणित कार्य उससे हुआ । मान आदि चारों कषाय छोड़ने जैसे हैं - *'वमे चत्तारि दोसो उद्दच्छन्तो हियमप्पणो ।'* जो अपनी आत्मा का हित चाहते हैं, उन्हें ये चारों दोष छोड़ने योग्य हैं । ये दिन कषायों की ज्वाला को नष्ट करने के हैं । क्रोध कषाय भी महा भयंकर है । जबतक हृदय इन सब से रहित, शुद्ध न हो जाये तबतक सच्ची क्षमापना नहीं कर सकते ।

राजा उदायन और चंडप्रद्योत का प्रसंग : एक दासी के लिए राजा उदायन और चंडप्रद्योत युद्ध में भिड़े । युद्ध हुआ । राजा चंडप्रद्योत को राजा उदायन ने कैदी बना लिया । जब राजा उदायन राज्य की ओर लौटने लगे, तब राह में संवत्सरी पर्व आ गया । अतः एक स्थान पर पड़ाव डाला । रोज चंडप्रद्योत राजा से पुछवाया जाता था कि उन्हें क्या भोजन चाहिए ? तब चंडप्रद्योत कहते, "राजा उदायन जो खायेंगे वही मैं भी खाऊँगा ।" संवत्सरी का दिन है । चंडप्रद्योत से पूछा गया भोजन के बारे में और उनका वही उत्तर । उनसे कहा गया, "आज राजा उदायन का उपवास है, वे भोजन नहीं लेंगे ।" "राजा उदायन नहीं खायेंगे तो आज मैं भी नहीं खाऊँगा ।" दासी के लिए खूँखार लड़ाई हुई है । आज संवत्सरी प्रतिक्रमण करना

है। राजा उदायन विचार करते हैं कि 'संवत्सरी प्रतिक्रमण का अधिकारी कौन बन सकता है ? जिसने अंतर से वैर-विरोध का काँटा निकालकर हृदय को शुद्ध बनाया है, वही संवत्सरी प्रतिक्रमण कर सकता है ।'

राजा उदायन चंडप्रद्योत के पास गये और कहा, "मैं आपसे क्षमा माँगने आया हूँ, मुझे क्षमा कीजिए ।" चंडप्रद्योत बोले, "राजन् ! आप क्षमा माँगने आये हैं, पर मैं क्षमा तभी कर सकता हूँ जब मेरा दिल शीतल और शांत हो ।" राजा उदायन कहते हैं, "आपके जलते दिल को ठंडक पहुँचाने के लिए मैं क्या करूँ ? कहिए ! क्योंकि आप मुझे क्षमा न करेंगे तबतक मैं संवत्सरी प्रतिक्रमण करने का अधिकारी नहीं ।" चंडप्रद्योत ने कहा, "जिस दासी के लिए लड़ाई हुई वह दासी मुझे प्रदान कीजिए ।" तब उदायन कहते हैं, "मैं आपको दासी देता हूँ तथा कैद से मुक्त भी करता हूँ ।" जिसके लिए लड़ाई की थी, वही दासी उसे सौंप दी । एक संवत्सरी प्रतिक्रमण करने के लिए । यह है सच्ची क्षमापना । अंदर का क्रोध शांत न हो तबतक सच्ची क्षमापना नहीं हो सकती । अरे, क्रोध तो इतना खराब है कि वर्षों की साधना दो घड़ी के क्रोध में समाप्त हो जाए । साधू बने और क्रोध की ज्वाला भभकी तो साधुत्व हार गये और चंडकौशिक नाग बने । पहला तप है क्षमा । *'क्षमा वीरस्य भूषणम्'* क्षमा वीर का भूषण है । तप के साथ क्षमा हो तभी सही तप है । आप यहाँ किसलिए आते हैं ? (श्रोताओं में से आवाज : 'वीर बनने के लिए ।') पहले क्षमा को लाना पड़ेगा । इस जीव ने बाह्य साधना तो बहुत की । समझ के बिना, हजार वर्षों की साधना से जो लाभ नहीं होगा वह समझपूर्वक दो घड़ी की साधना से हो जायेगा ।

वृद्धा का प्रसंग : एक अस्सी वर्ष की वृद्धा थीं । उनको धर्म के प्रति बहुत भावना थी । सदैव अपने मधुर कंठ से सीमंधर स्वामी के गीत गाती रहती थीं । जब स्तवन गाती तो सगा-स्नेही, घर-बार सब भूल जातीं । 'हे प्रभु ! मुझे तेरे पास आना है, पर बीच में ऊँचे पहाड़ और बड़ी नदियाँ अवरोध बनते हैं । मैं कैसे आऊँ ?' रोज एकाग्र चित्त से यह गीत गाती थी । रोज उपाश्रय जाती, बेटे उन्हें वहाँ पहुँचा देते और वे अपना गीत गाती रहतीं । वृद्धा का इतना एकाग्रचित्त से रोज गीत गाना सुनकर एक देव ने सोचा कि 'वृद्धा कितनी एकाग्रता से सीमंधर स्वामी का गीत गाती है ! उसे महाविदेह क्षेत्र में जाना है तो चलो मैं ले जाऊँ ।' यह सोचकर देव ने ब्राह्मण का रूप धरा और वृद्धा के पास आ पहुँचा । उनकी भक्ति देख प्रसन्न होकर पूछा, "माता ! आपको कहाँ जाना है ?" वृद्धा माता ने

समभाव रखना । धर्मरुचि अणगार को मरणांतिक उपसर्ग आया, पर मुख पर जरा भी खेद नहीं उभरा । हँसते चेहरे से वीतराग की आज्ञा के प्रति वफादारी निभायी । धर्मरुचि अणगार तो एकावतारी बन गये । परन्तु धर्मघोष स्थविर के परिवार में चर्चा बढ़ गई । छद्मस्थ की लहर में मुनियों से बात निकल गयी और नगर भर में फैल गयी कि 'नागेश्री ब्राह्मणी ने जहर जैसी कड़वी तुंबी का आहार बहराया और मुनिराज के प्राण ले लिये ।' भगवान की मनाई है कि कभी ऐसी कोई घटना घटे, कोई उपसर्ग आये तो भी संत किसीका नाम न बोलें । परन्तु छद्मस्थ संत भी कभी भूल के पात्र बन जाते हैं । किसी सामान्य आदमी की ऐसे मृत्यु हो जाये तो ऊहापोह मच जाता है, फिर यहाँ तो मुनि की घात हुई थी । बात फैलते-फैलते उन ब्राह्मणों, अर्थात् सोम, सोमदत्त और सोमभूति, तक पहुँची । सोम ने सोचा, 'अरे ! यह तो मेरी पत्नी की ही बात हो रही है !' बंधुओं ! रुई से लपेटी आग कब तक छिपी रह सकती है !

नागेश्री ने अपना मान बनाये रखने के लिए, कि मेरी देवरानी, मेरी भूल न जान जाये, फिर से सब्जी बनायी और कड़वी सब्जी मुनि के पात्र में उड़ेल दिया । जैसे घूरे में चाहे जैसी वस्तु डालिए वह किसीसे कुछ नहीं कहता, वैसे ही मुनि के पात्र में जो दे दिया जायेगा - 'मुनि किसीसे कहेंगे नहीं' - यह सोचकर नागेश्री ने यह कार्य किया ।' अपने मान की रक्षा के लिए यह घृणित कार्य उससे हुआ । मान आदि चारों कषाय छोड़ने जैसे हैं - *'वमे चत्तारि दोसो-उद्दच्छन्तो हियमप्पणो ।'* जो अपनी आत्मा का हित चाहते हैं, उन्हें ये चारों दोष छोड़ने योग्य हैं । ये दिन कषायों की ज्वाला को नष्ट करने के हैं । क्रोध कषाय भी महा भयंकर है । जबतक हृदय इन सब से रहित, शुद्ध न हो जाये तबतक सच्ची क्षमापना नहीं कर सकते ।

राजा उदायन और चंडप्रद्योत का प्रसंग : एक दासी के लिए राजा उदायन और चंडप्रद्योत युद्ध में भिड़े । युद्ध हुआ । राजा चंडप्रद्योत को राजा उदायन ने कैदी बना लिया । जब राजा उदायन राज्य की ओर लौटने लगे, तब राह में संवत्सरी पर्व आ गया । अतः एक स्थान पर पड़ाव डाला । रोज चंडप्रद्योत राजा से पुछवाया जाता था कि उन्हें क्या भोजन चाहिए ? तब चंडप्रद्योत कहते, "राजा उदायन जो खायेंगे वही मैं भी खाऊँगा ।" संवत्सरी का दिन है । चंडप्रद्योत से पूछा गया भोजन के बारे में और उनका वही उत्तर । उनसे कहा गया, "आज राजा उदायन का उपवास है, वे भोजन नहीं लेंगे ।" "राजा उदायन नहीं खायेंगे तो आज मैं भी नहीं खाऊँगा ।" दासी के लिए खूँखार लड़ाई हुई है । आज संवत्सरी प्रतिक्रमण करना

रोज वृद्धा गाती थीं, पर जब कहा कि वहाँ से वापस नहीं आना है और यहाँ का कोई-कुछ मिलेगा भी नहीं । तो वृद्धा को क्या प्रिय लगा ? परिवार-घरबार प्रिय लगा, भगवान का दर्शन नहीं ।

इधर वृद्धा माँ की क्या दशा हुई, वह भी देख लें । वृद्धा के घर में बेटे के पौत्र हुआ । अब तो वे और भी बूढ़ी हो गई थीं । सारा दिन टपकते नाक और लार को पोंछती रहतीं । भूख बारबार लगती, भूखा रहा नहीं जाता परन्तु खाने को बारबार मिलता नहीं । पुत्रवधूएँ उनसे परेशान होकर पति से कहती हैं, "आपकी माँ रात-दिन कच-कच करती हैं । इसे कहीं छोड़ आओ तो अच्छा, हमारे जीवन को कुछ शांति मिले । अब तो उपाश्रय भी नहीं जातीं ।" बेटा-बहू, विचार करते हैं कि 'वृद्धा को यात्रा कराने ले जाएँ, फिर क्या करना है, वहाँ सोचेंगे ।' यह है आपका संसार ! आज अखबार में पढ़ा कि पिता अपने पुत्रों को अलग-अलग जंगल में छोड़ आया । उन बालकों की क्या स्थिति हुई होगी !

पुत्र कहता है, "माँजी ! चलिए आपको यात्रा करने ले चलते हैं ।" मोह में डूबी माँ बेटे के लक्षण नहीं पहचानती । जिसकी नसों में मोह का मद भर जाता है उसे सार-असार का विवेक नहीं रहता । यात्रा का नाम सुनकर, कुटुंब-कबीला और परिवार को सर्वस्व मानने वाली वृद्धा आशीर्वाद देते हुए कहती हैं, "पुत्रों ! तुम्हारा कल्याण हो । युग-युग जीओ ! तुम्हारे पुत्र की बहू सात पीढ़ी तक सोने के कलश में पानी भरे ।" प्रफुल्लित मन से वृद्धा यात्रा के लिए तैयार हुई । उस जमाने में ट्रेन या प्लेन नहीं थे, बैलगाड़ी में और कभी पैदल भी जाना पड़ता था । वृद्धा को गाड़ी में बैठाकर बेटा यात्रा कराने चला । चलते-चलते एक गाँव आया तो वहाँ धर्मशाला में रात बिताने रुक गये । वृद्धा तो गहरी नींद में सो गई । पुत्र को नींद नहीं आ रही । नींद किसे नहीं आती ?

सुखे न सूवे धननो धणी, सुखे न सूवे जेने चिंता घणी,
सुखे न सूवे दीकरीनो बाप, सुखे न सूवे जेना घरमां साप ।

जिसके पास अधिक धन हो, अधिक चिंता हो, लड़की का पिता और जिसके घर में साँप हो, उसे सुखपूर्वक निद्रा नहीं आती । वृद्धा माँ को सोते देख बेटे की मनचाही हो गई । उन्हें वहीं सोता छोड़ पुत्र अपने घर लौट आया । स्वार्थी पुत्र माता को अकेली, निराधार छोड़कर लौट गया । कैसा है स्वार्थी संसार ! इधर वृद्धा को

कहा, "सीमंधर स्वामी के पास महाविदेह क्षेत्र में जाना है ।" ब्राह्मण रूपी देव ने कहा, "माँजी । मैं आपको वहाँ पहुँचा देता हूँ, चलिए ।"

बंधुओं ! यहाँ बैठे-बैठे आपको महाविदेह क्षेत्र में जाने की इच्छा होती है, इसका कारण क्या है ? क्योंकि वहाँ हमेशा तीर्थंकर भगवान साक्षात् विराजमान रहते हैं । वहाँ सदैव चौथा आरा का काल रहता है । ऐसे अनुपम क्षेत्र में सीमंधर स्वामी के दर्शन करने उस वृद्धा माता को जाना है । वृद्धा बोली, "मैं अपने पुत्रों से कह कर आती हूँ ।" ब्राह्मण ने कहा, "आपको ले तो जाऊँगा, पर मेरी एक शर्त कबूल करनी होगी । वहाँ जाने के बाद वापस नहीं आना है । वहाँ आपके बेटे-बहू नहीं मिलेंगे । गाड़ी-बाड़ी और घर-बार नहीं मिलेगा । पुत्र के घर पौत्र जन्म की बधाई गाने नहीं मिलेगा । यदि शर्त स्वीकार करें तो मैं आपको वहाँ ले जाऊँ ।" वृद्धा बोली, "भाई ! तब तो फिर मुझे वहाँ नहीं जाना है" ब्राह्मण कहने लगा, "माताजी ! यह बँगला, लाड़ी-गाड़ी सब क्षणिक है । पुत्र-पुत्री-बहुएँ सब स्वार्थ के सगे हैं । यह सब एक भव तक के लिए सुखकारी हैं, परन्तु भवोभव बिगाड़ने वाले हैं । आत्मा का अधोगमन करवाने वाले हैं । आत्मसाधना में लीन हुए बिना आत्मा का बेड़ा पार नहीं होगा ।" वृद्धा ने कहा, "तू चाहे जो कह ले, मुझे अब वहाँ जाना ही नहीं है ।" "माताजी ! आप रोज स्तवन में बोलती थी, मुझे महाविदेह में सीमंधर स्वामी के दर्शन करने जाना है, पर कैसे जाऊँ ?

"घाती डुंगर अति घणा, तुज दरिसण जगनाथ,
धिट्ठाई करी मारग संचरूं, सगुं न कोई साथ...
अभिनंदन जिनदरिसण तरसीए ।"

रोज मधुर कंठ से यह गाती थी और अब मैं लेने आया तो आना नहीं चाहती । घर-बार, धन-गाड़ी, पुत्र-बहू आदि छोड़कर आने से इन्कार कर रही है । मुझे नहीं आना है । वह तो गीत गाने की बात थी । हाथी के दाँत खाने के और तथा दिखाने के और होते हैं । ऐसी बात हुई वृद्धा की । वे रोज क्या गाती थीं ? -

मारो हेलो सांभळोजी...
हे हेलो सांभळोने सीमंधर जिनचंद
श्रेयांसरायना लाड्ला ने सत्कीना नंद... मारो हेलो...
हूं तो वस्यो भरतमां ने तू विदेह मोझार,
नित्य सवारे वंदना मारी, अवधारो उर द्वार... मारो हेलो...
डुंगर ने दरिया घणा, वचमां वसमी वाट,
मनडुं झंखे पलपल मारुं, जोवा तारो ठाठ... मारो हेलो...

रोज वृद्धा गाती थीं, पर जब कहा कि वहाँ से वापस नहीं आना है और यहाँ का कोई-कुछ मिलेगा भी नहीं। तो वृद्धा को क्या प्रिय लगा ? परिवार-घरबार प्रिय लगा, भगवान का दर्शन नहीं।

इधर वृद्धा माँ की क्या दशा हुई, वह भी देख लें। वृद्धा के घर में बेटे के पौत्र हुआ। अब तो वे और भी बूढ़ी हो गई थीं। सारा दिन टपकते नाक और लार को पोंछती रहतीं। भूख बारबार लगती, भूखा रहा नहीं जाता परन्तु खाने को बारबार मिलता नहीं। पुत्रवधूएँ उनसे परेशान होकर पति से कहती हैं, "आपकी माँ रात-दिन कच-कच करती हैं। इसे कहीं छोड़ आओ तो अच्छा, हमारे जीवन को कुछ शांति मिले। अब तो उपाश्रय भी नहीं जातीं।" बेटा-बहू, विचार करते हैं कि 'वृद्धा को यात्रा कराने ले जाएँ, फिर क्या करना है, वहाँ सोचेंगे।' यह है आपका संसार ! आज अखबार में पढ़ा कि पिता अपने पुत्रों को अलग-अलग जंगल में छोड़ आया। उन बालकों की क्या स्थिति हुई होगी !

पुत्र कहता है, "माँजी ! चलिए आपको यात्रा करने ले चलते हैं।" मोह में डूबी माँ बेटे के लक्षण नहीं पहचानती। जिसकी नसों में मोह का मद भर जाता है उसे सार-असार का विवेक नहीं रहता। यात्रा का नाम सुनकर, कुटुंब-कबीला और परिवार को सर्वस्व मानने वाली वृद्धा आशीर्वाद देते हुए कहती हैं, "पुत्रों ! तुम्हारा कल्याण हो। युग-युग जीओ ! तुम्हारे पुत्र की बहू सात पीढ़ी तक सोने के कलश में पानी भरे।" प्रफुल्लित मन से वृद्धा यात्रा के लिए तैयार हुई। उस जमाने में ट्रेन या प्लेन नहीं थे, बैलगाड़ी में और कभी पैदल भी जाना पड़ता था। वृद्धा को गाड़ी में बैठाकर बेटा यात्रा कराने चला। चलते-चलते एक गाँव आया तो वहाँ धर्मशाला में रात बिताने रुक गये। वृद्धा तो गहरी नींद में सो गई। पुत्र को नींद नहीं आ रही। नींद किसे नहीं आती ?

सुखे न सूवे धननो धणी, सुखे न सूवे जेने चिंता घणी,
सुखे न सूवे दीकरीनो बाप, सुखे न सूवे जेना घरमां साप।

जिसके पास अधिक धन हो, अधिक चिंता हो, लड़की का पिता और जिसके घर में साँप हो, उसे सुखपूर्वक निद्रा नहीं आती। वृद्धा माँ को सोते देख बेटे की मनचाही हो गई। उन्हें वहीं सोता छोड़ पुत्र अपने घर लौट आया। स्वार्थी पुत्र माता को अकेली, निराधार छोड़कर लौट गया। कैसा है स्वार्थी संसार ! इधर वृद्धा को

कहा, "सीमंधर स्वामी के पास महाविदेह क्षेत्र में जाना है ।" ब्राह्मण रूपी देव ने कहा, "माँजी । मैं आपको वहाँ पहुँचा देता हूँ, चलिए ।"

बंधुओं ! यहाँ बैठे-बैठे आपको महाविदेह क्षेत्र में जाने की इच्छा होती है, इसका कारण क्या है ? क्योंकि वहाँ हमेशा तीर्थंकर भगवान साक्षात् विराजमान रहते हैं । वहाँ सदैव चौथा आरा का काल रहता है । ऐसे अनुपम क्षेत्र में सीमंधर स्वामी के दर्शन करने उस वृद्धा माता को जाना है । वृद्धा बोली, "मैं अपने पुत्रों से कह कर आती हूँ ।" ब्राह्मण ने कहा, "आपको ले तो जाऊँगा, पर मेरी एक शर्त कबूल करनी होगी । वहाँ जाने के बाद वापस नहीं आना है । वहाँ आपके बेटे-बहू नहीं मिलेंगे । गाड़ी-बाड़ी और घर-बार नहीं मिलेगा । पुत्र के घर पौत्र जन्म की वधाई गाने नहीं मिलेगा । यदि शर्त स्वीकार करें तो मैं आपको वहाँ ले जाऊँ ।" वृद्धा बोली, "भाई ! तब तो फिर मुझे वहाँ नहीं जाना है" ब्राह्मण कहने लगा, "माताजी ! यह बँगला, लाड़ी-गाड़ी सब क्षणिक है । पुत्र-पुत्री-बहुएँ सब स्वार्थ के सगे हैं । यह सब एक भव तक के लिए सुखकारी हैं, परन्तु भवोभव बिगाड़ने वाले हैं । आत्मा का अधोगमन करवाने वाले हैं । आत्मसाधना में लीन हुए बिना आत्मा का बेड़ा पार नहीं होगा ।" वृद्धा ने कहा, "तू चाहे जो कह ले, मुझे अब वहाँ जाना ही नहीं है ।" "माताजी ! आप रोज स्तवन में बोलती थी, मुझे महाविदेह में सीमंधर स्वामी के दर्शन करने जाना है, पर कैसे जाऊँ ?

"घाती डुंगर अति घणा, तुज दरिसण जगनाथ,
धिठ्ठाई करी मारग संचरूँ, सगुं न कोई साथ...
अभिनंदन जिनदरिसण तरसीए ।"

रोज मधुर कंठ से यह गाती थी और अब मैं लेने आया तो आना नहीं चाहती । घर-बार, धन-गाड़ी, पुत्र-बहू आदि छोड़कर आने से इन्कार कर रही है । मुझे नहीं आना है । वह तो गीत गाने की बात थी । हाथी के दाँत खाने के और तथा दिखाने के और होते हैं । ऐसी बात हुई वृद्धा की । वे रोज क्या गाती थीं ? -

मारो हेलो सांभळोजी...
हे हेलो सांभळोने सीमंधर जिनचंद
श्रेयांसरायना लाडला ने सत्कीना नंद... मारो हेलो...
हूँ तो वस्यो भरतमां ने तू विदेह मोझार,
नित्य सवारे वंदना मारी, अवधारो उर द्वार... मारो हेलो...
डुंगर ने दरिया घणा, वचमां वसमी वाट,
मनडुं झंखे पलपल मारुं, जोवा तारो ठाठ... मारो हेलो...

सर्दी लगने लगी तो बेटे को पुकारने लगीं । पुत्र हो तो जवाब मिले ना ? वृद्धा उठकर धर्मशाला के कार्यकर्ता से पूछती है तो वह कहता है, "एक लड़का यहाँ से सुबह-सुबह गया है, परन्तु कहाँ गया है यह नहीं पता ।" सुनकर वृद्धा को आघात लगता है । पुत्र-परिवार के मोह में, सीमंधर स्वामी के पास नहीं गयी और अब वही पुत्र छोड़कर चला गया । सोचकर, गहरे आघात से वृद्धा के प्राण पंखे उड़ गये । वृद्धा माँ प्रभु की भक्ति करती थी, परन्तु हृदयपूर्वक वह भक्ति न थी । समझ के बिना, साधना से पुण्य का बंध होगा, परन्तु कर्म की निर्जरा नहीं होगी ।

नागेश्री के पति ने जब यह बात सुनी तो समझ में आया कि यह तो मेरी पत्नी के बारे में ही बात है । तब नागेश्री के पति आदि तीनों भाई क्रोध के आवेश में आ गये । अब नागेश्री के पास आकर वे कैसे शब्द कहेंगे, आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ४५

प्र. भाद्रपद शुक्ल ४, मंगलवार | दिनांक २०-८-७४

क्रोध-ज्वाला और क्षमा-जल

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत महापुरुषों ने जगत के जीवों के कल्याणार्थ, आत्मा की उन्नति के लिए महान पर्वों के दिवस बताये हैं । पर्वाधिराज पर्यूषण पर्व को अनेक उपमाएँ दी गयी हैं ।

चौपदमां वनचरी मोटो, खगमां गरुड कहाए,
नदीमांही गंगा मोटी, तो नगमां मेरु लइए ।
अरे भूपतिमां भरतेश्वरवाला, तो देवमांही सुरेन्द्र,
पर्वमांही पर्यूषण मोटो, ग्रह ग्रहणमां चंद्रमा रे ॥

कवि ने अपनी कविता के एक पद में पर्यूषण पर्व को उपमा देने के लिए उदाहरण प्रस्तुत किया है । चौपायों में सिंह बड़ा है, आकाश में उड़ते पक्षियों में गरुड बड़ा है । नदियों में गंगा नदी और पर्वतों में मेरु पर्वत महान माने जाते

हैं । इस चौबीसी में हुए चक्रवर्तियों में भरत चक्रवर्ती श्रेष्ठ गिने जाते हैं । किसलिए ? बारह चक्रवर्तियों में प्रथम चक्रवर्ती हुए तथा दूसरा कारण यह कि उन्होंने अरिसाभुवन में केवल ज्ञान पाया, जो किसी अन्य चक्रवर्ती के साथ नहीं हुआ । इसलिए चक्रवर्ती में भरत चक्रवर्ती विशेष हैं । ग्रहों में चंद्र श्रेष्ठ है तथा धार्मिक पर्वो में पर्यूषण पर्व सबसे महान है । इसे हम सब पर्वाधिराज के नाम से संबोधित करते हैं । इस पर्व पर्यूषण की क्या महत्ता है ? ये दिन हमें क्या प्रेरणा देते हैं ? हर किसीके दिल में आनन्द की लहरें उछल रही हैं । पर्यूषण पर्व जीवन को नया संदेश और आत्म जागृति की प्रेरणा प्रदान कर रहा है ।

पर्व दो प्रकार के हैं - लौकिक और लोकोत्तर । संसार के लिए मनाये जाने वाले पर्व लौकिक पर्व कहे जाते हैं । पर्यूषण पर्व लोकोत्तर पर्व हैं, जो आत्मा को लोक के अग्रभाग में पहुँचा देता है । ऐसे पर्यूषण पर्व की आराधना करते हुए आत्मा मोक्ष तक पहुँच सकता है । लौकिक पर्व किसी आशा या भय से बनाये होते हैं, परन्तु यह पर्व आत्मा का पर्व है । कर्म की शृंखलाएँ तोड़ने के लिए उग्र आराधना करने के दिव्य संदेश लेकर यह पर्व आया है । यह पर्व भगवान महावीर के समय में शुरू नहीं हुआ है बल्कि अनंत तीर्थकर, केवली के समय से अर्थात् अनंतकाल का पर्व है । पर्यूषण पर्व शरीरलक्षी नहीं है, आत्मा की साधना का पर्व है । मनुष्य जीवन की सार्थकता के लिए यह अमूल्य अवसर मिला है, अतः चेतन देव को जगाइए । आत्मा की जागृति का सुंदर बोध लेकर यह पर्व आया है ।

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री को घर से बाहर निकाल दिया : 'ज्ञाताजी सूत्र' के भाव चल रहे हैं । नागेश्री की बात चारों ओर प्रसरित होने लगी । नागेश्री के पति आदि तीनों भाइयों को यह बात ज्ञात हुई । सुनते ही वे क्रोधावेश में आ गये और जहाँ नागेश्री ब्राह्मणी थी वहाँ क्रोध रूपी अग्नि में सुलगते हुए जा पहुँचे । क्रोध के सम्मुख होने पर आत्मा के जीवन की सही दिशा बदल जाती है । निर्मल स्फटिक के पीछे यदि काला पदार्थ रखा जाये तो स्फटिक की प्रतिमा श्याम बन जाती है । क्रोध काले नाग के समान है । क्रोध जहर से भी भयंकर है । क्रोध आने पर मानव न करने योग्य कार्य कर बैठता है । अरे, अपने स्वजनों का विनाश करने में भी संकोच नहीं करता । क्रोध आने पर मानव दानव बन जाता है । इसके नशे से आत्मा कर्म का प्रचुर पुंज लाद लेता है । शराबी की भांति होश गँवा देता है । दुर्गति की टिकट तैयार करके भव की परंपरा में भटकता है । इससे सुख की छाया पाना भी मुश्किल हो जाता है । क्रोधी मनुष्य

यह अनुभव नहीं कर सकता कि आत्मा का सच्चा सुख समता में है । क्रोध आत्मा का भयंकर शत्रु है ।

क्रोध की उत्पत्ति अर्थात् संसार का सर्जन और गुणों का विसर्जन : क्रोध की उत्पत्ति के मुख्य दो कारण हैं, राग और द्वेष ।

इष्ट पदार्थना संयोगमां प्रीति ते राग,
अनिष्ट पदार्थना संयोगमां अप्रीति ते द्वेष ।

इष्ट के वियोग और अनिष्ट के संयोग में हर कदम पर मानसिक प्रवृत्तियों तथा सुख-सामग्री की प्रवृत्तियों में क्रोध की संभावना रहती है । इष्टता की मात्रा में जरा कमी दिखाई दी कि क्रोध आ जाता है । एक-दूसरे से व्यवहार में अनबन शुरू हो जाती है । वाद-विवाद हो या मनभेद हो तुरंत क्रोध अपना सिर उठा लेता है । किसीने आपके जीवन में कुछ नुकसान किया हो तो आप उसे दुश्मन मानते हैं, रास्ता चलते वही आदमी दिख जाए तो आपकी आँखें लाल हो जाती हैं । जीभ पर अपशब्द भी आ जाते हैं और कभी तो हाथ भी उठ जाता है । ठीक कहा ना ? ये तो आपके बाह्य शत्रु हैं । आत्मा का वास्तविक शत्रु तो क्रोध है । कभी उसका सामना या मुकाबला करने की बात भी सोचते हैं क्या ? अब तक की जिंदगी में कितनी बार क्रोध किया, इसका कोई हिसाब रखा है क्या ? दूसरे शत्रु तो जीवन में एक बार नुकसान करते हैं, परन्तु यह ऐसा शत्रु है जो एक नहीं अनेक भवों को बिगाड़ देता है । ऐसे अंतरंग शत्रु का सामना करना सीखिए ।

शत्रु एक खराब शब्द या कटाक्ष वचन कह दे तो आपको तुरंत क्रोध आ जाता है । झट एक के दो शब्द कहकर चुप करा देते हैं, चुप न हो तो झगड़ा करते हैं । उसमें भी न हारे तो कचहरी की शरण पहुँचते हैं । अपनी थैली का मुँह खोल कर उसे जीतने की कोशिश करते हैं । बाह्य शत्रु को निर्बल बनाने के लिए आप अनेक उपाय करते हैं, परन्तु अपनी आत्मा को भव-भव तक अहित करनेवाले क्रोध पर विजय प्राप्त करने के लिए कोई प्रयास करते हैं ? (श्रोताओं में से आवाज : 'ना, नहीं ।') आत्मा की शुभ प्रवृत्तियों के जो दुश्मन हैं, उन्हें हम नहीं हटा पाते हैं और उन्हें सह भी नहीं सकते । एक लेखक का कहना है कि 'क्रोध इतना सूक्ष्म स्वरूपी है कि जहाँ प्रकाश की रेखा तक प्रवेश न कर सके, ऐसे अंधकार भरे काले कक्ष में काली दीवार पर काले परदे में काली चींटी चलती हो तो संभवतः उसे भी परख लें, पर क्रोध को पहचाना नहीं जा सकता ।' इसलिए इसके आने के पहले स्वस्थ बन जाना चाहिए । क्रोधरूपी शत्रु को दबाने में हम स्वयं ही उसके आधीन

हो जाते हैं । कितना ही बलवान व्यक्ति हो, पर क्रोध के सामने तो वह निर्बल हो जाता है । क्रोध पर विजय प्राप्त न करने तक जन्म-मरण का अंत नहीं आयेगा । तथा धर्माराधना भी सही तरीके से नहीं हो सकती ।

मान लीजिए व्यापार में नुकसान हुआ तो स्वाभाविक है कि आपका मन उदास हो जाये । ऐसे उदास मन से भोजन करने बैठे, दाल थी जरा खारी, ऊपर से आपका पुत्र शरारतें करता हुआ उधर आ निकले तो, उसकी क्या दशा हो ? बालक को तो मार पड़े और अंतर का क्रोध पत्नी पर भड़ास बनकर बाहर निकलने लगे । उस समय यदि पत्नी के मुँह से एक शब्द निकल जाये तो बस उसकी खैर नहीं । तब पत्नी या पुत्र का ख्याल नहीं आता । अग्नि पर पानी डालने से अग्नि शांत होती है, परन्तु उसमें घी होम करने से तो वह और भड़केगी । यह बात आप सब बराबर समझते हैं, परन्तु जहाँ आत्मा की बात आती है, आप भूल जाते हैं । क्रोध आत्मा का शत्रु है । *"कोहो पीइं पणासेइ"* । क्रोध प्रीति का नाश करता है । इस सूत्र को याद रखकर जब जीवन में क्रोध आये तो उसके समक्ष क्षमा का शीतल जल रखिए । क्रोध की भयंकरता से संसार में अनेक अनर्थ हुए हैं । इसलिए क्रोध का शमन जरूरी है । क्रोध न आये ऐसे संयोगों की कामना करते रहने से अच्छा है कि क्रोध आ जाये तो क्रोध के समक्ष क्रोध न करना । क्षमा रखना । मौन रहकर क्षमा का शीतल जल-सिंचन से क्रोध की अग्नि अवश्य बुझ जाती है । क्रोध तो विषम जहर है ।

बालक-पिता का प्रसंग : एक मजदूर एक बार अपना साप्ताहिक पगार लेकर घर आ रहा था । रास्ते में अढाई वर्ष का उसका प्यारा पुत्र दौड़ता हुआ आकर उससे लिपट गया । मजदूर ने अपनी मेहनत के दस रुपये, बड़े प्रेम से पुत्र के हाथ में पकड़ा दिया । बालक के लिए दस रुपये की भला क्या कीमत ? वह तो उसे कागज समझता है । बच्चे की माँ लोहे की सिगड़ी में रोटी बना रही थी । लड़के ने वह नोट सुलगते चूल्हे में डाल दिया । यह दृश्य देखकर पिता हताश और स्तब्ध हो गया । उसके मस्तिष्क में क्रोध का उपद्रव इतनी तीव्रगति के साथ हुआ कि वह स्वयं को संभाल न सका और क्रोध में अंधा बनकर फूल जैसे कोमल और प्रिय पुत्र को उठाकर जलती आग में फेंक दिया । कितना भयंकर क्रोध ! उसे भान न रहा कि दस रुपये की नोट कीमती है या मेरा प्यारा पुत्र ! क्रोध में दस रुपये का नोट बालक से अधिक कीमती लगा । क्या दस की नोट उसके जीवन का आधार थी ? (श्रोताओं में से आवाज : 'नहीं ।') पर क्रोध ने उसके पितृप्रेम को भुला दिया । मानवजीवन की स्थिति ऐसी है कि कभी, किसी समय, कोई निमित्त

मिलते ही मनुष्य के चित्त का कोई सुप्त आवेग जागृत होकर उसका मानसिक संतुलन बिगाड़ सकता है । क्रोध, लोभ, राग-द्वेष मनुष्य के मानसिक संतुलन पर तीव्र आघात, प्रत्याघात करते हैं । उस स्थिति में मनुष्य अपने मानसिक आवेगों पर नियंत्रण करने की शक्ति खो बैठता है । कितने आश्चर्य की बात है कि जो बालक प्रेम और दया का संदेशा लेकर संसार के क्रोध एवं लोभ की आग को शांत करने चला था, वो स्वयं उसमें दग्ध हो गया । बंधुओं ! कितना भयंकर घटित हुआ कि अपने प्यारे पुत्र को आग में फेंक दिया । इसलिए क्रोध को अवश्य जीतना चाहिए ।

नागेश्री ने धर्मरुचि अणगार को कड़वी तुंबी का आहार बहराकर उनके प्राण लिये । यह बात उसके पति और भाइयों को ज्ञात हुई तो वे बहुत क्रोधित हुए । क्रोध में तमतमाते हुए नागेश्री के पास पहुँचकर कहने लगे -

"हं भो नागसिरी ! अपत्थि य पत्थिय दुरंतपंतलक्खणे हीन पुण्ण चाउद्दशे धिरत्थुणं तव अधन्नाए, अपुन्नाए जाव णिंबोलियाए ।"

"मुई नागेश्री ! अपार्थित प्रार्थके ! हे दुरंतप्रांतलक्षणे ! ओ हीन-पुण्य चातुर्दशिके ! तेरे जैसी अधन्या, पापिन को धिक्कार है । तू पुण्यहीन और निबोली जैसी अनादरणीया है, क्योंकि तूने मासखमण के पारणा के दिन आहार की गवेषणा करने आये धर्मरुचि अणगार को शारदिक तिक्त कड़वी तुंबी का साग बहराकर, उनके प्राण ले लिये । तू बिल्कुल नीच है ।" इस प्रकार अनेक आक्रोश और निंदा के शब्द कहकर उसे फटकारा । खूब खरी-खोटी सुनाई । कुल गौरव से पतिता कहा और बोले, "पापिनी ! तू मर क्यों नहीं गयी ? अरे तू हमारे घर से निकल जा ।" ऐसी भयोत्पादक वाणी से उसका बहुत तिरस्कार किया । उसके समस्त आभरण (वस्त्र) और अलंकार (गहने) ले लिये और मारपीट कर उसे घर से बाहर निकाल दिया ।

तीनों भाइयों को नागेश्री पर बहुत क्रोध आ गया कि अररर ! नागेश्री ने ऐसा किया ? साधू के वचन की उपेक्षा करना या साधू के मन को दुःख पहुँचे ऐसा वर्तन करना ही महापाप है और तूने तो साधू की घात की ! भगवान ने फ़रमाया है कि "तुझसे संभव हो तो साधू की सेवा करना पर कभी भी साधू की आशातना नहीं करना ।" अशातना छिपी अग्नि है । जैसे हिम अग्नि नहीं है, फिर भी फसल को जलाकर राख कर देती है, वैसे ही साधू की आशातना करने से घोर पाप का बंध होता है । अरे तूने

यह क्या किया ? साधू को जहरीला आहार वहराया ! मुनि उसे उदरस्थ कर कालवश हो गये । तूने अपना तो बिगाड़ा ही है, पर हमारी सात पीढ़ियों को कलंक लगा दिया । दूसरे या अगले जन्म में उसे कैसे फल भोगने पड़ेंगे वह तो आगे आयेंगे, परन्तु इन कर्मों का उदय तो यहीं का यहीं हो गया । जीव भूल करते समय ख्याल नहीं रखता कि इस भूल का फल मुझे कैसा भुगतना पड़ेगा । इसलिए अच्छे या बुरे किसी भी कार्य में अपना धीरज नहीं खोना चाहिए । भगवान महावीर को संगम देव ने छः महीने तक उपसर्ग दिया पर उन्होंने धीरज नहीं छोड़ा । समभाव में न चुके । अंत में संगम थक गया, तब भगवान ने कहा, "अरे संगम ! तेरा क्या होगा ?" ज्ञानी कहते हैं कि 'कर्म बाँधते समय खूब विचार कीजिए । कर्म-बँधनों से छूटने और आत्म-आराधना करने के ये दिवस हैं । इस आत्मसाधना के साथ यदि उमंग, प्रेम और सच्ची भावना हो तो अवश्यमेव कर्म की निर्जरा होती है । उत्साह होने से कोई भी कार्य सरलता से सफल होता है । आज जीवों को जितना उमंग सांसारिक कार्यों में है उतना आत्म-आराधना करने में नहीं है । आत्म-आराधना में उमंग जागेगा तब संसार के कार्यों में निरुत्साही दिखेंगे ।

युवक और विवेकानन्द का प्रसंग : एक बार स्वामी विवेकानन्द के पास एक युवक आया और बोला, आप "'परमात्मा, परमात्मा, भगवान भगवान' करते हैं, क्या मुझे परमात्मा के दर्शन करवा सकते हैं ?" स्वामी विवेकानन्द कुछ न बोले । दूसरे दिन वे नदी में स्नान करने जा रहे थे तब युवक से बोले, "चलो पहले गंगा-स्नान कर लें ।" युवक ने सोचा, 'भगवान के दर्शन करने के लिए पहले गंगास्नान करना पड़ता होगा ।' दोनों साथ-साथ नदी किनारे आये, और नदी में डुबकी लगाई । युवक ने जैसे ही डुबकी मारी, स्वामीजी ने तुरंत उसका माथा पानी में दबा दिया । युवक घबराने लगा, साँस अटकने लगी, आँखों के समक्ष अंधेरा छा गया । थोड़ी देर बाद विवेकानन्द ने उसे बाहर निकाला । जब युवक होश में आया तब उससे पूछा, "भाई ! जब मैंने तुम्हारा माथा पानी में दबा रखा था उस वक्त तुम्हें क्या दिखाई देता था ? क्या याद आ रहा था और किसका विस्मरण हो रहा था ?" युवक बोला, "मुझे कोई विचार नहीं आ रहा था । पैसा-पत्नी सब भूल गया था, सिर्फ एक भगवान याद आ रहा था कि हे भगवान ! मैं यहाँ से किसी तरह बच जाऊँ ।" विवेकानंद ने उससे कहा, "जिस समय तू पानी में दम घुटता महसूस कर रहा था, तब सिर्फ भगवान को याद कर रहा था । इसी प्रकार जब तू दुनिया की समस्त काम-वासनाओं से मुक्त होकर मात्र परमात्मा के दर्शन

की तमन्ना करेगा तब तुझे भगवान के दर्शन होंगे ।" राग-द्वेष
वितंडावाद और कषायों को छोड़ना नहीं चाहते और भगवान से भेंट
हैं, तो यह कभी नहीं हो सकता । अतः भगवान से मिलने के लिए
भूलकर स्वभाव में आइए ।

बंधुओं ! इस जगत में ऐसे भी जीव हैं जो 'आत्मा' का अस्तित्व
तैयार नहीं, तो फिर दूसरी बातों का क्या ? एक बार अमेरिका में
संमेलन हुआ, जिसमें एक डोक्टर ने कहा कि "आत्मा जैसी कोई
होती । मैंने बहुत ओपरेशन किये हैं, शरीर के टुकड़े जोड़े हैं और सूक्ष्म
(माइक्रोस्कोप) से निरीक्षण भी किया है, परन्तु मुझे कहीं कोई आत्मा
दी । इसलिए मैं कहता हूँ कि आत्मा नहीं है ।" डोक्टर की यह बात
में सन्नाटा छा गया । फिर एक अनुभवी वृद्ध डोक्टर खड़े हुए और बो
की बात सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है । मैंने अपने जीवन में
देखे, ओपरेशन किये, मस्तिष्क के अणुओं को सूक्ष्मदर्शक यंत्र के
नाड़ियों को चीरकर देखा, परन्तु 'विचार' जैसा कोई तत्त्व मुझे नजर
तो क्या ज्ञानतंतु नहीं हैं ? विचार नहीं है, यह मान लिया जाए ? वि
नहीं देता, परन्तु विचार है यह हम जानते हैं । पवन दिखाई नहीं देता,
को मानते हैं । सुगंध दिखता नहीं, परन्तु सुगंध का अस्तित्व स्वीकार
ही आत्मा दिखाई नहीं देता, पर इसीलिए हम नहीं कह सकते कि
है । शरीर के परीक्षण से आत्मा नहीं दिखता । मज्जातंतुओं के परीक्षण
नहीं दिखता । दूध के बर्तन में हाथ डालने से घी नहीं मिलता, इसी
घी नहीं है, हममें विचार नहीं है और शरीर में आत्मा नहीं है, कहना
जब आत्मा में ज्ञान आयेगा तभी वह सत्य को ग्रहण कर सकेगा । अ
से बहुत दूर हैं । ज्ञान कम हो तो भी बुरा नहीं है, परन्तु ज्ञान का विरो
उसे गलत कहने के लिए उठें तो महान नुकसान है । जहाँ आपकी समझ
वहाँ केवलीगम्य कहिए, परन्तु यह न बोलिए कि यह झूठ है । यदि
वचनों को झूठ कहेंगे, गलत कहेंगे तो केवली की आशातना होगी
विराधक बनेंगे ।

संतों के मुँह से बात निकल गयी और तीनों भाइयों ने नागेश्री को
मारा-पीटा और गहने-कपड़े उतारकर घर से निकाल दिया । कर्म बाँध

बहुत बार, उसका अबाधाकाल पूर्ण होने के पश्चात् कर्म उदय में आते हैं। परन्तु यहाँ तो उसी समय उदय में आ गये। पिछले दिन तो मुनि को गोचरी वहरायी। मुनि ने आहार किया और कालवश हुए। धर्मघोष मुनि ने अपने परिवार में इस बारे में बात की जो तुरंत गाँव में फैल गयी और नागश्री के घर तक पहुँच गयी। भाइयों ने बात जानकर नागश्री को घर से बाहर निकाल दिया। अर्थात् किया हुआ कर्म इस भव में तो तुरंत उदय में आ गया। पर अभी इस कर्म के फल अन्य जन्मों में कितने भयंकर भोगने पड़ेंगे - यह बात आगे आयेगी।

मम्मण सेठ और शालिभद्र का प्रसंग : पर्यूषण पर्व में ज्ञान-दर्शन-चारित्र -तप की आराधना करनी चाहिए और दान-शील-तप-भाव में आगे बढ़ना चाहिए। दिवाली आने पर आप क्या माँगते हैं ? शालिभद्र की ऋद्धि माँगते हैं, मम्मण सेठ की क्यों नहीं माँगते ? मम्मण सेठ की ऋद्धि शालिभद्र से कम न थी। परन्तु मम्मण सेठ पिछले भव में दान देकर, रसेन्द्रिय के स्वाद में मुग्ध बनकर, वापस लेने गये थे। शालिभद्र ने पूर्व भव में सारी खीर संत को वहरा दी थी। फिर थाली में चिपकी खीर खाकर असीम आनन्द का अनुभव किया था। स्वयं खाने से अधिक आनन्द उन्हें संत को वहराने में आया था।

हुआ ऐसा कि मम्मण सेठ के पूर्वभव में मासखमण के तपस्वी संत गोचरी के लिए पधारे। उनके घर में किसीके यहाँ से लड्डू आये थे, उसे वे संत को देने लगे। अत्यन्त उत्कृष्ट भाव था। संत कहते हैं, "भाई ! आधा लड्डू ही काफी है।" तो कहते हैं, "महाराज ! हम सबको आज दावत में जाना है, किसीको घर में भोजन नहीं करना है।" खूब आग्रह करने पर मुनि ने एक लड्डू के लिए हाँ कहा। परन्तु मम्मण के पूर्व भव के जीव को वहराते हुए इतना उत्कृष्ट भाव आ गया कि आये हुए चारों लड्डू मुनि को वहरा दिये। संत गोचरी लेकर निकले। लड्डुओं के कुछ कण थाली में पड़े थे, वे उन्होंने मुँह में डाले। खाते ही मन में आया, 'अहो ! क्या स्वाद है लड्डू का ! अरे, मुझसे बहुत गलती हो गई ! (हंसी) मुनि तो आधा लड्डु ही लेना चाहते थे मैंने जबरदस्ती उन्हें सारे वहरा दिये। एक लड्डु वहराता तो भी मेरी भावना में कमी न दिखती !' बंधुओं ! शालिभद्र और मम्मण दोनों की दान देने की भावना उत्कृष्ट थी। दोनों के यहाँ संत मासखमण के तपस्वी पधारे थे, परन्तु दान देने के बाद परिणाम में फेर पड़ गया।

गत जन्म में मम्मण के मुँह में लड्डू का स्वाद रह गया और मन में हुआ कि मैंने बहुत गलत किया, अब क्या करूँ ? वह तो चला संत के पीछे, अपने लड्डु

वापस लेने । संत उपाश्रय के नजदीक पहुँच गये थे, उन्हें आवाज देकर रोका। संत रुके, पास आकर बोले, "मुझे आपका पात्र देखना है।" संत समझ गये। लेकिन भगवान महावीर के संत पात्र में आयी कोई वस्तु दे नहीं सकते। अरे! गोचरी लाये और अचानक दो-तीन ठाणा की तबियत का कारण बन जाये, गोचरी का उपयोग करने की स्थिति न रहे, तो चार मील तक में कोई संत-सतीजी हों तो उनके पास जाकर उन्हें आहार दे दे और कोई संत-सतीजी न मिलें तो कौआ-कुत्ता या किसी मानव को भी नहीं दे सकते, विधिपूर्वक परठ देते हैं। संत समझ गये कि 'भाई लड्डू लेने आये लगते हैं।' इसलिए संत उससे बातें करते गये और पूरी सावधानी से पात्र के अंदर से ही लड्डू को चूराकरके रेत में निरवध स्थान पर परठते गये। मेरे कहने का आशय यह है कि उत्कृष्ट भाव से दान दिया, पर दान देकर पछताया । रसनेन्द्रिय का स्वाद जीत न सके। परन्तु संत पात्रा में आया हुआ कभी गृहस्थ को नहीं देते। उत्कृष्ट भाव से दान देने से मम्मण सेठ को अकूत संपत्ति मिली, परन्तु अंदर की वृत्ति नहीं गई थी इसलिए तेल और चवली (एक दाल) ही खा सकते थे। इतनी लक्ष्मी होने पर भी भोग नहीं सके। उनकी लक्ष्मी भोगने से पाप बँधता था, इसलिए कोई उनकी संपत्ति की इच्छा नहीं करता।

शालिभद्र के जीव ने माँग-जाँचकर बनायी हुई खीर, उत्कृष्ट भाव से संत को अर्पण किया। बहराते समय उत्कृष्ट भाव था और पश्चात् भी वही उत्कृष्ट भाव रहा। इसलिए वहाँ से मरकर शालिभद्र बना। ऐसा शालिभद्र कि उसकी ऋद्धि देखने के लिए महाराजा श्रेणिक पधारे। शालिभद्र इतने कोमल थे कि महाराजा श्रेणिक के कोमल हाथ के स्पर्श से भी उनका पसीना जल उठा। महाराजा श्रेणिक तो लौट गये, परन्तु शालिभद्र के चित्त में चिंगारी जल उठी कि 'इतनी संपत्ति, इतना वैभव होने के बावजूद मेरा कोई नाथ है ? मेरे ऊपर कोई नाथ है यानी मेरे पुण्य में अभी कमी है।' आपके नाथ कितने सारे हैं, कोई सीमा है ? शालिभद्र कहते हैं, "अब मुझे नाथ नहीं चाहिए। संसार छोड़कर साधू बनना है।" जो शालिभद्र महाराजा श्रेणिक के हाथों का स्नेहभरा स्पर्श सहन नहीं कर सके, वह ग्रीष्म ऋतु की सख्त गर्मी, शीतकाल की तीव्र सर्दी का उग्र परिषह सहन करने के लिए तैयार हो गये।

शालिभद्र और धन्नाजी का प्रसंग : वे माता से कहते हैं कि "हे माता! महाराजा श्रेणिक की बात तो मेरे लिए द्रव्य अनाथता है, लेकिन अब मुझे भाव

अनाथता का भी भान हुआ है । क्रोध-मान-माया-लोभ मेरे चैतन्य प्रदेश में विचर कर मेरे अन्तर्यामी के सद्‌गुण, वैभव को लूटकर, मुझे जन्म-मरण के चक्र में फेंककर दरिद्र और अनाथ बनाकर चतुर्गति में बेहाल किये जा रहे हैं । जन्म-मरण और व्याधि मेरी भाव अनाथता है । मुझ पर कर्मों का जो जोरदार शासन चल रहा है, वही मेरी अनाथता का कारण है । अब मुझे कर्मराजा के शासन की अविछिन्न धारा को महात देने के लिए कमर कसना है ।" तब भद्रा माता बोली, "बेटा ! तेरी बत्तीस स्त्रियाँ हैं । रोज एक-एक को समझाकर छोड़ता जा । फिर बत्तीस दिनों के बाद तू दीक्षा लेना ।" शालिभद्र रोज एक-एक स्त्री को छोड़ने लगे ।

शालिभद्र की बहन सुभद्रा का विवाह धन्नाजी के साथ हुआ था । जब सुभद्रा को इस बात की खबर हुई तो उदास हो गई । एक दिन धन्नाजी स्नान करने बैठे और सुभद्रा उन्हें तैल-मर्दन कर रही थी । उसकी आँखों से आँसू टपककर धन्नाजी पर पड़ा । धन्नाजी ने मुड़कर देखा, सुभद्रा की आँखों में आसूँ है । धन्नाजी कहते हैं, "अहो सुभद्रा ! शालिभद्र जैसा जिसका बंधु है, भद्रा जैसी जिसकी माता है और धन्ना जैसा जिसका पति है, उसे क्या दुःख है कि रो रही है ?" सुभद्रा बोली, "स्वामी ! मुझे और कोई दुःख नहीं है । परन्तु मेरा एकलौता, लाड़ला भाई वैराग्य जगने के कारण सोलह दिवस पश्चात् दीक्षा ग्रहण करेगा । अपनी बत्तीस पत्नियों में से हर दिन वह एक-एक का त्याग कर रहा है । देखते-देखते सोलह दिन बीत जायेंगे और मेरा प्यारा भाई सबको छोड़कर चला जायेगा । इसी बात से मेरा अंतर रो रहा है और आँखें भींग गई हैं ।"

तब धन्नाजी कहते हैं, "सुभद्रा ! ऐसे मंगल अवसर पर रोया जाता है क्या ? तेरा भाई तो कायर है कायर ! यदि संसार के प्रति नफरत जागी है तो एक-एक स्त्री का त्याग करके विलंब क्यों करना ? जिसे छोड़ना है उसे एक साथ सब छोड़ देना चाहिए । तेरा भाई दीक्षा ले तो तू उसे आशीर्वाद दे, इसमें रोने की क्या बात है ? यह सुनकर सुभद्रा कहती है, "स्वामी ! बातें करना आसान है कि मेरा भाई कायर है, पर छोड़ना मुश्किल है । आप यदि सिंह शार्दूल हैं तो आठ में से एक को भी क्यों नहीं छोड़ सकते ? वैराग्य की बातें करना आसान है, परन्तु आचरण में लाना कठिन है । धन्नाजी कहते हैं कि "क्या तुम सोचती हो कि मैं त्याग नहीं कर सकता ? लो, यह तुम्हारी अंगूठी, जो तुम्हारे स्नेह के धागे को मजबूत बना रही थी । आज से हमारे बीच के सांसारिक स्नेह की पूर्णाहुति होती है । मैं प्रभु महावीर के पावन चरणों में जाने के लिए तैयार हूँ । आठों का त्याग करता हूँ ।"

धन्नाजी शूरवीर थे । एक छलांग में जागकर खड़े हो गये । सुभद्रा बोली, "स्वामी! मैंने गुनाह किया तो मुझे छोड़िये पर मेरी सात बहनों को क्यों छोड़ रहे हैं ?" "सुभद्रा ! तूने कोई गुनाह नहीं किया । तेरे वचनों ने सोये हुए सिंह के समान आत्मा को जगा दिया है ।" धन्नाजी जाग गये और शालिभद्र के महल में जाकर बोले -

संध्या समी छे जिंदगी, मृत्युनी नोबत वागती,
काल रूपी ए खंजरी, मानवने जगाड़ती,
सिंह शार्दूल थइने, छोड़ो तमे उठो, जागानो ।

हे शालिभद्र ! यह जिंदगी संध्या के रंगों के समान है । कालराजा खंजड़ी बजा कर चैतन्य को जगा रहा है । अतः अब सिंह की भाँति शूरवीर बनकर माता की आज्ञा प्राप्त करो । हम दोनों प्रभु के पंथ पर प्रयाण करें ।

छोडवूं छे तो हवे विलंब मत कीजिए,
लागी छे मुक्ति रढ तो ममता बंधन भेदिए ।
कर्म खपाववा तमे कम्मर कसो उठो जागो,
बत्रीस राणी छोड़ता ढील कां छे आटली,
काया तणी छे काची माटी जाणे काचनी बाटली,
आज्ञा लइने हवे पंथे पड़ो उठो....

ऐसे थे बहनोई और ऐसा था साला । धन्नाजी की हाँक से शालिभद्र तुरंत जग गये । रोती हुई माता और पत्नियों की तरफ न देखा । साला-बहनोई की जोड़ी दीक्षा लेकर निकल पड़ी । भद्रामाता सोचती है कि मैं बहुओं को देखूं या बेटी को ! पुत्र और जमाई दोनों संयम मार्ग पर चल पड़े हैं ।

कुछ समय पश्चात् विचरते - विचरते मुनि शालिभद्र अपनी नगरी में पहुँचते हैं । शालिभद्र को पारणा के दिन है । भगवान कहते हैं, "शालिभद्र ! आज तुम्हारी संसारी माता तुम्हें आहार बहरायेगी और उसीसे तुम्हारा पारणा होगा ।" भगवान तो अपने ज्ञान में सब जानते थे । इस ओर भद्रामाता को जब ज्ञात हुआ कि मेरे शालिभद्र मुनि नगर में पधारे हैं, तो माता अपनी पुत्रवधुओं के साथ दर्शन करने जाती हैं । घर में रसोइए से कह देती हैं कि "सब कुछ सूझता रखना, अपने शालिभद्र मुनि नगर में पधारे हैं, अपने घर भी पधार सकते हैं ।" शालिभद्र मुनि गोचरी के लिए निकले तो मन में आया कि 'प्रभु ने कहा है कि आज तेरी माँ

आहार बहरायेगी तो उस ओर ही जाऊँ ।' गोचरी की गवेषणा करते मुनि भद्रामाता के बँगले पर पहुँचे । तपश्चर्या से मुनि का शरीर सूख चुका है, इसलिए घर के पहरेदार आदि पहचान न सके और कहने लगे, "आज हमारे शालिभद्रमुनि पधारने वाले हैं अतः आप अन्य जगह पधारिए ।" शालिभद्र वहाँ से पीछे मुड़ गये । यह नहीं कहते कि "मैं ही शालिभद्र हूँ । मन में जरा खेद भी नहीं । लेकिन मन में आया कि मेरे भगवान ने तो कहा था कि तुम्हारी माँ आहार बहरायेगी और यहाँ तो उस घर में प्रवेश तक न मिला ? रास्ते में चलते हुए एक ग्वालिन मिली जिसके सिर पर दही की मटकी थी । शालिभद्रमुनि को देख उसने मटुकी नीचे उतारी और बोली, "यह शुद्ध निर्दोष आहार है, अतः ग्रहण कर मुझे पावन कीजिए ।" शालिभद्र ने दही ग्रहण कर लिया और प्रभु के पास गये । प्रभु तो ज्ञानी थे । उन्होंने जान लिया कि इसके मन में शंका हुई है, अतः उनसे बोले, "हे शालिभद्र ! जिसने तुझे दही बहराया वह तेरे पूर्वजन्म की माता है । जिसके प्रताप से तू आज शालिभद्र बना है ।" शालिभद्र मुनि को तो तब सहज राग-दशा आ गयी कि मुझे पहले ज्ञात होता तो उन्हें निहाल कर देता । भद्रा माता और उनकी पुत्रवधुओं को शालिभद्र के दर्शन नहीं हुए जिससे उनके मन में आघात लगा ।

कुछ समय के पश्चात् भगवान की आज्ञा लेकर धन्नाजी और शालिभद्र दोनों संथारा करने पर्वत पर चले गये । माता और पत्नियाँ समाचार मिलते ही वहाँ पहुँची । उन्हें दर्शन की बहुत उत्कंठा थी । शालिभद्रमुनि तो ध्यान में बैठे हैं । माता और पत्नियाँ चरणों में झुककर विनती करती हैं कि "आप एक बार तो हमारी ओर दृष्टि कीजिए ।" माता अपने को हतभागी कहती है कि 'पुत्र आँगन में पधारा पर मैं अभागी दान न दे पाई ।' खूब गिड़गिड़ाती, रोती है । मुनि के मन में राग का एक कण आ गया और उन्होंने ध्यान में आँखें खोलकर देख लिया । बस इतने से तो उनका एक भव बढ़ गया । वहाँ से अनुत्तर विमान में गये, फिर मनुष्य भव पाकर मोक्ष जायेंगे । सहज राग-दशा आई तो एक भव बढ़ गया, तो अपनी क्या दशा होगी ? जैसे साईकिल या गाड़ी के टायर में हवा न हो तो वह आगे नहीं चल सकती, परन्तु हवा भरी रहने पर सरसरा कर चल पड़ती है, वैसे ही जीवन रूपी टायर में वीतराग वाणी रूपी हवा भरी होगी तो जीवन-गाड़ी आगे बढ़ सकेगी । यदि यह हवा नहीं हो तो चतुर्गति रूप संसार में गोता खाती रहेगी । माँगकर बनायी खीर को उत्कृष्ट

भाव से दान देकर शालिभद्र बने । आहार-दान ने उन्हें एकावतारी बनाया । मम्मण दान देकर, पीछे लेने भागा । मुनि ज्ञान का दान दे सकते हैं, आहार का नहीं ।

नागेश्री ने घूरा मानकर जहरीला आहार बहराया । उसे पता था कि यह आहार खाने योग्य नहीं है फिर भी मुनि को बहरा दिया । परंतु मुनि कैसे थे !

करुणा सागर ए मुनि इता, जैन शासनमां मंगलकारी
अहिंसाथी ज्योति जगमगती, आजे बनती पावनकारी
सेवक आजे भाव धरी करे वंदन बे कर जोडीने....धर्मघोष...

करुणा के सागर, दया के दरिया थे, वे तो आहार पचा गये । परन्तु नागश्री ने चिकने कर्म बाँध लिये और वे तुरंत उदय में आ गये । तीनों भाइयों ने उसे खूब बुरा-भला कहकर, मार-पीटकर घर से निकाल दिया । अब उसकी क्या स्थिति होगी वे भाव अवसर पर कहेंगे ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ४८

प्र. भाद्रपद शुक्ल ५, बुधवार | दिनांक : २१-८-७४

संवत्सरी महापर्व, सच्ची क्षमापना कैसे होगी ?

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शासन सम्राट वीर भगवान ने महान आराधना करवाने वाले पर्व का महत्त्व समझाया है । अपना महामंगलकारी आत्मशुद्धि का अजोड़ और परम पवित्र क्षमापना पर्व आ गया है । आज भारत भर में तथा विदेशों में भी बसने वाले जैनों के दिल में अपूर्व आनन्द होगा कि आज हमारा पवित्र दिवस है । आज के दिन लेना और देना ये दो कार्य करने हैं । व्यापारी माल का सौदा करता है तब पैसा देता है और माल खरीदता है । आप अपनी पुत्री को किसीके घर देते हैं तो किसीकी पुत्री अपने घर ले आते हैं । आज भगवान महावीर की पेढी पर आकर यही लेन-देन करना है । आपका जिसके साथ वैर हुआ हो उससे आपको क्षमापना लेनी है और जो आपसे क्षमा माँगने आये उसे अपना हृदय विशाल और पवित्र बनाकर क्षमा प्रदान करनी है । मोक्ष की वरमाला पहनने के लिए महीना भर पहले से मंडप सज

गया है। उन दिनों में यदि हृदय शुद्ध न बना हो तो पर्यूषण के सात दिनों में क्षेत्र को जोतकर शुद्ध बनाने के बाद आठवें दिन ज्वाला को जल बनाना है। ज्वाला यानी अग्नि। क्रोध भयंकर अग्नि है। सर्प काटता है तो जहर चढ़ता है, परन्तु क्रोध का जहर तो बिना काटे चढ़ता है। सासु-बहू झगड़े हों और उस समय यदि बहू बालक को दुग्धपान करवाये तो उसके लहू के परमाणु जहर बन जाते हैं। क्रोध भयंकर शत्रु है।

आज दोपहर में आपलोग आलोचना करने आयेंगे। आलोचना कब की जा सकती है? आलोचना से पहले हृदय की शुद्धि करनी पड़ेगी। अंतर में वैर-द्वेष का जो कचरा भरा हुआ है उसे दूर करना पड़ेगा। आपको तिजोरी में माल भरना है पर तिजोरी रद्दी से भरी है तो माल कहाँ रखेंगे? माल भरने के लिए रद्दी को हटाकर बाहर निकालना पड़ेगा। हृदय रूपी तिजोरी में क्षमा रूपी माल भरने के लिए कषाय रूपी रद्दी को निकालना पड़ेगा। आज क्षमापना लेनी है और दूसरों को क्षमापना देनी है। कुछ जीव कषाय को छोड़कर क्षमा लेने जाते हैं तो सामने वाला व्यक्ति क्षमा देने के बदले झगड़ा करते हैं। ज्ञानी कहते हैं कि 'आप अपने स्वभाव को मत छोड़िए।' आज कषाय को छोड़ना है और क्षमा लेना है। व्यवहार, विवेक शुद्ध रखकर क्षमापना लेनी है। आज आत्मशुद्धि का पवित्र दिन है।

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री के पति आदि तीनों भाइयों की क्रोध की आग भड़क उठी और उन्होंने उसे कटु-वचनों और प्रहारों से प्रताड़ित करके घर से बाहर निकाल दिया। बहुत बार क्रोध के आवेश में माता-पिता अपनी संतान को मार तक डालते हैं। क्रोध को उत्पन्न करने वाला मान, माया और लोभ है। उसमें लोभ तो सर्व पापों का बाप है। 'दशवैकालिक सूत्र' में भगवान ने कहा है कि -

"कोहो पीइं पणासेइ, माणे विणय नासओ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो ॥"

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय को नष्ट करता है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सर्व सद्गुणों को नष्ट करता है।

जीवन में क्षमा लाने के लिए भी ज्ञान की जरूरत है। ज्ञान होगा तो घमंड जायेगा और मनुष्य नम्र बनेगा। आज नम्र बनकर, जिससे-जिससे वैर हुआ हो उससे क्षमा माँगने और हृदय से क्रोध, मान, माया, लोभ और विषय-कषाय का कचरा काढ़ने का पवित्र दिन है। जिसका घर स्वच्छ हो तथा सारी सुविधाएँ हों,

आपको वहाँ बैठना अच्छा लगता है ना। वैसे ही अपने अंतर में भी स्वच्छता होगी तो चेतन को बहुत आनन्द आयेगा। अतः संवर की बुहारी हाथ में लेकर कषाय रूपी कचरे को जलाकर अंतर का आँगन स्वच्छ कीजिए।

भगवान कहते हैं कि "जैसे अपने संसार की डायरी रखते हैं वैसे ही जीवन की डायरी को भी जांचिए कि मुझसे कहाँ भूल हुई है? फिर भूल को शोध कर उसका प्रायश्चित्त कीजिए।" क्रोध की ज्वाला बहुत भारी नुकसान करती है। एक के पीछे शून्य लगायेंगे तो संख्या बढ़ते-बढ़ते लाख तक पहुँचेगी। परन्तु एक के उपर शून्य लगायेंगे तो जीरो (ZERO) हो जायेगा। चाहे जितनी साधना करें, परन्तु क्रोध की ज्वाला फट पड़ी तो समस्त साधना को जलाकर राख कर देगी। ज्ञानी कहते हैं कि 'वैर की यह दावाग्नि जीव को भवभ्रमण करवाती है।' किसी व्यक्ति के पैर में कील गड़ गई हो, तो कितनी चुभती है, डोक्टर के पास जाकर कील निकलवा लेने पर भी जबतक घाव भरता नहीं तबतक दुःखता है, फिर धीरे-धीरे मिट जाता है। परन्तु वैर के कील का दर्द तो जीवन भर नहीं मिटता। 'दशवैकालिक सूत्र' में भगवंत ने कहा है कि, *"वेराणु बंधाणि महब्भयाणि।"* किसी आत्मा के साथ वैर बाँधना और जीवनभर न भूलना जीव के लिए महान भय है। वैर के कारण सगे भाइयों का खून होता है। वैर का यह दावानल भवांतरों में जीव के साथ रहता है। इसलिए आपका जिसके साथ वैर हुआ है उसे याद करके, सरल बनकर खमा लीजिए। सामने वाला आपको क्षमा प्रदान करे या न करे, परन्तु आप वैर मत रखिए। दो में से एक व्यक्ति भी यदि पवित्र बनें तो उसका कैसा असर पड़ता है - इस बात पर एक प्रसंग कहती हूँ।

क्षमापना का प्रसंग : मेड़ता गाँव की घटना है। कल्याण नामक एक जैन मेड़ता के राजा मालदेव का चहेता प्रधान था और सहस्त्रमल उसके अधीन मंत्री था। दोनों जैन धर्म के अनुरागी थे। तत्त्वज्ञान में रुचि थी। अमावस्या और पूनम के दिन पौषध करते। लेकिन दोनों में बहुत मेल न था। एक दिन सहस्त्रमलजी ने किसी कारण से कल्याण का अपमान कर दिया। उस दिन से कल्याण ने प्रतिज्ञा कर ली कि जबतक सहस्त्रमल न कर दूँ तबतक सिर पर साफा नहीं बाँधूंगा। साफा और उघाड़े माथे घूमता। उस जमाने में लोग खुले पर टोपी या पगड़ी पहनकर ही निकलते थे। सिर्फ आज और टोपी को विदाई

दे दी गई है, इसलिए कहीं भी लोग उघाड़े सिर जाते हैं और किसीको शंका भी नहीं होती ।

सहस्त्रमल ने कल्याण का सहज अपमान किया जिससे उसके दिल में वैर की भीषण आग जलने लगी । युवावस्था के आकाश में सदैव पूनम नहीं रहती और न ही सदा अमावस्या रहती है । जब मानव जीवन में पूनम उदित होता है तब उसके कदम प्रकाश के पंथ पर बढ़ते हैं और जब अमावस छा जाती है, तो अंधकार में भटकता है । कल्याण प्रधान के अंतर में अमावस उदित हुई अतः सहस्त्रमल का खून करने की भीषण प्रतिज्ञा की । देवानुप्रियों ! देखिए, वैर की एक चिंगारी कैसा अनर्थ करती है । दोनों धर्म में आगे बढ़कर भाग लेने वाले थे । दोनों श्रमणोपासक स्वधर्मी बंधु थे । परन्तु सहज अपमान से अंतर के तार ऐसे टूटे कि अब उन्हें जोड़ना मुश्किल था । कल्याण की प्रतिज्ञा दिनोंदिन उग्र रूप धारण करती गई । प्रतिज्ञा को काफी समय बीत गये, पर अभी सहस्त्रमल जीवित था और कल्याण का माथा उघाड़ा ।

चातुर्मास के दिन आये और गाँव में धर्मगुरु चातुर्मास के लिए पधारे । वे संत रत्न समान तेजस्वी, ज्ञानी, गुणी और चारित्र की ज्योति से जगमगा रहे थे । कल्याण ने मुनि के स्वागत सम्मान में कोई कमी न रखी । जब देव, गुरु, धर्म प्रिय लगेंगे तब आपका आत्मकल्याण हो जायेगा । पहले के राजा-महाराजा जब प्रभु या संत के दर्शन करने जाते, तब गाँव में ढिंढोरा पिटवाते कि भगवान पधारे हैं, जिसे दर्शन करने की इच्छा हो, तैयार हो जाएँ । अपनी सेना में सूचना देते और अन्तःपुर में भी संदेशा भिजवाते थे । आप अपने अन्तःपुर में संदेशा देते हैं या नहीं यह तो ज्ञानी जाने ! सबसे कहकर, सबको लेकर बड़े ठाठ-बाट से प्रभु के दर्शन करने जाते, जिससे जनता पर खूब प्रभाव पड़ता था । भगवान की वाणी सुनकर पापी भी पुनीत बन जाते थे । मेड़ता गाँव में गुरुदेव चातुर्मास के लिए पधारे । बरसात के आने पर मोर नाच उठता है, सूखी वनस्पति नवपल्लवित बनती है और वातावरण हरा-भरा बन जाता है । जब संतों का आगमन होता है तब श्रावकजनों का दिल हर्ष से नाच उठता है । धर्मकार्य के लिए मन का मोर चहक उठता है । कल्याण और सहस्त्रमल उपाश्रय आते हैं । संतवाणी भी सुनते हैं, परन्तु कल्याण का हृदय परिवर्तन नहीं होता । मन में बँधी कठोर गाँठ खुलती नहीं । संत की वाणी और संत-समागम से पापी से पापी आत्माओं का हृदय परिवर्तन हुआ है । कल्याण पापी न था फिर भी उसका हृदय नहीं बदल रहा था । इसका मुख्य कारण है वैर की परंपरा ।

कल्याण धर्म का पुजारी था। रोज उपाश्रय जाता। धर्म-ध्यान करता, पर उसका माथा खुला देखकर गुरुदेव सोचते, 'ऐसा धर्मिष्ठ श्रावक युग की मर्यादा कैसे छोड़ सकता है, यह माथा खुला क्यों रखता होगा?' एक दिन रात्रि प्रतिक्रमण के पश्चात् गुरुदेव ने कल्याण को बुलाकर पूछा, "कल्याण! आप माथा खुला क्यों रखते हैं? आपके जैसे धर्मिष्ट श्रावक के लिए यह शोभास्पद नहीं है।" वह आपके जैसा वणिक था, परन्तु मन में मैल नहीं रखा। बिना कुछ छिपाये गुरुदेव के समक्ष हकीकत स्पष्ट कर दी। सुनकर, उसके हृदय की वैर ज्वाला शांत करने के लिए गुरुदेव कहते हैं, "अहो कल्याण! यह मैं क्या सुन रहा हूँ? अहिंसा का आराधक, अभयदान देने वाला, वीतराग प्रभु का श्रावक आज भान कैसे भूल गया? वैर के दावानल को तेरी तलवार नहीं मार सकती। परन्तु वैर का विसर्जन करने का अमोघ अस्त्र है प्रेम और अभय तेरा आदर्श है। वैर की विकट राह त्यागकर प्रेम की पगडंडी पर चले तो तेरा कल्याण होगा। तू महान आनन्द का अनुभव करेगा। तत्पश्चात् वैर की परंपरा थम जायेगी।"

देवानुप्रियों! संत के वचन कितने मधुर होते हैं! कितना अनमोल बोध प्रदान किया! संत किसे कहते हैं? व्यक्ति के टूटे अंतर को सांधने (जोड़ने) का काम करनेवाले संत कहलाते हैं। संसार की उपाधि से ऊबे हुए, उलझे हुए लोगों को शांति प्रदान करवानेवाले हैं संत। खोटे तत्त्व को छोड़कर सत् की साधना करनेवाले हैं संत। संत ने कल्याण को समझाने का बहुत प्रयत्न किया। प्रेरणा का शीतल जल छिटका, परन्तु यह सब पत्थर पर गिरने जैसा व्यर्थ रहा। कल्याण का दिल जरा भी नहीं पिघला। गुरुदेव ने उसे समझाना जारी रखा, परन्तु कल्याण का दिल नर्म नहीं हुआ।

सहस्रमल भी अक्सर गुरुदेव के पास आता। संतों की सेवा करता तथा धर्म-चर्चा में भाग लेता। गुरुदेव का ज्ञान विशाल था। धर्म-चर्चा में नित्य नया नवनीत प्राप्त होता। उन्हें मुनि के ज्ञान के प्रति अत्यधिक आदर-सम्मान का भाव था। इसलिए ज्ञान-पुण्य की सुवास से प्रेरित होकर भ्रमर बनकर आते और ज्ञान सुधारस का पान करके चले जाते।

महीना का थर का दिन आया। सहस्रमल रात्रि के एक बजे जग पड़े। उन्होंने सोचा, आज से एक महीने बाद संवत्सरी पर्व आयेगा। 'गुरु बहुत ज्ञानी, गुणी हैं तो जितना संभव हो गुरु के पास जाकर प्राप्त कर लें तथा अपने अंतर की क्लेस

दूर करूँ,' यह सोचकर रात्रि के डेढ़ बजे ही सहस्त्रमलजी उपाश्रय में आये । उस समय गुरुदेव ध्यान में बैठे थे, उन्हीं के पास जाकर बैठ गये । गुरुदेव ने ध्यान के पश्चात् सहस्त्रमलजी को अपने पास बैठा देखकर पूछा, "सहस्त्रमल ! आज आधी रात में किसलिए आना हुआ ?" "गुरुदेव ! मुझे एकदम इच्छा जगी कि गुरुदेव के पास जाकर जितना पा सकूँ पा लूँ । ऐसे पवित्र गुरु मुझे बार-बार नहीं मिलेंगे ।" गुरुदेव ने सहज भाव से कह दिया, "सहस्त्रमलजी ! आपके माथे पर खुली तलवार लिए शत्रु सावधानी से मौका देख रहा है, वहाँ आप अकेले आधी रात में क्यों बाहर निकले ?" सहस्त्रमल को यह मालूम न था इसलिए पूछने लगे, "गुरुदेव ! कौन शत्रु, क्या बात है ?" महाराज ने कल्याण की बात उन्हें बता दी । उसे पता न था कि कल्याण के साथ वर्षों पहले बाँधी हुई वैर की ज्वाला अब तक जल रही है । सहस्त्रमल ने कुछ समय बाद विदाई ली ।

इधर कल्याण उस रात उपाश्रय में ही सोये थे लेकिन महाराज को इसकी जानकारी नहीं थी । महाराज ने सहस्त्रमल से जो बातें की वे कल्याण ने सुनी । सुबह होते ही लाल-लाल आँखों द्वारा महाराज को उसने ताना दिया और उनके साथ भी वैर बाँध लिया । अब उपाश्रय आना और गुरुदेव को वंदन करना भी बंद कर दिया । अब तक कल्याण की आँख एक शत्रु को देखती थी, अब दो शत्रु को देखने लगी । एक तो सहस्त्रमल और दूसरे गुरुदेव । गुरु के साथ वैर बाँधने पर गाँव के समझदार लोगों ने इस वैर की गाँठ को खोलने के लिए बहुत समझाया । "हे कल्याण ! दुनिया में भले ही सब की अशातना कर, दूसरों के साथ भले वैर बाँध, पर अपने परम उपकारी गुरु के साथ क्यों वैर रखते हो ? सबसे आप बच जायेंगे । कदाचित सोते सिंह के मुख में हाथ डालो तो भी देव की मदद से बच सकते हैं, भड़कती हुई अग्नि में गिर कर भी दैवयोग से बच सकेंगे, जहर पीले तो भी देव की सहायता से जहर अमृत बन जायेगा, परन्तु गुरु की अशातना से कभी नहीं बच सकेंगे ।" इस प्रकार सबने बहुत समझाया परन्तु कल्याण ने वैर को और मजबूत किया ।

कुछ दिनों के पश्चात् पर्वाधिराज पर्यूषण पर्व के पवित्र दिवस आ पहुँचे । समस्त संघ का वातावरण वात्सल्यमय बन गया । महाराज मानते थे कि ऐसे पवित्र दिनों में तो वैर-द्वेष भूलकर कल्याण जरूर आयेगा । वे रोज कल्याण की राह देखते । एक-दो करते पर्यूषण के सात दिन व्यतीत हुए, परन्तु कल्याण नहीं आया । अंत में पर्यूषण पर्व का शिखर दिवस संवत्सरी आ पहुँचा । आज तो कल्याण जरूर आयेगा - गुरु को यह विश्वास था । परन्तु इस विश्वास के अंकुर कुम्हला गये । संवत्सरी के व्याख्यान में भी कल्याण नहीं आया ।

कल्याण का गुरु के साथ वैर जानकर अन्य धर्म के आगेवान ने उसे अपने धर्म की ओर मोड़ने का यत्न करना शुरू किया । परन्तु कल्याण ने उन्हें स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि **"भूखा सिंह घास में मुँह नहीं मारता ।"** सच्चा तो जिनशासन ही है । अमुक व्यक्ति के साथ मेरा अनबन है, इसीलिए मैं आपके धर्म में नहीं आ सकता ।" दूसरे पक्ष के लोग अपना-सा मुँह लेकर चले गये । यह बात गुरुदेव ने सुनी तो कल्याण की अडिग श्रद्धा जानकर बहुत आनंदित हुए । ऐसे दृढ निश्चय वाले श्रावक के पास जाकर क्षमा माँगने का निर्णय किया । गुरुदेव राह देखकर थक गये, उसके आने की अब आशा न रही । उससे खमतखामना किये बिना प्रतिक्रमण करना न था, इसलिए महाराज कल्याण के घर की ओर रवाना हुए । जिसे सच्चे दिल से क्षमापना लेनी होती है वह उसके घर जाकर क्षमा माँग आता है । संवत्सरी का दिन होने के कारण घर के अंदर बनायी पौषधशाला में पौषध लेकर बैठा था, क्योंकि उसे धर्म के साथ कोई वैर न था । सहस्रमल और गुरुदेव के साथ वैर था ।

महाराज को अपने घर की ओर आते कल्याण के पुत्रों ने देखा । संवत्सरी का दिन था । इसलिए गोचरी के लिए तो नहीं आये हैं, क्योंकि साधू का चौविहार उपवास होता है - यह उस घर के संतान जानते थे । इसलिए सोचा, 'अवश्य किसी विशेष कार्य से आगमन हुआ है ।' बालकों ने माता को सूचना दी तो कल्याण की पत्नी ने स्वागत किया, "पधारो गुरुदेव !" कल्याण को सूचना मिली तो क्रोध की ज्वाला भड़की और पौषधशाला का दरवाजा बंद कर दिया, क्योंकि वह गुरुदेव का मुँह भी नहीं देखना चाहता था । अब क्या करें ? गुरुदेव ने कहा, "कल्याण कहाँ है ?" सुनकर बालकों ने दरवाजा खोला । संत जल समान थे और इस जल से कल्याण के क्रोध की ज्वाला को शांत करने आये थे । गुरुदेव ने पौषधशाला में प्रवेश किया, परन्तु कल्याण न खड़ा हुआ न वंदन किया । बस नीचे देखते हुए बैठा रहा ।

गुरुदेव को स्वागत-सत्कार की जरूरत भी न थी । अपनी आँखों के आँसू मानो कल्याण के वैर की ज्वाला पर डाल रहे हों, ऐसे नम्रतापूर्वक वे कहने लगे, "कल्याण ! उस दिन अर्धरात्रि में की हुई भूल के लिए मैं क्षमा माँगता हूँ । आशा करता हूँ कि तुम उदार दिल से मुझे अवश्य क्षमा करोगे । जबतक तुम मुझे क्षमा नहीं करोगे, मैं संवत्सरी प्रतिक्रमण करने का अधिकारी नहीं । मैंने तेरी आत्मा को बहुत दुखाया है । जबतक तुम मुझे क्षमा नहीं करोगे तबतक मैं यहाँ से जाऊँगा नहीं ।" गुरु की अमृतभरी आँखों से पश्चात्ताप के झरते आँसुओं ने कल्याण के

अंतर में हलचल मचा दी । पहले जो दुश्मन दिखाई देते थे, अब क्षमा की मूर्ति दिखाई दे रहे थे । जल और ज्वाला का संगम हुआ । उसकी विचारधारा वैर से अवैर और ज्वाला से जल की ओर बदल गयी । अहो, गुरुदेव ! भूल आपकी नहीं मेरी है । ऐसे शासन प्रभावक, पंडित रत्न, समता के सागर जैसे गुरुदेव स्वयं चलकर मेरे घर पधारे और मैंने शिष्टाचार के सहज भाव से भी स्वागत न किया । उनके साथ वैर बाँधकर उन्हें कितना दुखाया । उन्होंने मुझे बहुत-बहुत समझाया फिर भी मैंने दिन-प्रतिदिन वैर की ज्वाला को प्रचंड बनाया ! मैं कैसा पापी हूँ ! गुरुदेव ने इतनी कृपा न की होती तो मैं अपनी आत्मा का खून कर देता । ज्ञानी कहते हैं कि 'गला काटने वाला तेरा शत्रु नहीं है, शत्रु तो क्रोध है ।' क्योंकि गला काटने वाला एक भव नष्ट करेगा, परन्तु कषाय रूपी शत्रु भवोभव बिगाड़ेगा ।

कल्याण की आँखों से पश्चात्ताप के आँसुओं की धारा बहने लगी । वह अपने स्थान से उठकर महाराज के चरणों में झुक गया । "गुरुदेव ! आपने मेरे घर पधार कर अभय का संगीत न सुनाया होता तो मेरे वैर की ज्वाला कैसे शांत होती !" ऐसा कहकर आँसुओं से गुरु के चरण पखारने लगा । फिर पूछा, "मेरा सहस्त्रमल कहाँ है ?" गुरुदेव बोले, "उसने तो आज उपाश्रय में पौषध किया है ।" "गुरुदेव ! आपकी आज्ञा हो तो मैं उपाश्रय में आऊँ ?" गुरु की आज्ञा लेकर कल्याण गुरुदेव के साथ उपाश्रय गया । संवत्सरी प्रतिक्रमण करते हुए कल्याण ने निर्णय किया कि अब मुझे किसीसे वैर नहीं रखना है । इतने दिनों तक मैंने सभी को मैत्री के मंडप में आमंत्रित किया, पर एक सहस्त्रमल का बहिष्कार किया । आज तो उसे आमंत्रित करके हृदय में भर लेना है । कल्याण सहस्त्रमल के पास जाकर उसके चरणों में झुका । हृदय के कुंभ में स्थित प्रेम का पानी अपने कट्टर शत्रु सहस्त्रमल पर डाला । "हे मंत्रीश्वर ! मैं अन्तःकरणपूर्वक आपसे क्षमा माँगता हूँ । वस्तुतः अवैर के आम्रकुंज पर कोयल बनकर प्रेम का गीत गाना मुझे नहीं आया । परन्तु इन गुरुदेव के अमृत समान वचन रूपी जल से मेरे अंतर में भड़कती वैर की ज्वाला बुझ गई है ।" कल्याण ने सहस्त्रमल को सीने से लगा लिया और सहस्त्रमल ने कल्याण को गले लगा लिया । एक दूसरे से प्रेम से लिपट गये । विश्वमैत्री के पवित्र दिन की संध्या खिल गयी । कल्याण ने सच्ची क्षमापना कर ली । बंधुओं ! इसे कहते हैं सच्ची क्षमापना । कल्याण ने अवैर की सच्ची लेन-देन की । आप भी आज कल्याण की भाँति, जिनसे वैर हो उनसे क्षमापना कर लीजिए । भगवान कहते हैं कि जो क्षमा प्रदान करता है वह आराधक बनता है और

दुश्मनी को भूलता है वही सच्ची संवत्सरी मनाता है । अतः यदि आप सच्ची संवत्सरी मनाना चाहते हैं तो जिसके साथ दुश्मनी हो उससे अन्तःकरणपूर्वक क्षमापना कीजिए । भूतकाल का एक भी कटु स्मरण अन्तःकरण में नहीं रहना चाहिए । वरसात वरसने पर गाँव की गलियों को भी स्वच्छ बनाती है । इसी प्रकार आज के दिन वीतराग वाणी का श्रवणकर हृदय को निर्मल बनाकर, नये नाम से जीवन प्रारंभ करना है । गजसुकुमारमुनि, मेतारजमुनि, खंधकमुनि आदि महान पुरुषों ने महान उपसर्ग देने वाले पर भी क्षमा रखी, तो मोक्ष में गये । हमें भी अवसर आने पर क्षमा रखकर जीवन सुशोभित करना है । तप, त्याग, चारित्र आदि गुणों को अपनाने में ही सच्चे अर्थ में संवत्सरी महापर्व की आराधना करने की वात कही जायेगी । समय हो गया है, अधिक भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ४७

प्र. भाद्रपद शुक्ल ७, शुक्रवार | दिनांक : २३-८-७४

अहं और मम को छोड़ो, नाऽहं न मम सीखो

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत करुणानिधि, शासन सम्राट, वीर भगवान के मुखारविंद से निःसृत शाश्वती वाणी का नाम है सिद्धान्त । आत्मा अपने को न पहचानने के कारण पुद्गल की ओर दौड़ता है । अनंतकाल से जीव पुद्गल का संग करता आया है, इसलिए सहजानंदी के वदले पुद्गलानंदी वन गया है । जीव को अपने स्वरूप की पहचान हो, तो वह पुद्गल के पीछे नहीं दौड़ेगा । जो साधक आत्मा अपना भान भूल बैठते हैं, वे पुद्गल की ओर आकर्षित हो जाते हैं । ऐसे आसक्त जीवों का संयम का संस्कार उसी समय नष्ट हो जाता है और उस पर आसक्ति का आवरण पड़ जाता है । 'आचारांग सूत्र' में न्याय के द्वारा समझाया गया है -

"से वेमि से जहा वि कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते पच्छन्नपलासे उम्मग्गं से नो लहइ भंजगा इव सन्निवेसं नो चयंति एवं एगे अणेगरुवेहिं कुलेहिं जाया रुवेहिं सत्ता कलुणं थणंति नियाणओ ते न लभन्ति मुक्खं ।"

आचारांग सूत्र, अ-६, - उ.-१

एक विशाल सरोवर है । जिसमें शैवाल की परत जम गई है, इसलिए तालाव में रहने वाले मेढ़क, कछुए सूर्य को नहीं देख सकते । एक बार पवन के झोंके से शैवाल में दरार पड़ी । एक कछुआ आसपास घूमते हुए उस दरार के छिद्र की ओर आ पहुँचा और छिद्र से अपना सिर बाहर निकाला । तो उसे शरद ऋतु के चंद्रमा की चाँदनी का क्षीरसागर के प्रवाह समान सुशोभित, तारामंडल के समूह से जगमगाते आकाश के दर्शन हुए । ऐसा अनुपम दृश्य देखकर वह बहुत आनंदित हुआ । उसने सोचा अपने मित्रों को भी बुलाकर यह स्वर्ग समान सुख दिखाऊँ । क्योंकि ऐसा पहले तो कभी देखा नहीं है । बंधुओं ! आपको कभी लगता है कि मैं रोज वीतराग वाणी का पान करता हूँ, रोज नया-नया सुनता हूँ, तो चलो अपने परिवार जनों से भी उपाश्रय आने के लिए कहूँ । वीतराग वाणी श्रवण करते हुए एक शब्द भी हृदय में उतर गया होगा, हृदय हर्षित हुआ होगा, तो अवश्य ही आप अपने परिजनों को भी बुला लायेंगे । भगवान की वाणी का एक शब्द भी यदि अंतर में उतर जाये तो बेड़ा पार हो जायेगा । यह संपत्ति आपको परभव में जाते समय सहायक नहीं बनेगी, परन्तु धर्म का कुछ प्राप्त किया होगा तो परभव में निमित्त मिलते ही वे संस्कार जाग उठेंगे ।

नंदन मणियार सम्यक्दृष्टि प्राप्त आत्मा था । भगवान के वचनों पर दृढ़ श्रद्धा थी । उसके रक्त के परमाणु-परमाणु और श्वासोच्छ्वास में भगवान महावीर का नाम गूँजता था । आपको भी यदि देव, गुरु, धर्म प्रिय होंगे तो 'महावीर' शब्द सुनते ही हृदय हर्ष से नाच उठेगा । जिसकी नस-नस में, हृदय की हर धड़कन में महावीर बसे हुए थे, वह नंदन मणियार मरकर मेढक किसलिए बन गया ? सम्यक्त्व का वमन हो गया और मिथ्यात्व आ गया । मिथ्यात्व आने पर बावड़ी पर उसकी आसक्ति हो गई । पौषध लेकर बैठे हैं, संवर का स्थान है । संवर के स्थान में आश्रव की चिंतना कर रहे हैं । श्रावक यदि संवर के स्थान में आश्रव का चिंतन करे तो पाप का भागीदार होता है, तो फिर साधू की क्या बात कहें ? साधू को तो अपने महाव्रतों के प्रति कितनी वफादारी चाहिए । इस वफादारी को बनाये रखने के लिए कदाचित आपसे अलग होना पड़े तो भी उसे आनन्द होगा, क्योंकि संयम की रक्षा के लिए अलग हुए हैं । दही को विलोकर मक्खन निकालते हैं । जबतक दही से अलग नहीं हुआ, तबतक वह मक्खन नहीं कहलाता, जब दही और पानी का संग छोड़कर बाहर निकलता है, तब मक्खन कहलाता है । इसी प्रकार जिसके संसर्ग से संयम के लुटने का भय हो, उसे छोड़ना ही श्रेष्ठ है । मुझे तो यही

दुश्मनी को भूलता है वही सच्ची संवत्सरी मनाता है। अतः यदि आप सच्ची संवत्सरी मनाना चाहते हैं तो जिसके साथ दुश्मनी हो उससे अन्तःकरणपूर्वक क्षमापना कीजिए। भूतकाल का एक भी कटु स्मरण अन्तःकरण में नहीं रहना चाहिए। वरसात वरसने पर गाँव की गलियों को भी स्वच्छ वनाती है। इसी प्रकार आज के दिन वीतराग वाणी का श्रवणकर हृदय को निर्मल बनाकर, नये नाम से जीवन प्रारंभ करना है। गजसुकुमारमुनि, मेतारजमुनि, खंधकमुनि आदि महान पुरुषों ने महान उपसर्ग देने वाले पर भी क्षमा रखी, तो मोक्ष में गये। हमें भी अवसर आने पर क्षमा रखकर जीवन सुशोभित करना है। तप, त्याग, चारित्र आदि गुणों को अपनाने में ही सच्चे अर्थ में संवत्सरी महापर्व की आराधना करने की बात कही जायेगी। समय हो गया है, अधिक भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ४७

प्र. भाद्रपद शुक्ल ७, शुक्रवार | दिनांक : २३-८-७४

अहं और मम को छोड़ो, नाऽहं न मम सीखो

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत करुणानिधि, शासन सम्राट, वीर भगवान के मुखारविंद से निःसृत शाश्वती वाणी का नाम है सिद्धान्त। आत्मा अपने को न पहचानने के कारण पुद्गल की ओर दौड़ता है। अनंतकाल से जीव पुद्गल का संग करता आया है, इसलिए सहजानंदी के बदले पुद्गलानंदी बन गया है। जीव को अपने स्वरूप की पहचान हो, तो वह पुद्गल के पीछे नहीं दौड़ेगा। जो साधक आत्मा अपना भान भूल बैठते हैं, वे पुद्गल की ओर आकर्षित हो जाते हैं। ऐसे आसक्त जीवों का संयम का संस्कार उसी समय नष्ट हो जाता है और उस पर आसक्ति का आवरण पड़ जाता है। 'आचारांग सूत्र' में न्याय के द्वारा समझाया गया है -

"से बेमि से जहा वि कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते पच्छन्नपलासे उम्मग्गं से नो लहइ भंजगा इव सन्निवेशं नो चयंति एवं एगे अणेगरुवेहिं कुलेहिं जाया रुवेहिं सत्ता कलुणं थणंति नियाणओ ते न लभन्ति मुक्खं।"

- आचारांग सूत्र, अ-६, - उ.-१

एक विशाल सरोवर है । जिसमें शैवाल की परत जम गई है, इसलिए तालाव में रहने वाले मेढ़क; कछुए सूर्य को नहीं देख सकते । एक वार पवन के झोंके से शैवाल में दरार पड़ी । एक कछुआ आसपास घूमते हुए उस दरार के छिद्र की ओर आ पहुँचा और छिद्र से अपना सिर वाहर निकाला । तो उसे शरद ऋतु के चंद्रमा की चाँदनी का क्षीरसागर के प्रवाह समान सुशोभित, तारामंडल के समूह से जगमगाते आकाश के दर्शन हुए । ऐसा अनुपम दृश्य देखकर वह वहुत आनंदित हुआ । उसने सोचा अपने मित्रों को भी वुलाकर यह स्वर्ग समान सुख दिखाऊँ । क्योंकि ऐसा पहले तो कभी देखा नहीं है । वंधुओं ! आपको कभी लगता है कि मैं रोज वीतराग वाणी का पान करता हूँ, रोज नया-नया सुनता हूँ, तो चलो अपने परिवार जनों से भी उपाश्रय आने के लिए कहूँ । वीतराग वाणी श्रवण करते हुए एक शव्द भी हृदय में उतर गया होगा, हृदय हर्षित हुआ होगा, तो अवश्य ही आप अपने परिजनों को भी वुला लायेंगे । भगवान की वाणी का एक शव्द भी यदि अंतर में उतर जाये तो वेड़ा पार हो जायेगा । यह संपत्ति आपको परभव में जाते समय सहायक नहीं वनेगी, परन्तु धर्म का कुछ प्राप्त किया होगा तो परभव में निमित्त मिलते ही वे संस्कार जाग उठेंगे ।

नंदन मणियार सम्यक्‌दृष्टि प्राप्त आत्मा था । भगवान के वचनों पर दृढ़ श्रद्धा थी । उसके रक्त के परमाणु-परमाणु और श्वासोच्छ्‌वास में भगवान महावीर का नाम गूँजता था । आपको भी यदि देव, गुरु, धर्म प्रिय होंगे तो 'महावीर' शव्द सुनते ही हृदय हर्ष से नाच उठेगा । जिसकी नस-नस में, हृदय की हर धड़कन में महावीर वसे हुए थे, वह नंदन मणियार मरकर मेढक किसलिए वन गया ? सम्यक्त्व का वमन हो गया और मिथ्यात्व आ गया । मिथ्यात्व आने पर वावड़ी पर उसकी आसक्ति हो गई । पौपध लेकर वैठे हैं, संवर का स्थान है । संवर के स्थान में आश्रव की चिंतना कर रहे हैं । श्रावक यदि संवर के स्थान में आश्रव का चिंतन करे तो पाप का भागीदार होता है, तो फिर साधू की क्या वात कहें ? साधू को तो अपने महाव्रतों के प्रति कितनी वफादारी चाहिए । इस वफादारी को वनाये रखने के लिए कदाचित आपसे अलग होना पड़े तो भी उसे आनन्द होगा, क्योंकि संयम की रक्षा के लिए अलग हुए हैं । दही को विलोकर मक्खन निकालते हैं । जवतक दही से अलग नहीं हुआ, तवतक वह मक्खन नहीं कहलाता, जव दही और पानी का संग छोड़कर वाहर निकलता है, तव मक्खन कहलाता है । इसी प्रकार जिसके संसर्ग से संयम के लुटने का भय हो, उसे छोड़ना ही श्रेष्ठ है । मुझे तो यही

समझाना है कि यहाँ से कुछ पाकर गये होंगे तो दूसरे जन्म में निमित्त मिलते ही वह संस्कार खिल उठेगा। नंदन मणियार भान भूले, परन्तु इस जन्म में उन्हें श्रद्धा हुई थी कि महावीर वचन यथातथ्य सत्य है। महावीर भगवान सत्य हैं और उनके वचन भी सत्य हैं। आप भले ही संयम न ले सकें, तप न कर सकें; परन्तु इतनी श्रद्धा तो अवश्य होनी चाहिए कि तप के विना पूर्वकर्म जलते नहीं और संयम विना तीन काल में सिद्धि नहीं मिलेगी।

वंधुओं! आज जगत में हर कोई सुख और शांति की कामना करता है। भगवान कहते हैं कि "हे भव्यजीवों! यदि आपको शांति की कामना है तो पहले दूसरों को शांति दो।" सुख और आनन्द, मान और प्रतिष्ठा चाहिए तो पहले दूसरों को देना सीखो। किसान को जो चाहिए वही बोता है। नीम बोकर आम्रफल की आशा रखना कभी फलीभूत नहीं हो सकती। ज्ञानी कहते हैं कि 'शांति का राजमार्ग ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप है।' दान-शील आदि शांति के परम उपाय हैं। मालिकी हक छोड़कर ट्रस्टी की दृष्टि रखने से शांति मिलती है। एक व्यक्ति बैंक का ट्रस्टी हो। बैंक में अब्जों रुपयों की लेन-देन होती है, पर वह तो बैंक का ट्रस्टी है। बैंक में खोट आये या चोरी हो, अथवा सामाजिक नीति के कारण हजारों रुपये देने पड़े, फिर ट्रस्टी को जरा भी दुःख होगा क्या? (श्रोताओं में से आवाज: 'नहीं होगी, क्योंकि वह तो ट्रस्टी है।') दूसरी बात। आपके पास आकर कोई कहे कि आपको पाँच हजार रुपये देने पड़ेंगे, तो कितनी चिंता होगी? चिंता क्यों हुई? मेरापन है इसलिए। मेरापन में ही उपाधि है। बालक मम-मम करता है, परन्तु यहाँ तो युवा और वृद्ध भी मम-मम कर रहे हैं। भगवान ने 'आचारांग सूत्र' में कहा है, *"माया मे, पिया मे, भाया मे, भइणी मे, भज्जा मे, पुत्ता मे, धुया मे, सुण्हा मे, सहिसयण संगंथ संथुया मे, विवित्तोवगरण परियट्टणभोयणच्छायणं मे।"*

- आचारांग सूत्र, अ-२, उ-१.

माता मेरी, पिता मेरे, भाई-भगिनी मेरे, पत्नी मेरी, पुत्र-पुत्रवधू, मित्र मेरे, स्वजन-कुटुंबी मेरे, हाथी-घोड़ा, मकान, धन-संपत्ति, खान-पान, वस्त्र आदि मेरे। ज्ञानी कहते हैं कि 'मैं मैं करनेवाले की अवस्था बकरी जैसी होती है।'

किसी चरवाहे ने अपनी भेड़-बकरियों को खेत में काँटों की बाड़ के बीच सुरक्षित रख दिया। अज्ञानी बकरे खुश कि कितना अच्छा है! हम आनन्द से रहेंगे। पूनम की रात है, चंद्रमा सोलह कलाओं के साथ खिला हुआ है। सब बकरों ने बें-बें की

आवाज लगानी शुरू कर दी । पास के जंगल में रहने वाले सिंह, वाघ समझ गये कि बें-बें की आवाज खेतों से आ रही है यानी उन्हें यहीं रखा गया है । यदि वे आवाज न करते तो संभवतः सिंह-वाघ को पता न चलता । परन्तु अब तो सिंह-वाघ ने भी गर्जना शुरू कर दी, जिसे सुनकर बकरे डर के मारे और बें-बें करने लगे । चुप रह जाते तो अब भी बच जाते । पर सिंह-वाघ छलांग लगाकर वहाँ पहुँच गये । उनके लिए काँटे की बाड़ तोड़ना तो खेल-समान था । झट बाड़ तोड़कर अंदर दाखिल हो गये और सभी बकरे मृत्यु के मुँह में पहुँच गये ।

"बकरीने जब मैं मैं कहा, अपना गला कटवा लिया,
मैनाने जब मैं-ना कहा, लुकमा, सक्कर का खा लिया ।

कवि रूपक बाँधकर समझाते हैं कि बकरी मैं मैं करने लगी तो उसका मरण हुआ । लेकिन पक्षी मैना क्या कहती है ? वह मीठी भाषा में बोलती है "मैं ना, मैं ना" अर्थात् मैं नहीं, मैं नहीं । मैं नहीं कहती है तो उसे सुंदर फल मिलते हैं । लोग प्रेम से उसे पिंजरे में रखते हैं, फिर भी वह बोलती है मैं - नहीं । आपको कभी लगता है कि मैं नहीं । आप तो यह समझते हैं कि मैं सबसे बड़ा, संघ का और घर का व्यवस्थापक । बच्चों को अक्सर उपदेश देते रहते हैं, 'हे अभागे ! समझ जरा ! हम हैं तो ठीक है, आगे तो बस राम ही रख वाला है ।' 'मैं' शब्द कब बनता है ? मैं वक्रभाव है । सरलता के बिना साधना के सोपान में चढना कठिन है । धर्म-धर्म रटते हैं, वह धर्म उपाश्रय में, मंदिर में, मस्जिद में या मुखवस्त्रिका में रह गया है ? नहीं, भगवान कहते हैं *"धम्मो सुद्धस्स चिटठइ ।"* जिसके जीवन में सरलता है, सात्त्विक भाव में रमता है, वहाँ धर्म हो सकता है । धर्म कहाँ टिकता है ? जिसके जीवन में अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, दान आदि है वहाँ धर्म टिकेगा । मेरा कहने का आशय यह है कि बकरी ने में-में किया तो गला कट गया । मालिकी है वहाँ बँधन है। **'ट्रस्टी की रखिए दृष्टि, तो न होवे दुःख की वृष्टि ।'** पुद्‌गलानंदी की यह दृष्टि नहीं होती । चार गति का फेरा रोकना हो तो मैं-मैं छोड़ दीजिए । मैं - मैं करने से कभी भी मुक्ति नहीं मिलेगी । पुद्‌गल के सुख की खातिर जीव ने पाप की इमारत खड़ी कर दी है । शरीर है तो उसके पीछे अनेक पाप करने पड़ते हैं ।

श्रावक संसार में रहता है, परिवार की जवाबदारी संभालता है, व्यापार-धंधा करता है, परन्तु उसकी दृष्टि मोक्ष की ओर रहती है । संसार की ओर मुँह करके तो अनेकों बार धर्मक्रियाएँ की, व्रत-नियमों का पालन किया, परन्तु अब जो मोक्षतत्त्व की रुचि

ं, जन्म-मरण से ऊब गये हों, विषय-भोग तकलीफ देने वाले लगे हों,
इस जन्म में मोक्ष की ओर मुँह रखकर प्रत्येक धर्मक्रिया कीजिए । समकिती आत
कायापाती हो सकता है, पर चित्तपाती प्रायः नहीं होता । अर्थात् काया पापी हो सकता
है, परन्तु उसका हृदय तो धर्मी ही होता है । समकिती आत्मा का दिल पाप का नहीं
होता । पाप को कर्तव्य मानकर उसमें रस या रुचि लेकर पाप नहीं करता । कर्तव्य
तो इसके लिए सिर्फ धर्म है । *अहं* और *मम*, मैं और मेरा मोहराजा द्वारा प्रदत्त मंत्र
भूलकर यदि हम नवकार मंत्र का रटन करेंगे तो नवकार आत्मा को उज्ज्वल
बनायेगा । आत्मा का रूप-रंग-ढंग बदल देगा । उपाश्रय में गुरुदेव के सान्निध्य में
आते हैं तब भी *अहं* और *मम* का जाप भूलते नहीं । वहाँ भी मैं धनवान, लखपति,
मैं यहाँ का प्रमुख, मैं तो डोक्टर, मैं बड़ा ज्ञानी, मैं तो तपस्वी, मैं तो लेखक । जीवन
में से अहंकार न जाये तो देव-गुरु भी हमें कैसे तार सकते हैं ? भूलने के स्थान में
भी 'मैं' भूलते नहीं तो फिर संसार के अन्य पाप स्थानों की तो बात ही क्या
करें ? आपका दिन लगभग 'मैं' और 'मम' की साधना में ही व्यतीत होता है ना ?
इतने वर्षों से उपाश्रय में आते हैं, वीतराग वाणी सुनते हैं । सुनकर मैं और मेरा
कितना भूले, या भूलने की जगह और पक्का रट लिया ?
'नाऽहं और न मम' आज चर्मचक्षुओं से दिखाई दे रहा है कि मैं किसीका
ीं कोई मेरा नहीं ।

एगोऽहं नत्थि मे कोई, नाहं मन्नस्स 'कस्सइ' ।

ं अकेला हूँ । मेरा कोई नहीं और मैं किसीका नहीं । कर्म के विकारों में मैं
तक भ्रांति से मैंपन और मेरेपन की कल्पना करके बैठा था । परन्तु अब
ग वाणी के प्रभाव से और सद्गुणों के पवित्र सान्निध्य से मेरी यह भ्रांति
गई है । तथा मैं कौन हूँ और मेरा क्या है ? इसका विवेक स्पष्ट रूप से जाग
। अब मैं मोहराजा के भ्रम में नहीं फसूँगा, उसकी सलाह नहीं मानूँगा ।
धर्मराजा द्वारा प्रदत्त मंत्र *"नाऽहं और न मम"* मैं बाहर नहीं और बाहर
मेरा नहीं । इस मंत्र का जाप निरन्तर भाव से जपूँगा । कवि अनंत प्रभु
में कहते हैं कि –

अनादिनी दुःखभरी, में कीधी हो परपुद्गल संग के,
भम्यो इण प्रीतशुं स्वांगधारी हो, नाच्चो नवा नवा रंग के,
अनंत जिणंद शुं प्रीतडी ।

अनादिकाल से पर के साथ प्रीति बाँधकर दुःखी हो रहे हैं । संसार की रंगभूमि पर नया-नया स्वांग रचकर एक अभिनेता की भांति अनंतबार नाचे हैं । इस नाचने के पीछे लक्ष्मी और ललना का लालच था । मोह के नशे में नाचने में भी हीनता-बोध नहीं हो रहा था । उल्टे जैसे-जैसे संज्ञाओं की ढोल जोर-जोर से बजती है, वैसे वैसे जोश में आकार और जोर से नाचता हूँ । जगत को रिझाने के लिए रोता था । परन्तु अब इस जैन मानव की सुवर्ण प्रभात में जिनेश्वर देव का मार्ग और उस मार्ग पर चलते मुनियों तथा जिनेश्वर देव का धर्म प्राप्त करके नाचना मुझे शोभा नहीं देता ।

बंधुओं ! अनादिकाल से मोह रूपी मदारी इस जीव रूपी बंदर को मुट्ठीभर चने का लालच देकर हजारों मनुष्यों की हाजिरी में मनचाहे तरीके से नचा रहा है । यह जीव रूपी लालची बंदर भी मुट्ठीभर चने के लालच में जोश में आकर हर्ष से नाचता है । ज्ञानी कहते हैं कि 'अब ऐसे नाचना तुम्हारे लिए शोभास्पद नहीं है ।' परम उपकारी, पवित्र सद्गुरुओं को देखकर और वीतराग वाणी की खंजडी के मधुर स्वरों को सुनकर हृदय हर्ष से नाच उठना चाहिए । पैसा, पत्नी, परिवार को देखकर नहीं नाचना चाहिए । मोक्ष की आराधना करनी हो तो अब मोह के समक्ष, कर्मसत्ता के समक्ष तीक्ष्ण नजर करनी पड़ेगी । भोग रूपी भंगी की मैत्री छोड़नी पड़ेगी । अच्छा आदमी भंगी से मित्रता नहीं करता । जब आपको भोग भंगी जैसा अस्पृश्य लगेगा तब उससे दूर रहने का मन होगा । मैं आपसे पूछती हूँ कि आपको कभी भोग भंगी जैसा, विषय विष जैसे, बंधु बँधन जैसे कामिनी करवत जैसी, पैसा पिशाच जैसा, बँगला आत्मा को बिगाड़ने वाला, कषाय कसाई जैसे और स्वाद सद्गति के शत्रु जैसा लगा है क्या ? (श्रोताओं में से आवाज : 'नहीं, अब तक नहीं लगे !')

आपने अपनी चीज बराबर पहचान ली है ना ? अपकारी को उपकारी मानने की भूल तो नहीं कर रहे हैं ना ? सच्चा उपकारी कौन है ? देव-गुरु और धर्म जैसे उपकारी मिलने का आनन्द हृदय में है या नहीं ? जिसे अपने सच्चे उपकारी की सही पहचान हो, वह भला उसे कभी भूलेगा ? वीतराग वाणी एकाग्रता से, विनय और आदर सहित सुनने से जीव को अपनी सही स्थिति का भान होता है । क्या भान होता है ? मेरी स्थिति धर्म-धन की दृष्टि से अभी तक बहुत सामान्य है । अतः इस स्थिति को सुधारने के लिए अच्छा पुरुषार्थ करूँ । परन्तु यह तब संभव है जब एक बार जिनेश्वर वचनामृतों पर श्रद्धा दृढ़ हो जाए ।

नंदन मणियार का प्रसंग : नंदन मणियार ने समकित पाकर वमन कर दिया । यदि बावड़ी पर मूर्छाभाव न होता तो एक बार का भगवान का दर्शन उसे बेड़ा पार करा देता । जिसकी साँस-साँस में भगवान महावीर का नाम गूँज रहा हो, वह भला मेंढ़क बने ? संभव नहीं । परन्तु बावड़ी पर मूर्छा रह गयी और समकित का वमन हो गया तो मरकर उसी बावड़ी में मेंढ़क के रूप में उत्पन्न हुआ । लेकिन प्राप्त करके आया था तो फिर से पा सकेगा । जब धन से धर्म, पैसा से परमेश्वर और संतानों से संत प्रिय लगेंगे, तब आत्मा की रौनक ही कुछ और होगी । तब आत्मा आत्मस्वरूप में स्थिर होगी । आपकी देह नीरोगी होगी, परन्तु आत्मा यदि रोगी होगी तो स्वस्वरूप में स्थिर नहीं रह सकेंगे । लेकिन देह रोगी और आत्मा नीरोगी हो तो वह कर्म का सामना कर सकेगा । सनत्कुमार चक्रवर्ती को सोलह रोग उत्पन्न हुए, परन्तु आत्मा नीरोगी थी । वे तो आत्मा में इतने मस्त हो गये कि देवलोक से देव को भी नीचे आना पड़ा । सनत्कुमार मुनि का शरीर रोगी बना है, परन्तु तप के प्रभाव से ऐसी शक्ति पैदा हुई है कि यदि चाहें तो अपनी काया को नीरोगी बना सकते हैं । अपना थूक यदि शरीर पर लगा लें तो समस्त रोग मिट जायें और काया कंचनवर्णी बन जाए । परन्तु उन्होंने विचार किया कि यदि मैं इस प्रकार रोग मिटा लूँगा, तो मेरे असातावेदनीय कर्म पड़े रह जायेंगे जो मोक्षमार्ग में जाने में विघ्न बनेंगे । जब अपने आप असातावेदनीय उदय में आया है तो क्यों न उसे भोगकर पूर्णकर दूँ ? उनमें रोग मिटाने की शक्ति थी, फिर भी कर्म भोगने के लिए तैयार हुए जबकि आज जीव इससे भागते फिरते हैं । देह को जितना पोषण दिया है, उतना आत्मा को नहीं दिया । श्रावक सुबह चार बजे उठकर स्वाध्याय करते हैं, फिर प्रतिक्रमण करते हैं । जिसने सुबह उठकर आत्मा का पोषण किया है, उसका सारा दिन सुंदर बीतता है । लेकिन आज तो सुबह उठते ही देह की पूजा शुरू हो जाती है । शरीर बोरी है और आत्मा माल । बोरी की कीमत करनेवाला माल गँवा बैठता है ।

नंदन मणियार का जीव मूर्छा के कारण बावड़ी में मेढ़क रूप में जन्मा । बावड़ी में पानी भरने आने वाली स्त्रियाँ आपस में बातें करती हैं कि "आज तो अपने त्रिलोकीनाथ प्रभु महावीर पधारे हैं । अतः उनके दर्शन करने जाना है ।" नंदन मणियार के गत जन्म में महावीर उसके रग-रग में रमे हुए थे, इसलिए बहनों के

मुँह से महावीर नाम सुनते ही विचार आया कि यह क्या है ? यह शब्द मैंने कहीं सुना है । सोचते-विचारते जातिस्मरण ज्ञान हो गया और वमन किया हुआ सम्यक्त्व आ गया । भगवान के प्रति अडिग श्रद्धा जागी । महावीर शब्द सुनते ही हृदय में अपूर्व आनन्द की अनुभूति हुई । वह कुएँ से बाहर निकला और भगवान के दर्शन करने चला । ज्ञानी के अतिरिक्त कौन जान सकता है कि मेंढ़क भगवान के दर्शन करने जा रहा है । जितने उत्कृष्ट भाव से मेढ़क भगवान के दर्शन करने जा रहा था उतने ही उत्कृष्ट भाव से महाराजा श्रेणिक भी भगवान के दर्शन करने जा रहे थे । वे संसार में रहते थे, पर उनकी दृष्टि मोक्ष की ओर थी । नववें तत्त्व पर उन्हें यथार्थ श्रद्धा थी । आप संसार का कोई भी कार्य करते हों, पर आपका लक्ष्य मोक्ष हो तो समझिए कि आपने कुछ प्राप्त किया है ।

राजा श्रेणिक घोड़े पर बैठकर भगवान के दर्शन करने जा रहे हैं । रास्ते में बहुत भीड़ है । जहाँ प्रभु के पावन चरण पड़ते हैं वहाँ तो रोज रास्ते में भीड़ जमती है । मेंढ़क उत्साह में आनन्द से उछलता प्रभु के दर्शन के लिए जा रहा है । रास्ते की भीड़ के कारण एक संकरी जगह में आ गया । जिस प्रभु की वाणी सुनने के लिए, प्रभु के दर्शन करने के लिए, देव-देवी भी उतर पड़ते हैं वहाँ मनुष्य की तो क्या बात कही जाए ? राजा श्रेणिक का घोड़ा उधर से गुजरा, भीड़ के कारण घोड़े का पैर मेंढ़क पर पड़ गया । पैर के नीचे आते ही मेंढ़क मरण की शरण हो गया । मेंढ़क की भावना प्रभु दर्शन की थी, उसी भावना में उसने प्राण छोड़े, अतः मरकर वैमानिक देव बना । इससे हमें तो यही समझना है कि नंद मणियार के भव में प्रभु महावीर से कुछ पाया हुआ था तो आगे सुधार हो सका, इस भव में यदि कुछ पाकर जायेंगे तो आने वाले भव में निमित्त मिलते ही प्रकट होगा ।

हम कछुए की बात कर रहे थे । उस कछुए ने आकाश में सुंदर दृश्य देखा जिससे उसके मन में आया कि मेरे सगे-संबंधियों को भी ऐसा सुंदर दृश्य दिखाऊँ । उस दृश्य का आनन्द अनुभव करते हुए वह स्वजनों को बुलाने गया । स्वजनों को लेकर जब छिद्र के स्थान पर आता है तो अब वह छिद्र पवन के झोंके से शैवाल से ढँक गया था । छिद्र की तलाश खूब करता है, परन्तु वह नहीं मिलता । इस दृष्टांत का सार यह है कि संसार एक विशाल जलाशय है, जिसमें जीव रूपी कछुए रहते हैं । संसाररूपी जलाशय कर्म रूपी शैवाल से ढँका हुआ है । भवितव्यता के योग

से कर्मरूपी शैवाल में एक छोटा छिद्र पड़ गया । (अकाम निर्जरा करते हुए पुण्य योग से ऐसा होता है । अर्थात् कर्म रूपी शैवाल में छिद्र पड़ता है ।) जिससे मनुष्य क्षेत्र, उत्तम कुल और सम्यक्त्व रूपी सुंदर आकाश का दर्शन हुआ । ऐसा होने पर भी अपने जाति वंधुओं अथवा विषयभोग का मोह जागने से उस सम्यक्त्व का आनन्द न लेकर, फिर से कर्म की शैवाल से आच्छादित हो जाता है । जिस प्रकार कछुए ने सुंदर आकाश दर्शन का सुयोग मिलने पर भी अपने वंधुजनों में आसक्त होकर लाभ न उठा सका, उसी प्रकार जीवात्मा सम्यक्त्व अथवा चारित्र प्राप्त करके भी पदार्थों तथा संवंधियों के मोह से संयम का आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता । तथा प्राप्त अवसर गँवा देता है । अवसर खो देने पर इस अपार संसार में वार-वार ऐसा सुअवसर कहाँ से प्राप्त होगा ?

द्रौपदी का अधिकार

नागश्री ब्राह्मणी को उसके पति आदि भाइयों ने घर से वाहर निकाल दिया । नागश्री चंपानगरी के श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ आदि मार्गों पर जिधर से भी गुजरी लोगों ने उसे तिरष्कृत, अपमानित और प्रताड़ित किया । उसकी गैरहाजरी में लोग उसकी निंदा कर रहे थे, उसके सामने आने पर उसे खूव खरी-खोटी सुनाई ।

वंधुओं ! नागश्री के किये कर्म तुरंत उदय में आ गये । घर से निकाल देने के वाद, लोग उसे मारते हैं, प्यास लगने पर पानी-पानी करती है, पर किसीको उस पर दया नहीं आती, कोई पानी भी नहीं देता । लोगों की ओर से पड़ते वचनों और प्रहारों से माथा लहूलुहान हो गया । उसे कोई दिशा नहीं सूझती । उसे लगता है कि गाँव से वाहर चली जाये । परन्तु इस रास्ते से गुजर कर ही तो वाहर जा सकेगी । उसे तन का, मन का और वचन का दुःख है । अव मन में पछतावे का पार न था, पर किसे कहे कि मुझसे भूल हो गई है, अव मैं ऐसी भूल नहीं करूँगी । कोई उसकी वात सुनने वाला नहीं । विपाक कर्म के उदय के समय अपनी जन्मदात्री माता भी वात सुनने के लिए तैयार नहीं होती । मार-पीट या प्रहार से ही सव समाप्त नहीं हो गया, वल्कि अभी इसी भव में और क्या-क्या दुःख पड़ेंगे आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ५८

प्र. भाद्रपद शुक्ल ८, शनिवार | दिनांक : २४-८-७४

दुबली आठम

ज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

वीतराग भगवान की वाणी श्रवण करते हुए जीव को सुख और साता का नुभव होता है । वीतराग वाणी आधि, व्याधि और उपाधि के रोग से मुक्त करवाने ली है । इस वाणी का एक-एक शब्द यदि समझकर आचरण में उतारा जाये । ये जन्म-जरा और मरण की शृंखला तोड़ने वाले हैं । वीतराग वाणी में इतना ामर्थ्य और शक्ति है, लेकिन आत्मा उसके भावों को न समझने के कारण परीत दिशा में दौड़ता फिरता है । संसार की ओर की दौड़ आश्रव की तरफ ले ायेगी और संवर की ओर की कर्म निर्जरा करवायेगी । जब देवलोक से सम्यक्दृष्टि व के च्यवन का समय आता है, तब वह क्या विचार करते हैं ? भले ही मुझे भव - ऐश्वर्य न मिले, पर जहाँ जैन धर्म हो वहाँ मेरा जन्म हो । सम्यक्दृष्टि देव सी कामना करते हैं, उन्हें देवलोक के सुख अप्रिय लगते हैं । वे भगवान के दर्शन रने जाते हैं, उनकी वाणी श्रवण करते हैं, पर वे पच्चक्खाण नहीं ले सकते । आश्रव का दरवाजा बंद करने के लिए व्रत-प्रत्याख्यान रूपी ताला नहीं है, इसलिए आश्रव जारी रहता है । अतः देव आश्रव का दरवाजा बंद करके संवर की भूमि जाने की इच्छा करते हैं । संवर में कर्म की निर्जरा है और आश्रव में कर्म-बँधन । जिसे भव-चक्र खटकता है, वह आत्मा छुटकारे की राह तलाशती है । जिसे व खटकता है वह आत्मा संसार से छिटकता है । आपको रोग खटकता है तब ा लेने का मन होता है, वैसे ही भव-भ्रमण खटकने पर आत्मा को संसार से टने का मन होता है । जबतक मिथ्यात्व है तबतक परिभ्रमण है ।

यह जीव अनंतकाल से आश्रव की धारा में बह रहा है । अब एक बार संवर मार्ग जुड़कर संसारसागर पार कर ले । अब दुःख न सहना हो तो ज्ञानी कहते हैं कि ंवर-मार्ग में स्थिर बनो ।' जिसे सुख प्राप्त करना है उसे संवर-मार्ग में आना हिए । जीव को सुख की पिपासा जागी हो तो अब त्याग-मार्ग में आने की वश्यकता है । जीवन में जब संवर भाव का संवेग जागेगा, तब वह भव भँवर

में नहीं भटकेगा। *'संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ।'* संवेग से अनुत्तर धर्म पर श्रद्धा होती है। अनुत्तर धर्म अनुत्तर गति प्रदान करवाता है। कीमती हीरा है तो मूल्य भी कीमती दिलायेगा। जाली नोट लेकर जायेंगे तो आपको कोई मूल्य नहीं देगा। वैसे ही अनुत्तर धर्म अनुत्तर गति दिलायेगा। जिसके जीवन में संवेग जागता है उसके जीवन में वेग प्रकटता है। गाड़ी का वेग, ट्रेन की गति, प्लेन की गति, रोकेट का वेग, चींटी, कछुआ आदि का वेग पतन की ओर ले जाता है। आपका भी वेग तो है, लेकिन उपाश्रय आने पर भी घरवास भूल नहीं जाते। (श्रोताओं में से आवाज : 'गले में बाँधकर फिरते हैं।') गले में बाँधेंगे तो डूब जायेंगे। जिस वेग से स्थानक में आते हैं, आकर दो घड़ी के लिए भी संसार को न भूलें तो समझ लीजिए कि अभी आश्रव में ही पड़े हैं। काया यहाँ है पर वेग संसार की ओर है। जब संवेग आयेगा तब उत्तम प्रकार के धर्म पर श्रद्धा होगी। उत्तम प्रकार का धर्म क्या है - कइयों को तो यह भी पता न होगा। धन से भरी तिजोरी देखकर जो आनन्द आता है, वह आनन्द धर्म में नहीं आता। आपका आनन्द दुर्गति में ले जायेगा। धर्म का आनन्द मोक्ष की ओर ले जाता है। संवेग आने पर निर्वेद अवश्य आता है। संवेग आने पर मोक्ष तत्त्व की रुचि जगती है। आपको दूसरे शहर जाना हो तो स्टेशन जाना पड़ता है। गाड़ी आपके दरवाजे में नहीं आती। प्लेन में जाना हो तो एरोड्राम जाना पड़ता है। ऐसे ही संवेग जीव को स्टेशन पहुँचाता है। संवेग रूपी स्टेशन पहुँचने पर निर्वेद आयेगा कि कहाँ मैं भोग का गुलाम, भोग का भिखारी ! इतना भोग भोगने पर भी तृप्ति नहीं हुई। अनंतकाल विषय-कषाय में, खाने-पीने में, भोग में ही बिताया। दुनिया में जितना कागज है, सबको लेकर लिखने बैठें तो भी एक जीव के परिभ्रमण को पूर्णतः नहीं लिखा जा सकेगा। इतना यह जीव भटका और भोगता रहा है।

सच्चा सत्यशोधक वेग है संवेग। ऐसे वेग वाला जीव भोग की भूल-भुलैया में नहीं फँसता। वह कीचड़ छोड़कर किनारे आ जाता है। संवेग का विलपावर जिसमें जगा हो उसमें वैराग्य का ऐसा पावर प्रकट होता है कि वह कहीं नहीं बँधता। जिसे आत्मधर्म की श्रद्धा जागी है उसने आत्मतत्त्व को जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया, *"जे एगं जाणइ से 'सव्वं जाणए'।"* जो एक को जानता है वह सर्व को जान लेता है। जिसने आत्मा को जाना उसे जगत की सृष्टि व्याकुल नहीं करती। एक कवि कहते हैं -

"आत्माना दर्शने जगतनो प्रलय छे, जगतना दर्शने आत्मा खोतो,
दिवस ने रात साथे रहे ना कदी, जागतो स्वप्न कदी ना जोतो।"

आत्मा के असंख्यात प्रदेशी ज्ञान ज्योति रूप को जिसने निहारा हो उसकी प्रसन्नता, ऊर्मि कुछ अनेरी होती है। सारा संसार भले ही पागल बनकर नाचता हो, परन्तु संवेगी वैरागी आत्मा ज्ञान प्रकाश देखता है। वह जगत के दर्शन में खो नहीं जाता है। उसे सिर्फ आत्मा पर श्रद्धा होती है, जगत के प्रति श्रद्धा उड़ जाती है। उसे तो यही लगता है कि ये सब कृतघ्नी हैं। जगत की वस्तु, व्यक्ति मुझे अंधकार के गहरे कीचड़ में ले जायेंगे। मुझे अब इनसे मित्रता नहीं करनी है। यह है संवेग का अनुपम आस्वाद। संवेग आया कि निर्वेद भी आ जाता है। निर्वेद आने पर जीव को संसार के पदार्थों के प्रति रुचि होती है। वह तो यही विचार करता है कि यह जीव अनंतकाल से भोगों को भोगता आया है, परन्तु अब तक तृप्ति नहीं हुई। चारों गति में चारों संज्ञाओं का जोर प्रबल है। नरक के जीव ब्रह्मचारी नहीं, अवेदी नहीं, उन्हें भोग-विषय मिलते नहीं, परन्तु उन्हें भी वेद तो सताते हैं। अनुत्तर विमान के देवों में वेद होने पर भी नहीं होती। वे भगवान के वचनामृत से सराबोर रहते हैं। उन्हें कोई शंका हो तो भगवान के पास जाना नहीं पड़ता। कितने भाग्यशाली हैं! अनुत्तर विमान से सिद्ध क्षेत्र कितनी दूर है? फक्त बारह योजन। फिर भी वे देव सिद्धस्थान पर पहुँच नहीं सकते, जबकि सिद्ध होने की योग्यता लेकर आये हैं। वे देव छ:द्रव्य, नवतत्त्व, नय, निक्षेप की चिंतना में अपना समय व्यतीत करते हैं। अनुप्रेक्षा, चिंतन करते हुए कोई शंका उपजे तो वहीं बैठे-बैठे मन से भगवान से प्रश्न पूछ लेते हैं और भगवान मन से उत्तर दे देते हैं। आज शंका का समाधान करने के लिए अवधिज्ञानी का भी टोटा है। फिर भी जीव जाग जाये तो एकावतारी बनने की योग्यता है। लेकिन मिथ्या भ्रम गया नहीं और धर्म पर सच्ची श्रद्धा हुई नहीं, तो भला मोक्षमार्ग पर कैसे पहुँचेगा। अत: भव का भय रखकर संवर क्रिया करोगे तो वह आश्रव से संवर की भूमिका में पहुँचायेगा।

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री ब्राह्मणी का उदाहरण विचार करने योग्य है। नागेश्री के कर्म का उदय है। सब उसे कहते हैं कि 'संत को संताप देने वाली, मुनि के प्राण लेने वाली, मुनि को अकाल मृत्यु करवाने वाली नागेश्री को धिक्कार है।' कोई उसे बैठने का स्थान, खाने को रोटी या पीने को पानी तक नहीं दे रहा था। इतने दु:ख तो सहन किये, फिर क्या हुआ?

'तए णं तीसे नागसिरीए माहणीए तब्भवंसि चेव सोलस-चयायंका पाउब्भूया तंजहा सासे कासे; जोणिसूल।' शास्त्रकार कहते

हैं कि नागेश्री ब्राह्मणी को उसी भव में सोलह रोग उत्पन्न हुए । नागेश्री के घोर पाप का उदय हुआ । जीव कर्म बाँधते समय विचार नहीं करता, परन्तु बाद में परिणाम कितना भयंकर आता है ? नागेश्री सबसे तर्जना पाती, दुःख भोगती-भोगती भटकती रही, अंत में उसके शरीर में सोलह रोग उत्पन्न हुए । वैसे तो शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम (रोएँ) हैं और एकेक रोम में पौने-दो रोग होने की बात भगवान ने कही है ।

"मानव तन के रोम रोम में, भरे हुए हैं रोग अपार,
कारण पाकर वही सब, आते हैं बाहर दुःखकार ।"

जबतक सूर्य विद्यमान है तबतक अंधकार नहीं आता । वैसे ही जबतक सातावेदनीय का उदय है तबतक असाता दबी रहती है । नागेश्री को सोलह बड़े रोग हुए - (१) श्वास (२) कास (खाँसी) (३) ज्वर (४) दाह (५) कुक्षि शूल (६) भगंदर (७) अर्श (८) योनिशूल (९) दृष्टि शूल (१०) मूर्धशूल (११) अरुचि (१२) अक्षिवेदना (१३) कर्ण वेदना (१४) कण्डू (१५) जलोदर (१६) कुष्ठ । ये सोलह रोग उत्पन्न हुए ।

शरीर के गुह्य भागों में शूल की वेदना मनुष्य के लिए असह्य होती है । हाथ-पैर में लकड़ी से मारे तो बहुत नुकसान नहीं होता, पर खोपड़ी में मारे और खोपड़ी टूट जाये तो आदमी मर जाता है । शरीर के अमुक भाग में वेदना सही जा सकती है और अमुक भाग में वेदना असह्य होती है । कोई योद्धा सौ-सौ तलवार, भाला आदि लेकर मारे तो जो वेदना हो वैसी भयंकर वेदना उसके आंख, कान आदि अंगों में उत्पन्न हुई । इतनी भयंकर वेदना होने पर भी आज कोई पानी देने वाला तक न था । घड़ी-भर पहले तक जेठानी-देवरानी क्या बोलेगी, क्या बोली आदि का कैसा मान था । पति सेवक की भाँति उसकी इच्छापूर्ति के लिए तत्पर था । कर्म का उदय होते ही सारे पर्दे बदल गये । तथा दो दिन में तो शरीर में सोलह रोग आ गये । कर्म इतना तत्काल उदय में आ गया । नदी के वेग से भी अधिक तेजी से कर्म उदय में आ गये । तीव्र कर्म बाँधा था, वे तीव्र उदय में आये । एक संत की घात करके कितने भव तक भटकेगी ? यहाँ की सरकार तो एक भूल की या हजार भूल की एक ही सजा दे सकती है, परन्तु नागेश्री [illegible] । उसे भवोभव में भटकायेगी । बंधुओं ! सम्यक्त्व [illegible] मि[illegible] दुःख में हाय, हाय करके नये कर्म बाँधता है । कर्म [illegible] अधिक है । जब सम्यक्दृष्टि आती है [illegible] कर्म [illegible] है, नये

कर्म बहुत अल्प बाँधता है । वह स्वदोष देखता है पराये दोष नहीं । खंधक मुनि की चमड़ी उतारने का प्रसंग आया । खंधक ऋषि के पाँच सौ शिष्य घानी में पेर दिये गये । झांझरियामुनि को मरणांतिक उपसर्ग आया । इतना होने पर भी इन मुनियों ने स्वदोष देखा । मुनि का नाम झांझरियामुनि क्यों पड़ा ?

झांझरिया मुनि का प्रसंग : झांझरिया मुनि राजकुमार थे । उसका नाम मदनब्रह्म था । एक बार, वसंतोत्सव के समय मदनब्रह्म कुमार अपनी बत्तीस पत्नियों के साथ आनन्द-किल्लोल कर रहे थे । तभी अचानक राजकुमार की दृष्टि एक वृक्ष के नीचे बैठे मुनिराज पर पड़ी । राजकुमार तुरंत वहाँ जाकर नम्रतापूर्वक मुनि को वंदन करते हैं । संत उसे उपदेश देते हैं । मुनि के प्रेमभरे सत्य वचनों ने राजकुमार की आत्मा को जागृत कर दिया । संसार के प्रति वैराग्य आते ही राजकुमार संसार त्यागकर संयमी बन गया । गुरु के सान्निध्य में खूब ज्ञान प्राप्त किया । बहुत समय के बाद अपने गाढ़े कर्मों को क्षय करने के लिए अकेले विचरने की आज्ञा माँगी । शिष्य की योग्यता देखकर गुरु ने उन्हें आज्ञा प्रदान की और वे अकेले विचरण करने लगे ।

ये युवा साधू प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, द्वितीय प्रहर में ध्यान करके तीसरे प्रहर गोचरी के लिए निकले । उस समय एक सेठानी अपने बँगले के झरोखे में खड़ी थी । उसका पति बारह वर्ष से परदेश गया हुआ था, पति के विरह में वह व्याकुल बनी हुई थी । इस कामिनी की दृष्टि उस तेजस्वी और युवा साधू पर पड़ी । एक तो राजकुमार, दूसरे चारित्र का तेज उसके मुख पर झलक रहा था । उसका रूप देखकर तरुण सुंदरी मुग्ध बनी । दासी से कहकर मुनि को ऊपर बुलवाया । मुनि श्रावक का घर समझ कर आ गये । सेठानी ने गोचरी बहरायी और फिर मुनि को आकर्षित करने के लिए हाव-भाव दिखाने लगी । मुनि के मन में भी न आया कि इस सेठानी की दृष्टि में विषयों का विष भरा हुआ है । विषय-विकार के घूँट पीती रहने वाली सेठानी को यह विचार न आया कि कितने पवित्र संत हैं और मैं क्या कर रही हूँ । सेठानी के हाव-भाव देखकर मुनि वहाँ से चलने लगे तो वह एकदम उनसे लिपट पड़ी और पीछे से पैर पकड़कर झांझर पहना दिया । किसलिए ? मुनि को कलंकित करने के लिए । बाईस परिषह में स्त्री का परिषह भी कहा गया है । मुनि को यह परिषह आ गया । मुनि को झांझर पहना तो दिया, परन्तु मुनि उसके हाथों से छिटककर निकल गये । अब तो उसी स्त्री ने 'बचाओ...बचाओ' कहकर चिल्लाना शुरू कर दिया । अपने कपड़े फाड़ दिये और

बालों की लट खींच दी और कहने लगी कि "यह साधू मेरा चारित्र लूट रहा है।" सुनकर लोग जमा हो गये और मुनि को मारने लगे। मुनि एक शब्द भी नहीं बोले। सामने ही दूसरे सेठ की हवेली थी, उसने यह सब देखा तो लोगों को खबरदार करते हुए बोला, "मैंने अपनी आँखों से देखा है। मुनि पवित्र हैं, यह स्त्री ही खराब है।" सबने मुनि से माफी माँगी और स्त्री का तिरस्कार किया। पग में झांझर पहनाया था इसलिए मुनि का नाम झांझरिया मुनि पड़ गया।

मुनि के जीवन में दूसरा उपसर्ग : बहुत समय के पश्चात् मुनि अपने बहन के गाँव कंचनपुर आये। दोपहर के समय गोचरी के लिए निकले। राजा-रानी शतरंज खेल रहे हैं। अचानक रानी की दृष्टि मुनि पर पड़ते ही उसे लगा कहीं 'यह मेरा भाई तो नहीं!' यह विचार करते ही उसकी आँखें नम हो गयी। राजा को शंका हुई कि इस साधू का पहले रानी से प्रेम रहा होगा। यह मानकर तुरंत नीचे उतर कर चंडाल को आज्ञा दी कि इस पाखँडी साधू को पकड़कर, गढा खोदकर उसमें उतारो तथा शिरच्छेद करो। सेवकों ने राजा की आज्ञानुसार मुनि को पकड़ा और एक बगीचे में ले जाकर गड्ढा खोदकर मुनि को उसमें उतारा। मुनि समझ गये कि आज मरणांतिक उपसर्ग आया है -

ऊंडी खाणमां जेने नंखावे, वळी गरदन असियी चड़ावे,
मुनि झांझरिया, केवा वीर थया... म...हासंत...

मुनि अपने चेतन देव से कहते हैं, 'हे चेतन! देखो, चलायमान मत होना। सिर कटे तो इसमें तेरा कुछ नहीं कटता। तूने पाँच महाव्रत अंगीकार किया तब खंति, मुत्ति आदि दस यति धर्म स्वीकार किया है। सिर जाये तो जाये, पर मेरे इस धर्म की हानि नहीं होने दूँ। आज तेरी कसौटी का दिन है। दीक्षा के दिवस से आज तक तूने जो कुछ सीखा है, उसकी परीक्षा है आज। देखना, परीक्षा में फेल न होना।' इस प्रकार अपनी आत्मा को सीख देते मुनि ध्यान में मस्त बन गये और चंडालों ने उनका मस्तक धड़ से अलग कर दिया। बंधुओं! ऐसा भयंकर उपसर्ग आया फिर भी हँसता चेहरा, मन में जरा भी खेद नहीं। क्षमा के सागर। आपने कर्म का कर्ज चुकाया, परन्तु नया चढ़ाया नहीं। मरणांतिक उपसर्ग में भी समकित की लहर तो देखिए, उसमें भी क्षायिक समकित हो तो उसकी लज्जत कुछ और ही है। हम कहते हैं ना कि 'आत्मा का स्वभाव ज्ञाता और द्रष्टा का है।' वह जीभ की आदत से बोलते हैं, अंतर से नहीं। आज ऐसे उपदेश देने वाले बहुत हैं, जो कहते हैं आत्मा को पहचानो, परन्तु आचरण में उतारने वाले अति अल्प हैं। सिर

काट दिया पर वही आत्मभाव में रमते रहे, वही समता और वही क्षमा । इसे, आत्मा को पहचाना कहा जायेगा । आपकी दशा कैसी है ! जैसे तोता बोलता था बिल्ली आये उड़ जाऊँ-उड़ जाऊँ परन्तु आचरण में नहीं था तो बिल्ली आयी और तोते को अपना ग्रास बना कर चली । बोलते रहते हैं कि आत्मा का स्वभाव ज्ञाता और द्रष्टा है, परन्तु ज्ञाता और द्रष्टापन कितना सीखा ? आत्मा का ज्ञाता -द्रष्टापन अपना लेने के बाद वाणी कुछ अलग ही निकलेगी । आनन्द कुछ और ही होगा । फिर मोक्ष उससे बहुत दूर नहीं । मोक्ष में जाने पर उसके सुख का अनुभव होगा, परन्तु ज्ञाता-द्रष्टापन सीख लेने पर यहीं मोक्ष के सुख का अनुभव होगा ।

कस्तूरी मृग की भाँति अज्ञानी जीव अपनी आत्मा के पास ही सुख होने पर भी अन्य स्थानों में ढूँढते हैं । जगत में ढूंढने निकलने पर आत्मा के भाव नहीं मिलते । मन भर धान कूटने पर, रुपये भर चावल भी नहीं मिलता । अफीम घोंटते रहने से अमृत नहीं मिलता । पानी को बिलोने से मक्खन नहीं मिलता । जो वस्तु जहाँ नहीं है वहाँ कैसे मिल सकती है ?

एक गरीब वृद्धा झोंपड़ी में रहती थी । वृद्ध होने पर भी अमीरों के घर बर्तन धोने का काम करने जाती थी । चरखा कातकर आजीविका चलाती थी । फटी साड़ियों को सीकर पहनती । पहले के लोग उतरे कपड़े गरीबों को देते थे, उसके बदले बर्तन नहीं लेते थे । खाना ज्यादा बचे तो कुत्ते को खिला देते, परन्तु बासी रखते नहीं थे । आज तो लोभसंज्ञा ने इतना साम्राज्य जमा लिया है कि उतरे हुए कपड़े इकट्ठे करके लोग बर्तन लेते हैं । पचास कपड़े देने पर एक स्टील की डोल मिलती है । इसमें आपका जैनत्व कहाँ है ? अच्छे कपड़े न दे सको, तो कम से कम उतरे हुए कपड़े तो दान कीजिए । इतना भी नहीं करेंगे तो आने वाले भव में क्या मिलेगा ? ज्ञानियों ने दान-शील, तप, भाव इन चार बोलों में दान को प्रथम स्थान दिया है । वृद्धा को किसीने साड़ी दी थी, जो बर्तन धोते समय फट गई । दो-तीन घर का काम पूर्ण करके संध्या समय घर आयी । उस समय घरों में बिजली न थी और फिर वृद्धा थी भी बहुत गरीब । वृद्धा ने दिया जलाया ।

दीपक की रोशनी में वृद्धा साड़ी का फटा हिस्सा सीने लगी । तभी धागा समाप्त होने से सुई जमीन पर गिर पड़ी । तेल समाप्त होने से दीपक बुझ गया । अंधेरा छा गया । वृद्धा अंधेरे में ढूँढने लगी, पर सुई नहीं मिली । इसलिए बाहर रास्ते की लाईट में सुई ढूँढने निकली । उधर से एक लड़का गुजर रहा था, उसने पूछा, "माताजी ! क्या खो गया है ?" "बेटा ! सूई खो गई है ।" लड़का भी ढूँढने में

उसकी मदद करने लगा। लड़के ने पूछा, "सूई कहाँ खोयी है ?" "बेटा, झोंपड़ी में खोई है।" यह सुनकर आप उसे क्या कहेंगे ? (श्रोताओं में से आवाज : 'मूर्ख') ज्ञानी कहते हैं कि 'आप क्या कर रहे हैं ?' अनंतकाल से इस जीव ने भी यही किया है। ज्ञान, दर्शन आनन्द का अकूत खजाना आत्मा में ही भरा हुआ है, पर जीव अज्ञानता के कारण बाहर तलाश रहा है। लड़के ने कहा, "माता ! झोंपड़ी में सुई ढूँढो।" दीपक जलाया, प्रकाश होते ही सुई मिल गई।

खो-वायुं खोळवा तलसे छे जीवड़ो, अंधारा ओरडामां प्रगटाव्यो दीवड़ो।

अपना क्या खोया है ? आत्मभाव, जो व्यक्ति या वस्तु में तलाशने से नहीं मिलेगा। वह सुख आत्मा में चमकता है, पर उसे खोजने के लिए जीव किसीके प्रकाश की शोध करता है। हृदय मंदिर में अंधकार है तो सुख कहाँ से मिल सकता है ? हृदय मंदिर में ज्ञान, वैराग्य, संवेग का प्रकाश करेंगे, तो खोया हुआ प्राप्त हो जायेगा। जगत को देखने जाकर, जगत की चर्चा में आत्मभाव भूल जायेंगे। संवेग जागे हुए आत्मा की दृष्टि कैसी होती है ? देखता है, पर नहीं देखता। जागता आदमी स्वप्न नहीं देखता। रामायण में कहा है कि **"जानिए तब ही जीव जागा, जब सब विषय, विलास, विरागा।"** वही जागृत है, जिसने विषय-कषाय छोड़ा है। तथा जिसकी आँखें बाहर से खुली हों, पर अंतर में सोया हो तो आत्मा का अधःपतन करवायेगा। स्वप्न में गले पर तलवार चलाकर मस्तक काट डाला। कितनी आधि, व्याधि, स्वप्न सृष्टि में होती है। वह कब जाती है ! जब नींद समाप्त हो। ज्ञानी कहते हैं कि 'संसार के दुःख कब समाप्त होते हैं ? आत्मा जागे तब !' इसलिए हर दिन आधा-आधा घँटा सिद्धान्त का वांचन, मनन करेंगे तो बहुत खजाना जमा हो जायेगा और आत्मा जाग जायेगा।

नागेश्री रोगों की वेदना से चीखती - चिल्लाती तड़प-तड़पकर मर गई और छट्ठी नरक में उत्कृष्ट स्थिति में उत्पन्न हुई। छट्ठी नरक स्थिति जघन्य सत्रह सागर और उत्कृष्ट बाईस सागर है। वहाँ महान दुःख भोगेगी, फिर वहाँ से निकलकर कहाँ : जायेगी और क्या होगा आदि भाव अवसर पर कहे जायेंगे।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

प्रीतिमती की मृत्यु और हरिषेण की उपाधि : गुरु कुलपति द्वारा प्रदत्त आकाशगामिनी विद्या के प्रभाव से वे दारुणक वन में पहुँच गये। कुलपति ने साथ में एक तापस को भी भेजा था। प्रीतिमती की अच्छी देखभाल करते हैं। हरिषेण

के मन में आता रहता कि जगत के जंजाल से मुक्त होने के लिए सन्यास लिया, पर यहाँ भी वही उपाधि साथ रही। खैर, जो हुआ सो ठीक। समय बीतते-बीतते नौ महीने पूरे हुए और प्रीतिमती ने एक पुत्री को जन्म दिया। हरिषेण सोचते हैं 'यदि प्रीतिमती ने इस बात की जानकारी पहले दे दी होती और यह प्रसंग पूर्ण हो जाने के बाद यहाँ आयी होती तो अच्छा होता।' वहाँ बालिका को राज्य के सुपुर्द कर सकते थे। यहाँ से अब राज्य में सौंपा नहीं जा सकता। यदि मैं ऐसा करूँ तो सन्यास से वापस राज्य में लौटने की प्रथा शुरू हो जायेगी। अतः ऐसा तो करना नहीं है। तेज की किरणों जैसी, सुंदरता की निधि, निर्मलता का अवतार जैसी पुत्री के जन्म का समाचार आश्रम में फैल गया।

बहुत बार न सोची हुई बात हो जाती है। कल्पना तक में न हो, ऐसी बात सामने आ जाती है। रत्न जैसी कन्या को जन्म देकर प्रीतिमती ने छुटकारे की साँस ली। कन्या का पालन-पोषण करने के दायित्व के साथ प्रभु-मार्ग की आराधना करनी होगी - यह विचार भी आया। पुत्री के जन्म के सात दिन पश्चात् प्रीतिमती अस्वस्थ हो गई। शास्त्र के पारंगत तापसों ने औषधियों और जड़ी-बूटी द्वारा उपाय किये। जब आयुष्य हो तभी औषधि का उपयोग होता है, लेकिन आयुष्य की डोरी टूटने पर कोई जड़ी-बूटी काम नहीं आती। मुनि हरिषेण चिंतातुर बने कि अब क्या करें? उनकी चिंता दूर हो, उसके पहले ही प्रीतिमती ने नश्वर देह का त्याग कर दिया। सात दिन की बालिका को छोड़कर माता चिरनिद्रा में सो गई। हरिषेण विचार करते हैं कि 'मनुष्य चाहे जितना शक्तिशाली हो, परन्तु कर्मराजा के सम्मुख तो वह रंक है।' मुक्ति के लिए राजभवन का त्याग करके निकल पड़ने वाले हरिषेण मुनि की गोद में रत्न समान बालिका की जवाबदारी आ गयी।

इस सुकुमार कन्या का प्रश्न मुनि हरिषेण के लिए जटिल बन गया। इस कन्या का पालन तो करना ही है, पर ऐसे तपस्वियों के आश्रम में रहकर करना बहुत कठिन है। जो सत्ता, जो राज्य और जो संसार त्याग कर आये हैं, वहीं वापस नहीं लौटा जा सकता है। यदि चले जाएँ तो मुनियों की भावी पीढ़ी के लिए एक भयानक रूढ़ि (परंपरा) बन जायेगी। तो क्या किया जाये? गुरुदेव को संदेशा भेजूँ या उनके पास स्वयं जाऊँ! हरिषेण मुनि क्या निर्णय करेंगे और आगे क्या होगा आदि भाव अवसर पर कहे जायेंगे।

॥ ॐ शान्तिः ॥

उसकी मदद करने लगा । लड़के ने पूछा, "सूई कहाँ खोयी है ?" "बेटा, झोंपड़ी में खोई है ।" यह सुनकर आप उसे क्या कहेंगे ? (श्रोताओं में से आवाज : 'मूर्ख') ज्ञानी कहते हैं कि 'आप क्या कर रहे हैं ?' अनंतकाल से इस जीव ने भी यही किया है । ज्ञान, दर्शन आनन्द का अकूत खजाना आत्मा में ही भरा हुआ है, पर जीव अज्ञानता के कारण बाहर तलाश रहा है । लड़के ने कहा, "माता ! झोंपड़ी में सुई ढूँढो ।" दीपक जलाया, प्रकाश होते ही सुई मिल गई ।

खो-वायुं खोळवा तलसे छे जीवड़ो, अंधारा ओरडामां प्रगटाव्यो दीवड़ो ।

अपना क्या खोया है ? आत्मभाव, जो व्यक्ति या वस्तु में तलाशने से नहीं मिलेगा । वह सुख आत्मा में चमकता है, पर उसे खोजने के लिए जीव किसीके प्रकाश की शोध करता है । हृदय मंदिर में अंधकार है तो सुख कहाँ से मिल सकता है ? हृदय मंदिर में ज्ञान, वैराग्य, संवेग का प्रकाश करेंगे, तो खोया हुआ प्राप्त हो जायेगा । जगत को देखने जाकर, जगत की चर्चा में आत्मभाव भूल जायेंगे । संवेग जागे हुए आत्मा की दृष्टि कैसी होती है ? देखता है, पर नहीं देखता । जागता आदमी स्वप्न नहीं देखता । रामायण में कहा है कि **"जानिए तब ही जीव जागा, जब सब विषय, विलास, विरागा ।"** वही जागृत है, जिसने विषय-कषाय छोड़ा है । तथा जिसकी आँखें बाहर से खुली हों, पर अंतर में सोया हो तो आत्मा का अधःपतन करवायेगा । स्वप्न में गले पर तलवार चलाकर मस्तक काट डाला । कितनी आधि, व्याधि, स्वप्न सृष्टि में होती है । वह कब जाती है ! जब नींद समाप्त हो । ज्ञानी कहते हैं कि 'संसार के दुःख कब समाप्त होते हैं ? आत्मा जागे तब !' इसलिए हर दिन आधा-आधा घँटा सिद्धान्त का वांचन, मनन करेंगे तो बहुत खजाना जमा हो जायेगा और आत्मा जाग जायेगा ।

नागेश्री रोगों की वेदना से चीखती - चिल्लाती तड़प-तड़पकर मर गई और छट्ठी नरक में उत्कृष्ट स्थिति में उत्पन्न हुई । छट्ठी नरक स्थिति जघन्य सत्रह सागर और उत्कृष्ट बाईस सागर है । वहाँ महान दुःख भोगेगी, फिर वहाँ से निकलकर कहाँ : जायेगी और क्या होगा आदि भाव अवसर पर कहे जायेंगे ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

प्रीतिमती की मृत्यु और हरिषेण की उपाधि : गुरु कुलपति द्वारा प्रदत्त आकाशगामिनी विद्या के प्रभाव से वे दारुणक वन में पहुँच गये । कुलपति ने साथ में एक तापस को भी भेजा था । प्रीतिमती की अच्छी देखभाल करते हैं । हरिषेण

के मन में आता रहता कि जगत के जंजाल से मुक्त होने के लिए सन्यास लिया, पर यहाँ भी वही उपाधि साथ रही। खैर, जो हुआ सो ठीक। समय बीतते-बीतते नौ महीने पूरे हुए और प्रीतिमती ने एक पुत्री को जन्म दिया। हरिषेण सोचते हैं 'यदि प्रीतिमती ने इस बात की जानकारी पहले दे दी होती और यह प्रसंग पूर्ण हो जाने के बाद यहाँ आयी होती तो अच्छा होता।' वहाँ बालिका को राज्य के सुपुर्द कर सकते थे। यहाँ से अब राज्य में सौंपा नहीं जा सकता। यदि मैं ऐसा करूँ तो सन्यास से वापस राज्य में लौटने की प्रथा शुरू हो जायेगी। अतः ऐसा तो करना नहीं है। तेज की किरणों जैसी, सुंदरता की निधि, निर्मलता का अवतार जैसी पुत्री के जन्म का समाचार आश्रम में फैल गया।

बहुत बार न सोची हुई बात हो जाती है। कल्पना तक में न हो, ऐसी बात सामने आ जाती है। रत्न जैसी कन्या को जन्म देकर प्रीतिमती ने छुटकारे की साँस ली। कन्या का पालन-पोषण करने के दायित्त्व के साथ प्रभु-मार्ग की आराधना करनी होगी - यह विचार भी आया। पुत्री के जन्म के सात दिन पश्चात् प्रीतिमती अस्वस्थ हो गई। शास्त्र के पारंगत तापसों ने औषधियों और जड़ी-बूटी द्वारा उपाय किये। जब आयुष्य हो तभी औषधि का उपयोग होता है, लेकिन आयुष्य की डोरी टूटने पर कोई जड़ी-बूटी काम नहीं आती। मुनि हरिषेण चिंतातुर बने कि अब क्या करें ? उनकी चिंता दूर हो, उसके पहले ही प्रीतिमती ने नश्वर देह का त्याग कर दिया। सात दिन की बालिका को छोड़कर माता चिरनिद्रा में सो गई। हरिषेण विचार करते हैं कि 'मनुष्य चाहे जितना शक्तिशाली हो, परन्तु कर्मराजा के सम्मुख तो वह रंक है।' मुक्ति के लिए राजभवन का त्याग करके निकल पड़ने वाले हरिषेण मुनि की गोद में रत्न समान बालिका की जवाबदारी आ गयी।

इस सुकुमार कन्या का प्रश्न मुनि हरिषेण के लिए जटिल बन गया। इस कन्या का पालन तो करना ही है, पर ऐसे तपस्वियों के आश्रम में रहकर करना बहुत कठिन है। जो सत्ता, जो राज्य और जो संसार त्याग कर आये हैं, वहीं वापस नहीं लौटा जा सकता है। यदि चले जाएँ तो मुनियों की भावी पीढ़ी के लिए एक भयानक रूढ़ि (परंपरा) बन जायेगी। तो क्या किया जाये ? गुरुदेव को संदेशा भेजूँ या उनके पास स्वयं जाऊँ ! हरिषेण मुनि क्या निर्णय करेंगे और आगे क्या होगा आदि भाव अवसर पर कहे जायेंगे।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ४९

प्र. भाद्रपद शुक्ल ९, रविवार | दिनांक : २५-८-७४

आत्मा की भूख जगाओ

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

जो जन्म-जरा और मरण के दुःख से मुक्त होने की आकांक्षा रखते हैं, उन आत्माओं से अनंतज्ञानी महापुरुष कहते हैं कि 'हे आत्माओं ! धर्म के यथार्थ स्वरूप को जानो ।' जब आत्मा को दुःख के प्रति अनादर भाव होगा और सुख की जिज्ञासा जगेगी तब वह विचार करेगा कि मैं सुख-सुख की रट लगा रहा हूँ, पर सच्चा सुख आखिर कहते किसे हैं ? आपने बहुत बार अपने सामने देखा होगा कि आज का करोड़पति कल रोडपति हो जाता है । यदि पैसा सुख का साधन है तो सुख के साथ दुःख किसलिए आया ? आपका विज्ञान चाहे जितनी प्रगति कर ले, परन्तु जहर तो तीनों काल में जहर ही रहेगा । जहर को कोई अमृत नहीं बना सकता और न अमृत को जहर । खगोल और भूगोल कितने भी आगे बढ़ जाएँ, पर एक और एक को दो ही कहेंगे, तीन नहीं । सुख आखिर है क्या ? सुख तो वह कहलायेगा जिसके पीछे दुःख न आये । आपको सुख की कामना है तो पहले उसके स्वरूप को समझिए । यह जीव अनंतकाल से ऐसे सुखों को भोगता आया है जिस सुख ने परिणाम में दुःख प्रदान किया है । समझिए ! नागेश्री के पास धन, संपत्ति, वैभव की कोई सीमा न थी । वह संपत्ति उसके लिए दुःखदायक भी नहीं थी जबकि आपकी संपत्ति आपके लिए दुःखदायक है । दुःखदायक क्यों कह रही हूँ ? गवर्नमेंट का कानून ऐसा है कि धनवान शांति से नहीं रह सकते । ज्ञानी कहते हैं –

"लक्ष्मी अने अधिकार वधता शुं वध्युं ते तो कहो,
शुं कुटुंब के परिवारथी, वधवापणुं ए नव ग्रहो ।"

यदि आत्मा में सही बोध न हो तो अधिकार और लक्ष्मी के बढ़ते जाने पर वह मानव देह हार बैठेगा । महापुरुष समझपूर्वक संसार में रहते थे और समय आते ही छोड़कर निकल जाते । आपको बढ़ाना तो है परन्तु छोड़ना नहीं है । सिर के बाल बढ़ने पर कटवाते हैं, नाखून बढ़े को काटते हैं, ऐसे ही परिग्रह का बोझ भी घटाना सीखिए । आप सुख और शांति की इच्छा करते हैं, जो भोग और परिग्रह के त्याग के बिना नहीं मिलेगी ।

नागेश्री जंगल में कौआ-कुत्तों के जैसे लावारिस मर गई और छट्ठी नरक में गई। छट्ठी नरक में भी जघन्य स्थिति नहीं वल्कि उत्कृष्ट स्थिति, वाईस सागरोपम, में उत्पन्न हुई। सागरोपम का काल यानी क्या है ? यह तो आप समझते हैं। ऐसे वाईस सागरोपम काल तक दुःख भोगना होगा। सात नरक में से प्रथम तीन नरक तक परमाधामी दुःख देते हैं और चौथे से सातवीं नरक तक क्षेत्र वेदना और एक-दूसरे की स्पर्श वेदना है। छट्ठी नरक का नाम क्या है ? तमप्रभा। तम यानी अंधकार। आपके घर या गाँव में एक दिन बिजली चली जाये और सरकार के कानून के अनुसार मोमवत्ती जलाना भी मना हो तो ऐसी रात आपको कितनी कठिन लगती है। आपको तो एक दिन का अंधेरा है और नरक में तो सदा ही अंधकार है। वहाँ रात-दिन समान है, ऐसा भयंकर अंधेरा। वहाँ क्षेत्र भी वेदना देता है। ग्रीष्म काल में तीव्र गर्मी के समय कच्छ के रन से गुजरना हो तो दस मील चलना भी मुश्किल हो जाता है, परन्तु गुजरात-काठियावाड और रन के अतिरिक्त कच्छ की भूमि पर चला जा सकता है। पहली नरक का नाम है - रत्नप्रभा। नाम सुनकर वहुत लोग सोचते हैं कि वहाँ रत्न है। पर वे रत्न कैसे हैं ? पत्थर कोयला सुलगने के वाद उस पर पैर रखे तो क्या होगा ? जल उठेगा, फोले-छाले पड़ जायेंगे। नरक के रत्न ऐसे ही दुःखदायी हैं। नरक में अनंत वेदना है। वहाँ जीव पानी-पानी करते हैं, पर पानी नहीं मिलता। नरक में दस प्रकार की वेदना है - अनंत भूख, अनंत तृषा, अनंत गर्मी, अनंत सर्दी, अनंत शोक, अनंत दाह आदि। हर जगह अनंत शव्द का उपयोग किया गया है। इतने दुःख सहते हुए भी, अकाम निर्जरा होती है सकाम नहीं। सकाम निर्जरा जीव को मोक्ष में ले जाती है। स्वेच्छा से एक नवकारसी का पच्चक्खाण करें तो नरक के पाँच सौ वर्षो के दुःख क्षय हो जाते हैं। आज बहूत-से लोग नवकारसी पोरसी के समय में उठते हैं। ऐसे सूर्यवंशियों को पच्चक्खाण न होने से कोई लाभ नहीं मिलेगा। अतः नवकारसी कीजिए। समझने के बाद अव्रती रहना उचित नहीं है।

कृष्ण वासुदेव का हृदय नेमनाथ भगवान का नाम सुनते ही नाच उठता था। किसी भाई या वहन के दीक्षा लेने की बात जानते ही उनका सिर झुक जाता और वे कहते धन्य है आपकी जननि को। संयम लेने वाले को पूर्णतः सहयोग करने के लिए वे तैयार रहते। संयम लेने के मार्ग में किसीको कोई रुकावट होती, तो वे उसे दूर कर देते। नगरी में उन्होंने ढ़िंढोरा पिटवाया था कि किसीके वृद्ध या अंधे माता-पिता हों

तो उन्हें मैं माता देवकी की तरह रखूँगा, किसीका कुछ लेन-देन बाकी हो तो मैं वह सब चुका दूँगा, परन्तु जिसे संयम लेने की भावना हो, वह खुशी से संयम ले, इन सब बातों की चिंता न करें। इतनी जवाबदारी कौन लेगा ? जिसके रग-रग में संयम के प्रति प्रेम है। त्याग मार्ग की उमंग है और संयम प्रिय लगा है। वह सम्यक्दृष्टि आत्मा तो समझता है कि सम्यक्दर्शन मेरा स्वर्ण का गहना है। कोई धनवान व्यक्ति, जिसके पास अपार धन-वैभव है, माल-मिल्कियत है, वह अपना दरवाजा खुला रख के सोयेगा क्या ? आज तो हम गोचरी के लिए जाते हैं तो फ्लैट सिस्टम में दिन में भी लोगों के दरवाजा बंद रहते हैं। दिन-दहाड़े चोरी के डर से दरवाजा बंद रखते हैं। पर आत्मा के अंदर चोर प्रवेश न कर जाये, इसके लिए कोई लोक रखा है। सम्यक्दर्शन आत्मा का गहना है। यदि दरवाजा खुला होगा तो मिथ्यात्व रूपी चोर दाखिल हो जायेगा और सम्यक्दर्शन रूपी गहना ले जायेगा। इसलिए सम्यक्चारित्र रूपी लोक लगा दीजिए तो मिथ्यात्व रूपी चोर सम्यक्दर्शन को लूट नहीं सकेगा। सम्यक्त्वी आत्मा अमूढ़, चतुर होता है, सावधान होता है। *"तमेव सच्चं निःशंकिय जं जिणेहिं पवेइयं।"* जिनेश्वर देव के वचन सत्य हैं, निःशंक हैं -ऐसी दृढ श्रद्धा सम्यक्त्वी को होती है। यदि कोई वीतराग शासन प्राप्त करके अस्थिर बना हो, वीतराग मार्ग में उसकी श्रद्धा शिथिल हुई हो तो उसे वाणी द्वारा, सिद्धान्त द्वारा, ज्ञानी के समागम द्वारा स्थिर करता है। माता का पुत्र के प्रति जैसा वात्सल्य-भाव होता है उससे अधिक स्नेह सम्यक्दृष्टि को वीतराग के उपासक के प्रति होती है। माता का स्नेह तो कर्म के कारण है, परन्तु यह स्नेह तो ऐसा छलकता है कि उसे देखते ही प्रमोद भाव आ जाता है। हम एक ही विद्यालय के विद्यार्थी हैं। वीतराग की कोलेज के स्टूडेन्ट हैं - ऐसा मानकर उसका वात्सल्य उभरता है। कृष्ण वासुदेव के भी ऐसे ही भाव उछल रहे हैं। उन्हें भौतिक धन संभालने की उतनी चिंता नहीं थी जितनी अपने सम्यक्दर्शन रूपी आभरण की। आया हुआ सम्यक्त्व चला न जाये, इसलिए उन्होंने लोक लगा दिया था। उनके दिल में सदा यह रट रहती कि मेरे त्रिलोकीनाथ भगवान कहाँ विचर रहे हैं। आपकी रट क्या रहती है ? किस प्रकार और अधिक धन प्राप्त करूँ ? यही ना ? आपको लगता है कि वह जमाना कुछ और था। बंधुओं ! आज भी ऐसे जीव हैं, जो पेट की रोटी के लिए भले ही कहीं जाएँ, पर आत्मा को भी रोटी देते हैं। वे समझते हैं कि पेट की रोटी के लिए आत्मा की रोटी बंद नहीं होनी चाहिए।

दाड़मिया का प्रसंग : एक गाँव में एक ही श्रावक का घर था और घर अन्यधर्मियों के थे। श्रावक का नाम है शांतिदास। वह अपनी आजीविका चलाने

लिए दाड़िम का व्यापार करता था, इसलिए सब उसे दाड़मियो कहते थे। दाड़मियो हुत गरीब था, पर धर्म के प्रति उसकी अडिग श्रद्धा थी और बहुत संतोषी था। ड़मिया आजीविका के लिए गाँव में रहता है, परन्तु रात-दिन उसके मन में यह सोच ता था कि मुझे रोटी तो मिली, लेकिन आत्मा की रोटी देने वाले गुरुदेव नहीं लते। एक बार विचरते-विचरते दो संत, गुरु-शिष्य मार्ग भूल जाने से वहाँ आ हुँचे। जिस गाँव में कभी साधू-संत का आगमन न हुआ हो, वहाँ के लोग भला है क्या जाने। कभी देखा हो तो पहचाने। अन्य धर्मी जैन संतों को देखकर कहते कि 'ये वनियों के गुरु आये। वनिये के गुरु अच्छे हैं, जरा भी खर्च नहीं खवाते।' इस गाँव के लोगों ने भी देखा होता तो वे भी कहते। लेकिन यहाँ तो त का प्रथम आगमन है। किसी आदमी की आज्ञा लेकर एक टूटे-फूटे से मकान रात-गुजारने ठहरे। चौमासा का समय नजदीक है। चल-चलकर थके हुए हैं। दल भी घिरे हुए हैं।

एटले जलधर रे भारे, रात-दिवस वरसे एक धारे,
सात दिवसनी हेली, पाणी चारे दिशे रह्युं फैली।

गाँव में सात दिन लगातार मूसलधार बरसात हुई। दोनों मुनियों के सात दिन का वास हो गया। वह मकान बहुत पुराना था, जगह-जगह टपकता था। एक कोना चा था जिसमें दोनों मुनि सात दिन तक बैठे रहे। गोचरी-पानी तो नहीं मिली, सोने क नहीं मिला। आठवें दिन बादल छंटे, परन्तु पानी भरा हुआ । जीवों की उत्पत्ति होने से बाहर कैसे निकलते? चार दिन और यूँ बीत गये यानी ारह उपवास हो गया। फिर बाहर निकलने जैसी स्थिति बनी। आषाढ़ी पूनम का न नजदीक आ गया था। अतः निश्चित स्थान पर पहुँचना मुश्किल सोचकर, पास ही किसी गाँव में चातुर्मास बिताने का विचार किया। मुनिद्वय बाहर निकले कि ड़मियो ने उन्हें देखा। गुरुदेव के पास पहुँचकर विनयपूर्वक पूछने लगा, "अहो रुदेव! आप गाँव में कब पधारे और क्यों विहार कर रहे ?" मुनि ने अपनी कहानी कही। सुनकर दाड़मियो रो पड़ा। "मैं कितना दनसीब! इतने दिनों से गुरु गाँव में पधारे हुए हैं और मुझे इसकी गंध तक न ायी। गुरुदेव! आप किस ओर पधारेंगे?" "भाई! जहाँ जाना था वहाँ अब पहुँच हीं सकेंगे। यहाँ रहने का स्थान ठीक नहीं है, इसलिए आगे गाँव की ओर जा रहे । यों तो यहाँ वनस्पति और जीवों की उत्पत्ति हुई है तो रास्ते में भी गी। यदि आपके पास खाली स्थान हो तो हम यहाँ ही रह जायेंगें।" वणिक बोला,

"मेरे पड़ोस में मेरे मित्र का घर खाली पड़ा है, आप वहाँ पधारिए ।" मित्र से आज्ञा प्राप्त कर मुनियों को किसीसे आज्ञा दिलाकर उसने चातुर्मास प्रवेश करवाया ।

दाड़मियो को इतना आनन्द हुआ मानो उसके आँगन में कल्पवृक्ष फल गया हो । घर पहुँचकर, पत्नी से बोला, "आज एक अमूल्य बधाई लाया हूँ ।" पत्नी ने पूछा, "किस बात की बधाई ?" दाड़मियो ने बताया कि "अपने गाँव में दो मुनियों का चातुर्मास हुआ है ।" सारी बात सुनकर पत्नी भी आनन्द से नाच उठी । "हमारा महान भाग्य ! नहीं तो हमें ऐसा लाभ कहाँ से मिलता ?" अब मुनि के लिए रसोई बनाना उचित नहीं है, तो दोनों ने बारी-बारी से एकांतर उपवास शुरू किया और सचेत पानी न पीने का पच्चक्खाण लिया है । एक-एक मुनि भी बारी-बारी से एकांतर करते हैं और समाधिभाव से संयम की आराधना करते हैं ।

दाड़मियो श्रावक अपनी पत्नी से कहते हैं, 'हमने मुनिराज का चौमासा तो रख लिया, परन्तु स्वधर्मी बंधु वंदन करने आयेंगे तो उनकी सेवा किस प्रकार करेंगे ?" पत्नी बोली, "स्वामी ! आप इसकी चिंता क्यों करते हैं ? देखिए, मेरे कानों में कर्णफूल है, हाथ में सोने की दो चूड़ियाँ हैं और एक गले की सांकल है । इन सबको वेचकर पैसा कर लेंगे और स्वधर्मी भक्ति करके हम खूब लाभ लेंगे ।"

गरीबी में अमीरी : बंधुओं ! विचार कीजिए । ये दोनों गरीबी में भी अमीर के जैसे रहते हैं । उनकी भावना कितनी ऊँची है । इसको कहते हैं सच्चा श्रावक । स्वधर्मी आये तो उन्हें प्रेम से भोजन करवाते हैं । दोनों मुनि से कहते हैं, "गुरुदेव ! आप व्याख्यान वांचिए ।" गाँव में कोई जैन न था । दोनों गुरु के समक्ष बैठते और गुरुदेव उन्हें समझते । रास्ते में आते-जाते लोग सुनते । दाड़मियो उन्हें गुरु के पास लाकर अंदर बिठाता । संत भी समयसूचकता का उपयोग करते हुए लोगों को समझ में आने जैसी भाषा का उपयोग करते हैं । सब उठते तो, यह श्रावक सभी को पाँच-पाँच बताशे देता । लोगों को लगा कि गुरु कितना सुंदर समझाते हैं । हम बताशे ले जाते हैं, तो हमें भी कुछ देना चाहिए । परन्तु ज्ञात हुआ कि जैन मुनि घी, गुड़, अनाज या पैसा हम लाकर दें तो भी नहीं लेते । दाडमियों के गुरु कितने विशेष हैं ? कुछ लेते नहीं और कितनी सुंदर कथा सुनाते हैं ! धीर-धीरे लोग बढ़ने लगे । कहने लगे, "महाराज ! हमारे घर भोजन लेने पधारो । मुनि उन्हें अपना आचार-विचार बताते हैं । उस गाँव में फिर एक-एक करके सौ घर जैनधर्मी हो गये । वह धर्म करता गया और करवाता गया । आनंदमंगलपूर्वक चातुर्मास पूर्ण हुआ । संतों ने वहाँ से विदा लेकर विहार किया ।

उस गाँव में एक दानवीर सेठ रहते हैं । संत को देख उनका हृदय खिल गया । एक दिन गुरु-शिष्य दोनों भाई के यहाँ गोचरी के लिए गये । सेठ ने बहुत भावपूर्वक आहार-पानी वहराया । सेठ की भावना देख शिष्य गुरु से पूछता है -

"मैं दानी देख्या घणा ए सम दानी नहि रे... कोई संसार,
गुरु कहे दाड़मियो सम कोई नावे रे, एनी तोले तलभार ।"

"गुरुदेव ! इनके जैसा कोई दानवीर होगा । इनकी रग-रग में दान की भावना है ।" तब गुरु कहते हैं, "तुम भूल गये । हमने जिस गाँव में चातुर्मास किया था, वहाँ का दाडमियो श्रावक सच्चा दानी है । क्योंकि जिनके पास करोड़ों रुपये हैं, उसमें से दान देने में कोई विशेषता नहीं है । लेकिन उस दाड़मियो ने पूरे चातुर्मास कैसे भावपूर्वक हमारी भक्ति की थी !" गुरु-शिष्य की यह बात सेठ ने बगल वाले कमरे से सुनी और मन में भावना जगी कि वह कैसा दानी होगा जिसकी प्रशंसा स्वयं गुरु कर रहे हैं ? एक दिन समय देखकर सेठ पूछते हैं, "गुरुदेव ! इस जगत में गुण का भंडार, दानी कौन है ? मुझे उसके दर्शन करने की इच्छा है ।" यह बात चल ही रही थी कि दाड़मियो गुरुदेव के दर्शन करने वहाँ पहुँचा । उसे देखते ही गुरु ने सेठ से कहा, "अभी जो दर्शन करने आया है, वही दानवीर दाड़मियो है" और उसकी सब बात कही । संत की बात सुनकर सेठ नीचे झुक-झुककर उसे नमन करते हैं तथा अपने घर ले जाकर उसकी खूब भक्ति करते हैं ।

हीरा, माणिक, मोती बहु ल्यो तुम वांछित काम,
करजोड़ी कहे सेठजी ! थाय पावन मुज धाम,
परधन न लेवो नियम छे, खपे आना दस
दाड़म व्यापारे लहूँ सुखे करूँ व्यवहार ।

हीरा-माणिक की थाली भरकर सेठ उसके सम्मुख रखते हैं तब दाड़मियो कहता है, "ये मुझे कल्पते नहीं, मेरे लिए परधन पत्थर समान है ।" बंधुओं ! आपको ऐसा मिल जाये तो ? आप तो कहते हैं **"परधन पत्थर समान, हाथ में आये तो घर समान ।"** ठीक कहा ना ? (हँसी) बहुत कहने पर भी कुछ न लिया तो सेठ बोले कि "आप जो दाड़िम का व्यापार करते हैं, उसकी थैली मुझे दीजिए । मैं उसे बेचने परदेस भिजवा दूँगा । परदेश में उसकी कीमत बहुत मिलेगी । वह धन आपको देकर, कम से कम एक स्वधर्मी बंधु की सेवा करने का लाभ तो दीजिए ।" दाड़मियो के दाड़िम की थैली निशान करके सेठ ने जहाज में भिजवाया और मुनीम को उसके बारे में विशेष हिदायत दी । परदेश जाकर मुनीम ने बहुत

व्यापार किया, परन्तु दाड़िम की थैली जहाज के एक कोने में पड़ी रह गयी । उसकी बात वे भूल ही गये ।

मार्ग में विपरीत पवन की तीव्रता से जहाज एक अन्य द्वीप पर पहुँच गया । उस नगर में ढ़िढोरा पीटा जा रहा है कि 'नगरी के राजा का राजकुमार अस्वस्थ है । उनकी दवा के लिए दाडिम की जरूरत है । जो कोई दाड़िम लायेगा उसे राजा मुँह-माँगा धन देंगे ।' यह घोषणा सुनकर मुनीम को वह थैली याद आयी और तुरंत थैली राजा को पहुँचा दी । कुँवर दाड़िम के सेवन से त्वरित स्वास्थ्य-लाभ करने लगा । राजा ने जितने दाड़िम थे सबके छिलके के अंदर जैसा दाड़िम के दाने रहते हैं, वैसे सच्चे मोती भरवा कर थैली मुनीम को लौटा दी । मुनीम ने बिना देखे थैली जहाज में रख दी - यह सोचकर कि बचे हुए दाड़िम वहाँ से लौटा दिये हैं । देश में पहुँचकर सेठ ने दाड़मियो को उनकी थैली लौटा दी । सबने यही सोचा कि माल बिका नहीं है । दाड़मियो ने थैली खोली । दाड़िम को रंगीन धागों से बाँधा हुआ था । अतः धागा खोलकर देखा तो अंदर सच्चे मोती भरे हुए थे । उसके यहाँ तो अब अपार संपत्ति आ गयी । पर विचार क्या करते हैं ? मुझे तो रोज आठ आने की जरूरत है, उससे ज्यादा दस आना मैं कमाता हूँ । दो आना राहत के लिए खर्च करता हूँ । उन्हें अगले दिन की चिंता भी नहीं इसलिए तो सारा धन शुभ कार्यो में लगा दिया । मैं जिस स्थिति में हूँ उसी में मुझे आनन्द है । ऐसे निष्परिग्रही दाड़मियो और उसकी पत्नी अंतिम समय संथारा करके स्वर्ग में गये ।

बंधुओं ! इन दोनों की धर्म के प्रति कितनी श्रद्धा ! जब जीवन में श्रद्धा जागेगी तो आत्मा में झंकार होगी कि दुनिया भले ही बदले, परन्तु प्रभु तेरे वचनामृत तीनों काल में कभी नहीं बदलेंगे । हे प्रभु ! जबतक मैंने आपको देखा न था, पहचाना न था तबतक बाहर बहुत भटका । परन्तु अब आपको प्राप्त करने के बाद अन्य कहीं भटकने क्यों जाऊँ ? जबतक हीरे की परख नहीं है, तभी तक काँच को हीरा मानकर संभालेंगे, लेकिन हीरे की पहचान होने के पश्चात् भला काँच को कोई रखेगा ? वीतराग वचनों पर जिसे यथार्थ श्रद्धा हूई उसके लिए तो मोक्ष की टिकट मिल गई । श्रद्धा का विलपावर ऐसा है । जिसके जीवन में प्रतीति, रुचि या श्रद्धा नहीं, वह संसारसागर में डूब जाता है । आराधक आत्मा का यह भूषण है कि उसे वीतराग के आगमों में संशय नहीं हो, अन्य मार्ग की आकांक्षा न हो, करणी के

फल की इच्छा न हो । बोया हुआ बीज कदाचित न भी फले, परन्तु किया हुआ कर्म कभी निष्फल नहीं जाता । सम्यक्दृष्टि साधक जो भी क्रिया करता है एकान्त निर्जरा के लिए करता है । मोक्ष प्राप्ति के लिए करता है ।

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री नरकावास में : नागेश्री छट्ठी नरक में बाईस सागरोपम की स्थिति भोगकर कहाँ उत्पन्न हुई ?

"सा णं तओऽणं तरंसि उव्वट्टित्ता मच्छेसु उववन्ना तत्थ णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा अहे सत्तमीए पुढवीए उक्कोसाए तेत्तीसं सागरोमठिइंएसु नेरइएसु उववन्ना ।"

छट्ठी नरक की भवस्थिति पूर्ण करके नागेश्री वहाँ से तिर्यंच गति में मछली के रूप में उत्पन्न हुई । मछली के भव में शस्त्र से बींधकर, दाह-पीड़ा से समय पूर्ण कर मरण के शरण हुई और नीचे सातवीं नरक में तैंतीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावास में नैरेयिक पर्याय में जन्मी ।

एक साधू की घात करके कितने काल का दुःख उपार्जन कर लिया । परन्तु कर्म करते समय जीव विचार नहीं करता कि इसका परिणाम कितना भयंकर होगा । नागेश्री का उदाहरण सुनकर जीव पाप करते हुए अवश्य रुकेगा । सरकार के कायदे का उल्लंघन करने से व्यापारी को दंडित किया जाता है - जानने पर आप वही भूल करेंगे क्या ? नहीं करेंगे । यदि भगवान ने भी यह बात न कही होती, गणधरों ने गूँथी न होती, आचार्यों ने लिखी न होती तो क्या मालूम होता कि ऐसे कर्म करनेवाले को ऐसे फल मिलते हैं । जानते नहीं तो पाप से अटकते भी नहीं । आगम महान संपत्ति है, पृष्ठ खोलें तो ज्ञात हो ना ? नागेश्री नरक में भयंकर दुःख भोग रही है, वहाँ उसे कोई छुड़ाने नहीं जाता । वैसे ही किये हुए कर्म जीव को ही भोगने पड़ते हैं । नागेश्री अभी और कैसे-कैसे दुःख भोगेगी, क्या घटेगा आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

कन्या का नाम ऋषिदत्ता : हरिषेण तापस सोचते हैं 'अब क्या करें ? गुरुदेव को संदेशा भेजें या स्वयं उनके पास जाएँ ?' इन विचारों की उलझन से निकल अभी हरिषेण कुछ निर्णय नहीं कर पाये, उससे पहले ही आकाशगामिनी विद्या के प्रभाव से गुरुदेव अपने दो शिष्यों के साथ आश्रम में आ पहुँचे । समस्त आश्रम में आनन्द छा गया ।

हरिषेणमुनि को देख गुरुदेव ने पूछा, "वत्स ! आर्या प्रीतिमती के देहावसान से तेरे दिल में दुःख तो नहीं हुआ ? आघात तो नहीं लगा ?" "कृपालु गुरुदेव ! नाशवंत वस्तु नष्ट होगी, इसमें दुःख का अनुभव क्यों करूँ ?" गुरुदेव को लगा कि साधना में तो बराबर स्थिर है । हरिषेण ने कहा, "गुरुदेव ! इस बालिका का प्रश्न मुझे व्याकुल कर रहा है । क्या करूँ ? कुछ समझ में नहीं आता ।" "हे शिष्य ! तेरे प्रश्न का समाधान करने के लिए ही मुझे यहाँ आना पड़ा है । बालिका का नाम क्या रखा है ?" "गुरुदेव ! अभी तक नामकरण नहीं किया ।" गुरुदव बोले, "मुनि हरिषेण ! इस कन्या का जन्म ऋषियों के आश्रम में हुआ है, इसलिए इसका नाम होगा 'ऋषिदत्ता' । तुम्हारे पिता ने एक वन में आश्रम बनवाया है, तुम्हें याद है ?" "गुरुदेव ! मैंने बचपन में एक बार आश्रम देखा था ।" "तो हे हरिषेण ! उसी आश्रम में जाकर रहो । तेरी कन्या का लालन-पालन भी होगा, और तेरा कर्त्तव्य भी भलीभाँति पाला जा सकेगा । वह स्थल सुंदर है । तुम ज्ञान-आराधना करते हुए वहाँ शांति से रहना ।" हरिषेण ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की ।

एक सप्ताह के पश्चात् गुरुदेव ने अपनी लब्धि के प्रभाव से हरिषेण तथा उनकी पुत्री ऋषिदत्ता को आश्रम में पहुँचा दिया । आश्रम देखते ही हरिषेण चौंक गये । आश्रम इतना स्वच्छ और सुंदर था, मानों अभी बनाया गया हो । वहाँ बालक के लालन-पालन की सभी सुविधाएँ थीं । हरिषेण ने विचारा कि 'यह सब गुरुदेव की लब्धि का प्रभाव है ।' मुनि हरिषेण कन्या का पालन करते हुए अपना ज्ञानाभ्यास भी करते हैं । इस प्रकार समय बीतता गया । ऋषिदत्ता अब अठारह वर्ष की हो गई । उसका यौवन सोलह कलाओं सहित खिला हुआ था । अतः ऋषिदत्ता की रक्षा के लिए हरिषेण ने उसे अदृश्यकरण की विद्या सिखायी । इस विद्या के प्रयोग से वह तो सबको देख सके, पर उसे कोई न देख सके । ऋषिदत्ता बाहर जाये तो भय न रहे । अठारह वर्ष की राजकन्या ऋषिदत्ता स्वर्गलोक की अप्सरा के समान शोभायमान है । वे आश्रम में रहते हैं । अब आश्रम में कौन आयेगा और वहाँ क्या कुछ घटेगा, आदि भाव अवसर पर कहेंगे ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक - ५०

प्र. [illegible] १०, [illegible] | दिनांक : [illegible]

आत्म-धन पहचानो

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शास्त्रकार भगवान जगत के जीवों के आत्म उद्धार के लिए उनसे कहते हैं कि "हे आत्माओं ! एक बार आत्मा पर श्रद्धा करो ।" आत्मा ही परमात्मा है । आत्मा परमात्मा बनने वाला है । अशुद्ध स्वर्ण और शुद्ध स्वर्ण में जितना अंतर है उतना ही अंतर आत्मा और परमात्मा में है । अशुद्ध स्वर्ण में मिट्टी आदि मिली होती है, पर अग्नि में तपाने से वह शुद्ध हो जाती है । इसी तरह आत्मा भी कर्ममल के कारण अशुद्ध बना हुआ है । उसे प्रार्थना, पश्चात्ताप, तप, व्रत, नियम आदि प्रकार की अग्नि में तपाने से वह शुद्ध बनकर आत्मा से परमात्मा बन सकता है । हम जैसे विचार में होते हैं, उसी प्रकार के परमाणु खिंचकर हमारे पास आते हैं । हँसते हों तब हँसनेवाले और रोते हों तब रोनेवाले परमाणु अपनी ओर खिंचते हैं । इसी तरह प्रार्थना करने से भक्ति के परमाणु अपनी तरफ खिंचते हैं । प्रभु के स्वरूप का ध्यान करने से निरंजन निराकार स्वरूप अपनी समक्ष उपस्थित हो जाता है और वैसे स्वरूप प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करने के विचार मन में उठते हैं ।

जगत में बड़ी-बड़ी योजनाएँ तैयार होने के पहले विचार रूप में होती हैं । सर्वप्रथम योजना विचार में आती है और उसका नक्शा तैयार होता है । तत्पश्चात् वह साकार स्वरूप ग्रहण करती है । इसी प्रकार प्रार्थना को भी समझिए । प्रार्थना में भक्त प्रभु के स्वरूप का विचार करता है । अपने को कैसा स्वरूप धारण करना है उसका सादृश्य चित्र प्रार्थना से उभरता है । उस चित्र के अनुसार ही स्वरूप प्राप्त करने की शक्ति का उपयोग किया जाये तो भक्त, शीघ्र या विलंब से, परमात्म स्वरूप प्राप्त कर सकता है ।

आपके समक्ष हम जो आगममय वाणी प्रदर्शित कर रहे हैं वह छद्मस्थ की वाणी नहीं है बल्कि सर्वज्ञ भगवंत द्वारा प्ररूपित सिद्धान्त है । इसलिए इस मार्ग में जरा भी अश्रद्धा के लिए स्थान नहीं हो सकता । श्रद्धा तो मनुष्य की जीवन डोर है । श्रद्धा बिना मनुष्य जी नहीं सकता । यदि जीवन में श्रद्धा न हो तो आदमी

हतोत्साह हो जायेगा । हममें श्रद्धा तो है । शास्त्र सुनकर हमें इतना ही करना है कि मृत अवस्था में पड़ी श्रद्धा को सजीवन करना है । पाश्चात्य देशों की संस्कृति भोगप्रधान है तब भी धर्म के प्रति उनका रूझान थोड़ा-थोड़ा दिखाई पड़ता है । रविवार को ईसाइयों के गिरजाघरों में भीड़ भरी होती है, फिर भी इतनी शांति होती है कि एक सुई के गिरने की आवाज भी सुनी जा सकती है । शांतभाव से, अनुशासनबद्ध सभी प्रार्थना करते हुए दिखाई देंगे । ऐसा कोई नियम आपका है क्या ? हर रविवार को, अरे इतना न हो सके तो महीने में दो दिन, अरे, भाई एक दिन भी उपाश्रय में निश्चित समय एकत्रित होने और धर्मक्रिया करने का कोई कार्यक्रम है भला ? ऐसा कोई निश्चय किया है कि हर रविवार को व्याख्यान में जाना तथा वीतराग वाणी का पान करना है ?

आज अधिकांशतः जड़प्रवृत्ति की ओर सरकते जा रहे हैं । आत्मा के शृंगार की बातें भुला दी गई हैं । तथा शरीर के पोषण और शोभा-सज्जा की बातों का वेग बढ़ गया है । आज के आदमी को धर्म भक्त होना नहीं रुचता । देह-भक्त बनने की ओर ही उसका झुकाव अधिक दिखाई देता है । स्वार्थ का पोषण करना, देह को भोग-उपभोग जुटाना और कुटुंबीजनों को मौज-मजा करना - आज के मानव का कार्यक्षेत्र यही है । इसीमें उसे अपने कर्त्तव्य की पूर्णाहुति नजर आती है । दो-चार परिचित, स्नेही-जन मिलेंगे तो एक-दूसरे से क्या पूछेंगे ? 'तबियत कैसी है ? व्यापार-धंधा कैसा चल रहा है ? सब ठीक है ना ?' बस इसी प्रकार की पूछ-ताछ करेंगे । 'आत्मा की उन्नति कितनी हुई ? आत्म-विकास की रफ्तार कैसी है ? व्रत-नियम कौन-से लिए ?' इस प्रकार के प्रश्न कोई नहीं पूछेगा । यही प्रमाणित करता है कि जीव की धर्म के प्रति जैसी श्रद्धा होनी चाहिए उस प्रमाण में जागृति नहीं हुई है ।

बंधुओं ! भगवान कहते हैं कि "हे आत्मा ! तू अनंत संपत्ति का मालिक है ।" कौन-सी संपत्ति ? आपने जिसे संपत्ति मान लिया है वह नहीं, बल्कि आध्यात्मिक संपत्ति । तेरे पास अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन आदि गुणों का खजाना भरा पड़ा है फिर भी भिखारी की भाँति जहाँ-तहाँ माँगता फिरता है, तेरे खानदान के लिए यह कलंक है । जिसके पास लाखों की संपत्ति हो, पेढी तेजी से चलती हो, सात मंजिल की हवेली हो, वह हाथ में रामपात्र लेकर भिक्षा माँगने जाए, क्या यह संभव है ? (श्रोताओं में से आवाज : 'असंभव है ।') इसी तरह जिसके पास आध्यात्मिक संपत्ति का खजाना भरा हो, वह भौतिक सुख की भीख माँगने जायेगा क्या ?

नहीं जायेगा। परन्तु अज्ञानी जीवों ने भौतिक सुख में, विषयों में, पैसे में विश्वास जमा लिया है। विषयों के प्रति रुचि रखी है। इन्द्रियजन्य सुख ही मेरा सबकुछ है ऐसी उल्टी मान्यता से चिपके बैठे हैं। पैसा बिना नहीं चलता। स्त्री बिना संसार नहीं चलता। इन सब से मेरा जीवन है - यही सोच अनादिकाल से बना रखी है। मैं अनंत शक्ति का स्वामी और मेरी यह दशा ? ऐसे जीवों से भगवान कहते हैं कि "हे आत्मा ! भौतिक संपत्ति से तेरी कोई बड़ाई नहीं है।" अनादिकाल से परवस्तु में तूने अपनी बड़ाई मानी है, परन्तु परपदार्थ की महत्ता बड़ाई का कारण नहीं हो सकती। तेरी बड़ाई तो तुझसे है। स्वरूप का भान भूलकर, ज्ञानी से सत्य समझे बिना; अपनी समृद्धि से परिचित हुए बिना बाहर के सुख पाने का प्रयत्न कर रहा है। ऐसे जीव मानते हैं कि पैसा हो तो जगत में आदर मिलता है। पैसा बिना मेरी कोई महत्ता नहीं है। मेरी बड़ाई पैसे के अधीन है। पैसा है तो सबकुछ है, नहीं तो कुछ भी नहीं। पैसे से बँगला बन सकता है। वाह-वाह बोला जाता है, मान-प्रतिष्ठा बढ़ती है, परिवार में बड़ा कहलाते हैं, संघ-समाज में बड़ा माना जाता हूँ। इस प्रकार धन-प्रतिष्ठा आदि में बड़ाई मानते हैं। बाहर की बड़ाई को माना है, इसलिए अंदर का भान भूल गया है। चिंतामणि को चिंतामणि नहीं समझा। इस आत्मा रूपी चिंतामणि में इतना अकूत धन समाया हुआ है जो सात पीढ़ियों तक भी समाप्त न हो। इसकी ओर ध्यान न देकर वर्तमान दशा देखते हैं, इसीलिए उसका भिखारीपन भी नहीं मिटता।

ज्ञानी कहते हैं कि 'तू पाप का धंधा करे, डाकू का काम करे, अनीति में अपनी बुद्धि की चालाकी दिखाकर अपनी बड़ाई मानता है, पर यह कोई बड़ाई नहीं है। तेरी यह बड़ाई तुझे मार खिलायेगी।' जीव ने अनादिकाल से उल्टी समझ नहीं छोड़ी है, परन्तु ऐसा वीतराग शासन मिलना महादुर्लभ है *'नहत्थ एरिसं वुत्तं, जं लोए परम दुच्चरं।'* वीतराग शासन के समान अन्य कोई शासन नहीं, जो इस लोक में मिलना दुर्लभ हो। वीतराग शासन में आकर भी यदि आप सही नहीं समझें तो आप चाहे साधू वेश में हों या श्रावक वेश में - वेश आपको तार नहीं सकता। परन्तु अंदर का अध्यवसाय, व्यापार ही आपके ऊर्ध्वगमन या पतन का कारण है। ज्ञानी पुरुषों ने महान करुणा करके तत्त्वज्ञान का प्याला भरकर हमें पिलाया है। पर अज्ञानी जीव पीने से इन्कार करता है। अरे भाई ! एक बार मुँह से लगाकर तो देखो कि इसमें खूबी क्या है ? इसे पीते ही आपका मिथ्यात्व का रोग दूर हो जायेगा। लेकिन आपको विश्वास नहीं। अंत में थककर ज्ञानी

वह कटोरा जमीन पर रखते हैं और कहते हैं, 'जब तेरी भावना हो; तृषा जगे तब पीने आना ।' वीतराग भगवान तो हमारे श्रेय के लिए आमंत्रण देते हैं और संसारी जीवों को कहते हैं कि "परिग्रह के प्रति आसक्ति घटाओ ।" धन-धन करते रहते हो पर यह काला धन आपको काली गति दिलवायेगा । यदि जीव की आसक्ति नहीं छूटी हो, ममता न घटी हो तो उसे जितना भी धन मिले उसे संतोष नहीं होगा । तृष्णा की आग उसे जलाती रहेगी । आपको एक दृष्टांत देकर बताती हूँ ।

सेठ और मुनिम का प्रसंग : अमरावती नगरी में अमरचंद नामक सेठ रहते थे । लक्ष्मीदेवी की उनपर असीम कृपा थी । इतना अधिक धन था उनके पास, मानो दूसरा कुबेर ही अवतरित हो गया हो । सेठ की उम्र होने लगी, बुढ़ापे ने घेरा डालना शुरू किया । कवि ने एक गीत में, बुढ़ापे का चित्र खींचा है -

"केश कहे में कलर बदल्यो, नयनो कहे नीर खोयुं,
कान कहे मारी कीमत थई अरधी, दुःखड़ा केटला वेठुं,
घड़पण रोवा बेठुं रे, घडपण रोवा बेठुं ।"

सिर के काले बाल सफेद हुए, नैनों का तेज घट गया, कान से सुनना आधा हो गया- ऐसी वृद्ध अवस्था आई । तब एक दिन सेठ ने अपने मुनीम को बुलाकर कहा, "मुनीमजी ! अब मेरी जिंदगी का कोई भरोसा नहीं । व्यापार-धंधे में मैंने बहुत कमायी की और साहस करके सिद्धि भी प्राप्त की है । परन्तु कुल मिलाकर मेरी मिल्कियत कितनी है - इसका कुछ अंदाजा नहीं हो रहा है । मेरे पास कुल माल-मिल्कियत कितनी है, यह ज्ञात हो जाता तो मन में संतोष होता ।" मुनीमजी बोले, "बिल्कुल सही कह रहे हैं । आपको हिसाब तो रखना ही चाहिए । एक सप्ताह में सारा हिसाब देखकर आपको सही आंकड़ा मैं बता दूँगा ।" मुनीमजी ने दूसरे ही दिन पेढ़ी में जाकर अलग-अलग गुमास्ताओं को अलग-अलग खाते सौंपकर हिसाब करने बैठा दिया । उस समय आज के जैसी नोट नहीं थी, सिक्का वाला रुपया होता था । छोटे-बड़े खातों (चोपड़ों) के पन्ने पलटते सबके हाथ दुःखने लगे । हिसाब गिनने में अँगुलियाँ घिसने लगीं और पैसे गिनने में कमर दुःखने लगी । एक हफ्ते में हिसाब तैयार हो गया और मुनीमजी ने चपलता से जोड़-बाकी करके पूरा हिसाब तैयार कर लिया । रात्रि के समय मुनीमजी हिसाब लेकर हवेली पहुँचे । सेठ तो प्रतीक्षा में बैठे ही थे । मुनीम को देखते ही पूछते हैं, "मुनीमजी ! कितना धन है ?" मुनीम ने कहा, "सेठजी ! बोलने से सिर चकरा जाये इतनी बड़ी रकम है । सेठ जी ! बिना कुछ कमाई

किये, आपकी सत्तर पीढ़ी बैठकर खाये तो भी खत्म न हो इतना अधिक द्रव्य आपके पास है।"

इतना कहकर मुनीमजी कुछ देर बैठकर चले गये। लेकिन यह क्या ? सेठ की आँखों में आँसू किसलिए ? मानो दुःख का पहाड़ टूट पड़ा हो, ऐसे फूट-फूटकर सेठ इस उम्र में रो रहे हैं। सेठानी, बच्चे, नौकर-चाकर सब क्या हुआ ? क्या हुआ ? कहते सेठ के दीवानखाने में दौड़े आये। सोचने लगे, 'सेठ के इस तरह रोने का कारण कहीं धंधे में कोई विशेष हानि तो नहीं ? कोई सौदा कैंसिल तो नहीं हो गया ? किसी माल गोदाम में आग लगी या माल से भरा जहाज डूब गया ?' सब विविध तर्क-वितर्क में डूबे रहे, परन्तु उनसे पूछने की हिम्मत कौन करे ? मुनीमजी के जाने के बाद ही यह हालत हुई है। तो सेठानी कहती है कि "मुनीमजी को बुलवाओ।" मुनीम के आने पर उनसे बोली, "मुनीमजी। आपके जाने के बाद न जाने क्या हुआ, सेठजी कुछ बोलते नहीं, बस रोये जा रहे हैं।" मुनीम ने सेठजी के पास जाकर नम्रता से पूछा, "सेठजी ! बहुत खुशी की बात थी, इससे आपका हृदय नाच उठना चाहिए था। आपकी आँखों में आँसू किसलिए ? एक घंटा पहले तो मैं आपको हिसाब बताकर गया था, उसके बाद कुछ हुआ है क्या ?" सेठ बोले, "आपने हिसाब बताया उसीसे मेरा हृदय टूट गया है।" मुनीम ने कहा, "सत्तर पीढ़ी के जीवन-यापन जितना धन आपके पास है, फिर भला दुःख की क्या बात है ?" "मुनीमजी ! सत्तर पीढ़ी तो चला लेगी पर इकहत्तरवीं पीढ़ी का क्या होगा ? वे तो भूखे मर जायेंगे ना।" लोभी मनुष्य की तृष्णा तो देखिए। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के नववें अध्ययन में इन्द्र ने आकर नमिराजर्षि से कहा, "आपको दीक्षा लेनी है तो खुशी से लीजिए, परन्तु अपने पुत्र-परिवार के लिए धन का भंडार भरकर जाइए।" तब नमिराजर्षि ने क्या कहा -

"सुवण्ण रुप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलास समा असंखया।
नरस्स लुध्धस्स न तेहिं किंचि, इच्छा हु आगास समा अणंतया॥"

- उत्त. सू. अ.-९, गा.-४८

कैलास पर्वत जितना ऊँचा, असंख्याता, सोना-चाँदी का ढेर कर दिया जाये, तब भी लोभी मनुष्य की इच्छा पूरी नहीं होती, क्योंकि इच्छा आकाश जितनी अनंत हैं।

सेठ ने कहा, 'मेरी इकहत्तरवीं पीढ़ी क्या खायेगी ?" सुनकर सब स्तब्ध रह गये। फिर सेठ सेठानी से कहने लगे, "तू मुझे हमेशा कहती है कि मैं दूर का विचार नहीं करता, परन्तु देख मैं कितनी दूर तक की सोचता हूँ। इकहत्तरवीं पीढ़ी की

चिंता में रो रहा हूँ।" सेठानी बोलीं, "सेठ। पीढ़िओं की व्यर्थ चिंता करके दुबले क्यों हो रहे हैं ? सबकी चिंता करते हैं, पर मेरा क्या होगा यह चिंता कभी की है ? इकहत्तरवीं पीढ़ी के लिए रो रहे हैं. कभी आत्मा के लिए भी रोये हैं ?"

कोने खबर क्यारे मळे, आवो जन्म मानव तणो,
माटे प्रभु तणी भक्ति, करी लो समझीने अहीं।

यह मानव जन्म दोबारा कब मिलेगा, इसका पता नहीं है। आप इकहत्तरवीं पीढ़ी के लिए रो रहे हैं और हम आपके लिए रो रहे हैं कि आपका क्या होगा ? अतः धन के प्रति मूर्छा भाव कम कीजिए। हर कोई अपना-अपना भाग्य लेकर आता है। उनके भाग्य में होगा तो कहीं से भी मिलेगा और भाग्य में न होगा तो आपका संग्रह किया हुआ धन तक किसी न किसी रास्ते से चला जायेगा। धन के जाने के रास्ते बहुत हैं। आप एक घर तो ऐसा बताइए जहाँ इकहत्तर पीढ़ी तक धन चला आ रहा हो। इसलिए ये निरर्थक विचार छोड़कर आत्मा का कुछ कल्याण कर लीजिए। हमें तो यही समझना है कि मनुष्य के पेट की भूख बहुत अल्प होती है- आधा सेर अनाज से पेट का गढ़ा भर जाता है, परन्तु मन की भूख इतनी विशाल है जो कभी भी नहीं बुझती।

इच्छा रूपी गड्ढा इतना विचित्र है कि उसे जितना ही सांसारिक संपत्ति से भरते हैं, भरने के बदले वह उतना ही गहरा होता जाता है। जैसे लाखों नदियों का पानी समुद्र में जाता है फिर भी समुद्र तृप्त नहीं होता, लाखों मन लकड़ी डालने पर भी अग्नि को तृप्ति नहीं होती, वैसे ही एक मनुष्य को कदाचित तीनों भुवन के तमाम दुनियावी पदार्थ मिल जाएँ फिर भी इच्छा का समुद्र तृप्त नहीं होता। वह तो बढ़ता ही जाता है। जो प्राप्त हुआ है उसमें संतोषवृत्ति रखने वाला आत्मा वास्तविक सुख का भोक्ता बन सकता है। संतोषी जीव को जो सुख है, वह तीनों भुवन की बाह्य संपत्ति प्राप्त करनेवाले असंतोषी को नहीं। क्योंकि संतोष जीवन का अंतरधन हैं। यह बात जिस दिन जीव को समझ में आ जायेगा वह बाह्य सुख के पीछे भागना कम करके अंदर के स्वाधीन सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होगा। सुख किसी बाह्य पदार्थ में नहीं है। सुख का अनंत सागर तो मात्र एक आत्मा है।

सेठ को सेठानी ने बहुत समझाया पर वे न समझे। सारी जिंदगी धन प्राप्ति में व्यतीत किया, एक दिन भी प्रभु का नाम नहीं लिया।

"नाम जेओए लीधुं नहोतुं जीवनमां रामनुं
एमने ऊँचकी जनारा, राम कहेता जाय छे।"

जिसने जीतेजी कभी महावीर या राम का नाम नहीं लिया, उन्हें ले जाने वाले उनके पीछे राम बोलते चलते हैं। इससे जाने वाले को कोई लाभ नहीं होगा। इसलिए संपत्ति लूटे जाने के भय से अधिक भय आपको अपनी आत्मा के लुटने का होना चाहिए।

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री उपर सर्प बनी : नागेश्री सातवें नरक की स्थिति पूर्ण करके मत्स्य पर्याय में जन्मी। वहाँ फिर शस्त्रों से विंधकर दाह की पीड़ा से मरी और दूसरी बार सातवीं नरक में उत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम की स्थिति में उत्पन्न हुई। तैंतीस सागरोपम वर्ष यानी तीन सौ तीस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम वर्ष। एक पल्योपम वर्ष का माप मालूम है ? चार गाउ का लंबा, चौड़ा और गहरा कुँआ। उसमें युगलिया के अति बारीक बाल के असंख्य टुकड़े करके खूब ठांस-ठांस कर उस कूएँ को भरा जाए। ऐसा ठांस कर भरना है कि उस पर से चक्रवर्ती की सेना चली जाये, तब भी एक बाल तक न किसके। सौ-सौ वर्ष के बाद उसमें से एक-एक टुकड़ा निकाला जाए। उदाहरण स्वरूप १९०० के साल में एक टुकड़ा निकाला हो तो २००० के साल में दूसरा टुकड़ा। इस प्रकार करते-करते जब कुँआ बिल्कुल खाली हो जाए, उसमें जितने वर्ष लगे उतने वर्षों का एक पल्योपम काल होता है। यह माप एक पल्योपम का है, ऐसा तीन सौ तीस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम नागेश्री ने दुःख भोगा। इसीके समान स्थिति अनुत्तर विमान की है, परन्तु वहाँ देव सुख भोगते हैं। अनुत्तर विमान के देवों के आयुष्य का कितना विशाल काल ! इतने विशाल काल तक का अनुपम अथाह सुख, परन्तु अंत में वह भी समाप्त होगा। इसके समक्ष अपना बिंदु जैसा क्षुद्र सुख का काल किस गिनती में आयेगा ? क्या उसी पर निश्चिंत होकर बैठा जा सकता है ! इसे बहुत बड़ा और कायमी सुख मानकर अभिमान करना उचित है ? ज्ञानी कहते हैं कि 'संसार की अनित्यता तो देखिए। ऊँचा दैवी सुख और दिव्यकाल भी अंत होना है।' तो क्या सिर्फ सुख और आयुष्य ही अनित्य है ? नहीं। जिसके साथ बालपन, यौवन का खेल खेला, काम के दौरान जिस सेठ की प्रशंसा के गीत गाये, स्नेही-संबंधी से प्रेम-भरी बातें की और उन्हें सदा का स्नेही मानकर निश्चिंत होकर बैठ गया, वे सभी एक दिन उठकर चले गये। अरे ! अपनी आँखों से काया को भस्म होते देखा फिर भी क्या मन में विचार आया कि मैं भी अचानक चला जाऊँगा, मेरी काया भी राख हो जायेगी। (श्रोताओं में से आवाज : 'नहीं।')

बंधुओं ! हमें तो यह समझना है कि सातवीं नरक और अनुत्तर विमान की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम की है। परन्तु नरक में जीव महान दुःख भोगता है। नागेश्री

सातवीं नरक से निकल कर तीसरी बार मत्स्य पर्याय में जन्मी। वहाँ शस्त्र से विंधकर, दाह पीड़ा से मरी और छट्ठी नरक में बाईस सागरोपम की स्थिति में उत्पन्न हुई। देखिए एक भी भव में उसे सुख पाने की गति नहीं मिली, सिर्फ दुःख, दुःख बस दुःख भोग रही है। छट्ठी नरक से निकलकर उरपर सर्प बनी। वहाँ से कहाँ जायेगी अपने कर्म का विपाक कैसे भोगेगी आदि भाव अवसर पर कहा जायेगा।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

कनकरथ की तापस से मुलाकात : *ऋषिदत्ता अठारह वर्ष की हो गई है। उम्र* के साथ उसका सौंदर्य भी खिल उठा है। कोई वनचर मनुष्य उसे देखकर कोई उपद्रव न करे, इसलिए उसके पिता ने उसे अदृश्यकरण विद्या सिखायी है। जिससे अन्य किसीके देखे जाने पर, विद्या के बल से वह अदृश्य हो जाए। पहले बात चल रही थी कि कनकरथ कुमार पिता के आग्रह से रुक्मणी राजकन्या से परिणय करने जा रहा था। रास्ते में जंगल में एक सुंदर कन्या उसे दिखी और तुरंत अदृश्य हो गई। वहीं पास में आश्रम दिखा। स्नानादि के पश्चात् एक वृद्ध तापस और उनके पीछे उसी कन्या को आश्रम की ओर जाते देखा। कनकरथ कुमार ने तापस से पूछा, "आप कौन हैं? तथा इस जंगल में यह कन्या कौन है?" तब तापस हरिषेण राजा का प्रसंग कहने लगा। वहाँ तक पहुँचकर तापस राजपुत्र कनकरथ से कहता है कि "हे भाग्यवान। मैं ही वह हरिषेण तापस हूँ और ऋषिदत्ता मेरी कन्या है। तुम्हारे आदमियों को और तुम्हें दिखाई देने के बाद वह अदृश्य हो गई थी विद्या के प्रताप से। अनजान लोगों से उसके शील पर कोई आपत्ति का प्रसंग न आये, इसलिए यह विद्या उसे सिखायी है।"

कनकरथ कुमार तापस की सारी बातें सुनकर दिग्मूढ़ हो गया और बोला, "धन्य है आपको! धन्य है आपके चारित्र को। इतने सुख के संयोगों में भी कितना ज्वलंत वैराग्य! आपने तो त्याग किया ही पर कम उम्र की रानी प्रीतिमती ने भी साथ में त्याग किया, छोटे बालक का मोह भी न रखा। कितना उत्कृष्ट वैराग्य! हे प्रभु! हमें वैराग्य क्यों नहीं आता?" महान तापस कहते हैं, "हे महानु-भाव! आपको इस वैराग्य का चरित्र सुनना रुचिकर लगा, यही आपकी वैराग्यदशा बताता है। वैराग्य का यह प्रसंग सुनते-सुनते आपको कहीं अयोग्य लगा भला, कि ऐसा कैसे मान सकते हैं? ऐसा कैसे किया? नहीं ना। उल्टे भान हुआ, आनन्द हुआ। यह सूचित करता है कि आपको भी संसार के संयोग-राग करने जैसे नहीं लगते हैं। अंतर में वैराग्य न हो तो वैराग्य की बातें रुचती नहीं।" कनकरथ कहते

हैं, "प्रभु ! मुझसे ऐसे दुःखद संसार के संयोग क्यों छूटते नहीं ?" तापस कहते हैं, "इसके लिए वीर्योल्लास चाहिए । वैराग्य बनाये रखने से एक दिन वह जरूर प्रकट होगा । त्यागी पुरुषों का समागम करते रहना चाहिए जिससे त्याग के लिए आवश्यक आंतरिक बल में वृद्धि होगी । यहाँ ध्यान देने की बात यह है ऋषिदत्ता सामने ही खड़ी है, राजकुमार बातचीत कर रहे हैं, पर उनका मन उसकी ओर नहीं जाता । जब मन में ही नहीं तो उसके दर्शन या उसके बारे में जानने की तो बात ही कहाँ ? कुमार की यह सात्विक प्रकृति सूचित करती है, सामने इच्छित विषय आनेपर, स्वेच्छा से त्याग वही कर सकता है जिसमें सत्व हो । सत्वहीन जीव यहाँ नही ठहरते । परस्त्री को देखने लग जाते हैं तो अपरिणीत एक सुंदरी कन्या पर कुदृष्टि करने से कैसे चूकेंगे ? तो अब कन्या के बारे में क्या सोचा है, इतना पूछे बिना रहेंगे क्या ?

चंदन को चाहे जितना घसें वह शीतलता देगा, उसे चाहे जितना जलाइए वह सुवास प्रसरित करेगा । गुलाब के फूल को कितना भी मसलिए, वह हाथ को सुगंधित करेगा । सोना को कसौटी पर घसें तो चमक दिखायेगा और अग्नि में तपाये तो और चमचमाएगा । रत्न को जितना घिसेंगे, वह तेज देगा । विचार यह करना चाहिए कि ऐसे एकेन्द्रिय फूल, रत्न, चंदन जैसे जीव भी तब गुण दिखाने का सत्त्व रखते हैं तो फिर मैं तो पंचेन्द्रिय मानव हूँ, सत्त्व के साथ न रहूँ ? जीव की बड़ाई किसमें है ? सत्वहीन बनकर कुम्हलाने में या प्रफुल्लित और उज्ज्वल रहने में ? छोटी-सी बात पर क्रोध से भड़कने में या मन शांत रखकर, क्षमा की उदारता दिखाने में ? शोभा किसमें है ? एक जरा रुपाली भिखारिन सामने आयी तो उससे आँखें लड़ाने में या सामने इन्द्राणी भी आ जाये तो सहज आँख ऊँची तक न करने में ? आत्मा का सौंदर्य और उत्तमता किसमें है ? कनकरथ का प्रयत्न सत्व जागृत रखने का है । इसलिए कन्या के सामने न देखकर, उसके बारे में न पूछकर वैराग्य और त्याग के बारे में पूछता है । ऋषि के समझाने पर कुमार की समझ में आ गया कि संसार के प्रति वैराग्य आने के बाद विशिष्ट वीर्य और सत्व को महकाया जाये तो संसार का त्याग हो सकता है । सुनकर यही मनोरथ करता है कि ऐसा सत्व, वीर्य मुझमें कब प्रकटेगा ?

कनकरथ राजकुमार को देखकर हरिषेण तापस के मन में इच्छा हुई कि ऋषिदत्ता के लिए यह राजकुमार योग्य है । अब तापस कनकरथ कुमार से किस प्रकार बातें करेंगे और आगे क्या होगा, आदि भाव अवसर पर कहे जायेंगे ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ५१

प्र. भाद्रपद शुक्ल ११, मंगलवार | दिनांक : २७-८-७४

आत्मदर्शन करो

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शासन सम्राट वीर भगवान के मुखारविंद से निःसृत शाश्वत वाणी का नाम है सिद्धान्त। सिद्धान्त और जैनदर्शन समझाने वाले सद्गुरु कहते हैं, 'भाग्यवानों ! ऐसा वीतराग शासन महान भाग्योदय होने पर ही मिलता है।' आज आत्मा कहाँ भूला है ? अनंतकाल से परिभ्रमण करते, दुःख सहते, यह अमूल्य मानव भव महान भाग्योदय से प्राप्त हुआ है। ऐसा दुर्लभ मानव भव पाकर कैसी आराधना करनी चाहिए ? नर से नारायण, भक्त से भगवान, आत्मा से परमात्मा बनने की आराधना करनी चाहिए, यह बात तो मैं आपके समक्ष बहुत बार कह चुकी हूँ। पिंजरापोल (गोशाला) के पशुओं को देखकर कभी विचार कीजिए कि ये पशु दुखियारे क्यों और मैं सुखी क्यों ? अरे ! मानव जाति में विचार कीजिए कि रोज सुबह उठकर मैं गर्म-गर्म गाँठिया और साठा खाता हूँ, तो जिसे रोटी तक नहीं मिलती उसका क्या होता होगा ? मुझे रहने के लिए आलिशान भवन और कितनों के पास झोंपड़ी भी नहीं, सोने के लिए कोई चबूतरा भी नहीं। मानव में कितनों के पैर नहीं, आँख नहीं और मैं तो देख सकता हूँ, पैर सही सलामत हैं, इसका कारण क्या है ? आपसे कोई पूछे कि 'आप कौन हैं ? कहाँ रहते हैं ?' तो आप कहेंगे कि 'मैं दशा श्रीमाली जैन बनिया, महावीर बिल्डिंग में रहता हूँ।' यह आपने किसका परिचय दिया ? बाहरी ढाँचे का, माल तो पहचाना ही नहीं। मैं कौन ? अनंत शक्ति का स्वामी आत्मा। जगत से निराला तत्त्व मुझमें भरा हुआ है। यह किसकी पहचान हुई ? माल की। आम्रफल को देखकर स्वादिष्ट आम का बखान करें, पर उसके मूल को ही भूल जाएँ तो ? मूल भले ही धूल-मिट्टी में दबा हुआ हो, पर मूल था इसीलिए आम है। ऐसे ही आपने भी पूर्व-जन्म में धर्म का बीज बोया है, जिसके फलस्वरूप इस भव में वैभव प्राप्त हुआ है। जिन्होंने गत जन्मों में शुभ कार्य नहीं किये वे अपने अशुभ कर्मों से दुःखी हैं।

आपसे कोई पूछे कि आप कौन ? मैं चैतन्य हूँ, ऐसा चमत्कारपूर्वक आवाज निकलती है ? नहीं निकलती, क्योंकि उसमें रुचि नहीं है। आत्मा मूल को भूल गया

है, इसलिए किसका गुणगान करता है ? पुद्‌गल का । शरीर को सुंदर और सुशोभित करने के लिए स्नो, पावडर लगायेंगे । परन्तु चोरे की वधाई कितनी ? एक बार चेतन की वधाई भी ले लीजिए । आप भले ही दसा, वीसा के रूप में अपनी पहचान बताते हों, परन्तु आप आत्मा हैं, जैन हैं । जैन बने विना छुटकारा नहीं है । विनय, विवेक, ज्ञानदर्शन को जीवन से जोड़ेंगे नहीं तबतक उद्धार नहीं है । पशुओं की पुकार आपको कहाँ सुननी है ? अस्पतालों में देखिए, मरीज किस प्रकार दर्द से पीड़ित हैं ? आपके पास सब अनुकूल है, किस वजह से ? पूर्वभव के शुभ कर्मों की वजह से । अनेक-अनेक दुःख सहन करने के बाद यह मानव भव मिला है । इसी भव में आत्मा से परमात्मा बना जा सकता है । परमात्मा का प्रतिनिधि सम्यक्‌दर्शनी आत्मा है । वह वैभव-विलास में आसक्त नहीं होता । चारित्र मोहनीय कर्म के कारण संसार नहीं छोड़ पाता, परन्तु संसार के पदार्थों के प्रति आसक्ति छोड़ सकता है । सम्यक्‌त्वी जीव मोहमाया में फँसता नहीं, आसक्त नहीं होता । वह बाहरी पहचान में आत्मा को भूल नहीं जाता । ऐसी गहन बातें कुछ जीवों को सुनना भी पसंद नहीं । लौहभस्म, सुवर्णभस्म शरीर की कांति के लिए होती हैं, पर किसे दी जा सकती है ? पहले जिसके मल की शुध्धि हो गई हो, उसे यह रसायन दिया जाये तो सुवर्णभस्म कंचन समान शरीर बना दे । ऐसी सुंदर भस्म भी उसे ही दी जाती है जिसके जठर की शुद्धि हुई हो । इसी प्रकार सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌दर्शन रूपी आध्यात्मिक रसायन किसे रुचिकर होगा ? जिसके जीवन में अनुकंपा, दानवृत्ति होगी उसे यह रुचेगी । परन्तु जिसके नीति-व्यवहार का ही कोई ठिकाना न हो, पिता-पुत्र, भाभी-ननद को कैसे रहना चाहिए, इसका तक भान न हो, जिसमें सहिष्णुता नहीं, समभाव नहीं, उसे सम्यक्‌दर्शन की बात पसंद नहीं आयेगी ।

बंधुओं ! अब कुछ कीजिए । आराधना करने का यह महान अवसर है । वड़ का छोटा-सा बीज सैंकड़ों को छाया प्रदान करता है, वैसे आपका छोटा-सा दान भी, नीतिपूर्वक होगा तो सैंकड़ों पाप दूर होंगे । यह छोड़ने जैसा है, यह सब पुण्याई का चमत्कार है । लक्ष्मी स्थायी - स्थिर या ध्रुव नहीं है । लेकिन आत्मा की ज्ञान रूपी लक्ष्मी तो शाश्वत है । जिसके हाथ में बत्ती हो, क्या वह गड्ढे में गिरेगा ? वैसे ही जिसे ज्ञान है वह अन्याय करेगा भला ? परोपकार करते हुए पीछे नहीं हटेगा । बहनों का सच्चा आभूषण शियल है, नायलोन के वस्त्र नहीं । आप अपनी देह का प्रदर्शन करती हैं । यह नाटक-थियेटर नहीं बल्कि वीतराग-भवन है । यहाँ आकर आत्मदर्शन करना है ।

सम्यक्त्व का स्वरूप समझाते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि 'सम्यक्‌दृष्टि जीव का आध्यात्मिक जीवन चौथे गुणस्थानक से प्रारंभ होता है । परन्तु

व्याख्यान क्रमांक ५१

प्र. भाद्रपद शुक्ल ११, मंगलवार | दिनांक : २७-८-७४

आत्मदर्शन करो

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शासन सम्राट वीर भगवान के मुखारविंद से निःसृत शाश्वत वाणी का नाम है सिद्धान्त । सिद्धान्त और जैनदर्शन समझाने वाले सद्गुरु कहते हैं, 'भाग्यवानों ! ऐसा वीतराग शासन महान भाग्योदय होने पर ही मिलता है ।' आज आत्मा कहाँ भूला है ? अनंतकाल से परिभ्रमण करते, दुःख सहते, यह अमूल्य मानव भव महान भाग्योदय से प्राप्त हुआ है । ऐसा दुर्लभ मानव भव पाकर कैसी आराधना करनी चाहिए ? नर से नारायण, भक्त से भगवान, आत्मा से परमात्मा बनने की आराधना करनी चाहिए, यह बात तो मैं आपके समक्ष बहुत बार कह चुकी हूँ । पिंजरापोल (गोशाला) के पशुओं को देखकर कभी विचार कीजिए कि ये पशु दुखियारे क्यों और मैं सुखी क्यों ? अरे ! मानव जाति में विचार कीजिए कि रोज सुबह उठकर मैं गर्म-गर्म गाँठिया और साठा खाता हूँ, तो जिसे रोटी तक नहीं मिलती उसका क्या होता होगा ? मुझे रहने के लिए आलिशान भवन और कितनों के पास झोंपड़ी भी नहीं, सोने के लिए कोई चबूतरा भी नहीं । मानव में कितनों के पैर नहीं, आँख नहीं और मैं तो देख सकता हूँ, पैर सही सलामत हैं, इसका कारण क्या है ? आपसे कोई पूछे कि 'आप कौन हैं ? कहाँ रहते हैं ?' तो आप कहेंगे कि 'मैं दशा श्रीमाली जैन बनिया, महावीर बिल्डिंग में रहता हूँ ।' यह आपने किसका परिचय दिया ? बाहरी ढाँचे का, माल तो पहचाना ही नहीं । मैं कौन ? अनंत शक्ति का स्वामी आत्मा । जगत से निराला तत्त्व मुझमें भरा हुआ है । यह किसकी पहचान हुई ? माल की । आम्रफल को देखकर स्वादिष्ट आम का बखान करें, पर उसके मूल को ही भूल जाएँ तो ? मूल भले ही धूल-मिट्टी में दबा हुआ हो, पर मूल था इसीलिए आम है । ऐसे ही आपने भी पूर्व-जन्म में धर्म का बीज बोया है, जिसके फलस्वरूप इस भव में वैभव प्राप्त हुआ है । जिन्होंने गत जन्मों में शुभ कार्य नहीं किये वे अपने अशुभ कर्मों से दुःखी हैं ।

आपसे कोई पूछे कि आप कौन ? मैं चैतन्य हूँ, ऐसा चमत्कारपूर्वक आवाज निकलती है ? नहीं निकलती, क्योंकि उसमें रुचि नहीं है । आत्मा मूल को भूल गया

है, इसलिए किसका गुणगान करता है ? पुद्‌गल का । शरीर को सुंदर और सुशोभित करने के लिए स्नो, पावडर लगायेंगे । परन्तु चोरे की बधाई कितनी ? एक बार चेतन की बधाई भी ले लीजिए । आप भले ही दसा, वीसा के रूप में अपनी पहचान बताते हों, परन्तु आप आत्मा हैं, जैन हैं । जैन बने बिना छुटकारा नहीं है । विनय, विवेक, ज्ञानदर्शन को जीवन से जोड़ेंगे नहीं तबतक उद्धार नहीं है । पशुओं की पुकार आपको कहाँ सुननी है ? अस्पतालों में देखिए, मरीज किस प्रकार दर्द से पीड़ित हैं ? आपके पास सब अनुकूल है, किस वजह से ? पूर्वभव के शुभ कर्मों की वजह से । अनेक-अनेक दुःख सहन करने के बाद यह मानव भव मिला है । इसी भव में आत्मा से परमात्मा बना जा सकता है । परमात्मा का प्रतिनिधि सम्यक्‌दर्शनी आत्मा है । वह वैभव-विलास में आसक्त नहीं होता । चारित्र मोहनीय कर्म के कारण संसार नहीं छोड़ पाता, परन्तु संसार के पदार्थों के प्रति आसक्ति छोड़ सकता है । सम्यक्त्वी जीव मोहमाया में फँसता नहीं, आसक्त नहीं होता । वह बाहरी पहचान में आत्मा को भूल नहीं जाता । ऐसी गहन बातें कुछ जीवों को सुनना भी पसंद नहीं । लौहभस्म, सुवर्णभस्म शरीर की कांति के लिए होती है, पर किसे दी जा सकती है ? पहले जिसके मल की शुध्धि हो गई हो, उसे यह रसायन दिया जाये तो सुवर्णभस्म कंचन समान शरीर बना दे । ऐसी सुंदर भस्म भी उसे ही दी जाती है जिसके जठर की शुद्धि हुई हो । इसी प्रकार सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌दर्शन रूपी आध्यात्मिक रसायन किसे रुचिकर होगा ? जिसके जीवन में अनुकंपा, दानवृत्ति होगी उसे यह रुचेगी । परन्तु जिसके नीति-व्यवहार का ही कोई ठिकाना न हो, पिता-पुत्र, भाभी-ननद को कैसे रहना चाहिए, इसका तक भान न हो, जिसमें सहिष्णुता नहीं, समभाव नहीं, उसे सम्यक्‌दर्शन की बात पसंद नहीं आयेगी ।

बंधुओं ! अब कुछ कीजिए । आराधना करने का यह महान अवसर है । बड़ का छोटा-सा बीज सैंकड़ों को छाया प्रदान करता है, वैसे आपका छोटा-सा दान भी, नीतिपूर्वक होगा तो सैंकड़ों पाप दूर होंगे । यह छोड़ने जैसा है, यह सब पुण्याई का चमत्कार है । लक्ष्मी स्थायी - स्थिर या ध्रुव नहीं है । लेकिन आत्मा की ज्ञान रूपी लक्ष्मी तो शाश्वत है । जिसके हाथ में बत्ती हो, क्या वह गढ़े में गिरेगा ? वैसे ही जिसे ज्ञान है वह अन्याय करेगा भला ? परोपकार करते हुए पीछे नहीं हटेगा । बहनों का सच्चा आभूषण शियल है, नायलोन के वस्त्र नहीं । आप अपनी देह का प्रदर्शन करती हैं । यह नाटक-थियेटर नहीं बल्कि वीतराग-भवन है । यहाँ आकर आत्मदर्शन करना है ।

सम्यक्त्व का स्वरूप समझाते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि 'सम्यक्‌दृष्टि जीव का आध्यात्मिक जीवन चौथे गुणस्थानक से प्रारंभ होता है । परन्तु

अप्रत्याख्यानावरणीयादि कषायों के उदय का सद्भाव होने के कारण आरंभ-समारंभादि पापों का त्याग नहीं कर सकता । मिथ्यात्व सबसे बड़ा पाप है । सम्यक्दृष्टि आत्मा इस पाप में भागीदार नहीं होता । सम्यक्दृष्टि जीव में अनंतानुबंधी कषाय का उदय न होने के कारण अनंतानुबंधी कषाय जन्य तीव्र परिणामों का अभाव होता है । जिससे किसी भी पाप कर्म की तीव्रतम स्थिति या अनुभाग का बँध नहीं करता । यह जीव आरंभ-समारंभ करते होने पर भी मिथ्यादृष्टि जीव से बहुत अल्प प्रमाण में कर्म का बंध करता है । आसक्ति के अभाव में पाप-रस में बहुत मंदता होती है और स्थिति में बहुत हीनता । जैसे सम्यक्दृष्टि जीव कार्य करता है, वैसे ही मिथ्यादृष्टि भी करता है, परंतु दोनों में आकाश-पाताल का अंतर है । उदाहरणस्वरूप : एक भाई को यहाँ से अहमदाबाद जाना है और पूना की गाड़ी में सवार हो जाये, और दूसरे भाई को अहमदाबाद जाना है तो अहमदाबाद की गाड़ी में बैठा है । गति तो दोनों की हो रही है, परन्तु दोनों की गतियों में बहुत फर्क है । अहमदाबाद जाने के लिए जो पूना की गाड़ी में बैठा है वह गति करते हुए भी अपने लक्ष्य से दूर-दूर होता जा रहा है और अहमदाबाद की गाड़ी में बैठने वाला गति करते हुए अपने लक्ष्य के नजदीक पहुँचता जाता है । इसी भांति सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के कार्य में आसमान-जमीन जैसा अंतर है । महाराजा भरत चक्रवर्ती हैं और ब्रह्मदत्त भी चक्रवर्ती हैं । दोनों को छः खंड प्राप्त करने के लिए क्रियाएँ तो एक-सी करनी पड़ी होगी ना ? परन्तु भरत चक्रवर्ती जैसे सम्यक्दृष्टि आत्मा का बँध मजबूत नहीं पड़ता, क्योंकि छः खंड का साम्राज्य भोगने पर भी उनमें कमल के समान निर्लेपता है और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जैसा मिथ्यादृष्टि आत्मा उसमें पूर्णतः डूब जाता है, अतः कर्म का मजबूत बँध पड़ता है ।

ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि 'इस संसार में शत्रु बहुत होंगे, पर मिथ्यात्व जैसा कोई शत्रु नहीं ।' रोग अनेक होते हैं, पर मिथ्यात्व जैसा कोई महारोग नहीं । मिथ्यात्व के कारण जीव धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म, जीव को अजीव और अजीव को जीव, साधू को कुसाधू और कुसाधू को साधू मानता है । मानव भव पाकर अधिक कुछ न भी कर सकें, कम से कम सम्यक्त्व गुण के खिलाने का प्रयत्न तो अवश्य करना चाहिए । सम्यक्त्व प्राप्त जीव यदि अविरति सम्यक्दृष्टि हो तो वह प्रत्याख्यान नहीं कर सकता, पर उसके अंतर में ये भाव होते हैं । सम्यक्त्व आ गया लेकिन अभी अविरति काल उपस्थित है । मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग कर्मबंध के हेतु कहे गये हैं । सम्यक्दृष्टि आ जाने से ही सब पूर्ण नहीं हो जाता । उसे अविरति (अव्रत) खटकना चाहिए । सम्यक्त्वी जीवों को

अविरति खटकती है। यदि नियाणा बाँधकर न आये हों तो अविरति को निकाल कर ही दम लेते हैं। अविरति न जाये तबतक संसार उपस्थित है - यही समझना चाहिए। सम्यक्त्व आने के बाद भी अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग सब जबतक नहीं जायेंगे, तबतक जीव तेरहवें गुणस्थान में नहीं पहुँच सकेगा। जो सम्यक्त्वी हैं लेकिन नियाणा करके आये हैं -ऐसे वासुदेव अविरति को छोड़ नहीं सकते। अविरति खटकती है, परन्तु छोड़ नहीं सकते। सम्यक्त्व आया यानी चौथा गुणस्थानक आया। चौथे गुणस्थानक में आये मतलब मोक्ष की नींव डाली। सम्यक्त्व प्राप्त करने के बाद भी कुछ जीवों को अर्धपुद्गल परावर्तन काल का भ्रमण रहता है। सम्यक्त्व आने के बाद इतना काल भी खटकना चाहिए। जैसे स्कूल का विद्यार्थी पास होने पर भी प्रसन्न नहीं होता, क्योंकि उसे तो परिपूर्ण परिणाम लाना था और वह नहीं मिला। वैसे ही सम्यक्त्वी आत्मा सम्यक्त्व पाकर ही प्रसन्न नहीं हो जाता, उसे परिपूर्ण परिणाम यानी मोक्ष तक न पहुँचने पर आनन्द नहीं होता। किसी गरीब आदमी के हाथ में सत्ता आ गयी, तो फिर वह भिखारी क्यों बना रहेगा ? इसी प्रकार जिसके हाथ में सम्यक्त्व का पावर आ गया हो, जो उसे मोक्ष में पहुँचा सकता हो, तो फिर अर्धपुद्गल परावर्तन काल भी क्यों भटकना चाहिए ? जिन्हें अविरति नहीं खटकती, वैसे जीव उपाश्रय में आकर बैठेंगे भी तो सामायिक करने का मन न होगा। अविरति खटके तो संवर के घर में आये, आश्रव के घर में न रहे। 'सूयगडांग सूत्र' कहता है, "हे जीवों !

डहरा वुट्ठा य पासह गब्भत्था वि चयन्ति माणवा ।
सेणे जह वट्टयं हरे, एवं आउक्खयंमि तुट्टइ ।

- सूय. सू. अ-२ उ-१ गा-२

बालक हो, वृद्ध हो या गर्भ का जीव हो, पर वह अपने जीवन को छोड़कर मरण के शरण हो जाता है। किस प्रकार ? जैसे बाज पक्षी तीतर पर तेजी से झपट्टा मारता है, वैसे ही कालराजा भी हम पर घात लगाये बैठे हैं कि कब झपट्टा मारूँ ! काल के सामने किसीकी नहीं चलती। अतः हे चेतन ! जाग जा। छः खंड स्वामी भरत चक्रवर्ती चेत गये, उन्हें अविरति खटकी। अरिसाभुवन में स्वरूप के दर्शन करके निकले। अरे ! अरे ! मैं तो शरीर के शृंगार और शोभा में भूला रहा, जबकि आत्मा को पहचानना था। इस विचारधारा में चढ़ते हुए वहीं केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। आज जीव चेतन को भूलकर पुद्गल से खेलने में रमा हुआ है। आत्मा जब जागेगी, तब क्षण-क्षण का उपयोग रखेगा। मैं आत्मा को भूल तो नहीं जाता ना ?

पांडव और यक्ष का प्रसंग : महाभारत में जुए में हारने से पांडवों को चौदह वर्ष का वनवास मिला था। उसमें से तेरह वर्ष व्यतीत हो गये। एक वर्ष बाकी था। उस समय वन में भटकते हुए युधिष्ठिर को एक बार बहुत प्यास लगी। भीम से बोले, "भाई ! मेरे लिए पानी ले आओ।" भीम पानी की तलाश में दूर तक निकल गये। कहीं पंछी, बगुले उड़ते दिखें तो समझ जाते कि नजदीक ही कहीं जल है। परन्तु ऐसे कोई चिह्न नहीं देखे। बहुत दूर पर एक जलाशय दिखा। जैसे ही पानी लेने के लिए हाथ बढ़ाया कि अंदर से आवाज आई - "मेरे प्रश्नों का जवाब दो, फिर जल मिलेगा। यदि उत्तर दिये बिना पानी लेने की कोशिश की तो परिणाम अच्छा नहीं होगा।" भीम सोचते हैं कि 'मुझे रोकने वाला कौन है ? मेरी शक्ति, मेरे बल का अभी इसे परिचय नहीं है इसलिए मुझे डराना चाहता है ! परन्तु मैंने तो जीवन में भयभीत होना सीखा ही नहीं है। यह मेरा कर ही क्या सकता है ?' यह सोचकर पानी लेने बढ़े तो फिर वही आवाज आयी। फिर भी भीम उस आवाज को नजरअंदाज कर पानी का स्पर्श करने बढ़े कि वहीं बेहोश होकर गिर पड़े।

भीम को बहुत समय बीत गया तो धर्मराज चिंतातुर हो उठे। 'मेरा भाई अब तक क्यों नहीं आया ? उसे चाहे जितनी प्यास लगी हो, पर वह पहले पानी नहीं पीयेगा, मेरे लिए लेकर आयेगा ही। मुझे पिलाने के बाद ही पीयेगा।' अपने भाई पर इतना विश्वास ! भाई पर इतना प्रेम। फिर भी संसार छोड़कर निकल गये। फिर धर्मराज ने अर्जुन को भीम की तलाश में भेजा। ढूँढते-ढूँढते अर्जुन वहाँ पहुँचे जहाँ भीम बेहोश पड़े थे। भीम को बेहोश देख वह खिन्न हुआ। जैसे ही बावड़ी में जल के लिए हाथ बढ़ाया कि आवाज आयी, "अर्जुन ! व्यर्थ हिम्मत मत कर। मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना पानी में हाथ डालोगे तो भीम जैसी दशा तुम्हारी भी होगी।" अर्जुन के मन में मान था कि 'मैं महान धनुर्धारी, मुझे कोई क्या कर सकता है ?' यह सोचकर पानी लेने बढ़ा तो उसे भी भीम की भांति पछाड़ दिया। अर्जुन को गये भी काफी समय गुजर गया तो नकुल-सहदेव को भेजा। इन दोनों भाइयों की दशा भी उनकी जैसी हुई।

अब धर्मराज के धैर्य की सीमा समाप्त हो गयी, वे स्वयं भाइयों और जल की तलाश में निकले। चलते-चलते बावड़ी के पास पहुँचे। आवाज आई, "धर्मराज ! आप अपने भाइयों की तरह जल्दबाजी मत कीजिए। मेरे प्रश्नों के उत्तर देंगे तो आपको पानी भी मिलेगा और आपके भाइयों को पुनर्जीवन।" यह सुनकर धर्मराज ने कहा, "पूछिए, आप क्या पूछना चाहते हैं ?" यक्ष प्रश्न करता है -

"को मोदते ? किमाश्चर्य ? कः पन्थाः का च वार्तिका ।
वद मे चतुर प्रश्नान् मृता जीवन्तु बान्धवाः ।।"

"हे युधिष्ठिर ! 'सुखी कौन है ? आश्चर्य क्या है ? मार्ग कौन-सा है और वात क्या है ?' इन चार प्रश्नों का उत्तर देंगे तो मृत लगते आपके बंधु जीवित हो जायेंगे ।" धर्मराज ने कहा, "भाई ! इन प्रश्नों के जवाब का विवेचन करने बैठूँ तो अहोरात्रि बीत जायेगी । अतः सार रूप में इनका उत्तर देता हूँ - 'सुखी कौन ? बालक हो, युवा हो या वृद्ध सभी को कालराजा झड़प लेता है । जहाँ शरीर है वहाँ मृत्यु है । जो अशरीरी है, वही संपूर्ण सुखी है ।' दूसरे प्रश्न का उत्तर है कि 'सबसे बड़ा आश्चर्य तो यही है कि अपने सगे-संबंधियों, स्वजनों-प्रियजनों को मरते देखते हैं, उनका अग्निसंस्कार करते हैं, फिर भी अपने लिए निश्चिंत बैठे रहते हैं कि वह मर गया, पर मैं तो मरने वाला नहीं ।

एक अचंबो आ दुनियामां में दीठो, नाना मोटा सौ मानवोमां में दीठो
सौ माने मारे जीववानुं, मने मोत कदी नहि मळवानुं,
सौ आशा एवी राखे छे, मृत्यु तो बीजा ने मारे छे । सौ माने मारे...

मानो अमर-पट्टा लिखा लाये हैं और पाप किये जा रहे हैं । काल कब आ जायेगा, पता नहीं, तो चेत जाऊँ - यह विचार तक नहीं आता । इससे अधिक आश्चर्य दूसरा क्या हो सकता है ?'

तीसरा प्रश्न है, मार्ग कौन-सा है ? 'जिस मार्ग पर उत्तम पुरुषों ने प्रयाण किया है और जिस पर चलकर जीव मोक्ष रूपी नगर में पहुँचता है, वही सच्चा मार्ग है ।' चौथा प्रश्न है, 'बात क्या है ? महामोह से भरपूर इस संसार रूपी कड़ाही में काल क्षण-क्षण प्राणियों को पका रहा है । सूर्यरूपी अग्नि से और रात-दिन रूपी ईंधन से एक क्षण भी रुके बिना काल प्राणियों को पकाता जाता है । यही एक बड़ी बात है ।" धर्मराजा के उत्तर से यक्ष संतुष्ट हुआ । निचेतन बने भाइयों को पुनर्जीवन मिला । इन प्रश्नों का जवाब अपने जीवन में उतारने जैसा है । ये चार बोल सभी जीवों को समझना चाहिए ।

आज परम उपकारी, व्याख्यान वाचस्पति, जैन धर्म के अमूल्य रत्न, महान विभूति, बा.ब्र. पू. गुरुदेव रत्नचंद्रजी महाराज साहब की छब्बीसवीं पुण्यतिथि है । इन महान पुरुष का जीवन बहुत उज्ज्वल और रत्न की भाति प्रकाशमान है । यहाँ संक्षेप में आपके समक्ष प्रस्तुत करती हूँ ।

बा. ब. पू. गुरुदेव रत्नचंदजी का जीवन कथन

गुजरात की राजधानी अहमदाबाद, जिसके मध्य से पुण्य सलिला साबरमती नदी अपना शांत प्रवाह वहा रही है । इसके किनारे खंभात रियासत का गलियाणा नामक ग्राम है, यह शूरवीर गरासिया राजपूतों की भूमि है । जेताभाई नामक अत्यन्त सरल और पवित्र मन के राजपूत यहाँ रहते थे । जैसे पंक से पंकज उत्पन्न हुआ हो वैसे जेताभाई के यहाँ विक्रम सं. १९४२ में कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ । उनका जन्म नाम रवाभाई था, उनके दो भाई और एक बहिन थी । माता-पिता तीनों बालकों को यहाँ छोड़ स्वर्गस्थ हो गये थे । धीरे-धीरे बालक बढ़ने लगे । एक वार वटामण में खंभात संप्रदाय की पूज्य महासतीजी का उपदेश सुनकर रवाभाई वैराग्य के रंग में रंग गये । उनके पिता का धर्म स्वामिनारायण का था । इसलिए उन्हें उसी धर्म का साधू बनाने के लिए गढडा ले गये । उस समय स्वामिनारायण के आचार्य ने उनसे कहा कि "यदि आपको हमारे पंथ में ब्रह्मचारी बनना हो तो अपनी सारी माल-मिल्कियत हमारे भंडारे में अर्पित करनी होगी । तभी हमारे पंथ की दीक्षा दी जायेगी ।" रवाभाई यह सुनकर विचार में पड़ गये कि यह क्या ? जो लक्ष्मी अनर्थ को जन्म देने वाली है, उसका मोह और ममत्व तो इन साधुओं में भी भरा है । अतः यह पंथ आत्मकल्याण का नहीं हो सकता ।'

बाल रवाभाई की ललकार : रवाभाई ने उन गादीपति को उत्तर दे दिया कि "मुझे आपके पंथ में आत्मकल्याण का सच्चा मार्ग नहीं दिखाई देता ।" कितना महान आत्ममंथन ! कैसी अगाध बुद्धि ! तेरह वर्ष का बालक यह विचार करता है और कहने की हिम्मत भी रखता है । इसीसे ज्ञात होता है कि उनका भावी जीवन कितना उज्ज्वल और प्रभावशाली होगा । वे अपने गाँव लौट गये । महासतीजी का उपदेश उनके दिल-दिमाग में गूँजता रहा । बालक विचार करता है कि 'मुझे महासतीजी के पास जाना चाहिए । घर में रहना संभव नहीं है ।' महासतीजी ने उन्हें पूज्य गुरुदेव छगनलालजी महाराज सा. के पास खंभात में अध्ययन करने के लिए भेज दिया ।

रवाभाई से गुरुदेव की मुलाकात : गुरुदेव महान प्रतिभाशाली, बहुत विचक्षण और शक्तिशाली थे । बालक का ललाट देखते ही वे समझ गये कि यह कोई अमूल्य रत्न है । गुरु के सान्निध्य में रहकर किशोर रवाभाई ने पंद्रह दिन में सामायिक प्रतिक्रमण सीख लिया । एक वर्ष में बहुत अध्ययन किया और चौदह वर्ष की उम्र में दीक्षा लेने के लिए तत्पर हो गये । अपने सगे-संबंधियों को समझा-

बुझाकर विक्रम संवत् १९५६ की माघ शुक्ल पंचमी (वसंत पंचमी) के दिन खंभात में अत्यन्त उत्साहपूर्वक इस किशोर ने पूज्य श्री छगनलालजी म.सा. के पास दीक्षा अंगीकार की । रवाभाई के गुण देखकर, उनके भावी जीवन को निहारकर गुरुदेव ने उनको रत्नचंद्रजी नाम दिया ।

रत्न के समान रत्नचंद्रजी म.सा. गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर ज्ञान में आगे बढ़ते गये । जैसे-जैसे शास्त्र ज्ञान में गहरे डूबे वैसे-वैसे उनमें नम्रता और विनय के गुण उभरते गये । १९९५ के वैशाख कृष्ण दसमी को उनके गुरुदेव का स्वर्गवास हो गया । खंभात संप्रदाय की दायित्व अब रत्नचंद्रजी म.सा के हाथों में आया ।

गादीपति बने : खंभात संघ ने रत्नचंद्रजी महाराज साहब को पूज्यश्री की पदवी अर्पण की । पूज्य पदवी प्राप्त करने के बाद गुरुदेव ने संप्रदाय की महिमा और संघबल का बहुत विस्तार किया । श्री संघ तथा गच्छ की दायित्व बहुत उत्तम रीति से अदा करने लगे । ग्रामानुग्राम विचरते हुए अपने शिष्यों सहित विक्रम संवत १९९५ को वे साणंद में चातुर्मास के लिए पधारे । उनके उपदेश से दो आत्माएँ बूझीं । एक जसुबाई महासतीजी और दूसरी मैं (शारदाबाई महासतीजी) । गुरुदेव ने हमें संसार की असारता समझाई, जलते दावानल से बाहर निकाल कर आत्मकल्याण का मार्ग बताया, गुरुदेव के उपकार कभी भूले नहीं जा सकते । जैसे दरिया में आकाशदीप (दीपस्तंभ) होता है, वैसे इस सुलगते संसार के अंदर गुरुदेव हमारे दीपस्तंभ थे । **'गुरु बिना को नहि मुक्ति दाता ।'** वस्तुतः सच्चे सारथी गुरु ही है । गुरु के बिना कोई मार्ग बताने वाला नहीं ।

गुरुदेव रत्नचंद्रजी म.सा. २००० के साल में सूरत चातुर्मास के लिए पधारे । वहाँ पालीयाद निवासी त्रिकमलाल धनजीभाई के सुपुत्र श्री डुंगरशीभाई ने दीक्षा ग्रहण की और हर्षदमुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए । गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर उन्होंने भी व्याख्याता का पद प्राप्त किया । पूज्य गुरुदेव रत्नचंद्रजी महाराज साहब ने बारह चातुर्मास अहमदाबाद में किये, बारह खंभात में, दस चौमासा सूरत में, छः साणंद में और चार मुंबई में (संवत् १९६४, १९७४, १९७५, १९८१) किया । वसो में तीन, कठोर में एक, बोटाद में एक और अंतिम बारहवाँ चातुर्मास खंभात में किया था । गुरुदेव से किसीने पूछा कि "गुरुदेव ! २००४ का चातुर्मास कहाँ है ?" तो बोले, "यह अंतिम चातुर्मास खंभात में है ।" इस चातुर्मास के व्याख्यान में सकाम-अकाम मरण का अध्ययन पूज्यश्री ने लाक्षणिक शैली से समझाया था । उनके व्याख्यान के प्रभाव से संघ में अद्‌भुत उत्साह-वृद्धि हुई थी ।

बा. ब्र. पू. गुरुदेव रत्नचंदजी का जीवन कथन

गुजरात की राजधानी अहमदाबाद, जिसके मध्य से पुण्य सलिला साबरमती नदी अपना शांत प्रवाह वहा रही है । इसके किनारे खंभात रियासत का गलियाणा नामक ग्राम है, यह शूरवीर गरासिया राजपूतों की भूमि है । जेताभाई नामक अत्यन्त सरल और पवित्र मन के राजपूत यहाँ रहते थे । जैसे पंक से पंकज उत्पन्न हुआ हो वैसे जेताभाई के यहाँ विक्रम सं. १९४२ में कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ । उनका जन्म नाम रवाभाई था, उनके दो भाई और एक बहिन थी । माता-पिता तीनों बालकों को यहाँ छोड़ स्वर्गस्थ हो गये थे । धीरे-धीरे बालक बढ़ने लगे । एक वार वटामण में खंभात संप्रदाय की पूज्य महासतीजी का उपदेश सुनकर रवाभाई वैराग्य के रंग में रंग गये । उनके पिता का धर्म स्वामिनारायण का था । इसलिए उन्हें उसी धर्म का साधू बनाने के लिए गढडा ले गये । उस समय स्वामिनारायण के आचार्य ने उनसे कहा कि "यदि आपको हमारे पंथ में ब्रह्मचारी बनना हो तो अपनी सारी माल-मिल्कियत हमारे भंडारे में अर्पित करनी होगी । तभी हमारे पंथ की दीक्षा दी जायेगी ।" रवाभाई यह सुनकर विचार में पड़ गये कि यह क्या ? जो लक्ष्मी अनर्थ को जन्म देने वाली है, उसका मोह और ममत्व तो इन साधुओं में भी भरा है । अत: यह पंथ आत्मकल्याण का नहीं हो सकता ।'

बाल रवाभाई की ललकार : रवाभाई ने उन गादीपति को उत्तर दे दिया कि "मुझे आपके पंथ में आत्मकल्याण का सच्चा मार्ग नहीं दिखाई देता ।" कितना महान आत्ममंथन ! कैसी अगाध बुद्धि ! तेरह वर्ष का बालक यह विचार करता है और कहने की हिम्मत भी रखता है । इसीसे ज्ञात होता है कि उनका भावी जीवन कितना उज्ज्वल और प्रभावशाली होगा । वे अपने गाँव लौट गये । महासतीजी का उपदेश उनके दिल-दिमाग में गूँजता रहा । बालक विचार करता है कि 'मुझे महासतीजी के पास जाना चाहिए । घर में रहना संभव नहीं है ।' महासतीजी ने उन्हें पूज्य गुरुदेव छगनलालजी महाराज सा. के पास खंभात में अध्ययन करने के लिए भेज दिया ।

रवाभाई से गुरुदेव की मुलाकात : गुरुदेव महान प्रतिभाशाली, बहुत विचक्षण और शक्तिशाली थे । बालक का ललाट देखते ही वे समझ गये कि यह कोई अमूल्य रत्न है । गुरु के सान्निध्य में रहकर किशोर रवाभाई ने पंद्रह दिन में सामायिक प्रतिक्रमण सीख लिया । एक वर्ष में बहुत अध्ययन किया और चौदह वर्ष की उम्र में दीक्षा लेने के लिए तत्पर हो गये । अपने सगे-संबंधियों को समझा-

बुझाकर विक्रम संवत् १९५६ की माघ शुक्ल पंचमी (वसंत पंचमी) के दिन खंभात में अत्यन्त उत्साहपूर्वक इस किशोर ने पूज्य श्री छगनलालजी म.सा. के पास दीक्षा अंगीकार की । रवाभाई के गुण देखकर, उनके भावी जीवन को निहारकर गुरुदेव ने उनको रत्नचंद्रजी नाम दिया ।

रत्न के समान रत्नचंद्रजी म.सा. गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर ज्ञान में आगे बढ़ते गये । जैसे-जैसे शास्त्र ज्ञान में गहरे डूबे वैसे-वैसे उनमें नम्रता और विनय के गुण उभरते गये । १९९५ के वैशाख कृष्ण दसमी को उनके गुरुदेव का स्वर्गवास हो गया । खंभात संप्रदाय की दायित्व अब रत्नचंद्रजी म.सा के हाथों में आया ।

गादीपति बने : खंभात संघ ने रत्नचंद्रजी महाराज साहब को पूज्यश्री की पदवी अर्पण की । पूज्य पदवी प्राप्त करने के बाद गुरुदेव ने संप्रदाय की महिमा और संघबल का बहुत विस्तार किया । श्री संघ तथा गच्छ की दायित्व बहुत उत्तम रीति से अदा करने लगे । ग्रामानुग्राम विचरते हुए अपने शिष्यों सहित विक्रम संवत १९९५ को वे साणंद में चातुर्मास के लिए पधारे । उनके उपदेश से दो आत्माएँ बूझीं । एक जसुबाई महासतीजी और दूसरी मैं (शारदाबाई महासतीजी) । गुरुदेव ने हमें संसार की असारता समझाई, जलते दावानल से बाहर निकाल कर आत्मकल्याण का मार्ग बताया, गुरुदेव के उपकार कभी भूले नहीं जा सकते । जैसे दरिया में आकाशदीप (दीपस्तंभ) होता है, वैसे इस सुलगते संसार के अंदर गुरुदेव हमारे दीपस्तंभ थे । **'गुरु बिना को नहि मुक्ति दाता ।'** वस्तुतः सच्चे सारथी गुरु ही है । गुरु के बिना कोई मार्ग बताने वाला नहीं ।

गुरुदेव रत्नचंद्रजी म.सा. २००० के साल में सूरत चातुर्मास के लिए पधारे । वहाँ पालीयाद निवासी त्रिकमलाल धनजीभाई के सुपुत्र श्री डुंगरशीभाई ने दीक्षा ग्रहण की और हर्षदमुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए । गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर उन्होंने भी व्याख्याता का पद प्राप्त किया । पूज्य गुरुदेव रत्नचंद्रजी महाराज साहब ने बारह चातुर्मास अहमदाबाद में किये, बारह खंभात में, दस चौमासा सूरत में, छः साणंद में और चार मुंबई में (संवत् १९६४, १९७४, १९७५, १९८१) किया । वसो में तीन, कठोर में एक, बोटाद में एक और अंतिम बारहवाँ चातुर्मास खंभात में किया था । गुरुदेव से किसीने पूछा कि "गुरुदेव ! २००४ का चातुर्मास कहाँ है ?" तो बोले, "यह अंतिम चातुर्मास खंभात में है ।" इस चातुर्मास के व्याख्यान में सकाम-अकाम मरण का अध्ययन पूज्यश्री ने लाक्षणिक शैली से समझाया था । उनके व्याख्यान के प्रभाव से संघ में अद्भुत उत्साह-वृद्धि हुई थी ।

गुरुदेव का जीवन और चरित्र इतना प्रभावशाली था कि देखने वाले की आँख ठहरी रह जाती । भाद्रपद शुक्ल पंचमी के दिन सर्दी की लहर आने से गुरुदेव की तबियत अस्वस्थ हुई । धीर-धीरे सुधार होने लगा । भाद्रपद शुक्ल दसमी के दिन उनके तपस्वी शिष्य फूलचंद्रजी महाराज सा. के अड़तीस उपवास पूरे हुए तो उन्होंने गुरुदेव से विनती की कि "गुरुदेव ! मुझे साता है, तीन मिलाकर इकतालीस का प्रत्याख्यान करवाइए ।" गुरुदेव बोले, "आज मैं आपको अंतिम पारणा करवा रहा हूँ ।" गुरुजी के एक-एक शब्द ऐसे थे पर किसीका उधर ध्यान नहीं गया । उस दिन पूज्य रत्नचंद्रजी म. गोचरी के लिए पधारे, शिष्य को पारणा करवाया । संध्या के समय प्रतिक्रमण करने के पहले अपने लघुशिष्य हर्षदमुनि के सिर पर हाथ फेरते हुए बहुत सीख दी । तपस्वी महाराज से कहा कि "आज आपको मानसिक उपसर्ग आने वाला है, आप सब बहुत हिम्मत रखना ।" खंभात के झवेरी माणेकलाल भगवानदास (जिनके पुत्र सम्प्रति सायन में रहते हैं) मुंबई जाने के पहले दर्शन करने आये । उनसे कहा कि "आज मुंबई न जाइए । कल यहाँ आपका काम पड़ेगा ।" इस प्रकार संक्षेप में अपनी बहुत बातें उन्होंने कही । फिर प्रतिक्रमण आदि करके नीचे पधारे । सभी शिष्यों को समझाया । जब मुझे चातुर्मास की आज्ञा दी तो मैंने दलील दी, "गुरुदेव ! मेरी तबियत ठीक नहीं है, अभी ही उठी हूँ । इसलिए इस समय अहमदाबाद मत भेजिए ।" तब गुरुदेव ने कहा, "मैं आपको यह अंतिम बार चातुर्मास की आज्ञा दे रहा हूँ ।" परन्तु कोई समझ न पाया ।

गुरुदेव का स्वास्थ्य धीर-धीरे बिगड़ता गया । रात के बारह बजे दर्द का बादल घिरने लगा । गुरुदेव ने श्री संघ से कह दिया कि "मेरे चारित्र में जरा भी दोष नहीं लगना चाहिए ।" स्वयं तो अंतरसमाधि में स्थिर होने लगे । उनकी भावना थी कि 'हे प्रभु ! मुझे समाधिमरण-पंडितमरण प्राप्त हो । जीवन और मरण से निरपेक्ष हो, सभी जीवों से क्षमापना लेकर कर्मबँधन से मुक्त बनूँ ।' गुरुदेव ने चार ऊँगली ऊँची करके श्री संघ को इशारा से जता दिया । अंत में भाद्रपद शुक्ल एकादशी की प्रभात बेला में, चार बजे संवत् २००४ में पूज्य गुरुदेव समाधिमरण, सागारी संथारा करके इस फानी दुनिया को छोड़ स्वर्ग के पंथ में प्रयाण कर गये । पूज्य गुरुदेव की पुण्यतिथि तभी मनायी जा सकती है जब आप सब कोई सुंदर व्रत-नियम-प्रत्याख्यान स्वीकारेंगे । गुरुदेव को सच्ची श्रद्धांजलि उनके जीवन का अनुकरण ही हो सकती है । आप सब इन उत्तम आत्मा के प्रकाश को प्राप्त करने व्रत-प्रत्याख्यान कीजिए ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ५२

प्र. भाद्रपद शुक्ल १२, बुधवार | दिनांक : २८-८-७४

आत्मा ही अपना मित्र है

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंतज्ञानी महापुरुष 'आचारांग सूत्र' में कहते हैं कि 'हे सुखाभिलाषी जीवों ! तुम सुख की इच्छा का सेवन कर रहे हो, परन्तु वह सुख तो तुम्हारी आत्मा के अंदर ही है । अनंत सुख का खजाना आत्मा रूपी तिजोरी में भरा पड़ा है, फिर बाहर किसलिए भटक रहे हो ? *"पुरिसा तुममेव तुमं मित्तं किं बहिया मित्त-मिच्छसि ?"* हे आत्मा ! तू स्वयं अपना मित्र है । बाहर के मित्र की इच्छा किसलिए करता है ? बाहर कोई तेरा मित्र या शत्रु नहीं है । आत्मा अनंत शक्ति संपन्न है । आत्मा ही परम मित्र है । ज्ञानी कहते हैं कि 'हे आत्मन् ! तू जो कुछ इच्छा करता है, अनंतकाल से जो तेरा लक्ष्य बना हुआ है, जिसे पाने के लिए तू ललक रहा है, वह तुझे कोई दे नहीं सकता । वह तो तुझे अपने अंदर से ही प्राप्त होगा ।' तू जिसे ढूँढ रहा है वह स्वयं तू ही है । जिस प्रकार कस्तूरी मृग अपनी नाभि में स्थित कस्तूरी की सुगंध से आकर्षित होकर, उसे प्राप्त करने के लिए, समस्त वन में छलांग लगाता, ढूँढता है पर उसे उस सुगंध का उत्पतिस्थान नहीं मिलता । उस अज्ञानी मृग को ज्ञान नहीं है कि जिस सौरभ के लिए मैं इतनी मेहनत कर रहा हूँ, भाग-दौड़ कर रहा हूँ, वह सुगंध तो मुझमें ही है । मेरी ही सुवास से सारा वन-प्रदेश सुगंधित है । मैं उसे पाने के लिए बाहर ढूँढ रहा हूँ, तो वह कैसे प्राप्त होगा ? परन्तु वह अज्ञानी, भोला मृग अपनी आंतरिक वस्तु को बाहर तलाश कर रहा है, तो भला कैसे प्राप्त हो ? इसी प्रकार आत्मा रूपी मृग अपने सुख-स्वरूप को भूल गया है और बाहर से सुख पाने की आशा करता है । लेकिन जो आत्मा की वस्तु है वह बाहर से कैसे मिल सकती है ? आत्मा अनंत सुखमय स्वरूप को भूलकर जब बाह्य पदार्थों की शरण लेता है, तब वह वासना में फँस जाता है । तथा निज स्वरूप से दूर हो जाता है । इसीलिए ज्ञानी पुरुषों ने आत्मशक्ति का भान करवाने के लिए कहा है कि 'तू ही अपना मित्र है । तू बाहर के मित्रों की इच्छा न कर । आत्मा की अनंत शक्ति में आत्म-दर्शन कर । उसीमें तुझे अनंत शक्ति का सागर लहराता दिखेगा ।' जो सांसारिक सहायता करके उपकार करता है, वह द्रव्य मित्र अथवा बाह्य मित्र कहलाता है ।

बाह्य मित्र का उपकार पारमार्थिक नहीं हो सकता, क्योंकि उससे परम पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती । बाह्य मित्र का किया हुआ उपकार एकांतिक नहीं होता, क्योंकि वह उपकार से अपकार भी हो सकता है । वह उपकार हमेशा नहीं रहता, इसीलिए पारमार्थिक, एकांतिक और आत्यंतिक उपकार करनेवाला मित्र अपना आत्मा ही है । आत्मा ही अपना मित्र है, इससे तात्पर्य यह है कि आत्मा की शुभ परिणति मित्र का काम करती है । आत्मा की परिणति जब अशुभ हो, तो शत्रु का कार्य करती है । शुभ परिणति से शुभ कर्मों का बँधन होता है । आत्मस्वरूप के भान बिना जो अज्ञान, मिथ्यात्व और कषाय के भाव तथा विभाव उछल रहे हैं, वे शत्रु हैं । अतः इनका संग करने योग्य नहीं है ।

ज्ञानी कहते हैं कि 'तूने अपने स्वभाव की ओर दृष्टि न करके केवल ज्ञान के निधान जैसे आत्मा की उपेक्षा की । ज्ञान आत्मलक्षी न रहकर जैसे ही परलक्षी बना, पर तरफ ढला कि समझ लीजिए वहाँ संसार है । परावलंबी दृष्टि संसार है और *अन्तर्दृष्टि मोक्ष । बंधुओं ! वीतराग वाणी का आलंबन लेकर, पूर्ण श्रद्धा के साथ* आत्मस्वरूप को जानने के लिए भेद-विज्ञान की गहराई में उतरेंगे तब अनहद आनन्द का अनुभव करेंगे । वीरवाणी में वीतराग देव ने आत्मस्वरूप समझाया है । केवल ज्ञान में देखकर कहा कि तेरी आत्मा केवल ज्ञान और केवलदर्शन का निधान स्वरूप सिद्ध परमात्मा है । वीतराग के इस वचन पर जीव ने श्रद्धा की, परन्तु उनकी *आज्ञानुसार आचरण नहीं किया । उस वाणी में दृढ़ श्रद्धा रखकर* पुरुषार्थ करेंगे, तो अवश्य समझ पायेंगे कि आत्मा विकारों से भिन्न है । आत्मा तो निर्विकारी है । निर्विकल्प दशा आने पर आत्मा को लगेगा कि अहो ! वीतराग देव ने जैसा आत्मस्वरूप, छः द्रव्य, नौ तत्त्व आदि के भाव बताये हैं वे तो यथातथ्य हैं । अपने अनुभव से जानेगा, निर्णय करेगा और जगत के जीवों से कहेगा, 'हे प्राणियों ! वीतराग वचनों पर *अटल विश्वास रखिए कि आपका ज्ञान-*दर्शन आपमें ही है । अन्य कोई आपको ज्ञान-दर्शन-चारित्र प्रदान नहीं कर सकता ।' अतः शास्त्रों पर श्रद्धा रखकर, भगवान की वाणी पर विश्वास रखकर, प्रयत्न करेंगे तो रत्नत्रय अपने में ही प्राप्त कर लेंगे । अन्तर्मुखी दृष्टि करने से विकारों से छुटकारा मिलता है । अनंत शक्ति के भंडार आत्मा की ओर दृष्टि रख तो तू छूट *जायेगा । आत्मा ने आजतक अपने ज्ञान में पर की प्रसिद्धि की,* परन्तु अन्तर्मुख होकर अपनी प्रसिद्धि नहीं की । जीव तिर्यच में गया तो वहाँ मान लिया कि मैं गाय हूँ, भैंस हूँ, शरीर से एकत्व बुद्धि जोड़ ली । देवगति में भी अपने को बाहरी रूप से जाना । वहाँ जाकर क्या मान बैठा ? मुझे यहाँ से च्यवन ही नहीं करना

है। इस वर्तमान रत्न का मालिक मैं और यही मेरा मोक्ष है - यह मान लिया। वे तो अवधिज्ञान में देख सकते हैं फिर भी वर्तमान भोग में आसक्त हो जाते हैं। आत्मा परपदार्थ में तन्मय होकर स्वरूप का भान भूल जाता है। इन्द्रियजन्य भौतिक सुखों में एकाकार होकर अतीन्द्रिय सुखों के आधार आत्मा की ओर दृष्टि तक नहीं करता। देवों के आयुष्य का सागरोपम काल बिताया, पर भोग में ही रमता रहा। अवधिज्ञान से जानकर भी कि भगवान देशना दे रहे हैं; कामभोग में अनुरक्त उसके लिए समय नहीं निकालता। कितने ही पुण्यशाली समकिती देव होते हैं, जो पूर्व में उच्च संस्कार ग्रहण कर आते हैं वे देव के इस अनुकूल संयोगों में आसक्त नहीं होते। उन्हें जैसे ही ज्ञात होता है कि प्रभु अमुक स्थान में विराजते हैं, वे तुरंत दर्शन-वंदन और वाणी श्रवण करने जाते हैं। जबतक विषयों की रुचि दूर न हो और आत्मा वीतराग आज्ञा में लीन नहीं बनती तबतक निर्वाण पद नहीं पा सकती। अनादिकाल से आत्मा विषयों में रमा हुआ है। अब यदि एक बार विषयों से दूर हटकर आत्मा में लीन बने तो निर्वाण पद की पात्रता अपने में प्राप्त कर ले। फिर वह आत्मा समझता है कि संसार का किनारा आ गया, अब अवश्य मोक्ष में जायेंगे। इस प्रकार अंतर से यह वचन प्राप्त हो जाता है। वीतराग वाणी श्रवण कर, स्व स्वरूप को जानकर, आत्मा से ज्ञान-दर्शन-चारित्र प्रकट करने पर उसे निश्चिति प्राप्त हो सकती है।

ज्ञानी कहते हैं कि 'आपको सर्प से अधिक भय पाप का होना चाहिए।' सर्प यदि दंश दे तो एक भव नष्ट करेगा, परन्तु पाप तो अनेक भव बिगाड़ देता है। इसलिए पाप आत्मा के लिए अधिक अहितकर है।

'श्री ब्रह्मदत्तो नर चक्रवर्ती, मृत्वा गतः सोऽपि हि सप्तमीय ।
निर्गत्य तस्माद भव पंकमग्नः तत्रापि हेतुः किल पातकस्य ॥'

राजा हो या रंक, पाप को किसीकी शर्म नहीं होती। ब्रह्मदत्त चक्रवती छः खंड के अधिपति थे। पर भोग में पूर्णतः आसक्त थे। उनके भाई चित्तमुनि उन्हें विषयों से विरक्त करने के लिए बहुत समझाया, परन्तु वे धर्म के मार्ग पर स्थिर न रह सके। पूर्व में किये हुए नियाणा के निकाचित फल के कारण धर्म का मार्ग उन्हें बहुत कठिन लगा। इसीलिए कहावत है कि **'राजेश्वर बने नरकेश्वर'** इसी अनुसार वे सातवीं नरक में गये। वस्तुतः ये सब पाप के परिणाम हैं, इसलिए जीवों को पाप से डरना चाहिए। आज ऐसे अनेक चतुर लोग दुनिया में हैं, जो कहते हुए नहीं हिचकते कि 'भगवान ने तो सात ही नरक बताये हैं, इससे अधिक भी हो तो हमें कोई चिंता नहीं। चाहे जितना भी पाप करें, सातवीं नरक से आगे तो

जाना नहीं पड़ेगा और वहाँ तक जाने की हमारी तैयारी है ।' इस प्रकार कहने वाले जीव सिर्फ वर्तमान को देखते हैं । उन्हें धर्म या आत्मतत्व में श्रद्धा नहीं है । संसार में हैं तो पाप करना पड़ता है, परन्तु पाप से हृदय काँपना चाहिए । पाप का पश्चात्ताप होना चाहिए ।

पाप धोने के लिए क्या करेंगे ? : बंधुओं ! पाप को साफ करने, पाप की आलोचना करने के लिए भगवान ने आवश्यक सूत्र बताया है । आवश्यक सूत्र *यानी प्रतिक्रमण । सारे दिन-भर में जो पाप लगे हों उन्हें याद करके* पाप का प्राक्षालन करने के लिए प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए । जैसे एक महीने का मैला कपड़ा हो तो उस पर कितना मैल जम जाता है ? उसे धोने के लिए भी बहुत मेहनत करनी पड़ती है । जबकि एक दिन का मैला कपड़ा हो तो जल्दी साफ हो जाता है । पाप को साफ़ करने के लिए वीतराग वाणी रूपी साबुन का उपयोग करके पाप रूपी मैल को दूर कीजिए । यदि प्रतिदिन लगते पाप की आलोचना करने तथा पाप के प्राक्षालन के लिए प्रतिक्रमण न करें तो वे पाप बढ़ते-बढ़ते एक दिन कचरे के ढेर के समान हो जायेंगे । तथा आत्मा उससे इतना भारी हो जायेगा कि फिर आत्मा को पाप के भार से हल्का बनाना मुश्किल हो जायेगा । महीने-भर का मैला कपड़ा धोने में कितना श्रम लगता है ? इस जीव ने तो अनंत *भवों के पाप जमा किये हैं । फिर भी अब तक जीव जागता नहीं और अज्ञानता* के कारण विषय-सुख में आसक्त होकर पाप की पोटली बाँधता है ।

"आज लागे आ बंधन प्यारा, काल बनी जशे पापना भारा,
पापना भारे जो नैया भराशे, आशा डूबी जशे तरवानी...
तुं जाग हवे तो अज्ञानी ।"

संसारी सुख आज जीव को प्यारे लगते हैं, परन्तु कल वे ही पाप के भार बन जायेंगे । पाप के भार से यह जीवननैया भर गयी तो नौका डूब जायेगी । अतः ज्ञानी कहते हैं कि 'हे अज्ञानी ! अब तो जाग !' नरक गति और तिर्यंच गति के दुःख यदि नजरों के समक्ष रखें तो जीवन अवश्य पाप से पीछे हटे ।

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री को अनेक भव भटक-भटककर मानव भव मिला : नागेश्री ने कड़वा आहार बहरा कर साधू की घात की । इस कर्म का वह कैसा फल भोग रही है । नागेश्री छट्ठी नरक से निकलकर उपर सर्प बनी । प्रत्येक मत्स्य के और इस सर्प के भव में भी शस्त्र से विंधकर और दाह की पीड़ा से काल के गाल में गयी । यहाँ से धूमप्रभा नामक पाँचवीं नरक में उत्कृष्ट सत्रह सागर की स्थिति में उत्पन्न हुई । फिर शास्त्रकार लिखते हैं कि गोशालक के समान इसका वर्णन समझ लीजिए । इसका मतलब यह

है कि पाँचवीं नरक से निकलकर दूसरी वार उरपर सर्प बनी । वहाँ से काल करके फिर से पाँचवीं नरक में उत्कृष्ट सत्रह सागर की स्थिति में उत्पन्न हुई । वहाँ से पंकप्रभा नामक चौथी नरक में उत्कृष्ट दस सागर की स्थिति में नारकी के रूप में उत्पन्न हुई । वहाँ से निकलकर सिंह हुई । वहाँ से फिर दूसरी बार चौथी नरक में उत्कृष्ट दस सागर की स्थिति में नारकी बनी । चौथी नरक से निकलकर फिर से सिंह बनी । वहाँ से मरकर वालुकाप्रभा नामक तीसरी नरक में उत्कृष्ट सात सागर की स्थिति में उत्पन्न हुई । वहाँ से निकलकर पक्षियों के कुल में जन्मी । वहाँ से मरकर दोबारा तीसरी नरक में उत्कृष्ट स्थिति पायी । वहाँ से निकलकर फिर से पक्षियों के कुल में जन्मी । यहाँ से मरकर शर्कराप्रभा नामक दूसरी नरक में तीन सागर की उत्कृष्ट स्थिति में उत्पन्न हुई जहाँ से सरीसृप कुल में जन्मी । फिर दूसरी बार दूसरी नरक में उत्कृष्ट स्थिति पायी । वहाँ से काल करके फिर से सरीसृपों में उत्पन्न हुई । आयुष्य पूर्ण करके रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक में उत्कृष्ट एक सागर की स्थिति में जन्मी । वहाँ की भव स्थिति पूर्ण करके संज्ञी जीवों में, वहाँ से असंज्ञी जीवों में और वहाँ से दोबारा पहली नरक में एक पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति में नारकी बनी ।

शास्त्रकार ने बताया कि गोशालक की भांति रत्नप्रभा तक नागेश्री का भी वर्णन जान लीजिए । गोशालक को अंतिम समय में पश्चात्ताप हुआ कि 'अरे, अरे ! मैंने गुरु, धर्माचार्य महावीर प्रभु की कितनी अवहेलना की ?' अपने शिष्य परिवार के समक्ष अपने सारे पाप प्रकट कर दिए, एक अंश भी नहीं छिपाया । पाप का पश्चात्ताप किया और कहा कि "भगवान महावीर ही केवली हैं ।" भगवान पर श्रद्धा होने से समकित पा गया और अपने शिष्यों से कहा भी कि "कभी भी कोई गुरु की निंदा या अनादर मत करना ।" पाप का इतना प्रकाशन किया, परन्तु गुरु के पास जाकर आलोचना नहीं की । उसे यह न सूझा कि 'शिष्यों से कहूँ कि मुझे प्रभु महावीर के पास ले चलो या भगवान को यहाँ बुला दो । ताकि मैं उनके समक्ष अपने पापों की आलोचना करके प्रायश्चित्त कर लूँ । भगवान को मैंने गाली दी है, अपशब्द कहे हैं, निंदा की है, उनके दो साधुओं का घात किया है । भयंकर भूलों की भगवान से माफी माँग लूँ-' यह उन्हें न सूझा । नहीं तो गति और अच्छी होती । जिसके साथ घर्षण किया है उसके पास जाकर क्षमा माँगनी चाहिए । दूसरी बात यह भी कि यदि गोशालक भगवान के पास अपने पाप का प्रायश्चित्त करने गया होता, तो सारी दुनिया जानती कि जिन्हें गाली देता था, उसी भगवान के पास गोशालक माफी माँगने गया । इससे भगवान की महानता और सत्यता पर जनता की प्रतीति होती । इसलिए भी उसके जाने की जरूरत थी । घर में कचरा रखना कोई पसंद नहीं करता, तो फिर पाप का कचरा कैसे सहन कर लेते हैं ? आत्मा रूपी घर

में पाप का घूरा जमा लिया है, पर प्रतिक्रमण करने का मन नहीं होता। जब पाप जहर से भी भयंकर लगेगा तब प्रतिक्रमण करने का मन होगा।

नागेश्री का अधिकार बहुत समझने योग्य है। एक साधू की हत्या के पाप से वह एक-एक नरक में दो-दो बार गयी। फिर भी अब तक मानव अवतार नहीं मिला। रत्नप्रभा नरक से निकलकर संज्ञी में उत्पन्न हुई। वहाँ से खेचर पक्षी की जाति में जन्मी। वहाँ से निकलकर कठोर बादर पृथ्वीकाय में उत्पन्न हुई। उसमें अनेक लाख बार भ्रमण किया तथा पाँच स्थावरकाय में अनेक भव तक भ्रमण करती रही।

अनेक भव भटक-भटक कर अकाम निर्जरा करते नागेश्री ब्राह्मणी के जीव की प्रकृति कोमल पड़ने लगी। उसका जीव मानव भव में आने का अधिकारी बना। नदी के प्रवाह में घिसते-घिसते जैसे पत्थर गोलाकार बन जाता है वैसे ही नारकी और तिर्यच के दुःख भोग-भोगकर नागेश्री का आत्मा कोमल बन गया। आपने सुना ना ? मानव भव में एक तपस्वी मुनि की हत्या के पाप ने उसे कितना भटकाया ?

"सा णं तओ ऽणतरं उवटित्ता इहेव जंबुद्दवे दीवे भारहेवासे चंपाए नयरीए सागरदत्तस्स सत्थावाहस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि दारियत्ताए पच्चायाया।"

तत्पश्चात् नागेश्री की आत्मा इस जंबुद्वीप में भारतवर्ष क्षेत्र में विद्यमान चंपानगरी में सागरदत्त सेठ की धर्मपत्नी भद्रा की कुक्षि में पुत्री रूप में अवतरित हुई। नागेश्री की आत्मा को अब मानव भव मिला। मानव भव प्राप्त होने के चार कारण हैं। *पगइभद्दयाए* - प्रकृति की भद्रता, *पगइविणीयाए* - प्रकृति का विनीत भाव, *साणुकोसियाए* - अनुकंपा भाव, *अमच्छरियाए* - अमत्सर भाव। जीव में जब ये चार गुण आते हैं तब मनुष्य भव प्राप्त होता है। नागेश्री मानव भव पाया लेकिन पुरुष रूप न मिला, स्त्रीपन मिला। क्योंकि पुरुषपन प्रधान माना जाता है। नागेश्री के अधिकार से जीव को यह समझना है कि 'चाहे जैसा प्रसंग आये, तीनों काल में कभी भी देव-गुरु-धर्म की आशातना नहीं करनी है, निंदा नहीं करनी है।' मनुष्य जन्म को भगवान ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप, दान-शील, तप-भाव की आराधना करने का मार्ग बताया है। आप दीक्षा न ले सकें तो कम से कम इतनी योग्यता तो विकसित कीजिए कि आपका मार्ग स्वच्छ बने और अगले भव में नौ वर्ष की उम्र में दीक्षा लेने का मन करे। ज्ञानियों ने अनेक मार्ग बताये हैं, जो आपसे संभव हो वह कीजिए, लेकिन कुछ अवश्य कीजिए। किसी भी मार्ग से चलकर आत्मा को पाप से पीछे हटाने की जरूरत है। नागेश्री का जीव भटकता-भटकता

भद्रा माता की कुक्षि में पुत्री रूप में आकर उत्पन्न हुआ है। अब उसका जन्म होगा, क्या नाम रखा जायेगा आदि भाव अवसर पर।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

तापस मुनि और कनकरथ में वार्तालाप : तापस और कनकरथ कुमार में वार्तालाप चल रहा था, तब ऋषिदत्ता कुटीर के द्वार के पास बैठी थी और इस सुंदर राजकुमार को देख रही थी। उसके मन में यह भाव थे कि यदि ऐसा कोई राजकुमार मुझे स्वीकार ले तो पिताजी की चिंता दूर हो और वे निश्चिंत होकर अपनी साधना-तप में जुड़ सकेंगे। ऐसा ही एक आशाभरा विचार ऋषि के अंतर में भी जागा। उन्हें लगा कि 'यह राजकुमार ऋषिदत्ता के योग्य है, गुणवान है, संस्कारी है। परन्तु इसकी इच्छा भी तो जाननी चाहिए, पर कैसे ? तापस मुनि ने बात-बात में कहा, "वत्स! मैंने संसार का त्याग किया है, परन्तु इस कन्या का बँधन मेरा मार्ग रोक रहा है। यदि वह समझकर तापस-धर्म स्वीकार कर लेती है तब तो उत्तम है, लेकिन उसके तापस-धर्म अपनाने के चिह्न नहीं दिखते। मेरी कन्या एक राजपुत्री है, पर मैंने उसे अच्छे संस्कारों और ज्ञान से समृद्ध किया है, फिर भी उसे छोड़कर किसी अन्य स्थल में नहीं जा सकता। आज किसी कर्मसंयोग से आपके जैसे आदर्श राजपुत्र से परिचय हो गया और मन में एक बात जागी है।" कनकरथ ने कहा, "आप आज्ञा कीजिए! मुझसे आज्ञा का पालन संभव होगा तो मैं ज़रूर पालन करूँगा।" तापस बोले, "वत्स! मैं अपनी कन्या तेरे हाथों में अर्पित करना चाहता हूँ। लेकिन पहले आप ऋषिदत्ता से परिचय कर लीजिए और यदि वह आपको सुयोग्य लगे तो जिसके पास किसी प्रकार की भौतिक संपत्ति नहीं है। ऐसे तापस की कन्या का दान सहर्ष स्वीकार लीजिए।"

कनकरथ ने कहा, "महात्मन! ऋषिदत्ता को मैंने यहाँ आते समय देखा है। मैं विवाह की इच्छा के बिना, पिता की आज्ञा से रुक्मणी से विवाह करने जा रहा हूँ, जिसे मैंने देखा भी नहीं है। पिता की आज्ञा तो विवाह करने की है, चाहे कन्या रुक्मणी हो या ऋषिदत्ता। ऋषिदत्ता को देखकर मेरे मन में भी हुआ है कि यदि मुझे व्याह करना ही है तो ऋषिदत्ता के साथ करूँ। क्योंकि यह आश्रम में पली होने के कारण धर्म के संस्कारों से सजी है, इसके साथ से हमारा जीवन संसार में रहते हुए भी आदर्श बनेगा। ऋषिदत्ता को आपत्ति न हो तो मैं उसे स्वीकार कर अपना जीवन धन्य बनाने के लिए तैयार हूँ।" हरिषेण तापस ने सोचा कि 'आज मेरे मन का भार हल्का हो गया।'

ऋषिदत्ता एक आर्यकन्या है। कनकरथ ने उसकी ओर देखा कि उसके भाव क्या हैं? उसका मुख आनन्द और उत्साह से चमक रहा था, जिससे उसकी सम्मति समझ गए। अब आगे का भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ७३

प्र. भाद्रपद शुक्ल १४, शुक्रवार | दिनांक : ३०-८-७४

पाप का प्राक्षालन

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनंत उपकारी शासनपति चरम तीर्थंकर श्री महावीर प्रभु इस वसुंधरा पर विचरते-विचरते आत्मा के उत्थान के लिए बहुत कह गये हैं कि यह संसार असार है ।

संसारम्मि असारे नत्थि सुहं वाहि वेअणा पउरे ।
जाणन्तो इह जीवो न कुणइ जिणदेसिअं धम्मं ।।

आपसे पूछा जाये कि संसार कैसा है ? तो आप कहेंगे कि 'संसार खारा है,' परन्तु क्या वास्तव में आपको खारा महसूस हुआ है ? नहीं । यह तो ऊपर से कहने के लिए खारा है, हृदय में तो शक्कर जैसा मीठा लगता है । संसार खारा किसे लगता है ? घरबार, धन-वैभव, कुटुंब-कबीला त्यागकर जो संयम ग्रहण करता है उसे संसार खारा लगता है । दही को बिलोकर जैसे बहनें मक्खन निकालती हैं वैसे सार निकालना आता हो, तो इस असार संसार से आत्मा को सार मिल जाता है ।

संसार असार है, खारा है, दावानल जैसा है । संसार रूपी दावानल से बचने, इसकी भयंकरता से मुक्त होने के लिए ज्ञानी भगवंतों ने अचिंत्य मार्ग बताया है । चारित्र का अमोघ पंथ मुझे कब मिलेगा ? इसीके सतत चिंतन, मनन और परिशीलन में ओत-प्रोत रहना चाहिए । संसार से सार निकालना सीखना चाहिए । जो आत्माएँ संसार के सार निकाल आदर्श रूप बने, महान विभूतियाँ बने, वे हमारे मार्गदर्शक और प्रेरणा रूप हैं । आपके संसार के तमाम व्यवहार में, खाने-पीने में, पहनने-ओढ़ने में भी सारासार प्राप्त किया जा सकता है । सांसारिक प्रवृत्तियों में घंटों और दिनों व्यतीत किये, पर उसका सार निकाला ? 'लक्ष्मी कहाँ से लाऊँ और संग्रह करूँ ?' इसी हाय-हाय में रात-दिन लगे रहे । न भूख की चिंता न प्यास की, बस एक ही धुन लक्ष्मी के पीछे लगे रहने की । कब लखपति बनूँ । कब करोड़पति बनूँ । इसमें आत्मा का सार कहाँ है ? आपको समय की कीमत कहाँ है ? दुकान खोलने के समय में जरा फर्क पड़े तो आकुल-व्याकुल हो जाते हैं,

सिर घूम जाये और सब पर गरम होने लगते हैं। यदि आपको भाग्योदय से गाँव में संत पधारे हों तो वीतराग वाणी सुनने जाने में नौ के स्थान पर सवा नौ बज जाये, तो कितने व्याकुल होते हैं ? आप रेल्वे स्टेशन विलंब से पहुँचे तो आपके लिए गाड़ी खड़ी रहेगी ना ? नहीं, नहीं रुकेगी। भले ही आपने पहले से टिकट लेकर आरक्षण करवा लिया होगा, लेकिन व्यर्थ होगा। ठीक है ना ? पैसे भी वापस नहीं मिलेंगे, क्योंकि वहाँ समय और पैसा दोनों की कीमत है। वीतराग वाणी श्रवण करने में विलंब से पहुँचे, तो आपको पता है कि वीरवाणी की गाड़ी छूटने वाली नहीं है, अतः आप आराम से बातें करते, गप्प करते वहाँ आकर बैठ जाते हैं। कुछ सुना तो ठीक, जो नहीं सुन पाये, उसके लिए हृदय में अफसोस होता है क्या ? दूसरे दिन समय चूक न जाऊँ, इसकी चिंता करते हैं क्या ? चिंता न होने से समय प्रमाद में बीतता है।

भगवान ने चार ज्ञान के धारक गौतमस्वामी से भी कहा, *"समयं गोयम मा पमायए !"* - हे गौतम ! एक समय मात्र का प्रमाद न कर। गौतमस्वामी जैसे एक पल का प्रमाद तक न करनेवाले से भगवान महावीर प्रमाद न करने के लिए कहते हैं। तो अपने प्रमाद की क्या बात हो ? हमारे अंदर तो अमाप प्रमाद प्रवेश कर चुका है। चर्मचक्षु से तो इसकी गिनती ही नहीं हो सकती। दूसरी ओर आप समय जानने के लिए क्या रखते हैं ? लगभग सभी भाई-बहनों के हाथ में घड़ी नज़र आती है। कितने ही लोग 'टाईम टु टाईम' काम करनेवाले हैं जो अथक परिश्रम के साथ कार्य में जुटे रहते हैं। उनसे पूछिए कि जीवन में समय की कीमत क्या है ? तो कुछ यह भी कहेंगे कि कीमत समय की नहीं फैशन की है। परन्तु जब फैशन जीवन को राख बनायेगा तब समय की महत्ता समझ में आयेगी। फैशन बढ़ा, रागरंग में वृद्धि हुई, प्रमाद की सीमा न रही और मोह ने अपना घर बना लिया। ऐसी रंगीली दुनिया में, मोहनीय कर्म में डूबी आत्मा से छूटने के लिए कहें तो वह कहेगा, 'मैं क्या करूँ ?' कैसे छूटूँ ? संसार को ठोकर मारकर निकलने का विचार अमल में न आये तो कैसे छूटेंगे ? नशे का शिकार यथार्थ का भान नहीं रखता, वैसे ही मोह से ग्रस्त संसार में सारासार का भान नहीं रहता, ऊपर से धन और सत्ता की खुमारी तो इतनी भयंकर है जो अन्य जीवों का घात करने में भी न हिचके।

एक सेठ का प्रसंग : एक बार गाँव में महान संत पधारे। सेठानी सेठ से बोलीं, "आपने बहुत धन कमाया, अब एक दिन तो गुरु के दर्शन करने चलिए।" सेठानी विचार करती है कि 'मैं जिसके साथ विवाह करके आयी हूँ, जो मेरे देह

का पोषण करते हैं, उस पति की आत्मा का पोषण करने के लिए मुझे कुछ करना ही चाहिए।' पत्नी स्त्री भी है और मित्र भी है। सेठानी मित्र की भांति सेठ को बहुत समझाती है, पर बात सेठ के गले नहीं उतरती। सेठ के माता-पिता बचपन में गुजर गये थे। सेठ का नाम लक्ष्मीचंद्र, पर लक्ष्मी और उनका बारहवाँ चंद्रमा था। रिश्ते के काका ने उनका पालन-पोषण किया। मुंबई में सामान्य नौकरी ढूँढने के लिए जिसे आकाश-पाताल एक करना पड़ा वह अचानक पुण्य-प्रताप से बड़ी मिल का मालिक बन गया। बस पैसे की खुमारी चढ़ गई। धन के लोभ ने धर्म को किनारे रख दिया। लक्ष्मी का नशा आदमी से अनेक प्रकार के कुकर्म करवाता है। पापाचरण करके पीछे मुड़कर देखने की उसे फुरसत नहीं होती।

एक दिन लक्ष्मीचंद्र सेठ बहुत उदास बैठे हैं। फूट-फूटकर रो रहे हैं। सेठानी बार-बार पूछती है। लगता है सेठ को कोई तकलीफ है तो डोक्टर को बुलवाऊँ। लेकिन सेठ डॉक्टर बुलाने के लिए मना करते हुए कहते हैं कि "मुझे आत्मा का रोग मिटाने वाले डॉक्टर की जरूरत है। देह का दर्द मिटाने वाले डॉक्टर तो हर चौराहे पर मिल जाते हैं, परन्तु आत्मा का रोग मिटाने वाले सद्‌गुरु रूपी डॉक्टर सद्‌भाग्य से ही मिलते हैं। जो अपना उत्थान करते हैं तथा दूसरों का भी करवाते हैं। *'तिन्नाणं तारयाणं'* जो स्वयं तरते हैं तथा औरों को भी तिरने का मार्ग बताते हैं। ऐसे संत सच कहने में नहीं हिचकते। गुरुदेव पधारे। सेठ उनके पास खूब रो रहे हैं।

आखिर हुआ क्या है ? सेठ इतने घबराये हुए क्यों हैं ? आज आधुनिक सज्जा से युक्त नयी मोटर लेकर निकले, रास्ते में एक वृद्धा गाड़ी से टकराकर गिर पड़ी। 'सेठजी ! मेरा लाड़ला !' इससे अधिक वह कह न सकी। लोग जमा होने लगे। पर सेठ ने ड्राइवर से गाड़ी आगे बढ़ाने को कहा। गाड़ी आगे बढ़ गयी, लेकिन सेठ साथ में सब ताने भी लेते आये। तभी तीन-चार वर्ष पहले घटी घटना उनके सामने आकर खड़ी हो गई। इसी वृद्धा माँ का एकलौता पुत्र, जिसे उसने मेहनत करके पढ़ाया-लिखाया था। सेठ की मिल में नौकरी करता था। लड़का होशियार था। कोई मशीन बिगड़े तो सुधार देता था। परन्तु सेठ लोभी और क्रोधी थे। पैसे का नशा शराब के नशे से भी भयंकर होता है। किसीकी जरा भी भूल सेठ सहन नहीं करते। मिल की कंपाउण्ड में सेठ के दाखिल होते ही सारा वातावरण बदल जाता। लेकिन उस वृद्धा का बेटा निडर था, सेठ से जरा न डरता। कहता, 'मैं अपनी जवाबदारी बराबर अदा करता हूँ फिर डरना किसलिए।'

एक दिन मशीन में कुछ बिगड़ गया था इसलिए वह सुबह जल्दी आकर साफ-सफाई करने में लग गया। उस दिन सेठ भी सबसे पहले आ गये। उसे मशीन

की सफाई करते देखकर भी सेठ ने सीधे स्वीच दबा दिया और क्षणभर में ही मशीन का मोटा चक्र उस लड़के को टुकड़े-टुकड़े कर गया । कितनी निर्दयता । सेठ चींखने लगे कि 'अरे ! यह क्या हो गया ?' एक तो पाप किया और पाप को ढाँकने के लिए झूठी माया और दंभ किया । एक कर्मचारी ने विधवा माता को सही बात बतायी । माता के दुःख का कोई पार न था । सेठ ने विधवा माता को पाँच हजार देकर समझाना चाहा । पर वे न समझीं ।

विधवा माता न्यायालय तक जाने में दृढ़ रही । कोर्ट में भी गरीबों को भला कहाँ न्याय मिलता है ? सेठ ने पच्चीस हजार रुपये पर पानी फेर दिया और निर्दोष बच गये । कोर्ट ने आखिरी फैसला दिया कि 'लड़का काम करते हुए मर गया ।' कोर्ट में जीतकर भी सेठ कर्म के कोर्ट में हार गये । पंद्रह दिन के अंदर उनका युवा पुत्र दुर्घटना में गुजर गया । तब उन्हें समझ में आया कि उस माता को भी कितना दुःख हुआ होगा ! उस लड़के की माँ मोटर से टकराते हुए बोली, **"मैं आपको छोड़ देती हूँ पर कर्म आपको नहीं छोड़ेंगे ।"** ये शब्द सुनकर सेठ घबराये कि मेरे कर्म मुझे नहीं छोड़ेंगे । मेरा पाप मुझे प्रकट करना ही होगा । इसलिए पाप का प्रायश्चित्त करने गुरुदेव को बुलवाया । उनकी नजरों के सामने वही दृश्य घूम रहा था कि वह लड़का मशीन से कट रहा है । ओह ! यह पाप भोगने मुझे नरक में जाना पड़ेगा और वहाँ तो अनेक बार मुझे काटेंगे, छेदेंगे, टुकड़े करेंगे पर कोई बचाने नहीं आयेगा ।

सेठ का हार्दिक पश्चात्ताप : गुरु के साथ-साथ समस्त कुटुंब को भी बुलवाया । सबके सामने सेठ कहने लगे, "मैं नालायक हूँ, हल्का प्राणी पिशाच हूँ, मानव के प्राण लेने वाला हूँ । आप लोगों को शायद मालूम न हो कि इस विधवा माता के लाड़ले बेटे को मैंने मार डाला । कसाई खुले में पाप करता है, मैंने छिपाकर पाप किया । मैं हत्यारा हूँ । गुरुदेव ! जन्म लेकर सुकृत कभी नहीं किया । इन्हीं हाथों से एक जीव की हिंसा की और एक का जीवन बर्बाद किया है । काले कर्म करके उजला बताने का धंधा करता रहा । इन पापकर्मों के प्राक्षालन के लिए, गुरुदेव ! अपनी अंतरवेदना प्रस्तुत करता हूँ । वृद्धा माँ के शब्दों, **'मैं तुझे छोड़ देती हूँ पर तेरे कर्म तुझे नहीं छोड़ेंगे'** ने सेठ को जागृत कर दिया । सेठ की बात सुनकर लोग उसे गाली भी देने लगे । पापी अपने पाप को इस प्रकार जाहिर करे यह कोई सामान्य बात नहीं है । जगत धिक्कारे या सम्मानित करे, आज सेठ को किसीकी फिक्र नहीं है । अश्रुभीगीं आँखों से सेठ ने अपने पाप का प्राक्षालन किया । गुरुदेव ने नवकार

मंत्र सुनाकर पापों का पच्चक्खाण करवाया तथा किये हुए पापों की शुद्धि करवाई । नवकार का स्मरण करते-करते सेठ वहीं देह त्यागकर चले गये । बंधुओं ! धन और सत्ता की खुमारी ने कितना दुष्ट काम करवाया ।

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री की आत्मा बहुत दुःख भोगते-भोगते अब मानव-जन्म में पहुँचा । भद्रा सार्थवाही के गर्भ में नौ माह और साढ़े सात दिवस पूर्ण होने के बाद पुत्री का जन्म हुआ । माता-पिता को पुत्री बहुत प्यारी है । सेठ के पास संपत्ति की कमी न थी और यह पहली संतान थी । साथ ही पुत्री अति कोमलांगी है । बारह दिवस के पश्चात् माता-पिता ने **'यथा नाम तथा गुण'** कहावत के अनुरूप उसके गुणों के आधार पर नामकरण संस्कार करने का विचार किया । पुत्री हाथी के तलवों जैसी सुकोमल है, इसलिए इसका नाम सुकुमालिका रखते हैं ।

"तए णं तीसे दारियाए अम्मापियरो नामधेज्जं करेन्ति सुकुमालियत्ति ।"

उस कन्या का नाम सुकुमालिका रखा । नागेश्री की आत्मा ने बहुत दुःख भोगा अब सुख की झलक प्रारंभ हुई । सुकुमालिका की देखभाल के लिए माता-पिता ने पाँच धायमाताओं को नियुक्त किया - (१) क्षीरधात्री - दुध पिलाने वाली धाय (२) मंडनधात्री - वस्त्र, माला, अलंकार आदि पहनाने वाली धाय, (३) अंकधात्री - अपनी गोद में बैठाने वाली धाय, (४) मज्जनधात्री - स्नान करवाने वाली धाय, (५) क्रीड़नधात्री - खेल-खिलाने वाली धाय । प्राचीन समय में अठारह देशों की दासियाँ रखी जाती थीं । बालक उनके समागम में रहकर उनसे अठारह भाषाएँ सीख लेते थे । फिर भी माता-पिता समझते थे कि चाहे जितना ज्ञानकला प्राप्त हो, पर धर्मकला यदि जीवन में नहीं है तो सब व्यर्थ है । सुकुमालिका की पाँच धाय बहुत लाड़ से पालन करती हैं । धीरे-धीरे सुकुमालिका बड़ी होती है । अभी भी जो थोड़े कर्म बाकी हैं वे इस भव में किस प्रकार उदय में आयेंगे और क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

कनकरथ और ऋषिदत्ता क
कनकरथ ने उससे विवाह
भावपूर्वक नमन किया । मु.
कहा, "वत्स ! धर्म ।
युवराज' की -

• ऋषिदत्ता की सम्मति जानकर
। तापस मुनि के चरणों में
पर दाहिना हाथ रखकर
, से 'युवराज,
मेरे साथी मुझे

ढूंढते हुए यहाँ आ पहुँचे हैं । मैं उनसे मिलकर उनकी चिंता का निवारण कर दूँ ।" तापस बोले, "वत्स ! आज का दिन उत्तम है । अपने साथियों को मंगल समाचार भी दे दीजिए ।" युवराज कुटिर से बाहर निकलकर स्वर की दिशा में दौड़े । मित्रों के पास पहुँचकर बोले, "आपलोग पड़ाव में चलिए । मैं कुशलता से हूँ तथा एक संदेशा सबसे कहिए कि मेरा लग्नोत्सव इसी स्थल में गोधुलि समय में होगा । मंत्रीश्वर को यहाँ भेजिए ।" अचानक यह समाचार सुनकर आये हुए मित्र भौचक्के रह गये । उन्हें चकित देखकर कनकरथ ने कहा, "मैं सत्य कह रहा हूँ ।" फिर सारी बातें उन्हें संक्षेप में कह सुनायी और बताया कि "संसार की श्रेष्ठ नारीरत्न मुझे इस उपवन से मिल गयी है । अब कंबेरीनगरी जाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।"

मंत्री, सेनापति, सैनिक आदि कुंवर की तलाश में निराश लौटे थे । कंबेरीनगरी के पाँच आदमी, जो राह बताने साथ में थे, वे भी चिंतित थे । तभी कुमार के मित्रों ने आकर कुंवर के विवाह की सूचना दी । कुछ समय पश्चात् कनकरथ कुमार पड़ाव पर पहुँचे और मंत्री तथा सेनापति से बोले कि "उत्तमवंश की एक राजकन्या के साथ आज संध्या समय मेरा विवाह होना है, सब निश्चित हो गया है । आप तैयारी कीजिए ।"

मंत्री बोले, "इतनी उतावली किसलिए ? निर्जनप्रदेश में कन्या कहाँ से आ गयी ? कंबेरी के महाराजा को कितना दुःख होगा ?" बीच में ही कुमार बोले, "मैंने सब विचार कर लिया है । मित्रावती नगरी के राजा हरिषेण अपनी एकलौती कन्या, ऋषिदत्ता के साथ वर्षों से तापस बनकर इस प्रदेश में रहते हैं, आज उनसे परिचय हुआ और वह कन्या मेरे हृदय में बस गयी है । अतः आप संशय दूर रखकर उस उपवन में पधारिए ।" मंत्री ने कहा, "कंबेरी की राजकन्या ?" कुमार कहते हैं, "कर्म की गति की कल्पना कौन कर सकता है ? कंबेरी की राजकन्या को तो बहुत स्वीकार करनेवाले होंगे, परन्तु ऋषिदत्ता जैसी राजलक्ष्मी तो संसार में किसी विरल पुरुष को ही मिलती है ।" मंत्री समझ गये की चर्चा करने में अब कोई अर्थ नहीं है । **'राजा के मन भायी वही रानी'** मंत्री दासियों और सैनिकों के साथ भेंटवस्तु की थालियाँ सजाकर रवाना हुए । दोपहर के पहले तक राजकुमार के न मिलने से सभी हैरान-परेशान थे वहीं अब आनन्द-मंगल की तैयारी में जुट गये थे । संसार का स्वरूप ऐसा ही है । घड़ी-भर पहले जहाँ हास्य होता है वहाँ भी रुदन आ जाता है । पल-भर पहले जहाँ निराशा नाचती हो वहाँ दूसरे ही पल आशा की रंगोली चमकने लगती है ।

कंबेरी नगरी से आये और साथ में प्रवास करने वाले पाँचों व्यक्ति इस समाचार से चिंतित हो गये । जब संध्या समय कनकरथ उत्तम वस्त्रालंकारों से सज्जित, गाजे-बाजे के साथ हाथी पर सवार हो, परम उल्लास के साथ ऋषिदत्ता समान राजलक्ष्मी का पाणिग्रहण करने उपवन की ओर चला । तब वे पाँचों व्यक्ति अपने अश्वों पर सवार हो चुपचाप कंबेरीनगरी की ओर रवाना हो गये । ऋषिदत्ता को देखने के पश्चात् मंत्री आदि के मन की शंकाएँ समित हो गयीं । उन्हें भी लगा कि भाग्यवंत को ही ऐसी नारीरत्न प्राप्त हो सकती है ।

गोधूलि समय में पवित्र मंत्रोच्चार के साथ, तापस मुनि के आशीर्वाद सहित ऋषिदत्ता और कनकरथ का विवाह हो गया । ऋषिदत्ता का मन पुकार रहा था कि 'महान भाग्योदय से एक उत्तम पुरुष के चरणों में मैं अपना सर्वस्व अर्पण करने में भाग्यशाली बनी हूँ ।' इधर कनकरथ सोच रहा था कि 'अपूर्व पुण्य के योग से आज मैं संसार की श्रेष्ठ नारीरत्न को प्राप्त कर सका हूँ ।' ब्याह होने के बाद हरिषेण तापस पुत्री और दामाद को क्या सीख देंगे तथा कंबेरीनगरी में पाँचो आदमी के पहुँचने के बाद वहाँ क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ५४

प्र. भाद्रपद शुक्ल १५, शनिवार | दिनांक : ३१-८-७४

काया चलो हमारे संग

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

करुणासागर वीतराग देव ने देह के पीछे पागल बनने वालों को उपदेश दिया है कि तू जिसके पीछे वर्षों से अपने को नष्ट कर रहा है, जिसे पोषण देने के लिए नीति-अनीति का विवेक तक नहीं रखता, मानवता को भूल अधर्म का आचरण करता है, पाप का पोटला बाँधता है, जिसके लिए हीरे जैसा मानव भव गँवाता है, वह तेरा शरीर कैसा है? *"इमं सरीरं अणिच्चं ।"* यह शरीर अनित्य है । इस शरीर की प्रत्येक अवस्था, प्रतिक्षण यह चेतावनी देती है कि मेरे पीछे अंध बनकर अपने स्वरूप की भी चिंता नहीं करते और अपनी दूकान में कैसा माल है इसका विचार किये बिना दूसरों के घर में पहरा देता है । काया के पास वाणी नहीं है, पर उससे बोध लिया जा सकता है । ज्ञानी कहते हैं कि 'तेरा शरीर अनित्य है ।' ज्ञानी अनित्य का उपदेश देकर शोक करने नहीं

कहते । बल्कि तेरा आत्मा त्रिकाल ध्रुव है, आत्मा में सुख का खजाना है, उस पर ध्यान देने और वास्तविक भंडार प्राप्त करने कहते हैं ।

बंधुओं ! इस देह में क्या भरा है ? अशुचिमय पदार्थ । शरीर के अंदर जो सात धातु हैं उन्हें अलग-अलग किया जाये । एक कुंडे में रक्त, दूसरे में मांस, तीसर में अंतड़ी, चौथे में हड्डियाँ, नामं और माप लेकर जरा अच्छी तरह जाँचिए कि इसमें आपका तत्त्व क्या है ? इसमें यही माल भरा है, इसके सिवाय अन्य कुछ नहीं । जो अशुचिमय पदार्थों से उत्पन्न हुआ है, वह शुद्ध और स्वच्छ कैसे हो सकता है ! जिसका मूल कारण अशुचिमय, दुर्गंधी, अपवित्र हो उसका कार्य भी वैसा ही होता है । यह शरीर अशुचिमय और अनित्य है, इतना ही नहीं, इसके प्रति मोह जन्म, जरा, मरण के प्रचुर दुःख उत्पन्न करता है । देह की ममता बार-बार देह धारण करवाती है । पापाचरण करवाती है । इस प्रकार ज्ञानी पुरुष देह की अनित्यता दिखाकर देह का मोह छुड़वाते हैं और कहते हैं कि 'दूसरे पदार्थ देह से अत्यन्त अलग है ।' अरे ! शरीर भी तेरा नहीं तो अन्य पदार्थों स्त्री, पुत्र, भाई-भगिनी, घरबार, तिजोरी इनमें से तेरा क्या है ? अतः देह का मोह छोड़ो । देह के लिए अमूल्य समय का व्यय न करके आत्मा के लिए पुरुषार्थ करो । आत्मा का धर्म ज्ञान-दर्शन-चारित्र है, उसे प्रकट कीजिए । ममता, विकार आदि पर दृष्टि जबतक है तब-तक चैतन्य से पहचान नहीं होगी । अतः जन्म, जरा, मरण की खान रूप देह की ममता छोड़कर ध्रुव, चैतन्य तत्त्व के खजाने की पहचान निर्ग्रंथ गुरु के समागम और वीतराग वाणी के श्रवण से कर ले । लेकिन आत्मा मोह में इतना मस्त बना हुआ है कि जैसे तपते लोहे पर जल बिंदु पड़े तो तुरंत नष्ट हो जाता है वैसे ही भगवान की दिव्य वाणी कानों से टकराती हैं पर सुना-अनसुना-सा हो जाता है, क्योंकि जो मान बैठे हैं उसे छोड़ना नहीं चाहते । ज्ञानी कहते हैं कि 'जबतक गलत मान्यताओं को छोड़कर वीतराग वाणी हृदय में नहीं उतारेंगे तबतक सही समझ नहीं आयेगी ।

वीतराग भगवान ने जगत को जीवों के समझाने में कोई कमी नहीं की । आनंदघनजी कहते हैं, **"काया चलो हमारे संग"** । अवधि पूर्ण होने पर जब चेतन इस काया से जाने की तैयारी करता है, तब आत्मा काया से कहता है 'चलो हमारे संग ।' काया इन्कार करती है । अरे ! तुझे इन्कार करते हुए शर्म नहीं आती ! कोई सज्जन अपने उपकारी का उपकार भूलता नहीं । हे काया ! मैं रात-दिन तेरी सेवा में रहा । सत्तर वर्ष तक तेरा पोषण करने में कोई कोताही नहीं की और तू इन्कार कर रही है । आत्मा चाहे कुछ भी कहे क्या काया उसके साथ जायेगी ? (श्रोताओं में से जवाब : 'नहीं जायेगी') शाश्वत आत्मा तो चला जायेगा और नाशवंत काया यहीं नष्ट हो जायेगी । अतः कुछ समझिए ।

नागेश्री की आत्मा सुकुमालिका के भव में आया। सुकुमालिका की काया बहुत कोमल है - मक्खन जैसी स्निग्ध है। फिर भी एक दिन तो जाना ही है, क्योंकि शरीर नित्य नहीं अनित्य है। इसलिए इस पर राग रखने की आवश्यकता नहीं है बल्कि इसलिए देखभाल करनी है कि वह आराधना में सहायक बने। अरे! राग का संकल्प भी कर्म बंध करवाता है। बहुत राग-द्वेष, हर्ष-खेद, वासना आदि चित्त के परिणाम हैं। सावधान न रहने पर एक चटनी भी बहुत राग करवा देती है। ऐसा राग कि चटनी न हो तो सारा भोजन रुखा लगे और मात्र चटनी होने से स्वादिष्ट लगे। वस्तु का महत्त्व नहीं है, परन्तु अंदर की रागदशा सतेज है। जरा सोचिए, जिन्होंने जीवन में जरूरतें बहुत बढ़ा रखी हैं, उनके राग का संक्लेश कितना होगा? भोजन में रोटी-दाल के साथ सब्जी भी चाहिए। इतने से भी नहीं चलता आचार, चटनी, पापड़ और मिठाई का टुकड़ा भी चाहिए। जिसे इसकी लत है उसे इन एक-एक वस्तु पर कितना राग होगा? इसमें कम-ज्यादा मिलने पर कितना खेद होता होगा? जिन्हें आत्मा का भान है उन्हें मिले तो ठीक, न मिले तो ठीक। वैसा आत्मा राग-द्वेष दोनों से बच जाता है। आप खाने बैठे। थाली में केला है, पर सब मिलाकर खाया तो वस्तु का राग नहीं होता, मूर्छा सहित जीमेंगे तो हर ग्रास में राग का दोष लगेगा। आम के मौसम में, आमरस दूध की तरह गटागट थोड़े ही पिया जाता है? रोटी या पूरी का एक-एक कौर उसमें डुबाकर पूरे स्वाद से भोजन करने में एक बार के भोजन में कितनी बार राग का संक्लेश होगा? सोचिए, उत्तम मानव भव की कितनी दुर्दशा?

सम्यक्‌दृष्टि जीव को पाप करना पड़ता है, पर उसका हृदय काँपता है। उसे तो लगता है कि मैं संसार में हूँ तो पाप करना पड़ता है, यदि मैं संयमी बन जाऊँ, तो सर्व जीवों की दया पालूँ और सर्व पाप से बच जाऊँ। जिसे पाप का पूरा भय नहीं लगा है, वह आत्मा संसार में रचा-पचा रहता है। भगवान ने संसार को आग की उपमा दी है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के उन्नीसवें अध्ययन में कहा है कि -

जहा गेहे पलितम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू।
सारभण्डाणि नीणेइ, असारं अवउज्झइ॥
एवं लोए पलितम्मि, जराए मरणेण य।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ॥

- उत्त. सू. अ-१९, गा-२२-२३

यदि किसी घर में आग लगी हो तो, घर का मालिक उसमें से कीमती वस्तु सुरक्षित निकाल लेता है। यह लोक जन्म, जरा और मरण से भड़ककर जल रहा है। उसमें सम्यक्‌दृष्टि आत्मा यह विचार करता है, कि इस सुलगते संसार से निकल

कर यदि मैं संयम ले लूँ, तो पाप से सर्वथा बच सकता हूँ । उसकी रग-रग में धर्म का गुंजार होता है । वह शरीर की रक्षा करता है, पर इस दृष्टि से कि वह आत्म-साधना में सहायक बनती है, उसके प्रति राग-दशा नहीं होती ।

वीतराग वाणी हमें यही सिखाती है कि शरीर को जन्मोजन्म प्राप्त हुआ और उसको पोषा भी । लेकिन इसीमें आत्मा का बहुत कुछ गँवा दिया । कितने कष्ट सहकर शरीर की रक्षा की, लेकिन शरीर ने कुछ भला नहीं किया । अहिंसा, संयम, ब्रह्मचर्य, दान, दया, क्षमा आदि धर्म किसी अन्य जन्म में तो मिले नहीं थे । यहाँ मिल गये हैं तो इनका पालन करने में जीव का बहुत कल्याण है । शरीर को रखकर धर्म गँवाने में कोई कल्याण नहीं है । उल्टे भावी दुःख की परंपरा है । नाशवंत को, भले ही कितना जतन कीजिए, एक दिन तो जाना ही है । इसकी अपेक्षा व्रत-धर्म और वीतराग वचन पर श्रद्धा करने का जतन करें, तो अपनी आत्मा में अमर रहेंगे । बस, जिनेश्वर वचन और उनके द्वारा प्ररूपित धर्म पर जिसने अपनी हार्दिक श्रद्धा जोड़ ली तथा धन-विषय-शरीर आदि से दिल उठा लिया उसे धर्म की संभाल करने में शरीर, धन, विषय आदि पर आक्रमण आये तो वह जरा भी न घबराये ।

राजा कुमारपाल का प्रसंग : एक बार राजा कुमारपाल से नवरात्रि के समय देवी ने आकर कहा : "परंपरा से बकरे की बलि चढ़ाई जाती है अतः तू भी बलि दे ।" राजा कुमारपाल उस समय जैन धर्म प्राप्त कर चुके थे, वे परंपरा के अंधे अनुयायी बनने जैसे नहीं थे । जहाँ अहिंसा का पालन होता हो वहाँ परंपरा का पालन कीजिए, परन्तु जिस परंपरा में हिंसा तांडव सर्जित होता हो, भयंकर पाप हो रहे हों, उस परंपरा से चिपककर न रहिए । देवी ने कुमारपाल से कहा, "बकरे की बलि चढ़ा नहीं तो इस त्रिशूल से तूझे मार डालूँगी ।" तब कुमारपाल क्या बोले ? क्या वे धर्म से डिग गये ? ले, तुझे एक बकरा चढ़ाता हूँ, ऐसा कहा ? नहीं । वे तो बोले : "कल मारने वाली है तो आज मार दे । देवी ! तू तो जीवों की माँ कहलाती है । जीव सब तेरे बालक हैं फिर भी तू उनकी बलि लेती है तो तू देवी नहीं राक्षसी है । पुत्र भले ही कुपुत्र हो पर क्या माता कभी अपने बेटे का खून पीती है ? (श्रोताओं में से आवाज : 'नहीं पीती ।') और जो रक्त पीती है वह माँ नहीं । मैं तुझे किसी भी प्राणी की बलि नहीं दूँगा । तुझे जो करना है कर ले । मैं अपना दया-धर्म नहीं छोडूँगा ।"

कुमारपाल राजा की कठिन कसौटी : देवी ने तुरंत कुमारपाल राजा के ललाट पर त्रिशूल मारकर असह्य वेदना दी और कुमारपाल का सारा शरीर कोढ़ी बना दिया । देवी ने पूछा, "अब बोल ! मान लेगा तो अभी भी तुझे ठीक कर दूँगी । तेरी काया पूर्ववत् सुंदर हो जायेगी ।" नहीं तो सुबह लोगों में तेरी फजीहत होगी कि देखा इनका दया-धर्म ? यह फल मिला । इतना होने

पर भी कुमारपाल डिगते नहीं, बकरे की बलि देना स्वीकार नहीं करते। क्यों ? आत्मा में वीतराग वाणी के साथ अहिंसा धर्म का नाद गूँज रहा था।

बंधुओं ! देखिए अब कुमारपाल राजा का धर्म के लिए किया गया पराक्रम। राजा ने अपने मंत्री को बुलवाकर कहा, "मंत्री ! मुझे रोग या मृत्यु की चिंता नहीं है, परन्तु सुबह लोग मुझे कोढ़ी के रूप में देखेंगे तो उनका श्रद्धा भ्रष्ट हो जायेगी। वे कहेंगे माता का कहना न मानने से ऐसा हुआ। इसलिए सुबह होते ही मैं नश्वर देह का त्याग करूँगा। ताकि लोग अपनी श्रद्धा न खो बैठे। जैन धर्म की श्रद्धा के लिए मैं प्राण देने को तैयार हूँ।" उस समय गाँव में हेमचंद्र सुरीश्वर महाराज विराज रहे थे, मंत्री वहाँ पहुँचे तथा सारी बातें कह सुनायी कि 'कुमारपाल राजा देह बोसरा रहे हैं।' गुरुजी ने उनसे कुछ समय रुकने को कहा। हेमचंद्र सूरी ने देखा कि कुमारपाल की परीक्षा बराबर हो गई है। उसकी जैन धर्म के प्रति श्रद्धा दृढ़ है। उन्हें रोग या मरण का भय नहीं है, परन्तु यही चिंता है कि मेरे जैन धर्म पर आँच नहीं आनी चाहिए। मंत्री से बोले, "अपने राजा से कहो कि अपनी श्रद्धा में मस्त बने रहें तो अंत में देवी को झुकना पड़ेगा।" कुमारपाल राजा ने निर्णय किया कि मैं बाहर नहीं जाऊँगा तो लोग मुझे कैसे देखेंगे ? यहीं ध्यान लगाकर बैठ जाता हूँ। उन्होंने क्या विचार किया ? *'इमं सरीरं अणिच्चं'* यह शरीर अनित्य है, छूटने वाला है। इस अनित्य शरीर की रक्षा के लिए शाश्वत धर्म को क्यों छोड़ूँ ? धर्म की रक्षा में शरीर छूटेगा तो मेरा कल्याण होगा। शरीर का राग छूट गया। जहाँ राग है वहाँ त्याग नहीं होता।

एक दिन काया और चेतन का संवाद चला। चेतन ने काया से कहा कि "तुझे पालने के लिए मैंने अनेक पाप किये। तू बीमार हुई तो डॉक्टर ने जो दवा बतायी, अंडे का सेवन करने कहा, सबके लिए मैं तैयार रहा। उस समय मैंने अपने कुटुंब, खानदान अपने जैनधर्म का भान तक न रखा। लिये हुए व्रत को एक किनारे छोड़ दिया। डॉक्टर की आज्ञा के सामने वीतराग की आज्ञा की उपेक्षा की। मच्छी का भी सेवन किया और कोडलीवर का इंजेक्शन लिया। जब अंडा, मछली का सेवन किया तो कंदमूल मुझे बिल्कुल सामान्य लगे। उनका भी खूब उपयोग किया। अनीति का पैसा एकत्रित किया, तेरे सुख के लिए। तिजोरी खाली की, अस्पतालों का खर्च सहा तेरी सलामती के लिए। मेरा उपकार मान कि सदा तेरी सेवा में हाजिर रहा। आज मैं कह रहा हूँ कि **'चलो हमारे संग'**। इतने पाप, जुल्म, अनीति करके तुझे बनाये रखने में कम कष्ट नहीं सहा है। यह तो तू इन्कार कर रही है इसलिए स्मरण करवा रहा हूँ। चल, तेरी इच्छा नहीं तो मत आ, पर मैं जहाँ जा रहा हूँ वहाँ तक छोड़ने तो आ। मेहमान आते हैं तो उन्हें स्टेशन

तक छोड़ने जाते हैं ना ! तू भी इतनी सज्जनता तो दिखा ।" तब काया कहती है, "चेतन ! मूर्ख न बन । तूने मुझे सलामत रखने के प्रयत्न नहीं किए, बल्कि अपने में स्थित राग-द्वेष के पोषण के लिए प्रयत्न किये । मैंने तुझे कब कहा था कि तू अंडा, कोडलीवर आदि का उपयोग कर। तूने अपने राग-भाव के पोषण के लिए किया तो अब भोग अपने पाप को ।" चेतन बोला, "काया, तू ऐसा नहीं कर सकती, मुझे निराश मत कर ।" तब काया ने कहा, "चल तूने हठ किया है तो भगवान के पास चलें ।" तीर्थंकर समवशरण में बैठे थे वहाँ काया और चेतन दोनों पहुँचे । दोनों ने अपनी दलीलें रखीं । भगवान किसका पक्ष लेंगे ? वीतराग भगवान कहते हैं, "तुम दोनों स्वतंत्र हो । बिना पक्षपात के दृष्टि स्थिर रखकर विचार करो ।

काया कहती है, अनादि अनंतकाल से मैं अपने स्वक्षेत्र और स्वद्रव्य को छोड़कर किसीका संग नहीं करती । क्या कहा, समझे ? पुद्‌गल द्रव्य स्वक्षेत्र स्व-मर्यादा को छोड़कर चेतन के नहीं बनते । काया कहती है कि मेरा और इनका संयोग अनादि से ममता के कारण है । लेकिन इसके (चेतन के) पास अनंत गुणों का खजाना है, उसमें से मुझे कुछ भी दिया है क्या ? नहीं दिया, तो फिर मुझ पर क्या उपकार किया है ? क्योंकि इस चेतन द्रव्य का एक भी गुण मुझमें नहीं आता, मेरा एक भी परमाणु उनमें संक्रमण नहीं करता । अहो चैतन्य ! तू विचार कर । तू काया से किस प्रकार का माल पाने की कामना करता है ? तीनों काल में काया कभी तेरी नहीं होगी । काया किसीकी हुई होती तो सिद्ध भगवान का क्या गुनाह था ? इसलिए प्रभु ! चेतन देव को समझाए । मुझ पर से अपनी ममता हटाये और अपने माल को जाँचे । जिसे आत्मा चाहिए उसे संसार त्यागना होगा । लेकिन अज्ञानता से स्वरूप को भूलकर पर को अपना बनाने में रमा है ।" चैतन्य और काया के संवाद द्वारा ज्ञानी हमें यही कहते हैं कि 'ममता छोड़ो ।' तेरा अपना माल किसी अन्य जगह नहीं मिल सकता । स्त्री-पुत्र, काम-भोग, स्वर्ग का सुख आत्मा की दूकान में नहीं मिलता । अब तुझे क्या चाहिए ? ठीक से विचार करके, उसी दुकान में जा । भगवान ने दोनों को समझा दिया, झगड़ा समाप्त हुआ । चैतन्य कहता है, "प्रभु ! मैं बड़ी देर से समझा । मैंने कितने पाप किये ? चार गति में भटका । कितनी ही माँओं को रुलाया और स्वयं भी दूसरों के लिए रोया । उस आँसू से समुद्र भर जाये । अब जन्म-जरा के दुःख से मुक्त होने, काया की माया छोड़कर मैं चैतन्य प्रभु आपके पास आ गया हूँ ।"

बंधुओं ! इससे हमें यही समझना है कि शरीर हमारा अनित्य है । जबतक यह शरीर आत्मा की साधना में सहायक बने, तबतक अपनी आत्मा का माल प्राप्त कर

लूँ । कुमारपाल राजा देह का राग छोड़कर ध्यान में बैठ गये । वीतराग वचन और गुरुदेव के वचनों पर दृढ़ श्रद्धा है और उस श्रद्धा का जतन करने अपनी देह बलिदान करने तैयार हो गये हैं । अहो ! यदि अपने जीवन में इतना आ जाये तो जीवन से काम-क्रोध-लोभ-मान-प्रपंच आदि बहुत दोषों को कम करना सरल हो जायेगा। कायरता छोड़कर, धर्म में पराक्रम करना, कृपणता छोड़कर परोपकार करना, संसार की आसक्ति छोड़कर साधूसंतों की भक्ति करना आसान है, क्योंकि दुनिया के सुख और प्रतिष्ठा की अपेक्षा अनंतकाल में दुर्लभ वीतराग वचनों का महान मूल्य है । जिनोक्त धर्म साधना का मूल्य महान है । सच्ची श्रद्धा होगी तो गुस्साखोर स्वभाव भी पलायन कर जायेगा । कुछ नापसंद को होते देख अंतर में गुस्सा उभरने लगे कि मन में आयेगा, गुस्सा किसलिए कर रहा हूँ ? इस तुच्छ संसारी पदार्थ के बार में ? मेरे भगवान ने गुस्सा करने की मनाही की है और क्षमा, करुणा, समता सीखने को कहते हैं । भले ही चीज-वस्तु का नुकसान हो, लेकिन गुस्सा करके अपनी आत्मा को अनंत भव तक भटकाने का महा नुकसान क्यों करूँ ?

कुमारपाल की अडिग श्रद्धा : कुमारपाल राजा ध्यान लगाकर बैठ गये । यह विचार नहीं करते कि रोग मुझसे सहन नहीं होता, भयंकर जलन हो रही है । वह तो अपनी आत्मा में मस्त हैं । आत्मा जागे तो तिर्यंच गति में भी जग जाता है । एक नगर में एक वैद्य रहता था । धन का खूब लोभी था । अपनी आजीविका के योग्य प्राप्त होने के बाद भी औषधि बनाने के लिए हरे वृक्षों को छेदन-भेदन करता ही रहता । क्योंकि देशी दवाएँ वनस्पतियों से बनती है । एक दिन संत पधारे । उन्होंने कहा, "भाई ! तुमने बहुत धन कमा लिया । अब वैद्यगिरी छोड़ दो ।" गुरु के सदुपदेश में वैद्य ने छोड़ दिया । फिर चार बड़े-बड़े सेठ उसके घर दवा लेने आये । सामने से रुपयों की थैली रखकर बोले, "हे वैद्यराज ! आप धन ग्रहण कीजिए और हमें रोगमुक्त कीजिए । **'देखा पीला तो मन गया सीला'** मरीज घर पर आ गये तो क्यों ठुकरायें । वैद्य ने फिर से अपना काम-काज शुरू कर दिया । अंत में हाय पैसा, हाय पैसा करते, धन की आसक्ति के कारण आर्तध्यान में मरकर जंगली बंदर बने । बंदर भी कैसा ? आदमी को देखे तो मानो फाड़ खाये, इतना उपद्रवी । जब वह उत्तम मानव भव में था तब भी हृदय से जड़ और लोभी मनोवृत्ति वाला बाह्य प्रवृत्ति का जंगली था, तो तिर्यंच के अवतार में तो पूछना ही क्या ? मानवजीवन में अध्यात्म-योग के बदले भवाभिनंदिता सेवन का यह परिणाम है । यह बंदर जंगल में पेड़-पत्ते, फल-फूल तोड़ता धमाल मचाता रहता ।

बंधुओं ! पूर्व में पाप बहुत किया है, पर यह श्रद्धा भी है कि धन की आसक्ति दुर्गति में ले जाती है, तो यहाँ क्या हुआ ? उसका नसीब कुछ सीधा हुआ कि जंगल में उसके

लिए मंगल बन गया। एक बार उधर से मुनियों का वृंद गुजर रहा था कि एक मुनि के पैर में शूल चुभ गया। वह शूल इतना गहरा चुभा कि किसी तरह निकल नहीं रहा था। पैर उठाया नहीं जा रहा था, तो रास्ता कैसे काटेंगे ? यह सोचकर मुनि ने अन्य संतों से कहा कि "आप सब शिष्य परिवार के साथ पधारिए। मेरे एक के कारण सबको अन्न-पानी का अंतराय क्यों हो ? मैं सागारी संथारा करता हूँ। यदि शूल निकल गया और मैं चल सका तो आ जाऊँगा।" गुरु उन्हें छोड़कर जाना नहीं चाहते थे, पर शिष्य बहुत समझदार थे। उन्होंने आग्रह के साथ, लगभग जबरदस्ती उन सब को भेज दिया। कैसी उदारता और कितनी समयज्ञता ! संतों के मन में भी यही था कि हम शीघ्र गाँव पहुँचो कर इनके लिए औषधि लेकर आयें। अब मुनि अकेले रह गये। वह जंगली बंदर कूदता हुआ उधर आ निकला। उपद्रवी बहुत था, लेकिन संत को देखकर शांत हो गया। उसके मन में ऊहापोह होने लगा। 'अहो ! मैंने मुनि को कहीं देखा है।' विचार करते-करते बंदर को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसे अपना पूर्वभव याद आ गया और मानव भव में धर्मसाधना के स्थान पर कर्मसाधना करने की भूल समझ में आयी। उसकी भयंकर सजा के रूप में प्राप्त इस वानर अवतार ने उसे बहुत अफसोस कराया। यहाँ फिर वही कर्मसाधना। मोह-साधना चलती रहे तो उसकी महासजा के रूप में अधम तिर्यच भव की परंपरा कैसी चलेगी- यह विचार उसे कंपाने लगा।

मनुष्य को विचार करना चाहिए, पर कैसा विचार ! दीर्घ दृष्टि से आत्मा के हिताहित का। वानर एक तिर्यच जानवर है, उसे ऐसे विचार आते हैं जो उसे बहुत खेद करवाते हैं। आर्य मनुष्य को,लेकिन कहाँ ऐसे विचार आते हैं। मानव भव और जिनशासन पाने के बाद भी मोह की साधना करने का कोई खेद नहीं। न ही इसके परिणाम में दुर्गति की परंपरा आयेगी। ऐसी कल्पना तक होती है। जातिस्मरण ज्ञान के कारण पूर्वभव में किये पापकर्मों का अफसोस होने लगा।

बंदर का पश्चात्ताप : 'जिस धन को अवश्य ही छोड़कर जाना है, उस धन के पीछे पागल बनकर मैंने कैसे-कैसे पाप किये ? आज उसीके फल उदय में आये हैं। मनुष्य भव धर्म आराधना करके पाप छोड़ने का अमूल्य अवसर था, पर मैंने कुछ न किया। आज भी मैं पापी नये कर्म बँध करना रोक नही रहा हूँ और नही पुराने पाप खपाने का कोई उपाय कर रहा हूँ। अब इस पशु के भव में धर्म आराधना क्या करूँ ? अब तो मुझे नरक में जाना पड़ेगा। हे भगवान ! मेरा क्या होगा ?' ऐसे विचारों से उसकी आँखों में आँसू आ गये।

संत के पैर से रक्त बह रहा है। काँटा चुभा हुआ देखता है और जातिस्मरण ज्ञान होने के कारण पूर्वभव में किया वैद्य का कार्य याद आया। पता चल गया कि

किस औषधि से इस दर्द पर आराम होगा ! दौड़ता हुआ जंगल में जाकर निर्दोष औषधि ले आया और साधू के पैर में लगाने लगा । संत सोचते हैं कि 'यह जंगली बंदर क्या कर रहा है ?' पर अब तो समभाव से सब देखते रहना है । बंदर धीरे से वह औषधि मुनि के तलवे में चुपड़ देता है । थोड़ी देर में काँटा ऊपर आ गया तो धीमे से उसे खींचकर निकाल देता है । दूसरी औषधि से रक्त निकलना बंद कराया और घाव पर दवा लगा दी । संत उस बंदर को रोते देख और उसका काम देखकर समझ गये कि कोई आत्मा मानव भव से भवसागर में भटक गया है। संत ने उसे आश्वासन देते हुए धर्मोपदेश दिया और कहा, "इस जगत में पाप करने और भोगने में कोई नवीनता नहीं है । लेकिन जिनेश्वर देव द्वारा प्ररूपित धर्म का शुद्ध मन से आराधन करने से असंख्य भव का पाप मात्र एक भव में नष्ट किया जा सकता है । अतः धर्म की आराधना कर । तू देशावगासिक व्रत ग्रहण कर अर्थात् जब-जब तुझसे संभव हो तब-तब क्षेत्र और काल की मर्यादा करके भगवान के ध्यान में लीन बन जाना । अमुक समय के लिए अमुक हद से बाहर न जाना और ध्यान धरने का व्रत बंदर ने अंगीकार किया ।

देवानुप्रियों ! देखिए, इस बंदर ने भी व्रत स्वीकार किया । तिर्यंच भी देशविरति बन सकते हैं । आप तो मनुष्य हैं, आपको तो उससे आगे बढ़ना चाहिए ना ? नियम प्रदान कर संत तो आगे चले गये । एक बार बंदर व्रत अंगीकार करके एक पत्थर की शिला पर बैठा था । अचानक एक भूखा सिंह गर्जना करता उधर आ निकला । परन्तु बंदर का व्रत था कि उतनी जगह से बाहर नहीं जाना है इसलिए जरा भी व्याकुल हुए बिना वहीं बैठा रहा । जीने का मोह नहीं और मरने का डर नहीं, फिर क्यों करे भागने का विचार ? बंधुओं ! उसकी जगह आप होते तो क्या करते ? (श्रोताओं में से आवाज : भाग-दौड़ मचा देते ।)

वानर की व्रत के प्रति दृढ़ता और श्रद्धा : भूखा सिंह बंदर पर टूट पड़ा । बंदर ने संपूर्ण पच्चक्खाण ले लिया । दाड़िम की कली की भांति सिंह बंदर को चबा गया । मन में नवकारमंत्र का स्मरण करता है और विचारता है कि 'देह चबायी जा रही है मैं नहीं । गुरुदेव ! आप मुझे न मिले होते तो तरने का मार्ग कौन बताता ! वहीं बंदर समकित पा गया । अपने व्रत और शुभ ध्यान में स्थिर रहने के कारण बंदर मरकर वैमानिक देव बना । वहाँ अवधिज्ञान से उन संत को देखकर यहाँ आकर उनके दर्शन करता है तथा अपनी पहचान बताता है । तत्पश्चात् उन्हें शासन प्रभावना करने में सहायक बनता है। एक जानवर होते हुए भी सिंह के मूख में चबाये जाने के प्रसंग पर चित्त में द्वेष या खेद का संक्लेश नहीं हुआ, तो वैमानिक देव बना । जबकि पूर्वभव में वैद्य के भव में चित्त

में लोभ के संक्लेश ने उसे बंदर बनाया था । देवलोक से च्यवकर मनुष्य भव में विद्याधरों का सम्राट बना तथा जैनशासन का महान आराधक और प्रभावक बना । वह अल्पकाल में मोक्ष में जायेगा । आत्मा जब जागता है, तब कितना पा लेता है बस पहले श्रद्धा चाहिए ।

राजा कुमारपाल की धर्म की श्रद्धा कितनी दृढ़ थी । 'कदाचित मेरे राज्य का, मेरे परिवार का नाश हो जाय तब भी मेरे धर्म को आँच नहीं आने दूँगा ।' कुमारपाल की इतनी दृढ़ श्रद्धा के बल से देवी को झुकना पड़ा । भगवान का सच्चा श्रावक देवों के डिगाने से डिगता नहीं । कुमारपाल का शरीर पूर्ववत् हो गया । एक अहिंसा-धर्म की रक्षा करने के लिए देह का बलिदान देने तैयार हुए । इसी तरह आत्मा को जगाने की जरूरत है ।

द्रौपदी का अधिकार

सुकुमालिका युवावस्था में : नागेश्री की आत्मा सुकुमालिका के रूप में उत्पन्न हुई । वहाँ काया बहुत सुकोमल और असीम संपत्ति प्राप्त हुई । पहले के लोग ढेर संपत्ति होने पर भी उसका त्याग कर संयम ग्रहण करते थे । भगवान महावीरस्वामी का आत्मा तेइसवें भव में प्रियमित्र चक्रवर्ती के रूप में महाविदेह क्षेत्र में जन्मा था, वहाँ उनका आयुष्य चौरासी लाख पूर्व का था । उसमें से अमुक लाख वर्ष पूर्व चक्रवर्तीपन की साहबी भोगते हैं । इतना लाभ और भोग का पुण्य लेकर आये हैं, फिर भी खूबी देखिए कि इतना भोग करने पर भी संसार में मुग्ध नहीं बन जाते । बल्कि अंतिम एक करोड़ वर्ष बाकी रहने पर प्रियमित्र चक्रवर्ती वैराग्य विकसित करके संसार छोड़ चारित्र लेते हैं । आज के जीवों की कैसी दशा है ? बहुत समय तक सुख भोगने के बाद वे उसमें इतने आसक्त हो जाते हैं कि त्याग के नाम से भड़कते हैं । मन में तय कर लेते हैं कि अपने से इस जीवन में त्याग-चारित्र कुछ नहीं हो सकेगा । ज्ञानी कहते हैं कि 'इस जीवन में कुछ करने योग्य है तो चारित्र ।' भगवान महावीर ने नंदराजा के भव में ग्यारह लाख, इक्यासी हजार मासखमण किया । वे यों ही महावीर नहीं बन गये । पिछले जन्मों की साधना और महावीर के भव में भी उग्र साधना की, तब महावीर बने हैं ।

सुकुमालिका पाँच धायमाताओं द्वारा पोषण पा रही है । धीरे-धीरे बड़ी हुई, पढ़-लिखकर होशियार हुई, युवावस्था में प्रवेश करती है । अभी उसके थोड़े कर्म बाकी हैं, वे कैसे उदय में आयेंगे और क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

पर भी, एक आत्मा दूसरे के रूप में नहीं होता, एक के कर्म का संक्रमण दूसरे के कर्म में नहीं होता । निगोद में भी आत्मा अकेला था । वहाँ से बाहर निकलकर बादर में आया, तो भी अकेला । इस प्रकार एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक हर जगह अकेला है । इस संसार की रंगभूमि में आत्मा ने अभिनेता की भाँति अनेक शरीर धारण किये हैं । अभिनेता घड़ी भर में भिखारी तो घड़ी में राजा, घड़ी भर में स्त्री तो घड़ी में पुरुष का वेश धारण करता है । वेश धारण करनेवाला नट क्या विचार करता है! यह मेरा नहीं है । प्रेक्षकों के मनोरंजन के लिए खेल कर रहा हूँ । एक भी वेश मेरा नहीं है । मैं तो वही एक हूँ । इसी तरह आत्मा कर्म की विचित्रता के कारण संसार की रंगभूमि में आया । चारों गति में अनेक स्वांग सजे । पुण्य के कारण धनवान बना और पाप के कारण गरीब । अनेक स्वांग करने के बावजूद आत्मा तो एक ही है । जब आत्मा में यह भाव जागेगा कि मैं अकेला हूँ । मेरा कोई नहीं तब प्रभु से वह क्या प्रार्थना करेगा !

हे मेरे प्रभु ! जन्म, जरा और मरण के दुःखों से मैं बहुत थक गया हूँ । आधि, व्याधि और उपाधि के त्रिविध ताप से जल रहा हूँ । हे त्रिलोकीनाथ ! इस भव-बँधन से छूटने का कोई उपाय है या नहीं ? जीव निगोद में गया तो वहाँ कैदखाना छोटा और गुनहगार अनेक । वहाँ जगह की तंगी में पिस गया । अकाम निर्जरा करता-करता एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में भी पुण्योदय से संज्ञी पंचेन्द्रिय का मनुष्य भव प्राप्त किया । ऐसा उत्तम मानव भव पाया लेकिन यहाँ मोह, राग और कषाय का जोर इतना बढ़ा कि वे मुझ पर सवार हो गये । मुझे कहीं शांति नहीं मिली । प्रभु ! आपने तो आत्मा की सिद्धि प्राप्त कर ली है । मैंने अनेक आपके साथ संबंध जोड़ा, परन्तु प्रभु ! आप तो परम पद प्राप्त कर गये । प्रभु ! आपने किस प्रकार यह प्रभुता साधी और अनंत शाश्वत सुख के भोक्ता बने ? क्या प्रभुता बाहर से मिली ? जगत के वैभव, विलास और धन-संपत्ति में से मिली ? प्रभु ! आप मुझे मार्ग बताइए । केवल ज्ञान और केवल दर्शन द्वारा आप समस्त द्रव्य और समस्त पर्याय को जानते हैं, फिर भी किसीके प्रति राग नहीं या द्वेष नहीं । और मैं तो संसार की एक वस्तु को देखूँ तो राग या द्वेष का संसार खड़ा कर लेता हूँ । आप तो प्रभु सर्व पदार्थों तथा शरीर पर से भी राग छोड़ दिया तो केवल ज्ञान पाया ।

ज्ञानी कहते हैं 'जिसका शरीर से राग उतर गया उसका किसीके प्रति राग नहीं रहता ।' शरीर के पोषण के लिए जीव कुकर्म करने में नहीं हिचकता । शरीर है वहाँ नाम है, गोत्र है, आयुष्य है, वेदनीय भी है । शरीर नहीं तो कुछ भी नहीं है । आज जगत के अज्ञानी जीव नाम पर मोहित हो गये हैं, परन्तु नाम का भी तो नाश होगा । नाम शरीर का है, चेतना का नहीं । फिर भी चेतन पर - द्रव्य में मुग्ध बना है तथा मोह दशा का पोषण करने के लिए जीव पाप करता है । पाप

का कडवा फल जीव को अवश्य भोगना पड़ता है । गौतमस्वामी ने दीक्षा लेकर भगवान से कहा, "हे प्रभु ! अब फिर से मुझे यह संसार नहीं चाहिए । एकावतारी पद भी नहीं चाहिए, मुझे तो मोक्ष शीघ्र कैसे प्राप्त हो वह रास्ता बताइए । प्रभु ! आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा, पर अब पापकर्म न बँधे ऐसा मार्ग बताइए ।"

बंधुओं ! आपने कभी गुरुदेव के पास जाकर कहा कि 'गुरुदेव ! संसार रूपी गड्ढे से निकलने का मार्ग बताइए जिससे मुझे अब चतुर्गति में भटकना न पड़े और फिर से दूसरा जन्म न लेना पड़े ।' जन्म जैसा दुःख नहीं है और मरण जैसा त्रास नहीं है। आज आपके घर में टी.वी. आ गया । उसमें देखेंगे तो इस लोक को देख सकेंगे । जबकि केवल ज्ञानी तो तीनों लोक को जानते हैं । उन्हें यह देखने के लिए चर्मचक्षुओं की जरूरत नहीं पड़ती । ऐसे भगवान तिल की फली में दाना है या नहीं, उसको मोक्ष होगा या नहीं, होगा तो कितने भव में होगा - यह सब कह सकते हैं । ऐसे भगवान महावीर का नाम सुनते ही अपने रोम-रोम खिल उठना चाहिए । जिनकी रग-रग में भगवान महावीर बसे हैं वे भगवान महावीर का कोई अवर्णवाद सहन नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हें भगवान के प्रति, देव-गुरु, धर्म के प्रति इतना जनून है कि मेरे सामने मेरे भगवान को कोई कुछ कैसे बोल सकता है ।

भगवान ने कह दिया था कि "हे मेरे संत ! अभी गोशालक यहाँ आयेगा । वह ऐलफैल वचन बोलेगा, गालियाँ देगा, अपशब्द कहेगा, क्योंकि वह भान भूल बैठा है । लेकिन हे संतों ! आपलोग उसे कोई जवाब न देना । सब मौन रखना ।" गोशालक आया और भगवान को भला-बुरा कहने लगा, लेकिन भगवान ने मना किया था इसलिए किसीने कुछ न कहा । लेकिन सुनक्षत्रमुनि और सर्वानुभूतिमुनि उठ खड़े हुए और बोले कि "हमारे सामने हमारे भगवान को ऐसे शब्द कहे तो हम सहन नही करेंगे ।" आगे वे बोले, "मंखलिपुत्र ! घर-घर में भीख माँगकर पेट भरते थे । यदि हमारे नाथ न मिले होते तो तुम्हारी क्या गति हो गई होती । हे गोशालक ! तू होश खो बैठा है । ये त्रिलोकीनाथ प्रभु हैं । लेकिन उनके शब्द सुने किसने ?" गोशालक तो क्रोध के आवेश में था । आग लगे और पवन के झोंके आयें तो आग और बढ़ती है । गोशालक की क्रोध की आग भी भभक रही थी । उसमें मान रूपी पवन और मिल गया तो क्रोध और भड़क उठा ! क्रोध बहुत भयंकर है ।

करो ना क्रोध रे भाई ! पछी मन खूब पस्ताशो,
करेली छे कमाणी जे, पलकमां ते डूबी जाशे... करो ना...
भवोभवमां तपश्चर्या करीने जे करम गाल्या,
घड़ी भर क्रोध करवाथी, फरी पाछा बधी जाशे... करो ना...

क्रोध करने से जो कुछ शुभ कमायी की है वह उसी क्षण नाश हो जायेगी। कर्मों को जलाने के लिए अघोर तप किया, परन्तु साथ में यदि क्रोध आया तो दूसरे नये कर्मों की आवक बढ़ जायेगी, अतः क्रोध का त्याग करने योग्य है।

भगवान के दो संत गोशालक को ताना मारने की दृष्टि से नहीं बोले थे बल्कि उसे सही समझाना चाहते थे। "हे गोशालक ! तू भान भूला है। केवली भगवान की अशातना कर रहा है, कुछ तो समझ !" लेकिन क्रोध के आवेश में हितशिक्षा कौन सुनता है ! एक जमाना ऐसा भी था कि चाहे जितना क्रोध हो, परन्तु प्रतिष्ठित व्यक्ति आकर कहते तो शांत हो जाते थे। भरत और बाहुबलि युद्ध करने चले। विनाश को निमंत्रण देने ही वाले थे कि देवों ने आकर उन्हें रोका कि 'बस करो।' बाहुबलि विचार करते हैं कि आगे बढ़ी हुई मुट्ठी खाली तो नहीं जायेगी। मुट्ठी को कहाँ रखा ? मस्तक पर। पंचमुष्टि लोच करके साधू बन गये... कितना बल ! कितनी ताकत ! लड़ते-लड़ते उल्टी दृष्टि सीधी में परिणमन कर दी।

गोशालक के वचन दो मुनियों से सहन नहीं हुए। वे उछल पड़े। कदाचित आप को लगे कि क्या इन दो मुनियों का ही भगवान के प्रति लगाव और गुरुभक्ति थी और गौतमस्वामी आदि अन्य शिष्यों की क्या कम थी ? नहीं। बात यह नहीं है। गौतमस्वामी आदि सबकी गुरुभक्ति अपार थी। गोशालक के शब्दों से सबके मन में बहुत दुःख हुआ था, परन्तु प्रभु ने मौन रहने की आज्ञा दी थी, इसलिए वे मौन रहे। वे दो छोटे साधू न रह सके। सुपात्र शिष्य हो तो गुरु को भी आत्म-कल्याण में सहायक बनता है तथा केवल ज्ञान प्राप्ति में निमित्त बनता है। भगवान ने सिद्धान्त में शिष्य के लिए अंतेवासी शब्द का प्रयोग किया है। यह शब्द सामान्य नहीं है। जो शिष्य गुरु की आज्ञा में सदैव तत्पर रहता है और गुरुआज्ञा ही जो अपना धर्म और तप मानता है, ऐसे शिष्यों का वास गुरु के हृदय में हो जाता है। शिष्यों पर गुरु का असीम, अमाप उपकार है। ज्ञानी कहते हैं कि 'तू पैर से काँटा निकालने वाले का उपकार नहीं भूलते तो जिस भगवान और गुरु ने हमें मोक्षमार्ग बताया उनका उपकार कैसे भूला जा सकता है ?'

'ठाणांग सूत्र' के तीसरे ठाणे में बताया गया है आपके ऊपर (१) माता-पिता का (२) उपकारी सेठ का (३) गुरुदेव का, ये तीन ऋण हैं। माता-पिता को अंतिम समय धर्म प्रवृत्त करवाने से उनके ऋण से मुक्त हो सकते हैं। दूसरा ऋण उपकारी सेठ का है। जिस सेठ ने आपका हाथ पकड़कर, आपके जीवन में उपकार किया है, उस सेठ को कर्मयोग से कदाचित गरीब अवस्था आ जाये तो उस समय उसकी मदद करना तथा सच्चा धर्म समझाना, उस सेठ के ऋण से उऋण होने का उपाय है।'

सेठ और मेहताजी का प्रसंग : एक बार एक सेठ ने मेहताजी को धंधे से अलग कर दिया। मेहताजी बहुत वर्षों से उसी एक सेठ के यहाँ नौकरी कर रहे थे, धंधे में होशियार हो गये थे और पैसा भी बना लिया था। इस मेहताजी ने

कलकत्ता जाकर दुकान खोली । उनका पुण्य-पुष्प खिला और सेठ के पुण्य का पुष्प कुम्हलाने लगा । पुण्योदय से मेहताजी खूब धनवान बन गये और सेठ गरीब अवस्था में पहुँच गये । स्थिति यहाँ तक पहुँची कि घर भी छोड़ना पड़ा तथा पहने हुए कपड़ों में निकल जाना पड़ा । चलते-चलते शेठ कलकत्ता पहुँच गये । कलकत्ता उनके शहर से दूर न था पर उन्हें ज्ञात न था कि मेरे मेहताजी यहीं रहते हैं, जो अब करोड़पति बन गये हैं । मेहताजी की दूकान के सामने से सेठ गुजरे तो मेहताजी की दृष्टि उन पर पड़ी और उन्हें लगा कि ये मेरे सेठजी लगते हैं । मनुष्य के पास से धन जाता है तब नूर भी चला जाता है । सेठ के फटे कपड़ों के कारण कोई शीघ्र पहचान न सका । मेहताजी ने पहचाना और झट नीचे उतर आये । उन्होंने यह विचार नहीं किया की सेठ ने मेरी कहाँ कद्र की, मुझे काम से निकाल दिया था ? सेठ के पास पहुँचकर बोले, "सेठजी !" ऐसी गरीब अवस्था में सेठ कहने वाला कौन है ? सेठ शब्द सुनकर ही उनके रोएँ खड़े हो गये । मेहताजी को पहचानकर सेठ रो पड़े । मेहताजी ने कहा, "आपका मुझ पर बहुत उपकार है, पधारिए ! मेरे उपकारी, ऐसा कहकर सेठ को गद्दी पर बैठाया और अपना सब कुछ उन्हें अर्पित कर दिया । मेहताजी की पत्नी ने भी उनका स्वागत करते हुए कहा, "आपके जैसे सेठ-सेठानी के आने से मेरा आँगन पवित्र हो गया । मेहताजी और उनकी पत्नी बीती बातें याद नहीं करते । उनके दिल में एक ही भावना है कि 'उपकारी सेठ का ऋण चुकाने का आज पवित्र दिन है ।' मेहताजी ऐसे सेठ का उपकार नहीं भूलते जिसने जन्म-जरा और मरण से छूटने का मार्ग बताया । ऐसे उपकारी भगवान और गुरु का उपकार कैसे भूला जा सकता है ?

गोशालक के मुँह से भगवान के लिए अपशब्द, कटु शब्द सुनकर छोटे दो साधू रह न सके तो गोशालक ने उन दोनों पर तेजोलेश्या छोड़ी और उन्हें जला डाला । इतने पर भी संतुष्टि न हुई तो भगवान पर तेजोलेश्या छोड़ने चला । परन्तु तीर्थंकर भगवान को तेजोलेश्या जला नहीं सकती । त्रेसठ शलाका पुरुषों का आयुष्य निकाचित होता है । फिर भी गोशालक ने संयम रूपी महान रत्न प्रदान करनेवाले भगवान पर तेजोलेश्या छोड़ी - ~

'दीक्षा लीधी प्रभु पासे, पण उल्टो चाल्यो गोशालो,
अंत समये सवळो थातां, सुधरी गयो सरवाळो... छेवटमां...

जिस प्रभु से दीक्षा ग्रहण की उन्ही प्रभु को गोशालक जलाने तैयार हो गया । परन्तु तेजोलेश्या भगवान का स्पर्श किये बिना उसीके शरीर में समा गई । अपने भगवान तो करुणासागर उन्होंने गोशालक पर भी दया की ।

सुकुमालिका यौवन के प्रारंभ में प्रवेश कर चुकी है । अब उसके जीवन में क्या होगा आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

हरिषेण तापस द्वारा पुत्री-दामाद को हित-शिक्षा : कनकरथ कुमार रुक्मणी से परिणय के लिए जा रहे थे । बीच वन में ऋषिदत्ता को देखा और हरिषेण तापस ने ऋषिदत्ता को स्वीकार करने की बात कही । कनकरथ कुमार विचार करते हैं कि 'मुझे ब्याह करना ही है तो इस संस्कारी ऋषिकन्या से करूँ ताकि हमारा संसार आदर्श बने और किसी दिन प्रीतिमती की भांति हम दोनों भी तापस जीवन स्वीकारें । ऐसी उच्च भावना से कनकरथ कुमार ने स्वीकृति दी और वहाँ अत्यंन्त उल्लासपूर्वक विवाह हो गया । कनकरथ सोचते हैं कि 'और सब तो बार-बार मिल जायेंगे, परन्तु ज्ञान देने वाले गुरु नहीं मिलेंगे । अतः कुछ दिन यहाँ रुककर ज्ञान अर्जित कर लूँ ।' यह सोचकर वे इक्कीस दिन तक वहीं रुके और खूब ज्ञान प्राप्त किया । फिर तापस से बोले, "तात ! अब कृपा करके मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं अपने पिताजी की चरणों में पहुँच जाऊँ ।"

राजा हरिषेण ने यह सुनकर गद्‌गद स्वर में कहा, "कुमार ! मेरा कार्य पूरा हुआ । आपके जैसा दामाद पाकर मैं कृतकृत्य हो गया । मैं आपको और अधिक रोक नहीं सकता । परन्तु आपसे खास विनती है कि आप इस कन्या पर अपनी कृपादृष्टि रखिएगा । यह कन्या आश्रम में पली है । माता का सुख और लाड़ इसने नहीं पाया है । वन में जन्मी और पली होने से बहुत भोली है । शहरी वातावरण न देखने से वह शहरों के दाँव-पेंच नहीं जानती । इसलिए आप इसका पूरा ख्याल रखिएगा । यदि इससे कोई भूल हो जाए तो उदार दिल से क्षमा कीजिएगा । आप राजकुमार हैं अर्थात् भविष्य में राजा बनेंगे । इस मुग्धबाला को अपमान निरादर का पात्र न बनने देना । आपको महागुण संपन्न देखकर ही यह वनवासी कन्या आपको सौंपी है । आप जैसे गुणनिधि के संपर्क से यह भी गुणवती बनेगी । चंदन के वन में चंदन के सुवास के स्पर्श से पास का नीम भी चंदन जैसी खुशबू वाला बन जाता है । हरिण की नाभि के आस-पास लगी धूल भी कस्तूरी की महक पकड़ लेती है, वैसे ही आपके संपर्क से कन्या गुणसमृद्ध बने और आप इसकी बराबर संभाल रखें - यही कामना करता हूँ ।"

हरिषेण तापस की युक्तियुक्त, वात्सल्यभरी, स्नेह से छलकती, गद्‌गद स्वर से कही वाणी ने कुमार का दिल जीत लिया । ऋषिदत्ता के प्रति जबरदस्त लगाव उमड़ने लगा कि 'ऐसे अनहद प्रेम का पालन मुझे प्राण देकर भी करना चाहिए । नहीं तो मैं विश्वासघाती और निर्दय कहलाऊँगा ।' प्रसंग प्रसंग का मान होता है । पुत्री और दामाद की विदाई का प्रसंग ही विशिष्ट होता है । राजर्षि की

वाणी इसके कारण भी विशेष असर करती है। मात्र प्रसंग में उचित बोलना आना चाहिए। नहीं तो विवाह की वर्षी हो सकती है। हमें जीवन में अनेक प्रसंगों का लाभ मिलता है, परन्तु यदि उन प्रसंगों को बधाते हुए उचित विवेकपूर्ण वाणी का प्रयोग करते हैं, तो सौ के सवा सौ हो जाते हैं और यह न आये तो सौ का साठ रह जाता है। मनुष्य का मूल्य उसके अवसरोचित्त बोल से ही होता है। वचन अनुचित कहो या उचित, इसमें कोई खर्च नहीं लगता, श्रम विशेष नहीं लगता, फिर यश क्यों न लिया जाए ? उचित विवेकभरे वचनों से सामने वाले का हृदय क्यों न जीता जाए ? जब हरिषेण ने कनकरथ कुमार से सीख भरी बातें कहीं तब कनकरथने ऋषिदत्ता से कहा, "मैं तुम्हारे पिता की प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ। मैं तेरा एक रोम तक नहीं दुखाऊँगा। साथ ही आज प्रतिज्ञा लेता हूँ कि तुम्हारे सिवाय किसी अन्य स्त्री पर कभी आसक्त नहीं बनूँगा।" ऋषिदत्ता बोली, "स्वामी ! मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है। प्रतिज्ञा की कोई आवश्यकता नहीं।"

अब हरिषेण अपनी कन्या ऋषिदत्ता से कहते हैं, "हे पतिव्रता ! अपना शील उचित रीति से पालन करना। पति की आज्ञा का कभी उल्लंघन न करना। सासु-श्वसुर तथा गुरुजनों की सेवा करना। जो बड़ों की सेवा करता है वही इस जगत में सेवा पाता है। गुरुजनों की भी सेवा करना। गुरु की सेवा यानी उनका सुनने की इच्छा रखना। यह इच्छा होगी तो ताना आदि के बोल भी हितशिक्षा रूप में सुनने की रुचि होगी। सुनने में क्रोध नहीं आयेगा उल्टे जीवन में हितशिक्षा बढ़ेगी। साथ ही क्षमा और समता सीखने का अवसर मिलेगा। हे बाला ! इस जीवन में हित का ख्याल बढ़ाते रहना है और क्षमा-समता हर कदम पर अपनाते जाना है। इसी में जीवन की सफलता है। तू सुलगते संसार में पड़ी हुई है। संसार कीचड़ है। इस कीचड़ में डूबना नहीं, कमल की भाँति अलिप्त रहना। हे भाग्यवती ! तेरे कुल में कलंक लगे, कभी ऐसा कोई कार्य न करना। तू राजरानी बनेगी। सौतनों को छोटी बहन मानना। उनके लिए सदा स्नेह, सद्भाव और सहानुभूति का भाव रखना। चंद्रमा राहू द्वारा ग्रस लिये जाने पर भी तप नहीं उठता। वह तो शीतल ही रहता है। तू भी चंद्रमा के समान शीतल बनना।" तापस पिता अभी और कैसी-कैसी हितशिक्षा देंगे आदि भाव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ५६

प्र. भाद्रपद कृष्ण २, सोमवार | दिनांक : २-९-७४

अपने माल को परखो

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

शासन सम्राट वीर भगवान ने कहा है कि *"इमं सरीरं अणिच्चं ।"* अनित्य शरीर के पीछे आत्मा भान भूल गया है । नश्वर देह पर ममता करके, राग करके, उसकी सार-संभाल करने में कई अधम आचरण करके; काँच के टुकडे की तरह, इस रत्नचिंतामणि मानव भव को, फेंक रहा है । ज्ञानी कहते हैं, 'हे मानव ! तू जिसके पीछे दीवाना बना है उस देह का निरीक्षण तो कर और आनन्द का घन, चैतन्य स्वरूप आत्मा को भी निहार ले ।' देह में बैठा, पर देह से जुदा आत्मा अनंत गुणों का पिंड, अनंत शक्ति का अकूत खजाना है । उसमें रहने वाली हर शक्ति हर काल रहने वाली है । ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य - ये सारे गुण तीनों काल तक स्थायी रह सकें, ऐसे अनंत गुणों का धारक यह चैतन्य परमात्मा है । शरीर पर दृष्टि कर और ज्ञानचक्षु से देख, वहाँ कैसा माल भरा हुआ है ! जिस दूकान में जो माल भरा हो, वहाँ से वही मिल सकता है । झवेरी की दूकान से मिठाई खरीदने जाएँ तो मिलेगी भला ? नहीं मिलेगी । झवेरी की दूकान से जवाहरात ही मिलेंगे । जिसके पास जो माल हो, वही मिलता है । तू इस शरीर से कैसा माल पाने की इच्छा करता है ? शरीर से तू सुख पाना चाहता है तो वह कैसे मिलेगा ? वह तो आत्मा से प्राप्त होगा । भगवान की वाणी है कि -

"नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ।।"

- उत्त. सू. अ-२८, गा-११

अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत तप, अनंत वीर्य और उपयोग ऐसे त्रिकाल टिकने वाले अनंत गुणों का खजाना आत्मा में है । आत्मा ऐसी दूकान है । जीव का यह लक्षण है । सुख में जरा भी दुःख न हो ऐसा सुख यदि चाहिए तो आत्मा की दूकान से मिलेगा । वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अंधकार, उद्योत, प्रभा, छाया ये सब पुद्गल के लक्षण हैं । आत्मा अपने गुणों को भूलकर पुद्गल के लक्षण में रंग गया है । गरमी से व्याकुल हो रहे हों और ठंडी हवा आये तो आनन्द मिले । मनपसंद भोजन मिले, सुंदर शब्द सुनने मिले, अच्छी सुगंध आये तो आनन्द होता है । आत्मा

इन्द्रियों तथा मन का अधिपति है, लेकिन इन्द्रियों ने आत्मा पर अपना अधिपतित्व जमा दिया है। कोई सेठ अपने धंधे में असावधानी रखे और नौकर के कहे अनुसार करे तो एक दिन उसका परिणाम यह होगा कि नौकर दूकान पर सत्ता जमा लेगा और सेठ को सब छोड़कर चलता होना पड़ेगा। यदि आत्मा इन्द्रियों के कहे अनुसार करे और उसीके सुख में मस्त रहे तो उसे नरक-तिर्यंच गति की गहरी खाई में फेंक देगा। आत्मा को यह विचार करने की जरूरत है कि अमूल्य मानव भव प्राप्त किया है तो यहाँ से मुझे ऐसे स्थान में जाना है जहाँ से फिर यह भटकन बंद हो जाए। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, बल-वीर्य और उपयोग मेरे लक्षण हैं। यह शरीर तो जड़ परमाणुओं की राशि है। साबुन, सोडा और गरम पानी लेकर यदि कोई कीचड़ के कोठार को धोता रहे तो उसमें से क्या निकलेगा ? शरीर अस्वस्थ न हो, सूख न जाये, इसके लिए कितनी सावधानी रखते हैं। परन्तु आत्मा में जो सड़न भरी हुई है, आत्मा बीमार है। आत्मा, आत्मा को न शोभने योग्य वर्तन करता है, तो लगता है कि यह खराबी, यह सड़न दूर करने की जरूरत है ? (श्रोताओं में से आवाज : 'अभी तक सड़न को जाना ही नहीं है।')

यह शरीर तो रोगों का घर है। टी. बी. (क्षय), कैंसर, भगंदर, जलोदर आदि अनेक रोगों की खान है। पेट में कैंसर की गाँठ निकली और डॉक्टर कहे कि 'बचने की उम्मीद बहुत कम है' तो जिसने आत्मिक गुण खिलाये हैं वह आत्मा विचार करेगा कि कैंसर तो देह को हुआ है, आत्मा को नहीं। तो अपनी आत्मा को ऐसा डॉक्टर बनाऊँ कि वह कर्म का कैंसर कर डाले। कर्म को कैंसर हो जाय तो उसका मोक्ष में वास हो। देह में खराबी आये तो देह जर्जरित हो जाती है और अंत में देह का नाश होता है। ऐसे ही जो कर्म को सड़न लगे तो कर्म का नाश हुए बिना नहीं रहे। एक-एक रोम में पौने दो-दो रोग भरे हैं। शरीर के साढ़े तीन करोड़ रोम हैं अर्थात् कितने रोग भरे हुए हैं। यह शरीर रोगों की खान है उसमें उसी प्रकार का माल है। शरीर को कितना ही उखाड़ो, उससे सुख नहीं मिल सकता। ममता और मोह से इस शरीर को अपना माना है पर आत्मा में शरीर के एक भी परमाणु नहीं हैं।

जब कैंसर की गाँठ हो जाए और डॉक्टर ऑपरेशन करते हैं तब गाँठ काटते हुए अंदर से सड़ा हुआ मांस, खराब रक्त, पित्त आदि निकलता है और उस गाँठ का मूल इतने गहरे चला जाता है कि अंदर से सड़ा हुआ निकलता रहता है। अंत में डॉक्टर ऑपरेशन बंद कर देता है। फिर चार-पाँच वर्ष के पश्चात् फिर से गाँठ उभरती है। देखा, इस शरीर का धर्म ! ऐसा शरीर जीव ने एक बार नहीं अनंत बार धारण किया है। रोग सत्ता में पड़े हुए हैं। पुण्य का सितारा जबतक चमकता है, तबतक सत्ता में पड़े रहेंगे। पाप का उदय होते ही रोग शरीर पर हमला करेंगे। आप रास्ते में जा रहे हों। रास्ते के अगल-बगल काँटे-कंकड, झाड़ी पड़ी है, परन्तु आप जिस

पथ पर चल रहे हैं वह बिल्कुल साफ है । इसी तरह अपने आस-पास यानी सत्ता में रोग वृद्धावस्था रूपी जाला-झंखर आदि पड़े हुए हैं । लेकिन अभी पुण्य का सितारा है तो रास्ता स्वच्छ है । इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि 'यह मार्ग स्वच्छ है ।' रोग या जरा जबतक नहीं आये हैं तबतक आत्मसाधना करने में आगे बढ़ जा । अशुभ कर्म का उदय होने पर रोग आकर खड़े हो जायेंगे । उस समय हाय ! हाय ! करने से फुरसत नहीं मिलेगी । हाय ! हाय ! करते हुए जीव अन्य नये कर्म बाँधता है और समभाव से सहने से पूर्व कर्म क्षय हो जाते हैं तथा नये नहीं बँधते । अनेक रोगों की खान होने पर भी इसकी विशेषता यह है कि इसी मानव देह से आत्मा की सच्ची पहचान, सच्ची समझ और ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी रत्न प्राप्त किये जा सकते हैं । जिसने वीतराग वाणी श्रवण करके आत्मा को जानने का पुरुषार्थ नहीं किया, आत्मसाधना में सहायक ज्ञान, दर्शन, तप, त्याग, वैराग्य का आचरण नहीं किया, वह मानव भव हार जाता है और चार गति में भटकता है । इन गतियों में शरीर पर ममत्व भाव रखकर दूसरों की दूकान का मालिक बनता है । वह मानता है कि इन्द्रियों द्वारा मैं समस्त सुख भोग लूँगा । पुत्र-पत्नी-परिवार में सुख न मिला तो अन्य विषयों को पकड़ लेता है । ज्ञानी कहते हैं कि 'जिसे तूने सुख के साधन माना है वहाँ जरा विवेक दृष्टि से देख । वहाँ सुख है ही नहीं, यह अनुभव के बाहर की बात नहीं है ।' ज्ञानी पुरुष तो हमें पुकार-पुकार कर समझाते हैं कि 'चैतन्य की दूकान में ऐसा कीमती माल भरा है कि यह माल खरीदने वाले का जन्मोजन्म का दारिद्रय मिट जाता है ।' उसे कहीं भीख माँगने नहीं जाना पड़ता । ज्ञानी तो कहते हैं कि 'गृहस्थ हो या साधु, आत्मा की दूकान की ऋद्धि कितनी है, उसमें कितना जवाहरात भरा है, यह तो देखो ।' आत्मा की दूकान में पुद्‌गल का माल नहीं है । यह दूकान ऐसी है जिसमें पर वस्तु का ग्राहक नहीं है । अरे, पैसा देकर भी शरीर को टिकाये नहीं रखा जा सकता । यदि आत्मा शरीर को टिकाकर रख सकता, तो तिजोरी छोड़कर क्यों चला जाता ? शरीर में टिकने की ताकत भी नहीं है । फक्त अपने गुणों, ज्ञान-आनन्द के पर्यायों को टिकाने की ताकत है अन्य किसीको स्थायी बनाने की नहीं । यदि शरीर को स्थायी बनाने की ताकत हो तो तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि महान पुरुष किसलिए चले जाते ?

समुद्र में जब ज्वार आता है तो जितना कचरा, जीवों का मुर्दा आदि पड़ा हो सब ऊँची लहरों के साथ, अपने किनारे से बाहर फेंक देता है । अपनी वस्तु के सिवाय अन्य किसी वस्तु का संग्रह नहीं करता । इसी तरह आत्मा, शरीर के आश्रित जो राग-द्वेष-मोह आदि गुण-धर्म हैं उन्हें रखना नहीं चाहता । आत्मा की ज्ञान शक्ति कितनी विराट है ! केवलज्ञानी भगवान आँख मींचकर खोले, इतने में असंख्याता समय जाते हैं, उस एक समय में अनंत ज्ञेय पदार्थों को जान लेते हैं । समय-समय में पदार्थ जानते रहे तो भी ज्ञान का खजाना खत्म नहीं हो । आत्मा की ऐसी विराट शक्ति है कि जो तीनों भुवन को कंपा सकता है । इसी प्रकार

आत्मा का आनन्द पर्याय, समय-समय अनिर्वचनीय, अवाच्य सुख, जो सिद्ध भगवान भोग रहे हैं, उनका आनन्द गुण न घटता है, न बढ़ता है। हमेशा आनन्द सागर में झूला करते हैं। ऐसा सुख प्राप्त करने के लिए शरीर का राग छोड़ना पड़ेगा और आत्मा से राग जोड़ना पड़ेगा। शरीर से ममत्व उतारे हुए मृगापुत्र के लिए 'उत्तराध्ययन सूत्र' के १९वें अध्ययन में *'दमीसरे'* शब्द का प्रयोग किया गया है। साधू बनने से पहले उनके लिए दमीसरे का संबोधन किया गया है। विचार कीजिए कि एक ओर मृगारानी का पुत्र *'युवराज'* शब्द का इस्तेमाल किया है। युवराज अर्थात् भविष्य में राजगद्दी पर बैठने वाला और दमीसरे अर्थात् संसार की विषयवासना को जीतने वाला एवं इन्द्रियों पर नियंत्रण रखने वाला। मृगापुत्र संसार में जबतक रहे इन्द्रियों तथा मन पर विजय प्राप्त करके रहे थे।

भगवान 'उत्तराध्ययन सूत्र' के प्रथम अध्ययन में कहते हैं कि "दुर्दम्य आत्मा दमन के योग्य है।" आत्मा का दमन करना कोई आसान काम नहीं है। *"अप्पा दंतो सुही होइ अस्सिं लोए परत्थ य।"* आत्मा का दमन करनेवाला इस लोक और परलोक में सुखी होता है। विभाव दशा में जाते आत्मा का निग्रह करके उसे स्वभाव दशा में स्थिर रखने को आत्मदमन कहा जाता है। चार कषाय और पाँच इन्द्रियों के विषय-विकार से आत्मा को निवर्तना ही खरा आत्मदमन है। आत्मा का दमन किससे करना चाहिए -

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।
माहं परेहिं दमन्तो, बंधणेहि वहेहिय॥

- उत्त. सू. अ-१, गा-१६

तप और संयम द्वारा आत्मा का दमन करने से अनंत कर्मों की निर्जरा होगी। नहीं तो परवश होकर दूसरों के द्वारा वध और बँधन द्वारा दमाया जायेगा। बंधुओं! भवोभव में दूसरों के हाथों से दमित होना है या स्वेच्छा से तप और संयम द्वारा आत्मा का दमन करना है? या तो स्वयं दमन करो या भवोभव में दमाया जायेगा। एक ओर तप और संयम और दूसरी ओर वध-बँधन। इन दोनों में से आपके मन का झुकाव किस ओर है? दूसरों के हाथों से भवोभव जीव मार खाता आया है। नरक में उत्पन्न नारकी को तीन नरक तक परमाधामी के हाथों दमित होना पड़ता है। नरक में तृषातुर बने नारकी के जीव पानी की आशा से वैतरणी नदी की ओर जाते हैं। इस वैतरणी नदी के पानी की धार इतनी तीक्ष्ण होती है कि नारकों का शरीर छिद-छिद जाता है। वैतरणी नदी में सिर्फ रक्त और मवाद बहता रहता है। परमाधामी देव नारकी के जीवों के शरीर के राई जितने टुकड़े कर डालते हैं, परन्तु वैक्रिय शरीर होने के कारण पारे की तरह टुकड़े फिर से आपस में जुड़ जाते हैं। नारकी के दुःखों के वर्णन का पार नहीं है। ऐसे अनंत दुःख जीव ने नरक में भोगे हैं।

तिर्यच गति में उत्पन्न हुए जीवों का भी अनेक प्रकार से दमन होता है। वृद्ध ल को कितनी बार अपने मालिक की ओर से लोहे की आरी भोंकी जाती है। जिंदगीभर कष्ट सहने वाले पशु जब काम नहीं कर सकते तब मालिक की निर्दयता ो तो कत्लखाने में भी कटना पड़ता है। भक्त प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहता कि 'हे प्रभु! आत्मा ने तिर्यच गति में कैसे-कैसे दुःख सहे हैं!'

केवा केवा दुःखड़ा वेठ्या जनावर बनीने स्वामी,
एक रे जाणे छे मारो आत्मा... ए जी रे...
नोजो अळखामणो ने लाकडीना मार खाता,
वहेती'ती आँसुडानी धार मारी आँखमां
ए - इ रे मलकनुं ज्यां पूरुं थयुं आउखुं त्यां,
थयो रे जन्म मारो देवताना लोकमां
दुःखड़ा निवारो मारा जन्म मरणना परमात्मा।

तिर्यच गति में ढेर बोझा उठाने पर भी लकड़ी का मार खाना पड़ता था। पराधीन ोकर, तिर्यच गति में जीव ने अनेक दुःख सहन किये। अरे... मनुष्य गति में भी हुतों को दूसरों के हाथों दमित होना पड़ता है। नौकरी करनेवाले को सेठ या ालिक के ऐलफैल वचन मौन रहकर सुनने पड़ते हैं। बोलने की कोशिश करे ो सेठ नौकरी से निकाल देता है। छुट्टी के दिनों में भी काम करवाते हैं। कृपण त्ति के मालिक तनख्वाह कम देकर नौकरों से खूब काम करवाते हैं। यह भी क प्रकार का दमन ही तो है या कुछ और?

ज्ञानी कहते हैं, 'भीषण नरक और तिर्यच गति में तथा मनुष्य गति में भी जीव अपरंपार दुःख भोगे हैं। अब हे जीव! तू निर्वेद प्राप्त कर और अपने शुद्ध स्वरूप ी भावना कर जिससे तेरे दुःखों का समापन आ जाए।' अनंतानंत काल से भव ं भटकते इस जीव ने दुःख और तीव्र अशाता का वेदन किया है। इसके प्रमाण ं 'उत्तराध्ययन सूत्र' में भगवान फ़रमाते हैं कि "इस जीव ने एक आँख के पलक पकने जितना समय भी सुख नहीं अनुभव किया न साता वेदी। देव गति या नुष्य गति में थोड़ा अल्प प्रमाण में जीव ने जो सुख अनुभव किया वह अनंतानंत ाल तक के नरक या निगोद के दुःख के सामने एक बिंदु जितने भी नहीं हैं। ैसे-वैसे दुःख भोगने न जाना हो तो तप और संयम से आत्मा का दमन कर ीजिए। तप और संयम के पालन से बहुत जीव मोक्ष में गये हैं। बहुत एकावतारी ने हैं। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने अपनी आत्मा को स्वेच्छापूर्वक इन्द्रिय-सुख भोगने े लिए छोड़ दिया था, तो उसके फल विपाक के रूप में उनकी आत्मा सातवीं रक में दुर्गति के दारुण दुःख भोग रहा है और कोई शरण रूप नहीं है।

आज यहाँ व्याख्यान में कोई बड़ा मिलमालिक या करोड़पति आ जाये तो आप सब उसे आगे बैठायेंगे । यानी यहाँ उसका स्थान आगे रहता है । परन्तु उसके मन में महारंभादि की जरा भी तकलीफ का अनुभव न होता हो तो भवांतर में नरक गति में भी उसका स्थान आगे होगा । उस समय यहाँ की मिल-फैक्ट्री या धन-वैभव कोई उसकी रक्षा करने में समर्थ नहीं होगा । नागेश्री की आत्मा जब कर्म भोगने गया तो कोई रोकने नहीं आया । अरे ! नागेश्री के भव में भी घर से बाहर निकाल दिया, तब पानी-पानी करती है, पर कोई पानी पिलाने वाला नहीं था । अंजना सती गत जन्म में जैनधर्मी नहीं थी, लेकिन जैन साधू की मसखरी की थी । उसकी जेठानी जैनधर्मी थी, उनसे सुना था कि जैन मुनि रजोहरण के बिना एक कदम भी चल नहीं सकते । जैन मुनि जब गोचरी के लिए आये तो उनकी परीक्षा करने के लिए उसने गोचरी लेते समय सरक आये रजोहरण को उठाकर छिपा दिया । मुनि ने बहुत कहा, पर उसने न दिया । मुनि तो वहीं ध्यान धर कर खड़े हो गये । अंत में जेठानी ने समझाया कि 'गुरु की अशातना न कर, अपमान न कर, हँसी मसखरी न कर ।' यह सुनकर और मुनि के ध्यान तथा चारित्र से प्रभावित होकर उसकी दृष्टि बदली और रजोहरण लौटाया । फिर जैन धर्म प्राप्त कर दीक्षा भी ली, परन्तु पाप की आलोचना करनी रह गयी । बारह घड़ी तक रजोहरण छिपाकर रखा, तो अंजना के भव में बारह वर्ष तक पति का वियोग हुआ ।

सम्यक्‌दृष्टि और मिथ्यादृष्टि आत्मा दोनों संसार में रहते हैं परन्तु दोनों के कर्मबंधन में फर्क होता है । सम्यक्त्वी के पाप का भय होता है और उसका लक्ष मोक्ष की ओर होता है । जबकि मिथ्यात्वी को मोक्ष में रुचि नहीं और न ही पाप का भय होता है । सम्यक्त्व के परिणाम वाला जीव कर्मोदय से संसार में रहता हो, भोगावली कर्म के उदय से भोग भी भोगता हो, परन्तु अंतर से चित्त तो मोक्ष की उत्कंठा में लगा रहता है । समकित की यही निशानी है कि कुछ भी प्रवृत्ति करते हुए उसकी कामना मोक्ष की होती है । आपका बीस वर्ष का पुत्र है । उसे पाँच-छः दिन से तीव्र ताप आ रहा है, ज्वर एक सौ चार-पाँच डिग्री रहता है । इस वजह से आप दूकान या ओफिस नहीं जाते । परन्तु एक दिन दफ्तर में जरूरी काम की वजह से आपको जाना पड़ा । ऐसी स्थिति में आप ओफीस तो जाते हैं, परन्तु आपका चित्त कहाँ होता है ? (श्रोताओं में से आवाज : 'घर पर पुत्र की अवस्था कैसी होगी - इसी ख्याल में') यदि टेलिफोन की सुविधा हो तो दो-तीन बार फोन करके खबर पूछ लेंगे । ओफिस में काम करते हुए भी चित्त तो घर में पुत्र के साथ ही लगा हुआ है । इसी प्रकार समकिती आत्मा संसार की समस्त प्रवृत्तियाँ करता है; पर उसका चित्त मोक्ष की ओर दौड़ता रहता है । इसीलिए ज्ञानियों ने समकिती जीव को मनःपाति नहीं बल्कि कायपाति कहा है, यानी वह

न से उसमें लिप्त नहीं रहता । कर्मोदय से उसे पाप का आचरण करना पड़ता , परन्तु पाप के लिए उसके मन में जरा भी प्रेम या आदर का भाव नहीं ता । बहुत बार अनिच्छा से भी हम कोई काम किसी संबंधी के आग्रह से करते , वैसे ही पाप कर्म की ओर संपूर्ण घृणा होने पर भी समकिती जीव को कर्मोदय पाप करने पड़ते हैं । अनिच्छा से जो काम करते हों, उसमें आनन्द कहाँ से ायेगा ? आप अगर इस भूमिका तक भी पहुँच गये हों तो समझ लीजिए कि ानव भव पाकर अच्छी कमाई कर ली है । एक सम्यक्त्व गुण में बहुत शक्ति । सम्यक्त्व आने पर ज्ञान तो सम्यक् हो जाता है, लेकिन चारित्र उसी समय आ ाये, इसका नियम नहीं है । कालान्तर में भी आ सकता है और किसी जीव को ंत भी उदय में आ सकता है । ज्ञान-दर्शन और चारित्र की इस त्रिपुटी की शक्ति ी जरा कल्पना तो कीजिए ! इन तीनों में से एक का भी अभाव हो तो संपूर्ण ोक्षमार्ग की सिद्धि संभव नहीं ।

द्रौपदी का अधिकार

नागेश्री सुकुमालिका के रूप में उत्पन्न हुई : नागेश्री की आत्मा महान दुःख ोगते, अकाम निर्जरा करते, पाप धोते सुकुमालिका के रूप में उत्पन्न हुई । कोई पड़ा बहुत मैला और चिकना हो तो होशियार बहन या धोबी उस कपड़े को ालकर, क्रियाओं द्वारा ऐसे साफ करते हैं कि एक दिन वह वस्त्र अपने पूर्ववत ा सफेद में आ जाता है । वैसे ही नागेश्री की आत्मा के काजल जैसे कर्म दुःख हते, अकाम निर्जरा करते कर्मो से हल्के बने और पुण्योदय से अच्छे घर में उत्पन्न ई । अभी भी अंशतः कर्म बाकी है, परन्तु पुण्य की प्रधानता और पाप की गौणता गई है । अबतक पाप की प्रधानता और पुण्य की गौणता थी । इस जन्म में ण्य की प्रधानता होने से सुखी, समृद्ध सेठ के घर जन्मी । उसके लालन-पालन लिए पाँच-पाँच धायमाताएँ रखी गईं । उसकी काया मलमल जैसी कोमल है। र में उसीका वर्चस्व है । माता-पिता सभी उसकी बातों को पूरा करते हैं । पुण्य ा सितारा चमका हुआ है । सुकुमालिका यौवन की सोलह कलाओं से खिली ई है । नगर में कौन रहता है, आगे क्या होगा आदि भाव अवसर पर कहे जायेंगे ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

तापसने काया की माया समाप्त की : हरिषेण तापस पुत्री को विदा करते ए हितशिक्षा दे रहे हैं कि "हे पुत्री ! तू सुख में या दुःख में कभी धर्म से विमुख रहना । धर्म को न भूलना । संसार में जीव के सच्चे माता-पिता-पुत्र और स्वामी र्म ही हैं । सांसारिक माता-पिता सच्चे माता-पिता नहीं हैं, क्योंकि उनका स्नेह

व संरक्षण अधिक से अधिक इस जीवन के अंत तक रहता है। परन्तु धर्म हमें ऐसा बल प्रदान करता है जिसके आधार पर अंतर की हाय-हाय थम जाती है। धर्म की रुचि से रोगादि प्रसंगों और कठिन कर्मो का कचरा साफ हो जाने का प्रसंग मानकर उसे हर्ष होता है। धर्म ही सच्चा पुत्र है। पुत्र माता-पिता के मन को आनंदित करता है, उनकी सेवा करता है। वैसे ही धर्म आत्मा में आनन्द उत्पन्न करता है, जीव की बहुत सेवा करता है और रागादि तथा कर्म से जर्जरित हुए जीव का पालन-पोषण करता है। इसलिए हे भोली ! तू भूलना नहीं। धर्म ही सच्चा प्रभु है। आपत्ति में धर्म ही रक्षा करता है। इस प्रकार पुत्री को सीख देते हैं।

पिता कंठ गिलगी अति रोई विश्वासी करे प्यार
तू कुलवंती कंत हुकुम में रहजे कुलाचार
कहे कुंवर से या तुम शरणे, क्षण-क्षण करजो सार... हो....श्रोता...

यह सुनते-सुनते ऋषिदत्ता पिता के गले से लगकर खूब रो पड़ी। अंत में हरिषेण ने कनकरथ से कहा, "मेरी पुत्री का हर क्षण ख्याल रखना। अब मैं अग्नि-प्रवेश करने की कामना करता हूँ।" ये शब्द सुनकर पुत्री-दामाद दोनों चौंक गये। "आप इतने बड़े योगी और अग्नि-प्रवेश की इच्छा करते हैं ? यह तो आत्मघात कहलायेगा।" हरिषेण ने कहा, "आप समझ नहीं रहे हैं। मैं तप रूपी अग्नि में प्रवेश करनेवाला हूँ। तप रूपी अग्नि कर्म रूपी लकड़ी को जला डालती है। समस्त तपों में अनशन तप उत्तम, महान और कल्याणकारी है। कल सुबह मैं संथारा करूँगा और सात दिनों के पश्चात् इस काया की माया समाप्त हो जायेगी।" कनकरथ और ऋषिदत्ता दोनों रुक गये। हरिषेण तापस ने शरीर वोसरा कर संथारा किया और समाधि ले ली। अब उन्हें जैनदर्शन पर श्रद्धा हो गई थी। ८वें दिन मुनि हरिषेण की महान आत्मा साधना साधकर काया के बँधन से मुक्त हो गयी। बालपन से पिता के आश्रय में रही ऋषिदत्ता को बहुत आघात लगा। संस्कार देने वाली माता तो नहीं थी, पिता भी चले गये। साधु रूप में भी होते तो दर्शन करने तो आती। कनकरथ ने इस महापुरुष की काया का अग्नि संस्कार किया। अब कनकरथ कुमार ऋषिदत्ता को किस प्रकार आश्वासन देकर शांत करेंगे, फिर क्या होगा आदि भाव अवसर पर कहे जायेंगे।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ५७

प्र. भाद्रपद कृष्ण ३, मंगलवार | दिनांक : ३-९-७४

जीवन कृतार्थ कर लो

सुज्ञ बंधुओं, सुशील माताओं और बहनों !

जगत वंदनीय, परम तारक, जिनेश्वर भगवंतों ने उनकी पवित्र वाणी द्वारा मानव को जीवन जीने की कला बतायी है। जिसका पूर्ण सद्भाग्य होता है उसे वीतराग वाणी श्रवण करने का शुभ अवसर प्राप्त होता है। ज्ञानी कहते हैं कि 'हे मानव ! तू हर किसीको पहचानता है, परन्तु अपने से ही परिचित नहीं है।' आप सोचेंगे कि क्या हम अपने को नहीं पहचानते हैं ? वस्तुतः आज ऐसे अनेक जीव हैं तो स्वयं को ही नहीं पहचानते। यदि आपको प्रभु वाणी पर श्रद्धा है, विश्वास है तो स्वयं के पहचान का पुरुषार्थ कीजि। अनंतकाल से आत्मा ने अपने को पहचानने का पुरुषार्थ नहीं किया, जिससे अनंतकाल से स्वयं को भूलकर पर में पड़ा हुआ है। अब स्व की ओर मुड़ने का विचार कीजिए तथा सोचिए कि मानव भव प्राप्त करके अब मेरा क्या कर्त्तव्य है ? जब स्व का भान होगा तब आपका अन्तरात्मा बोलेगा कि उठ जा ! कर्त्तव्य का मार्ग तेरी राह देख रहा है। कर्त्तव्य की आवाज तुझे सुनाई क्यों नहीं देती ? कर्त्तव्य के लिए जीवन समर्पित कर दे। जो कर्त्तव्य को नहीं समझते, उनकी आकृति मानव की होती है, परन्तु प्रकृति पशु की है और कृति राक्षस की। आपको कर्त्तव्य की राह पर कदम बढ़ाना हो, मानवता का तेज प्रकाशित करना हो, तो सदाचार की सौरभ से जुड़ जाइए। आप यह तो जानते ही हैं कि महान पुरुष महान कब बने ? क्या उनकी आकृति हमसे अलग थी ? उनके दो हाथ के बदले चार हाथ थे ? नहीं। इसमें कोई फर्क नहीं था। लेकिन उनके और हमारे वर्तन, व्यवहार में फर्क है। उन्होंने जीवन में संयम की सौरभ महकायी, जिससे महान बने। भगवान महावीर राजमहल में रहते थे, तभी उनके अंतर में कर्त्तव्य का शंखनाद गूँज उठा था।

मायाना महेलोमां रहता, वीरे जोयूं जागी,
आव्यो छुं हुं अमर थवाने, एकज लगनी लागी।
संयम तो स्नेहथी लीधो, बन्या ए महान वैरागी
समतानी सड़क पर वीरे लोचन दीधा ढाळी,
उपसर्गोना पहाड़ तूट्या तोय चीस ना पाड़ी काळी,
कीधा जीवन-संग्रामथी, बन्या ए वीर-वीतरागी... मायाना...

क्या मेरा जीवन चार दीवार में समाप्त हो जायेगा ? मौज-मजा और भोग-विलास क्या यही मेरा जीवन है ? नहीं । मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करना और कराना है । सही राह पर चलना और अन्य जीवों को सही राह पर ले जाना ही मेरा कर्त्तव्य है । राजमहल का त्याग करके संयम ग्रहण किया । संयम लेकर मन में एक ही लगन लगी कि अब जन्म-मरण नहीं करना है, अमर बनना है । आत्मा को अमर बनाने के लिए कितने कष्ट सहे । कर्म खपाने के लिए अनार्य देश में गये । वहाँ कितनी भूख-प्यास, मान-अपमान सहन किया । ग्वाले ने कान में कील ठोंक दिया, संगम देव ने उपसर्ग दिये, चंडकौशिक ने पैरों में दंश दिया । ऐसे भयंकर उपसर्गों का पहाड़ टूट पड़ा, फिर भी एक ऊँह तक मुँह से न निकाला । गजब की समता रखी । तप करके काया को हाड़पिंजर जैसा बना दिया और आत्मसाधना में रत रहे । जीवनसंग्राम में कर्मशत्रु के साथ शूरवीरता से युद्ध करके, घाती कर्मों को नष्ट करके केवल ज्ञान प्राप्त किया । केवल ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् ध्रुव और अध्रुव, नित्य और अनित्य का स्वरूप समझाया । अपनी आत्मा ध्रुव और नित्य है । शरीर अध्रुव और अनित्य है । अनंतकाल से जीव अनित्य से चिपका है, नित्य से नहीं । ज्ञानी कहते हैं कि 'अनित्य शरीर से तू लिप्त हो गया है, उसपर राग और ममत्व भाव किया है । परन्तु यह शरीर कैसा है ? *'असुई असुई संभवं ।'* अशुचि, अशुचि से भरा हुआ है ।' आप संसार के व्यवहार में भी ऐसे प्रसंग पर कहते हैं ना कि 'बस कर, बाबा' । इतने से न माने तो दूसरी बार कहेंगे, भाई ! पैर पड़कर कहते हैं कि 'बस करो ।' दो-दो बार कहने की जरूरत क्यों होती है ? जब कहकर थक जाते हैं तब या बात की सीमा आ गई हो तब, एक से दो बार कहते हैं । वैसे ही भगवान कहते हैं, "यह औदारिक आदि शरीर देखकर मैं थक गया हूँ । यह अशुचि का भंडार है ।" इसीलिए भगवान दो बार बोले कि *शरीर अशुचि, अशुचि से भरा हुआ है* । ऐसे शरीर पर क्या राग करना उचित है ? अपने भगवान मात्र उपदेशक न थे वरन् आचारक उपदेशक थे । भगवान को संगम ने कितने उपसर्ग दिये पर शरीर के प्रति उन्होंने जरा भी राग न रखा । साढ़े बारह वर्ष और एक पक्ष तक जिन्होंने उग्र तपस्या की । क्या उन्हें भूख-प्यास नहीं लगी होगी ? जरूर लगी होगी । परन्तु वे समझते थे कि आत्मा का स्वभाव अनाहारक है और इस शरीर का उपयोग उन्होंने कर्मग्रंथि को तोड़ने के लिए किया ।

लकड़ी की सामान्य गाँठ को काटने के लिए भी युवा मनुष्य की आवश्यकता होती है । वह कितना पुरुषार्थ करके उस लकड़ी की गाँठ को काटता है । इस गाँठ की अपेक्षा कर्म का गाँठ तो अनंतगुना मजबूत है । नागेश्री की बात पढ़ते ही दृश्य आँखों के समक्ष खड़ा हो जाता है । एक भूल की तो कितने दुःख भोगते जाना पड़ा । हमारी आत्मा भी भान भूले तो ऐसे दुःख भोगते जाना पड़ेगा । इसलिए

सजग बनने की जरूरत है। अपनी आत्मा भी बहुत भटकी है। अब भटकने की थकान महसूस हुई हो तो पाप से बचने की जरूरत है। अनाहारक दशा प्राप्त करने के लिए उपवास करने की जरूरत है। परवश होकर, रोग आने पर, डोक्टर के मना करने पर आत्मा बहुत बार भूखा रहा है, परंतु उससे कर्म की निर्जरा अंशमात्र भी नहीं हुई। स्वाधीन रूप से एक उपवास करने से भी बहुत से कर्मों की निर्जरा होती है। उपवास की तालीम ली होगी तो तीसरे मनोरथ तक पहुँच सकेंगे। तीसरा मनोरथ क्या है ? हे भगवान ! मैं आलोचना करके पडिकम्मी, निंदी, निःशल्य होकर संथारा कब करूँगा ? इतनी समाधि लेने के पहले तैयारी तो होनी चाहिए। जैसे मकान बनाने के पहले रेती, चूना, सीमेंट, टाइल्स, लोहा आदि चीजों की तैयारी रखनी पड़ती है, वैसे ही मोक्षनगर में प्रवेश करने के लिए पहले इतनी प्रैक्टिस तो होनी चाहिए। बंधुओं ! इसके लिए चारित्र के घर में आना पड़ेगा। चारित्र के बिना मोक्ष नहीं है। भरत महाराजा और मरुदेवी माता को संसार में रहते हुए केवल ज्ञान हुआ, तब भले ही द्रव्य चारित्र नहीं लिया था, परन्तु भाव चारित्र इतना जोरदार आया कि घाती कर्म की गाँठ को छेद-भेद कर डाला। मरुदेवी माता तो केवल ज्ञान प्राप्त कर तुरंत मोक्ष में गयीं, लेकिन भरत महाराजा को केवल ज्ञान हुआ कि तुरंत देवों ने आकर उन्हें साधू-वेश प्रदान किया। अतः चारित्र लेने योग्य है- ऐसी दृढ़ आस्था होनी चाहिए।

संसार में रहकर सुख की आशा करना ऐसा ही है मानो धुएँ को मुट्ठी में भरना। धुएँ को चाहे कितना पकड़ने की कोशिश की जाये, पर मुट्ठी में कुछ आयेगा क्या ? इसी तरह संसार में सुख पाने के कितने ही प्रयत्न कीजिए, पर सुख मिलता है क्या ? सुख तो न मिला, और इतने जन्म व्यर्थ चले गये। ऐसे विचार जब अंतर में आते हैं तो राग-द्वेष-मोह आदि कषाय मंद पड़ते हैं। परिणामस्वरूप आत्मा को अपने स्वरूप की पहचान होती है। परभाव से हटकर निजभाव में रमण करने लगता है। मैं कौन हूँ ? मेरा स्वरूप क्या है ? कौन मेरा और कौन पराया है ? इसका उसे भान होता है और भूतकाल में की गई भूलों का पश्चात्ताप होता है। आज तक देव-गुरु-धर्म की आराधना में आलस-प्रमाद किया। पर सुख और पर आनन्द में मेरे अनंत जन्म व्यर्थ गये। अतः हे चेतन ! अब तू पर वस्तु का राग छोड़ दे। क्योंकि वे वस्तुएँ तेरी नहीं और तेरी आत्मा के लिए उपयोगी भी नहीं। तेरे लिए हितकारी नहीं बल्कि अंत में तुझे धोखा देने वाली है। ये सारी वस्तुएँ तुझे एकान्त हानिकर्ता हैं। इसलिए इन सभी पौद्गलिक वस्तुओं का राग त्याग कीजिए और अपनी आत्मा रूपी बाग को गुण रूपी पुष्पों से सजाकर देव, गुरु और धर्म की उपासना कीजिए तथा उसमें तल्लीन बन जाइए। इस जगत में आपका हित करनेवाला वीतराग-परमात्मा, त्यागी सद्गुरु और वीतराग कथित

धर्म है । तो फिर वास्तव में आपका कौन है ? अपनी डायरी में नोट कर लीजिए । देव-गुरु और धर्म के सिवाय इस जगत में आपका कोई नहीं ।

आजतक सच्ची या सही समझ के अभाव में आत्मा ने उल्टी ओर पुरुषार्थ किया । जाना था मद्रास की ओर तो चलने लगे अहमदाबाद की ओर । तो वह व्यक्ति कभी भी मद्रास पहुँच सकेगा क्या ? आत्मा के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को अपना मानकर क्षण-क्षण उसका रटन करते रहे । उसके पीछे भवोभव में प्राण बिछाये फिर भी वह आपकी न हुई, क्योंकि वह अपनी थी ही नहीं । लेकिन जीव भ्रम में पड़ा हुआ था । मेरा घर, मेरा पुत्र, मेरी पत्नी, मेरे माता-पिता आदि मेरे-मेरे का ममत्व रखा और इसीमें अनंतकाल बिताया । भगवान कहते हैं कि "अब अपनी भूल को सुधारकर जीवन की दिशा बदल लीजिए ।" दिशा बदलने से दशा बदलती है । मुझे तारने वाले देव, गुरु और धर्म ही हैं, ये ही मेरे सच्चे सगे हैं- इस प्रकार रटन कीजिए और इन्हीं के चरणों में तन-मन सर्वस्व अर्पित कर दीजिए । ऐसा दृढ़ निश्चय कर लीजिए कि यही मेरे आधार और मालिक हैं, इससे आपका सम्यक्त्व दृढ़ होगा, निर्मल होगा, आपका विकास होगा, आत्मा में अनेरा प्रकाश होगा । अनादि काल से परिभ्रमण करती आत्मा को आजतक सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की प्राप्ति नहीं हुई थी । मनुष्य जन्म पाकर, देवों को भी दुर्लभ वस्तुएँ, आपको प्राप्त हो गई हैं । तो समझिए कि आप कितने भाग्यवान हैं ! मोक्ष जाने वाली मानव भूमि में आपका जन्म हुआ है ।

माता थकी विखूटो, बालक भमे अटुलो,
एवी रीते पड्यो तो, आ विश्वमां हुं भूलो,
जुग जुगथी झंखतो तो, ए धरती आज भाळी... हूं केवो भाग्यशाली

माता से बिछड़े बालक को उसकी माता मिले तो उसे कितना आनन्द होता है, वैसे ही वर्षो से जिस भूमि के लिए तरस रहा था, उस पवित्र भूमि पर आने का भाग्य मुझे मिला । किसीको घर में से रत्नों भरा कलश मिले, तो कितना आनन्द होता है ? मोक्ष जाने योग्य यह अपूर्व रत्नों के कलश समान देव, गुरु और धर्म मिलने पर आनन्द कैसे न हो ? वह कलश तो क्षणिक है, जबकि धर्मरूपी महान कलश तो जन्म-जन्म जीव के साथ रहने वाला, साथ चलने वाला और अंत में भवसागर को पार करानेवाला है । आत्म-कमायी करने का जो शुभ अवसर मिला है, यह सुंदर अवसर बार-बार नहीं मिलेगा । अतः प्रमाद का त्यागकर धर्म में बल और वीर्य विकसित कीजिए तो अवश्य आत्मा की विजय होगी । ऐसा उत्तम योग और साधनसामग्री प्राप्त करके जर, जमीन और जोरु का मोह त्याग, परमात्मा को भजो, शियल का शृंगार सजकर आत्मा को निर्मल बनाओ । धर्म की आराधना करने में जरा भी प्रमाद न कीजिए और धर्म की विराधना से दूर रहिए । सम्यक्दृष्टि आत्मा विराधना को जहर समझकर सदैव उससे दूर रहता है । ऐसा कौन मूर्ख होगा जो वर्षो की आराधना करके पूँजी

एकत्रित की और विराधना में पड़कर पूँजी को पूर्णतः नष्ट कर डाले । अंत में पछताने का समय न आये, इसलिए समझकर, समय पहचानकर सावधान बनो । अर्थ और काम की साधना तो भवोभव में की, पर उससे कुछ बना नहीं ।

द्रौपदी का अधिकार

सुकुमालिका पढ़-लिखकर होशियार हो गई । यौवन के आँगन में पहुँच गई। युवावस्था में मानव भूले तो दीवाना बने । एक सन्यासी कुएँ की जगत पर बैठ कर ध्यान करता और प्रभु जप करता था । जैन मुनि कुआँ के किनारे या सरोवर के तट पर नहीं बैठते । किसलिए नहीं बैठते ? लोक व्यवहार निर्वाह के लिए । यह सन्यासी बोलता था कि **"अगली भी अच्छी, पिछली भी अच्छी, निचली को जुता मार दो ।"** सन्यासी यह बोल रहा था तब तीन स्त्रियाँ कुएँ पर पानी भरने आयी थीं । आगे बनिया की पत्नी थी, पीछे पटेलानी और बीच में जागीरदार की पत्नी थी । उन्होंने ये शब्द सुने । बीचली को जूता मार दो सुनकर गरासणी (जागीरदारिन्) का खून खौल उठा । 'यह सन्यासी मुझे जूता मारने कहता है ! मैं इसका सिर न उड़वा दूँ तबतक चैन न लूँ । भगवान ने तीन प्रकार के शल्य कहे हैं । *माया शल्लेणं, नियाणं शल्लेण, मिथ्यादर्शन शल्लेणं*, ये शल्य जीव को दुर्गति में ले जाने वाले हैं । इसलिए शल्य को निकाल डालिए ।

गरासणी ने घर आकर पति से कहा, "आप तो बड़े नरम आदमी हैं । आपके रहते आपकी पत्नी का अपमान हो - क्या यह आपको शोभा देता है ?" एक चिंगारी लगा दी । आज शाम की घटना उसे बतायी । गरासिया कुआँ पर पहुँचा । वह सन्यासी तो बैठकर अपनी रौ में वही दोहराये जा रहा था कि, **"अगली भी अच्छी, पिछली भी अच्छी, निचली को जूता मार दो ।"** गरासिया ने सोचा, 'इस समय तो यहाँ कोई नहीं है, फिर भी सन्यासी बोले जा रहे हैं ।' फिर सोचा 'ये ऐसा क्यों कहते हैं ? उनके बोलने में कोई रहस्य लगता है ।' थोड़ी देर धीरज धरकर देखता-सुनता रहा तो पाप से बच गया । यदि धीरज न रखता तो सन्यासी को मार डालता । धीरज का फल मीठा होता है । संसार में कोई भी ऐसा प्रसंग आये तो आप धैर्य धरना सीखिए । इससे आपकी लेश्या बदल जायेगी । गरासीया सन्यासी के पास नमन करके पूछता है कि "आप यह क्या कहते रहते हैं कि 'अगली भी अच्छी, पिछली भी अच्छी, बिचली को जूता मार दो ।' इसका क्या अर्थ है ?" सन्यासी बोले, "मैं साधू बन गया पर मेरी जवानी को मारना शेष है । क्योंकि बालपन और वृद्धावस्था अगली और पिछली तो अच्छी है, परन्तु जवानी दीवानी होती है । युवावस्था में इन्द्रियों के घोड़े बेलगाम दौड़ते हैं, उन पर नियंत्रण करने की जरूरत है । युवावस्था में भान भूले तो जीव दुर्गति में जाता है ।" गरासिया संन्यासी के चरणों में झुक कर बोला, "गुरुदेव ! आज मैं घोर पाप से बच गया ।" ज्ञानी कहते हैं कि 'जवानी दीवानी न बन जाये इसके लिए पूर्ण सावधान रहकर सत्संग कीजिए ।'

सुकुमालिका पाँच धायमाताओं द्वारा पालित हो रही थी । वह गिरिकंदराओं में उत्पन्न चंपकमाला की भाँति महावात (पवन) से रक्षित तथा अन्य उपद्रवों से रहित स्थान में सुख से बढ़ रही थी । बचपन व्यतीत होने पर युवावस्था के आगमन होने पर, वह रूप आकृति से, यौवन-तारुण्य से और यौवनावस्था जनित सविशेष कांति से विशिष्ट शोभा संपन्न हो गई और उसके शरीर के समस्त अंग सुंदर हो गये, अर्थात् वह सर्वांग सुंदरी बन गयी । आगे शास्त्रकार बताते हैं -

'तत्थ णं चंपाए नयरीए जिणदत्ते नाम सत्थवाहे अट्ठे ।'

जिनदत्त सार्थवाह : उस चंपानगरी में जिनदत्त नामक एक सार्थवाह रहता था । वह बहुत ऋद्धिवान, धन-धान्य आदि से संपन्न, समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति था ।

जिनदत्त सार्थवाह घर में तथा समाज में स्तंभ के समान हैं । आज तो मकान से छप्पर की बल्ली गयी और मानव के खमीर का स्तंभ भी गया । जिनदत्त सेठ रिद्धि-सिद्धि के साथ बुद्धि का भी स्वामी है । वह प्रमाणिक, न्यायसंपन्न और दयालु है । उसके आँगन में आया हुआ कोई गरीब भूखा नहीं जाता । किसीका तिरस्कार नहीं करता । यदि आपको लक्ष्मी मिली हो तो संभव हो तो दान दीजिए और न दें तो भी किसीका तिरस्कार मत कीजिए । यह सेठ धर्म में, धन में एक समान थे । धन के साथ जीवन में धर्म का भी स्थान है । आज के मानव की दौड़ जितनी धन के पीछे है, उसके एक अंश भाग की दौड़ धर्म के लिए नहीं है । जिनदत्त सेठ इस प्रकार रहते हैं । अब आगे क्या बात होगी आदि भाव अवसर पर ।

सती ऋषिदत्ता का चरित्र

ऋषिदत्ता का करुण क्रन्दन : ऋषिदत्ता वन में अकेले पिता के संपर्क में थी इसलिए उनसे ही गहरी माया बंधी थी । जन्मते ही माता की मृत्यु होने से पिता का वात्सल्य और बढ़ गया था । ऐसे पिता, मुनि हरिषेण सात दिन का संथारा करके देवलोक प्रयाण कर गये तब उसे बहुत आघात लगा । आघात से वह जमीन पर गिर पड़ी और करुण क्रन्दन करने लगी । ऋषिदत्ता के करुण विलाप से कनकरथ को लगा कि यह बाला अकेले पिता के साथ आश्रम में पली, उनसे संस्कार पायी है । ऐसे उपकारी पिता का एकाएक वियोग उसके लिए असह्य होना स्वाभाविक है । परन्तु अब रोने से क्या मिलेगा ? मुझे उसे आश्वासन देना चाहिए ।

अतः कनकरथ ऋषिदत्ता से धीरज धरने कहते हैं, "हे सुशीला ! तुम्हारे पिता ने तो महान राज्य का सुख भी भोगा और तापस व्रत भी पालन किया । उनका जीवन कृतार्थ बन गया । अपना आयुष्य पूर्ण करके वे गये, इसमें शोक करने की बात नहीं है । वे गये हैं, हमें भी एक दिन जाना है । सूर्य सुबह उगता है, दिनभर प्रकाशित रहकर, जगत को आनन्द देकर, संध्या समय अस्त हो जाता है - इस पर कोई शोक करता है क्या ? कि बेचारा अस्त हो गया ! सुज्ञ व्यक्ति ऐसा नहीं करते । क्योंकि वे जानते हैं कि सूर्य इस

पृथ्वी पर सफल उज्ज्वल कारकीर्दि से कृतार्थ होकर गया है। हे सौभाग्यशाली ! समय होने पर किसे नहीं जाना पड़ता ? सभी को जाना है। इसलिए जीवन कृतार्थ करके जाने वाले धन्य पिता के लिए शोक न करके, उनके सुकृतों की अनुमोदना करो।" इस प्रकार ऋषिदत्ता को आश्वासन देकर शांत किया। अब कनकरथ और ऋषिदत्ता दोनों अपने शहर जाने की तैयारी करते हैं।

कंवेरीनगर में क्या हुआ ? : इस ओर बारात को रास्ता दिखाने आये पाँच व्यक्ति कंवेरीनगरी वापस पहुँच गये। राजा ने तो रुक्मणी के विवाह के लिए सारा शहर सजाने की व्यवस्था कर रखी थी। कंवेरीनगरी में आशा, आनन्द, सुख और हर्ष की रंगोली सज रही थी। राजभवन में आने के बाद इन पाँचों की मंडली के मुख्य व्यक्ति ने राजभवन के प्रमुख परिचारक से कहा कि "हमें महाराजा से मिलना है। जान (बारात) की अगवानी के लिए हम गये थे, अब लौटकर आये हैं।" परिचारक यह सुनकर आनन्द में आ गया। उसने सोचा, 'लोग आ गये तो अब राजकुमार और बारात एक-दो कोस तक पहुँच गयी लगती है।' इसलिए कुछ न पूछते सीधे राजा के खंड की तरफ बधाई देने दौड़ पड़ा। उस समय महाराजा कितने ही रत्नजड़ित गहने रुक्मणी को दिखा रहे थे। तभी परिचारक ने हर्ष भरे स्वर में आकर कहा, "कृपानिधान ! युवराज कनकरथ की बारात की अगवानी के लिए जो मार्गदर्शक गये थे, वे आये हैं और आपसे मिलना चाहते हैं।" सुनकर राजा-रानी और रुक्मणी सबके चेहरे खिल गये। रानी बोली, "हमें लगता था कि अभी बारात को आने में बीस दिन लग जायेंगे पर यह तो बहुत जल्दी आ गये।" मार्गदर्शक मंडली का महाराज ने स्वागत किया। वे बोले, "कृपावतार ! कहने के लिए जीभ नहीं हिलती।" आकाश से टूटती बिजली की कड़कड़ाहट जैसे मानव के हृदय को चौंका जाती है, वैसे राजकन्या चौंक उठी। महाराज बोले, "जो कुछ भी बात है निर्भयतापूर्वक कहिए।" "महाराज ! युवराज कनकरथ ने मार्ग में ही एक बनवासिनी कन्या के साथ विवाह कर लिया।" "ऐसा कैसे हो सकता है ? तुम्हारा भ्रम तो नहीं ?" "नहीं, महाराज ! युवराज परिणय के लिए निकले तो हम चुपचाप वहाँ से निकलकर आ गये।" राजरानी के चेहरे पर दुःख और वेदना की श्याम बदली छा गई। रुक्मणी के हाथ में से अलंकार छूटकर गिर पड़ा। पल-भर पहले हर्ष और उल्लास था। मधुर स्वप्नों की गुलाबी चादर बिछी हुई थी और उन पर आशाएँ नाच-कूद रही थीं। लेकिन दूसरे ही पल क्या हो गया ? इसीका नाम है संसार। पहले पल का उजाला अंधेरे में बदल गया। राजा रानी से कहते हैं "निराश होने की कोई जरूरत नहीं है। मैं सही बात मालूम करवाता हूँ" और दो गुप्तचरों को भेजते हैं। आगे क्या होगा आदि भव अवसर पर।

॥ ॐ शान्तिः ॥

व्याख्यान क्रमांक ७८ से १२२ तक देखिये द्वितीय भाग